मृच्छकटिकम्

(महाकवि शूद्रक विरचितम् प्रकरणम्)

व्याख्याकार

डा० कृष्णकान्त त्रिपाठी

एम ए पी एच डी, डी लिट्

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

बी०एस०एस०डी० कालेज, कानपुर

सुभद्रा त्रिपाठी ★ जयमनोहर मिश्र

एम ए एम ए

दो शब्द

मृच्छकटिकम् का यह चिर नवीन सस्करण प्रकरण के प्रेमियो को अभीप्सित सब कुछ दे सकेगा, यह हमारी घोषणा नहीं है, किन्तु सुन्दर पाठ, पाठानुसारी अनुवाद, सरल सस्कृत टीका, समास, व्याकरण एव विवृति की व्यवस्था से यह सस्करण महनीय है। इस सस्करण का प्रामाणिक आधार—पृथ्वीधर की टीका (निर्णयसागर प्रेस) जीवानन्द विद्यासागर का, गोडबोले का, पराञ्जपे का, डा० राइडर का, प्रो० काले का सस्करण तथा प्रो० तैलग, डा० देवस्थली, प्रो० चन्द्रबली पाण्डेय, प्रो० रैची, प्रो० कानो और डा० विन्टरनित्ज की कृतियाँ हैं। विवृति म-कोष, नाट्य, छन्द, अलङ्कार, रस, ध्वनि आदि पर विस्तृत टिप्पणियाँ है। यद्यपि प्रयत्न पूर्वक कार्य किया गया है, फिर भी त्रुटियाँ सभव एव विद्वज्जन क्षन्तव्य होगी। प्रकाशन मे ग्रन्थम्, रामबाग कानपुर के श्री कैलाशनाथ त्रिपाठी एव प्रो० शिवबालक द्विवेदी (सस्कृत-विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर) का श्लाघ्य प्रयास रहा है। आशा है, पाठक इस कृति को अपनाकर कृतार्थ करेंगे।

३० ८ ७६ —लेखक

दो शब्द

मृच्छकटिकम् का यह चिर नवीन संस्करण प्रकरण के प्रेमियों को अभीप्सित सब कुछ दे सकेगा, यह हमारी घोषणा नहीं है, किन्तु सुन्दर पाठ, पाठानुसारी अनुवाद, सरल संस्कृत टीका, समास, व्याकरण एवं विवृति की व्यवस्था से यह संस्करण महनीय है। इस संस्करण का प्रामाणिक आधार—पृथ्वीधर की टीका (निर्णयसागर प्रेस) जीवानन्द विद्यासागर का, गोडबोले का, पराञ्जपे का, डा० राइडर का, प्रो० काले का संस्करण तथा प्रो० तैलंग, डा० देवस्थली, प्रो० चन्द्रबली पाण्डेय, प्रो० लेवी, प्रो० कोनो और डा० विन्टरनित्ज की कृतियाँ हैं। विवृति में—कोष, नाट्य, छन्द, अलङ्कार, रस, ध्वनि आदि पर विस्तृत टिप्पणियाँ हैं। यद्यपि प्रयत्न-पूर्वक कार्य किया गया है, फिर भी त्रुटियाँ संभव एवं विद्वज्जन क्षन्तव्य होंगी। प्रकाशन में ग्रन्थम्, रामबाग कानपुर के श्री कैलाशनाथ त्रिपाठी एवं प्रो० शिवबालक द्विवेदी (संस्कृत-विभाग, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर) का श्लाघ्य प्रयास रहा है। आशा है, पाठक इस कृति को अपनाकर कृतार्थ करेंगे।

३० ८ ७६ —लेखक

प्रथम विवेक

संस्कृत साहित्य में शूद्रक

संस्कृत-साहित्य का विश्व-साहित्य में अद्वितीय स्थान है। भारतीय विद्वानों ने ही नहीं, अपितु अनेक पाश्चात्य आलोचकों ने भी सर्व सम्मत रूप से संस्कृत-साहित्य की उत्कृष्टता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। संस्कृत साहित्य जीवन के केवल लौकिक अथवा भौतिक पक्ष का ही चित्रण नहीं करता अपितु आध्यात्मिक-पक्ष को भी समान रूप से चित्रित करता है। संस्कृत-साहित्य में सत्य, शिव और सुन्दर का अद्भुत समन्वय एवं सामंजस्य उपलब्ध होता है। समष्टि में व्यष्टि के विलोप की प्रतिष्ठा संस्कृत-साहित्य की प्रमुख विशेषता है। संस्कृत-साहित्य में आत्म-दर्शन तथा आध्यात्मिकता को स्पष्ट एवं निष्पक्ष रूप से अभिव्यक्त किया गया है। ऐसे उत्कृष्ट तथा अलौकिक साहित्य के अध्ययन से जन्म-जन्मान्तर के पाप कालुष्य धुलकर जीवन पवित्र हो जाता है। संस्कृत में साहित्य एवं काव्य प्रायः समानार्थक शब्द माने जाते हैं। काव्य के विविध अंगों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग नाटक है। नाटक-रचना को कवित्व की चरम सीमा माना गया है नाटकान्तं कवित्वम्। यह संस्कृत-साहित्य का सर्वाधिक समृद्ध अंग माना गया है।

संस्कृत-साहित्य में अनेक ग्रन्थरत्न ऐसे हैं जिनके कर्त्ता एवं काल के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ भी कहना असंभव है। संस्कृत नाटकों के प्रारम्भ में प्रस्तावना में यद्यपि नाटककार अपने जीवन वृत्त एवं नाटक की कथावस्तु पर कुछ प्रकाश डालता है, किन्तु कुछ नाटक ऐसे हैं जिनमें या तो रचयिता के जीवन से सम्बन्धित सामग्री का पूर्णरूपेण अभाव है अथवा उसका संकेतमात्र में अपर्याप्त वर्णन किया गया है, जिसके आधार पर आलोचक निश्चित रूप से कुछ नहीं कह पाते। संस्कृत में सहस्रों नाटकों की रचना की गई है, किन्तु उनमें से अनेक आज अनुपलब्ध हैं। बहुत से नाटक ऐसे भी हैं, जिनके रचयिताओं के विषय में निर्विवाद रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। कुछ नाटककारों के तो नाम भी अज्ञात हैं। इसी प्रकार मृच्छकटिक के रचयिता के सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद है। प्रकरण की प्रस्तावना के

अनुसार इसके कर्ता शूद्रक हैं, किन्तु कुछ आलोचक उन्हे एक कल्पित व्यक्ति ही मानते हैं। कुछ विद्वानो का विचार है कि 'मृच्छकटिक' भास-रचित है तथा कुछ उसे दण्डी रचित स्वीकार करते हैं।

मृच्छकटिक का कर्तृत्व

मृच्छकटिक के कर्तृत्व का प्रश्न संस्कृत-साहित्य का एक बडा रोचक एव विवाद ग्रस्त प्रश्न है। मृच्छकटिक के रचयिता के सम्बन्ध मे विद्वानो मे बडा मतभेद है। प्रकरण की प्रस्तावना के अनुसार इसके कर्ता शूद्रक हैं, किन्तु कुछ आलोचक उन्हे एक कल्पित व्यक्ति ही मानते हैं। कुछ आलोचको के अनुसार मृच्छकटिक भास की रचना है, कुछ आलोचक यह स्वीकार करते हैं कि मृच्छकटिक दण्डी रचित है तथा अन्य इसे किसी अज्ञात कवि की रचना मानते हैं, किन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार शूद्रक मृच्छकटिक के रचयिता हैं।

मृच्छकटिक के कर्त्ता के विषय मे जो विभिन्न मत है, उन्हें हम चार भागो मे विभक्त कर सकते हैं। प्रस्तुत विवेचन मे उन चारो मतो का वर्णन कर हम इस विषय मे शूद्रक सम्बन्धी ऐतिहासिक एव साहित्यिक उल्लेखो के आधार पर अपना अभिमत भी प्रकट करेंगे।

मृच्छकटिक के कर्त्तृत्व के सम्बन्ध मे चार मत

१ मृच्छकटिक का रचयिता कोई अज्ञात कवि है।
मुख्य समर्थक—(१) डा० सिल्वा लेवी
(२) डा० कीथ तथा
(३) कान्तानाथ शास्त्री तैलग।
२ मृच्छकटिक के कर्ता दण्डी हैं—डा० पिशेल, मैकडोनल तथा करमरकर।
३ मृच्छकटिक के रचयिता भास हैं—नेरूरकर।
४ मृच्छकटिक शूद्रक की रचना है—डा० देवस्थली, भट तथा बलदेव उपाध्याय।

(१) डा० सिलूवा लेवी का विचार है कि मृच्छकटिक की रचना शूद्रक ने नही अपितु किसी अन्य अज्ञात कवि ने की। उस कवि ने अपना नाम शूद्रक ही क्यो चुना, इस विषय मे उनका विचार है कि वह कवि स्वयं कालिदास के आश्रयदाता विक्रमादित्य का परवर्ती था और अपनी कृति को विक्रमादित्य के पूर्ववर्ती राजा से सबद्ध करके उसे पुरातनता का आभास देना चाहता था। लेवी के इस विचार के विषय मे कीथ का मत है कि उनका यह अनुमान स्पष्ट रूप से क्लिष्ट कल्पना है। वे शूद्रक को पौराणिक व्यक्ति मानते हैं। उनके अनुसार शूद्रक का यह विचित्र नाम, जो सामान्य राजा के लिए हास्यास्पद है, इस तथ्य का समर्थन करता है। 'चारुदत्त'

नाटक को विस्तृत रूप देकर 'मृच्छकटिक' के रूप मे रचना करने वाले कवि ने काल्पनिक शूद्रक के नाम पर अपनी रचना को प्रसिद्ध किया ।[1] कीथ ने अपने इस मत को पुष्ट करने के लिए कोई युक्ति नही दी है । कान्तानाथ शास्त्री तैलग का भी विचार है कि मृच्छकटिक शूद्रक की रचना नही है । किसी अन्य कवि ने अपूर्ण 'दरिद्रचारुदत्त' को पूर्ण करने के लिए उसकी कथा मे गोपालदारक आर्यक की कथा जोडकर उसे 'मृच्छकटिक' रूप दिया । तैलग महोदय का कथन है कि प्रस्तावना मे शूद्रक नाम से पूर्व कवि ने 'एतत्कवि किल' तथा पचम श्लोक मे 'क्षितिपाल किल शूद्रको बभूव' और सप्तम मे 'चकार सर्वं किल शूद्रको नृप' आदि उक्तियो मे 'किल' अव्यय का प्रयोग किया है जो 'ऐतिह्य' 'अलीक' अथवा समाख्य का सूचक है अत इसका रचयिता शूद्रक के अतिरिक्त कोई अन्य कवि है । चतुर्थ श्लोक म कवि ने स्वय 'शूद्रकोऽग्नि प्रविष्ट' लिखकर अपनी मृत्यु का वर्णन किया है, जो सर्वथा असम्भव है । उस कवि न अपना नाम क्यो नही दिया, इस विषय मे तैलग महोदय के विचार है कि नाटक का आधा भाग भासकृत है । अत अपना नाम देकर मैं कवि चोर कहलाऊँगा । इसके अतिरिक्त कवि ने इसमें कुछ क्रान्तिकारी घटनाओं जैसे—चारुदत्त एव शर्विलक ब्राह्मणो का वेश्याओ के साथ विवाह, ब्राह्मण का चोर होना, चन्दनक एव वीरक सदृश शूद्रो का राज्य के उच्च पदो पर आसीन होना आदि का चित्रण किया है । अपना नाम देन पर शायद तत्कालीन राजा उसकी दुर्गति कर देते अत उसने उसे शूद्रक रचित प्रसिद्ध किया ।[2]

(२) पिशेल महोदय का विचार है कि 'मृच्छकटिक' दण्डी की तृतीय रचना है । उनकी प्रथम दो रचनायें 'दशकुमारचरित' एव 'काव्यादर्श' हैं । अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने दो युक्तियाँ दी हैं—दण्डी के 'काव्यादर्श' मे तथा मृच्छकटिक म 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जन नम' पद्य समान रूप से प्राप्त है तथा मृच्छकटिक' एव 'दशकुमारचरित' मे वर्णित सामाजिक दशा समान है । किन्तु इन सारहीन युक्तियो के आधार पर हम पिशेल का यह मत स्वीकार नही कर सकते । 'लिम्पतीव' इत्यादि पद्य 'काव्यादर्श' तथा 'मृच्छकटिक' दोनो मे चारुदत्त से लिया गया है तथा जिन कृतियो म समान सामाजिक दृश्य का चित्रण हो वे एक ही कवि की हो यह आवश्यक नही । इसके अतिरिक्त विद्वानो ने 'अवन्तिसुन्दरीकथा' को दण्डी की तीसरी कृति के रूप मे स्वीकार कर लिया है । अत पिशेल का यह मत सर्वथा भ्रान्त है । मैकडोनल महोदय ने पिशेल के इस मत को स्वीकर कर

१– कीथ—सस्कृत नाटक (हि०)—पृ० १२६–१२८ ।
२– तैलग—मृच्छकटिक समीक्षा (भूमिका)—पृ० ५–७ ।

लिया है ।[1] किन्तु पीटर्सन महोदय ने इस मत का खण्डन किया है । कुछ समय पूर्व करमरकर महोदय ने 'मृच्छकटिक' तथा 'काव्यादर्श' और 'दशकुमार चरित' में भावों एव विचारो के साम्य पर पिशेल के मत का समर्थन किया था[2] किन्तु उनका मत भी पुष्ट प्रमाणो के अभाव मे सर्वथा अग्राह्य है ।

(३) नेरूरकर महोदय का विचार है कि 'मृच्छकटिक' की रचना भी भास ने की है । जाति से शूद्र होने के कारण भास शूद्रक नाम से प्रसिद्ध हुए । स्वरचित 'चारुदत्त' का विस्तृत एव परिवर्धित रूप ही भास ने 'मृच्छकटिक' मे प्रस्तुत किया ।[3] किन्तु नेरूरकर की यह उक्ति भी तर्कसगत नही है । यहाँ प्रश्न यह उठता है कि भास ने 'मृच्छकटिक' को भास नाम से ही क्यो नही प्रसिद्ध किया, शूद्रक नाम से क्यो किया तथा उन्होंने अपने अन्य नाटको को भी शूद्रक नाम से क्यो प्रसिद्ध नही किया । 'मृच्छकटिक' की प्रस्तावना के अनुसार शूद्रक तो राजा है किन्तु भास नही, अत यह मत भी त्याज्य है ।

(४) भारतीय परम्परा के अनुसार शूद्रक मृच्छकटिक के रचयिता हैं । सस्कृत के अन्य नाटको के समान 'मृच्छकटिक' की प्रस्तावना मे शूद्रक के नाम का उल्लेख किया गया है । शूद्रक के स्वय अग्निप्रवेश का वर्णन एव 'किल' आदि शब्दो का प्रयोग इस विषय मे शका उत्पन्न करता है, किन्तु भारतीय विद्वानो ने इनका समुचित समाधान किया है । हो सकता है प्रस्तावना के कुछ श्लोक प्रक्षिप्त हो । डा० देवस्थली का विचार है कि जब तक प्रबल प्रमाणो के द्वारा शूद्रक के कृतित्व सम्बन्धी प्रचलित परम्परा का खण्डन नही हो जाता तबतक शूद्रक को ही मृच्छकटिक का कर्ता मानना चाहिये । इस विषय मे उनका कथन है कि—

We, therefore, take it for granted that the author of the play is Sudrak a king untill any thing is proved to the Contrary

इस विषय मे बलदेव उपाध्याय का मत है कि शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति थे और वे ही मृच्छकटिक के यथार्थ लेखक थे ।[5] जी० के० भट महोदय ने शूद्रक के विषय मे अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि वे एक ऐतिहासिक पुरुष है । 'मृच्छकटिक' किसी राजकवि की रचना नही है—उसे हम विश्वस्त रूप से राजा शूद्रक की कृति के रूप मे स्वीकृत कर सकते है । शूद्रक दाक्षिणात्य थे । इस सबध मे वे स्वय लिखते हैं—

१— मैकडोनल—हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर (१९६५) पृ० ३०५ ।
२— करमरकर—इन्ट्रोडक्शन टु मृच्छकटिक–पृ०
३— नेरूरकर—इन्ट्रोडक्शन टु मृच्छकटिक—पृ० १५-१९
४— डा० देवस्थली—इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ मृच्छकटिक—पृ० ३ ।
५- बलदेव उपाध्याय—सस्कृत साहित्य का इतिहास ।

"King Sudrak is not mythical, but is an historical figure Mrakshakatic is not the work of a Court-poet The royal authorship of the play can be accepted as a plawsible fact. The auther is a southerner"

कुछ विद्वान् यह सन्देह करते हैं कि 'मृच्छकटिक' सम्भवत शूद्रक के आश्रित किसी कवि की रचना है जिसने इसे अपने आश्रयदाता शूद्रक के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। भट महोदय ने इस विषय में स्पष्ट कर दिया है कि यह किसी राजकवि की रचना नही है। वस्तुत संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रथो मे शूद्रक का एक प्रसिद्ध रचयिता के रूप में उल्लेख हुआ है। अत मृच्छकटिक को निश्चित रूप से शूद्रक की रचना ही मानना चाहिए।

शूद्रक का ऐतिहासिक एव साहित्यिक उल्लेख

सस्कृत साहित्य के अनेक ग्रथो मे शूद्रक का उल्लेख प्राप्त होता है जिसके अनुसार शूद्रक निश्चित रूप से एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, कल्पित नही। किन्तु इन ग्रथों में शूद्रक का विभिन्न कालो एव प्रसगो मे उल्लेख होने के कारण यह निश्चित नही कहा जा सकता कि कौन सा शूद्रक 'मृच्छकटिक' का रचयिता है।

स्कन्दपुराण के कुमारिकाखण्ड में शूद्रक नामक राजा का उल्लेख है जिसका समय १९० ई० है। विल्सन महोदय इन्हे आन्ध्र वश के सस्थापक शिमुक (शिशुक, शिप्रक अथवा सिधुक) से अभिन्न मानते हैं।[1] डा० स्मिथ के अनुसार शिमुक का समय २४० ई० पू० है। डा० कोनो के अनुसार आभीर वश के राजा शिवदत्त का ही दूसरा नाम शूद्रक था। डा० साल्टोर महोदय ने मृच्छकटिक मे प्राप्त व्यक्तिगत सूचना के आधार पर शूद्रक को राजा शिवमार प्रथम से अभिन्न माना है जो प्रतापी राजा भूविक्रम के छोटे भाई थे तथा जिन्होंने सन् ६७० से ७२५ ई० तक राज्य किया।[2] चन्द्रबली पाण्डेय के अनुसार आन्ध्रवश के वासिष्ठी पुत्र पुलुमावि का दूसरा नाम शूद्रक है। वासिष्ठी पुत्र पुलमावि ही इन्द्राणि गुप्त है। अत. पुलुमावि ही शूद्रक है। उनके अनुसार इसमे दूर की उड़ान नही, हाँ दुराव की पकड़ अवश्य है।[3] दण्डी की 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के अनुसार शूद्रक उज्जयिनी के ब्राह्मण राजा थे, जिन्होने आंध्र वश के स्वाति नामक राजा को परास्त किया। इस आधार पर कुछ आलोचक शूद्रक को विक्रमादित्य से अभिन्न मानते हैं। राजशेखर के अनुसार धमिल

१- जी० के० भट—प्रिफेस टु मृच्छकटिक—पृ० १८८।
२- प्रिफेस टु मृच्छकटिक—पृ० १७७।
३- प्रिफेस टु मृच्छकटिक—पृ० १८३।
४- चन्द्रबली पाण्डेय—शूद्रक—पृ० ८।

तथा सौमिल कवियो ने 'शूद्रककथा' नामक एक ग्रन्थ लिखा था 'तौ शूद्रक कथा कारौ रम्यौ रामिलसोमिलौ'। कुछ आलोचको के अनुसार ये वही 'सौमिल' कवि हैं जिनका उल्लेख कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना मे किया है।[1] इसके अतिरिक्त कल्हण ने 'राजतरगिणी' मे तथा सोमदेव ने 'कथासरित्सागर' मे शूद्रक का उल्लेख किया है। 'कथासरित्सागर' मे शोभावती का तथा 'वेतालपचविंशति' मे शोभावती अथवा वर्धमान नगरी का शूद्रक की राजधानी के रूप मे वर्णन हैं। बाण ने 'कादम्बरी' मे विदिशा का शूद्रक की राजधानी के रूप मे उल्लेख किया है तथा 'हर्ष-चरित मे शूद्रक का वर्णन चन्द्रकेतु के शत्रु के रूप मे किया है। दण्डी ने 'दशकुमारचरित' मे शूद्रक का उल्लेख किया है। वामन के 'काव्यालकारसूत्र' के अनुसार शूद्रक एक प्रसिद्ध कवि था, जिसकी रचनाओ मे श्लेष गुण के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते है। 'शूद्रकादिरचितेपु प्रबन्धेपु अस्य भूयान् प्रपचो दृश्यते।' शूद्रक के नाम पर 'विक्रान्तशूद्रक' नामक नाटक, 'शूद्रकवध' नामक परिकथा तथा 'शूद्रकचरित' आदि ग्रथो का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ये ग्रथ अनुपलब्ध हैं। उपर्युक्त ऐतिहासिक एव साहित्यिक उल्लेखो के आधार पर मेरा यह दृढ अभिमत है कि शूद्रक एक कला प्रेमी एव साहित्यप्रेमी राजा थे। वे निश्चित रूप से कोई कल्पित व्यक्ति नही थे। वे कवि भी थे। यह सम्भव है कि विभिन्न कालो एव स्थानो मे शूद्रक नाम के अनेक राजा हुए हो, किन्तु मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक कौन थ तथा उनका स्थिति काल एव निवास स्थान आदि क्या था इस विषय पर हम आगे विचार करेंगे।

निष्कर्ष

मृच्छकटिक के रचयिता निश्चित रूप से शूद्रक ही हैं। दण्डी, भास अथवा अन्य किसी अज्ञात कवि ने इसकी रचना नही की है।

शूद्रक का स्थितिकाल

सस्कृत के अनेक कवियो के सदृश शूद्रक का भी काल अनिश्चित बना हुआ है। प्राय विद्वान यह मानने लगे हैं कि भास-कृत 'चारुदत्त' 'मृच्छकटिक' की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। 'मृच्छकटिक' का निर्माण 'चारुदत्त' के आधार पर हुआ है, अत भास निश्चित ही शूद्रक के पूर्ववर्ती हैं किन्तु वे कालिदास के पूर्ववर्ती हैं अथवा नही इस विषय में सदेह है। कीथ का विचार है कि भास के 'चारुदत्त' की उपलब्धि से 'मृच्छकटिक' के रचनाकाल पर अप्रत्याशित प्रकाश पडा है, परन्तु यह बात सन्देहास्पद है कि उसके रचयिता को कालिदास का पूर्ववर्ती मानना चाहिए अथवा नही।[2] वामन (८०० ई०) ने अपनी काव्यालकार सूत्रवृत्ति' मे 'शूद्रकादि रचितेपु प्रबन्धेपु' लिखकर शूद्रक का उल्लेख किया है तथा 'मृच्छकटिक' के द्यू प्रशसा-परक वाक्य

१- कालिदास—मालविकाग्निमित्र—पृ० २।
२- कीथ—सस्कृत नाटक (हि०)—पृ० १२५।

'द्यूत हि नाम पुरुषस्य असिंहासन राज्यम्' तथा एक पद्य 'या बलिर्भवति' आदि को उदधृत किया है।[1] अत हम भास को शूद्रक की पूर्व सीमा तथा वामन को अवर सीमा मान सकते हैं, किन्तु प्रश्न यह है कि शूद्रक कालिदास के पूर्ववर्ती हैं अथवा परवर्ती। जैकोबी तथा अन्य कुछ आलोचकों का विचार है कि शूद्रक कालिदास के पूर्ववर्ती हैं।[2]

इन आलोचकों का विचार है कि—

(१) कालिदास के नाटकों पर 'मृच्छकटिक' का अभाव है।

(२) परांजपे महोदय का विचार है कि मृच्छकटिक' में 'राष्ट्रीय' शब्द 'पुलिस अधिकारी' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है किन्तु परवर्ती साहित्य में और यहाँ तक कि 'शाकुन्तल' में भी उसका अर्थ 'राजा का साला' है। अत शूद्रक कालिदास के पूर्ववर्ती हैं।[3]

(३) इसके अतिरिक्त 'मृच्छकटिक' की सात प्रकार की प्राकृतें व्याकरण नियमों के प्रतिकूल अपने विकास की कालिदास की अपेक्षा पूर्वावस्था को प्रकट करती हैं। अत उनके विचार में शूद्रक का काल भास (४००ई०पू०) के पश्चात् तथा कालिदास (१०० ई०पू०) के पूर्व ३००–२०० ई० पू० के लगभग है। निम्नलिखित वाह्य एव अन्त प्रमाणों के आधार पर शूद्रक के काल का निर्धारण करने का प्रयत्न किया जा सकता है।

वाह्य प्रमाण

(अ) धनिक (दशम शताब्दी) ने 'दशरूपक' की अवलोक वृत्ति में 'मृच्छकटिक' एव उसके नायक चारुदत्त का नाम लिया है तथा 'मृच्छकटिक' के एक श्लोक को भी उद्धृत किया है।

(ब) वामन (८०० ई०) ने अपनी 'काव्यालकारसूत्रवृत्ति' में शूद्रक का श्लेष गुण में जयुत कवि के रूप म उल्लेख किया है तथा 'मृच्छकटिक' के उद्धरण भी प्रस्तुत किये हैं।

(स) दण्डी (७०० ई०) ने 'मृच्छकटिक' के 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' पद्य का अपने 'काव्यादर्श' में उद्धृत किया है।

(द) डा० देवस्थली के अनुसार पचतन्त्र म 'मृच्छकटिक' के दो श्लोक तथा एक पक्ति प्राप्त होती है। उनके अनुसार पचतन्त्र का समय पचम शताब्दी है।[4]

१– जी० के० भट—प्रिफेस टु मृच्छकटिक—पृ० १९२।

२– कीथ—सस्कृत नाटक (हि०)—पृ० १२८।

३– पराजपे—इन्ट्रोडक्शन टु मृच्छकटिक—पृ० २३।

४– डा० जी० वी० देवस्थली—इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ मृच्छकटिक—पृ० ४।

किन्तु कुछ विद्वान् अभी पचतन्त्र का समय निश्चित नही मानते ।

(य) 'मुद्राराक्षस' एव 'मृच्छकटिक' मे भी डा० देवस्थली के अनुसार अनेक समानतायें हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि शूद्रक विशाखदत्त के पूर्ववर्ती हैं, किन्तु विशाखदत्त का भी समय अभी निश्चित नही है ।[1]

(र) 'मृच्छकटिक' एव 'दशकुमारचरित' तथा 'कथासरित्सागर' मे अनेक स्थलो पर विचार साम्य है ।

(ल) कालिदास ने भास, सौमिल, कविपुत्र आदि का उल्लेख किया है किन्तु शूद्रक का नहीं ।

आभ्यन्तर प्रमाण

(१) 'मृच्छकटिक' के नवम अक मे धर्माधिकारी मनु को प्रमाण मानते हुये चारुदत्त को निर्वासित करने की प्रार्थना करता है—

'अय हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत् ।
राष्ट्रादस्मात् निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह ।'[2]

यद्यपि राजा इस निर्णय को नही मानता किन्तु मनु को प्रमाण मानने के कारण शूद्रक का काल मनु के पश्चात् है । मनु का काल लगभग ई० पूर्व २०० माना गया है ।

(२) मृच्छकटिक के नवम अङ्क म ही बृहस्पति का अङ्गारक अर्थात् मगल का विरोधी बतलाया गया है ।[3] किन्तु वराहमिहिर और उनके परवर्ती ज्योतिषी बृहस्पति को मगल का मित्र मानते हैं । अत शूद्रक वराहमिहिर के पूर्ववर्ती हैं । वराहमिहिर की मृत्यु ५८९ ई० म हुई थी ।

(३) डा० सालटोर के अनुसार मृच्छकटिक म वर्णित बौद्धधर्म की स्थिति सप्तम शताब्दी ई० की ओर सकेत करती है जबकि बौद्धधर्म दक्षिण म उन्नत अवस्था को प्राप्त था । किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि शकार सवाहक को आदर की दृष्टि मे नहीं देखता तथा चारुदत्त भी उसके दर्शन को अशुभ मानता है उस समय बौद्धो का चारित्रिक पतन नहीं हुआ था किन्तु वे सम्मान दृष्टि मे देखे जाते थे । अत बौद्धधर्म की स्थिति लड़खड़ा रही थी । यह दशा छठी शताब्दी ई० की ओर सकेत करती है ।[4]

(४) 'मृच्छकटिक' के अनुसार शूद्रक सेंधकी कला में निपुण थे । इससे

१- डा० जी० वी० देवस्थली—इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ मृच्छकटिक—पृ० ४ ।
२- मृच्छकटिक—९-३९ ।
३- मृच्छकटिक—९-३३ ।
४- जी० के० भट—प्रिफेस टु मृच्छकटिक—पृ० १९५ ।

प्रतीत होता है कि 'मृच्छकटिक' की रचना से पूर्व वात्स्यायन ने अपने 'कामसूत्र' की रचना कर ली थी। वात्स्यायन का समय चतुर्थ शताब्दी ई० के लगभग है।

(५) उस समय राजनीतिक दशा अस्तव्यस्त थी। देश मे अराजकता थी। राजाओं का चारित्रिक अध पतन हो चुका था। राजा विलासी थे और राजमहिषियो के अतिरिक्त रखैलें भी रखते थे।

(६) राजा ही न्याय का एक मात्र अधिष्ठाता होता था। राजा के सम्बन्धी न्यायाधीशों को अपदस्थ करा सकते थे तथा उनसे स्वेच्छा से न्याय करा सकते थे। राज्य मे विप्लव भी हो सकते थे। जनता द्वारा विद्रोह कर राजा को च्युत भी किया जा सकता था।

(७) ब्राह्मण धर्म राजधर्म था। ब्राह्मणो का समाज म सम्मान था किन्तु चोर-जुआरी आदि दुर्जनो का बाहुल्य था। शाम को भले घर की बहू बेटियाँ घर से बाहर निकलने का साहस नही करती थी।

(८) दास प्रथा प्रचलित थी। रुपया चुकाने पर दासता से मुक्ति भी प्राप्त की जा सकती थी।

(९) व्यापार की दशा उन्नत थी। समुद्र मार्ग से भी व्यापार होता था। वेश्याओं का समाज मे आदरणीय स्थान नही था। गणिकायें कुल-वधुयें भी बन सकती थीं। उपर्युक्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, एव आर्थिक स्थितिया गुप्त साम्राज्य के पतन और हर्ष के राज्य के उदय की पाचवी अथवा छठी शताब्दी की ओर सकेत करती हैं।

(१०) 'मृच्छकटिक' म प्रयुक्त शौरसेनी तथा मागधी प्राकृतें एव चाण्डाली शकारी, ढक्की, अवन्तिका आदि विभाषायें भी उसी समय की स्थिति बतलाती हैं।

(११) कुछ विद्वान् नाटक रचना की कला एव नियमो का पालन तथा भाष्य विधान के आधार पर भी 'मृच्छकटिक' का काल निर्धारण करने का प्रयत्न करते हैं।

उपर्युक्त प्रमाणो के आधार पर सस्कृत साहित्य के अधिकाश आलोचकों का मत है कि 'मृच्छकटिक' पाचवी अथवा छठी शताब्दी की रचना है।

बलदेव उपाध्याय का कथन है कि इन सब प्रमाणो का सार यही है कि शूद्रक दण्डी (सप्तक शतक) और वराह मिहिर (षष्ठ शतक) के पूर्ववर्ती थे अर्थात 'मृच्छकटिक' की रचना पचम शतक म मानना उचित है।[1] डा० भोलाशकर व्यास का मत है कि सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थितिया को ध्यान म रखते हुये हम 'मृच्छकटिक' को ईसा की पाचवी शती के उत्तरार्ध या छठी शती के पूर्वार्ध

१— सस्कृत साहित्य का इतिहास—पृ० ५१९

की रचना कह सकते हैं।[1] वाचस्पति गैरोला का विचार है कि 'मृच्छकटिक' की इन सभी स्थितियो का विश्लेषण करके यह सिद्ध होता है कि उसकी रचना पाचवी-छठी शताब्दी के लगभग हुई थी।[2] कान्तानाथ शास्त्री तैलग कहते है कि मृच्छकटिक का काल ई० पचम सभवत षष्ठ शतक है।[3] भट महोदय का इस विषय मे यह कथन है कि 'मृच्छकटिक' तृतीय-चतुर्थ तथा अष्टम शताब्दी ई० के मध्य की रचना है।

MrikshaKatic Cannot be put later than the eight Century A D The eternal evidence brings us somewhere to the third or fourth Century A D, The date of MrakshaKatic should fall between these two limits[4]

डा० देवस्थली का विचार है कि शूद्रक कालिदास के पूर्ववर्ती हैं—

Sudrak must be later than Bhas nnd earlier than Vaman. Very likely he is earlier than even Vishakhadatta The lower limit of Sudrak may be pushed upto the fourth century A D on the strenght of the astronomical and legal ideas occurring in it, and lastly linguistic considerations justify us in making Sudrak a predecessor of Kalidas also but he cannot be much earlier than the beginning of the Christian Pura[5]

पराजपे महोदय के अनुसार शूद्रक का समय तृतीय शताब्दी ई० है।[6]

चन्द्रशेखर शास्त्री महोदय का विचार है कि 'मृच्छकटिक' की रचना तृतीय शताब्दी ई० पूर्व मे हुई होगी।[7]

सम्भवत शूद्रक के काल के विषय मे विद्वानो के परस्पर विरोधी विचारो के कारण ही कीथ शूद्रक का कोई निश्चित काल-निर्धारण नहीं कर पाते। वे कहते हैं कि हम केवल कुछ धारणायें बना पाते हैं जो उस कुशल लेखक के काल-निर्धारण के लिए बिल्कुल अपर्याप्त है।[8] दासगुप्ता तथा डे महोदय भी यह तो कहते हैं कि

१– संस्कृतकविदर्शन—पृ० २८४।
२– संस्कृत-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५८०।
३– मृच्छकटिक समीक्षा, पृ० १०।
४– प्रिफेस टु मृच्छकटिक, पृ० १९६।
५– इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ मृच्छकटिक, पृ० ८।
६– प्रिफेस टु मृच्छकटिक, पृ० १९५।
७– संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० १०३।
८– कीथ—संस्कृत नाटक, पृ० १२८।

हम मृच्छकटिक को बहुत प्राचीन नहीं मान सकते किन्तु वे उसकी कोई निश्चित तिथि देने में असमर्थ हैं।[1]

शूद्रक का जीवन परिचय

संस्कृत साहित्य की महान् विभूतियों ने प्राय अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में अधिक प्रकाश नहीं डाला है। शूद्रक ने भी इस विषय में अपनी वाणी को मौन ही रखा है। पौराणिक अथवा साहित्यिक ग्रंथों में भी उनके विषय में कोई विश्वस्त सूचना नहीं प्राप्त होती। अपने जन्म-स्थान, स्थिति-काल तथा जीवनचरित पर शूद्रक ने स्वयं भी अपनी लेखनी से विशेष-प्रकाश नहीं डाला है। 'मृच्छकटिक' की प्रस्तावना में स्थित तीन श्लोकों के आधार पर हमें केवल यह सूचना प्राप्त होती है—

मृच्छकटिक' के रचयिता राजा शूद्रक गजराज के समान गति से युक्त, चकोर के समान नेत्र वाले, पूर्णचन्द्र के सदृश मुख वाले, सुन्दर शरीर से युक्त, द्विजों (क्षत्रियों) में श्रेष्ठतम तथा अगाध बलयुक्त थे। उन्होंने ऋग्वेद, सामवेद, गणित, कलाओं, नाट्यशास्त्र तथा हस्तिपालन की शिक्षा प्राप्त करके, शिवजी की कृपा से अज्ञानरूपी अन्धकार से मुक्त ज्ञान चक्षुओं को प्राप्त कर अपने पुत्र को राजा देखकर, अश्वमेध यज्ञ करके सौ वर्ष दस दिन की आयु प्राप्त कर अग्नि में प्रवेश किया। वे युद्ध प्रेमी प्रमाद रहित, वेद ज्ञाताओं में प्रवीण, तपस्वी तथा शत्रुओं के हाथियों के साथ बाहु युद्ध करने वाले थे।[2] इस सूचना के अनुसार 'अग्नि प्रविष्ट' के आधार पर यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि शूद्रक ने स्वयं अपनी मृत्यु (अग्नि प्रवेश) का वर्णन कैसे किया। इस सन्देह का निवारण करते हुये कुछ समालोचक कहते हैं कि ये श्लोक प्रक्षिप्त हैं, कुछ का विचार है कि शूद्रक ज्योतिषी थे अतः भविष्य की बात को जानते थे, कुछ विद्वानों का विचार है कि हमें इसका लाक्षणिक अर्थ लेना चाहिये अर्थात् मृत्यु पर्यन्त वे अग्निहोत्र करते हैं।

विद्वता—'मृच्छकटिक' के आधार पर यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि शूद्रक के ज्ञान का भंडार विशाल था। वे महान् विद्वान् तथा बहुज्ञ थे। उन्होंने वेद, वेदांग, स्मृतिग्रंथ, धर्मशास्त्र, गणित, ज्योतिष, कलाओं तथा हस्ति-शिक्षा आदि का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था। वे स्वयं को 'वेद विदां वरद्' कहते हैं। नवम अंक में अधिकरणिक के द्वारा 'अङ्गारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पते'[3] श्लोक में बृहस्पति को मङ्गल का शत्रु माना गया है अतः प्रतीत होता है कि उन्हें ज्योतिष का विशेष

१— दास गुप्ता एण्ड डे—हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—वाल्यूम प्रथम, पृ० २४२।
२— मृच्छकटिक—१/३-६।
३— मृच्छकटिक—९/३३।

ज्ञान था। वे तत्कालीन न्याय व्यवस्था तथा दण्ड व्यवस्था से भी पूर्ण परिचित थे। मनुस्मृति आदि स्मृति ग्रंथो का उन्होने प्रमुख रूप से अध्ययन किया था। मनुस्मृति के अनुसार पापी ब्राह्मण भी अवध्य है, उसे सम्पत्ति के साथ केवल राष्ट्र से बहिष्कृत कर देना चाहिए। नवमअङ्क मे अधिकरणिक भी चारुदत्त को यही दण्ड देने के लिए राजा से सिफारिश करता है।[1] धर्मशास्त्र मे वर्णित न्यायाधीश के कर्त्तव्यो और गुणो का शूद्रक ने गहन अध्ययन किया था। नवम अङ्क उनके कानून और न्याय विषयक ज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। शूद्रक के ज्योतिष एव न्याय व्यवस्था सम्बन्धी ज्ञान के विषय मे डा० देवस्थली के विचार इस प्रकार हैं—

He has shown his acquaintance with astrology (and astronomy also perhaps) and a very sound knowledge of the legal procedure Act I has been so cleverly managed and the pieces of evidence have been so brought out one after another that one Cannot but admire the legal acumen possessed by our author[2]

शूद्रक शकुन—विज्ञान से भी परिचित थे, यह बात नवम अक मे न्यायालय की ओर प्रस्थान करते समय चारुदत्त के द्वारा वर्णित विविध अपशकुनो एव उनके कुफल से प्रतीत होती है। शूद्रक को नृत्य, सगीत, द्यूतकला तथा चौर्यकला का भी विशेष ज्ञान था।

महान् कलाकार—शूद्रक एक सफल और विख्यात कवि तथा नाटककार थे। उन्होने अनेक प्रकार के छन्दो और अलकारो का बडा मनोहर प्रयोग किया है। सस्कृत एव प्राकृत भाषाओ का उन्हें प्रौढ ज्ञान था। मृच्छकटिक मे उन्होने जितनी प्रकार की प्राकृतो का प्रयोग किया है, उतना किसी अन्य नाटककार ने नही। नाट्यकला सम्बन्धी उनका पाडित्य बडा गम्भीर था। धनजय ने अपने 'दशरूपक' मे नाटक की अवस्थाओ, अर्थप्रकृतियो, सन्धियो तथा सन्ध्यङ्गो से सबधित अनेक उदाहरण 'मृच्छकटिक' से दिये हैं। वामन उन्हे श्लेष गुण के प्रयोग में चतुर मानते हैं। इस विषय मे देवस्थली महोदय कहते हैं—

His general Knowledge of the language (Sanskrit as well as the large number of Prakrats) and abundant sprinkling of mythological references and also figures of speech, and use of different metres short as well as long with good ease or enough to show his general equipment as a poet, while his equipment as a dramatist can easily

१- इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ मृच्छकटिक—पृ० ८।
२- इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ मृच्छकटिक—पृ० ८-९।

be guessed from the skill he has displaced in managing his raw-Materials and infusing life into them.

धार्मिकता — शूद्रक सदाचारी और धर्मपरायण क्षत्रिय थे। सम्भवत वे शिव जी के भक्त थे। यह बात नान्दी पद्यो मे प्रयुक्त 'शम्भोर्व पातु समाधि' तथा 'पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठ' एव दशम अङ्क मे प्रयुक्त 'जयति वृषभकेतु' इत्यादि वाक्यो से प्रतीत होती है। वे वैदिक धर्म के अनुयायी थे। देवपूजा एव बलिकर्म को वे ग्रहस्थ की नित्यविधि के रूप म मानते थे।[1] वे अग्निहोत्र करते थे और तपस्वी थे। वे योगाभ्यासी थे। उन्होने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। वेदान्त के ब्रह्म-तत्व मे वे विश्वास करत थे। भरत वाक्य से यह स्पष्ट विदित होता है कि वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था मे उनकी आस्था थी। वे कहते है 'सततमभिमता ब्राह्मणा सन्तु सन्त:' तथा 'श्रीमन्त. पान्तु पृथिवी प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्च भूपा।' वे गौ के भी भक्त थे— यह बात उनके इस कथन से स्पष्ट हैं 'क्षीरिण्य सन्तुगावो।' शूद्रक दैव पर भी विश्वास करते थे यह दशम अङ्क के ६०वें श्लोक (काश्चित्तुच्छयति विधि) से स्पष्ट है।

निवास स्थान— 'मृच्छकटिक' के रचयिता शूद्रक दाक्षिणात्य (महाराष्ट्र निवासी) प्रतीत हाते हैं। विल्सन महादय उन्हें आन्ध्रवश का प्रथम राजा स्वीकार करते हैं। आन्ध्रवश का राज्य भी दक्षिण म था, अत वे स्वाभाविक रूप से दाक्षिणात्य प्रतीत होते हैं। वामन के 'काव्यालकारसूत्र' के एक टीकाकार शूद्रक को 'राजा कोमति' लिखते हैं। काले महोदय के अनुसार कोमति एक मद्रास प्रदेश की जाति विशेष है। अत वे दाक्षिणात्य ही प्रतीत होते हैं। 'मृच्छकटिक' के कुछ अन्त प्रमाण भी इस मत को ही पुष्टि करते हैं। द्वितीय अङ्क मे कर्णपूरक वसन्त सेना के हाथी के लिए 'खुण्टमोडक, शब्द का प्रयोग करता है। यह शब्द दक्षिण मे ही प्रचलित है। दशम अङ्क म चाण्डाल दुर्गा देवी के लिये 'सह्यवासिनी' शब्द का प्रयोग करता है 'भगवति सह्यवासिनि, प्रसीद प्रसीद'। उत्तर के कवि दुर्गा को 'विन्ध्यवासिनी' नाम से सम्बोधित करते हैं, किन्तु दक्षिण के 'सह्यवासिनी' नाम से। षष्ठ अङ्क म चन्दनक दाक्षिणात्यो की भाषा सम्बन्धी विशेषता बतलाते हुए कहता है—

'वय दाक्षिणात्या अव्यक्तभाषिण'[2]

इसके अतिरिक्त वह दक्षिण की खस, खत्ति, खडा, खडह द्रविड, चोल, चीन बर्बर आदि अनेक म्लेच्छ जातियो का भी उल्लेख करता है। इसके अतिरिक्त वह दक्षिण के 'कर्णाटकलह' शब्द का भी प्रयोग करता है। अत शूद्रक को दाक्षिणात्य

---

(१) मृच्छकटिक १/१६।

(२) जी० के भट प्रिफेस टु मृच्छकटिक पृ० १८८।

मानना ही उचित है।

भट महोदय का निश्चित मत है कि शूद्रक दक्षिण के निवासी थे। वे मृच्छकटिक के कर्ता (शूद्रक) के विषय मे स्पष्ट कहते हैं —

The author is a southerner

दक्षिण के अनेक व्यक्ति उज्जयिनी मे राज्य के प्रतिष्ठित पदो पर नियुक्त थे। अत कुछ आलोचको का विचार है कि शूद्रक उज्जयिनी के निवासी थे। दण्डी का भी यही विचार है कि शूद्रक का निवास स्थान उज्जयिनी ही थी।

अपना मत—

उपर्युक्त विवेचन मे दिये गये अन्त प्रमाणो के आधार पर मेरा यह निश्चित मत है कि शूद्रक दक्षिण के निवासी ही थे।

शूद्रक की रचनायें— आधुनिक काल मे हमे शूद्रक की एक मात्र रचना 'मृच्छकटिक' ही उपलब्ध है। दण्डी तथा वामन आदि के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि उनकी अन्य रचनायें भी अवश्य रही होगी किन्तु वे आज अनुपलब्ध हैं। 'मृच्छकटिक' दस अङ्का का एक प्रकरण है। इसकी आधिकारिक कथावस्तु मे दरिद्र किन्तु चरित्र सम्पन्न उज्जयिनी के युवक ब्राह्मण चारुदत्त तथा गुणग्राहिणी गणिका वसन्तसेना मे प्रेम का चित्रण है तथा प्रासगिक कथावस्तु मे आर्यक की राज्य प्राप्ति का वर्णन है। आधिकारिक कथावस्तु को महाकवि भासकृत 'चारुदत्त' से अविकल रूप मे ग्रहण किया गया है। प्रथम चार अङ्को की कथावस्तु मे 'चारुदत्त' से पूर्णत साम्य है किन्तु अन्तिम ६ अङ्को की कथावस्तु तथा आर्यक सम्बन्धी प्रासगिक कथावस्तु को शूद्रक ने अपनी उर्वर कल्पना से सफलतापूर्वक विकसित किया है। यद्यपि कथावस्तु का राजनीतिक अश कवि की निजी सम्पत्ति है किन्तु कुछ आलोचक इस अश का प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओ पर आधारित ही मानते हैं।

सन् १९२२ ई० म मद्रास म श्री वल्लभदेव ने 'चतुर्भाणी' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया जिसम चार भाण है। इनम से 'पद्मप्राभृतक' नामक एक भाण भी है। वल्लभदेव का विचार है कि इसके रचयिता भी शूद्रक ही हैं, किन्तु इस विषय पर कोई प्रामाणिक वर्णन उपलब्ध न होने से इसे शूद्रक की रचना स्वीकार नही किया जा सकता। आलोचक भी इस विषय मे प्राय मौन ही हैं। वल्लभदेव का कथन है कि शूद्रक की 'वत्सराजचरित (वीणावासवदत्ता) भी तृतीय रचना है तथा इन्होंने 'कामदत्त' नामक एक अन्य प्रकरण की भी रचना की थी किन्तु इसके विषय म भी कोई प्रामाणिक सूचना नही प्राप्त होती।

अपना मत— शूद्रक की रचनाओ के विषय म मेरा यह विश्वास है कि मृच्छकटिक ही उनकी एक मात्र उपलब्ध रचना है। 'पद्मप्राभृतक' की भाषा एवं शैली मृच्छकटिक' की भाषा तथा शैली स भिन्न है। अत 'पद्मप्राभृतक' शूद्रक

की रचना नही है । शकर इसे भास की ही रचना मानते है । 'वीणा वासवदत्ता' भी भाषा एव शैली मे मृच्छकटिक से भिन्न है । अत वह भी शूद्रक की रचना नही है । कुन्हन राजा उसे भास की रचना मानते हैं, किन्तु वस्तुत 'पद्मप्राभृतक' एव 'वीणा वासवदत्ता' दोनो न तो शूद्रक की रचना है और न भास की । 'कामदत्ता तो निश्चित रूप से शूद्रक की रचना नही है । यह केवल वल्लभदेव की ही कल्पना है कि शूद्रक इसके रचयिता हैं ।

द्वितीय विवेक

सस्कृत नाट्य–साहित्य मे मृच्छकटिक

सस्कृत नाट्य–साहित्य का महत्व

नाट्य–सिद्धान्त के प्राचीनतम ग्रन्थ भरत मुनि रचित नाट्यशास्त्र मे परिरक्षित भारतीय परम्परा नाट्य की दैवी उत्पत्ति तथा ईश्वरीय वेदो से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध मानती है । 'नाट्य' शब्द वस्तुत रूपक की अभिव्यजना करता है । ललित कलाओ मे सर्वश्रेष्ठ स्थान–काव्यकला को तथा काव्य-कला मे भी श्रेष्ठतम स्थान नाटक को दिया गया है । काव्य मे नाटक के इस उत्कृष्ट स्वरूप को दृष्टि मे रखते हुए ही हमारे प्राचीन सहृदय काव्य मर्मज्ञो ने यह घोषणा की —

'काव्येषु नाटक रम्यम्'

नाटक सस्कृत-साहित्य का अत्यन्त प्राचीन काल से ही एक अतिशय गौरवपूर्ण अग रहा है । काव्य की अपेक्षा नाटक की प्रतिष्ठा सदा अधिक रही है । नाटक आनन्दोपलब्धि का एक प्रमुख साधन है । ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य (सवाद), सामवेद से सगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस नामक तत्वो को ग्रहण कर नाट्यवेद नामक पचम वेद का निर्माण किया ।[1] इसे सार्ववर्णिक पचम वेद' की सज्ञा दी गई है । काव्य श्रवण मार्ग से हृदय को आकृष्ट करता है किन्तु नाट्य श्रवण मार्ग के अतिरिक्त नेत्र मार्ग से हृदय को विशेष चमत्कृत करता है । नाट्य, अभिनय, सगीत वेशभूषा तथा सवाद आदि के माध्यम से दर्शको के हृदय पर स्थायी प्रभाव डालता है । मनुष्यो की रुचिया भिन्न होती हैं— भिन्नरुचिर्हि लोकः । किन्तु नाट्य भिन्न रुचि रखने वाले सभी व्यक्तियो को समान रूप से आनन्द प्रदान करता है । अवस्थाओ की अनुकृति ही नाट्य कहलाती है—

'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'

नाट्य मे लोक वृत्त का अनुकरण होता है । नाट्य धर्म, यश, आयु, हित तथा बुद्धि की वृद्धि करता है । जीवन के स्तर को उदात्त एव आदर्श बनाना ही नाट्य का उद्देश्य है । नाट्य मे कही धर्म कही क्रीडा, कही अर्थ कही श्रम, कही हास्य, कही

युद्ध, कहीं काम तथा कहीं वध होता है।[1] इसीलिये नाटक को कवित्व की चरम और उत्कृष्टम सीमा माना गया है।

'नाटकान्त कवित्वम्'

दृश्य एव श्रव्य भेद से काव्य दो प्रकार का होता है। दृश्य काव्य दो प्रकार के होते हैं — रूपक और उपरूपक। रूपक को रस, भाव आदि का आश्रय माना जाता है। रूपक दस प्रकार के होते हैं और उपरूपक अठारह प्रकार के। वस्तुत साहित्य शास्त्र की दृष्टि से नाटक' रूपक का ही एक प्रकार है, किन्तु हिन्दी मे सभी दृश्य काव्यो (रूपको) को सामान्यतया नाटक कह दिया जाता है।

प्रकरण के रूप मे 'मृच्छकटिक' की समीक्षा

साहित्य शास्त्रियो ने 'मृच्छकटिक' को नाट्य साहित्य के एक विभेद 'प्रकरण' की श्रेणी म रखा है। अपने नाट्यशास्त्र मे प्रकरण की विशेषताओ के सम्बन्ध मे अपना मत प्रकट करते हुए भरत मुनि लिखते हैं —

"यन्नाटके मयोक्त वस्तुशरीर रसाश्रयोपेतम्।
तत् प्रकरणेऽपि योज्य केवलमुत्पाद्यवस्तु स्यात्॥
विप्रवणिक्सचिवाना पुरोहितामात्यसार्थवाहानाम्।
चरित यदनेकविध तज्ज्ञेय प्रकरण नाम॥
दासविट श्रेष्ठियुत वेशस्त्र्युपचारकारणोपेतम्।
मन्दकुलस्त्रीचरित कार्यं काव्य प्रकरणे तु॥
यदि वेशयुवतियुक्त न कुलस्त्रीसगमो भवेत्तत्र।
अथ कुलजनप्रयुक्त न वेशयुवतिर्भवेत्तत्र॥"[2]

प्रकरण की परिभाषा देते हुए दशरूपककार धनञ्जय ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये है —

"अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्य लोकसश्रयम्।
अमात्यविप्रवणिजामेक कुर्याच्च नायकम्॥
धीरप्रशान्त सापाय धर्मकामार्थतत्परम्।
शेष नाटकवत्सन्धिप्रवेशक रसादिकम्॥
नायिका तु द्विधा नेतु कुलस्त्री गणिका तथा।
क्वचिदेकैव कुलजा वेश्या क्वापि द्वय क्वचित्॥

(१) भरत नाट्यशास्त्र काशी सस्कृत सीरीज बटुकनाथ शास्त्री १/१७।
(२) भरत नाट्यशास्त्र २०/५१–५५ काशी सस्कृत सीरीज।

कुलजाभ्यन्तरा, वाह्या वेश्या, नातिक्रमोऽनयोः ।
आभिः प्रकरण त्रेधा, संकीर्णं धूर्त संकुलम् ॥[1]

साहित्य दर्पण मे प्रकरण का लक्षण देते हुए विश्वनाथ कविराज ने लिखा है :—

भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ॥
श्रृंगारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक् ।
सापायधर्मार्थकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः ॥
नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वय क्वचित् ।
तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः ॥
कितवद्यूतकारादिविट चेटकसकुलः ।"[2]

प्रकरण मे वृत्त लौकिक एवं कवि कल्पित होता है । श्रृंगार इसका मुख्य रस होता है । ब्राह्मण, अमात्य अथवा वणिक इनमे से कोई एक प्रकरण का नायक होता है, वह धीर प्रशान्त प्रकृति होता है तथा विघ्न आने पर भी धर्म, अर्थ एवं काम मे तत्पर रहता है । इसकी नायिका कुल-स्त्री अथवा वेश्या होती है । किसी प्रकरण मे दोनो ही नायिका हो सकती है, किन्तु इनका परस्पर मिलन नही होना चाहिए । इन नायिकाओं के कारण प्रकरण तीन प्रकार का होता है । तीसरे प्रकार के प्रकरण मे जिसमे कुलजा एव वेश्या दोनो नायिका होती है, धूर्त, जुआरी, विट तथा चेट आदि भी होते हैं । प्रकरण वस्तुतः नाटक के सदृश होता है । अत. इसमे सन्धि आदि नाटक के समान ही होते हैं ।

प्रकरण के लक्षणो के अनुसार यदि हम 'मृच्छकटिक' की आलोचना करें तो हमे ज्ञात होगा कि 'मृच्छकटिक' का वृत्त लौकिक है । यद्यपि उसका आधार बृहत्कथा को स्वीकार किया गया है किन्तु मुख्यतया उसे कल्पित ही माना गया है । उसका प्रधान रस श्रृगार है । यद्यपि विभिन्न अको मे करुण, हास्य एव वीभत्स आदि रसो का भी समावेश किया गया है किन्तु वे अग रूप मे ही आये हैं । इसका नायक चारुदत्त ब्राह्मण है । साहित्य दर्पण मे विश्वनाथ कविराज भी इस सम्बन्ध मे कहते हैं :—

'विप्रनायकम् यथा मृच्छकटिकम्'[3]

---

(१) दशरूपक……३/३९—४२……चौखम्बा ।
(२) साहित्य दर्पण…६/२२४-२२७…हिन्दी०…डा० सत्यव्रत सिंह ।
(३) व (३) साहित्य दर्पण ६/२२५ व ६/२२७ क्रमशः हिन्दी डा०सत्यव्रत सिंह ।

उसकी प्रकृति धीर प्रशान्त है । वह यद्यपि बडा दरिद्र है किन्तु धर्म, अर्थ एवं काम की सिद्धि म निरन्तर रत रहता है । मृच्छकटिक मे कुलजा एव वेश्या दोनो नायिका हैं । कुलजा चारुदत्त की पत्नी धूता है तथा दूसरी गणिका वसन्त सेना है । विश्वनाथ इस विषय मे कहते हैं —

'द्वेऽपि मृच्छकटिके'[1]

अत तृतीय श्रेणी का प्रकरण होने के कारण इसमे धूर्त (शकार), द्यूतकार, विट एव चेट आदि का भी समावेश किया गया है । धनजय के अनुसार मृच्छकटिक एक सकीर्ण प्रकरण है, क्योकि ''सकीर्णं धूर्तसकुलम्''[2] सन्धियाँ, अर्थ प्रकृतिया एव अवस्थाएँ आदि इसमे नाटक के समान ही हैं ।

मृच्छकटिक की रचना के समय नाट्यशास्त्र के नियमो का समुचित रूप से निर्धारण नही हुआ था, अत इसमे लक्षण–ग्रन्थो के नियमो का पूर्ण-रूपेण पालन नही हुआ है, क्योंकि नाट्य के नियमो का निर्माण उस समय हुआ तथा उन्हे साहित्यिक रूप तब दिया गया जब अनेक नाटको की रचना हो चुकी थी । लक्षण–ग्रन्थो की रचना सदा बाद मे होती है और लक्ष्य ग्रन्थो की पहले ।

मृच्छकटिक एक अत्यन्त प्राचीन रचना है । अत इसमें समस्त नियमो का अक्षरश पालन नही किया गया । अत प्रकरण की कुछ विशेषताए मृच्छकटिक मे प्राप्त नही होती ।

(१) विश्वनाथ कविराज के अनुसार प्रकरण का नाम नायक अथवा नायिका के नाम पर रखना चाहिए :—

'नायिकानायकाख्यानात्सज्ञा प्रकरणादिषु'

मृच्छकटिक का नाम नायक एव नायिका किसी के नाम पर नही है । वह एक घटना विशेष पर आधारित है जिसम मिट्टी की गाडी (मृच्छकटिक) का विशेष स्थान है ।

(२) दशरूपक एव साहित्य दर्पण दोनो के अनुसार नायक को प्रत्येक अक मे उपस्थित रहना चाहिए[2], किन्तु मृच्छकटिक के द्वितीय चतुर्थ, षष्ठ तथा अष्टम अको म चारुदत्त अनुपस्थित रहता है ।

(३) नाट्यशास्त्र एव दशरूपक दोनो के अनुसार कुलजा एव वेश्या दोनो नायिकाओं का रगमच पर मिलन नही होना चाहिए किन्तु मृच्छकटिक मे दोनो

(१) साहित्य दर्पण ६/२२५ व ६/२२७ क्रमश हिन्दी डा सत्यव्रत सिह ।
(२) दशरूपक ३/४२ चौखम्बा ।
(३) साहित्य दर्पण ६/१२ तथा दशरूपक ३/३० ।

मिलती हैं तथा परस्पर एक-दूसरे का स्वागत भी करती हैं। इन अनियमितताओं के होने पर भी संस्कृत साहित्य में 'मृच्छकटिक' के समान सकीर्ण प्रकरण का अन्य कोई सुन्दर उदाहरण नहीं प्राप्त होता।

चारुदत्त एवं मृच्छकटिक का पूर्वापरक सम्बन्ध

टी० गणपतिशास्त्री, सुखथंकर, बेलवल्कर, पराजपे, प्रो० ध्रुव, विण्टरनित्ज, कोनो तथा कीथ आदि विद्वानो का स्पष्ट मत है कि चारुदत्त की रचना पहले हुई तथा मृच्छकटिक उसके आधार पर रचा गया एक एक परिवर्धित एवं संशोधिक प्रकरण है। प्रो० कीथ का विचार है कि मृच्छकटिक के प्रथम चार अक किंचित् परिवर्तन के साथ भास-कृत चारुदत्त की प्रतिकृति हैं।

शूद्रक को इस बात की मौलिकता का श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होंने राजनैतिक वैदग्ध्य प्रयोग और काम चरित्र का सम्मिश्रण किया है, जिन्होंने रूपक को विशेष महत्व प्रदान किया है। इसके गुण अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। वे पर्याप्त रूप इस बात को उचित सिद्ध करते हैं जो अन्यथा साहित्यिक चोरी समझी जाती।[1] प्रो० काणे, पिशरोती तथा देवधर इस मत का विरोध करते हैं। डा० कुन्हन राजा तथा नेरूरकर का मत है कि चारुदत्त तथा मृच्छकटिक एक ही नाटक के दो प्रतिरूप हैं तथा चारुदत्त को साभिप्राय अपूर्ण रखा गया है। सुखथकर तथा पराजपे ने दोनों प्रकरणो की भाषा, शैली आदि का आलोचनात्मक अध्ययन कर चारुदत्त को मृच्छ-कटिक का मूल घोषित किया। सुखथकर वे चारुदत्त तथा मृच्छकटिक के मूल पाठ का प्रविधि, प्राकृत, पद्य रचना तथा नाटकीय घटना-सविधान की दृष्टि से विशेष अध्ययन किया है।

मृच्छकटिक की अपेक्षा चारुदत्त की प्राकृत अधिक प्राचीन है। मृच्छकटिक के पद्य अपने समान चारुदत्त के पद्यो की भाषा भाव एवं व्याकरण के दोषो से अधि-कांश रूप में मुक्त हैं। यदि चारुदत्त बाद की रचना होती तो उसमें उन दोषों का परिहार होना चाहिए था। यद्यपि यत्र-तत्र चारुदत्त में मृच्छकटिक की अपेक्षा अधिक सुन्दर प्रयोग प्राप्त होते हैं किन्तु वे केवल अपवाद रूप में ही हैं। चारुदत्त की अपेक्षा मृच्छकटिक का घटना-सविधान भी अधिक श्रेष्ठ है। चारुदत्त के दोषो का उसमें निराकरण करने का प्रयत्न किया गया है। अद स्पष्ट है कि कि चारुदत्त की रचना पहले हुई और मृच्छकटिक की बाद में। बेलवल्कर महोदय ने नाट्यशास्त्र के नियमो के आधार पर भी चारुदत्त की प्राचीनता का समर्थन किया।

डा० मोरगेंन्सटर्न (Morgens–tiesrne) ने चारुदत्त तथा मृच्छ-

(१) कीथ·· संस्कृत नाटक (हि०) पृ० १२९—१३२।

कटिक के मूलपाठ की तुलनात्मक अध्ययन कर चारुदत्त की प्राचीनता को ही सिद्ध किया है।

देवधर तथा अन्य आलोचकों के मत की समीक्षा—

देवधर महोदय का यह स्पष्ट मत है कि चारुदत्त वस्तुत रंगमंच पर अभिनय की उपयोगिता की दृष्टि से किया गया मृच्छकटिक का संक्षिप्त रूपान्तर है। इस विषय मे वे कहते हैं —

From the foregoing discussion, in the absence of any direct testimony I feeel inclined to believe that the Charudatta represents a very Crude abridgement possibly made for stage performance of that best speciman of the Indian theatre the Mrikshakatic and naturally, therfore, the author of the Charudatta must have been postarier to Sudrak

पुसालकर महोदय ने चारुदत्त तथा मृच्छकटिक के तुलनात्मक अध्ययन को चार भागों मे विभक्त किया है —

१—शब्द भंडार,
२—प्रविधि,
३—प्राकृत तथा
४—पद्य रचना।

उनका मत है कि चारुदत्त तथा मृच्छकटिक मे अनेक भिन्नतायें हैं। अत वे एक समय की रचनायें नहीं हैं। उनका यह स्पष्ट मत है कि दोनों प्रकरण एक ही मूल के दो प्रतिरूप नहीं हैं। पुसालकर मृच्छकटिक की अपेक्षा चारुदत्त के पूर्ववर्तित्व को स्वीकार करते हैं।

डा० कुन्हन राजा कुछ शब्दों के आधार पर 'चारुदत्त' पर मालाबार का प्रभाव मानते हैं। मृच्छकटिक म शूद्रक ने सूत्रधार के वक्तव्य को चारुदत्त मे ही लिया है। चारुदत्त में वह प्राकृत में बोलता है किन्तु मृच्छकटिक मे वह संस्कृत का प्रयोग करता है। वह केवल कार्य और प्रयोग के वशीभूत होकर प्राकृत बोलता है— 'एषोऽस्मि भो, कार्यवशात्प्रयोगवशाच्च प्राकृत भाषी संवृत्त) 'चारुदत्त' मे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाया गया है। अत चारुदत्त मृच्छकटिक से पूर्व की रचना है। चारुदत्त का भरतवाक्य मविधान-नान्दी एवं भरत वाक्य का अभाव और प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना आदि भी उसकी प्राचीनता को ही प्रदर्शित करते हैं। चारुदत्त की प्राकृत भी मृच्छकटिक से प्राचीन है। इस विषय मे पुसालकर का कथन

(१) देवधर प्लेज एट्रीब्यूटेड टु भास इत्यादि पृ० ४०।

है कि —

It is shown that the charudatta in common with otoer works of Bhas retains old Prakrat forms against the Mrakshakatic which contains invariably the middle Prakrat.

चारुदत्त में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग नहीं हुआ है किन्तु मृच्छकटिक में हुआ है। महाराष्ट्री प्राकृत भास की प्राकृत से बाद की है। अतः मृच्छकटिक की रचना चारुदत्त से बाद मे हुई।

मृच्छकटिक के पद्य अपने समान चारुदत्त के पद्यों के भाष्य एवं व्याकरण सम्बन्धी अनेक दोषों से मुक्त हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि शूद्रक ने मृच्छकटिक की रचना करते समय उन दोषो को दूर कर दिया। इस विषय मे सुखथंकर का कथन है कि:—

The text of the Mrikshakatic makes an advance upon the other play in the following directions--Rectification of grammatical mistakes, elimination of redundencies and awkward constructions, and introduction of other changes which may be claimed to be improvements in the form and substance of the verses.

सुखथंकर का मत.—चारुदत्त एवं मृच्छकटिक की प्रविधि, प्राकृत, पद्य रचना तथा नाटकीय घटनाओं की दृष्टि से आलोचना करने पर सुखथंकर का स्पष्ट मत है कि चारुदत्त से मृच्छकटिक का विकास हुआ है। इसके विपरीत नहीं इस विषय मे वे कहते हैं:—

Taking all things into account, we conclude, we can readily understand the evolution of a Mrikshakatic version from a charudatta version, but not vice-versa.

इसी विषय मे सुखथंकर आगे कहते हैं कि मैंने ऐसे कुछ कारण प्रस्तुत कर दिये हैं जिनके आधार पर यह विश्वास किया जा सकता है कि 'चारुदत्त' 'मृच्छकटिक' से अधिक प्राचीन है तथा यदि 'चारुदत्त' 'मृच्छकटिक' का मूल नहीं है तो इसने बहुत अधिक मात्रा मे उस मूल को सुरक्षित रखा है जिस पर मृच्छकटिक आधारित है:—

I merely claim that I have furnished here some prima faci reasons for holding that the charudatta is on the whole older than the Mrikshakatic version : hence (as a corollary) if our Charudatta is not itself the original of the Mrikshakatic, then we must assume,

it has a great deal of the original upon which the Mrikshakatic is based

वेलवलकर का मत—वेलवल्कर का यह दृढ मत है कि अब यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि शूद्रक ने भास के दरिद्र चारुदत्त मे कुछ परिवर्तन करके उसे मृच्छकटिक मे पूर्णता प्रदान की है । इस विषय मे वे कहते हैं —

That Sudrak's *Mrikhakatic completes* (*with* certain deliberate modifications) the Daridra charudatta of Bhas is now a generally accepted priosition

मृच्छकटिक विषयक आधुनिक विचारधारा——

भास के चारुदत्त एव शूद्रक के मृच्छकटिक के विषय म आधुनिक समय मे अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं जिनसे दोनो प्रकरणो के पारस्परिक सम्बन्ध पर पर्याप्त प्रकाश पडता है ।

शिवराम शास्त्री का विचार है कि चारुदत्त मृच्छकटिक का मूल है तथा मृच्छकटिक चारुदत्त के कठिन स्थलो की व्याख्या करने के लिए सर्वश्रेष्ठ भाष्य है ।

एस० पी० भटटाचार्य का मत है कि मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक ने चारुदत्त नामक नाटक को परिवर्धित किया है ।

भट महोदय का विचार है कि चारुदत्त भास की ही अपूर्ण रचना है तथा यह उनके रचनाकाल की अन्तिम परिपक्व अवस्था से सबधित है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर मेरा अभिमत है कि चारुदत्त की रचना पहले हुई है और मृच्छकटिक की बाद मे ।

तृतीय विवेक

'मृच्छकटिक' की कथावस्तु का समालोचनात्मक अध्ययन

मृच्छकटिक' का नायक चारुदत्त एव नायिका वसन्त सेना है । इन नायक एव नायिका की कल्पित प्रेम कथा ही रूपक का आधार है । चारुदत्त उज्जयिनी (अवन्तिपुरी) का एक दरिद्र एव चरित्र सम्पन्न ब्राह्मण युवक है जिसे समाज मे बडा आदरणीय स्थान प्राप्त है । वसन्त सेना उज्जयिनी की एक रूपवती, गुणवती तथा धन सम्पन्न गणिका है । वह चारुदत्त के गुणो से आकृष्ट होकर उससे वास्तविक प्रम करती है, साधारण वेश्याओ के समान धन से आकृष्ट होकर नही । मृच्छकटिक प्रकरण है । मृच्छकटिक मे दस अक हैं तथा शूद्रक ने 'मृच्छकटिक के प्रत्येक अक को उसकी मुख्य घटना के आधार पर एक विशेष नाम दिया है । मृच्छकटिक की कथावस्तु पूर्ण है ।

कथासार

प्रथम अंक

प्रस्तावना–

'मृच्छकटिक' मे नान्दी के दो श्लोकों के अनन्तर सूत्रधार रंगमंच पर प्रवेश करता है वह प्रेक्षकों को शूद्रक, उसकी कृति, चारुदत्त एवं वसन्तसेना का परिचय देता है। वह प्रारम्भ मे संस्कृत बोलता है, किन्तु बाद मे कार्यवश प्राकृत। अपने घर मे भोजन का असाधारण प्रबन्ध देख कर वह चकित हो जाता है। नटी उसे बताती है कि यह 'अभिरूप पति' नामक व्रत के लिए है। नटी के कहने पर वह किसी ब्राह्मण को निमंत्रित करने जाता है। मार्ग मे मिले हुए मैत्रेय (विदूषक) को वह निमन्त्रित करता है, किन्तु वह उत्तम भोजन और दक्षिणा के प्रलोभन दिये जाने पर भी निमन्त्रण स्वीकार नही करता। तब सूत्रधार किसी अन्य ब्राह्मण को निमंत्रित करने जाता है और प्रस्तावना समाप्त हो जाती है। शूद्रक ने प्रस्तावना को 'आमुख' नाम दिया है।

'मृच्छकटिक' के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में मैत्रेय, चारुदत्त के मित्र जूर्ण-वृद्ध का दिया हुआ जातीकुसुम से सुगंधित उत्तरीय लेकर चारुदत्त के घर जाता है। चारुदत्त विदूषक से मातृदेवियो को बलि अर्पित करने के लिए चतुष्पथ पर जाने की प्रार्थना करता है किन्तु वह अकेला नही जाना चाहता। चारुदत्त उससे कुछ देर रुकने के लिए कह कर समाधि के निमित्त चला जाता है।

द्वितीय दृश्य मे शकार, विट और चेट के साथ वसन्तसेना का राजमार्ग पर पीछा करता है। शकर की मूर्खतापूर्ण उक्ति से उसे समीप स्थित चारुदत्त के भवन का ज्ञान हो जाता है, किन्तु द्वार बन्द है। शकार अपनी विचित्र उक्तियों से अपनी मूर्खता का परिचय देता है, किन्तु विट अपनी बुद्धिमत्ता एव वसन्त सेना के प्रति सहानुभूति को प्रदर्शित करता है।

तृतीय दृश्य मे चारुदत्त विदूषक से पुनः मातृ देवियों को बलि प्रदान करने का अनुरोध करता है। चारुदत्त अपनी दरिद्रता का स्मरण कर दुःखी होता है। वह रदनिका के साथ बाहर आता है। वसन्तसेना दीपक बुझा देती है। विदूषक दीपक जलाने अन्दर जाता है तो अंधकार में वसन्तसेना भी प्रविष्ट हो जाती है। बाहर शकार रदनिका को वसन्तसेना समझ कर पकड़ लेता है। विदूषक बाहर आकर उसे पीटने दौड़ता है किन्तु विट के समझाने पर शान्त हो जाता है। अन्त मे शकार वसन्तसेना को न लौटाने पर चारुदत्त को मरणान्तिक वैर की धमकी देकर चला जाता है।

चतुर्थ दृश्य मे चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझ कर अपने पुत्र रोहसेन को अन्दर ले जाने को कहता है। उसे वह अपनी उत्तरीय भी देता है। कुछ समय बाद विदूषक और रदनिका प्रवेश करते हैं तब चारुदत्त वसन्तसेना को पहचानता है। जाने से पूर्व वसन्तसेना अपने आभूषण जमानत के रूप मे चारुदत्त के पास रख देती है। चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना को उसके घर पहुँचा देते हैं। इस अंक का नाम 'अलङ्कार न्यास है।

द्वितीय अंक

मृच्छकटिक के द्वितीय अक के प्रथम दृश्य में मदनिका के साथ चारुदत्त विषयक वार्तालाप करती हुई वसन्तसेना से एक चेटी आकर कहती है कि माता की आज्ञा से आप स्नान करके पूजा करें किन्तु वह मना कर देती है। मदनिका द्वारा उद्विग्नता के विषय मे पूछने पर वसन्तसेना अपना चारुदत्त विषयक प्रेम प्रकट करती है। मदनिका द्वारा चारुदत्त की दरिद्रता का स्मरण दिलाने पर भी वसन्तसेना का प्रेम कम नही होता।

द्वितीय दृश्य मे सवाहक जुए मे हारकर एक शून्य देवालय मे शरण लेता है। माथुर और द्यूतकार उसे खोजते हुए वहाँ आकर जुआ खेलने लगते है। सवाहक भी बीच मे आ जाता है। माथुर और द्यूतकर उसे पकड कर पीटते है। तभी दर्दुरक वहाँ आकर सवाहक की रक्षा करता है। वह माथुर से झगडा करता है और उसकी आखो मे धूल डाल देता है। सवाहक और दर्दुरक वहाँ से भाग जाते हैं।

तृतीय दृश्य मे सवाहक वसन्तसेना के घर मे शरण लेता है। वह चारुदत्त का सेवक रहा है, यह जानकर वसन्त सेना बहुत प्रसन्न होती है। यह जानने पर कि जुए मे हारे हुए धन के लिए माथुर और द्यूतकर उसका पीछा कर रहे हैं, वह उन्हे आभूषण भिजवा देती है। सवाहक शाक्यश्रमण होने की इच्छा प्रकट करता है।

चतुर्थ दृश्य मे कर्णपूरक प्रवेश करता है। वह वसन्त सेना को उसके खुण्टमोडक नामक मस्त हाथी से एक परिव्राजक की प्राण रक्षा के अपने शौर्य का समाचार सुनाता है। चारुदत्त से प्राप्त एक प्रावारक को वह वसन्त सेना को देता है वसन्त सेना उसे ओढकर बडी प्रसन्न होती है और चारुदत्त को देखने के लिए चेटी के साथ भवन की छत पर जाती है। इस अक का नाम 'द्यूतकरसवाहक' है।

तृतीय अंक

'मृच्छकटिक' के तृतीय अक के प्रथम दृश्य मे चारुदत्त का चेट रंगमच पर प्रवेश करता है। अर्ध रात्रि व्यतीत होने पर भी चारुदत्त के घर न लौटने पर वह चिन्तित होता है।

द्वितीय दृश्य मे चारुदत्त और विदूषक रेभिल के घर मे सगीत सुन कर आते हैं। चारुदत्त सगीत और वीणा की प्रशसा करता है। घर आकर पैर धोकर वे सोना चाहते हैं। चेट वसन्तसेना का सुवर्ण भूषण का पात्र रक्षा करने को विदूषक को दे देता है। दोनो सो जाते हैं।

तृतीय दृश्य मे ब्राह्मण–चोर शर्विलक सेंध लगा कर चारुदत्त के घर मे प्रवेश करता है। विदूषक नीद मे बर्राता है। और स्वप्न में भी चारुदत्त को सौगन्ध देकर सुवर्ण भाण्ड दे देता है जिसे शर्विलक ले लेता है। तभी रदनिका जाग जाती है। शर्विलक भाग जाता है।

चतुर्थ दृश्य मे रदनिका शोर करती है। चारुदत्त और विदूषक जागते हैं। चारुदत्त सेंध की आकृति की प्रशसा करता है। विदूषक कहता है अच्छा हुआ मैंने सुवर्णभाड तुम्हें दे दिया था। चारुदत्त चकित होता। यह जानकर कि चोर निराश नहीं गया है, वह प्रसन्न होता है। उसे इसका दु ख है कि लोग वास्तविकता पर विश्वास नही करेंगे और उसकी अपकीर्ति होगी। चारुदत्त की पत्नी धूता यह जान कर पति के यश की रक्षा के लिए अपनी अमूल्य रत्नावली दे देती है। चारुदत्त उसे विदूषक से वसन्तसेना के घर भेज देता है और वर्धमानक का सेंध बन्द करने का आदेश देकर सध्या करने चला जाता है इस अ क का नाम 'सन्धिच्छेद' है।

चतुर्थ अ क

'मृच्छकटिक' के चतुर्थ अ क के प्रथम दृश्य मे वसन्तसेना स्वरचित चारुदत्त के चित्र को मदनिका को दिखाती है। एक चेटी वसन्तसेना को सूचित करती है कि राजा के साले शकार की गाडी आ गई है माता की आज्ञा है कि वह जाये, किन्तु वसन्तसेना जाना अस्वीकार कर देती है।

द्वितीय दृश्य मे शर्विलक वसन्त सेना के घर मे प्रविष्ट होता है। वह मदनिका को दासता से मुक्त कराने के लिए चुराये हुए अलकार देता है। मदनिका उन्ह पहचान जाती है। वह उसे उन्ह वसन्तसेना को देने की सलाह देती है। दोनो के वार्तालाप को वसन्तसेना सुन लेती है। शर्विलक चारुदत्त के प्रतिनिधि के रूप मे अलकार वापस कर देता है। वसन्तसेना मदनिका को उसकी वधू बना कर मुक्त कर देती है।

तृतीय दृश्य मे शर्विलक राजा पालक के द्वारा अपने मित्र गोपालदारक आर्यक की कैद की घोषणा सुनता है। वह मदनिका को रेभिल के घर भेज देता है और स्वय अपने मित्र को कैद से मुक्त कराने चला जाता है।

चतुर्थ दृश्य मे विदूषक मैत्रेय वसन्तसेना के घर जाता है। वह कहता है कि चारुदत्त ने यह रत्नमाला भेजी है, क्योकि वह उसके समस्त आभूषण जुए मे हार गया है। वसन्तसेना रत्नमाला ले लेती है और सन्देश भेजती है कि वह सायकाल

उससे मिलने आयेगी तत्पश्चात वह उससे मिलने जाती है। इस अंक का नाम 'मदनिका शर्विलक' है।

पंचम अंक

'मृच्छकटिक' के पंचम अंक के प्रथम दृश्य में विदूषक वसन्तसेना के भवन से लौटकर चारुदत्त को सूचित करता है, कि वसन्तसेना ने रत्नावली स्वीकार कर ली है और वह सायंकाल उससे मिलने आयेगी।

द्वितीय दृश्य में वसन्तसेना का चेट चारुदत्त के समीप जाकर वसन्तसेना के आगमन की सूचना देता है।

तृतीय दृश्य में वसन्तसेना और विट चारुदत्त के घर की ओर वर्षा में जाते हुए दिखाई देते हैं। दोनों वर्षा तथा मेघ का सुन्दर वर्णन करते हैं। चारुदत्त की वाटिका में प्रवेश करने के पूर्व वसन्त सेना विट को वापस भेज देती है।

चतुर्थ दृश्य में चारुदत्त वसन्तसेना का स्वागत करता है। विदूषक के द्वारा वसन्तसेना के आगमन का कारण पूछे जाने पर वसन्तसेना की चेटी बताती है कि मेरी स्वामिनी वह रत्नावली अपनी समझ कर जुएँ में हार गई है, उसके बदले में यह सुवर्ण भाण्ड ले लें। चारुदत्त और विदूषक उसे देखकर चकित हो जाते हैं। अन्त में सुवर्ण भाण्ड की प्राप्ति की वास्तविकता का पता चलने पर सब प्रसन्न होते हैं। रात्रि में वसन्तसेना चारुदत्त के घर में ही निवास करती है। इस अंक का नाम 'दुर्दिन' है।

षष्ठ अंक

प्रथम दृश्य में चेटी वसन्तसेना को जगाकर सूचित करती है कि चारुदत्त पुष्प करण्डक जीर्णोद्यान गये हैं और वहां आपको भी बुलाया है। वह प्रसन्न होती है। वसन्तसेना रत्नावली को धूता के समीप भेजती है, किन्तु वह उसे वापस कर देती है।

द्वितीय दृश्य में रदनिका चारुदत्त के पुत्र रोहसेन के साथ प्रवेश करती है। वह उसे खेलने के लिए मिट्टी की गाडी देती है किन्तु वह सोने की गाडी मांगता है और रोता है। वसन्तसेना सोने की गाडी बनवाने के लिए अपने आभूषण दे देती है।

तृतीय दृश्य में चारुदत्त का चेट वर्धमानक वसन्तसेना को ले जाने के लिए गाडी लेकर आता है। वह बिछौना भूल गया है अतः उसे लेने चला जाता है। तभी शकार का चेट स्थावरक भी गाडी लेकर आता है। भीड़ के कारण वह चारुदत्त की वाटिका के समीप गाडी रोक देता है और दूसरी गाडी का फंसा हुआ पहिया निकालने में सहायता देता है। तभी वसन्तसेना आकर भूल से उस गाडी में बैठ जाती है और स्थावरक उसे ले जाता है। उसी समय कारागृह से भागा हुआ आर्यक

चारुदत्त की गाड़ी मे बैठ जाता है। वर्धमानक समझता है कि वसन्तसेना इसमे बैठ गई है और गाडी लेकर पुष्पकरण्डक उद्यान चला जाता है।

चतुर्थ अंक मे नगर रक्षक चन्दनक और वीरक चारुदत्त की गाडी को रोकते हैं वीरक के कहने से चन्द्रनक गाड़ी के भीतर देखता है। आर्यक उससे जीवन की भिक्षा माँगता है। चन्दनक उसे अभयदान देता है। वह वीरक से कहता है इसमें वसन्तसेना जा रही है। वीरक उस पर विश्वास नही करता। दोनो मे झगडा होता है। चन्दनक वीरक को पीटता है और वर्धमानक को गाडी ले जाने का सकेत कर देता है। वह आर्यक को रक्षा के निमित्त एक तलवार भी देता है। आर्यक चन्दनक को विश्वास दिलाता है कि वह राजा होने पर उसका स्मरण रखेगा। इस अंक का नाम 'प्रवहणविपर्यय' है।

सप्तम अंक

सप्तम अंक अपेक्षाकृत बहुत छोटा है इसमे केवल एक अंक है। चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना की प्रतीक्षा करते हैं। गाड़ी आने पर विदूषक उसके अन्दर किसी पुरुष को देखकर डर जाता है। चारुदत्त के देखने पर आर्यक शरण की प्रार्थना करता है। चारुदत्त उसे अभयदान देकर बन्धन मुक्त कर देता है और स्वय भी राजा पालक के भय से विदूषक के साथ वहाँ से शीघ्र चला जाता है। इस अंक का नाम 'आर्यकापहरण' है।

अष्टम अंक

प्रथम दृश्य में भीगा हुआ चीवर लेकर भिक्षु प्रवेश करता है। शकार और विट भी वहाँ आते हैं। शकार भिक्षु पर जीर्णोद्यान की पुष्करिणी मे चीवर धोने तथा जन्म से ही भिक्षु न होने का अपराध लगाकर पीटता है। विट उसकी रक्षा करता है। भिक्षु शकार की प्रशसा करता हुआ भाग जाता है।

द्वितीय दृश्य मे स्थावरक गाड़ी लाता है। शकार उस पर चढकर वसन्तसेना को उसमे देखकर डर जाता है। विट के देखने पर वह उससे शरण की याचना करती है। विट शकार से कहता है कि गाड़ी मे राक्षसी है अत. पैदल नगर चलना चाहिए। शकार के सहमत न होने पर विट बता देता है कि गाडी मे वसन्तसेना है। शकार विट से वसन्तसेना को मारने को कहता है किन्तु उसके मना करने पर वह चेट से कहता है। चेट के भी न मानने पर वह उसे पीटता है। चेट के चले जाने पर वह विट से कहता है कि उसके सामने वसन्तसेना उसे स्वीकार नही करेगी, अतः वह चला जाए और चेट को खोजे। विट के चले जाने पर वह वसन्तसेना के समक्ष प्रेम-प्रस्ताव रखता है, किन्तु उसके अस्वीकार करने पर वह उसे गला दबाकर मूर्छित कर देता है।

तृतीय दृश्य मे विट और चेट शकार के समीप आते हैं। शकार विट के पूछने पर बताता है कि मैंने वसन्तसेना को मार दिया। वह उसे मूर्छित वसन्तसेना को भी दिखाता है। विट दुखी होकर शकार को छोडकर शर्विलक के समीप चला जाता है। शकार वसन्तसेना के मूर्छित शरीर को सूखे पत्तो में ढककर चारुदत्त पर मिथ्या हत्या का अभियोग लगाने न्यायालय चला जाता है।

चतुर्थ दृश्य मे भिक्षु उद्यान मे अपना चीवर फैलाते समय पत्तों में ढके वसन्तसेना के हाथ को देखकर पत्ते हटाता है और वसन्तसेना को पहचान लेता है। उसके होश में आने पर वह उसे विहार मे लाता है। इस अक का नाम 'वसन्त-सेना मोटन' है।

नवम अक

नवम अक मे न्यायालय का दृश्य है शकार यह सूचित करता है कि वसन्त-सेना की पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान मे किसी के धन के लिए गला घोट कर हत्या कर दी है। वसन्तसेना की मा के यह सूचित करने पर कि वह चारुदत्त के घर गई थी, अधिकरणिक चारुदत्त को बुलाते हैं। वह सूचित करता है कि वसन्तसेना तो अपने घर गई।

द्वितीय दृश्य मे क्रुद्ध वीरक प्रवेश करता है। वह चन्दनक से हुए झगड़े की सूचना देता है और बताता है कि चारुदत्त की गाडी से वसन्तसेना जीर्णोद्यान जा रही थी। अधिकरणिक के आदेश से वह जीर्णोद्यान जाता है और आकर सूचित करता है कि वहाँ एक मृत स्त्री पडी है।

तृतीय दृश्य मे विदूषक वसन्तसेना के आभूषण लेकर न्यायालय मे आता है। शकार के साथ उसका झगडा होता है और उसकी बगल से आभूषण गिर पडते हैं। शकार कहता है कि इन आभूषणो के लिए ही चारुदत्त ने वसन्तसेना की हत्या की है। चारुदत्त यह स्वीकार करता है कि वे आभूषण वसन्तसेना के है किन्तु वह यह नहीं बता पाता कि ये उससे अलग कैसे हुए। न्यायाधीश अभियोग सिद्ध मान लेते है और चारुदत्त को धन-सहित नगर से निकालने की राजा से अनुशसा करते हैं किन्तु राजा पालक उसे प्राण दण्ड देता है। इस अक का नाम 'व्यवहार' है।

दशम अक

दशम अक के प्रथम दृश्य मे चाण्डाल चारुदत्त को वध-स्थान ले जाते हैं। विदूषक रोहसेन के साथ वहा आता है। दोनों चाण्डालो से कहते हैं कि चारुदत्त को छोड दो और उसके स्थान पर हमारा वध कर दो। तभी शकार का चेट आकर कहता है कि वसन्त सेना को चारुदत्त ने नहीं शकार ने मारा है किन्तु शकार कहता है कि

इसने मेरा सुवर्ण चुराया था और मैंने इसे मारा था, अत यह झूठ बोल रहा है। अधिकरणिक उसकी बात मान लेते हैं।

द्वितीय दृश्य मे चारुदत्त के घर जाते हुए भिक्षु और वसन्तसेना चारुदत्त के अपराध और दण्ड की घोषणा सुनते हैं । दोनो शीघ्र वध-स्थान जाते हैं। एक चाण्डाल के हाथ से तलवार गिर पडने पर वे चारुदत्त को शूली पर चढाना चाहते हैं। वसन्तसेना के वहाँ पहुँचने पर वे चारुदत्त को छोड देते हैं। शकार भाग जाता हैं। चारुदत्त, वसन्तसेना और भिक्षु को पहचान कर प्रसन्न होता है।

तृतीय दृश्य में शर्विलक प्रवेश करके चारुदत्त को गोपालदारक आर्यक के द्वारा पालक के वध की सूचना देता है। तभी शकार को भी कुछ व्यक्ति पकड कर लाते हैं। वह चारुदत्त से शरण याचना करता है और चारुदत्त उसे अभयदान दे देता है।

चतुर्थ दृश्य मे चन्दनक सूचित करता है चारुदत्त के वध के कारण दुखी होकर धूता चिता सजा कर आत्म हत्या करना चाहती है। चारुदत्त शीघ्रता से वहा जाकर उसे रोकता है। धूता और वसन्त सेना परस्पर प्रेम से आलिंगन करती हैं। राजा आर्यक वसन्तसेना को वधू शब्द से अलकृत करते हैं। भिक्षु को समस्त विहारों का कुलपति बना दिया जाता है। दोनो चाण्डालो को चाण्डालो का अधिपति बना दिया जाता है। चन्दनक को पृथ्वी दण्डपालक का पद प्राप्त होता है। भरत वाक्य के साथ ही 'मृच्छकटिक' की समाप्ति होती है। इस अक का नाम 'सहार' है।

मृच्छकटिक की कथावस्तु का स्रोत

सन् १९१२ मे भास के नाटको के प्रकाशित होने से तथा मृच्छकटिक के प्रथम चार अको मे अत्यधिक समानता होने मे अब संस्कृत के विद्वान प्राय मृच्छकटिक को मूल मानते हैं, किन्तु देवधर, जागीरदार तथा परान्जपे आदि कुछ विद्वानो का मत है कि रगमच पर अभिनय की दृष्टि से अधिक उपयोगी बनाने के लिए यह मृच्छकटिक का सक्षिप्त रूप है। देवधर महोदय का कथन है—

I need only assert here my views that the Charudatta is abrrdged form the first four acts of the Mrikshakatic, with a few additions and numerous alterations particularly in the verse portions—[1]

करमरकर महोदय का कथन है कि—

Charudatta or Dridra Charudatta bears such a close resem

1—सी० आर० देवधर—'चारु दत्त'—इन्ट्राडक्शन—पृ० ५।

blance to the Mrikshakatic that there is no doubt that either the Mrikshakatic is an elaboration of the Charudatta, or the Charudatta is an abridged version of the Mrikshakatic

किन्तु भास निश्चित रूप से शूद्रक के पूर्ववर्ती हैं तथा भाषा, भाव और शैली की दृष्टि से भी मृच्छकटिक से पहले की रचना प्रतीत होती है। अतः यह मानना ही उचित है कि मृच्छकटिक की कथा का स्त्रोत है तथा कथा का मूल सम्भवत बृहत्कथा है।

जहाँ तक मृच्छकटिक की कथावस्तु का प्रश्न है, मृच्छकटिक की कथावस्तु के दो भाग है —

१–प्रथम चारुदत्त एव वसन्त सेना की प्रणय कथा तथा,

२–द्वितीय आर्यक की राज्य प्राप्ति।

द्वितीय भाग का 'चारुदत्त' मे सर्वथा अभाव है। दोनो प्रकरणो मे शब्द एव अर्थ दोनो प्रकार का साम्य है। अनेक वाक्य, पद्य एव सवाद दोनो मे समान हैं। 'मृच्छकटिक' के प्रथम चार अक 'चारुदत्त' के चारो अको के रूपान्तर मात्र हैं। 'चारुदत्त' का वर्णन सरल और सक्षिप्त शैली मे है किन्तु मृच्छकटिक' का अपेक्षाकृत विस्तृत एव अलकृत शैली मे। अत विद्वानो का विचार है कि 'चारुदत्त' मूल है और 'मृच्छकटिक' इसका परिवर्द्धित रूप। इस विषय मे सुकथन्कर महोदय का विचार है कि—

'मृच्छकटिक की अपेक्षा चारुदत्त की प्राकृत प्राचीन है। मृच्छकटिक' के पद्य अधिक सुन्दर है। यदि हम 'चारुदत्त' को मृच्छकटिक पर आधारित मानें तो यह बड़े आश्चर्य की बात है कि 'चारुदत्त' के पद्य एव गद्य अपेक्षाकृत अधिक निकृष्ट क्यों हैं। 'चारुदत्त' के लेखक ने मृच्छकटिक' के सुन्दर वाक्यो एवं भाषा का प्रयोग क्यो नही किया। व्याकरण सम्बन्धी अनेक अशुद्धियाँ 'चारुदत्त' मे हैं किन्तु 'मृच्छकटिक' मे नही। अत. हम सुकथन्कर महोदय के ही शब्दो मे कह सकते हैं—

It is easy to understand–the evolution of a Mrikshakatic version from a Charudatta version, but not vice versa

जी० के भट्ट महोदय का भी यही विचार है—

It appears to be more probable, therefore, that Sudrak based his play on Bhas's Charudatta

१–आर० डी० करमरकर–'इन्ट्रोडक्शन टु मृच्छकटिक'—पृ०–८।
२–जी० के भट्ट 'प्रिफेस टु मृच्छकटिक पृ०–३१।
३–जी० के भट्ट–प्रिफेस टु मृच्छकटिक पृ०–३२।

डा० श्री निवास शास्त्री इस विषय मे कहते हैं—

अत यही युक्तिसंगत है कि 'चारुदत्त' नाटक 'मृच्छकटिक' से प्राचीन है और वही 'मृच्छकटिक' की कथा का आधार है ।[1]

कान्तानाथ शास्त्री तैलग भी 'चारु दत्त' को मृच्छकटिक' का आधार मानना ही उचित समझते हैं ।[2]

अत यह निश्चित है कि 'मृच्छकटिक' का स्रोत 'चारुदत्त' है तथा 'चारुदत्त' के स्रोत के रूप मे हम 'बृहत्कथा' को स्वीकार कर सकते हैं।

मूल कथानक मे परिवर्तन

यह तो निश्चित ही है कि शूद्रक के 'मृच्छकटिक' का आधार भासकृत 'चारु दत्त' ही है किन्तु नाटकीय तत्त्व को अधिक प्रभावशाली एव रुचिकर बनाने की दृष्टि से शूद्रक ने 'चारुदत्त' के कथानक मे अपनी उर्वर कल्पनाशक्ति से कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं, जिन पर दृष्टिपात करना परम आवश्यक है—

१—'चारुदत्त' के प्रथम अक के प्रारम्भ मे यह निर्दिष्ट नहीं किया गया है कि विदूषक चारुदत्त के घर किस अभिप्राय से जाता है किन्तु 'मृच्छकटिक मे यह स्पष्ट निर्देश है कि वह चारुदत्त के मित्र चूर्णवृद्ध के द्वारा दिये गये उत्तरीय को लेकर ही जाता है ।

२—'मृच्छकटिक' के प्रथम अक के प्रथम दृश्य के अन्त मे चारुदत्त को समाधि मे लीन दिखाया गया है, जो द्वितीय दृश्य मे भी चलती है, किन्तु 'चारुदत्त' मे ऐसा नहीं है ।

३—'मृच्छकटिक' के प्रथम अक के अन्त मे चारुदत्त और विदूषक दोनो वसन्तसेना को उसके घर पहुँचाने जाते हैं, किन्तु 'चारुदत्त' मे केवल विदूषक ही जाता है ।

४—'मृच्छकटिक' के द्वितीय अक मे द्यूतकर, माथुर और सवाहक के द्यूत का बडा रोचक और विशद वर्णन है कि 'चारुदत्त' मे इसका अभाव है ।

५—'चारुदत्त' के चतुर्थ अक मे शर्विलक वसन्तसेना के भवन मे प्रवेश कर मदनिका को उच्च स्वर से बुलाता है, किन्तु 'मृच्छकटिक' मे वसन्तसेना मदनिका को पंखा लेने भेज देती है । और शर्विलक अवसर पाकर उसी समय मदनिका को देखकर बुलाता है ।

६—'चारुदत्त' के चतुर्थ अक मे पहले विदूषक वसन्तसेना को रत्नावली समर्पित करके चला जाता है । तत्पश्चात् शर्विलक चुराये गये आभूषणो को उसे देता है,

१—डा० श्री निवास शास्त्री–मृच्छकटिक भूमिका पृ०–२४ ।

२—कान्तानाथ शास्त्री तैलग–मृच्छकटिक समीक्षा पृ०–११ ।

किन्तु 'मृच्छकटिक' में पहले शर्विलक आभूषण देकर मदनिका के साथ चला जाता है और बाद में विदूषक आकर रत्नावली वसन्तसेना को देता है। परिणामस्वरूप चारुदत्त की उदारता का वसन्तसेना के हृदय पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और वह अभिसरण के लिए तत्काल चल देती है।

७–'मृच्छकटिक' में तिथि आदि की कोई सूचना नहीं दी गई है, किन्तु 'चारुदत्त' में उसका स्पष्ट निर्देश है। 'चारुदत्त' का प्रथम अंक षष्ठी तथा तृतीय 'अष्टमी' को होना है।

८–'चारुदत्त' में गोपालदारक आर्यक एवं पालक के राजनीतिक कथानक का कोई संकेत नहीं है, किन्तु 'मृच्छकटिक' में मुख्य कथानक की प्रगति में इसका विशेष स्थान है।

९–'मृच्छकटिक' में वसन्तसेना के भवन एवं उसके अनेक प्रकोष्ठों का विस्तृत एवं रोचक वर्णन विदूषक के द्वारा किया गया है किन्तु 'चारुदत्त' में केवल चार पंक्तियों में ही उसका वर्णन है। कथानक के इन मुख्य परिवर्तनों के अतिरिक्त भी शूद्रक ने कुछ परिवर्तन किये हैं किन्तु वे उतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

मृच्छकटिक का नामकरण

प्रत्येक नाटककार को अपनी कृति को ऐसा नाम देना चाहिए जो उसकी कथा वस्तु का परिचायक हो अर्थात् उसके गर्भित अर्थ को प्रकट करता हो। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ का भी यही मत है—

'नाम कार्यं नाटकस्य गर्भितार्थ प्रकाशनम्।'[1]

'मृच्छकटिक' प्रकरण है तथा लक्षण ग्रन्थों के अनुसार प्रकरण का नाम नायक नायिका के नाम पर आधारित होना चाहिए जैसे–मालतीमाधवम्।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ का इस सम्बन्ध में यह कथन है—

'नायिकानायकाख्यानात् संज्ञा प्रकरणादिषु'।[2]

अतः वस्तुतः नियमानुसार इन प्रकरणों का नाम 'वसन्तसेना चारुदत्तम्' होना चाहिए था, किन्तु ऐसा नहीं है। 'मृच्छकटिक' का नाम प्रकरण के षष्ठ अंक में वर्णित एक प्रमुख घटना पर आधारित है तथा 'चारुदत्त' का उसके नायक के नाम पर। नायक नायिका के मिश्रित नाम पर दोनों प्रकरणों में से एक का भी नाम नहीं है।

'मृच्छकटिक' के षष्ठ अंक में चारुदत्त का पुत्र रोहसेन अपने एक पड़ोसी के पुत्र को सोने की गाड़ी से खेलता हुआ देखकर स्वयं भी सोने की गाड़ी से खेलने की

१–विश्वनाथ साहित्यदर्पण–६।१४२।

२–विश्वनाथ साहित्यदर्पण–६।१४२।

जिद करता है और रोता है। चारुदत्त की दासी रदनिका उसे वसन्तसेना के समीप ले आती है। रोहसेन के रोने का कारण ज्ञात होने पर वसन्तसेना अपने आभूषणो से उसकी गाडी भर देती है जिससे वह सोने की गाडी बनवा सके। इस घटना मे प्रयुक्त होने वाली मिट्टी की गाडी (मृत-शकटिका के आधार पर ही इस प्रकरण का नाम 'मृच्छकटिकम्' पडा है। वस्तुत इस घटना का 'मृच्छकटिक' मे अत्यन्त महत्व-पूर्ण स्थान है। चारुदत्त इन आभूषणों को वसन्तसेना को वापस करने को विदूषक को देता है। न्यायालय के दृश्य में ये आभूषण शकार से झगडा करते हुए विदूषक की बगल से गिर जाते हैं तथा चारुदत्त के द्वारा वसन्तसेना की हत्या के अपराध को पुष्ट कर देते हैं। अत इस घटना का कथानक के विकास मे अत्यधिक महत्व है। अत प्रकरण का 'मृच्छकटिक' नाम यद्यपि नायक नायिका के सयुक्त नाम पर नही है, किन्तु गर्भित अर्थ का प्रकाशक तो है ही साथ ही प्रकरण की कथा जानने के लिए सहृदय सामाजिकों के हृदय में औत्सुक्य भी उत्पन्न कर देता है। जहाँ तक 'चारुदत्त' के नाम का प्रश्न है यह नायक-नायिका के सयुक्त नाम पर न होकर केवल नायक के नाम पर ही है।

कुछ आलोचकों का विचार है कि शूद्रक को अपने प्रकरण का नाम 'मृच्छ-कटिक' नही, अपितु 'सुवर्णशकटिक' रखना चाहिए था। उनका कथन है कि वस्तुत उन सुवर्णाभूषणो से वसन्तसेना चारुदत्त के हृदय मे अपने प्रति आकर्षण उत्पन्न करना चाहती थी तथा उन आभूषणो को सुवर्णशकटिका बनवाने के लिए दिया था, अत प्रकरण का नाम 'सुवर्णशकटिका' ही होना चाहिए, किन्तु वस्तुत मिट्टी की गाडी के स्थान पर ही सोने की गाडी की याचना की जाती है, अतः मूल मृत्शक-टिका ही है, सुवर्ण शकटिका नही, अतएव 'मृच्छकटिकम्' नाम ही उपयुक्त और उचित है, 'सुवर्णशकटिक' नहीं।

कुछ विद्वानो का विचार है कि इस नाम के द्वारा शूद्रक हमें एक नैतिक शिक्षा देना चाहते हैं कि हमे अपनी परिस्थिति से सतुष्ट रहना चाहिए तथा दूसरो की उन्नति से ईर्ष्या नही करनी चाहिए। रोहसेन अपनी स्थिति (मिट्टी की गाडी) से सन्तुष्ट नहीं है और अपने पडोसी के बच्चे की उच्च अवस्था (सुवर्णशकटिका) से ईर्ष्या करता है और स्वय उसकी कामना करता है। परिणामस्वरूप उसे विपत्ति को सहना पडता है। इसी प्रकार चारुदत्त अपनी धर्मपत्नी धूता से सतुष्ट नहीं है और वसन्तसेना की कामना करता है। फलस्वरूप उसे कष्ट सहन करना पडता है। अत मृच्छकटिक' को हम असन्तोष का प्रतीक मान सकते हैं और यह नाम ही अधिक उपयुक्त है। कुछ अन्य समालोचकों का मत है कि नियति भविष्य मे होने वाली शुभ अथवा अशुभ घटनाओ को हमे किसी न किसी रूप में सूचित कर देती है रोहसेन के द्वारा अपनी मिट्टी की गाडी को सोने की गाडी से बदलने की घटना

भविष्य मे घटित होने वाली प्रवहण विपर्यय की घटना का सकेत करती है। जो प्रकरण की एक प्रमुख घटना है। इसके कारण ही नायक तथा नायिका को अनेक कष्टो को सहन करना पडता है। अत इसकी सूचना देने के कारण तथा मिट्टी की गाडी के परित्याग के कारण अनेक दु खो को सहन करने के कारण ही इसका नाम 'मृच्छकटिकम्' है।

इसके अतिरिक्त प्रकरण का नाम 'मृच्छकटिक' यह भी सकेत करता है कि हमे ससार मे किसी भी वस्तु को उसके बाह्य साधारण रूप के कारण ही हेय और त्याज्य नही मान लेना चाहिए और न उसके बाह्य सुन्दर रूप के कारण उत्कृष्ट एवं उपादेय मानना चाहिए। हमे वस्तु के वास्तविक गुणो एव दोषो का विवेचन करके ही उनका मूल्याकन करना चाहिए। अत 'सुवर्णशकटिक' के स्थान पर 'मृच्छकटिक' ही अधिक सुन्दर नाम है।

'मृच्छकटिक' की नाट्यशास्त्र की दृष्टि से तुलनात्मक समीक्षा

नाट्यशास्त्र के आचार्यों के अनुसार रूपक की कथावस्तु दो प्रकार की होती है—आधिकारिक तथा प्रासङ्गिक। अधिकारिक कथावस्तु मुख्य होती है तथा प्रासगिक अङ्गरूप। यथा—

'तत्राधिकारिक मुख्यमङ्ग प्रासङ्गिक विदु।"[1]

रूपक मे फल का स्वामित्व ही अधिकार कहलाता है तथा अधिकारी उस फल का स्वामी होता है। अधिकारी से सम्बद्ध कथावस्तु ही आधिकारिक होती है तथा प्रासगिक कथावस्तु आधिकारिक की सहायक एव उससे सम्बद्ध होती है—

'अधिकार फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभु ॥
तस्येतिवृत्त कविभिराधिकारिकमुच्यते च ॥
अस्योपकरणार्थं तु प्रासङ्गिकमितीष्यते।'[2]

'मृच्छकटिक' मे चारुदत्त एव वसन्तसेना के प्रेम की कथा आधिकारिक है तथा शर्विलक से सम्बन्धित कथा एव 'मृच्छकटिक' मे राजा पालक तथा गोपालदारक आर्यक से सम्बन्धित कथावस्तु प्रासगिक है।

अर्थ प्रकृतियाँ— नाट्यशास्त्र के आचार्यों के अनुसार रूपक मे बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य ये पाँच अर्थ प्रकृतियाँ होती हैं—

'बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरी कार्यलक्षणा।
अर्थप्रकृतय पच ता एता परिकीर्तिता।'[3]

इनमे से बीज, बिन्दु तथा कार्य प्रत्येक रूपक के लिए आवश्यक एव अनिवार्य

(१) दशरूपक १। ११।
(२) साहित्य दर्पण ६। ४३–४४।
(३) दशरूपक १।१८

हैं, किन्तु पताका एव प्रकरी अनिवार्य नहीं हैं। रूपक के आरम्भ मे अल्परूप मे साकेतिक वह तत्त्व जो रूपक के फल का कारण होता है तथा कथानक मे अनेक रूप से विकसित होता है, बीज कहलाता है—

स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीज विस्तार्यनेकधा।[1]

+ + +

'अल्पमात्र समुद्दिष्ट बहुधा यद्विसर्पति।

फलस्य प्रथमो हेतुर्बीज तदभिधीयते।[2]

'मृच्छकटिक' के प्रथम अङ्क मे शकार का वसन्तसेना के विषय मे यह कथन 'एषा गर्भदासा कामदेवायतनात् तस्य प्रभृतिदरिद्रचारुदत्तस्य अनुरक्ता, न मां कामयते"[3] ही रूपक का बीज है। इससे वसन्तसेना का चारुदत्त के प्रति प्रेम प्रकट होता है तथा यह प्रकरण के प्रारम्भ मे अल्परूप मे सकेतित है, वसन्तसेना तथा चारुदत्त के मिलनरूप कार्य फल का कारण है एव अनेक प्रकार से प्रकरण मे विकसित होता है। इसी प्रकार 'चारुदत्त' मे भी शकार की यह उक्ति— 'आ कामदेवानुयानात प्रभृति नयनमात्र सस्थल दरिद्रसार्थवाहपुत्र चारुदत्तबटुक कामयत एषा।"[4] ही बीज है।

किसी अवान्तर घटना के द्वारा विच्छिन्न होती हुई कथा को जोडने वाला वृत्त ही विन्दु कहलाता है— "अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेद कारणम।[5] 'मृच्छकटिक' के द्वितीय अङ्क मे द्यूतकर, माथुर सवाहक एव दर्दुरक के झगडे से मूलकथा विच्छिन्न होने लगती है किन्तु उसके बाद ही कर्णपूरक वसन्तसेना को चारुदत्त से पारितोषिक में प्राप्त प्रावारक देता हैं। वसन्तसेना उसे प्राप्त कर अत्यधिक प्रसन्न होती है तथा द्यूतकारो की घटना से विच्छिन्न होती हुई वसन्तसेना एव चारुदत के प्रणय की मूलकथा फिर प्रारम्भ हो जाती है। अत कर्णपूरक का दृश्य ही प्रकरण का विन्दु है। 'चारुदत्त' मे भी द्वितीय अङ्क के अन्त मे स्थित कर्णपूरक का दृश्य ही विन्दु है।

प्रासङ्गिक कथावस्तु दो प्रकार की होती है — पताका एव प्रकरी। जो प्रासङ्गिक कथा अनुबन्ध सहित होती है तथा रूपक मे दूर तक चलती है, वह पताका कहलाती है—

'सानुबन्ध पताकाख्यम्' —[6]

'व्यापि प्रासङ्गिक वृत्त पताकेत्यभिधीयते।[7]

'मृच्छकटिक' के तृतीय अङ्क मे शर्विलक चारुदत्त के घर चोरी करता है

१— दशरूपक १।१७

२— साहित्यदर्पण ६।६५—६६

३— मृच्छकटिक पृ० ५२

४— चारुदत्त पृ० २९

५— दशरूपक १।१७ तथा साहित्यदर्पण ६।६६

६— दशरूपक १।१३

७— साहित्यदर्पण ६।६७

किन्तु बाद मे वह स्वय चारुदत्त का सहायक हो जाता है। शर्विलक की कथा का मदनिका प्राप्तिरूपी फल चतुर्थ अङ्क मे ही प्राप्त हो जाता है। किन्तु यह वृत्तान्त मूलकथा के अन्त तक चलता है और शर्विलक ही अन्त मे यह घोषणा करता है कि राजा आर्यक ने वसन्तसेना को चारुदत्त की वधू के रूप मे स्वीकार कर लिया है। शर्विलक का यह वृत्त ही 'मृच्छकटिक' की मूलकथा की पताका है। 'चारुदत्त' के तृतीय अङ्क मे भी प्रस्तुत शर्विलक का वृतान्त मूलकथा की पताका है।

जो प्रासगिक कथा छोटी होती है तथा केवल एक ही प्रदेश तक सीमित रहती है प्रकरी कहलाती है—

प्रकरी च प्रदेशभाक्—[1]

+ + +

प्रासङिगक प्रदेशस्थ चरित प्रकरी मता।[2]

'मृच्छकटिक' के अष्टम अङ्क मे भिक्षु की कथा है जो वसन्तसेना की प्राणरक्षा करता है। द्वितीय अङ्क म यही भिक्षु सवाहक के रूप मे हमारे समक्ष आता है। इसने कुछ समय तक सवाहक के रूप मे चारुदत्त की सेवा की थी। पृथ्वी पर स्थित समस्त विहारो का कुलपति रूप फल उसे प्राप्त होता है। भिक्षु का यह वृत्तान्त ही 'मृच्छकटिक' की प्रकरी है। इसी प्रकार चन्दनक के वृत्तान्त को भी हम 'मृच्छकटिक' की प्रकरी मान सकते हैं। चन्दनक को भी पृथ्वी दण्डपालक रूप फल की प्राप्ति होती है। 'चारुदत्त' के द्वितीय अङ्क मे सवाहक वसन्तसेना के यहा शरण लेता है। वसन्तसेना उसकी रक्षा करती है एव उसे द्यूतकरो के ऋण से मुक्त कर देती है। सवाहक के इस वृत्त को हम 'चारुदत्त' की प्रकरी मान सकते हैं।

धर्म, अर्थ तथा काम रूप त्रिवर्ग की सिद्धि ही कार्य नामक अर्थ प्रकृति होती है। यह सिद्धि कभी तो एक ही वर्ग की, कभी दो वर्ग की तथा कभी तीनो वर्ग की हो सकती है। अथवा कार्य का अभिप्राय उस साध्य से होता है जिसके उद्देश्य स नायक अपने कृत्यो का आरम्भ करता है तथा जिसकी सिद्धि मे ही उसके कृत्यों की समाप्ति निहित होती है।

कार्य त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च।[3]

+ + +

अपेक्षित तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धन ।

समापन तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति समतम्।[4]

---

(१) दशरूपक १।१३ (२) साहित्यदर्पण ६।६८

(३) दशरूपक १।१६ (४) साहित्यदर्पण ६।६९-७०।

'मृच्छकटिक' में चारुदत्त का वसन्तसेना से मिलन नहीं, अपितु उसे वधूरूप में स्वीकार करना ही कथावस्तु का कार्य है, क्योंकि वसन्तसेना एक गणिका है और स्वतन्त्र है। वह चारुदत्त से प्रेम करती है चारुदत्त भी उससे प्रेम करता है। ऐसी स्थिति में उनका मिलन किसी भी समय सुलभ है। मिलन के अनेक अवसर सुलभ होने पर भी वसन्तसेना उनका लाभ नहीं उठाती। उसे तो चारुदत्त की वधू बनना ही अभीष्ट है और यह दशम अंक में ही सिद्ध होता है अतः यह प्रकरण का कार्य है। जहाँ तक 'चारुदत्त' का प्रश्न है, वह एक अपूर्ण प्रकरण है अतः उसमें कार्य नामक अर्थप्रकृति नहीं होती।

अवस्थाएं — भारतीय आचार्यों के अनुसार कथावस्तु के विकास की दृष्टि से कार्य की पाँच अवस्थाएं होती हैं— आरम्भ, यत्न प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम—

अवस्था पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।[1]
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः॥

मुख्य फल की सिद्धि के लिए जो नायक नायिका में उत्सुकता मात्र ही आरम्भ नामक अवस्था होती है—

भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये।[2]

औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।[3]

'मृच्छकटिक' के प्रथम अंक में वसन्तसेना की यह उक्ति अहो। जाती कुसुमवासितः प्रावारकः। अनुदासीनमस्य यौवनम् प्रतिभासते।[4] चारुदत्त के प्रति वसन्तसेना की उत्सुकता प्रकट करती है तथा चारुदत्त के द्वारा कहा गया यह श्लोक—

प्रविश गृहमिति प्रतोद्यमाना न चलति भाग्यकृता दशामवेक्ष्य।
पुरुषपरिचयेन च प्रगल्भं न वदति यद्यपि भाषते बहूनि।[5]

वसन्तसेना के प्रति चारुदत्त उत्सुकता प्रकट करता है अतः यहाँ आरम्भ अवस्था है। इसी प्रकार 'चारुदत्त' के प्रथम अंक में भी गणिका की यह उक्ति— 'अनुदासीनं यौवनमस्य पटवासगन्धः सूचयति।' कार्य की आरम्भ अवस्था है।

फल की प्राप्ति न होने पर उसे प्राप्त करने के लिये अत्यन्त शीघ्रता से जो उद्योग किया जाता है वह प्रयत्न अथवा यत्न नामक अवस्था होती है—

(१) दशरूपक १।१९ तथा साहित्यदर्पण ६।७०-७१
(२) साहित्यदर्पण ६।७१
(३) दशरूपक १।२०
(४) मृच्छकटिक पृ० ८१
(५) मृच्छकटिक पृ० ८६

किन्तु बाद मे वह स्वय चारुदत्त का सहायक हो जाता है। शर्विलक की कथा का मदनिका प्राप्तिरूपी फल चतुर्थ अङ्क मे ही प्राप्त हो जाता है। किन्तु यह वृत्तान्त मूलकथा के अन्त तक चलता है और शर्विलक ही अन्त मे यह घोषणा करता है कि राजा आर्यक ने वसन्तसेना को चारुदत्त की वधू के रूप मे स्वीकार कर लिया है। शर्विलक का यह वृत्त ही 'मृच्छकटिक' की मूलकथा की पताका है। 'चारुदत्त' के तृतीय अङ्क मे भी प्रस्तुत शर्विलक का वृत्तान्त मूलकथा की पताका है।

जो प्रासगिक कथा छोटी होती है तथा केवल एक ही प्रदेश तक सीमित रहती है प्रकरी कहलाती है—

प्रकरी च प्रदेशभाक्–[1]

\+ \+ \+

प्रासङि्गक प्रदेशस्थ चरित प्रकरी मता।[2]

'मृच्छकटिक' के अष्टम अङ्क मे भिक्षु की कथा है जो वसन्तसेना की प्राणरक्षा करता है। द्वितीय अङ्क मे यही भिक्षु सवाहक के रूप मे हमारे समक्ष आता है। इसने कुछ समय तक सवाहक के रूप मे चारुदत्त की सेवा की थी। पृथ्वी पर स्थित समस्त विहारो का कुलपति रूप फल उसे प्राप्त होता है। भिक्षु का यह वृत्तान्त ही 'मृच्छकटिक' की प्रकरी है। इसी प्रकार चन्दनक के वृत्तान्त को भी हम 'मृच्छकटिक' की प्रकरी मान सकते हैं। चन्दनक को भी पृथ्वी दण्डपालक रूप फल की प्राप्ति होती है। 'चारुदत्त' के द्वितीय अङ्क मे सवाहक वसन्तसेना के यहा शरण लेता है। वसन्तसेना उसकी रक्षा करती है एव उसे द्यूतकरो के ऋण से मुक्त कर देती है। सवाहक के इस वृत्त को हम 'चारुदत्त' की प्रकरी मान सकते है।

धर्म, अर्थ तथा काम रूप त्रिवर्ग की सिद्धि ही कार्य नामक अर्थ प्रकृति होती है। यह सिद्धि कभी तो एक ही वर्ग की, कभी दो वर्ग की तथा कभी तीनो वर्ग की हो सकती है। अथवा कार्य का अभिप्राय उस साध्य से होता है जिसके उद्देश्य मे नायक अपने कृत्यो का आरम्भ करता है तथा जिसकी सिद्धि मे ही उसके कृत्यो की समाप्ति निहित होती है।

कार्य त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च।[3]

\+ \+ \+

अपेक्षित तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धन।

समापन तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति समतम्।[4]

---

(१) दशरूपक १।१३ (२) साहित्यदर्पण ६।६८

(३) दशरूपक १।१६ (४) साहित्यदर्पण ६।६९-७०।

'मृच्छकटिक' में चारुदत्त का वसन्तसेना से मिलन नहीं, अपितु उसे वधूरूप में स्वीकार करना ही कथावस्तु का कार्य है, क्योंकि वसन्तसेना एक गणिका है और स्वतन्त्र है। वह चारुदत्त से प्रेम करती है चारुदत्त भी उससे प्रेम करता है। ऐसी स्थिति में उनका मिलन किसी भी समय सुलभ है। मिलन के अनेक अवसर सुलभ होने पर भी वसन्तसेना उनका लाभ नहीं उठाती। उसे तो चारुदत्त की वधू बनना ही अभीष्ट है और यह दशम अंक में ही सिद्ध होता है अतः यह प्रकरण का कार्य है। जहाँ तक 'चारुदत्त' का प्रश्न है, वह एक अपूर्ण प्रकरण है अतः उसमें कार्य नामक अर्थप्रकृति नहीं होती।

अवस्थाएँ — भारतीय आचार्यों के अनुसार कथावस्तु के विकास की दृष्टि से कार्य की पाँच अवस्थाएं होती हैं— आरम्भ, यत्न प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम—

अवस्था पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।[1]
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ॥

मुख्य फल की सिद्धि के लिए जो नायक नायिका में उत्सुकता मात्र हो आरम्भ नामक अवस्था होती है—

भवेदारम्भ औत्सुक्य यन्मुख्यफलसिद्धये ।[2]

+ + +

औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे ।[3]

'मृच्छकटिक' के प्रथम अंक में वसन्तसेना की यह उक्ति 'अहो। जाती कुसुमवासित प्रावारकः। अनुदासीनमस्य यौवनम् प्रतिभासते।'[4] चारुदत्त के प्रति वसन्तसेना की उत्सुकता प्रकट करती है तथा चारुदत्त के द्वारा कहा गया यह श्लोक—

प्रविश गृहमिति प्रतोद्यमाना न चलति भाग्यकृता दशामवेक्ष्य।
पुरुषपरिचयेन च प्रगल्भं न वदति यद्यपि भाषते बहूनि ।[5]

वसन्तसेना के प्रति चारुदत्त उत्सुकता प्रकट करता है अतः यहाँ आरम्भ अवस्था है। इसी प्रकार 'चारुदत्त' के प्रथम अंक में भी गणिका की यह उक्ति— 'अनुदासीनं यौवनमस्य पटवासगन्धः सूचयति।' कार्य की आरम्भ अवस्था है।

फल की प्राप्ति न होने पर उसे प्राप्त करने के लिए अत्यन्त शीघ्रता से जो उद्योग किया जाता है वह प्रयत्न अथवा यत्न नामक अवस्था होती है—

(१) दशरूपक १।१६ तथा साहित्यदर्पण ६।७०–७१
(२) साहित्यदर्पण ६।७१
(३) दशरूपक १।१२०
(४) मृच्छकटिक पृ० ८१
(५) मृच्छकटिक पृ० ८६

'प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः ।'[1]

\+ \+

'प्रयत्नस्तु फलावाप्तो व्यापारोऽतित्वरान्वित ।'[2]

वसन्त सेना का अभीष्ट चारुदत्त की वधू बनना ही है किन्तु अपने इस अभीष्ट फल की प्राप्ति मे सफलता न देखकर वह चारुदत्त के घर मे अलकारन्यास से अपना प्रयत्न, आरम्भ करती है। अत 'मृच्छकटिक' के प्रथम अक मे वसन्त सेना की—'भवतु एव तावत् भणिष्यामि । आर्य । यद्यैवमहमार्यस्यानुग्राह्या, तदिच्छाम्यह-मिममलङ्० कारकमार्यस्य गेहे निक्षेप्तुम् । अलङ० कारस्य निमित्तमेते पापा अनु-सरन्ति'[3] यह उक्ति यत्न नामक अवस्था का प्रारम्भ है। यह अवस्था पचम अक के अन्त तक चलती है। पचम अक मे वह अपने अलकार तथा धूता की रत्नावली लेकर चारुदत्त के घर जाती है और उसकी चेटी यह कह कर कि मेरी स्वामिनी जुए मे आपकी रत्नावली हार गई है अत यह अलकार स्वीकार कर लीजिये, अलकार देती है। यह वसन्त सेना का अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए दूसरा प्रयत्न है। अत पचम अक के अन्त तक यत्न अवस्था है। 'चारुदत्त' मे भी प्रथम अक मे वसन्त सेना की—'तदेव करिष्यामि । यदि मे आर्य प्रसन्न अय मे अलकार इहैव तिष्ठतु । अलकार निमित्त पापा मामनुसरन्ति ।'[4] इस उक्ति से यत्न अवस्था का प्रारम्भ है, जो चतुर्थ अक के अन्त तक चलती है जहा वसन्त सेना अभिसरण के निमित्त चारुदत्त के घर जाने को प्रस्तुत है।

जहा उपाय एव विघ्नो की आशका के मध्य भी फलप्राप्ति की सम्भावना होती है वहा 'प्राप्त्याशा', नामक तृतीय अवस्था होती है—

'उपायापायशङ्०काभ्या प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः ।'[5]

'मृच्छकटिक' मे षष्ठ अक के आरम्भ मे अन्तिम अक के उस दृश्य तक जहा चारुदत्त का वध करने को उद्यत चाण्डाल के हाथ से खड्ग छूट जाता है तथा उसी समय वसन्तसेना प्रवेश कर कहती है—'आर्या एषा अह मन्दभागिनी यस्या कारणा देव व्यापाद्यते'—प्राप्त्याशा अवस्था है। कथानक के इस अश मे फलप्राप्ति आशा एव निराशा अथवा उपाय एव विघ्न के मध्य दोलायमान रहती है। षष्ठ अक मे वसन्त-सेना को चेटी से यह ज्ञात कर कि चारुदत्त पुष्पकरण्डक उद्यान गया है तथा उसे भी वहा भेजने के लिए कहा गया है, चारुदत्त से मिलने की आशा हो जाती है, किन्तु

१—दशरूपक—१/२० २—साहित्यदर्पण—६/७२ ।

३—मृच्छकटिक—पृ०—८८ ४—

५—दशरूपक—१/२३ तथा साहित्यदर्पण—६/७२

रथ—परिवर्तन के कारण जब वह शकार के समीप पहुँच जाती है तो आशा निराशा मे परिणत हो जाती है इसी प्रकार चारुदत्त को भी उद्यान मे वसन्तसेना से मिलने की आशा थी किन्तु रथ मे आर्यक को देखकर तथा न्यायालय मे फासी का आदेश सुन कर उसकी आशा निराशा मे परिवर्तित हो जाती है। अन्त मे चाण्डाल के हाथ से खड्ग छूट जाने पर तथा भिक्षु के साथ वसन्तसेना के वध-स्थल पर आ जाने से फिर निराशा आशा मे बदल जाती है। अत. यहा प्राप्त्याशा है।

विघ्नो के अभाव के कारण जहा फलप्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है वहा नियताप्ति' नामक चतुर्थ अवस्था होती है।

'अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता'।[1]

'मृच्छकटिक' के दशम अक मे वसन्तसेना के वध-स्थल पर आ जाने के पश्चात् चाण्डाल की इस उक्ति से—

'का पुनरेषासंपतता चिकुरभारेण।
मामेति व्याहरन्त्युत्थितेत एति ॥'[2]

शकार की—'हन्त। प्रत्युज्जीवितोऽस्मि'[3] इस उक्ति पर्यन्त कार्य की 'नियताप्ति' अवस्था है। वसन्तसेना के आ जाने के कारण चारुदत्त की जीवन रक्षा एवं उसका वसन्त सेना से मिलन प्रायः निश्चित हो जाता है। तत्पश्चात् चारुदत्त को वध दण्ड देने वाले राजा पालक की आर्यक द्वारा हत्या तथा दुष्ट शकार का चारुदत्त की शरण मे जाना भी कार्य सिद्धि की आशा को निश्चित कर देते हैं अतः यहा नियताप्ति है।

समस्त फल की प्राप्ति ही फलागम नामक कार्य की अन्तिम अवस्था होती है—

'समग्रफलसंपत्ति. फलयोगो यथोदितः।'[4]

\+ \+

'सावस्था फलयोगः स्याद्यः समग्रफलोदयः।'[5]

मृच्छकटिक के दशम अक के अन्त मे चारुदत्त यथा समय पहुँच कर धूता को अग्नि प्रवेश से बचा लेता है तथा शर्विलक यह घोषणा करता है कि नवीन राजा आर्यक ने वसन्त सेना को चारुदत्त की वधू के रूप मे स्वीकार कर लिया है। वस्तुत. यह ही वास्तविक फल की प्राप्ति होने के कारण फलागम नामक अन्तिम अवस्था है।

१—दशरूपक १/२१ तथा साहित्यदर्पण—६७३।
२—मृ०क० (चौ०) पृ० ५६९ ३—मृ०क० पृ० ५८९।
४—दशरूपक—१/२२ ५—साहित्यदर्पण—६/७३।

सन्धिया—नाट्यशास्त्रियो के सिद्धान्तो के अनुसार अर्थप्रकृतियो एव अवस्थाओं के योग से पाच सन्धिया उत्पन्न होती है–

'अर्थप्रकृतय पच पचावस्थासमन्विताः ।
यथासख्येन जायन्ते मुखाद्या पचसन्धय ॥'[1]

वस्तुत किसी एक प्रयोजन से परस्पर सम्बद्ध कथाशो को जब किसी अन्य प्रयोजन से सम्बद्ध किया जाता है तो वह सम्बन्ध ही सन्धि कहलाता है–'अन्तरैकार्थ सम्बन्ध सन्धिरेकान्वये सति ।'[2]

सधियो को हम कथावस्तु के स्थूलखण्ड के रूप मे ग्रहण कर सकते हैं। मुख प्रतिमुख, गर्भ विमर्श (अवमर्श) तथा उपसहृति (निवहण) ये पाच सन्धियाँ होती है– मुखप्रतिमुख गर्भ सावमर्शोपमहृति ।' बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरम्भ अवस्था के योग से मुखसन्धि तथा बिन्दु और यत्न के योग से प्रतिमुख सन्धि उत्पन्न होती है इसी प्रकार पताका तथा प्राप्त्याशा के योग से गर्भ सन्धि तथा प्रकरी एव नियताप्ति के योग से विमर्श सन्धिया उत्पन्न होती है किन्तु गर्भ सन्धि के लिए पताका का तथा विमर्श सन्धि के लिए प्रकरी का होना अनिवार्य नही है, कार्य नामक अर्थप्रकृति तथा फलागम नामक अवस्था के योग से उपसहृति नामक सन्धि उत्पन्न होती है।

मुखसन्धि मे नाना प्रकार के रस को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति प्राप्त होती है। बीज और आरम्भ के समन्वय से इसके उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उमेद, भेद तथा करण ये बारह अग होते है–

'मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ।
अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात् ।'[3]

\+ \+

'यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरसम्भवा ।
प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुख परिकीर्तितम् ।'[4]

'मृच्छकटिक' के प्रथम अक मे प्रारम्भ से वसन्त सेना–'चतुरो मधुरश्चाय मुपन्यास ।' न युक्तमद्य ईदृशेन इह आगतया मया प्रतिवक्तुम् । 'भवतु एव तावत् भणिष्यामि ।' इस स्वगत उक्ति पर्यन्त मुखसन्धि है।

जहा बीज कभी स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो तथा कभी अपरिलक्षित हो,

१–दशरूपक–१/२२–२३ २–दशरूपक–१/२३ तथा साहित्यदर्पण ६/७५
३–दशरूपक–१/२५ ४–साहित्यदर्पण – ६/७६–७७

बहा लक्ष्यालक्ष्यरूप से बीज के प्रवर्टित होने को प्रतिमुख सन्धि कहते हैं। बिन्दु अर्थ-प्रकृति तथा प्रयत्न अवस्था के योग से उत्पन्न प्रतिमुख सन्धि के विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म नर्मद्युति प्रगमन, निरोध पर्युपासन, वज्र, पुष्प उपन्यास तथा वर्ण-संहार ये तेरह अग होते हैं।

'लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुख भवेत् ।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।"[1]

मृच्छकटिक' के प्रथम अक मे वसन्त सेना—'आर्य। यद्येवम् अहमार्य-स्यानुग्राह्या तदिच्छाम्यहमिममलङ्० कारकमार्यस्य गेहे निक्षेप्तुम् ।' इत्यादि उक्ति से पचम अक के अन्त तक प्रतिमुख सन्धि है।

गर्भ सन्धि—मे देखने के पश्चात् नष्ट हुए बीज का बार बार अन्वेषण किया जाता है। यह पताका नामक अर्थ प्रकृति तथा प्राप्त्याशा नामक अवस्था के योग से उत्पन्न होती है किन्तु पताका का होना अनिवार्य नही है। प्राप्त्याशा का होना आवश्यक होता है। गर्भ सन्धि मे अमृताहरण, मार्ग रूप, उदाहरण, क्रम, सग्रह, अनुमान, ताटक। अधिबल, उद्वेग, सभ्रम तथा आक्षेप ये बारह अग होत हैं—

'गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीज स्यान्वेषण मुहु ।
द्वादशाङ्ग पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसभव ।।[2]

'मृच्छकटिक' मे षष्ठ अक के प्रारम्भ से लेकर दशम अक मे चाण्डाल के हाथ खड्ग छूट जाने पर वसन्त सेना की—'आर्या। एषा अह मन्दभागिनीयस्या कारणा देव व्यापद्यते।' इस उक्ति पर्यन्त गर्भ सन्धि है।

जहा क्रोध, व्यसन अथवा लोभ से फलप्राप्ति के विषय म विचार किया जाय तथा जहाँ गर्भ सन्धि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया गया हो वहा विमर्श सन्धि होती है। यह प्रकरी नामक अर्थ प्रकृति तथा नियताप्ति नामक अवस्था के योग से उत्पन्न होती है। विमर्श अथवा अवमर्श सन्धि मे अपवाद, सफेट, विद्रव, द्रव, शक्ति द्युति, प्रसग, छलन, व्यवसाय, निरोचन, प्ररोचना, विचलन, तथा आदान ये तेरह अग होते हैं—

'क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् ।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थ· सोऽवमर्श इति स्मृत ।"[3]

'मृच्छकटिक' के दशम अक में ही चाण्डाल की—'का पुनस्त्वरितमेपासपतता चिकुरभारेण। मामेति व्याहरन्त्युरियतहस्तेत एति ।।' इस उक्ति से शकार की—'आश्चर्यं प्रत्युज्जीवितोऽस्मि।' इत्यादि उक्ति विमर्श सन्धि है।

१–दशरूपक—१/३० २–दशरूपक—१/३६।
३–दशरूपक—१/४३

जहा रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ जो अब तक इधर उधर बिखरे हुए पड़े रहते हैं, जब उन्हे एक अर्थ की प्राप्ति के लिए एकत्रित किया जाता है तो वहा उपसहृति अथवा निर्वहण सन्धि होती है । यह कार्य नामक अर्थ-प्रकृति तथा फलागम नामक अवस्था के सयोग से उत्पन्न होती है । निर्वहण मे सन्धि, विबोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनन्द, समय, कृति, भाषा, उपगूहन । पूर्वभाव, उपसहार तथा प्रशस्ति ये चौदह अग होते है–

'बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ।
एकार्थ्यमुपनी यन्ते यत्र निर्वहण हि तत् ॥'

'मृच्छकटिक' के दशम अ क मे—'नेपथ्ये कलकल' इत्यादि से अक के अन्त मे भरतवाक्य तक निर्वहण सन्धि है ।

'मृच्छकटिक के सम्बन्ध मे यह ध्यान रखना चाहिए कि इनकी रचना नाट्यशास्त्र लक्षण ग्रन्थो से बहुत पूर्व की गई थी । आचार्यों ने 'मृच्छकटिक' आदि ग्रन्थो के आधार पर ही नाटयशास्त्र के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया, अत 'मृच्छ-कटिक मे अर्थप्रकृतियो, अवस्थाओ सन्धियो तथा सन्ध्यगो आदि से सम्बन्धित नियमो के पूर्ण परिपालन की आशा हम कैसे कर सकते हैं । जहा तक सिद्धान्तो का प्रश्न है तो मृच्छकटिक मे इन सिद्धान्तो का पालन किया गया है ।

चतुर्थ-विवेक

पात्र एव चरित्र-चित्रण

भारतीय नाट्य-साहित्य मे नेता अथवा नायक को रूपको के तीन विभेदक तत्त्वो मे से एक माना गया है । दशरूपककार धनजय ने स्पष्ट कहा है—'वस्तु नेता रसस्तेषा भेदक' ।[1] लक्षण ग्रथो मे हमे नायक नायिका भेद, उनके सहायक, प्रतिनायक और विदूषक आदि का बडा विशद और विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है । आधुनिक रूपक अथवा नाट्य की समालोचना करते समय हम इस विभेदक तत्त्व का पात्र एव चरित्र चित्रण के रूप मे अध्ययन करते हैं । सस्कृत के पूर्ण उपलब्ध रूपको मे 'मृच्छ-कटिक' ही एक मात्र चरित्रचित्रण प्रधान प्रकरण है । सस्कृत मे 'मृच्छकटिक' एक अद्वितीय रूपक है जिसमे शूद्रक ने बडी कुशलतापूर्वक प्रेम कथा को राजनीतिक घटनाओ से सम्बद्ध किया है । सस्कृत के अन्य रूपको तथा 'मृच्छकटिक' मे एक मौलिक भेद है । अन्य रूपको मे हमारे समाज के उच्च, सभ्य एव सम्भ्रान्त समाज का ही चित्रण किया गया है । उस समय नाटककार उच्च वर्ग के पात्रो के चित्रण,

१– दशरूपक—१/४८–४९ ।

उनके अनुकूल वातावरण की सृष्टि तथा कथानक के गुम्फन मे ही अपनी नाट्य कुशलता की चरम सीमा मानते थे किन्तु शूद्रक ने इसके विपरीत एक नवीन मार्ग को अपनाकर रूपक साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की—अथवा यदि हम यह कहें कि शूद्रक से पूर्व महाकवि भास ने यह नवीन प्रयोग प्रारम्भ करने का प्रयत्न किया था तो कोई अत्युक्ति नही होगी । शूद्रक ने अपनी इस रचना मे उच्च, मध्यम तथा साधारण सभी वर्गों के पात्रो की सृष्टि कर तथा उनके चरित्र का यथार्थ निरूपण कर तत्कालीन समाज का वास्तविक एव सजीव चित्र उपस्थित किया है किन्तु इसमे प्रधानता मध्यम वर्ग के पात्रो की है । यदि इसमे एक ओर द्विज सार्थवाह चारुदत्त राजा पालक और न्यायाधीश आदि उच्च वर्ग के सभ्य और सम्मानित पात्र हैं तो दूसरी ओर धूर्त, चोर, जुआरी, चेट, चाण्डाल आदि निम्न वर्ग के पात्र भी । यदि इसमे धूता के समान पतिव्रता नारी को उपस्थित किया गया है तो साथ ही वेश्याओ और गणिकाओ को भी । इसके पात्र सजीव हैं । हम किसी भी समय और किसी भी स्थान पर दैनिक जीवन मे उनके सम्पर्क मे आ सकते हैं । वे साधारण व्यक्तियो के समान रक्त और मांस से निर्मित हैं । किसी भावुक और कल्पनाशील कवि के कल्पना लोक के प्राणी नही । उनमे कही अमानवीय अथवा अति मानवीय गुण दृष्टिगोचर नही होते । 'मृच्छकटिक' मे शूद्रक ने आदर्शवादी नही यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया है । उसका वातावरण पूर्णत नैसर्गिक एव स्वाभाविक है ।

'मृच्छकटिक' के पात्रो की एक विशेषता यह है कि वे किसी वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व नही करते, अपितु उनके चरित्र की कुछ मौलिक और व्यक्तिगत विशेषतायें हैं अत वे 'प्रतिनिधि' न होकर 'व्यक्ति' है अथवा 'टाइप' न होकर 'इन्डिविजुअल' है । चारुदत्त साधारण सेठो के समान ब्राह्मण श्रेष्ठी नही हैं, अपितु उसकी चारित्रिक विशेषतायें उसे आदर्श तथा सामान्य व्यक्तियो से सर्वथा पृथक् सिद्ध करती हैं । इसी प्रकार वसन्तसेना भी धन की लोभी एक सामान्य गणिका नहीं, अपितु एक गुण-ग्राहिणी आदर्श-प्रेमिका है जो विवाह कर सुखी पारिवारिक जीवन व्यतीत करने की आकाक्षा रखती है । इसी प्रकार शर्विलक, विदूषक, मैत्रेय, सवाहक, विट तथा चेट आदि सभी पात्रो के कार्यों, विचारों, व्यवहार तथा आचरण मे उनकी व्यक्तिगत विशेषतायें परिलक्षित होती हैं किन्तु हैं सभी यथार्थ जगत के सजीव प्राणी । डा० कीथ इन्हे पूर्णत 'भारतीय' मानते हैं किन्तु वस्तुत उनके समान व्यक्तियों के हमें केवल भारत के ही नगरो मे नही, अपितु ससार के किसी भी नगर मे किसी भी समय दर्शन हो सकते हैं । अत अमेरिका के प्रख्यात विद्वान डा० राइडर, जिन्होंने 'मृच्छकटिक' का अनुवाद भी किया है, इसके पात्रो को 'सार्वभौम' (कौसमोपोल्टिन) मानते हैं—तात्पर्य यह है कि उनके समान पात्र हमे विश्व के किसी भी देश के किसी भी नगर मे दृष्टिगोचर हो सकते हैं । 'मृच्छकटिक' के समस्त पात्रो का परिचय

इस प्रकार है—

मृच्छकटिक के पात्र

प्रस्तावना—सूत्रधार : प्रधान नट

१ अंक चारुदत्त : नायक, निर्धन द्विज सार्थवाह ।

मैत्रेय : विदूषक–चारुदत्त का मित्र

संस्थानक . शकार–प्रतिनायक, राजा पालक का साला ।

विट . शकार का सहचर ।

चेट . शकार का दास ।

वर्धमाक : चारुदत्त का दास ।

२ अंक— संवाहक चारुदत्त का भूतपूर्व सेवक–जुआरी–बाद मे भिक्षु

माथुर : सभिक–प्रधान द्यूतकर ।

द्यूतकर . जुआरी

दर्दुरक . जुआरी

कर्णपूरक . वसन्तसेना का सेवक

३. अंक— शर्विलक मदनिका का प्रेमी ब्राह्मण चोर

४ अंक— चेट . वसन्तसेना का दास

५ अंक— वन्धुल : वसन्तसेना का आश्रित वेश्या पुत्र

कुम्भीलक : बसन्तसेना का दास

विट बसन्तसेना का सेवक

६. अंक— रोहसेन . चारुदत्त का पुत्र

स्थावरक चेट : शकार का दास

आर्यक : गोपालक—राजा पालक का बन्दी, बाद मे राजा

वीरक : राजा पालक का बलपति (नगर रक्षक)

चन्दनक · सेनापति

९. अंक— शोधनक . न्यायालय का सेवक

अधिकरणिक : न्यायाधीश

श्रेष्ठी : एक प्रतिष्ठित सेठ, न्याय करने में अधिकरणिक का सहायक ।

कायस्थ : न्यायालय का लेखक (पेशकार)

१०. अंक—चाण्डालद्वय : फाँसी देने वाले जल्लाद ।

रंगमंच पर अनुपस्थित पात्र

चूर्णवृद्ध . चारुदत्त का मित्र

पालक : अवन्ती का राजा ।
रेभिल : चारुदत्त का गायक मित्र
सिद्ध : आर्यक की राज्य प्राप्ति का भविष्य वक्ता ।

स्त्री पात्र

प्रस्तावना— नटी : सूत्रधार की पत्नी ।
१. अंक— वसन्तसेना : नायिका—गणिका ।
रदनिका : चारुदत्त की दासी ।
२. अंक— मदनिका : वसन्तसेना की दासी, शर्विलक की प्रेमिका ।
३. अंक— धूता : चारुदत्त की पत्नी ।
५. अंक— छत्रधारिणी : वसन्तसेना की दासी ।
६. अंक— चेटी : चारुदत्त की दासी ।
९. अंक— वृद्धा : वसन्तसेना की माता ।

चारुदत्त

'मृच्छकटिक' रूपक का नायक चारुदत्त है। वह एक प्रियदर्शन, धार्मिक, सत्यवादी, सच्चरित्र, उदार, दयालु, दानी, कलाप्रिय, लोकप्रिय तथा शरणागतवत्सल आदर्श नायक है। एक प्रकरण के नायक के लिए आवश्यक समस्त गुण उसमे विद्यमान हैं। दशरूपककार धनंजय के अनुसार नायक को विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियवद, लोकप्रिय, पवित्र, चतुरवक्ता, उत्तम कुलोत्पन्न, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति-प्रजा-कला और मान से युक्त-शूर, दृढ, तेजस्वी, शास्त्रविहित कार्य करने वाला तथा धार्मिक होना चाहिए।[1] शास्त्रीय दृष्टि से धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त तथा धीरोद्धत इन चार प्रकार के नायको मे से चारुदत्त धीरप्रशान्त नायक है। धनजय ने धीरप्रशान्त की परिभाषा देते हुए कहा है—

'सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिक:'[2]

जन्मना द्विज होने के साथ ही चारुदत्त नायक के प्राय. इन समस्त सामान्य गुणों से युक्त है।

चारुदत्त उज्जयिनी का निवासी एक दरिद्र ब्राह्मण युवक है। यह जन्मना तो द्विज है किन्तु कर्मणा वैश्य है। 'मृच्छकटिक' की प्रस्तावना मे सूत्रधार उसके विषय मे कहता है—

'अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः।'[3]

१— दशरूपक—२/१—२।
२— दशरूपक—२/४।
३— मृच्छकटिक—१/६।

दशम अक मे चारुदत्त स्वय अपने को ब्राह्मण कहते हुए अपने पुत्र को उत्तराधिकार के रूप मे यज्ञोपवीत देते हुए कहता है—'अमौक्तिकमसौवर्णम् ब्राह्मणाना विभूषणम्'। वह स्वय सार्थवाह (व्यापारियो के काफिले का नेता) तथा सार्थवाह पुत्र भी है।

धार्मिकता—चारुदत्त एक धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति है। रगमच पर सर्वप्रथम उसके दर्शन गृह देवताओ को बलि देते हुए होते हैं। विदूषक उसके विषय मे कहता है—

'एष आर्यचारुदत्त सिद्धीकृतदैवकार्यो
सहदेवताना वलि हरन्नित एवागच्छति।'[१]

\+ \+ \+

वह नित्य नैमित्तिक रूप से सन्ध्यावन्दनादि धार्मिक कृत्य करता है, समाधि लगाता है, देवताओ की पूजा करता है और बलि प्रदान करता है। विदूषक को देवपूजा का महत्व समझाते हुए वह बलि प्रदान करने के लिए प्रेरित करता है।[२]

दानशीलता—चारुदत्त एक धार्मिक एव प्रतिष्ठित व्यक्ति था। उसने अपने पूर्वजो से अपार धन सम्पत्ति प्राप्त की थी, किन्तु अपनी अतिशय दानशीलता तथा अत्यधिक उदारता के कारण वह निर्धन हो गया। दानशील चारुदत्त की तुलना एक शुष्क सरोवर से करते हुए विट कहता है—

'निदाघकालेष्विव सोदको ह्रदो नृणा स तृष्णामपनीय शुष्कवान्।'[३]

चारुदत्त ने अपने 'धन सम्पन्न होने पर अपने किसी भी प्रणयी को धन याचना करने पर निराश नही किया—

किन्तु अपने इस धन-वैभव के नष्ट हो जाने की चारुदत्त को किंचितमात्र भी चिन्ता नही है क्योकि वह यह विश्वास करता है कि भाग्य के अनुसार ही धन आता है और जाता है। उसे चिन्ता केवल यह है कि धन नष्ट हो जाने पर मित्र भी विमुख हो जाते हैं।[४] चारुदत्त को इस बात की विशेष चिन्ता है कि उसके घर को धन हीन समझकर अतिथियो ने भी आना छोड दिया है।[५] वह यह भलीभांति जानता है कि निर्धनता ही प्रत्येक प्रकार के दुख का कारण है—'अहो निर्धनता सर्वापदामास्पदम्' अत वह दरिद्रता की अपेक्षा मृत्यु का वरण करना अधिक श्रेयस्कर

१—मृच्छकटिक पृ० २३
२—मृच्छकटिक, पृ० ३३
३—मृच्छकटिक १।४६
४—मृच्छकटिक १।१३
५—मृच्छकटिक १।१२

समझता है ।[1]

चारुदत्त की दानशीलता, परोपकार, उदारता एव दयालुता की प्रशसा करते हुए विट कहता है—

'दीनाना कल्पवृक्ष: स्वगुणफलनत सज्जनाना कुटुम्बी
आदर्श: शिक्षिताना सुचरितनिकष. शीलवेलासमुद्र. ।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणरोदारसत्वो ।
ह्येक श्लाघ्य स जीवत्यधिकगुणतया चौच्छ्वसन्तीव चान्ये ॥'[2]

सच्चरित्रता—चारुदत्त यद्यपि एक गणिका से प्रेम करता है किन्तु फिर भी उसका चरित्र दृढ एव पवित्र है । वह परनारी पर दृष्टि डालना उचित नही समझता तथा अनजाने मे ही अपनी शरण मे आयी हुई हुई वसन्त सेना के वस्त्रो का स्पर्श हो जाने पर वह दुखी होता है ।[3] वह अपनी पत्नी धूता से वास्तविक प्रेम करता है और उस पतिव्रता पर गर्व करता है । स्वय दरिद्र होते हुए भी अपनी पतिव्रता पत्नी को पाकर वह अपने आपको दरिद्र नही मानता तथा पत्नी का बडा सम्मान करता है ।[4]

प्रियदर्शी—चारुदत्त एक स्वस्थ और सुन्दर युवक है । उसका व्यक्तित्व आकर्षक है । 'मृच्छकटिक' मे संवाहक उसके विषय मे कहता है – 'यस्तादृश प्रियदर्शन' । आर्यक भी सप्तम अक मे उसके शारीरिक सौन्दर्य के विषय मे कहता है–न केवल श्रुतिरमणीय दृष्टिरमणीयोऽपि । वसन्त सेना की चेटी चारुदत्त को साक्षात् कामदेव मानते हुए कहती है—'परमार्थत एव प्रशस्यते, ननु कामदेव' उज्जयिनी मे चारुदत्त के उज्जवल एव पवित्र चरित्र की अत्यधिक प्रसिद्धि है । वह सभ्य समाज मे एक प्रतिष्ठित और यशस्वी युवक के रूप में विख्यात है । विदूषक मैत्रेय उसको उज्जयिनी का अलकार–'उज्जयिन्या अलकार भूत मानता है तथा सवाहक 'भूतलमृगाङ्क' । चारुदत्त के परोपकार, दान, शरणागतवत्सलता आदि गुणो की प्रशसा सवाहक मुक्त कण्ठ से करता है ।[5]

गुण सम्पन्नता–वसन्त सेना चारुदत्त को एक वृक्ष के रूप मे देखती है । जिसके पुण्य तथा फल केवल परोपकार के लिए हैं तथा मित्र रूपी पक्षी जिसका सुखपूर्वक आश्रय लेते हैं—

१–मृच्छकटिक १।११
२–मृच्छकटिक १।४८
३–मृच्छकटिक १।५४
४–मृच्छकटिक ३।२८
५–मृच्छकटिक १२८

'गुण प्रबाल विनयप्रशाख विस्रम्भमूल महनी यपुष्पम् ।
त साधुवृक्षं स्वगुणे. फलाढ्य सुहृद्विहङ्गा. सुखमाश्रयन्ति ॥'[1]

न्यायाधीश से लेकर चाण्डाल तक तथा विट चेट और चन्दनक आदि सभी चारुदत्त के गुणो की मुक्त कण्ठ से 'प्रशसा करते हैं। चन्दनक उसे गुणारविन्द, शील-मृगाङ्क तथा चतु सागरसाररत्न मानता है।[2]

चाण्डाल के शब्दो मे चारुदत्त—'सुजनशकुनाधिवास सज्जनपुरुषद्रुमम् है। चेट के शब्दो मे वह—'प्रणयिजनकल्पपादपम्' है। न्यायाधीश को चारुदत्त के द्वारा अकार्य किये जाने का विश्वास नही होता। चारुदत्त के उज्जवल चरित्र को कलकित करने वाले शकार की भर्त्सना करते हुए वह कहता है—

'चारित्र्याच्चारुदत्त चलयसि, न ते देह हरति भूः।' तथा
'आर्य चारुदत्तः कथमकार्य करिष्यति।'

+ + +

सत्यप्रियता—निर्धन होने पर भी चारुदत्त को अपने चरित्र और कीर्ति की विशेष चिन्ता है। वह एक कर्तव्यपरायण, सत्यवादी युवक थे जो किसी भी परिस्थिति मे दूसरो को धोखा नही देना चाहता। वह स्वय अपने विषय मे कहता है—

भैक्ष्येणाप्य र्जयिष्यामि पुनर्न्यासप्रतिक्रियाम् ।
अनृत नाभिधास्यामि चारित्र्यय शकारणम् ।[3]

किन्तु यदा-कदा वह अपने चरित्र, कीर्ति और विश्वास की रक्षा के लिये, परोपकार करने के लिए तथा स्वय दूसरो की दया का पात्र न बनने के लिए असत्य का भी प्रयोग करता है। वह विदूषक के द्वारा वसन्त सेना के पास अपनी पत्नी की बहुमूल्य रत्नावली भेजता है और कहलाता है कि वह उसे जुएं मे हार गया है। अपने विश्वास की रक्षा के लिए बहुमूल्य रत्नावली को भी वह सहर्ष वसन्तसेना को समर्पित कर देता है।[4] चारुदत्त को अपनी मृत्यु की भी चिन्ता नही, चिन्ता तो केवल यही कि उसका यश दूषित न हो। इस विषय मे वह स्वय कहता है—

'न भीतो मरणादस्मि केवल दूषित यश.।
विशुद्धस्य हि मे मृत्युः पुत्रजन्मसमो भवेत् ॥'[5]

१—मृच्छकटिक ४।३१
२—मृच्छकटिक ६।१३
३—मृच्छकटिक ३।२६
४—मृच्छकटिक ५।२७
५—मृच्छकटिक १०।२७

उदारता—चारुदत्त एक अत्यन्त उदार एव शरणागतवत्सल युवक है । अपनी शरण मे आये हुये आर्यक की रक्षा करने का वचन देते हुए वह कहता है—'अपि प्राणान्, न तु त्वां शरणागतम्' । उसकी यह उदारता एव शरणागतवत्सलता उस समय चरम सीमा पर पहुँच जाती है जब वह अपने यश एव चरित्र को दूषित करने वाले, मिथ्या अभियोग लगाने वाले एव प्राणदण्ड दिलाने वाले शकार को भी शरण मे आने पर अभयदान देकर क्षमा करते हुए कहता है—

'शत्रु कृतापराध शरणमुपेत्य पादतो पतित ।
शस्त्रेण न हन्तव्य, उपकारहतस्तु कर्तव्य ॥'[1]

दयालुता तथा परदु ख कातरता—चारुदत्त अत्यधिक दानशील एव दयालु है । जब भी कोई श्लाघनीय कार्य करता है अथवा उसे कोई शुभ समाचार देता है तब वह उसे कुछ पुरस्कार अवश्य देता है । कर्णपूरक को वह दुपट्टा देता है, किन्तु निर्धनता के कारण पुरस्कार देने मे असमर्थ होने पर उसे दु ख होता है । वह अपने सेवको के प्रति दयालुता का व्यवहार करता है । सोई हुई रदनिका को न जगाने के लिये वह कहता है–'अल' सुप्तजन प्रबोधयितुम्' । अत स्पष्ट है कि वह अपने सेवको की सुख-सुविधा का कितना ध्यान रखता है । अपने सेवको के दु ख एव अपमान से चारुदत्त को भी दु ख होता है । अत विदूषक रदनिका से कहता है कि वह शकार के द्वारा किये गये अपमान की घटना को चारुदत्त से न कहे जिससे उसे दु ख हो ।[2]

पशु पक्षियो के प्रति भी उसका व्यवहार बडा करुण है । पचम अक मे कबूतर को न मारने के लिए विदूषक को समझाते हुए वह कहता है—

'वयस्य । उपविश ।' निष्ठतु दयिता महितस्तस्वीपारावत' केवल मनुष्य और पशु-पक्षियो के प्रति ही नहीं, अपितु वृक्षो और लताओ के प्रति भी उसका व्यवहार बडा कोमल है । लता को दु ख न हो अत वह पुष्पचयन भी नही करता ।[3]

कलाप्रियता—चारुदत्त एक कलाप्रिय युवक है । वह अपने मित्र रेभिल के वीणावादन की विशेष रूप से प्रशसा करता है । वीणा के विषय मे वह कहता है—वीणा हि नाम असमुद्रोत्थित रत्नम् ।' उसे सगीत की ताल, लय, मूर्च्छना आदि का विशेष ज्ञान है । अपने ही घर मे शर्विलक के द्वारा लगाई गई सेंध की कलात्मकता की प्रशसा करते हुए वह कहता है–'हृदयमिव स्फुटित महाग्रहस्या ।

चारुदत्त अपने गुण, चरित्र एव सौन्दर्य सभी दृष्टि से वसन्तसेना के अनुरूप

१—मृच्छकटिक १०।५४
२—मृच्छकटिक ।८१
३—मृच्छकटिक ९।२८

है विट उन दोनों के प्रेम के विषय में कहता है–'कथं वसन्तसेनार्यचारुदत्तमनुरक्ता ? सुष्ठु खल्विदमुच्यते–'रत्नं रत्नेन सङ्गच्छते' इति ।' विदूषक भी इस विषय में चारुदत्त से कहता है—'एवमेवैता कलहंसगामिनी मनुगच्छतु राजहंस इव शोभते ।' जिस समय वसन्तसेना रथ परिवर्तन के कारण शकार के समीप पहुँच जाती है तब विट चारुदत्त और शकार की तुलना करते हुए कहता है–'हँसी हंसं परित्यज्य वायसं समुपस्थिता ।'

चारुदत्त एक भाग्यवादी युवक है। वह यह विश्वास करता है कि धन भाग्य से ही प्राप्त होता है—'भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति ।'[1]

आर्यक की रक्षा के विषय में भी वह उससे कहता है—स्वैर्भाग्यैः परिरक्षितोऽसि' वह शकुन और अपशकुन पर विश्वास करता है। न्यायालय को जाते हुए मार्ग में अनेक अपशकुन होते हैं जिन्हें देखकर वह दुःखी होता है।[2]

चारुदत्त युवक है अतः यह स्वाभाविक है कि युवकोचित विलासिता की प्रवृत्ति उसमें हो। वह सुगन्धित दुशाले का प्रयोग करता है। इस विषय में वसन्तसेना कहती है—

'आश्चर्यम् जाती कुसुमवासित प्रवारक
अनुदासीनमस्य यौवन प्रतिभासते ।'

वह एक पुत्रवत्सल पिता है। रोहसेन शीत से पीडित न हो अतः वह वसन्तसेना को रदनिका मानकर कहता है।

'रदनिके । मारुताभिलाषी प्रदोषसमयशीतार्तो रोहसेनः । ततः प्रवेश्यतामभ्यन्तरमयम् । अनेन प्रावारकेण छादयैनम् । रोहसेनं गृहीत्वाऽभ्यन्तरं प्रविश ।'[3]

चारुदत्त के चरित्र में केवल एक स्थान पर उसका व्यवहार अनुचित प्रतीत होता है। न्यायालय के दृश्य में जब न्यायाधीश उससे पूछता है कि 'क्या वसन्तसेना उसकी मित्र है, तब वह उत्तर देते हुए कहता है—

'भो अधिकृता । मया कथमीदृशं वक्तव्यं, यथा गणिका मम मित्रमिति ।
अथवा यौवनमत्रापराध्यति । न चारित्र्यम् ।'[4]

वस्तुतः यह वसन्तसेना के साथ अन्याय है और चारुदत्त के चरित्र का एक दोष है, किन्तु जैसा कि महाकवि कालिदास ने कहा है कि 'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः'। चारुदत्त के चरित्र का यह दोष गुणों के सागर में सर्वथा निमग्न हो जाता है। संक्षेप में हम केवल यह कह सकते हैं कि प्रकरण

१—मृच्छकटिक १।१३
२—मृच्छकटिक ९।१०
३—मृच्छकटिक ८२।८३
४—मृच्छकटिक ४०।८३

के नायक के योग्य समस्त गुण चारुदत्त के चरित्र में समाविष्ट हैं और वह एक आदर्श नायक है तथा उसका चरित्र सर्वथा उदात्त, महान एव अनुकरणीय है।

वसन्तसेना

दशरूपककार धनजय के अनुसार प्रकरण की नायिका कुल स्त्री अथवा गणिका होती है। किसी किसी प्रकरण मे दोनो नायिकायें होती हैं—

'नायिका तु द्विधा नेतुः कुलस्त्री गणिका तथा ।
क्वचिदेकैव कुलजा वेश्या क्वापि द्वय क्वचित् ॥'[1]

मृच्छकटिक मे कुल स्त्री एव गणिका दोनो नायिकाएँ हैं। चारुदत्त की पत्नी ब्राह्मणी धूता कुल स्त्री है तथा वसन्तसेना गणिका (दोनो प्रकरणो मे मुख्य रूप से वसन्तसेना का ही चरित्र चित्रित किया गया है। गणिका को साधारण स्त्री भी कहते हैं। वह कलाओ मे प्रगल्भ होती है तथा उसका व्यवहार धूर्ततापूर्ण होता है। वह प्रकरण मे नायक पर अनुरक्त होती है।

'साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्य।

+ + +

रक्तैव त्वप्रहसने'[2]

वसन्तसेना उज्जयिनी की एक गुण-ग्राहिणी, उदात्त चरित्र सम्पन्न, उदार-हृदया, आदर्श प्रेम युक्त एक वैभवशालिनी नायिका है। प्रत्येक सुख-सुविधा सम्पन्न कुबेर भवन के तुल्य भवन म वह निवास करती है। उसके गृह-वैभव को देखकर विदूषक कहता है—

'किं तावद्गणिकागृहम्' अथवा 'कुवेरभवनपरिच्छेद इति'। वसन्तसेना अद्वितीय सौन्दर्यशालिनी युवती है। उसका सौन्दर्य अकृत्रिम है। चेटी के शब्दो मे अलकार धारण न करने पर भी वह सुन्दर प्रतीत होती है—'अनलकृतामप्यज्जुका मण्डितामिव पश्यामि' वस्तुत वह उज्जयिनी का आभूषण है। (नगरस्य विभूषणम्)। चारुदत्त को वह शरतकालीन मेघ से ढकी हुई चन्द्रकला के सदृश दिखाई देती है।[3]

विट के शब्दो मे वह कमल से रहित लक्ष्मी के समान है, कामदेव का सुकुमार अस्त्र है, कुलवती रमणियो का शोक है तथा कामदेवरूपी सुन्दर वृक्ष का मनोहर पुष्प है—

१–दशरूपक, ३।४१
२–दशरूपक, २।२१—२३
३–मृच्छकटिक, १।५४

'अपद्मा श्रीरेषा प्रहरणमनङ्गस्य ललित,
कुलस्त्रीणा शोको सदनवरवृक्षस्य कुसुमम् ।'[1]

पुष्प करण्डक उद्यान मे वसन्तसेना को मृत देखकर विट मूर्च्छित हो जाता है और चेतनता प्राप्त करने पर वसन्तसेना के गुणो की प्रशसा करते हुए कहता है कि उदारता रूपी जल की नदी लुप्त हो गई और रति मानो फिर स्वर्ग चली गई है। वह वसन्तसेना को अलकार सौजन्य की सरिता तथा कामदेव की दुकान के रूप मे सम्बोधित करता है।[2]

किन्तु वेश्याकुल मे उत्पन्न होने के कारण समाज की दृष्टि मे उसका अत्यन्त निम्न स्थान है। वह मार्ग मे उत्पन्न एक लता के समान है, जिसके फल का प्रयोग कोई भी पथिक कर सकता है, उसके शरीर का एक मूल्य है—

'विगणय गणिकात्व मार्गजाता लतेव, वहसि हि 'धनहार्य पण्यभूत शरीरम्' वह सरोवर, लता और नौका के सदृश है, जिनका उपयोग सभी समानरूप से कर सकते है—'त्व वापीव लतेव नौरिव जन वेश्यासि सर्व भज। किन्तु वेश्याकुल मे उत्पन्न होकर भी वह कुल स्त्री के सदृश आदर्श प्रेम से युक्त है—'वेश्यामवेशसदृश प्रणयामचाराम।

वसन्तसेना वेश्या होते हुए भी एक आदर्श प्रेमिका है। वह चारुदत्त से सच्चा प्रेम करती है। उसके प्रेम का आधार चारुदत्त के गुण हैं—'अहं श्री चारुदत्तस्य गुण निर्जिता दासी'। वह स्वय कहती है—'गुण खल्वनुरागस्य कारणम्'। वह जानते हुए भी कि चारुदत्त दरिद्र है वह उससे प्रेम करती है। वह चेटी से स्पष्ट कहती है—

'अतएव काम्यते। दरिद्रपुरुषसङ्क्रान्तमना खलु गणिका लोकेऽवचनीया भवति।'[3] वह चारुदत्त के लिये अपूर्व त्याग एव बलिदान करने को भी प्रस्तुत है। अत वह शकार के प्रणय-प्रस्ताव को निष्ठुरता से अस्वीकृत कर देती है।[4]

शकार अपने प्रणय-प्रस्ताव के साथ दशसहस्र मूल्य के सुवर्णभूषणो को भेजता है। वसन्तसेना की माता भी उसे शकार के साथ अभिरमण की आज्ञा देती है, किन्तु वह दृढतापूर्वक इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर अपनी माता से स्पष्टरूप से कहती है—

१—मृच्छकटिक, ४।१२
२—मृच्छकटिक, ८।३८
३—मृच्छकटिक, पृ०-९९
४—मृच्छकटिक, पृ०-४९

'यदि मां जीवन्तीमिच्छसि, तदा एव न पुनरह माता आपज्ञापयितव्या।'—[1] वह माता से यह भी कहलवा देती है कि मैं शकार के लिए अपना शृंगार नहीं कर सकती। मैं शृंगार तभी करूँगी जब चारुदत्त के समीप अभिसार के लिए जाऊँगी।

पुष्पकरण्डक उद्यान मे शकार के वसन्त की हत्या करने को तत्पर होने पर भी वह मृत्यु-भय से शकार का स्वीकार नहीं करती, अपितु चारुदत्त का नाम लेते हुए मरने को प्रस्तुत हो जाती है—'नम. आर्य चारुदत्ताय।' वसन्तसेना वस्तुत चारुदत्त की वधू बन कर उससे स्थायी संबंध स्थापित करने की कामना करती है। वह यह नहीं चाहती कि निर्धनता के कारण प्रत्युपकार करने मे असमर्थ होने से चारुदत्त के हृदय मे कोई हीनता की भावना उत्पन्न हो और फिर वह मिलना ही छोड दे। अत. चेटी के यह पूछने पर कि यदि वह चारुदत्त से प्रेम करती है तो सहसा अभिसार क्यों नहीं करती,वसंतसेना कहती है कि है कि सहसा अभिसार करने पर प्रत्युपकार न कर सकने के कारण वह दुर्लभ-दर्शन हो जायेगा।[2]

उसे चारुदत्त से उत्कृष्ट प्रेम है, अत वह उसकी प्रत्येक वस्तु से प्रेम करती है। जब उसे कर्णपूरक से चारुदत्त का उत्तरीय प्राप्त होता है तब वह प्रिय मिलन के सदृश आनन्द का अनुभव करती है। जब उसे यह ज्ञात होता है कि संवाहक ने चारुदत्त के यहाँ रहकर उसकी सेवा की है तो वह उसका अत्यधिक आदर करती है। विदूषक के साथ भी वह सम्मानपूर्ण व्यवहार करती है। उसके हृदय मे वेश्या-सुलभ ईर्ष्या अथवा द्वेष की रचमात्र भी भावना नहीं है। वह चारुदत्त की पत्नी धूता से बहन के सदृश प्रेम करती है तथा उसके पुत्र रोहसेन के प्रति माता के सदृश वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करती है। उसका मनोरथ है कि चारुदत्त उसे अपनी पत्नी के रूप मे प्राप्त करे और इसके लिए वह अपूर्व त्याग भी कर सकती है तथा बडे से बडे कष्टों को भी सहन कर सकती है। चारुदत्त से मिलने के लिए वह दुर्दिन मे भी अभिसार करती है और भयंकर वर्षा, मेघ-गर्जन अथवा तीव्र विद्युत की भी चिन्ता नहीं करती। वह इन्द्र को चिनौती देते हुये कहती है कि वह चाहे जितनी भयंकर वर्षा करे, गर्जना करे अथवा सैंकडो वज्रो को छोडे किन्तु उसे प्रिय-मिलन से विचलित नहीं कर सकता है।[3] अन्त मे चारुदत्त की पत्नी बनने की उसकी उत्कृष्ट अभिलाषा पूर्ण होती है और वह 'कुलवधू' के पवित्र पद को प्राप्त होती है। दशम अंक मे शर्विलक आकर वसन्तसेना को सूचित करता है—राजा आर्यक प्रसन्न होकर उसे वधू का पद

१—मृच्छकटिक, पृ०—१९४
२—मृच्छकटिक, पृ०—१०१
३—मृच्छकटिक, ५।१६,३१

प्रदान करते हैं—

'आर्ये वसन्तसेने। परितुष्टोराजा त्वा वधूशब्देनानुगृह्णाति।'

और यह सुन कर वह कृतार्थ हो जाती है—'आर्य कृतार्थास्मि।' वह सच्चे प्रेमियों के मार्ग में भी कभी बाधा नहीं पहुँचाती, अपितु उनकी सहायता करती है। मदनिका और शर्विलक को प्रेमपूर्ण वार्तालाप करते हुए देख कर वह कहती है—'तद्र मता रमताम्, मा कस्यापि प्रीतिच्छेदो भवतु। न खल्वाकारयिष्यामि।' यह जानने पर कि शर्विलक और मदनिका प्रेम करते हैं। वह मदनिका को दासता से मुक्त कर देती है और उनका विवाह भी कर देती है।

वसन्तसेना बड़ी व्यवहार कुशल एवं विनम्र है। जब चारुदत्त भ्रमवश उसमे परिचारिका के सदृश व्यवहार करने के अपराध की क्षमा याचना करता है तो वह भी स्वयं उसके घर में बिना आज्ञा के प्रवेश रूपी अपराध की क्षमा याचना करती है।[1] वह उदार हृदया एवं शरणागतवत्सला नारी है। अपनी शरण में आये हुए संवाहक से अपरिचित होते हुए भी वह उसे अभयदान देती है और अपने आभूषण देकर उसे ऋणमुक्त करती है। अपनी उदारता के कारण ही वह रोते हुए रोहसेन का सुवर्णशकटिका बनवाने के लिये आभूषण देती है। चारुदत्त के द्वारा भेजी हुई रत्नावली भी लौटा देती है। वह उपकार करके न तो उसका प्रतिदान चाहती है और न उसे स्मरण करना चाहती है,उसे स्मरण करने की अपेक्षा वह मृत्यु को श्रेयस्कर समझती है।

वसन्तसेना एक विदुषी, सुशिक्षिता और बुद्धिमती स्त्री है वह यद्यपि, प्राकृत भाषा बोलती है किन्तु संस्कृत भी भलीभाँति जानती है और 'मृच्छकटिक' के चतुर्थ अङ्क में विदूषक से संस्कृत में वार्तालाप करती है। राजमार्ग पर शकार के द्वारा पीछा की जाती हुई वह विट के संकेत को समझ जाती है और अपने आभूषणों तथा पुष्पों को उतार लेती है। चारुदत्त के पास न्यास रूप में आभूषणों को वह केवल इसलिए रखती है कि जिससे उसके दर्शन वह बार-बार कर सके। शर्विलक जब चारुदत्त के यहाँ से चुराए हुए आभूषणों को उसे समर्पित करता है तो वह सब बात समझ जाती है और मदनिका का हाथ उसके हाथ में देते हुए कहती है

'अहमार्यचारुदत्तेन भणिता—य इममलङ्कारं समर्पयिष्यति तस्य त्वया मदनिका दातव्या।'[2]

वसन्तसेना कलाओं में भी कुशल है। वह चित्रकला में विशेष प्रवीणा है। वह कामदेव के समान सुन्दर स्वयं चित्रित चारुदत्त के चित्र को मदनिका को

१–मृच्छकटिक—पृ०—८७

२–मृच्छकटिक, पृ०—१४८

३–मृच्छकटिक, पृ०—२२१

दिखाती है,

वह कविता करने मे भी निपुण है । 'मृच्छकटिक' के पचम अक मे वह स्वरचित पद्यों में वर्षा का बडा मनोहर वर्णन करती है । एक पद्य इस प्रकार है—

यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु, तन्नाम निष्ठुरा पुरषा ।
अयि विद्युत्प्रमदाना, त्वमपि च दु खं न जानमि ॥[1]—॥

वह नृत्य कर्म में भी बडी चतुर है । राजमार्ग पर उसका पीछा करते हुए विट कहता है—'नृत्य प्रयोग विशदौ चरणौ क्षिपन्ती' । वसन्तसेना ने अपने उद्यान को बडी कलात्मकरीति से सजाया है । विदूषक भी उसकी वाटिका की कलात्मकता एव शोभा की प्रशसा करते हुए कहता है—

'अहा वृक्षवाटिकाया सुश्रीकता ।'[2]—।

वसन्तसेना को वस्त्रो एव आभूषणो से विशेष प्रेम है । अत वह सदा उनस सुसज्जित रहती है । अपने केशो को सजाने के लिए वह सुगन्धित पुष्पो का भी प्रयोग करती है । भोजन में सम्भवत उसे मछली विशेषप्रिय है । अत शकार उसे 'मत्स्याशिका' कह कर सम्बोधित करता है । उसकी तर्कशक्ति एव व्यवहार कुशलता से सभी प्रभावित हो जाते हैं । उसे धन का किञ्चिन्मात्र भी लोभ नही है । धन की अपेक्षा वह गुणो का अधिक महत्व देती है । अत वेश्याकुल म उत्पन्न होते हुए भी वह शील एव स्वभाव से वेश्या नही है । जब वह सवाहक से अपना परिचय देते हुए कहती है कि 'गणिका खल्वहम्' तो वह ठीक ही ही उत्तर देता है—'अभिजनेन, न शीलेन ।' वसन्तसेना के चरित्र का मूल्याकन करते हुए श्री जी० के० भट महोदय कहते हैं—

Vasantsena does not bear any comparison She is different from the sighing and languishing youug damsels that are Called the heroines of the Sanskrit plays

शकार (सस्थानक)

शकार 'मृच्छकटिक' प्रकरण का प्रतिनायक है । प्रतिनायक नायक की फलप्राप्ति मे विघ्न उत्पन्न करता है तथा उसका शत्रु होता है । दशरूपककार धनंजय के शब्दो मे वह—

'लुब्धो धीरोद्धत स्तब्ध पापकृद् रिपु ।'[3]

अर्थात लोभी, धीरोद्धत, अभिमानी, पापी एव व्यसनी होता है । इन सब दुर्गुणो के अतिरिक्त शकार मूर्ख क्रूर, कपटी एव कायर भी है । विट उस 'काणेलीमात' कह कर सम्बोधित करता है अत वह किसी व्यभिचारिणी स्त्री का पुत्र है ।

१—मृच्छकटिक—५।३२
२—मृच्छकटिक—पृ०—२४८
३—दशरूपक, २।९

वह राजा पालक का साला है, अत ऐसा प्रतीत होता है कि वह उसकी अविवाहिता स्त्री (रखैल) का भाई है । वह सस्थानक भी है । सम्पूर्ण सस्कृत नाटक साहित्य में उसके समान विचित्र और धूर्त पात्र हमें नही प्राप्त होता । प्राकृत बोलने के कारण वह सकार का शकार के रूप में उच्चारण करता है । सम्भवत इसी कारण उसका नाम शकार है । शकार बडा अस्त-व्यस्तभाषी होता है तथा निरर्थक आलाप करता है । उसके वाक्यो में कोई क्रम नही होता । पुनरुक्ति होती है, व्यर्थ की उपमाएँ होती हैं तथा वह लोक न्याय विरुद्ध वचन बोलता है । उसके विषय में कहा गया है–

'अपार्थ क्रम व्यर्थ पुनरुक्त हतोपमम् ।
लोक-न्याय-विरुद्ध च शकार वचन विदु ।'

विट के शब्दो मे वह पुरुष रूप मे पशु का एक नया अवतार है, उसका व्यवहार निन्दित एव वाक्य प्रतिभाशून्य हैं ।

इस प्रकरण में वसन्त सेना के प्रेम को बलपूर्वक प्राप्त करने के इच्छुक एव चारुदत्त के प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे शकार का चरित्र चित्रित किया गया है, किन्तु वस्तुत वह चारुदत्त की तुलना मे इसी प्रकार है, जिस प्रकार हस की तुलना मे कौआ । पुष्पकरण्डक उद्यान मे रथ विपर्यय के कारण शकार के समीप आई हुई वसन्त सेना को देख कर विट शकार की चारुदत्त से तुलना करते हुए कहता है–

हँसी हँस परित्यज्य वायसं समुपस्थिता ।[1]

शकार के चरित्र के विषय में जी० के० भट्ट महोदय के विचार इस प्रकार हैं–

The outstanding traits of his characterization are his perverted speech, his gluttonous instincts, his loath some taste and his delight in destruction

वह स्वय न्यायालय मे जाकर चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का मिथ्या अभियोग लगाता है ।[2] किन्तु शकार की इस धूर्तता के विपरीत चारुदत्त अपनी स्वाभाविक उदारता एव शरणागतवात्सल्य के कारण अपनी शरण मे आये हुए धूर्त एव प्राण घातक शकार को भी क्षमा कर देता है । केवल शकार को छोडकर न्यायशोधक, कायस्थ, शोधनक, चन्दनक, चाण्डाल विट, भिक्षु आदि सभी चारुदत्त की मुक्त कण्ठ से प्रशसा तथा शकार की निन्दा करते हैं । शोधनक शकार को देखकर कहता है–

कथमेष राष्ट्रियश्यालो दुष्ट–दुर्जन–मनुष्य इत एवागच्छति ? तद् दृष्टि

१–मृच्छकटिक, ८।१६
२–मृच्छकटिक पृ० ४४३ ।

पथ परिहृत्यगमिष्यामि ।'[1] शकार के सेवक भी स्वय उसकी निन्दा करते हैं ।

शकार मे अभिमान की मात्रा अत्यधिक है । राजा पालक का साला होने का उसे बहुत अभिमान है । न्यायालय मे वह शोधनक से कहता है—

'अह वरपुरुष मनुष्य वासुदेव राष्ट्रियश्याल राजश्याल कार्यार्थी ।'[2]

अपने इस सम्बन्ध का अनुचित लाभ उठाकर वह अपने मनोनुकूल न्याय करा कर चारुदत्त को मृत्यु दण्ड दिलाना चाहता है । वह न्यायाधीश को धमकी देता है कि वह अपने जीजा राजा पालक, बहिन तथा मा से कह कर इस न्यायाधीश को हटाकर दूसरे न्यायाधीश की नियुक्ति करा देगा—

"किं न दृश्यते मम व्यवहार । यदि न दृश्यते, तदावुत्त राजान पालक भगिनीपति विज्ञाप्य भगिनी मातर च विज्ञाप्यैतमधिकरणिक दूरी कृत्यात्रान्यमधिकरणिक स्थापयिष्यामि ।"[3]

उसे अपने धन का भी बहुत अभिमान है, अत वह वसन्त सेना के प्रेम को प्राप्त करने के लिए उसके पास दस सहस्र मूल्य के आभूषण भेजता है । उसे अपने शारीरिक सौन्दर्य का भी अभिमान है, अतएव वह वसन्तसेना से कहता है कि वह उसकी कामना करे—'अह वरपुरुषमनुष्यो वासुदेव कामयितव्य'। यद्यपि वह कायर एव भीरु प्रकृति का है, किन्तु उसे अपने बल का अभिमान है । वह स्वय कहता है—

"स्त्रीशत मारयामि शूरोऽहम् ।'

शकार मे अपने पद का मिथ्या अभिमान एव राजा के साले के रूप मे स्वय का प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति है । वह रथ पर बैठकर ही नगर म जाना चाहता है जिससे लोग उसकी प्रशसा करें—

'नहि नहि प्रवहणमधिरुह्य गच्छामि, येन दूरतो मा प्रेक्ष्य भणिष्यन्ति एष स राष्ट्रियश्यालो भट्टारको गच्छति ।'

शकार को अपने स्वर का भी बड़ा अभिमान है । वह विट से पूछता है कि क्या उसने उसका सुन्दर गीत सुना । विट उसका उपहास करते हुए कहता है—'किमुच्यते ? गन्धर्वो भवान् ।'

शकार महामूर्ख तथा अशिक्षित है । उसे किसी से शिष्टाचारपूर्ण वार्तालाप करने का भी ढग नही है किन्तु वह अपने ज्ञान का मिथ्याभिमान करता है । ऐसा प्रतीत हाता है कि उसने महाभारत अथवा पुराणो की कथा सुनी है किन्तु उसे

१—मृच्छकटिक, पृ० ४५२ ।

२—मृच्छकटिक, पृ० ४५९ ।

३—मृच्छकटिक, पृ० ४६१ ।

उनका वास्तविक एवं यथार्थ ज्ञान नहीं है, अतः वह विभिन्न पौराणिक पात्रों एवं घटनाओं का स्वेच्छा से बड़ा निरर्थक एवं तर्कहीन अर्थ करता है एवं इतिहास विरुद्ध उपमायें देता है। वह अन्धकार में वसन्त सेना को खोजते हुए कहता है कि क्या अब मेरे साथ अभिरमण करती हुई तुझको क्या जमदग्नि पुत्र भीमसेन अथवा कुन्ती पुत्र दशकन्धर (रावण) भी छुड़ा सकता है? मैं तेरे केश पकड़ कर अभी दुःशासन का अनुकरण करता हूँ।[1] वह बसन्त सेना से कहता है कि तू मेरे वश में इस प्रकार आ गई है जिस प्रकार रावण के वश में कुन्ती—

"मम ,वशमनुयाता रावणस्येव कुन्ती"

वसन्तसेना के स्थान पर रदनिका को पकड़ कर वह कहता है मैंने तुझे केशों से इस प्रकार पकड़ लिया है जिस प्रकार चाणक्य ने द्रौपदी को —'केशवृन्दे परामृष्टा चाणक्येनेव द्रौपदी।" पुष्पकरण्डक उद्यान में उसके प्रेम प्रस्ताव को स्वीकार न करने पर वह वसन्तसेना से कहता है कि जिस प्रकार भारत युग में चाणक्य ने सीता को तथा जटायु ने द्रौपदी को मारा था, उसी प्रकार मैं भी तुझे गला दबा कर मार दूँगा—

चाणक्येन यथा सीता मारिता भारते युगे।
एवं त्वां मोटयिष्यामि जटायुरिव द्रौपदीम्॥[2]

शकार जड़-बुद्धि है अतः वह अनेक अनर्थक, प्रलाप करता है। वह माला की गंध को सुन सकता है किन्तु आभूषणों के शब्दों को अन्धकार के कारण स्पष्ट रूप से नहीं देख सकता।[3] रथ जब दीवाल के ऊपर चढ़ जाता है तब वह चेट से कहता है न तो बैल टूटे, न रस्सियाँ मरी—

'न छिन्नो वृषभो ? न मृता रज्जवः।'

अपनी मूर्खता के कारण वह अन्धकार में वसन्तसेना का पीछा करते हुए कहता है कि वह अपने आभूषणों का 'झन झन' शब्द करती हुई राम से डरी हुई द्रौपदी के समान भाग कर कहाँ जा रही है।[4] इसका परिणाम यह होता है कि वह अपने आभूषण उतार देती है और शकार को यह पता नहीं चल पाता कि वह कहाँ गई। इसी प्रकार चारुदत्त का घर समीप आने पर वह स्वयं बता देता है कि यही आर्य चारुदत्त का घर है, परिणाम यह होता है कि वसन्तसेना चारुदत्त के घर में

१—मृच्छकटिक १।२९।
२—मृच्छकटिक, ८।३५।
३—मृच्छकटिक, पृ० ५९।
४—मृच्छकटिक, १।२५।

प्रविष्ट हो जाती है और शकार उसे नही पकड पाता ।

शकार इतना मूर्ख है कि अपने प्रेम-प्रस्ताव के उत्तर मे वसन्तसेना के द्वारा कहे गये 'शान्त' शब्द को 'श्रान्त' समझता है और वह समझता है कि वह उससे प्रेम करती है ।[1] वह रदनिका और वसन्तसेना के स्वर की भिन्नता को भी नहीं समझ पाता और रदनिका को ही वसन्तसेना समझ कर पकड लेता है ।

एक अर्थ के द्योतक अनेक शब्दों का प्रयोग करना उसे विशेष रुचिकर है। वह एक शब्द के स्थान पर समान अर्थसूचक तीन-तीन शब्दो का प्रयोग करता है—

'एपासि वासु । शिरसि गृहीता केशेपु वाल्पेपु शिरोरुहेपु ।
+ +
आक्रोस विक्रोस लपाधिचण्ड शभु शिव शकरमीश्वर वा ।।[3]

वह कामी है और वसन्तसेना को प्राप्त करने के लिए दस सहस्र मूल्य के सुवर्णाभूषणो के भेजन के अतिरिक्त वह वसन्तसेना से क्षमायाचना करता है, उसके हाथ जोडता है, उसके पैरो पर गिर पडता है और उससे प्रार्थना करता है कि वह उसका अपराध क्षमा कर दे और प्रसन्न हो जाय । किन्तु वसन्तसेना के उसे ठोकर मारने पर और यह जानने पर कि वह गल्ती से रथ बदल जाने के कारण यहाँ आ गई है, स्वेच्छा से नही ? शकार क्रोध मे अधा हो जाता है और उसका गला दबाकर उसे मूर्छित कर देता है ।

शकार यद्यपि मूर्ख है किन्तु पापपूर्ण योजना बनान मे बडा चतुर है । अष्टम अक मे पहले विट से वसन्तसेना को मारने के लिए कहता है किन्तु उसके इन्कार करने पर चेट से कहता है, चेट के भी अस्वीकार करने पर उसे पीटता है और वहाँ से हटा देता है । तदनन्तर वह विट को भी कपटपूर्वक यह कहकर हटा देता है कि वसन्तसेना तुम्हारी उपस्थिति मे मुझे स्वीकार करने मे लजाती है । विट के वहाँ से हटने पर वह वसन्तसेना का गला दबा देता है और वह मूर्छित हो जाती है । विट के लौटने पर और शकार के इस कुकृत्य की भर्त्सना करने पर वह विट पर ही हत्या का आरोप लगा देता है—विट के तलवार निकालने पर वह भयभीत हो जाता है । चेट को ले जाकर वह अपने घर मे हाथ-पैर बांध कर डाल देता है । वसन्तसेना को मारकर वह उसे अपने दुपट्टे से इसलिए नही ढकता क्योंकि वह नामाकित है, अत कोई यह जान न ले कि शकार ने इसका वध किया है, वह उसे सूखे पत्तो से

१—मृच्छकटिक, पृ० ५२ ।
२—मृच्छकटिक—४९ ।
३—मृच्छकटिक, १।४२ ।

ढक देता है ।

कपटी होने के साथ ही वह बडा क्रूर और निर्दय भी है। चेट के किसी प्रकार बन्धनमुक्त होकर न्यायलय मे पहुँचकर उसके पाप का उद्घाटन करने पर वह उसे अपना सोने का कडा देता है किन्तु उसके स्वीकार न करने पर वह यह कह देता है कि इसने मेरा यह सुवर्णभूषण चुराया था और मैंने इसे पीटा था अत यह मुझ पर असत्य अभियोग लगा रहा है। न्यायाधीश उसके इस कथन पर विश्वास कर लेते हैं। वह इतना क्रूर है कि चाण्डालो से कहता है कि चारुदत्त को इसके पुत्र सहित मार डालो। डा० देवस्थली उसके विषय मे कहते हैं—

Outwardly he appears to be a fool, but he is in fact a combination of a fool and a naive

शकार बडा दुराग्रही एव अस्थिरबुद्धि है। उसके चचल स्वभाव के विषय मे विट और चेट भी सदा शकित रहते हैं। अष्टम अङ्क मे पहले तो वह विट को गाडी पर चढने के लिये कह देता है किन्तु जब वह चढने लगता है तो उसका अपमान करते हुए कहता है कि तुम रुक जाओ क्या यह तुम्हारे बाप की गाडी है जो पहले चढते हो, इस गाडी का स्वामी मैं हूँ, अत पहले मैं चढूँगा।[1] इसी प्रकार वह चेट को दीवाल के ऊपर से गाडी लाने का आदेश दे देता है और इस बात की चिन्ता नहीं करता कि बैल मर जायेंगे, गाडी टूट जायेगी अथवा चेट भी मर जायेगा।

वह अत्यधिक कायर और भीरु प्रकृति का है। भीरु तो इतना है कि अपनी गाडी मे वसन्तसेना को देख कर ही भयभीत हो जाता है और उसे राक्षसी अथवा चोर समझता है। प्रथम अक मे चेट के द्वारा तलवार देने पर वह उसे उल्टा पकडता है। अपनी वीरता के विषय मे स्वय घोषणा करते हुए वह कहता है कि मैं कोष में रखी हुई निर्मल और रक्तवर्ण की तलवार को कन्धे पर रखकर—जिस प्रकार भूँकते हुए कुत्ते और कुत्तियो के पीछे लगने पर गीदड घारण के लिये भागता है, उसी प्रकार अपने घर की ओर भागता हूँ।[2] पुरुषो को देखकर वह भयभीत भले ही हो जावे किन्तु स्त्रियो पर तो अपनी वीरता दिखा ही सकता है। अन्धकार मे वसन्तसेना के स्थान पर रदनिका को पकडकर वह कहता है—'दास्यापुत्र्या शीर्षं तावच्छित्वा पश्चान्मारयिष्यामि।'

इस प्रकार 'मृच्छकटिक' मे अपनी शूरता के विषय मे वह घोषणा करता

१—मृच्छकटिक पृ० ४४३।
२—मृच्छकटिक पृ० ३९५।
३—मृच्छकटिक, १।५२।

है कि मैं अकेला सैकड़ो स्त्रियो को मार सकता हूँ।

'स्त्रीणा शत मारयामि शूरोऽहम्'

शकार भिक्षुओ का कट्टर शत्रु है। एक भिक्षु के द्वारा अपराध किये जाने पर जिस भिक्षु को भी देखता है उसे ही दण्ड देता है।

अत स्पष्ट है कि शूद्रक ने प्रतिनायक के रूप मे शकार के चरित्र का बडा सफल और यथार्थ चित्रण किया है। उसमें दुष्टजनोचित प्राय समस्त दुर्गुण विद्यमान हैं। वह मूर्ख, अशिक्षित, अभिमानी, क्रूर, कायर, कपटी, धूर्त, स्त्री लम्पट, अस्थिरमति, दुराग्रही, दिर्दय और भीरु है। हम उसे मानव रूप मे दानव कह सकते हैं।

जी० के भट्ट उसके विषय मे उचित ही कहते हैं—

In his speech and behaviour, in his physical and passionate lust and in his criminal disposition which has no scruples on mark, Sakar is the most in human of humans Rather it will be more Correct to say that he is sub human

विदूषक मैत्रेय

सस्कृत नाटक साहित्य मे विदूषक प्राय नायक का मित्र एव प्रेम व्यापारो मे उसका विश्वस्त सहायक होता है। वह एक हास्य प्रधान पात्र होता है तथा अपनी वेश भूषा, कथनोपकथन तथा हाव-भाव से हास की उत्पत्ति करता है। प्राय उसका हास खाद्य-पदार्थों के प्रसगो पर आश्रित रहता है। दशरूपककार धनजय ने विदूषक का लक्षण देते हुए कहा है—'हास्यकृच्च विदूषक'। किन्तु 'मृच्छकटिक' का विदूषक परम्परागत विदूषक से स्वभाव म भिन्न है। मृच्छकटिक का विदूषक मैत्रेय है, जो एक वास्तविक सुहृद, मित्रनिष्ठ, विदग्ध, विनोदी, निपुण, भीरु क्रोधी एव मूर्ख है।

मैत्रेय जन्मना ब्राह्मण है तथा चारदत्त का घनिष्ठ, अतरग और विश्वस्त मित्र एव प्रधान सहायक है। चारुदत्त स्वय उसे 'सर्वकालमित्र' कहता है।[1] वह दरिद्रावस्था मे भी चारुदत्त का साथ नहीं छोडता। जब चारदत्त श्री सम्पन्न था तब वह उसके यहाँ प्रसन्नतापूर्वक भोजन करता था एव आनदपूर्वक जीवन व्यतीत करता था। किन्तु चारुदत्त की उदार प्रवृत्ति एव दानशीलता के कारण दरिद्रावस्था को प्राप्त हो जाने पर वह पक्षियो के सदृश अन्यत्र अपनी उदरपूर्ति कर चारुदत्त के यहाँ केवल निवास के हेतु उपस्थित होता है।[2] उसे यह विश्वास है कि चारुदत्त के

१—मृच्छकटिक पृष्ठ ३७५।

२—मृच्छकटिक पृष्ठ २१-२२।

सुख समृद्धिपूर्ण दिवस फिर आयेंगे और वह प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत करेगा। सच्चा मित्र होने के कारण वह यह नही चाहता कि चारुदत्त को कभी किसी प्रकार का मानसिक अथवा शारीरिक कष्ट हो। अत वह रदनिका से प्रार्थना करता है कि वह शकार के द्वारा किये गये अपने अपमान की बात चारुदत्त से न कहे।[1]

वह यह जानता है कि वेश्यायें स्वार्थी, लोभी एव कुटिल होती है, अत वह अपने परम मित्र चारुदत्त को वसन्तसेना के प्रति आसक्ति से हटाना चाहता है। अतएव चारुदत्त से कहता है—

'निवर्त्यतामात्माऽस्माद् बहुप्रत्यवायाद् गणिकाप्रसङ्गात्।'

चारुदत्त को उसकी निर्धनता एव दुरवस्था के कारण दुख न हो अत वह उसे निरन्तर आश्वस्त करता रहता है कि धन के विषय मे स्मरण कर दुखी नही होना चाहिए। मैत्रेय सुख एव दुख दोनो मे समानरूपेण चारुदत्त का मित्र है। वह एक स्वार्थी एव अर्थ लोलुप मित्र नही है जो अपने मित्र का केवल समृद्धि मे ही साथ देता है। चारुदत्त स्वय मैत्रेय की प्रशसा करते हुए कहता है।

' सुख दुख सुहृद्भवान्।' मृच्छकटिक।

वह चारुदत्त से निश्चल एव निस्वार्थ प्रेम करता है। अत जब उसे यह ज्ञात होता है कि शकार न चारुदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का मिथ्या अभियोग लगाया है तो वह न्यायालय म ही शकार से लडने लगता है, यद्यपि इसका दुष्परिणाम होता है। इसी प्रकार चाण्डाल चारुदत्त के मृत्यु दण्ड की घोषणा करते हैं और चारुदत्त मैत्रेय से अपनी माता को अन्तिम अभिवादन करने के लिए तथा रोहसेन का पालन करने की प्रार्थना करता है तो मैत्रेय कहता है कि क्या मैं आपके बिना अपने प्राण धारण कर सकूँगा? 'भो वयस्य, अह ते प्रियवयस्यो भूत्वा त्वया विरहितान्प्राणान्धारयामि।' वह यह नही चाहता कि चारुदत्त की दरिद्रावस्था के कारण कही भी बदनामी हो अत वह प्रथम अक म दीपक जलाने के लिए तेल के अभाव की बात चारुदत्त के कान म कहता है। अत वह वास्तव मे चारुदत्त का सर्वकाल-मित्र है। आर० डी० करमरकर महोदय उसके चरित्र का चित्रण करते हुए कहते है—

Maitra is shown in our play as a loyal and devoted friend sticking to Charudatta through thick and thin Other friends leave Charudatta when his fortune declines, not so this old Brahmin, he follows Charudatta like a faithful dog its master First to be hono-

---

१—मृच्छकटिक पृ० ८१।

ured at festive occasions, he is prepared to be the first to give up his life for Charudatta, if need be

विदूषक कट्टर धार्मिक व्यक्ति नहीं है। वह देवी देवताओ पर विश्वास नही करता। उसके अविश्वास का मुख्य कारण यह है कि वे फल नही देते। यत 'एव पूज्यमाना अपि देवता न ते प्रसीदन्ति'। तत् को गुणो देवेषु अर्चितेषु'।[1] चारुदत्त से वह स्पष्टरूप से कह देता है कि मुझे वलिकर्म मे श्रद्धा नही है अत किसी अन्य व्यक्ति को भेज दो—

वह एक सासारिक व्यवहार कुशल व्यक्ति के सदृश कुछ स्वार्थी भी है। अत वह झूठ बोलने मे भी नही हिचकिचाता। आभूषणो की चोरी हो जाने पर वह चारु-दत्त से कहता है कि डरने की कोई आवश्यकता नही है। वसन्तसेना ने हमारे यहाँ आभूषण रखे थे इसका कौन साक्षी है।

'अहं खलु अपलपिष्यामि, केन दत्तम्' ? केन गृहीतम् ? को वा साक्षी ? इति।[2] वह अल्पमूल्यों वाले आभूषणो के बदले मे बहुमूल्य रत्नावली देने की चारुदत्त को सलाह नही देता। मैत्रेय की इस सासारिक व्यावहारिकता के विषय मे डा० देवस्थली कहते हैं—

Like a practical man of the world, he does not care much for integrity and is prepared for any falsehood if that would save him from some calamity

मैत्रेय बडा भीरु प्रकृति का है। वह अन्धकार के कारण चतुष्पथ पर जाने से मना कर देता है और जब रदनिका उसके साथ जाती है, तब वह स्वय भी जाने को उद्यत होता है।[3]

इसी प्रकार जब चारुदत्त विदूषक से वसन्तसेना को उसके घर पहुँचाने के लिए कहता है तो वह मना कर देता है और चारुदत्त के साथ ही जाने को तैयार होता है। भीरु होने के साथ ही वह कुछ क्रुद्ध प्रकृति का भी है। एव उसमे वीरता की भावना भी निहित है। प्रथम अक मे वह शकार के द्वारा रदनिका का अपमान किये जाने पर शकार एव विट दोनो के मारने के लिए उद्यत हो जाता है।[4]

नवम् अक मे वह चारुदत्त पर मिथ्या अभियोग लगाने के कारण शकार को

१—मृच्छकटिक पृ० ३३।
२—मृच्छकटिक पृ० १८१।
३—मृच्छकटिक पृ० ६१।
४—मृच्छकटिक पृ० ६७।

क्रोध में मारने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। मारपीट में वसन्तसेना के आभूषण उसकी बगल में गिर पड़ते हैं और चारुदत्त पर अभियोग सिद्ध हो जाता है। विदूषक को जितनी जल्दी क्रोध आता है। उतनी ही जल्दी समाप्त भी हो जाता है। मद-निका के अपमान के पश्चात् विट के प्रार्थना करने पर उसका क्रोध शीघ्र ही शान्त हो जाता है।

विदूषक को प्राय भोजन अत्यधिक प्रिय होता है, मैत्रेय को भी भोजन प्रिय है किन्तु हम उसे पेटू अथवा भुक्खड़ नही कह सकते। दोनो प्रकरणो की प्रस्तावना मे ही वह सूत्रधार के निमन्त्रण को अस्वीकार कर देता है किन्तु जिस समय वह वसन्त-सेना के भवन में पचम प्रकोष्ठ मे घूमता है, उस समय रसोइयो के द्वारा बनाये जाते हुए लड्डू और पुओ को देखकर उसके मन मे पानी भर आता है और वह सोचने लगता है कि क्या कोई उससे भोजन की प्रार्थना नही करेगा।[1]

विदूषक को अपने ब्राह्मणत्व का अभिमान है। वह अपनी श्रेष्ठता की घोषणा करते हुए कहता है—'यथा सर्व नागाना मध्येडुण्डुम, तथा सर्व ब्राह्मणाना मध्येऽह ब्राह्मण' जब चारुदत्त के पैर धोने के लिए चेट विदूषक से कहता है कि मैं पानी का पात्र ले लूँ और तुम आर्य चारुदत्त के पैर धोओ, तब वह चारुदत्त से कहता है—'भो वयस्य। एष इदानी दास्या पुत्रो भूत्वा पानीय गृह्णाति। मा पुनर्ब्राह्मण पादौ धाव-यति।' इसी प्रकार चारुदत्त के पैर धोने के पश्चात् चेट को अपने पैर धोने की आज्ञा देता है—'वर्धमानक ममापि पाद प्रक्षालय।'

विदूषक वस्तुत नाटक म प्रधानरूप से हास्य की सृष्टि करता है। 'मृच्छ-कटिक' म भी मैत्रेय विभिन्न स्थलो पर हास्य की उत्पत्ति करता है। 'मृच्छकटिक' मे जब चेट मैत्रेय को आभूषणो का पात्र देता है तब वह कहता है—

'अद्याप्येनत्तिष्ठति ? किमत्रोज्जयिन्या चौरोऽपि नास्ति ? य एत दास्या पुत्र निद्राचौर नापहरति ?[2]

जिस समय शर्विलक रात्रि मे सेंध लगाकर सुवर्णपात्र चुरा ले जाता है और रदनिका विदूषक को आकर जगाती है और बताती है कि हमारे घर मे सेंध लगाकर चोर निकल गया है उस समय विदूषक कहता है कि क्या कहती हो चोर फोडकर सेंध निकल गई।[3]

वसन्तसेना की मोटी माता को देखकर विदूषक कहता है कि यदि यह मर जायें तो हजारो गीदडो की उदरपूर्ति के लिये पर्याप्त होगी—'यदि म्रियतेऽत्र माता

१—मृच्छकटिक पृ० २३७।
२—मृच्छकटिक पृ० १५४।
३—मृच्छकटिक पृ० १७४।

भवति शृगालसहमुपर्याप्तिका ।" पचम अक में वसन्तसेना विषयक चेट और विदूषक का वार्तालाप विशेष रूप से हास्य रस की सृष्टि करता है ।

विदूषक कुछ मूर्ख भी है । यदि हम उसे बुद्ध कहे तो अधिक अच्छा होगा । उसमे मनोवैज्ञानिक रूप से मनुष्य के चरित्र को परखने की बुद्धि नही है । वह वसन्तसेना को साधारण कोटि की स्वार्थी एव अर्थलोलुप वेश्या समझता है । उसके विचार से वह केवल दुष्ट विलासिनी है । रत्नावली लेने के पश्चात् जब वसन्तसेना उससे कहती है कि मैं प्रदोप समय मे चारुदत्त से मिलने आऊँगी तो वह समझता है कि सभवतया वह रत्नावली से सन्तुष्ट नही है, अत और धन चाहती है । वह इतना बुद्ध है कि पचम अक मे चेट क साधारण प्रश्नो का भी उत्तर नही दे पाता और बार बार चारुदत्त से उनका उत्तर पूछने जाता है । यद्यपि मैत्रेय कुछ मूर्ख है किन्तु अनेक स्थलो पर बडी बुद्धिमत्तापूर्वक अलकारिक भाषा का प्रयोग करता है । प्रात कालीन मन्द-समीर के द्वारा फुरफुराते (काँपते) हुए दीपक को देख कर वह कहता है कि यह इस प्रकार फुरफुराता है जिस प्रकार वध्यस्थान पर लाये हुए बकरे का हृदय ।[१]

अत यह स्पष्ट है कि यद्यपि विदूषक मे चारुदत्त के सदृश महान एव उदात्त गुण नही है, फिर भी वह एक सच्चा और निष्कपट मित्र है, सासारिक रूप से व्यवहार कुशल है तथा उसमे अन्य अनेक गुण हैं जिन्होने विट के हृदय को जीत लिया है—

"गुणशस्त्रैर्वय येन शस्त्रवन्तोऽपि निर्जित ।[२]

शर्विलक

'मृच्छकटिक' का शर्विलक ही सज्जलक है । वह जाति का ब्राह्मण है तथा वसन्तसेना की दासी मदनिका का प्रेमी है । वह किसी चतुर्वेदी ब्राह्मण का पुत्र है । वह गणिका मदनिका को वसन्तसेना की दासता से मुक्त कराना चाहता है । अत चोरी भी करता है ।[३] वह स्वय दरिद्र है, अत धन प्राप्ति के लिए चोरी करता है, किन्तु चौर्य कर्म की स्वय निन्दा करता है । वह अपने विषय म कहता है कि मेरी इस निर्धनता, पौरुष और यौवन को धिक्कार है जो मैं इस निन्दित और नीचकर्म की निन्दा करते हुए भी इसे करता हूँ ।[४]

यद्यपि वह यह कहता है कि मैं केवल मदनिका के कारण यह निन्दनीय चौर्य

१—मृच्छकटिक, पृ०—६५ ।
२—मृच्छकटिक—१।४५
३—मृच्छकटिक, पृ०—१६९
४—मृच्छकटिक ३।१९

कर्म कर रहा हूँ किन्तु दोनो प्रकरणो के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि वह चौर्य कर्म मे अत्यन्त प्रवीण है और उसने योगाचार्य नामक किसी आचार्य से इस विद्या को ग्रहण किया है जिन्होने उसे प्रसन्न होकर योग रचना दी है जिसके परिणामस्वरूप उसे रक्षक देख नही सकते और यदि सयोगवश उसके शरीर पर किसी अस्त्र का आघात हो तो भी उसे चोट नही लगती। चोरी करने से पहले वह अपने आचार्य को प्रणाम करता है। आचार्य से पहले भी वह कुमार कार्तिकेय कनकशक्ति को नमस्कार करता है अत ज्ञात होता है कि वह देवताओ पर आस्था रखता है।[1] चौर्य कर्म मे वह अत्यन्त कुशल है। वह कूदने मे बिल्ली के समान, भागने मे भेड़िये के समान, घर की वस्तुओ को देखने मे बाज के समान, सोते मनुष्य के बल जानने मे निद्रा के समान और रेंगने मे सर्प के समान है। वह रात्रि मे दीपक, स्थल पर घोडा और जल मे नौका के सदृश है।[2] वह चोरी के लिए आवश्यक समस्त उपकरणो से सुसज्जित होकर ही चोरी करने जाता है। वह पृथ्वी मे गड़े हुए गुप्त धन का पता लगाने के लिए कुछ बीज ले जाता है तथा जलते हुए दीपक को बुझाने के लिए वह आग्नेय कीट ले जाता है।[3] वह चोरी करते हुए भी कार्य और अकार्य का विचार करता है अत अलकार धारण करने वाली स्त्री के अलकार नही चुराता है, ब्राह्मण के सुवर्ण अथवा यज्ञ की सामग्री को भी नही, धाय की गोद से बालक को भी नही छीनता। वह स्वय कहता है—

> "नो मुष्णाम्यबला विभूषणवती फुल्लामिवाह लता
> विप्रस्व न हरामि कान्चनमथो यज्ञार्थमभ्युद्धृतम्।
> धात्र्युत्सङ्गगत हरामि न तथा बाल धनार्थी क्वचित्।
> कार्याकार्यविचारिणी मम मतिश्चौर्येऽपि नित्य स्थिता।।"[4]

वह स्वतन्त्रता प्रेमी है, अत स्वाधीन रहना चाहता है। पराधीन नहीं। निन्दनीय होते हुए भी वह स्वाधीनतापूर्वक चोरी करना अधिक अच्छा समझता है। वह स्वय कहता है—"स्वाधीनावचनीयतापिहि वर बद्धो न सेवाञ्जलि।"[5]

शर्विलक एक आदर्श मित्र है। वह अपने मित्र आर्यक को अपने प्राणो से भी अधिक प्रेम करता है। अपने एक मित्र की रक्षा के लिए वह सैकडो स्त्रियो का भी

१—मृच्छकटिक—पृ० १६२
२—मृच्छकटिक, ३।२०
३—मृच्छकटिक, पृ०—१६७-१६९
४—मृच्छकटिक, ४।६
५—मृच्छकटिक, ३।११

चारुदत्त की प्रशंसा करने के कारण मदनिका के चरित्र पर सन्देह करने लगता है और सम्पूर्ण नारी जाति पर चचलता तथा विश्वासघात का आरोप करता है।[1]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि यद्यपि शर्विलक अथवा सज्जलक चोर है तथा अन्य व्यक्ति के चरित्र को समझने में मनोवैज्ञानिक रूप से अधिक चतुर नहीं, किन्तु फिर भी वह एक सच्चा प्रेमी, कर्मनिष्ठ, मर्यादावादी, कर्ममार्गी, शूरवीर एवं आदर्शमित्र है।

संवाहक–भिक्षु

संवाहक के जीवन में हमें जो बहुरूपता तथा विविधता दृष्टिगोचर होती है वह नाटक के अन्य पात्रों में नहीं। गृहपतिदारक, संवाहक, द्यूतकर, बौद्धभिक्षु तथा विहार कुलपति—ये क्रमश: उसके जीवन के विविध रूप हैं अत: वह साक्षात् बहुरूपता की मूर्ति है। संवाहक वस्तुत: हमारे समक्ष चारुदत्त के सेवक के रूप में प्रस्तुत होता है। द्वितीय अंक के माथुर और द्यूतकर के भय से वसन्तसेना के यहाँ शरण लेने पर उसका पूर्ण परिचय हमें प्राप्त होता है। वह पाटलिपुत्र का निवासी है। जन्म से वणिक् है तथा एक गृहपति का पुत्र है। भाग्य की विपरीतता के कारण उसने संवाहक वृत्ति को अपनाया।[1]

देश-दर्शन के कौतूहल से वह उज्जयिनी आया था। उसने आगन्तुकों से सुना था कि यहाँ उदार और धनी सम्पन्न व्यक्ति सुलभ हैं अत: यहाँ आकर उसने आर्य चारुदत्त के घर सेवक पद को प्राप्त किया। उसने कला समझ कर जिस संवाहकवृत्ति को सीखा था वह दुर्दैव के कारण कालान्तर में उसकी जीविका का साधन बन गई—

"कलेति शिक्षिता। आजीविकेदानीं संवृत्ता"।[1]

वसन्तसेना के सेवक कर्णपूरक के राजमार्ग में जाते हुए इस सन्यासी को ही एक उन्मत्त हाथी से रक्षा कर चारुदत्त से उपहारस्वरूप एक प्रावारक (दुपट्टा) भी प्राप्त किया था।

संवाहक में यद्यपि द्यूतक्रीडा की दुष्प्रवृत्ति है किन्तु वस्तुतः वह एक सज्जन पुरुष तथा सत्स्वभाव का व्यक्ति है। वह स्पष्टवक्ता है अतः द्यूतक्रीडा में दस सुवर्ण मुद्राओं के हारने की बात वसन्तसेना से स्पष्टरूप से कह देता है। वह अपने शरीर को भी बेंच कर जुएँ में हारी दस सुवर्णमुद्राओं को अदा करना चाहता है जो वस्तुतः उसके सत्स्वभाव का ही प्रतीक है—

"आर्यः क्रीणीष्व मा अस्य सभिकस्य हस्तात् दशभिः सुवर्णैः। गेहेते कर्मकरो भविष्यामि।"[1]

वह गुणों का आदर करता है तथा चारुदत्त के गुणों से आकृष्ट होकर ही वह उसके यहाँ सेवकत्व स्वीकार करता है तथा उसके निर्धन हो जाने पर भी उसके साथ ही रहता है। वसन्तसेना से मिलने पर वह चारुदत्त के गुणों की भूरि भूरि प्रशंसा करता है। वह एक कृतज्ञ व्यक्ति है तथा कृतघ्नता से घृणा करता है। उसमें प्रत्युपकार की प्रवृत्ति है अतः वसन्तसेना के द्वारा ऋणमुक्त किये जाने पर वह उसके सेवकों को अपनी संवाहन कला सिखाना चाहता है—

"आर्ये यद्येव तदिय कला परिजनहस्तगत क्रियताम्।"[2]

अन्त में जब वह वसन्तसेना की प्राणरक्षा करके प्रत्युपकार करता है तभी उसकी आत्मा को सन्तोष होता है। वह बड़ा सहनशील है तथा इन्द्रियसंयमी है। शकार उसे अत्यधिक अपमानित करता है किन्तु वह उस पर क्रोध नहीं करता। वह एक सच्चा बौद्ध भिक्षु है तथा निरन्तर बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए इन्द्रियों का दमन करने के लिये और धर्माचरण करने के लिए उपदेश देता रहता है :—

"अज्ञाः कुरुत धर्मसंचयम्।
संयच्छत निजोदरं नित्यं जागृत ध्यानपटहेन।
विषमाः इन्द्रियचौराः हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्।"[3]

वह बौद्ध धर्म के नियमों का कठोरता से पालन करता है। बौद्ध धर्म में स्त्रियों का स्पर्श वर्जित है अतः वह पुष्पकरण्डक उद्यान में मूर्छित वसन्तसेना के चेतनता प्राप्त करने पर अपने हाथ का आश्रय देकर उसे खड़ा नहीं करता, अपितु एक लता

१—मृच्छकटिक, पृ० १३२
२—मृच्छकटिक, पृ० ११२
३—मृच्छकटिक पृ० १३५
४—मृच्छकटिक, ८।१

को झुका देता है और वसन्तसेना से कहता है कि वह उसका सहारा लेकर खडी हो जाये।[1] एक सच्चा बौद्धभिक्षु होने के कारण उसे ससार की सासारिकता तथा भोग-विलासो मे बिल्कुल आसक्ति नही है। वह माया-मोह और लोभ से सर्वथा परे रहना चाहता है। चारुदत्त के सदृश उदार, सहृदय और दयालु व्यक्ति के ऊपर लगाये गये मिथ्या आरोपो एव उसके दुःखो को देखकर तो उसे ससार से और अधिक विरक्ति हो जाती है तथा ससार की इस अनित्यता के कारण प्रव्रज्या मे ही उसका मन अधिक रमता है। वह स्वय कहता है—

'इदमीदृशमनित्यत्व प्रेक्ष्य द्विगुणो मे प्रव्रज्यायां बहुमानः सवृत.'।[2]

वह दृढ निश्चयी है। वह जो निश्चय कर लेता है उस पर अटल रहता है। उसने प्रव्रज्या ग्रहण करने का निश्चय कर लिया है जिससे उसे कोई विचलित नही कर सकता। उसके इस दृढ निश्चय को ही देखकर चारुदत्त उसे पृथ्वी के समस्त बौद्धमठो का कुलपति बना देता है—

'सखे दृढोऽस्य निश्चय । तत्पृथिव्या सर्वे विहारेषु कुलपतिरय क्रियताम्'।[3]

अत यह स्पष्ट है कि जो विविधता एव वहुरूपता सवाहक के जीवन मे दृष्टिगोचर होती है, वह अन्य पात्रो मे जीवन मे नही।

धूता

धूता चारुदत्त की परिणीत भार्या है। वह एक आदर्श भारतीय गृहिणी है। वह एक पतिव्रता आर्य महिला का प्रतिनिधित्व करती है। वह चारुदत्त के प्रतिपूर्ण निष्ठावान् है। तथा एक भारतीय पत्नी के समस्त कर्तव्यो का उत्तरदायित्वपूर्ण निर्वाह करती है। वह चारुदत्त के सुख मे सुखी और दुःख मे दुःखी रहती है। शर्विलक के द्वारा घर मे चोरी की बात सुनकर वह सबसे पहले चारुदत्त की शारीरिक सुरक्षा के विषय मे पूछती है—

'अयि । सत्यमपरिक्षतशरीर आर्यपुत्र आर्य मैत्रेयेण सह ?'[4]

किन्तु शारीरिक सुरक्षा एव धन की अपेक्षा वह अपने पति के सुयश एव चरित्र की अधिक चिन्ता करती है—

'वरमिदानी स शरीरेण परिक्षत. न पुनश्चारित्रेण।'[5]

चारुदत्त के यश एव चरित्र की रक्षा के लिए वह स्वेच्छा से अपने मातृगृह

१—मृच्छकटिक पृ० ४४८।
२—मृच्छकटिक पृ० ५९९।
३—मृच्छकटिक पृ० ५९९।
४—मृच्छकटिक पृ० १८२।
५—मृच्छकटिक पृ० १८३।

से प्राप्त हुई अत्यधिक प्रिय एवं मूल्यवान् 'चतुः सागररत्नभूता' रत्नावली को वसन्तसेना के आभूषणों के बदले में देना चाहती है, किन्तु उसे यह सन्देह है कि चारुदत्त स्वयं स्वाभिमानी होने के कारण इसे स्वीकार नहीं करेंगे।[1] अतः वह बड़ी चतुरता से 'रत्नषष्ठी' के व्रत के बहाने दानस्वरूप उस रत्नावली को विदूषक को दे देती है और चारुदत्त उसे ऋण मुक्त होने के लिए वसन्तसेना के पास भेज देता है।

धूता को आभूषणों के प्रति मोह एवं लोभ नहीं है। उसका वास्तविक एवं अमूल्य आभूषण तो उसका पति ही है। अतः वसन्तसेना के द्वारा रत्नावली लौटाये जाने पर वह उसे स्वीकार नहीं करती और विनम्रता से यह कहकर वापस कर देती है कि आर्य चारुदत्त ने इसे आपको दिया है, अतः मेरे द्वारा इसे स्वीकार करना उचित नहीं है। मेरे आभूषण तो मेरे स्वामी ही हैं—

'आर्यपुत्रेण युष्माकं प्रसादीकृता न युक्तं ममैतां ग्रहीतुम्। आर्यपुत्र एव ममाभरण विशेष इति जानातु भवती।'[2]

चारुदत्त के सदृश वह भी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला है। रत्नषष्ठी का व्रत और दान इस बात का प्रमाण है। वह गुणों में सर्वथा चारुदत्त के अनुरूप है और उसकी पत्नी होने के योग्य है। जब विदूषक मैत्रेय रत्नावली चारुदत्त को देता है, तब वह पूछता है कि यह क्या है तब उत्तर देते हुए विदूषक कहता है कि आपके द्वारा गुणों में अपने अनुरूप पत्नी प्राप्त करने का फल है—

'भोः यत्तेसदृशदारसंग्रहस्य फलम्'·· ·· · ··· मृच्छकटिक।

चारुदत्त को धूता के समान गुणवती पत्नी प्राप्त करने का अभिमान है, अतः वह दरिद्र होते हुए भी स्वयं को दरिद्र नहीं मानता।[3]

धूता अत्यन्त उदार है। वह अपनी सपत्नी गणिका वसन्तसेना से किंचित् मात्र भी ईर्ष्या नहीं करती, अपितु उसे अपनी बहन मानती है। वसन्तसेना को सकुशल देखकर वह कहती है—'दिष्ट्या कुशलिनी भगिनी।' वह वसन्तसेना से प्रेम करने वाले अपने पति चारुदत्त पर भी क्रोध नहीं करती किन्तु उसे अत्यधिक प्रेम करती है। अपने पति की मृत्यु का समाचार प्राप्त करने के पूर्व ही वह स्वेच्छा से चिता में कूद कर प्राण त्याग कर देना चाहती है और अपने पातिव्रत्य धर्म के समक्ष अपने पुत्र की भी चिन्ता नहीं करती। वह अपने पालन-पोषण की प्रार्थना करते हुए अपने पुत्र रोहसेन से स्पष्ट कह देती है।

१–मृच्छकटिक पृ० १८३।
२–मृच्छकटिक पृ० ३१७।
३–मृच्छकटिक, ३।२८

'जात । मुञ्च माम् मा विघ्न कुरु । बिभेमि आर्यपुत्रस्यामङ्गलाकर्णनात् । वरे पापाचरणम्, न पुनरार्यपुत्रस्यामङ्गलाकर्णनम् ।

वह इतनी उदार एव धर्मशील है कि पचम अक मे वसन्तसेना के रात भर चारुदत्त के साथ रहने पर भी इसका विरोध नहीं करती।

अत निश्चित रूप से धूता एक अत्यन्त उत्तम कोटि की भारतीय गृहिणी एव एक आदर्श धीरा नायिका है। वसन्तसेना से उसके चरित्र की तुलना करते हुए नरमस्कर महोदय कहते हैं—

Both Dhoota and Vasantsena love Charudatta dearly, both are prepared to die for him without a moment's notice. Dhoota, who is older in years, strikes the reader as being more dignified and possessing greater self Control, while Vasantsena is more jonious, full of order and given to greater display of her emotions

धूता की प्रशसा करते हुए देवस्थली महोदय कहते हैं—

धूता—

Dhoota is an ideal Hindu wife who would Care for her husband before any thing else and would look more to his name and reputation than to his physical safety For it she would part with even her most Valuable treasure and would look upon her husband as her most precious and proud ornament.

मदनिका

मदनिका वसन्तसेना की एक विश्वासपात्र दासी है। दासी से भी बढ़ कर वह उसकी प्रिय सखी है। वे परस्पर एक दूसरे को अत्यधिक स्नेह करती है। वसन्तसेना अपने प्रत्यक रहस्य को उस पर प्रकट कर देती है। चारुदत्त के साथ अपने प्रणय को भी वसन्तसेना ने मदनिका को पूर्णरूप से बता दिया है। दूसरों के और विशेष-रूप से अपनी स्वामिनी और सखी वसन्तसेना के हार्दिक भावो को समझने मे मदनिका बड़ी चतुर है। वसन्तसेना को शून्य हृदय देखकर वह समझ जाती है कि वह किसी हृदय स्थित जन को चाहती है। अत वसन्तसेना ने उसे 'परहृदयग्रहण-पण्डिता' की उपाधि प्रदान की है जो सर्वथा उचित है।[1] वसन्तसेना से उसे इतना प्रेम है कि यह जानकर कि शर्विलक ने उसके प्रेमी चारुदत्त के घर चोरी की है, वह मूर्छित हो जाती है।

१–मृच्छकटिक पृ० २९२।
२–मृच्छकटिक पृ० ९९।

मदनिका एक बुद्धिमती तथा चतुर नारी है। गणिका की दासी होने पर भी वह सत्स्वभाव की महिला है। शर्विलक के द्वारा चारुदत्त के घर से वसन्तसेना के आभूषणो के चुराये जाने का पता लगने पर वह एक सदगृहिणी की भाति शर्विलक को परामर्श देती है कि इन आभूषणो को आर्या वसन्तसेना को दे दो। शर्विलक के यह पूछने पर कि इससे क्या होगा—वह कहती है कि इससे तुम चोरी के अपराध से मुक्त हो जाओगे, चारुदत्त उऋण हो जायगे तथा वसन्तसेना को अपने आभूषण मिल जायेंगे।

'एव तावदचौर सोऽपि आर्य अनृण, आर्याया स्वक अलकारक उपगतो भवति।'[1]

मदनिका के समान बुद्धिमती तथा पथ-प्रदर्शिका प्रेमिका को प्राप्तकर शर्विलक का अत्यधिक प्रसन्नता है। तभी तो वह गर्व से कहता है—

'मयाप्ता महती बुद्धिर्भवतीमनुगच्छता।
निशाया नष्टचन्द्राया दुर्लभो मार्गदर्शक.॥'[2]

अपनी स्वामिनी वसन्तसेना के एक गणिका होने के कारण वह उसे भी सत्परामर्श देती है कि निर्धन पुरुष की वेश्यायें कामना नही करती जैसे कुसुमहीन रसाल के वृक्ष को भ्रमरियां नही चाहती अर्थात् जिस आम वृक्ष म मजरी निकल आई हैं उसकी ही उपासना मधुकर करते हैं।[3]

मदनिका बौद्धिकरूप म ही चतुर नही है, अपितु शारीरिक रूप से भी वह अत्यधिक सुन्दर है। वह साक्षात् मूर्तिमती रति है। उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए शर्विलक स्वय कहता है—

'मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती रतिरिव मूर्तिमती विभाति येयम्'।[4] वह भीरु अथवा कायर नही है, अत शर्विलक अथवा सज्जलक जैसे वीर एव साहसी व्यक्ति की पत्नी होने के सर्वथा योग्य है। वह शर्विलक के उचित एव साहसपूर्ण किसी भी कार्य मे बाधा नहीं डालना चाहती। पाणिग्रहण होने के पश्चात् वसन्तसेना के घर से निकलते ही यह पता लगने पर कि राजा पालक ने आर्यक को बन्धनागार में डाल दिया है, शर्विलक उसे बन्धन मुक्त कराने के लिए जाना चाहता है। उस समय मदनिका उसे रोकती नही है। वह उससे केवल इतना ही चाहती है कि वह पहले उसे गुरुजना के समीप सुरक्षित पहुँचा दे— नयतु मामायपुत्र समीप गुरुजनानाम्'

१—मृच्छकटिक पृ० २१७।
२—मृच्छकटिक, ४।२१।
३—मृच्छकटिक पृ० १००।
४—मृच्छकटिक, ४।४।

वह शर्विलक से अपने कार्य मे अप्रमत्त होने की भी प्रार्थना करती है—

'अप्रमत्तेन तावदार्यपुत्रेण भवितव्यम् ।'

अत स्पष्ट है कि वह एक आदर्श पत्नी, वीरवधू, बुद्धिमती, दूरदर्शी तथा अवसर के अनुसार कार्य करने वाली नारी है। यद्यपि वह एक गणिका की दासी है, किन्तु उसम एक कुलीन वधू के समस्त गुण विद्यमान है। चतुर्थ अक मे विवाह होने के उपरान्त वह रगमंच पर नही आती, इससे पाठको को कुछ क्षोभ होता है।

पञ्चम विवेक

मृच्छकटिक की भाषा एव शैली का अध्ययन

'मृच्छकटिक' प्रकरण भाषा एव शैली की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जितने प्रकार की प्राकृत का प्रयोग "मृच्छकटिक" मे किया गया है, उतना सस्कृत के किसी अन्य रूपक में नही। प्रकरण की भाषा सरल, प्रभावोत्पादक एव मुहावरेदार है तथा शैली अनलकृत है। शूद्रक की भाषा (सस्कृत तथा प्राकृत) एव शैली की कुछ व्यक्तिगत विशेषताये हैं।

सस्कृत—शूद्रक की सस्कृत सरल, सरस, स्वाभाविक एव स्पष्ट है। कृत्रिमता का प्राय दोनो प्रकरणो में अभाव है। भाषा में नाटकीयता है उसमें अभीष्ट गति एव प्रवाह है। काल की दृष्टि से 'मृच्छकटिक' की भाषा 'चारुदत्त' के कई शताब्दी बाद की है। भाषा मे माधुर्य एव प्रसाद का पूर्ण विकास हुआ है। शूद्रक की भाषा मे यत्र-तत्र ओज प्राप्त होता है। भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार है भाषा सुन्दर, परिष्कृत एव प्रांजल है। मृच्छकटिक मे उपयुक्त एव उचित शब्दो का प्रयोग किया गया है। प्रकरण के कुछ शब्दो के विवेचन से यह स्पष्ट है। शूद्रक ने 'सुस्निग्धा' का प्रयोग किया है अर्थात् दरिद्रता के कारण घनिष्ट मित्र भी विमुख हो जाते हैं[1]। शूद्रक ने 'नरो' का प्रयोग किया है जो अधिक उचित है। 'यो याति नरो दरिद्रता। इसी पद्य में उन्होने दुःख के पश्चात् सुख की शोभा का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह अन्धकार के पश्चात् दीप-दर्शन के सदृश सुशोभित होता है-'यथा न्धकारादिव दीपदर्शनम्' यहां 'यथा' और 'इव' दोनो का प्रयोग अनावश्यक है अत शूद्रक ने यथा का प्रयोग नहीं किया-'घनान्धकारेष्विव दीप दर्शनम्'[2]। वसन्तसेना का रात्रि म पीछा करते हुए विट उसके चरणो के लिए 'नृत्योपदेशविशद

१-मृच्छकटिक १/३६।
२-मृच्छकटिक १/१०।

विशेषण का प्रयोग करता है। नृत्य भावों पर आश्रित होता है तथा नृत्त ताल और लय पर। इसके अतिरिक्त वेश्यायें उसके उपदेश मे नही अपितु प्रयोग में दक्ष होती हैं। अत: शूद्रक ने 'नृत्तोपदेशविशदौ' का प्रयोग किया है, जो अधिक उचित है[1]। 'मृच्छकटिक' मे विट कहता है कि हम एक 'सकामा' स्त्री का पीछा कर रहे हैं, वसन्तसेना चारुदत्त के प्रति अनुराग रखने के कारण सकामा है[2]। चारुदत्त वसन्त सेना का रदनिका समझ कर अपना प्रावारक देता है। वह ज्ञात होने पर कि वह रदनिका नही है वह दुःख से कहता है कि मैंने किसे अपने वस्त्र से दूपित कर दिया शूद्रक का 'दूपिता' अधिक अच्छा प्रयोग है[3]। शूद्रक ने 'अर्थसिद्धि' का प्रयोग किया है ·········"स्यादर्थसिद्धिश्च मे"[4]। चतुर्थ अक मे यह ज्ञात कर कि शर्विलक ने चारुदत्त के यहा कुछ अकार्य किया है। मदनिका बहुत उद्विग्न होती है और मूच्छित हो जाती है उस समय शर्विलक कहता है कि शरविद्ध मृगी के समान मूच्छित हो रही हो, इस समय वह अपने प्रिय—मिलन मे विलम्ब कर उस पर दया नही करती है। अत. शूद्रक ने 'नानुकम्पसे का उचित ही प्रयोग किया है[5]। मदनिका के समक्ष अपने कुल की प्रशंसा करते हुए शर्विलक कहता है कि उसके पूर्वज सन्तुष्ट थे, किन्तु सन्तोष तो दुर्जनो को भी हो सकता है, अत: शूद्रक ने 'सद्वृत्त पूर्व पुरुषे' का प्रयोग किया है जो अधिक श्रेष्ठ है[6]। शूद्रक की कवि सुलभ कल्पना अधिक सुन्दर एव कोमल है। प्रथम अक मे उदित होते हुए चन्द्रमा की शुभ्रता की उपमा कामिनियो के कपोलस्थल से की है—"कामिनीगण्ड पाण्डुः" शूद्रक की सस्कृत मे भी हमें अनेक दोष प्राप्त होते हैं 'उन्होने 'मृच्छकटिक' के प्रथम अक मे 'मम रोचते' का प्रयोग किया है। पाणिनी—व्याकरण के अनुसार 'मह्यं रोचते' होता है। प्रथम अक के २१ वें श्लोक मे प्रयुक्त 'भयभीता' मे 'भय' शब्द निरर्थक है। पैंतीसवें श्लोक मे 'काम' का 'यद्यपि' के अर्थ में प्रयोग होने के कारण 'तु' का प्रयोग होना चाहिए, किन्तु शूद्रक ने ऐसा नही किया है। द्वितीय अक के १० वे श्लोक में 'अय पट.' का बार बार प्रयोग किया गया है—'यहां अनवीकृतत्व दोष है। तृतीय अंक में शर्विलक पुस्तक शब्द के नपु सकलिंग होने पर भी उसका पुल्लिंग में 'अमी पुस्तका:' प्रयोग करता है। इन कुछ दोषों के होते हुए भी शूद्रक की सस्कृत सरल और स्वाभाविक है। उसमें कृत्रिमता का पूर्णरूपेण अभाव है। पात्रों एव परिस्थितियों के अनुसार भाषा का प्रयोग शूद्रक ने किया है। लोकोक्तियो तथा मुहावरो के प्रयोग से भाषा को सजीव बनाने का प्रयास किया गया है।

१—मृच्छकटिक— १/१७
२—मृच्छकटिक, १/४४
३—मृच्छकटिक, १/५४
४—मृच्छकटिक, ३/१२ .

प्राकृत भाषा प्रयोग

प्राकृत के प्रयोग की दृष्टि से 'मृच्छकटिक' एक अद्वितीय रूपक है, जितनी प्रकार की प्राकृत का प्रयोग इस प्रकरण में किया गया है, उतना अन्य किसी रूपक में नही। प्राचीन भारतीय भाषाओ के तीन प्रमुख वर्ग हैं–संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश। 'मृच्छकटिक' के संस्कृत टीकाकार पृथ्वीधर ने इस प्रकरण की प्राकृत भाषाओं का विस्तृत विवेचन किया है। प्राकृत भाषाएं मुख्यरूप से सात वर्गों में विभक्त की गई हैं—मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाल्हीका तथा दक्षिणात्या (महाराष्ट्री)। अपभ्रंश भी सात भागो में विभक्त की गई है।—शकारी, आभारी, चाण्डाली, शाबरी, द्राविडी, उड्जा तथा ढक्की (वनेचरो की भाषा)। प्राकृत को भाषा तथा अपभ्रंश को विभाषा भी कहते हैं। इनमें से सात प्रकार की भाषाओं अथवा विभाषाओ का 'मृच्छकटिक' में प्रयोग हुआ है, जिनमे शौरसेनी, अवन्तिका, प्राच्या तथा मागधी ये चार प्राकृत हैं और शकारी, चाण्डाली तथा ढक्की ये तीन अपभ्रंश। इनमे मुख्यरूप से शौरसेनी और मागधी का ही विशेषरूप से इस प्रकरण मे सुन्दर प्रयोग हुआ है। अन्य पाच प्रकार की प्राकृत और अपभ्रंश के प्रयोग को देखकर आलोचको ने यह अनुमान लगाया है कि उस समय तक प्राकृतो और अपभ्रंशों का पूर्ण विकास नही हो पाया था। 'मृच्छकटिक' में जो पात्र जिस प्राकृत अथवा अपभ्रंश का प्रयोग करता है उसका वर्णन इस प्रकार है –

शौरसेनी	– सूत्रधार, नटी, वसन्तसेना तथा उसकी माता, मदनिका, रदनिका, चेटी कर्णपूरक, धूता, शोधनक तथा श्रेष्ठी।
अवन्तिका	– वीरक तथा चन्दनक।
प्राच्या	– विदूषक।
मागधी	– संवाहक (बाद मे भिक्षु), स्थावरक, कुम्भीलक, वर्धमानक, रोहसेन।
शकारी	– शकार।
चाण्डाली	– दोनो चाण्डाल।
ढक्की	– द्यूतकर तथा माथुर।

वस्तुत शौरसेनी तथा मागधी ही 'मृच्छकटिक' की प्रमुख प्राकृत हैं तथा उनका परिनिष्ठित रूप हम इस प्रकरण मे प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन पर वररुचि आदि प्राकृत वैयाकरणो का प्रभाव है। इन सात प्रकार की भाषाओं और विभाषाओ का विवरण संक्षेप मे इस प्रकार है —

शौरसेनी–'मृच्छकटिक' मे कुल 11 पात्र शौरसेनी प्राकृत बोलते हैं। इनमें

सूत्रधार केवल 'कार्यवश' प्राकृत बोलता है, अन्यथा वह संस्कृत का ही प्रयोग करता है। इसमें श, 'ष' तथा 'स' इन तीनों के स्थान पर केवल 'स' का ही प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ संस्कृत के 'प्रविशामि', 'मर्षतु' 'सर्वं', 'सुकुमारा', 'शिक्षिता तथा अपेयेषु तडागेषु' के स्थान पर क्रमशः 'पाविसामि', मरिसेदु', 'सव्वं,' 'सुउमारा', 'सिक्खिदा' तथा ओएसु तडाएसु' रूप प्राप्त होते हैं।

अवन्तिका—अवन्तिका और शौरसेनी में बहुत कम अन्तर है। इसमें भी 'श' 'ष' और 'स' के स्थान पर 'स' होता है। पृथ्वीधर के अनुसार यह रेफवती तथा लोकोक्तिबहुला होती है। रेफवती का अर्थ यहाँ स्पष्ट नहीं है। यदि इसका अर्थ 'ल' के स्थान पर 'र' पाया जाना है तो वीरक और चन्दनक की प्राकृत के अनुसार यह लक्षण ठीक नहीं घटता। उदाहरण के लिए संस्कृत के 'अवलोकित', 'प्रतोलीद्वारे' 'पालकेन' के स्थान पर 'अवलोइद 'पदोलीदुआरे' और 'पालएण' इन शब्दों में 'ल' का 'र' नहीं होता। कहीं कहीं तो इसके विपरीत 'र' के स्थान पर ही'ल'प्राप्त होता है जैसे—'आरूढो' के स्थान पर 'आलूढो' तथा 'आरूढो' दोनों प्रयोग प्राप्त होते हैं। इसमें 'रे'तथा'अरे' शब्दों का प्रयोग अधिक है। यदि रेफावती का यही अर्थ है तो ठीक है। लोकोक्तियों की इसमें प्रचुरता है यह 'मृच्छकटिक' से भी सिद्ध होता है। कीथ के अनुसार चन्दनक स्वयं को दक्षिणात्य कहता है। अतः उसकी भाषा दक्षिणात्य माननी चाहिए जिसे नाट्यशास्त्र के अनुसार योद्धा, राजपुरुष तथा जुआड़ी बोलते हैं।[1]

प्राच्या—विदूषक प्राच्या बोलता है। इसमें भी श, ष और स के स्थान पर 'स' होता है। पृथ्वीधर के अनुसार प्राच्या में स्वार्थिक ककार—बहुत होता है, किन्तु विदूषक की भाषा में ककार की बहुलता नहीं है। कीथ के अनुसार प्राच्या शौरसेनी की ही कोई बोली सम्भवतः पूर्वी बोली है।[2]

मागधी—मागधी में श, ष तथा स के स्थान पर 'श' का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणस्वरूप संस्कृत के 'श्वसिति', 'एष.' 'साम्प्रत', 'शरणागत-वत्सल.' के स्थान पर क्रमशः 'शशदि', 'ऐशे', शपद' तथा 'शलणागतवच्छले' हो जाता है। मागधी में शकार बहुलता होती है। संवाहक आदि के संवादों से यह स्पष्ट है।

शकारी—शकारी में भी शकार की बहुलता होती है जैसा शकार की उक्तियों से स्पष्ट है। उदाहरण के लिए हम वसन्तसेना के विषय में कही गई उसकी यह उक्ति ले सकते हैं—

'एशा णाणक-मूशि-काम-कशिका, मच्छाशिका लाशिका,
णीण्णाशा, कुलणाशिका, अवशिका, कामश्श मन्जूशिका।'[3]

(१) संस्कृत नाटक, पृ०—१४०
(२) संस्कृत नाटक, पृ०—१४०
(३) मृच्छकटिक, १/२३।

इसमे 'र' के स्थान पर 'ल' हो जाता है। उदाहरण के रूप मे संस्कृत के 'मारयामि' तथा 'दशकन्धरो' के स्थान मे क्रमश: 'मालेमि' तथा 'दशकन्धले' हो जाते हैं। शकारी का प्रयोग शकार करता है।

चाण्डाली—इसमे भी श, ष और स के स्थान पर 'शकार' हो जाता है तथा 'र' के स्थान पर'ल'हो जाता है। उदाहरणस्वरूप इसमे संस्कृत के'शून्य', 'एष', 'सार्थवाह'तथा 'अरे पौरा' के स्थान पर क्रमश 'शुण्ण', 'एशे', 'शत्थवाह', 'अले पउला' हो जाता है। दोनो चाण्डाल इसका प्रयोग करते हैं।

ढक्की—पृथ्वी धर का मत है कि ढक्की मे वकार की प्रचुरता होती है। जब यह संस्कृतप्राय होती है तो इसमे स तथा श दोनो का प्रयोग होता है—'वकारप्राया ढक्कविभाषा। संस्कृतप्रायत्वे दन्त्यतालव्यसशकारद्वययुक्ता' 'च' किन्तु 'मृच्छकटिक' की ढक्की वकारबहुला नहीं, अपितु उकारबहुला है। इसमे शब्दों के अन्त मे प्राय 'उकार' आता है। जैसे—'पिष्पदीलु थादु। थाडिमाशुण्णु देउलू' तथा 'तुए गदासुवण्णु कल्लवत्तु, मए एसु विहवु।' आदि भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार ढक्की का नाम नहीं प्राप्त होता किन्तु उन्होने एक उकार बहुला भाषा का उल्लेख किया है—

'हिमवत्सिन्धुसौवीरान् येऽन्यदेशान् समाश्रिताः।
उकारबहुला तेषु नित्य भाषा प्रयोजयेत्॥'[1]

कीथ के अनुसार ढक्की को टक्की' होने की सम्भावना व्यक्त की गई है। लिपि की अशुद्धता से यह ढक्की लिख दी गई है। पिशेल इसे पूर्वी बोली तथा ग्रियर्सन पाश्चात्य बोली मानते हैं।[2]

इस सात प्रकार की भाषाओ अथवा विभाषाओ मे शकारी तथा चाण्डाली दानो मागधी की ही विभाषाए हैं। यदि हम ढक्की को छोड दे तो 'मृच्छकटिक' की सम्पूर्ण प्राकृतें शौरसेनी और मागधी अथवा इसकी बोलियो के रूप म ही आ जाती है।

शूद्रक की शैली

शूद्रक की शैली भी सरल और स्वाभाविक है। यह संस्कृत साहित्य को अलंकृत शैली नही है। माधुर्य और प्रसाद उसके विशेष गुण है। बड़े-बड़े समासों तथा कृत्रिमता का उसम प्राय अभाव है। अत हम उसे वैदर्भी शैली कह सकते हैं। वैदर्भी शैली का लक्षण देते हुए कहा गया है —

(१) नाट्यशास्त्र—१८/६०
(२) संस्कृत नाटक, पृ०—१८० ।

'माधुर्यव्यजकैर्वर्णे रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥'

वैदर्भी शैली के सभी गुणो का समावेश शूद्रक की शैली मे है। मृच्छकटिक के चतुर्थ अक मे वसन्तसेना के भवन का वर्णन करते समय भाषा समास प्रधान होने के कारण ओज (ओज समासभूयस्त्वम्) के दर्शन होते हैं। इस स्थल मे भाषा की कृत्रिमता तथा अलकृत शैली के दर्शन होते हैं।

शूद्रक ने पात्रो एव परिस्थितियो के अनुसार ही सस्कृत एव प्राकृत दोनो का प्रयाग किया है। अवस्था एव अवसर के अनुरूप एक ही पात्र दो भाषाओ का प्रयोग करता है। प्रथम अक म प्रारम्भ मे तो सूत्रधार सस्कृत बोलता है किन्तु बाद मे प्रयोजनवश प्राकृत का प्रयोग कहता है। इस विषय म वह स्वय कहता है—

'एषोऽस्मि भो ' कार्यवशात् प्रयोगवशात् प्राकृतभाषी सवृत्त:'।[1]

'मृच्छकटिक मे यद्यपि प्रारम्भ से अन्त तक वसन्तसेना प्राकृत मे ही बोलती है किन्तु चतुर्थ अक के अन्त म वह विदूषक से सस्कृत म वार्तालाप करती है। सभवत शूद्रक ने इस विषय म भरत के इस निर्देश का पालन किया है—

'योषित्सखी बाल वेश्याकितवाप्सरस' तथा
वैदग्ध्यार्थं प्रदातव्य सस्कृत चान्तरान्तर।'[2]

पदयोजना तथा वाक्य-विन्यास की दृष्टि से शूद्रक की भाषा नाटकीय तथा प्रवाहपूर्ण है। उनके सवाद सूक्ष्म, प्रभावोत्पादक तथा नाटकीय होते हैं। इस विषय म भट्ट महोदय का कथन है—

As regards the author's style, his flare for simplicity and his power of crisp, effective and dramatic dialogue are unmistakable

शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' म गद्य तथा पद्य दोनो की अनेक सुन्दर लोकोक्तियो का प्रयोग किया है, जैसे—'अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदक भवति', 'अल्पक्लेश मरण दारिद्रयमनन्तक दु खम्', 'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति' स्वैर्दोषैर्भवति हि शकितो मनुष्य' तथा 'साहसे श्री प्रतिवसति' आदि।

लोकोक्तियो के प्रयोग से भाषा अधिक सजीव एव आकर्षक हो गयी है। कही कही तो सम्पूर्ण श्लोक ही सूक्तिमय प्राप्त होता है। शूद्रक का शब्द भण्डार विशाल था तथा सस्कृत एव प्राकृत दोनो पर उन्हे पूर्ण अधिकार था। इसी कारण 'मृच्छकटिक' में जितनी प्रकार की प्राकृतो का प्रयोग किया गया है उतना सस्कृत के अन्य किसी नाटक मे नही। 'मृच्छकटिक' मे शूद्रक ने भी यद्यपि सभी प्रमुख रसो का

१—मृच्छकटिक—१०
२—भरत नाट्यशास्त्र

प्रयोग किया है, किन्तु शृंगार (सम्भोग तथा विप्रलम्भ दोनो), करुण तथा हास्य के प्रयोग मे ही वे अधिक सफल हैं। उन्होने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा अर्थान्तरन्यास आदि अर्थालंकारो की सुन्दर योजना की है।

शूद्रक की शैली की एक विशेषता यह है कि विभिन्न पदार्थों का वर्णन उनकी विशेषताओ के साथ करते हैं, उदाहरणस्वरूप—

(अ) 'द्यूत हि नाम पुरुषस्यासिंहासन राज्यम्'

(ब) 'वीणा हि नाम असमुद्रोत्थितं रत्नम्' तथा

(स) (यज्ञोपवीत) अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणाना विभूषणम् आदि।

कही कही उन्होने च, हि, तु आदि अतिरिक्त शब्दो का प्रयोग किया है। शूद्रक को ध्वनि अर्थ के द्योतक कुछ ऐसे शब्दो का प्रयोग प्रिय है जो स्वय ही उस प्रकार की ध्वनि का अभिव्यक्त कर देते हैं, जैसे, खटखटायते, फुरफुरायते, मडमडायिष्यामि तथा घुरघुरायमाणम् आदि। शूद्रक की एक विशेषता यह भी है कि उन्होने एक पात्र के द्वारा पूर्णरूप मे कहे गये एक ही पद्य को 'मृच्छकटिक' मे दो भागो मे विभक्त कर दिया है तथा दोनो भागो के मध्य मे अन्य पात्र के सवाद का समावेश कर दिया है। उदाहरण के रूप म विट के द्वारा कहे गये—

सकामान्विष्यतेऽस्माभि काचित् स्वाधीनयौवना।
साप्रप्ष्टा शङ्कया तस्याः प्राप्तेय शीलवञ्चना॥[1]

वसन्तसेना के विषय म चारुदत्त के द्वारा कहे गये—

'अविज्ञातप्रयुक्तेन घर्षिता मम वाससा।
सवृता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव शोभते॥'[2]

इस पद्य के द्वारा नायक का भाव—

'विभवानुगता भार्या समदु खसुखो भवान्'[3] —इत्यादि

पद्य को शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' के तृतीय अक मे स्थान दिया है। अतः अध्याय परिवर्तन भी उनकी एक विशेषता है। अपनी भाषा एव शैली को परिष्कृत एव प्राजल रूप देने के लिये शूद्रक ने गद्य एव पद्य दोनो मे अनेक सशोधन करके उन्हें 'मृच्छकटिक' म प्रस्तुत किया है। इसके अनेक उदाहरण दिये जा चुके है।

'मृच्छकटिक' की भाषा एव शैली निश्चितरूप से अधिक परिष्कृत है किन्तु फिर भी इसम कुछ दोष है। 'मृच्छकटिक' मे यत्र-तत्र भाषा की शिथिलता तथा अनियमित समास-योजना प्राप्त होती है जैसे तृतीय अक म 'कुद्दालोष्टकम्' के स्थान

१—मृच्छकटिक १।४४
२—मृच्छकटिक १।५६
३—मृच्छकटिक ३।२८

पर 'लोप्टकट्टन्दा'।

शूद्रक ने अनेक स्थलो पर अपाणिनीय प्रयोग किये हैं। शूद्रक ने इहलौकिक, निष्कमत नाम्यति, निर्घनता, वेदितवान् तथा मम रोचते के सदृश दाप किये हैं। अनवीकृतत्व भी दोष है। एक ही भाव की पुनरावृत्ति शूद्रक का एक अन्य दोष हैं। *पचम अ क मे वर्षा और दुर्दिन तथा षष्ठ अ क मे स्त्रियों के अवगुणों के वर्णन से* यह स्पष्ट है—[1]। कुछ स्थलों पर शूद्रक ने वर्णन का अनावश्यक विस्तार भी किया है। इस विषय मे भट्ट महोदय का कथन है—

At a few places we do find needless elaboration and verbosity as in Sharvislak's uncalled for outburst against women description of Vasantsena's house in Act IV, and the description of the storm in Act V.

शूद्रक कही कही अभिनय सम्बन्धी निर्देश देना भी भूल गये हैं जैसे षष्ठ अक मे सोने की गाडी के लिए जिद करते हुए रोहसेन को वहलाती हुई रदनिका के द्वारा कहे हुए—'तद्यावद्विनोदयामि' से पूर्व (स्वगतम्) होना चाहिये।

किन्तु वस्तुत ये अवगुण महत्वपूर्ण नही है। शूद्रक की भाषा एव शैली सरस, स्वाभाविक, सुगम और सुबोध है। माधुर्य, प्रसाद और पदलालित्य के विशेष गुण हैं। कृत्रिमता का दोनों मे अभाव है। अपाणिनीयता आदि दोष भी विद्यमान हैं किन्तु फिर भी शूद्रक की शैली परिष्कृत है।

सवाद—सवाद अथवा कथोपकन का रूपक की कथावस्तु के विकास म अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार तो यह नाटक का एक प्रमुख तत्व ही होता है। धनजय ने नाट्यधर्म का निरीक्षण कर कथावस्तु को तीन भागो मे विभक्त किया है—

(१) सर्वश्राव्य,
(२) अश्राव्य तथा
(३) नियतश्राव्य।

सर्वश्राव्य नटा तथा सामाजिकों सबके सुनाने योग्य होती है—इसे 'प्रकाश' भी कहते हैं। अश्राव्य किसी पात्र के सुनाने योग्य नही होती, इसे 'स्वगत' अथवा 'आत्मगत' भी कहते हैं। नियतश्राव्य दो प्रकार की होती है—जनान्तिक तथा अपवारित। यह नियत लोगो के सुनाने योग्य ही होती है। अन्य पात्रों की उपस्थिति म दो पात्र परस्पर 'त्रिपताक' हस्तमुद्रा द्वारा अन्य पात्रो को बचाकर कथोपकथन

१—आर० डी० करमरकर—इन्ट्रोडक्शन टु मृच्छकटिक—२१
२—प्रिफेस २—मृच्छकटिक–१७०

हैं वहा जनान्तिक होती है । जहा मुँह को दूसरी ओर कर कोई पात्र दूसरे व्यक्ति की गुप्त बात करता है उसे अपवारित कहते हैं । इनके अतिरिक्त यदि कोई पात्र 'क्या कहते हो' आदि कह कर अन्य पात्र की अनुपस्थिति मे ही उसके कथन को बिना सुने कथनोपकथन करता है, तो आकाशभाषित होता है ।[1]

"मृच्छकटिक मे इन तीनो प्रकार के सवादो का समुचित एव पर्याप्त प्रयोग किया गया है । आकाशभाषित का प्रयोग "मृच्छकटिक" मे उपलब्ध है । उदाहरण के लिए द्वितीय अक मे सभिक के द्वारा अपमानित किए जाते हुए सवाहक को देखकर उसकी रक्षा का निश्चय करने पर दर्दुरक के कथनोपकथन मे आकाशभाषित का प्रयोग है ।[2] शूद्रक सवादकला के विशेषज्ञ हैं । सवादो की योजना अस्वाभाविक नहीं है जिससे सामाजिक ऊब जाय । उनके सवाद पात्रो के चरित्र का पूर्णरूप से परिचय देते हैं । वे कथानक के विकास मे सहायक हैं । सवाद बड़े नपे-तुले, रोचक, व्यवस्थित, प्रभावोत्पादक तथा सक्षिप्त होते हैं । सरलता, सुगमता तथा सक्षिप्तता दोनो के प्रधान गुण हैं । शूद्रक के सक्षिप्त, प्रभावोत्पादक तथा नाटकीय सवादो के विषय मे भट्ट महोदय का कथन सर्वथा उचित है ।

मानव के अन्तर्द्वन्द्व को सरल भाषा मे स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त करने की शूद्रक की क्षमता प्रशसनीय है । 'मृच्छकटिक' के पात्र अपनी योग्यता तथा सामाजिक स्थिति के अनुरूप ही विभिन्न प्रकार की प्राकृत भाषाओं अथवा सस्कृत मे कथोपकथन करते हैं ।

पाश्चात्य आलोचक "आकाशभाषित" को मोनोलोग तथा 'स्वगत' को सालीलुकी' कह कर प्रयोग करते हैं । शूद्रक ने दोनो का ही प्रयोग किया है । शूद्रक ने प्राय बड़े-बड़े सवादो को बचाने का ही प्रयत्न किया है । शूद्रक के 'स्वगत' सवादो के विषय मे भट्ट महोदय का कथन है कि यद्यपि शूद्रक ने 'स्वगत' का अनेक स्थलो पर प्रयोग किया है किन्तु उन्हे विस्तृत नही बनाया है । फिर भी कुछ स्थानो पर लम्बे 'स्वगत' भी दृष्टिगोचर होते हैं ।[3] शूद्रक ने कुछ लम्बे सवादो को रोचक बनाने के लिए उनके मध्य मे अभिनय सम्बन्धी कुछ निर्देश दिये हैं । उदाहरण मे तृतीय अक मे शर्विलक के 'स्वगत' के मध्य चोर्यकला सम्बन्धी निर्देशो के विषय मे भट्ट महोदय कहते हैं —

As regards the author's style, his flare for simplicity and his

१–दशरूपक ।।६१–६७ ।
२–मृच्छकटिक पृ०–११७ ।
३–क्रिटिकल स्टडी ऑफ मृच्छकटिक, पत्र—१७०

power of Crisp, effective and dramatic dialogue are unmistakable.[1]

शूद्रक के सवादो की यद्यपि कुछ व्यक्तिगत विशेषताएँ हैं किन्तु वे समानरूप से सरल, सुबोध, स्वाभाविक, रोचक, प्रभावोत्पादक, व्यवस्थित, एव सक्षिप्त हैं[2]। कथोपकथन नाटक की जान होते हैं। शूद्रक इस कला में अधिक निपुण हैं। उनके सवाद अत्यन्त सजीव हैं। छोटे-छोटे उत्तर-प्रत्युत्तर स्वाभाविकता तो प्रदर्शित करते हैं। व्यग तथा हास्य उन्हे अधिक आकर्षक बना देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी नाटक के नही, अपितु वास्तविक जीवन के वार्तालाप हैं।

अलकार-वैदर्भी रीति का अनुगमन करने के कारण शूद्रक की अलकार-योजना सर्वत्र सरल और स्वाभाविक है। 'मृच्छकटिक मे स्वाभाविक रूप से अनेक अलकारो का प्रयोग हुआ है किन्तु शैली मे कृत्रिमता न होने के कारण कही भी अलकारो को बलपूर्वक अस्वाभाविक रूप मे प्रयुक्त नही किया गया है।

प्रकरण मे प्राय. उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, आदि सरल एव प्रचलित अलकारो का ही आडम्बरहीन प्रयोग किया गया है। अर्थ-सौन्दर्य की वृद्धि के लिए ये अलकार अनायास ही आ गये हैं। 'प्रतिमा नाटक' मे उपमा के प्रयोग का यह सुन्दर उदाहरण है —

'सूर्य इव गतो राम. सूर्य दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगत: ।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥[3]

'मृच्छकटिक' मे वसन्तसेना का विट सघन मेघो के मध्य मे स्थित विद्युत् की उपमा ऐरावत के वक्ष पर खिंची हुई सुवर्णरेखा पर्वत के शिखर पर स्थित शुभ्र पताका तथा इन्द्र के भवन मे जलती दीपिका से देता है।[4] शूद्रक ने प्रस्तुत पद्य म जो प्रकरण मे प्राप्त है, उपमा एव उत्प्रेक्षा दोनो का समान रूप से प्रयोग किया है।

"लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जन नभ ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलता गता ॥[5]

चारुदत्त के द्वारा प्रदत्त वस्त्र को ओढ कर वसन्तसेना शरत्कालीन मेघ से आच्छन्न चन्द्रमा की रेखा के सदृश प्रतीत होती है।[6] साम्यमूलक इन अलकारो के अतिरिक्त भी दोनो प्रकरण मे अनेक अलकारो का प्रयोग किया गया है। शूद्रक

१–इन्टरोडक्शन टु दि स्टडी आफ मृच्छकटिक, पेज—११०—१११।
२–इन्टरोडक्सन टु दि स्टडी आफ मृच्छकटिक, पेज—१११
३–प्रतिमा नाटक, २।७।
४–मृच्छकटिक—५।३३।
५–मृच्छकटिक—१।३४।
६–मृच्छकटिक—१।५४।

अलकारो के प्रयोग मे अधिक दक्ष हैं । उन्हे अन्योक्ति, अप्रस्तुत-प्रशसा, अर्थान्तरन्यास समासोक्ति तथा दृष्टान्त अलकार विशेष प्रिय हैं । 'मृच्छकटिक' में इन सभी अलकारो का बडा सुन्दर प्रयोग किया है । चारुदत्त के घर से वसन्तसेना के आभूषण चुराने के पश्चात् वास्तविकता का ज्ञान होने पर शर्विलक प्रस्तुत पद्य मे अन्योक्ति का कैसा सुन्दर प्रयोग करता है :—

"छायार्थं ग्रीष्मसन्तप्तो यामेवाह् समाश्रितः ।
अजानता मया सैव पत्रैः शाखा वियोजिता ॥"[1]

"ग्रीष्म से सन्तप्त होकर मैंने छाया के लिए जिस शाखा का आश्रय लिया (मदनिका को प्राप्त करने वसन्तसेना के समीप आया) अज्ञानता से मैंने उसी शाखा के पत्तो को काट दिया (अलकारो को चुरा लिया) अनुपस्थित चारुदत्त के चरित्र की प्रशसा करते हुए वसन्तसेना ने अप्रस्तुत-प्रशसा का यहाँ बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है :—

"खलचरित–निकृष्ट ! जातदोषः कथमिह् मा परिलोभसे धनेन ।
सुचरितचरित विशुद्धदेह् न हि कमल मधुपाः परित्यजन्ति ।"[2]

"हे खल ! निकृष्ट चरित्र तथा दोषो को उत्पन्न करने वाले । (शकार) मुझे इस धन से क्यो लुभाना चाहते हो । सुन्दर चरित्र और निर्मल आकृति वाले कमल को भौंरे नही त्यागते ।"

न्यायालय का मनोहर वर्णन वर्णन करते हुए नवम अक मे चारुदत्त ने साङ्गरूपक अलकार का प्रयोग किया है —

"चिन्तासक्त मन्त्री ही जल है, दूत लहरें और शख हैं । गुप्तचर मगर और और घड़ियाल है, हाथी, घोड़े और हिंसक पशु यहाँ है । वादी प्रतिवादी सुन्दर ककपक्षी हैं और कायस्थ (लिखक) सर्प हैं नीतिरूपी भग्न-तट से युक्त न्यायालय हिंसक आचरणो से समुद्र के समान व्यवहार कर रहा है ।'[3]

प्रकरणों मे शब्दालकारो की अपेक्षा अर्थालकारो का अधिक और सुन्दर प्रयोग है । यत्र–तत्र शब्दालकार भी दृष्टिगोचर होते हैं । "मृच्छकटिक" मे प्रतिग्रह शब्द का कैसा श्लेषपूर्ण प्रयोग किया है । चारुदत्त चाण्डालो से कहता है–"इच्छाम्यहं भवन्त. सकाशात् प्रतिग्रहम् कर्तुम् । अर्थात मैं आपसे अनुग्रह प्राप्त करना चाहता हूँ । किन्तु चाण्डाल प्रतिग्रह का अर्थ दमन समझते हैं अतः आश्चर्य से चारुदत्त से पूछते है कि क्या हम (चाण्डालो) के हाथ से दान लेना चाहते हो—

1–मृच्छकटिक, ४।१८ ।
2–मृच्छकटिक, ८।१२ ।
3–मृच्छकटिक, ९।१४ ।

"किमस्माक हस्तात् प्रतिग्रह करोषि" ।[1] "मृच्छकटिक" मे कम्पसे नानुकम्पसे" ।[2] मे अनुप्रास का सुन्दर प्रयोग है ।

"मृच्छकटिक" पूर्ण है । उसमें दस अंक हैं । उसका आकार अधिक विशाल है । उसकी भाषा एव शैली भी अधिक परिष्कृत है ।' 'मृच्छकटिक' मे अधिक अलकारो का सुन्दर और प्रशसनीय प्रयोग किया गया है ।

छन्द

शूद्रक ने अपनी रचनाओं मे सरल एव प्रवाहपूर्ण भाषा मे विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है । इन छन्दो के प्रयोग पर विचार करने से ज्ञात होता है कि पात्रो एव घटनाओं की स्थिति के अनुसार रस-विशेष को अभिव्यक्त करने मे ये पूर्णत उपयुक्त हैं । सस्कृत–छन्दो के अतिरिक्त प्राकृत-छन्दो का भी कवि ने बडा सफल प्रयोग किया है ।

शूद्रक ने अपने 'मृच्छकटिक' मे प्राकृत–छन्दो के अतिरिक्त २१ सस्कृत-छन्दो का प्रयोग किया है । शूद्रक के छन्द-प्रयोग के विषय म कीथ का विचार है कि मृच्छकटिक के रचयिता ने छन्दो के प्रयोग मे बहुत कौशल दिखाया है । स्वभावत. उनका प्रिय छन्द श्लोक है । यह छन्द उनकी क्षिप्र शैली के उपयुक्त है और कथोपकथन की प्रगति को आगे बढाने के लिए अनुकूल पडता है ।[3]

"मृच्छकटिक" के दस अंको मे क्रमश. ५८, २०, ३०, ३२, ५२, २७, ९, ४७, ४३ तथा ६० पद्य हैं । इस प्रकार कुल ३७८ पद्य हैं । जिनमें २७५ सस्कृत के तथा १०३ प्राकृत के हैं । सस्कृत के पद्यों मे २१ छन्दो का प्रयोग किया गया है । कुछ प्रमुख छन्दों के पद्यो की सख्या इस प्रकार है—श्लोक ८३, वसन्ततिलका ४०, शार्दूलविक्रीडित ३२, उपजाति २२, आर्या २१ पुष्पिताग्रा १४, मालिनी १३, प्रहर्षिणी १०, वशस्थ १०, इन्द्रवज्रा ६, उपेन्द्रवज्रा ३, शिखरिणी ५, स्रग्धरा ५, मालभारिणी २, हरिणी २, औपच्छन्दसिक २, गीति १, प्रमिताक्षरा १, विद्युन्माला १, वैश्वदेवी १ तथा सुमधुरा १ । प्राकृत पद्यो के छन्दो में पर्याप्त विविधता है । केवल आर्या मे ही ५३ पद्य हैं । शेष ५० प्राकृत पद्य अन्य छन्दो म हैं ।

अत यह स्पष्ट है कि यह प्रकरण छन्दो के प्रयोग मे पर्याप्त है । सबसे अधिक प्रयोग श्लोक (अनुष्टुप्) का किया गया है, जो प्रकरण की सरल एव स्वाभाविक शैली का प्रतीक है । श्लोक के पश्चात् जो छन्द शूद्रक को प्रिय हैं तथा जिनका प्रकरण मे अधिक प्रयोग किया गया है वे हैं क्रमश वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, उपजाति तथा मालिनी आदि ।

१—मृच्छकटिक पृ० ५३२

२—मृच्छकटिक ४।८

३—सस्कृत नाटक पृ०—१४१ ।

रचना-विधान

संस्कृत के रूपकों की रचना प्रायः नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार ही की जाती है अतः उनका रचना विधान भी प्रायः समान ही होता है। रंगमंच पर नाटक को प्रस्तुत करने से पूर्व विघ्नों की शान्ति के लिए नान्दीपाठ अनिवार्य होता है। नान्दी से देवता प्रसन्न होते हैं। नान्दी में आठ अथवा बारह पद होते हैं। इसमें देव, द्विज तथा नृप आदि से आशीर्वाद प्राप्त करने की प्रार्थना की जाती है। नान्दी पाठ सूत्रधार करता है। कुछ नाटकों में वह नान्दीपाठ के पश्चात् मंच से चला जाता है तथा स्थापक आकर नाटककार तथा उसकी कृति आदि का परिचय देता है।[1]

"मृच्छकटिक" के प्रारम्भ में आठ पदों की नान्दी है। इसमें आरम्भ के दो पद्य हैं। यह पत्रावली नामक नान्दी है। प्रारम्भ में स्पष्ट निर्देश है—"नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः"। "मृच्छकटिक" में सूत्रधार ही कवि एवं उसकी कृति का परिचय देने के कारण स्थापक का कार्य करता है। उसका यह व्यापार अधिकांश रूप में संस्कृत में होता है। इसे भारतीवृत्ति कहते हैं जिसके प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख ये चार अंग होते हैं। प्ररोचना में कवि एवं उसकी कृति की प्रशंसा तथा काव्यार्थ की सूचना होती है। "मृच्छकटिक" में नान्दी के पश्चात् "एतत्कविः किल" से लेकर "चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः" तक प्ररोचना है। आमुख को प्रस्तावना भी कहा जाता है। इसमें सूत्रधार नटी, पारिपार्श्विक अथवा विदूषक के साथ वार्तालाप कर विचित्र उक्तियों द्वारा कथावस्तु का संकेत करता है तथा किसी प्रधान पात्र के प्रवेश की सूचना देता है। "मृच्छकटिक में सूत्रधार नटी से वार्तालाप करके कथावस्तु की ओर संकेत कर विदूषक मैत्रेय के प्रवेश की सूचना देता है। धनंजय के अनुसार प्रस्तावना तीन प्रकार की तथा विश्वनाथ कविराज के अनुसार पाँच प्रकार की होती है यहाँ प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना है। मैत्रेय के मंच पर प्रवेश के पूर्व प्रस्तावना समाप्त हो जाती है। "मृच्छकटिक" में इसका नाम "आमुख" है।

आमुख अथवा स्थापना की समाप्ति के पश्चात् मुख्य कथा वस्तु प्रारम्भ होती है। यह दृश्य एवं सूच्य दो प्रकार की होती है। दृश्य का अभिनय रंगमंच पर किया जाता है। यह अंकों में विभक्त होती है। प्रत्येक अंक में एक प्रयोजन के लिए प्रायः एक ही दिन में किए गए कार्यों का समावेश होता है 'मृच्छकटिक' में कुछ १० अंक हैं सूच्य कथा वस्तु का मंच पर अभिनय नहीं होता किन्तु कथा-प्रवाह का ज्ञान आवश्यक होने के कारण अर्थोपक्षेपकों के द्वारा इसकी सूचना मात्र दी जाती है। अर्थोपक्षेपक पाँच होते हैं—विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकावतार तथा अंकास्य।

1—सा० दर्पण, ६।२१-२६।

'मृच्छकटिक' में केवल चूलिका का ही प्रयोग हुआ है अन्य चार का नहीं। चूलिका में कथावस्तु की सूचना नपथ्य में स्थित किसी पात्र के द्वारा दी जाती है।

पताका स्थानकों का संस्कृत के रूपकों में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसमें समान वृत्त अथवा समान विशेषण के द्वारा भावी वस्तु की अन्योक्तिमय सूचना होती है।[1] इसमें कथोपकथन के कुछ ऐसे वाक्य अथवा वाक्यार्थ होते हैं जिनका प्रकटरूप में अन्य अर्थ होता है, किन्तु वे अप्रकट रूप से भविष्य में निश्चित-रूप से होने वाली घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। शूद्रक ने पताका स्थानकों का अपनी कृतियों में समुचित प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए 'मृच्छकटिक' के तृतीय अंक में वसन्तसेना के द्वारा चारुदत्त के समीप न्यास रूप में रखे गये सुवर्णभाण्ड को जब चारुदत्त का चेट विदूषक को देता है तो वह कहता है—

'अद्याप्येतत् तिष्ठति ? किमत्र उज्जयिन्या चौरोऽपि नास्ति ? य एत दास्याः पुत्र निद्राचौरं नापहरति।'[2]— यहां मैत्रेय का यह कथन भविष्य में होने वाली इस सुवर्णभाण्ड की चोरी की ओर निश्चितरूप से संकेत करता है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी पताका स्थानकों का प्रयोग किया गया है।

नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार रूपक के अन्त में भरतवाक्य होना आव-श्यक है। वस्तुत. यह प्रशस्ति अथवा मंगलपाठ होता है। इसका पाठ कोई प्रधान पात्र करता है। इसमें आश्रयदाता राजा के कल्याण एवं निर्विघ्न राज्य संचालन की अथवा समस्त प्रजाजनों के कल्याण की कामना होती है। 'मृच्छकटिक' के भरतवाक्य में यह कामना की गई है कि गौएं प्रचुर दुग्धशालिनी हों, पृथिवी समस्त धान्यों से युक्त हो, मेघ समय पर वर्षा करें, समस्त जनों के मन को आनन्द देने वाली वायु बहे, सभी जीव प्रसन्न हों, ब्राह्मण उत्तम चरित्र वाले हों तथा शत्रुओं का नाश करने वाले ऐश्वर्यशाली और धर्मात्मा राजा पृथ्वी का पालन करें—[3]।

सुभाषित

सुभाषितों अथवा सूक्तियों से भाषा सजीव हो जाती है। शूद्रक ने अपनी रचनाओं में अनेक सुभाषितों का प्रयोग किया है जो संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि हैं। ये सुभाषित गद्य तथा पद्य दोनों में समान रूप से प्राप्त हैं। यद्यपि 'मृच्छकटिक' में अनेक बड़े सुन्दर सुभाषित हैं किन्तु उनमें से कुछ तो भाषा तथा भाव दोनों दृष्टि से बिल्कुल समान ही हैं, जैसे —

मृच्छकटिक

१— सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते।

१—दशरूपक, १।। १४
२—मृच्छकटिक, पृ०—१५४।
३—मृच्छकटिक, १०। ६०।

२– भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।
३– न पुष्पमोषमर्हन्ति उद्यानलता।
४– दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमना खलु गणिका लोके अवचनीया भवति।
५– किं हीनकुसुम सहकारपादप मधुकर्य पुन सेवन्ते।
६– विश्वस्तेष्वु च व्रन्चनापरिभवश्चौर्य न शौर्य हि तत्।
७– स्वाधीना वचनीयतापि हि वर बद्धो न सेवान्जलि।
८– शङ्० कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता।
९– साहसे श्री प्रतिवसति।
१०– स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्य।

इनके अतिरिक्त भी प्रकरण मे असमान रूप से प्राप्त होने वाले अनेक सुभाषित हैं जिनमे से कुछ इस प्रकार हैं –

मृच्छकटिक

१– सर्व शून्य दरिद्रस्य।
२–अल्पक्लेश मरण दारिद्र्यमनन्तक दु खम्।
३– छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।
४– वेश्या श्मशानसुमना इववर्जनीया।
५– न कालमपेक्षते स्नेह।
६– कामो वाम।

अत स्पष्ट है कि शूद्रक सुभाषितो के प्रयोग मे अत्यन्त कुशल हैं।

शूद्रक का युग एवं तत्कालीन देश की दशा

सामाजिक दशा

वर्ण–व्यवस्था– मृच्छकटिक म उपलब्ध वर्णनों के आधार पर निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि उस युग म वर्णव्यवस्था का समाज मे अत्यधिक प्रभाव था। सम्पूर्ण भारतीय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र इन चार वर्णों मे विभक्त था। प्रथम तीन वर्णो का अन्तिम वर्ण शूद्र की अपेक्षा समाज म अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त था। उनका कार्य, अध्ययन, अध्यापन तथा यजन याजन था। अत. सम्भवत अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता, चरित्र की उत्तमता एव ज्ञान की वरीयता के कारण ही वे समाज म सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे एव अन्य वर्णो की अपेक्षा उन्हे कुछ विशेष सुविधायें प्राप्त थी। प्रकरण मे द्वितीय अक म जब मदनिका वसन्तसेना से यह प्रश्न करती है कि क्या वह विद्याविशेष से अलकृत किसी ब्राह्मण युवक से प्रेम करती है तो वसन्तसेना उत्तर देती है कि ब्राह्मण तो पूजनीय होते हैं—

'पूजनीयो मे ब्राह्मणजन'–[1]—

१ –मृच्छकटिक, पृ०-६७

ब्राह्मण तथा गौ का स्थान समान था—'अनतिक्रमणीया भगवती गोकम्य ब्राह्मण-कम्य च' ।—[1]— । गायो के सदृश ही ब्राह्मण भी अवध्य थे । किसी पाप कर्म के करने पर भी ब्राह्मणो को प्राणदण्ड नही दिया जाता था—[2]— । अनेक सामाजिक एव धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अवसरो पर ब्राह्मणो को निमन्त्रित करके स्वादिष्ट भोजन कराया जाता तथा श्रद्धा एव आर्थिक स्थिति के अनुसार उन्हे दान-दक्षिणा भी दी जाती थी, किन्तु कुछ ब्राह्मणो की आर्थिक स्थिति अच्छी थी, अतः वे ऐसे निमन्त्रणो को तथा उपहारो को अस्वीकार कर देते थे । प्रकरण के प्रथम अक के प्रारम्भ मे सूत्रधार के द्वारा भोजन एव दक्षिणा के लिए निमन्त्रण दिय जाने पर विदूषक मत्रेय उसे अस्वीकार कर देता है—

'भो अन्य ब्राह्मणमुपनिमन्त्रयतु भवान्, व्यापृतो इदानीमहम—[3]— प्राय ब्राह्मण विद्वान थे तथा उन्हे वैदिक ज्ञान एव कर्मकाण्ड मे विशेप कुशलता प्राप्त थी । कुछ धनिक व्यक्ति उन्हे पूजा के निमित्त, वैदिक मन्त्रो के उच्चारण के लिये अथवा धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के लिए अपने यहां नियुक्ति भी करते थे । वसन्तसेना के यहा भी पूजा के निमित्त ब्राह्मण की नियुक्ति थी—[4]— । शूद्रो को वेदपाठ करने की अनुमति नही थी । 'मृच्छकटिक' के नवम अङ्क मे अधिकरणिक शकार से कहता है—

'वेदार्थान् प्राकृतस्त्व वदसि न च ते जिह्वा निपतिता ।[5]।

सम्भवत कायस्थो को समाज म आदरणीय स्थान प्राप्त नही था । उनकी तुलना सर्पों से की जाती थी—'कायस्थसर्पास्पदम्' । सभी ब्राह्मण विद्वान नही होते थे । अत कुछ ब्राह्मण चोरी आदि निन्दनीय कार्य करते थे । शर्विलक एक चतुर्वेदी ब्राह्मण होते हुए भी चोरी करता है ।

व्यवसाय

ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय विभिन्न वर्णों के व्यक्ति अपनी रुचि एव स्थिति के अनुसार विभिन्न व्यवसायों को अपना सकते थे । चारुदत्त एव उसके पिता तथा पितामह भी जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी व्यवसाय से वैश्य थे । वह स्वय और उसके पूर्वज सार्थवाह थे । वीरक तथा चन्दनक जो क्रमश नाई तथा चमार हैं, उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर हैं । वे सेनापति तथा वलपति हैं । अत ज्ञात होता है कि जाति व्यवस्था अधिक कठोर नहीं थी । जाति व्यक्ति के व्यवसाय को निश्चित नही करती थी । नीच जाति म उत्पन्न होकर भी अपने व्यक्तिगत गुणो एव योग्यता

१—मृच्छकटिक, पृ०—१६८
२—मृच्छकटिक, पृ०—९।३९
३—मृच्छकटिक, पृ०—१९
४—मृच्छकटिक, पृ०—९५
५—मृच्छकटिक ९।२१

के आधार पर कोई भी व्यक्ति उच्चतम पद को भी प्राप्त कर सकता था। वीर तथा चन्दनक एवं आर्यक, जो गोपाल-पुत्र होते हुए भी राजा बन जाता है, इस बात के प्रमाण हैं। प्राय व्यक्ति अपने पैतृक व्यवसाय का ही अनुकरण करते थे, किन्तु यह कोई निश्चित नियम नही था। छुआछूत का प्रचलन प्राय नही था तथा कुछ जातियाँ ऐसी भी थी, जिनमे विद्वान ब्राह्मणो के साथ ही अधम और मूर्ख शूद्र भी स्नान करते थे—

वाप्या स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः।[1]

उस समय समाज का स्वरूप कुछ छिन्न-भिन्न सा हो रहा था। जाति को जन्म से माना जाने लगा था तथा पुरुषो मे अपना जातिगत अभिमान भी उत्पन्न हो गया था, जैसा कि वीरक एवं चन्दनक के विवाद से स्पष्ट है। जाति की अपेक्षा मानव-गुणो को वरीयता प्राप्त थी। 'मृच्छकटिक' के दशम अङ्क मे चाण्डालो की यह घोषणा इसे प्रमाणित करती है—

'न खलु वयं चाण्डालाश्चाण्डालकुले जातपूर्वा अपि।
येऽभिभवन्ति साधु ते पापास्ते च चाण्डालाः॥'[2]

समाज के सम्माननीय पुरुषो तथा विशेष रूप से ब्राह्मण वर्ग के प्रति अपने आदरभाव को प्रकट करने के लिए उनके नाम के पूर्व किसी आदरसूचक शब्द का प्रयोग करना आवश्यक था। चारुदत्त के नाम के पूर्व ऐसे शब्द का प्रयोग न करने पर एक चाण्डाल दूसरे की भर्त्सना करता है—

'अरे! आर्य चारुदत्त निरुपपदेन नाम्ना आलपसि'

निवास, मार्ग तथा प्रकाश-व्यवस्था दोनो प्रकरणो मे उपलब्ध वर्णनो से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय समान जाति के अथवा समान व्यवसाय करने वाले व्यक्तियो के निवास के लिए उनकी जाति अथवा व्यवसाय के आधार पर अलग अलग मोहल्ले होते थे। मृच्छकटिक' के द्वितीय अङ्क मे चारुदत्त के निवास स्थान का परिचय देते हुए संवाहक तथा 'चारुदत्त' के चतुर्थ अङ्क मे सज्जलक कहता है कि वह सेठो के मोहल्ले मे रहता है—

'स खलु 'श्रेष्ठिचत्वरे' प्रतिवसति'[3]

आधुनिक युग की भाँति उस समय भी नगरो मे बड़े-बड़े 'राजमार्ग होते थे, किन्तु उन पर प्रकाश की उचित व्यवस्था नही थी, अत रात्रि मे प्राय अन्धकार ही

१–मृच्छकटिक, पृ० १।३२
२–मृच्छकटिक १०।२२
३–मृच्छकटिक पृ० १२९

रहता था। कुछ विशेष महत्वपूर्ण स्थानों पर राजमार्गप्रदीप की व्यवस्था थी। रात्रि में प्रायः चोरी आदि अनर्थ हुआ करते थे, अतः रक्षक इधर-उधर घूमते रहते थे—

राजमार्गो हि शून्योऽयं रक्षिणः संचरन्ति च।
वञ्चना परिहर्तव्या बहुदोषा हि शर्वरी ॥[१]

किन्तु फिर भी रात्रि के अन्धकार में गणिका, विट, चेट आदि घूमते रहते थे, जिससे दुर्बल पुरुषों को रात्रि में घर से बाहर निकलने में किसी भी अनिष्ट का भय लगा रहता था। 'मृच्छकटिक' के प्रथम अङ्क में विदूषक रात्रि में घर से बाहर नहीं जाना चाहता।[२] ऐसा प्रतीत होता है कि मार्गों पर सुरक्षा की उचित व्यवस्था नहीं थी, अतः कभी-कभी लोग सड़कों पर आपस में खुले आम मारपीट भी करते थे जैसा कि 'मृच्छकटिक' के द्वितीय अङ्क में संवाहक, माथुर और दर्दुरक की मारपीट से स्पष्ट है।

नारी का स्थान

समाज में स्त्रियों के दो विभाग थे—प्रकाशनारी (गणिका) तथा अप्रकाश नारी (वधू अथवा कुल-वधू)। प्रकाशनारियाँ प्रायः अत्यधिक सम्पत्ति अर्जित कर लेती थी तथा उनके धन-धान्य एवं समृद्धिपूर्ण विशाल भवन होते थे जो स्वर्ग के सदृश प्रतीत होते थे। उनकी रत्नजटिल भित्तियाँ एवं स्वर्णनिर्मित किवाड़ होते थे। विभिन्न प्रकार के पुष्पों एवं फलों के वृक्षों से युक्त उनके विशाल उद्यान होते थे। वे हाथियों को भी रखती थीं। 'मृच्छकटिक' में चतुर्थ अंक में विदूषक के द्वारा किये गये वसन्तसेना के भवन के वर्णन से यह स्पष्ट है। गणिका प्रायः मनुष्यों की अपेक्षा उनके धन से ही प्रेम करती थी और उनका समस्त धन प्राप्त हो जाने पर वे उन्हें अपमानित कर अपने भवन से निकाल देती थी......'अपमानित निर्धन का मुका इव गणिका'। मनुष्य जाति में गणिकाओं और वेश्याओं के प्रति विशेष आकर्षण होता था और एक बार उनकी ओर आकृष्ट होकर फिर उनसे निराकरण प्राप्त करना बड़ा कठिन होता था। मैत्रेय अपने मित्र चारुदत्त को सत्परामर्श देते हुए उचित ही कहता है—

'गणिका नाम पादुकान्तरप्रविष्टेव लेष्टुका दुःखेन पुनर्निराक्रियते।'[३]

वे एक सार्वजनिक सम्पत्ति के सदृश थी जिनका उपभोग कोई भी व्यक्ति धन देकर कर सकता था।[४] अतुल धन-सम्पत्ति की स्वामिनी होते हुये भी समाज में उनका स्थान कुलवधू की अपेक्षा बहुत नीचा था। वे स्वयं और न उनकी कोई वस्तु ही

१–मृच्छकटिक १।५८
२–मृच्छकटिक, पृ०–३४
३–मृच्छकटिक, पृ०–२६३
४–मृच्छकटिक, ४।९

कुलवधुओ के निवासस्थान म प्रवेश कर सकती थी । वसन्तसेना इस विषय म चारु-दत्त से ठीक ही कहती है-- मन्दभागिनी खल्वहं तवाभ्यन्तरस्य'। प्राय सार्वजनिक स्थानो पर कुछ दुष्ट लोग उनका पीछा भी करते थे और उनका अपमान करते थे। वे विभिन्न कलाओ म और विशेषरूप से नृत्य, वाद्य तथा गायन मे निपुण तथा अनेक व्यक्तियो के सम्पर्क मे आने के कारण उन्हे ठगने मे भी बडी चतुर होती थी।[1]

किन्तु कुछ गणिकाए सामान्य गणिकाओं की भाँति धन से आकृष्ट नहीं होती थी। वे धन की अपेक्षा गुणो को अधिक महत्व देती थी। वसन्तसेना अपने विषय मे मदनिका से स्पष्टरूप से कहती है—'गुण खल्वनुरागस्य कारण न पुनर्बलात्कार.'। वसन्तसेना ने दस सहस्र सुवर्ण मुद्राओ को भेजन वाले शकार के प्रणय प्रस्ताव को दृढता से ठुकरा कर अपनी माता से स्पष्ट कह दिया कि यदि मुझे जीवित देखना चाहती हो तो इस प्रकार का आदेश कभी मत देना। मैं तभी अलकार धारण करूँगी जब चारुदत्त के समीप अभिसार के लिए जाऊँगी—

'यदि मा जीवन्तीमिच्छसि तदा एव न पुनरह मात्राज्ञापयितव्या।'

प्रकाशनारी विवाह करके कुलवधू के सम्माननीय पद को भी प्राप्त कर सकती थी। यदि किसी गणिका की दासी भी विवाह कर लेती थी तो वह अपनी स्वामिनी की अपेक्षा अधिक आदरणीय स्थान को प्राप्त कर लेती थी जैसा कि शर्विलक अथवा सज्जलक से विवाह कर लेने के उपरान्त वसन्तसेना की दासी मदनिका की स्थिति से स्पष्ट है। वसन्तसेना उससे कहती है--

'साम्प्रतत्वमेव वन्दनीया सवृत्ता'—[2]

कभी-कभी राजा भी प्रकाशनारी के गुणो से प्रसन्न होकर उसे कुलवधू का पद प्रदान करता था तब वह अपनी इच्छानुसार अपने प्रिय व्यक्ति से विवाह कर सकती थी। वसन्तसेना के गुणो से प्रसन्न होकर राजा आर्यक ने भी उसे वधू' प प्रदान किया था।[3]

दूसरी प्रकार की न वधू अथवा कुलवधू अपेक्षाकृत अधिक सयत होती थी तथा उसका जीवन अधिक पवित्र होता था। उसका स्थान अपने पति के गृह में होता था तथा यदि वह कहीं बाहर जाती थी तो मुख पर अवगुण्ठन डाल कर। आर्थिक दृष्टि से पूर्णत अपने अपने पति पर आश्रित रहती थी। उसके पास अपना निजी स्त्रीधन भी होता था जो प्राय उसे अपने मातृगृह से प्राप्त होता था। वह उसका

१-मृच्छकटिक पृ० १।४२
२-मृच्छकटिक पृ०-१९४
३-मृच्छकटिक, २२३
४-मृच्छकटि ५९८

अपनी इच्छानुसार उपयोग कर सकती थी। चारुदत्त की पत्नी घूता के समीप भी क बहुमूल्य रत्नावली के रूप मे ऐसा ही स्त्री धन था। किन्तु वस्तुतः कुलवधू का ति ही अमूल्य आभूषण होता था। घूता बड़े अभिमान से कहती है—'आर्यपुत्र एव मामरण विशेष इति जानातु भवती—।'[1] वह अपने पति की शारीरिक सुरक्षा एव ख का तो निस्सन्देह अत्यधिक ध्यान रखती थी किन्तु इससे भी अधिक वह उसके रित्र की पवित्रता की चिन्ता करती थी। चारुदत्त के चरित्र एवं यश की रक्षा लिए घूता अपना सर्वस्व भी बलिदान करने को प्रस्तुत है— 'वरमिदानो स शरीण परिक्षतो न पुनश्चारित्रेण'[2] वह अपने पति के विषय मे किसी भी अशुभ समाार की सुनने की अपेक्षा अपनी मृत्यु को अधिक श्रेयस्कर समझती थी। पुत्र-वात्सय की अपेक्षा वह अपने पति प्रेम को अधिक महत्व देती थी। घूता भी अपने पुत्र ोहसेन के भविष्य की ओर उसकी प्रार्थना की चिन्ता न करते हुए चारुदत्त की मृत्यु ा समाचार सुनने से पहले सती हो जाना चाहती है। कुल वधू सुख और दुःख ोनों मे अपने पति का दृढ़तापूर्वक साथ देती थी। अतः उसका समाज मे बड़ा ादरणीय स्थान था और यही कारण है कि कुछ गणिकायें भी कुल वधू के पवित्र ाद को प्राप्त करने को उत्सुक रहती थी और इसके लिए वे सर्वस्व भी बलिदान र सकती थी। वह वस्तुतः उनके लिए एक दुर्लभ पद था।

गणिका तथा कुलवधू इन दो श्रेणियो के अतिरिक्त स्त्री जाति की एक तीसरी श्रेणी भी थी—भुजिष्या। भुजिष्या वस्तुतः दासियाँ होती थी जो अपने स्वामी अथवा स्वामिनी की सेवा करती थी और पूर्णतः उन्ही पर आश्रित रहती थी। समाज मे उनका स्थान बहुत नीचा था, किन्तु उनके साथ परिवार के एक सदस्य के समान ही बड़ा कोमल व्यवहार किया जाता था। स्वामी अथवा स्वामिनी को धन देकर उन्हे दासता से मुक्त भी किया जा सकता था। दासता से स्वतन्त्र होकर वे विवाह भी कर सकती थी और कुलवधू के पवित्र पद को भी प्राप्त कर सकती थी, जिस प्रकार मदनिका वसन्तसेना की दासता से मुक्त होकर शर्विलक से विवाह कर कुलवधू बन जाती है।

सामान्यतया नारियों को समाज मे आदरणीय स्थान प्राप्त था किन्तु नीच कोटि के कुछ क्षुद्र और स्वार्थी व्यक्ति उन्हे सन्देह की दृष्टि से देखते थे और उन पर विश्वास नही करते थे। वेश्याओं को श्मशान के पुष्प के समान त्याज्य समझा जाता था।[3]

पर्दा प्रथा

यद्यपि पर्दा प्रथा उस समय नही थी जैसा कि धूता के बिना पर्दे के हो

१-मृच्छकटिक—पृ० ३१७। २-मृच्छकटिक पृ० १८३।
३-मृच्छकटिक ४।१२ तथा ४।१४।

दशम अंक मे सबके समक्ष आने से सिद्ध होता है, किन्तु साधारणतया लज्जाशीलता तथा शालीनता के कारण वे पुरुषो की उपस्थिति मे स्वय बाहर नहीं आती थी।

विवाह—विवाह का भारतीय जीवन मे अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यह सोलह सस्कारो मे से एक अत्यधिक महत्वपूर्ण सस्कार है। मृच्छकटिक मे उपलब्ध वर्णनो स तत्कालीन विवाह-पद्धति पर भी कुछ प्रकाश पडता है। प्राय. उस समय सवर्ण विवाह होते थे किन्तु असवर्ण स्त्री से भी विवाह करने पर प्रतिबन्ध नही था। पुरुष कई विवाह कर सकते थे। ब्राह्मण वेश्या से अथवा उसकी दासी के साथ भी विवाह कर सकता था। चारुदत्त का वसन्तसेना से तथा शर्विलक का मदनिका से विवाह इस बात का प्रमाण है। गणिकाये भी अपना पेशा छोड कर कुलवधू हो सकती थी। सम्भवत रखेली की प्रथा भी प्रचलित थी। शकार की बहन राजा पालक की रखेली थी। स्त्रियो मे सती की प्रथा भी प्रचलित थी। 'मृच्छकटिक' मे प्रतिलोम विवाह का वर्णन प्राप्त नही होता। स्त्रिया प्राय: पतिव्रता एव स्वामिभक्त होती थी। दुर्बल व्यक्तियो की पत्नियो के अपहरण का कभी-कभी भय रहता था-'ज्योत्सना दुर्बलभर्तृकेव वनिता प्रोत्सार्य मेघैर्हृता।'[1]

मित्र का स्थान-उस समय समाज मे सच्चे मित्रो एव उनकी प्रगाढ मित्रता को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता था। आपत्तियो मे फँसे हुए मित्र की रक्षा पत्नी-सुख का बलिदान करके भी की जाती थी। शर्विलक अपनी नववधू को भी छोड कर अपने प्रिय मित्र आर्यक को बन्धनमुक्त कराने के लिये जाता है।[2] — अपने मित्र की रक्षा के लिये व्यक्ति बडे से बडा दु ख सह सकता था एव बलिदान कर सकता था। जीवनदान करके भी अपने मित्र की रक्षा करना बडा पावन कर्तव्य माना जाता था। विदूषक मैत्रेय अपने मित्र चारुदत्त की रक्षा के लिये अपने प्राणो का बलिदान करने को भी प्रस्तुत है। वह चाण्डालो से प्रार्थना करता है—

"भो भद्रमुखौ मुञ्चत पियवयस्य चारुदत्तम् मा व्यापादयतम्।"

कभी कभी मित्र के वियोग–दुःख को सहन करने की अनिच्छा के कारण व्यक्ति आत्म हत्या भी कर लेते थे। ऋषियो ने स्त्रियो को इस अनुसरण की आज्ञा दे दी थी किन्तु पति क मृत-शरीर के अभाव मे पत्नी के लिये चितारोहण करना एक पाप समझा जाता था।

आवागमन के साधन—आवागमन के साधन के रूप मे उस समय बैलगाडी का प्रचलन अधिक था। अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध व्यक्ति रथ रखते थे। चारुदत्त

१–मृच्छकटिक–५।२०

२–मृच्छकटिक—४।२५।

और शकार के पास अपना निजी रथ था। 'मृच्छकटिक' के चतुर्थ अंक में शकार दस सहस्त्र मूल्य के आभूषणों के साथ वसन्तसेना को लाने के लिए अपना कमलध्वज से चिन्हित रथ भेजता है–[1]। कुछ रथों अथवा बैलगाड़ियों में पर्दे भी लगे रहते थे। चारुदत्त के रथ में पर्दे लगे थे, जिनके कारण छिपकर आर्यक निकल भागा था। शकार के रथ में भी पर्दे थे। किन्तु इस आधार पर हम पर्दा प्रथा को सिद्ध नहीं कर सकते। कुछ व्यक्ति घोड़े का प्रयोग भी करते थे। 'मृच्छकटिक' के नवम् अंक में अधिकरणिक वीरक को घोड़े पर पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान जाने की आज्ञा देता है–[2]। कुछ धनिक लोग अपना व्यक्तिगत हाथी भी रखते थे। वसन्तसेना के पास भी एक हाथी था जिसका नाम 'खुण्टमोडक' था। 'मृच्छकटिक' के द्वितीय अंक में उसका वर्णन कर्णपूरक करता है।

उत्सव, सती प्रथा एवं श्राद्ध–उस समय भी समाज में अनेक उत्सव एवं त्यौहार प्रचलित थे जो उस युग के पुरुषों की विनोदशीलता के पूर्ण परिचायक थे। विवाह एवं पुत्रोत्पत्ति प्रधान उत्सव थे। इनके अतिरिक्त भी अनेक उत्सव थे। कामदेव के मन्दिर और उद्यान में मनाया गया उत्सव सम्भवतः वसन्तोत्सव की ओर संकेत करता है। एक अन्य उत्सव इन्द्र के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए मनाया जाता था जिसमें एक लम्बे ध्वज स्तम्भ को जुलूस के रूप में निकाला जाता था। मृत्यु से सम्बन्धित कुछ परम्पराओं पर भी 'मृच्छकटिक' में प्रकाश पड़ता है। मृत व्यक्तियों को श्मशान में चिता पर जलाया जाता था। सती प्रथा भी सम्भवतः उस समय प्रचलित थी। मृत व्यक्तियों को काले तिल तथा जल आदि का दान दिया जाता था तथा श्राद्ध किया जाता था।

शिक्षा व्यवस्था–'मृच्छकटिक' तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था पर भी प्रकाश डालता है।

वैदिक साहित्य (ब्राह्मणों एवं पुरोहितों की धार्मिक शिक्षा का मूल था।
(यज्ञों के अनुष्ठान में वे विशेष निपुणता प्राप्त करते थे।

धर्मशास्त्र—का अध्ययन आवश्यक था। मनुस्मृति आदि स्मृति-ग्रन्थों का विशेष रूप से सामाजिक नियमों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अध्ययन किया जाता था। सामवेद एवं ऋग्वेद का विशेष स्थान था। संगीत की दृष्टि से भी सामवेद का विशेष महत्व था। इनके अतिरिक्त महाकाव्य, पुराण, दर्शन-ग्रन्थ तथा विशेष रूप से गीता का अध्ययन किया जाता था। रामायण एवं महाभारत भी बहुत लोकप्रिय थे। **गणित एवं ज्योतिष** का विशेष अध्ययन कर मानवजीवन पर ग्रहों एवं नक्षत्रों के प्रभाव को ज्ञात किया जाता था। अश्वों तथा गजों को वश में करने के लिये तथा उनकी गतिविधि को नियन्त्रित करने के लिये अश्वविद्या तथा हस्तिविद्या भी प्रचलित

१–मृच्छकटिक-पृ०–१९३। २–मृच्छकटिक, पृ०–४९३।

थी । शूद्रक स्वय हस्तविद्या मे विशेष निपुण थे ।

कलायें—प्रकरण के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय कलायें बहुत उन्नत अवस्था मे थी । शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' की प्रस्तावना मे 'वैशिकी कला' का वर्णन किया है जिन्हे हम आधुनिक युग मे 'फाइन आर्ट' के नाम से पुकारते हैं। सगीत कला का उत्कर्ष अपनी चरम सीमा पर था। नृत्य, गायन एव वाद्य तीनों बहुत उन्नत अवस्था मे थे । वसन्तसेना रगमच पर अभिनय करती थी । उसे विभिन्न कलाओ का प्रशिक्षण दिया गया था । विभिन्न [प्रकार के स्वरो के उच्चारण मे वह अत्यन्त निपुण थी-[१] । नृत्य मे भी वह विशेष कुशल थी-[२] । उसके विशाल भवन मे एक कक्ष केवल विभिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्रो से ही सचित था चारुदत्त के घर मे तथा उसके भवन मे जिन विभिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्रो से ही सज्जित था। चारुदत्त के घर मे तथा उसके भवन मे जिन विभिन्न प्रकार के वाद्ययन्त्रो का उल्लेख किया गया है, उनके नाम इस प्रकार है—मृदग, दर्दुर, पणव, वीणा, वश (बाँसुरी), कास्यताल (मजीरा), पटह तथा तन्त्री आदि । इन सब मे वीणा का महत्त्व सर्वाधिक था । वीणा की प्रशसा करते हुए चारुदत्त कहता है—"वीणा हि नामासमुद्रोत्थित रत्नम्' ।[३] उस समय लाग सगीत के बडे शौकीन थे । चारुदत्त का मित्रभाव रेभिल सगीत मे बडा निपुण था । उसका स्वर बडा मधुर तथा कण्ठ स्त्रियो के सदृश था[४]। उसे सगीतशास्त्र का अच्छा ज्ञान था । वह स्वरसक्रम, मूर्च्छना, ताल, हेला सयम, काकली तथा स्वरो के आरोह अवरोह आदि मे विशेष निपुण था ।[५] सगीत मे निपुण होने के कारण उसके घर प्राय सगीतगोष्ठी का आयोजन होता था, जिसमे उज्जयिनी के विशिष्ट नागरिक जाया करते थे ।

चित्रकला—का भी उस समय देश मे अत्यधिक विकास हुआ हुआ था। पुरुषो के समान ही स्त्रियाँ भी सुन्दर चित्र बनाया करती थी । बसन्तसेना भी चित्रकला में बडी निपुण थी । वह अपने एक स्व-निर्मित चारुदत्त के सुन्दर चित्र के विषय मे मदनिका से पूछती है कि क्या इस चित्रलिखित व्यक्ति की आकृति चारुदत्त से मिलती है । इसका उत्तर देते हुए मदनिका कहती है कि यह दर्शनीय और अनुपम आकृति बिल्कुल चारुदत्त के सदृश ही है । यह हृदय को बडी मनोहर लगती है । वस्तुत यह कामदेव के सदृश है —

१-मृच्छकटिक १/४२
२-मृच्छकटिक १/१७
३-मृच्छकटिक पृ०-१४७ ।
४-मृच्छकटिक, ३/४
५-मृच्छकटिक, ३/५

सुसदृशी येन आर्यायाः सुस्निग्धादृष्टिरनुलग्ना ।[1]

उस समय सवाहिन भी एक कला थी। सवाहक इस कला में वडा निपुण था। यद्यपि उसके सवाहन को एक कला के रूप मे सीखा था किन्तु यह कालान्तर मे उसकी आजीविका का साधन बन गई। वसन्तसेना उसको इस सुकुमार कला की बडी प्रशसा करती है[2]।

मूर्तिकला भी अपनी उन्नत अवस्था मे थी। अनेक प्रकार की सुन्दर काष्ठ प्रतिमाओं एव शैल प्रतिमाओ का निर्माण किया जाता था। प्राय ये प्रतिमाये मन्दिरो में प्रतिष्ठित करने के लिए निर्मित की जाती थीं। 'मृच्छकटिक' म भी इनका उल्लेख है। एक देवालय मे प्रतिमा के रूप मे स्थित सवाहक का देखकर द्यूतकर और माथुर परस्पर कहते हैं —

'कथ काष्ठमयी प्रतिमा'

\+ \+ \+ \+

'अरे न खलु न खलु। शैलप्रतिमा'[3]

इनके अतिरिक्त वसन्तसेना के विशाल भवन के वर्णन मे भी अनेक कलाओ का उल्लेख प्राप्त होता है। उस समय चौर्य—कर्म भी एक कला ही थी। इसका भी अपना अलग एक शास्त्र था और अनेक आचार्य भी थे। मृच्छकटिक के अनुसार अश्वत्थामा और कनकशक्ति इसके आचार्य थे।

भवन निर्माण कला—भी उस समय अपनी उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त थी। सुन्दर उच्च और विशाल भवनो का निर्माण किया जाता था। अपनी समृद्ध अवस्था मे चारुदत्त ने अनेक मन्दिर, विश्राम गृह, आवास-गृह विहार, वापी तथा कूप आदि का निर्माण कराया था। मन्दिरो मे सुन्दर प्रतिमाये प्रतिष्ठित की जाती थीं। तथा अनेक मनोहर सार्वजनिक एव निजी उद्यान भी थे। वसन्तसेना का भवन तो एक राजमहल के सदृश था, जिसमे राजमार्ग की ओर एक सुन्दर छज्जा (अलिन्दक) भी था। उसम अनेक प्रकोष्ठ एव गवाक्ष भी थे। यह कुबेर के महल के सदृश प्रतीत होता था।

उस समय भी विभिन्न प्रकार के सुन्दर सूती और रेशमी वस्त्रो का निर्माण होता था। कढाई और छपाई का सुन्दर कार्य उस समय भी होता था। चारुदत्त और शकार के प्रावारको पर उनका नाम कढा हुआ था। लेखन-कला तथा पुस्तक

१—मृच्छकटिक, पृ०—१९१

२—मृच्छकटिक, पृ०—१२७

३—मृच्छकटिक, पृ०—१०६

कला का भी उन दिनो पर्याप्त विकास हुआ था। न्यायालयो मे मुकदमो का पूर्ण विवरण तथा वादी प्रतिवादी के बयानो को सुव्यवस्थित रूप मे कायस्थो (पेशकारों) द्वारा लिखा जाता था। द्यूतग्रहो मे भी धन सम्बन्धी हार-जीत का हिसाब लिखित रूप मे रखा जाता था। चारुदत्त के घर मे अनेक सुन्दर पुस्तकें और वाद्य यन्त्र थे, जिन्हे देखकर शर्विलक ने उसके घर को किसी नाट्याचार्य का घर समझा था।

मनोरजन के प्रधान साधन—उस समय नृत्य तथा सगीत के अतिरिक्त नाटको का भी अभिनय होता था। पुरुष और स्त्रियाँ दोनो इन सगीत सभाओ एव नाटको के अभिनय मे भाग लेते थे। कुछ व्यक्ति तोते और तीतर पालते थे तथा उन्हें बोलना सिखाते थे, कबूतरो को पालकर उन्हे सन्देश लाने की शिक्षा दी जाती थी। कुछ विशेष चिड़ियो की लडाई कराना भी मनोरजन का एक साधन था।

वेषभूषा तथा आभूषण—यद्यपि उस समय प्रचलित वेशभूषा का विशेष वर्णन मृच्छकटिक मे नही प्राप्त होता है, किन्तु उस समय प्रचलित कुछ विभिन्न वस्त्रो पर थोडा सा प्रकाश पडता है। उत्तरीय—शरीर के ऊपर के भाग मे धारण किया जाता था। स्त्री और पुरुष दोनो इसका प्रयोग करते थे। विवाहित स्त्रिया अवगुण्ठन का भी प्रयोग करती थी। कर्णपूरक एव शकार अपनी नीच स्थिति के अनुसार रगीन और भडकीले वस्त्र धारण करते थे। दर्दुरक के उत्तरीय मे सैकड़ो छिद्र है, मैत्रेय की स्नान शाटी भी अनेक स्थानो पर फट गई है, किन्तु चारुदत्त के मित्र जूर्णवृद्ध ने उसे जिस प्रावारक को उपहारस्वरूप भेजा है वह बहुमूल्य और जाती कुसुम से सुवासित है। कौशेय (रेशमी वस्त्र) का भी प्रयोग होता है। जिस समय शकार वसन्तसेना का पीछा कर रहा था, उस समय वह लाल रेशमी वस्त्र धारण किये थी। पट्ट प्रावारक का प्रयोग होता था। बौद्ध भिक्षु गेरुए रग के चीवर का प्रयोग करता है। रथो अथवा बैलगाड़ियो मे बिछाने के लिए यानास्तरण का भी प्रयोग किया जाता था। जूतो का भी प्रयोग उस समय किया जाता था। सुगन्धित वस्त्रो का विशेष अवसरो पर प्रयोग किया जाता था। शृगार के लिए पुष्पो के प्रयोग के साथ ही केसर, कस्तूरी और चन्दन के लेप का भी प्रयोग होता था। सुगन्धित द्रव्य डाल कर ताम्बूल (पान) का भी प्रयोग किया जाता था। स्त्रियो को स्वभाव से ही आभूषण प्रिय होते है। वे प्राय कुण्डल, नूपुर करधनी, अगूठी, ककण तथा गले के लिए रत्नावली आदि का प्रयोग करती थी पुरुष भी अँगूठी एव कटक आदि का प्रयोग करते थे। आभूषण प्राय स्वर्ण से बनते थे और उनमे रत्नजटित होते थे। पुष्पो से वेणी को अलकृत करने की प्रथा भी थी। वसन्तसेना के विशाल भवन के पष्ठ प्रकोष्ठ के वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय वैदूर्य, पुष्पराग, इन्द्रनील, पद्मराग, मरकत, मोती तथा मूँगे आदि मणियो का आभूषणो मे प्रचुर मात्रा मे प्रयोग होता था। आभूषण विभिन्न प्रकार की सुन्दर डिजायनो के बनाये जाते थे और उन पर तथा रत्नो

पर सुन्दर पालिश भी की जाती थी। शृंगार के लिए मुख पर पाउडर के सदृश किसी वस्तु का प्रयोग किया जाता था।

भोजन व्यवस्था—जहाँ तक भोजन का प्रश्न है, हमें सूत्रधार के घर में तथा वसन्तसेना के भवन में बनाये जाते हुए कुछ भोज्य पदार्थों के नामों से उस समय की भोजन व्यवस्था का कुछ संकेत प्राप्त होता है। चावल उस समय का प्रिय भोज्य पदार्थ था। इसको अनेक प्रकार से पकाया जाता था। तन्दुल, भक्त, गुडोदन, कल-मोदन, पायस तथा शाल्योदन आदि इसके विभिन्न प्रकार थे। घी, दूध तथा दही का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जाता था। मोदक और अपूपक मिष्ठानों में अधिक प्रिय थे। शाक-सब्जियों का भी प्रयोग किया जाता था। दाल का भी प्रयोग होता था। मांस तथा मछली का अनेक लोग प्रयोग करते थे। ब्राह्मण भी मांस खाते थे—शकार का विट इसका उदाहरण है। वसन्तसेना की पाकशाला में अनेक प्रकार का मांस पकाया जाता था। मसालों में लवण, हिंगु जीरक, भद्रमुस्ता, वच, शुण्ठी तथा मरिच चूर्ण आदि का प्रयोग किया जाता था। सम्भवतः अचारों का प्रयोग भी होता था। शराब का प्रयोग भी किया जाता था। सुरा, आसव, मधु तथा सीधु आदि इसके विभिन्न प्रकार थे। जल को शीतल करने के लिए घड़े अथवा सुराहियों का प्रयोग होता था।

पशुपक्षी, वृक्ष तथा पुष्प—'मृच्छकटिक' में अनेक प्रकार के पशु पक्षियों, कीड़े मकोड़ों, वृक्षों तथा पुष्पों के भी नाम प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं।

पशु—अश्व, वाजि, बली वर्द, गर्दभ, गौ, हस्ति, वनद्विप, कुक्कुर, शुनक, श्व, मार्जार, मेष, मीन, मृग, मूषक, महिष, शाखामृग, शश, शृंगाल, शूकर, सिंह, वृक, व्याघ्र।

पक्षी—बक, चकोर, चक्रवाक, कपिंजल, कपोत, कोकिल, परभृत, लावक, मयूर, शिखण्डी, पारावत, राजहंस, सारस, शुक, श्येन वायस।

कीड़े मकोड़े—आग्नेय-कीट, भृङ्ग, अहि, भुजङ्ग दुन्दुभ नाम पन्नग, सर्प।

वृक्ष और पुष्प—चम्पक, सहकार, जाती, करवीर, किंशुक, नलिनी, नीप, पलाश, रक्तगन्ध, ताली तथा तमाल।

सामाजिक कुरीतियां — प्रकरण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय समाज म अनेक कुरीतियाँ भी विद्यमान थी। विशेष रूप से 'मृच्छकटिक' में उपलब्ध वर्णनों से यह प्रतीत होता है कि इन कुरीतियों में द्यूत का सर्वप्रथम स्थान था। जुआ खेलना, वैध था। इस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। द्यूतकारों की एक मण्डली होती थी, जिसका प्रत्येक द्यूतकर पर बहुत अधिक प्रभाव था। संवाहक इस विषय मे कहता है ''''

'कथं द्यूतकरमण्डल्या बद्धोऽस्मि। कष्टम् एषोऽस्माकं द्यूतकराणामलंघनीयः समय.।[1]

१—मृच्छकटिक, पृ०–१०९

जुए मे हारे रुपयो के हिसाब को बही खातो मे लिखा जाता था। द्यूतगृह का स्वामी सभिक कहलाता था, जिसे हारे हुए जुआरी से रुपया वसूल करने का पूर्ण अधिकार था। बेईमानी करने वाले जुआरी को कठोर दण्ड दिया जाता था। हारे हुए जुआरी पर न्यायालय मे भी दावा करके रुपया वसूल किया जा सकता था। 'मृच्छकटिक' के द्वितीय अक मे सवाहक के दस सुवर्ण मुद्रायें हार कर भाग जाने पर द्यूतकर माथुर को परामर्श देता हैं— 'राजकुल गत्वा निवेदयावः।'[1] कभी-कभी हारे हुए जुआरी को पिटना भी पडता था और स्वय को बेचकर भी हारा हुआ रुपया चुकाना पडता था। सवाहक के उदाहरण से यह स्पष्ट है। कुछ साहसी जुआरी हारकर भी सभिक के अधिकार की उपेक्षा कर उससे लड सकते थे जैसे 'मृच्छकटिक' मे दर्दुरक सवाहक की रक्षा करने के लिये माथुर से लडने लगता है। हारे हुए जुआरी को रुपया न देने पर अनेक कष्ट सहने पडते थे, उसे पूरे दिन सिर नीचे कर तथा पैर ऊपर कर लटकना पडता था, कुत्तो द्वारा उसकी जघाए काटी जाती थी तथा उसे भूमि पर घसीटा जाता था। जुआ खेलना कोई दुष्कर्म नही माना जाता था। चारुदत्त यह घोषित कर देता है कि वह जुए मे वसन्तसेना के आभूषण हार गया है किन्तु न तो वह स्वय और वसन्तसेना ही इसे असम्मान की बात समझते हैं। कुछ व्यक्ति तो केवल जुआ खेलकर ही अपनी जीविका चलाते थे। सवाहक भी भिक्षु बनने से पूर्व जुआ खेल कर ही अपनी जीविका चलाता था।

कभी-कभी बहुत अधिक दुखी होकर जुआरी लोग पश्चाताप करके बौद्ध भिक्षु भी बन जाया करते थे। सवाहक ने भी इसी प्रकार दुखी होकर बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया था और भिक्षु बन कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

समाज की एक अन्य कुरीति थी मद्यपान। अनेक व्यक्ति मद्यपान करते थे। सुरा, आसव, मद्य, सीधु आदि शराब के विभिन्न रूप थे। मद्यपान के लिये पानगोष्ठिया भी हुआ करती थी। 'मृच्छकटिक' के अष्टम अक मे शकार भिक्षु से कहता है—

'आपाणकम यप्रविष्टस्येव रक्तमूलकस्य शीर्षं ते भङ्क्ष्यामि ॥'[2]

यहा आपानक का तात्पर्य मदिरालय मे पानगोष्ठी से ही है।

दास प्रथा— भी उस समय की एक सामाजिक कुरीति थी। पुरुष और स्त्री दोनो ही दास एव दासिया होते थे। वे पूर्णत अपने स्वामी पर आश्रित रहते थे। पशुओ के समान उनका भी क्रय विक्रय होता था। स्वामी को धन देकर भी दासो को स्वतन्त्र नागरिक बनाया जा सकता था। कभी-कभी उनके स्वामी प्रसन्न होकर

१— मृच्छकटिक, पृ० १३२

२— मृच्छकटिक पृ० ३७६

भी उन्हें दासता से मुक्त कर देते थे। राजाज्ञा के द्वारा भी कभी कभी उन्हे मुक्त कर दिया जाता था। 'मृच्छकटिक' के दशम अंक के अन्त म चारुदत्त स्थावरक चेट को मुक्त कर देता है— 'सुवृत्त, अदासो भवतु।' ये दास दासिया अपने स्वामी की सम्पत्ति होते थे। मदनिका वसन्तसेना की दासी थी, जिसे दासता से मुक्त करने के लिये शर्विलक ने चोरी की थी। रदनिका चारुदत्त की दासी थी। चारुदत्त और शकार के चेट भी उनके दास थे। प्राय उनके साथ बडा सहृदय व्यवहार किया जाता था, किन्तु कुछ क्रूर स्वामी निर्दय व्यवहार भी करते थे। अपने स्वामी के विरुद्ध होने पर एक ईमानदार और सत्यवादी तथा निष्ठावान दास की सत्य बात पर भी विश्वास नही किया जाता था और उसे असत्य माना जाता था। शकार का चेट इससे दु खी होकर चारुदत्त से कहता है—

'हन्त ईदृशो दासभाव यत् सत्य न कमपि प्रत्याययति।'[१]

दास-दासिया बडे स्वामिभक्त होते थे। यद्यपि इनके शरीर पर इनके स्वामियो का पूर्ण प्रभुत्व था किन्तु फिर भी वे उनके लिये किसी अनैतिक कार्य को नही करते थे। जब शकार अपने चेट से वसन्तसेना को मारने के लिए कहता है तो वह स्पष्ट कह देता है—

'प्रभवति भट्टक शरीरस्य न चारित्र्यस्य। ताडयतु भट्टक मारयतु भट्टक अकार्यं न करिष्यामि।'[२]

चोरी— भी एक तत्कालीन सामाजिक बुराई थी। मृच्छकटिक मे यह एक कला के रूप म प्रकट होती है। चोरो के भी अपने कार्तिकेय, कनकशक्ति, खरपट आदि देवता और आचार्य होते थे। चोरी करने और सेंध आदि लगाने के विषय म उनके शास्त्रा म विस्तृत प्रकाश डाला गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय चौर्यकर्म की उचित शिक्षा दी जाती थी। ऊँची जाति के व्यक्ति भी धन प्राप्त करने के लिये चोरी करते थे। प्रकरण म उपलब्ध वर्णनो स ज्ञात होता है कि उस समय चोर सेंध को नापने के लिये एक प्रमाण सूत्र रखते थे, उनके पास कुछ ऐसे बीज होते थे, जिनसे भूमि म गडे हुए धन का पता लग जाता था शर्विलक उस बीज का प्रयोग करता था।[३]

सन्धि म स्वय प्रवेश करने से पूर्व चोर उसमे पहले प्रतिपुरुष (पुरुष की आकृति के समान लकडी आदि की मूर्ति) को प्रविष्ट कराते थे।[४] सन्धिच्छेद करने

१—मृच्छकटिक पृ० ५५२।
२—मृच्छकटिक पृ० ४१४–४१६।
३—मृच्छकटिक पृ० १६७।
४—मृच्छकटिक पृ० १६५।

के निमित्त अनेक प्रकार के औजारो का प्रयोग किया जाता था । विभिन्न प्रकार की आकृतियो की सन्धिया लगाई जाती थी। आत्मरक्षा के लिये चोर अनेक प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग करते थे। 'मृच्छकटिक' मे इन सबका बडा रोचक वर्णन किया गया है। सर्प आदि के काट लेने पर चोर तुरन्त चिकित्सा कर लेते थे। चोरो के भी अपने नैतिक नियम होते थे, ब्राह्मणो के अथवा यज्ञ के धन को नही चुराते थे, धाय की गोदी से आभूषण आदि के लिये बालको का भी वे अपहरण नही करते थे। चोरी मे भी वे कार्य और अकार्य का विचार रखते थे।[१] प्राय चोरी अन्धकारपूर्ण रात्रि मे की जाती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि चोरी जैसी सामाजिक बुराई का भी 'मृच्छकटिक' मे एक कला के रूप मे चित्रण किया गया है।

निर्धनता—भी वस्तुत एक सामाजिक अभिशाप थी। यह सभी बुराइयो की मूल थी। समाज के कुछ व्यक्ति 'सर्वेगुणा काचनमाश्रयन्ति' उक्ति पर विश्वास करते थे। अत वे निर्धनो को गुणहीन मानते थे। निर्धनो को अत्यधिक परिश्रम करना पडता था और अनेक कष्ट सहने पडते थे। पाप चाहे अन्य कोई व्यक्ति करे किन्तु सन्देह निर्धन पर ही किया जाता था।

पाप कर्म च यत्परैरपि कृत तत्तस्य सभाव्यते।[२]

चारुदत्त तो ब्रह्म हत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नी समागम तथा इनके साथ सम्पर्क इन पांच महापातको के अतिरिक्त निर्धनता को छठा महापाप मानता है।[३] किन्तु सौभाग्य से समाज मे ऐसे भी अनेक व्यक्ति थे जो धन की अपेक्षा मानव के गुणो का अधिक मूल्य समझते थे।

वेश्या वृत्ति—समाज मे बहुत प्राचीन काल से चली आ रही एक कुरीति है। इस समय वेश्याओ के दो वर्ग थे— वेश्या तथा गणिका। वेश्यायें अपने रूप और यौवन का व्यापार कर सम्पत्ति अर्जित करती थी, किन्तु गणिकाओ का कार्य नृत्य एव सगीत तक ही सीमित रहता था। 'दशरूपक' मे वेश्या और गणिका मे अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

'वेशो भृति सौऽस्या जीवनमिति वेश्या तद्विशेषो गणिका।

समाज मे वेश्या की अपेक्षा गणिका का स्थान उच्च होता था। वसन्तसेना निश्चित रूप से एक गणिका थी। 'मृच्छकटिक' मे कुछ स्थानो को छोडकर अधिकतर उसके लिये गणिका शब्द का ही व्यवहार किया गया है। 'मृच्छकटिक' से यह ज्ञात होता है कि उस समय समाज के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति भी गणिकाओ अथवा वेश्याओ

१–मृच्छकटिक— ४।६

२–दशरूपक, १।३६

३–दशरूपक, १।३७

से अपना सम्बन्ध रखते थे। इस सम्बन्ध में हम चारुदत्त का उदाहरण दे सकते हैं। चारुदत्त वसन्तसेना से अपना सम्बन्ध रखते हुए भी अपनी चारित्रिक शुद्धता की घोषणा करता है—

'यौवनमत्रापराध्यति न चारित्रम्।'

किन्तु फिर भी समाज की दृष्टि मे वेश्याओं से सम्बन्ध रखना एक अशोभन कार्य था। 'मृच्छकटिक' के दशम अक मे जब न्यायाधीश चारुदत्त से उसके वसन्तसेना के साथ सम्बन्ध के विषय मे पूछता है तो वह समाज के भय से लज्जा के कारण इसका स्पष्ट उत्तर नही देता। वेश्यायें कृत्रिम प्रेम प्रदर्शन कर सम्पूर्ण धन प्राप्त कर व्यक्ति को अपमानित कर छोड देती थी। कुछ लोग रखैली भी रखते थे। शकार की बहन राजा पालक की रखैली थी और वह स्वय एक अविवाहित स्त्री का पुत्र था। अत. स्पष्ट है कि उस समाज मे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी अपनी चारित्रिक शुद्धता की अधिक चिन्ता नही करते थे।

आर्थिक दशा—उस समय भारतवर्ष आर्थिक दृष्टि से समृद्धिशाली था। करमरकर महोदय के अनुसार 'मृच्छकटिक' मे उपलब्ध वर्णनो से ज्ञात होता है कि उज्जयिनी उस समय आधुनिक पेरिस की भांति बडी सुन्दर और समृद्ध नगरी थी। उज्जयिनी की समृद्धि और उन्नति से आकृष्ट होकर देश—विदेश से अनेक नागरिक वहा आते थे। कुछ तो वहाँ भ्रमण करने आते थे तथा तथा कुछ व्यापार की दृष्टि से अथवा किसी प्रकार की नौकरी प्राप्त करने के उद्देश्य से। सवाहक वहाँ पाटलिपुत्र से आया था। वहाँ ऊँचे-ऊँचे अनेक मजिलो और प्रकोष्ठो वाले विशाल भवन थे, बड़े-बडे राजमार्ग थे तथा सुन्दर उद्यान थे। उस समय व्यापार बडा समुन्नत था, जल तथा थल दोनो मार्गों से व्यापार होता था। जहाजों (यानपात्रो) से समुद्रपार विदेशो से भी व्यापार होता था। आयात तथा निर्यात दोनो होते थे। उज्जयिनी मे अनेक अपार धनराशि से युक्त धनिक व्यापारी थे। सम्भवत सभी श्रेष्ठिचत्वर नामक मुहल्ले मे रहते थे। उनके पास अपार सुवर्णराशि तथा अनेक प्रकार के सुवर्णभूषण थे। अनेक प्रकार के रत्नो और मणियो का भी वे प्रयोग करते थे। वसतसेना के षष्ठ प्रकोष्ठ के वर्णन से यह ज्ञात होता है। चारुदत्त की पत्नी धूता की मातृगृह से प्राप्त चतु: समुद्रसारभूता अमूल्य रत्नावली तथा वसन्तसेना के रत्न एव आभूषण इस बात के प्रमाण हैं। धनिक व्यक्ति आभूषण भी सुवर्ण भाण्डो मे रखते थे। कुछ व्यक्तियो के पास इतना सुवर्ण था कि वे अपने बालको के लिये खेलने के खिलौने भी सुवर्ण के ही बनवाते थे। चारुदत्त के पड़ोसी का बालक सोने की गाड़ी से खेलता है। धनिक लोग धार्मिक कृत्यो के लिये तथा सार्वजनिक लाभ के लिये बहुत मात्रा मे धन दान देते थे और सार्वजनिक उपयोग के भवनो आदि का निर्माण कराते थे। चारुदत्त ने भी अपनी सम्पन्नावस्था मे अनेक वापियों, कूपो, उद्यानो, विश्रामगृहो, देवालयो तथा विहारो

आदि का निर्माण कराया था—

'येन तावत्पुरस्थापनविहारारामदेवालयतडागकूपयूपैरलङ्कृता नगर्युज्जयिनी'

किन्तु इन धनिकों का धन बहुत अधिकमात्रा में वेश्याओं के यहाँ चला जाता था। परिणामस्वरूप वेश्यायें और गणिकायें उस समय बड़ी सम्पन्न अवस्था में थीं। उनके पास अतुल धन सम्पत्ति तथा अपार रत्नराशि एवं सुवर्णाभूषण थे। अनेक राजा भी इनकी सम्पत्ति से ईर्ष्या करते थे। अपार धन सम्पत्ति होने के कारण नगर में द्यूतकर, चोर तथा विट आदि अनेक अवाञ्छनीय तत्व भी थे जो औरों के धन पर ही आश्रित रहते थे और कभी-कभी नगर में अशान्ति तथा अव्यवस्था भी उत्पन्न कर देते थे। आर्थिक दशा के समृद्ध होने के कारण ही संगीत, नृत्य नाट्य आदि कलाओं का भी उस समय पर्याप्त विकास हुआ।

कृषि—बहुत प्राचीन काल से होती चली आयी है,किन्तु इससे कृषक समृद्ध दशा को प्राप्त नहीं हो पाते थे। हां उनकी जीविका इससे सरलता से चल जाती थी। उस समय भी कृषि-कर्म होता था किन्तु कृषक सम्पन्न नहीं थे। व्यापार और व्यवसाय करने वाला वर्ग अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न था। सार्थवाहों की स्थिति आर्थिकरूप से बहुत अच्छी थी। सम्भवतः उस समय भी आधुनिक काल के जमींदारों अथवा मकान-मालिकों के समान ही गृहपति होते थे। धनिक लोग अपने घर में सेवक भी रखते थे जिन्हें मासिक वेतन दिया जाता था—उन्हें 'सवृत्ति परिचारक' कहा जाता था। कुछ व्यक्तियों का स्थायीरूप से क्रय-विक्रय होता था, जिन्हें दास-दासी अथवा गर्भदास एवं गर्भदासी कहा जाता था।

पेशे—विशेषरूप से 'मृच्छकटिक' में उस समय प्रचलित अनेक पेशों का भी वर्णन किया गया है। कुछ व्यक्तियों की राज्य की ओर से नियुक्ति की जाती थी जो राजकीय सेवक अथवा अधिकारी होते थे—उदाहरण के लिये हम न्यायाधीश, लेखक, पुलिस अथवा सेना के अधिकारी तथा चाण्डाल आदि को ले सकते हैं। कुछ व्यक्ति कलाकार होते थे जो स्वतन्त्र रूप से कार्य करते थे। स्वर्ण और रत्नों के आभूषण बनाने वाले स्वर्णकारों का समाज में बड़ा सम्माननीय स्थान था। आर्थिक दृष्टि से उनकी दशा बहुत समृद्ध थी। उनके अतिरिक्त बढ़ई, मकान बनाने वाले मिस्त्री, मणिकार, जुलाहे, कुम्हार, नाई, चमार, हलवाई, रसोइये आदि व्यक्तियों का भी 'मृच्छकटिक' में वर्णन किया गया है। अतः निश्चितरूप से वह युग आर्थिक दृष्टि से बड़ा [illegible] और समृद्ध युग था।

राजनीतिक दशा—उस समय देश की राजनीतिक स्थिति बड़ी विचित्र थी। देश में कोई सार्वभौम सम्राट नहीं था। सम्पूर्ण देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। यद्यपि राज्य राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर थे किन्तु छोटे होने

ारण उनकी शक्ति अधिक नही थी। उनका शासन प्रबन्ध भी सुव्यवस्थित नही था
ान्त और व्यवस्था नही थी। उज्जयिनी सम्भवतः स्वतन्त्र राज्य था। इसके अति-
ि कुशावली भी वेणा नदी के तट पर एक राज्य था जिसे चारुदत्त को उपहार-
रूप दिया गया था। उस समय भी राजाओं मे अन्य राज्यो पर विजय प्राप्त करने
लिये परस्पर युद्ध होते रहते थे। यह विट की उस उक्ति से स्पष्ट हो जाता है जिसमे
कहता है कि मेघ आकाश मे चन्द्रमा की किरणो को इस प्रकार हरण करता है
स प्रकार कोई राजा अपने दुर्बल शत्रु के कर (टैक्स) का अपहरण करता है—

'हरति करसमूहं रवे शशाङ्कस्य मेघो,
नृप इव पुरमध्ये मन्दवीर्यस्य शत्रोः।'[1]

राजा विलासी होते थे तथा रानियो के अतिरिक्त रखैलियां भी रखते थे।
ज्य की समुचित शासन व्यवस्था की वे चिन्ता नही करते थे। अत. उनके शकार के
ान नीच और धूर्त सम्बन्धी प्रजा पर स्वेच्छापूर्वक अत्याचार करते थे। वे राज्य-
र्मचारियो के द्वारा अपने कर्तव्य पालन मे भी विघ्न डाल कर अपने राजा से सम्बन्ध
न का अनुचित लाभ उठाकर अपनी इच्छानुसार उनसे कार्य कराने का प्रयत्न करते
। शकार न्यायाधीश को राजा से कह कर निकलवाने का और दूसरे न्यायाधीश
ी नियुक्ति कराने का भय देकर अपनी इच्छानुसार अपने पक्ष मे और चारुदत्त के
िरोध मे निर्णय कराना चाहता है।

राज्य मे समुचित सुरक्षा का प्रबन्ध नही था, अत. रात्रि के प्रारम्भ मे ही
सम्भ्रान्त नारियो का घर के बाहर निकलना कठिन था। राजमार्गों पर धूर्त विट,
ार जुआरी तथा वेश्यायें आदि घूमते रहते थे।[2] रात्रि मे अनेक प्रकार के अपराध
ी सुलभ होते थे। बहुदोषा हि शर्वरी। राजा के कर्मचारी और पदाधिकारी अपना
र्तव्यपालन उचित रूप से नही करते थे। कुछ कर्मचारी अवश्य अपने कर्तव्य का
ूर्ण निष्ठा के साथ पालन करते थे। वीरक इस सम्बन्ध मे कहता है—'प्राप्ते च
राजकार्ये पितरमप्यहं न जानामि।' किन्तु प्राय. वे छोटी-छोटी बात पर परस्पर लड़ते
था और ईर्ष्याद्वेष भाव रखते थे। उन्हे अपने पद का बडा अभिमान था। वे जब चाहे
तब अपना कार्य छोडकर भाग भी जाते थे। 'मृच्छकटिक' के छठे अङ्क मे वीरक और
चन्दनक के विवाद से उस समय की राज्यकर्मचारियो एव अधिकारियो की दशा पर
पर्याप्त प्रकाश पडता है।

राजा के अत्याचारो के कारण जनता विक्षुब्ध हो जाती थी। शासन-प्रबन्ध
शिथिल था ही। इन अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए राजा के विरुद्ध षडयन्त्र

१—मृच्छकटिक ५।१७
२—मृच्छकटिक, पृ० ३४

करने का विद्रोहियो को अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता था। षड्यन्त्र करके राज पलट देना भी उस समय सम्भव और सहज था। इस प्रकार के षड्यन्त्रो में चोर जुआरी, असन्तुष्ट अधिकारी विद्रोही कर्मचारी, राजा के द्वारा अपमानित तथा पीड़ित व्यक्ति, धूर्त एव आवारा आदि सम्मिलित हो जाते थे।[1] राजा को इस प्रकार के षड्यन्त्र का सदा भय रहता था और वह इस प्रकार के भय से किसी भी व्यक्ति को अनिश्चितकाल के लिए कारागृह मे डाल देता था। 'मृच्छकटिक' में भी राजा पालक ने आर्यक नामक एक गोपालदारक को केवल इसलिए पकड़वाकर कारागृह मे डाल दिया क्योंकि किसी सिद्धपुरुष ने उसके विषय मे यह भविष्यवाणी की थी कि वह राजा होगा। 'मृच्छकटिक' मे भी षड्यन्त्रकारियो का एक क्रान्तिकारी दल है। शर्विलक नामक चोर इसका नेता है। चन्दनक, विट तथा दर्दुरक आदि उसके सहायक है। नाटक के अन्त मे उनका राजनीतिक षड्यन्त्र सफल हो जाता है और राजा पालक की हत्या कर आर्यक का राज्याभिषेक होता है।

राजा—उस समय राजा ही राज्य का सर्वेसर्वा होता था। राज्य की सम्पूर्ण शासन-सत्ता राजा मे ही निहित थी। राजा प्राय स्वेच्छाचारी, निरकुश एव बलधारी होता था। वह केवल राज्य की शासन-व्यवस्था का ही अध्यक्ष नही होता था, अपितु न्याय-निर्णय का भी अन्तिम निश्चय वही करता था। न्यायाधीश इस विषय मे कहता है—

'निर्णये वय प्रमाण शेषे तु राजा'।[2]

राज्य के लिए कानून बनाने का भी अन्तिम और पूर्ण अधिकार राजा को ही था। राजा आर्यक स्वय एव कानून बनाकर गणिका वसन्तसेना को कुलवधू का पद प्रदान करता है। उसे न्यायाधीश को नियुक्त करने एव निकालने का अधिकार भी प्राप्त था।

सुरक्षा व्यवस्था—राज्य की आन्तरिक विद्रोह एव बाह्य आक्रमण मे सुरक्षा के लिए सेना भी होती थी। वसन्तसेना के चेट तथा विदूषक के पचम अक मे दिविक प्रश्नोत्तरो से भी ज्ञात होता है कि उस समय भी सेना थी—'—। राजा स्वय सेनाध्यक्ष होता था। राजा एक गुप्तचर विभाग भी रखता था। विशेषरूप से राजनीतिक अपराधो का पता लगाने के लिए गुप्तचर ही राजा के नेत्र थे—

'पश्येयुः क्षितिपतयः हि चारदृष्ट्या'।

राज्य की रक्षा के लिए सम्पूर्ण राज्य के चारों ओर एक सुदृढ़ और ऊँची

१—मृच्छकटिक ४।२६।
२—मृच्छकटिक पृ० ४१५।
३—मृच्छकटिक पृ० २०१।

ार (प्राकारक) होती थी । उसमे चार दिशाओ मे मुख्यद्वार (प्रतोलीद्वार) होते कुछ विशेष स्थानो पर चौकिया (गुल्मस्थान) भी होती थीं। राज्य मे अनेक क और पहरेदार होते थे। जो राजमार्गों पर घूमते रहते थे। सेना के अति- त पुलिस विभाग भी था।

अधिकारी—राजा की सहायता के लिये अनेक अधिकारी होते थे, जिनमे ी, न्यायाधीश तथा दण्डाधिकारी और सेनापति आदि मुख्य थे। प्रधान दण्डाधि- ी समवत: पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी था। यह पद वीरक को प्राप्त था। वह र-रक्षाधिकारी भी होता था। बलपति रक्षको का प्रधान अधिकारी होता था। के अतिरिक्त राष्ट्रीय नामक एक अधिकारी भी होता था जो आधुनिक पुलिस रिन्टेन्डेन्ट के समान होता था। यह पद राजा के नीच कुलोत्पन्न साले के लिए क्षित होता था। शकार को यह पद प्राप्त था। इनके अतिरिक्त कर (टैक्स) नित करने के लिये भी अनेक अधिकारी और राज पुरुष होते थे।

पुलिस अधिकारी अपना कार्य सावधानी से करते थे। आर्यक के कारागार से ग जाने पर सम्पूर्ण उज्जयिनी मे उसकी सतर्कतापूर्वक खोज की जाती है। एक जकीय घोषणा के द्वारा समस्त अधिकारियो और रक्षको को सतर्क कर दिया गया । नगर के बाहर जाने के सभी दरवाजे बन्द कर दिये गये हैं। राजमार्गो, उद्यानो, जारो आदि सार्वजनिक स्थानो पर उसकी बड़ी सावधानी से खोज की जाती है। गाडियो और रथो आदि का निरीक्षण किया जाता है। राजनीतिक बन्दियो को समय बेड़िया पहनाई जाती थी। आर्यक को भी बेड़ी पहनाई गई थी। राजकुल कोई विवाह अथवा पुत्रोत्सव आदि होने पर अथवा राज्य परिवर्तन होने पर न्दियों को छोड़ दिया जाता था। इस प्रकार हम देखते है कि 'मृच्छकटिक' मे कालीन राजनीतिक दशा का बडा सुन्दर, यथार्थ और रोचक चित्रण किया गया है।

धार्मिक दशा-दोनो प्रकरण तत्कालीन धार्मिक अवस्था पर भी पर्याप्त प्रकाश लते हैं। उस समय वैदिक धर्म उन्नतावस्था मे था। अनेक प्रकार की याज्ञिक ायाओ का अनुष्ठान बडी श्रद्धा से किया जाता था। यज्ञ समाओ एव चैत्यो मे वद ाप किया जाता था। चारुदत्त अपने गोत्र के विषय मे अभिमानपूर्वक घोषणा करते ए कहता है कि मेरा गोत्र सैकड़ो यज्ञो से पवित्र था—

'मखशतपरिपूत गोत्रमुद्भासित मे,
सदसि निबद्धचैत्यब्रह्मघोषः पुरस्तात्' ।[1]

वैदिक—धर्म के साथ साथ बौद्ध धर्म का भी प्रचार था किन्तु बौद्ध धर्म से जनता का विश्वास अधिकतर उठ गया था अत. वह बड़ी जीर्णावस्था को प्राप्त हो

१—मृच्छकटिक-१०।१२ ।

चुका था। वैदिक धर्म के अनुयायी बहुत अधिक सख्या मे थे और ऐसा प्रतीत ह है कि वह राजधर्म भी था। यज्ञो मे पशु-बलि भी दी जाती थी। शूली पर च जाने को ले जाये जाते हुए चारुदत्त अपनी तुलना यज्ञ मे बलि दिये जाने वाले स से करता है——

'आघातमद्याहमनुप्रयामि शामित्रमालब्धुमिवाध्वरेऽज:'।[१]

उस समय नागरिको की पूजा-पाठ, पच महायज्ञ, बलि, तर्पण तथा सम आदि मे विशेष रुचि थी। अनेक स्थानो पर मन्दिर थे जिनमे देवी-देवताओ ह मूर्तियो की पूजा की जाती थी। कामदेव का भी एक मन्दिर उज्जयिनी नगर म तथा एक वसन्त सेना के घर मे। प्रकरण मे प्रारम्भ मे ही हम देखते हैं कि चारु देवकार्य सम्पादित करके गृह देवताओ को बलि अर्पण करता हुआ बाहर आता है[२]

अतिथि यज्ञ – अथवा अतिथियो के सत्कार और सेवा मे सबकी विशेष र थी। अतिथियो का स्वागत करना उस समय परम पवित्र कर्तव्य माना जाता था चारुदत्त को इस बात का बडा दुख है कि वह निर्धन होने के कारण अतिथियो समुचित सेवा नही कर पाता अत उसके घर वे नही आते।[३]

उस समय लोग देवताओ पर अत्यधिक विश्वास करते थे। देव-पूजा गृहस् का नित्यकर्म था। देवियो को बलि दी जाती थी।[४] उस समय लोग समाधि ल लगाते थे। चारुदत्त भी नियमित रूप से समाधि लगाता था-[५]।

व्रत तथा उपवास आदि भी किये जाते थे। ब्राह्मणो को समाज मे ब सम्माननीय स्थान प्राप्त था। वे सभी वर्णों मे अपने ज्ञान और तप के कारण श्रेष्ठ समझे जाते थे। यज्ञोपवीत का विशेष धार्मिक महत्व था। इसे धारण क देवताओ और पितरो को उनकी बलि एव तर्पण दिया जाता था। मोतियो मे सुवर्ण का बना हुआ न होने पर भी यह ब्राह्मणो का विशेष आभूषण था। यज्ञो पवीत के महत्व का वर्णन करते हुए चारुदत्त कहता है—

'अमौक्तिमसौवर्ण ब्राह्मणाना विभूषणम्।
देवतानां पितृणा च भागो येन प्रदीयते ॥'[६]

१—मृच्छकटिक—१०।२१
२—मृच्छकटिक—१०-२३
३—मृच्छकटिक—१-१२
४—मृच्छकटिक—१-१०
५—मृच्छकटिक, पृ०-१४
६—मृच्छकटिक—१०-१८

केवल इसीलिए शूली पर चढने के लिये जाते हुए चारुदत्त अपने पुत्र रोहसेन को अन्तिम उपहार के रूप मे यज्ञोपवीत ही देता है। शर्विलक के सदृश कुछ चोर और दुष्टब्राह्मण यज्ञोपवीत के महत्व को नही समझते थे। किसी भी कार्य मे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये ब्राह्मणो को सबसे आगे किया जाता था—

'समीहितसिद्धये ब्राह्मण अग्रे कर्तव्यः'

समाज में ब्राह्मणो के सदृश ही गौ का भी विशेष महत्व था। दोनो अवध्य थे। पूजा तथा यज्ञ इत्यादि धार्मिक कार्यों का अनुष्ठान करना ब्राह्मणों का ही कार्य था। वसन्तसेना के घर मे भी नित्य दैनिक पूजा करने के निमित्त एक ब्राह्मण नियुक्त था। अत प्रतीत होता है कि वेश्यायें और गणिकायें भी उस समय धार्मिक प्रवृत्ति की होती थीं। वेदो का पठन-पाठन करने का अधिकार उच्चवर्णो को ही प्राप्त था, शूद्रो को नहीं।[1] देवी देवताओं पर लोगों को इतना अधिक विश्वास था कि चोर आदि दुष्ट पुरुष भी अपना कार्य इष्ट देवताओं का प्रणाम कर करते थे। शर्विलक भी चोरी करने से पूर्व अपने अभीष्ट देवो और आचार्यों का स्मरण करता है—

'नमो वरदाय कुमारकार्तिकेयाय, नमः कनकशक्तये ब्रह्मण्यदेवाय देवव्रताय, नमो भास्कर नन्दिने, नमो योगाचार्याय।'[2]

यहाँ तक कि चाण्डाल भी अपने इष्ट देवी-देवताओं पर विश्वास करते थे। चारुदत्त का मारते समय हाथ से खड्ग छूट जाने पर चाण्डाल कहता है-'भगवति सह्यवासिनि। प्रसीद प्रसीदे।'

'मृच्छकटिक' में केवल गृहस्थ तथा सन्यास इन दो आश्रमो का ही वर्णन आता है। कुछ दुष्ट व्यक्तियों ने सन्यास स्वीकार करके अपने दुष्कर्मों से इस पवित्र आश्रम को भी कलंकित कर दिया था। जिससे जन-साधारण की श्रद्धा सन्यासियो से हट गई थी-'सन्यास' कुलदूषणैरिव जनैर्मेघै वृतश्चन्द्रमा।'[3] उस समय लोग भाग्य पर विश्वास करते थे तथा किसी भी दैवी आपत्ति को अपने दुर्भाग्य का ही परिणाम मानते थे।

परलोक—लोग परलोक पर विश्वास करने के कारण स्वर्ग और नरक को मानते थे। पुनर्जन्म पर प्राय सबको विश्वास था। इस जीवन मे प्राप्त सुख दुख को अपने पूर्व जन्म का फल ही मानते थे। जन्म और मृत्यु के चक्र पर सबको विश्वास था। जिस प्रकार हमारा वर्तमान जीवन पूर्वजन्म के कर्मों पर आधारित होगा—यह विश्वास प्राय प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे व्याप्त था, अत अकार्य और दुष्कर्म अथवा पाप करने से प्रायः सभी डरते थे। वसन्तसेना को मारने के शकार के आदेश को चेट दृढतापूर्वक अस्वीकार कर देता है और स्पष्ट कह देता है कि आप मेरे शरीर के

१—मृच्छकटिक-पृ ९/२१
२—मृच्छकटिक पृ. १६२
३—मृच्छकटिक—५/१४

स्वामी हूँ चरित्र के नहीं, आप मुझे मारे चाहे पीटें मैं अकार्य नहीं करूँगा, जिन पूर्व-जन्म के कर्मों के कारण मैं इस जन्म मे दास बना हूँ अत और अधिक अकार्य करके पाप मोल न लूँगा। अत. अनर्थ नहीं करूँगा-।[1] इसी प्रकार विट भी परलोक के भय से शकार के इस वसन्तसेना के हत्यारूपी दुष्कर्म मे सम्मिलित होना अस्वीकार कर देता है—

'एनामनागसमहयदि घातयमि, केनोडुपेन परलोकनदी तरिष्ये।—'[2]

चारुदत्त भी परलोक पर विश्वास करता है, अतः परलोक मे शान्ति और सुख प्राप्त करने के निमित्त मृत्यु से पूर्व अपने पुत्र का मुख देखना चाहता है—

'वत्परलोकार्थ. पुत्रमुख द्रष्टुमभ्यर्थये।'[3]

उस समय भी परलोक मे शान्ति के निमित्त पितरों को तिलाजलि तथा उदकदान करके उनका तर्पण किया जाता था। अतः चारुदत्त की पत्नी धूता अपने पुत्र रोहसेन से कहती है कि बेटा तुम हमको तिलाजलि और उदकदान देने के निमित्त रह जाओ—

'जात। त्वमेव पर्यवस्थापय आत्मान अस्माक तिलोदकदानाय'।[4]

अतः धर्म उस समय लोगों के दैनिक कृत्यों को निश्चित और निर्धारित करने में बहुत अधिक भाग लेता था। लोग धर्मभीरु थे। धार्मिक और नैतिक कार्यों को करने में सबकी प्रवृत्ति होती थी। सत्य और शिव की अन्तिम विजय पर सबको विश्वास था। सत्य बोलने से सुख होता है तथा सत्य बोलने से पुण्य होता है पाप नहीं—इस विषय मे मृच्छकटिक के नवम अ क मे श्रेष्ठ और कायस्थ कहते हैं—

'सत्येन सुख खलु लभ्यते सत्यालापी न भवति पातकी।
सत्यमितिद्वे अध्यक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय॥' (मृच्छकटिक—९।३५)

उस समय वैदिक धर्म के साथ ही बौद्ध धर्म का भी प्रचार था। यद्यपि बौद्धधर्म ह्रासोन्मुख था। सासारिक दुःख, क्लेश और अपमान के कारण जीवन से ऊबकर प्राय व्यक्ति बौद्ध भिक्षु हो जाया करते थे। बौद्ध भिक्षु होने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। 'मृच्छकटिक' के द्वितीय अङ्क में सवाहक भी द्यूतकर के द्वारा किये गये अपने अपमान के कारण जीवन से ऊबकर शाक्यश्रमणक होने की कामना व्यक्त करता है।[5] बौद्ध सन्यासी ही भिक्षु, शाक्यश्रमणक अथवा परिव्राजक कहलाते थे।

१—मृच्छकटिक ८।२५।
२—मृच्छकटिक, ८।२३।
३—मृच्छकटिक, पृ ५३२
४—मृच्छकटिक, पृ० ५९४
५—मृच्छकटिक, पृ० १३६

कुछ व्यक्ति सासारिक अनित्यता के कारण भी प्रव्रज्या स्वीकार कर लेते थे। दशम अक मे भिक्षु कहता है—

'इदमीदृशमनित्यव प्रेक्ष्य द्विगुणो मे प्रव्रज्यायाँ वहुमानः सवृत्तः।'[1]

भिक्षु काषाय वस्त्र धारण करते थे। वे प्रायः इन्द्रियसममी और तपस्वी होते थे।[2] किन्तु कुछ भिक्षु सिर मुन्डा कर भी सासारिक विष वासनाओ मे फँसे रहते थे। सम्भवत. ऐसे भिक्षुओ को लक्ष्य करके भिक्षु कहता है—

'शिरो मुण्डित तुण्ड मुण्डित चित्त न मुण्डित किं मुण्डितम्।'[3]

सम्भवत इसीलिये लोग भिक्षुओं को शकित दृष्टि से देखते और उन्हें लम्पट समझते थे। इसीलिए भिक्षु वसन्तसेना को होश मे लाकर उसे अपने साथ ले जाते हुए अपने चरित्र के विषय में लोगो को विश्वास दिलाता है।[4]

विहार—उस समय लगभग प्रत्येक नगर मे वौद्धो के विहार होते थे। इन विहारों म वौद्ध भिक्षु निवास करते थे। भिक्षुणियों के लिए भी अलग विहार होते थे। 'मृच्छकटिक' के दशम अक के अन्त मे चारुदत्त भिक्षु को सब विहारो का कुलपति बना देता है इसमे ज्ञात होता है कि इन विहारो पर राजा का नियन्त्रण होता था।[5] इन विहारो मे नित्यप्रति धर्माक्षरो का पाठ स्वर्ग प्राप्ति के निमित्त किया जाता था। किन्तु फिर भी वौद्ध धर्म एव भिक्षुओं के प्रति उस समय जनता के हृदय मे आदर की भावना नहीं थी। शाक्यश्रमणक का दर्शन भी अश्रेयस्कर और अनाभ्युदयिक माना जाता था। वौद्ध भिक्षु से लोग दूर ही रहने का प्रयत्न करते थे। दुष्ट व्यक्ति भी उनसे नहीं मिलना चाहते थे। अतः यद्यपि उस समय वौद्ध धर्म भी प्रचलित था किन्तु वैदिक धर्म को ही जनता आदर की दृष्टि से देखती थी और उसका ही जनता पर प्रभाव था।

न्याय व्यवस्था—'मृच्छकटिक' के नवम अक मे चारुदत्त के मुकदमे से सम्बन्धित न्यायालय के दृश्य से तत्कालीन न्याय-व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। उस समय न्यायालय एक विशाल भवन में होता था जिसे 'अधिकरण मण्डप' कहा जाता है। न्यायालय मे एक सेवक होता था जिसका कर्तव्य अधिकरण-मण्डप को साफ करना तथा न्यायालय के अधिकारियो के लिए आसन का प्रबन्ध करना होता था। वह शोधन कहलाता था। वह न्यायाधीश के दूतवाहक के रूप मे भी कार्य

१—मृच्छकटिक—५९९।
२—मृच्छकटिक, ८।४७।
३—मृच्छकटिक ८।३।
४—मृच्छकटिक पृ० ४४९।
५—मृच्छकटिक पृ० ५९९।

करता था तथा मुकदमे से सम्बन्धित व्यक्तियों को बुलाता था।

न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अधिकरणिक कहलाता था। उसकी सहायता के लिए एक श्रेष्ठी तथा एक कायस्थ होता था। अधिकरणिक आजकल के 'जज' के समान तथा श्रेष्ठी 'जूरेर' अथवा 'असेसर' के समान होता था। कायस्थ को हम आजकल के 'पेशकार' के रूप मे ले सकते हैं। इन्हें राजा नियुक्त करता था। न्यायाधीश वेतन पाने वाला राज्य का स्थायी सेवक होता था। राजा जब चाहे उसे अपदस्थ कर सकता था। वह निर्णय करने मे स्वतन्त्र नहीं था। उस पर राजा, उसके सम्बन्धियो, मित्रो तथा अन्य कृपा भाजन पात्रो का आतक था। नवम् अक मे शकार न्यायाधीश को धमकाता है कि यदि उसका मुकदमा न सुना गया तो वह उसे राजा से कह कर निकलवा देगा और उसके स्थान पर दूसरा न्यायाधीश नियुक्त करा देगा।[1]

अत उचित और निष्पक्ष न्याय होना कठिन था। न्यायाधीश केवल निर्णय देने मे ही स्वतन्त्र था। उसके निर्णय की अन्तिम स्वीकृति राजा देता था। राजा यदि चाहे तो उस निर्णय को बदल भी सकता था। अतः राजा की आज्ञा सर्वोपरि न्याय था।

अधिकरणिक न्यायाधीश की योग्यता पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि उसे शास्त्रो का ज्ञाता तथा वादी-प्रतिवादी के कपट को समझने मे कुशल, श्रेष्ठ वक्ता और क्रोध रहित होना चाहिये। उसे मित्र, शत्रु एव स्वजनो मे समान दृष्टि रखने वाला, व्यवहार को देखकर निर्णय देने वाला, दुर्बलो का रक्षक, धूर्तों को दण्ड देने वाला, धर्मात्मा तथा लोभ न करने वाला होना चाहिए। उपाय रहते दूसरो की बात जानने मे दत्तचित्त एव राजा के क्रोध को दूर करने वाला होना चाहिये।[2] वादी प्रतिवादियो के अनेक तथ्यो के छिपा लेने के कारण न्यायाधीश का कार्य बडा कठिन हो जाता था।

न्यायालय मे सभ्य पुरुषो को आसन दिया जाता था। 'मृच्छकटिक' में चारुदत्त को भी न्यायालय पहुँचने पर आसन दिया गया है। मुकदमे को 'व्यवहार' कहा जाता था। उसमे दो पक्ष होते थे—वादी और प्रतिवादी। वादी को 'कार्यार्थी' अथवा 'व्यवहारार्थी' कहते थे तथा प्रतिवादी को 'प्रत्यार्थी, कार्यार्थी न्यायालय मे आकर न्यायाधीश के सम्मुख अपना व्यवहार प्रस्तुत करता था। न्यायाधीश प्रत्यार्थी तथा उस व्यवहार से सम्बन्धित साक्षियो (गवाहो) को बुलाता था। वादी और प्रतिवादी के बयान लिये जाते थे। उन बयानो को श्रेष्ठी तथा कायस्थ लेखबद्ध करते थे।

१—मृच्छकटिक पृ० ४६१
२—मृच्छकटिक पृ० ९।५

ाहों की भी गवाही ली जाती थी। जिस व्यक्ति की भी आवश्यकता होती थी उसे ाही के लिये बुलाया जाता था। उचित न्याय करने के लिए वास्तविकता ज्ञात ने का अत्यधिक प्रयत्न किया जाता था। वादी प्रतिवादियो के बयानो के आधार तथा गवाहो की गवाही के आधार पर अपनी बुद्धि से निर्णय कर न्यायाधीश ठी की सम्मति से न्याय करता था। मुकदमो का निर्णय करने मे अधिक समय नही ाता था। प्राणदण्ड के निर्णय भी शीघ्र कर दिये जाते थे, किन्तु उनकी अन्तिम ोकृति राजा देता था। न्याय उस समय निःशुल्क था।

यद्यपि राजा का कथन सर्वोपरि न्याय था किन्तु न्याय-निर्णय प्राय. मनुस्मृति अनुसार दिया जाता था। ब्राह्मणो को कठोरतम अपराध करने पर भी प्राण-दण्ड ीं दिया जाता था। उन्हें सम्पूर्ण धन वैभव के साथ राष्ट्र से निर्वासित कर दिया ता था।[1] 'मृच्छकटिक' मे निम्नलिखित अपराधो का वर्णन है—(१) जुएँ मे हारे ; धन को न देना, (२) स्त्री हत्या, (३) राजनीतिक अपराधः—

(अ) किसी राज्य कर्मचारी के कर्तव्य पालन मे विघ्न डालना,

(ब) राजनीतिक शत्रु को शरण देना अथवा उसकी सहायता करना।

जुएँ मे हारा हुआ धन न देने पर कठोर दण्ड दिया जाता था। द्यूतकर ण्डली के नियमानुसार भीख माग कर, उधार लेकर, चुराकर अथवा स्वय को बेच र चाहे जैसे भी हो वह धन देना अनिवार्य था। न देने वाले व्यक्ति को सिर नीचे रके और पैर ऊपर कर सारे दिन लटकना पड़ता था, उस भूमि पर पैर बाध कर ींचा जाता था अथवा उसकी जाघ के मास को कुत्तो के द्वारा चबाया जाता था।[2] त्री हत्या बड़ा जघन्य अपराध था। यद्यपि मनुस्मृति के अनुसार के अनुसार ब्राह्मण ो प्राणदण्ड नही दिया जाना चाहिए किन्तु राजा पालक ने इसकी चिन्ता न कर नु के विरुद्ध चारुदत्त को प्राणदण्ड दिया।

चन्दनक ने वीरक के कर्तव्यपालन मे बाधा डाली थी। इस अपराध का दण्ड या होता इसका तो कोई वर्णन नही है, किन्तु वीरक ने चन्दनक को जो धमकी दी ; उससे प्रतीत होता है कि ऐसे अपराधी को चतुरग दण्ड (मस्तक-मुण्डन, बेंत से ारना, अर्थदण्ड अथवा बहिष्कार) दिया जाता था।

'अधिकरणमध्ये यदि तें चतुरङ्ग न कल्पयामि तदा न भवामि वीरकः।'[3]

इसी प्रकार आर्यक को शरण देने के कारण चारुदत्त को भी राजा पालक

१—मृच्छकटिक ९।३९
२—मृच्छकटिक २।१२
३—मृच्छकटिक पृ० ३५३

के दण्ड का भय है। आर्यक को पैर में बेड़ी डालकर बन्धनागार में रखा गया था। अतः स्पष्ट है कि उस समय दण्ड कठोर थे। अपराधियों को सत्य न बताने पर कोड़े की सजा दी जाती थी।[1]

जघन्यतम अपराध में प्राणदण्ड दिया जाता था। यह प्राणदण्ड अनेक प्रकार से दिया जा सकता था—खड्ग से गर्दन काटकर, बाधकर खींचने से, कुत्तों से नुचवाने से, शूली पर चढ़ाकर अथवा आरे से चिरवाकर।[2] प्राणदण्ड श्मशान में चाण्डालों के द्वारा दिया जाता था। चाण्डाल उस अपराधी को रक्तचन्दन और कनेर की माला से सजाकर वध्यपटह बजाते हुए वध्य स्थल को ले जाते थे। अपराधी को शूल स्वयं अपने कन्धे पर ले जाना पड़ता था। मार्ग में अपराधी का परिचय दिया जाता था और तीन स्थानों पर रुककर उसके अपराध और दण्ड की घोषणा की जाती थी जिससे अन्य लोग वैसा अपराध न करें, अन्यथा उन्हें भी इसी प्रकार दण्ड दिया जायगा। कभी कभी धन देकर भी वध्य को छुड़ाया जा सकता था, पुत्रोत्सव आदि होने पर कभी कभी वध्यजनों को मुक्त कर दिया जाता था तथा कभी राज्य परिवर्तन होने पर वध्यजनों की मुक्ति हो जाती थी।[3] अतः स्पष्टतः 'मृच्छकटिक' के दशम अंक में तत्कालीन न्याय व्यवस्था और दण्ड-व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

विश्वास एवं मान्यतायें—इन अवस्थाओं के अतिरिक्त 'मृच्छकटिक' में उस समय प्रचलित कुछ विश्वासों तथा मान्यताओं पर भी प्रकाश पड़ता है। उस समय लोग शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार के शकुनों पर अटूट विश्वास करते थे। अपशकुनों से वे अत्यधिक आतंकित हो जाते थे। चारुदत्त और वसन्तसेना भी इन पर पूर्ण विश्वास करते थे। अपशकुनों से वे अत्यधिक आतंकित हो जाते थे। चारुदत्त और वसन्तसेना भी इन पर पूर्ण विश्वास करते थे। पुरुष के वाम एवं स्त्री के दक्षिण नेत्र का फड़कना, मार्ग में सर्प मिलना, समान और सूखी भूमि में भी पैर फिसलना, बाईं बाहु का फड़कना तथा सूर्य की ओर मुख करके बैठे हुए कौए का बायें नेत्र से देखना और कांव कांव करना आदि बहुत अशुभ शकुन माने जाते थे। चारुदत्त को न्यायालय के मार्ग में जाते हुए प्रायः ये सभी अपशकुन मिलते हैं जो भावी अनिष्ट के सूचक हैं।[4] उस समय लोग ज्योतिष पर भी विश्वास करते थे तथा यह भी विश्वास करते थे कि ग्रह और नक्षत्र आदि भी मनुष्यों की गतिविधि तथा भाग्य को नियन्त्रित करते हैं।[5] पुनर्जन्म, देवपूजा, इन्द्रियसंयम, चारित्रिक दृढ़ता आदि पर प्रायः सब विश्वास था।

१—मृच्छकटिक, ९।३६।
२—मृच्छकटिक १०।५३
३—मृच्छकटिक, पृ० ५५९
४—मृच्छकटिक ९।११
५—मृच्छकटिक ६।१०

सप्तम विवेक

मृच्छकटिक का रस-विवेचन

काव्य मे रस का स्थान—

संस्कृत काव्य मे रस का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है, वस्तुत. रसात्मक वाक्य को ही संस्कृत मे काव्य माना गया है—'वाक्य रसात्मक काव्यम्' ।[1]

भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमो के अनुसार तो रस–रूपको का एक मुख्य विभेदक तत्व है–'वस्तु नेता रसस्तेषा भेदक' ।[2]

रस की अभिव्यजना अथवा प्रेक्षको के हृदय मे रसोद्रेक उत्पन्न करना ही दृश्य काव्य का चरम लक्ष्य माना गया है। नाटककार दर्शको के मानस पटल पर रस-सचार के लिए ही अपने नाटक की रचना करता है। दृश्य काव्य मे रस की स्थिति भरत से भी प्राचीनकाल से विद्यमान है काव्य के पठन, श्रवण अथवा दर्शन से जिस अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, वह रस कहलाता है। रस चर्वण के विषय मे भरत मुनि का यह मत है कि विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचार भाव के सयोग से ही रस की निष्पत्ति होती है—'विभावानुभावव्यभिचारि सयोगाद् रसनिष्पत्ति' ।[3]

रस के विषय मे धनजय का मत है कि जब विभाव, अनुभाव, सात्विक, एव व्यभिचारि भाव के द्वारा रति आदि स्थायिभाव आस्वाद्य अथवा चर्वण के योग्य बना दिया जाता है तो वह रस कहलाता है—

"विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभि·
आनीयमानः स्वाद्यत्व स्थायी भावो रस· स्मृतः" ॥[4]

भारतीय रस-शास्त्रियो के अनुसार रस तो वस्तुत. दिव्य एव अलौकिक होता है। विश्वनाथ कविराज तो इस आनन्द को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' मानते हैं—'वेद्यान्त-रस्पर्शशून्यो ब्रह्मानन्दसहोदर" ।

वस्तुतः रस तो स्वय ब्रह्म का ही प्रतिरूप है–

'रसो वै ब्रह्म' ।

रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, भय तथा शोक इन आठ स्थायी भावो की क्रमशः शृगार, वीर, बीभत्स, रौद्र, हास्य, अद्भुत, भयानक तथा करुण

(१) विश्वनाथ-साहित्य दर्पण, १/३ ।
(२) धनजय-दशरूपक, १/११ ।
(३) भरत–नाट्यशास्त्र-निर्णयसागर १९४३—पृ० ९३ ।
(४) धनजय-दशरूपक—४/१ ।

रसो मे परिणति होती है । कुछ नवीन रसशास्त्री शम को नवा स्थायी भाव तथा शान्त को नवा रस मानते हैं, किन्तु धनजय आठ रसो को ही मानते हैं । इसके अतिरिक्त विश्वनाथ वात्सल्य रस की तथा रूपगोस्वामी माधुर्य (भक्ति) रस की भी कल्पना करते हैं ।

शृ गार प्रकाश मे भोज केवल शृगार को ही प्रधान रस मानते हैं तथा अन्य रसो को उसका भी प्रतिरूप । इस प्रकार भवभूति करुण को ही मुख्य रस तथा अन्य रसो को करुण का ही विवर्त मानते हैं । वस्तुत चार मुख्य रस शृगार, वीर, वीभत्स तथा रौद्र की विकृति से क्रमश चार गौण रस हास्य, अद्‌भुत, भयानक और करुण की उत्पत्ति होती है ।

रस की प्रतीति कराना ही रूपक का प्रधान प्रयोजन होता है । विश्वनाथ कविराज के अनुसार प्रकरण का प्रधान रस शृगार होता है—'शृङ्गारोऽङ्गी' । अन्यरस उसके अग होते हैं । शृगार रस की उत्पत्ति रति नामक स्थायी भाव से होती है तथा यह उज्ज्वल वेषात्मक होता है– तत्र शृगारो नाम रति स्थायिभावप्रभव उज्ज्वल वेषात्मक' ।[1]

अभिनवगुप्त का विचार है कि आस्वादन की जाती हुई रति ही मुख्य रूप से शृगार शब्द का अर्थ है—'रतिरेवास्वाद्यमानो मुख्य शृ गार' ।[2]

शृ गार रस की दो अवस्थायें होती हैं —

(१) सभोग और (२) विप्रलम्भ ।

'तस्य द्वे अधिष्ठाने, सम्भोगो, विप्रलम्भश्च" ।[3]

अभिनवगुप्त का विचार है कि अधिष्ठान का अर्थ अवस्था होता है । अत सम्भोग और विप्रलम्भ वस्तुत' शृ गार रस के दो भेद नही, अपितु अवस्थायें हैं इन दोना अवस्थाओ म समानरूप स विद्यमान जो आस्वादात्मक रति है उसका आस्वाद्यमान रूप शृ गार रस होता है ।[4]

सम्भोग मे विप्रलम्भ की सम्भावना से भय रहता है और विप्रलम्भ म सम्भोग की कामना का सम्बन्ध रहता है । अत सम्भोग तथा विप्रलम्भ इन दानो दशाओं के मिश्रण स ही विशेष रूप म चमत्कार होता है—

'अतएव एतद्द्वयमेलम एव मातिशयचमत्कार' ।[5]

१—भरत-नाट्य शास्त्र-निर्णय सागर सस्करण—१९४३—पृ० ९४ ।

२—अभिनव गुप्त अभिनव भारती दिल्ली विश्व विद्यालय सस्करण १९६० पृ० ५३

३—१ वत्-सस्करण १९४३—पृ० ९६ ।

४—१ वत् सस्करण १९०३—पृ० ५६३ ।

५—१ वत् सस्करण १९६३-पृ० ५६६ ।

मृच्छकटिक मे रस :—मृच्छकटिक प्रकरण का प्रधान रस शृंगार है तथा ग, हास्य, वीर, वीभत्स, भयानक तथा शान्त आदि उसके अंग हैं। प्रकरण में क मुख्य रसो का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

सम्भोग शृंगार :—भरत मुनि का विचार है कि सम्भोग शृंगार ऋतु, य, सुगन्धित अंगराग, अलंकार, प्रियजन, गीत आदि रूप विषय, सुन्दर भवन दे का उपभोग, उपवन-गमन का अनुभव अथवा गृह स्थित होकर श्रवण, दर्शन, विहार आदि क्रीडा तथा विलासपूर्ण लीला आदि के द्वारा उत्पन्न होता है।[1]

'अभिनवगुप्त का मत है कि सम्भोगावस्था मे वस्तुतः स्त्री एवं पुरुष (नायक ा नायिका) दोनो एक दूसरे के प्रति आलम्बन विभाव होते हैं :—'तत्रेह वस्तुत. ।—पु सौ परस्पर विभावौ" ।[2]

मृच्छकटिक मे चारुदत्त और वसन्तसेना परस्पर आलम्बन विभाव हैं। छकटिक मे वर्षा ऋतु का बहुत सुन्दर वर्णन है। वसन्त सेना के द्वारा आभूषणो चारुदत्त के समीप न्यास रूप म रखना, उनकी चोरी तथा शर्विलक के द्वारा उन्हे र वसन्तसेना के समीप ले जाना तथा वसन्तसेना द्वारा रोहसेन की मिट्टी की डी को आभूषणो से भर देने के स्पष्ट है कि मुख्य कथावस्तु के निर्वाह मे अलंकार विशेष महत्व है। इष्टजन विदूषक, धूता तथा रोहसेन आदि का कथा मे प्रमुख ान है। वसन्तसेना के सुन्दर भवन एवं उद्यान तथा पुष्पकरण्डकोद्यान के वर्णन ा चारुदत्त और वसन्तसेना की विलासपूर्ण क्रीड़ाओं के द्वारा स्पष्ट है कि मृच्छ-टिक मे सम्भोग शृंगार की प्रधानता है। भरत का विचार है कि सम्भोग शृंगार नेत्रो के चातुर्य से भौंहों के चलाने से, कटाक्षों के संचालन से ललित, मधुर अर्थात् नने मे प्रिय लगने वाले वाक्य आदि रूप अनुभावो के द्वारा अभिनय किया जाना ाहिये—तस्य नयनचातुरी-भ्रूक्षेप—कटाक्षसंचार—ललितमधुरांगहारवाक्यादिभिर नुभा-भिनयः प्रयोक्तव्य' ।[3] प्रकरण की नायिका वसन्तसेना इनका सुन्दर प्रयोग रती है।

मृच्छकटिक नाटक का नायक चारुदत्त एवं नायिका वसन्तसेना है। दोनो के म का वर्णन ही इनकी मुख्य कथावस्तु का आधार है। यद्यपि वसन्तसेना एक णिका है, किन्तु वह एक कुल नारी के सदृश चारुदत्त से आदर्श प्रेम करती है तथा च्छकटिक के अन्त मे कुल वधू के सम्मानित पद को प्राप्त करती है। प्रकरण का ख्य रस शृंगार है। कामदेवायतन उद्यान मे निर्धन किन्तु चरित्र एवं गुण सम्पन्न

—भरत-नाट्यशास्त्र-निर्णसागर—पृ० ९६।
—अभिनव भारती पृ० ५४६।
—भरत—नाट्य शास्त्र-निर्णय सागर संस्करण—पृ०९६।

सुन्दर युवक चारुदत्त को देखकर वसन्तसेना उस पर आसक्त हो जाती है। इस विषय में शकार का यह कथन है—

"एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति तस्य दरिद्र चारुदत्तस्य अनुरक्ता न मा कामयते"।[1]

निर्धन होने पर भी चारुदत्त से वसन्तसेना प्रेम करती है तथा उसके हृदय में काम–वासना उत्पन्न करती है। चारुदत्त स्वय इस विषय में कहता है—

"अये इय वसन्तसेना।
यया मे जनित. काम. क्षीणे विभवविस्तरे"।[2]

प्रथम अक के इस पारस्परिक आकर्षण के उपरान्त प्रकरण के द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अको मे विप्रलम्भ शृंगार की अभिव्यजना की गई है। विप्रलम्भ बिना सम्भोग पुष्टि को नही प्राप्त होता—'न विना विप्रलम्भेन सम्भोग पुष्टिमश्नुते।' अत यहाँ समोग शृ गार पुष्ट ही होता है। मृच्छकटिक के पचम अक में वसन्तसेना अभिसारिका के रूप मे चारुदत्त के घर जाती है। मार्ग मे मेघ–गर्जन, वर्षा, विद्युत आदि उद्दीपन के रूप मे सहायता करते हैं। वसन्तसेना दृढतापूर्वक कहती हैं —

'गर्ज वा वर्ष वा शक्र ! मु च वा शतशोऽशनिम्।
न शक्या हि स्त्रियो रोद्धु प्रस्थिता दयित प्रति"।।[3]

अपने घर आने पर चारुदत्त वसन्तसेना के आर्द्र एव शीतल अगो का आलिगन कर अपने जीवन को धन्य मानता है —

"धन्यानि तेषा खलु जीवितानि ये कामिनीना गृहमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति"।।[4]

वसन्तसेना एक क्षणिक मिलन से सन्तुष्ट नही हैं। वह चारुदत्त की कुल-वधू बन कर स्थायी मिलन एव उसके गृह मे आभ्यन्तर-प्रवेश का अधिकार प्राप्त करने को उत्सुक है, किन्तु दुर्भाग्य वश शकार वसन्तसेना की हत्या के उद्देश्य से उसका गला घाट देता है और न्यायालय म आकर चारुदत्त पर मिथ्या अभियोग चलाता है और राजा पालक उसे मृत्युदण्ड देता है। यहाँ विप्रलम्भ करुण दशा को ही प्राप्त होने वाला होता है कि वसन्तसेना उपस्थित हो जाती है और चारुदत्त को एक नया जीवन मिल जाता है। इस विषय म वह स्वय कहता है—

१–मृच्छकटिक पृ० ५२
२–मृच्छकटिक पृ० १/५५
३–मृच्छकटिक पृ० ५/३१
४–मृच्छकटिक पृ० ५/४९

"अहो प्रभावः प्रियसगमस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्धियेत ?"[1]

चारुदत्त को अपनी प्रियतमा प्राप्त हो जाती है—'प्राप्तामूय प्रियेयम् ।' न्तसेना को अपना अभीष्ट कुलवधू पद प्राप्त हो जाता है। इस विषय मे अन्तिम क मे शर्विलक घोषणा करता है—

"आर्ये ! वसन्तसेने ! परितुष्टो राजा भवती वधूशब्दे नानुगृह्णाति ।"[2]

मृच्छकटिक एक सुखान्त रूपक है। प्रारम्भ मे सभोग शृ गार का उदय होता तथा वह विप्रलम्भ के द्वारा पुष्टि को प्राप्त करता है। 'मृच्छकटिक' के अन्त म ायक-नायिका का मिलन होता है। नाट्य शास्त्र के नियमानुसार गणिका अथवा ामान्य नायिका का प्रेम रस की कोटि तक नहा पहुँच पाता वह रसाभास ही हलाता है, किन्तु इन प्रकरणो म वसन्तसेना का कुलनारी के सदृश वास्तविक प्रेम स की कोटि को ही प्राप्त होता है। अत यहा सभोग शृ गार ही अगी रस है कन्तु शकार का वसन्तसेना के प्रति स्वार्थपूर्ण प्रेम उसका अधेरी रात्रि मे अनुसरण व प्रेम प्रदर्शन आदि शृ गाराभास हैं।

विप्रलम्भ शृगार

विप्रलम्भ शृ गार का निर्वेद, ग्लानि, शका, असूया, श्रम, चिन्ता, औत्सुक्य द्रा, स्वप्न, विवोध, व्याधि, उन्माद, अपस्मार, जाड्य तथा मरण आदि अनुभावो ; द्वारा अभिनय किया जाता है। इस विषय मे भरतमुनि का स्पष्ट कथन है—

'विप्रलम्भकृतस्तु निर्वेदग्लानि शकासूयाश्रमचिन्तौत्सुक्यनिद्रासुप्त स्वप्नविब्बो-व्याध्युन्मादापस्मारजाड्यमरणादिभिरनुभावैरभिनेतव्य " ।[3]

अभिनवगुप्त का मत है कि विरह के द्वारा उत्पन्न शृंगार रस के सौन्दर्य को देखाते हुए भरतमुनि यह सूचित करते हैं कि विरह के बिना शृ गार रस न काव्य मे हृदयग्राही होता है और न नाटक मे। अत सम्भोग के साथ विप्रलम्भ का चित्रण भी आवश्यक होता है। इस विषय मे अभिनवगुप्त कहते हैं—

"तेन विरहेण कृता सुष्ठुता दर्शयन् मुनिरनेन विना शृ गारो न प्रयोगे न काव्ये हृद्यतामवलम्बते इति दर्शयति ।"[4]

यहाँ यह शका होती है कि यदि शृगार रति से उत्पन्न होता है तो करुण रस म रहने वाले निर्वेद आदि भाव इसमे कैसे होते हैं ? भरत मुनि स्वय इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि शृगार दो प्रकार का होता है—

१—मृच्छकटिक पृ० १०/४३ ।

२—मृच्छकटिक पृ० ५९८ ।

३—भरत-नाट्यशास्त्र-निर्णय सागर सस्करण पृ० ९६ ।

४—अभिनव भारती दिल्ली विश्वविद्यालय सस्करण—पृ० ५५७ ।

(१) संभोग तथा (२) विप्रलम्भ

विप्रलम्भ में करुणा रस के समान निर्वेद आदि भाव भी होते है। काम शास्त्र के आचार्य वात्स्यायन आदि ने भी काम की दश अवस्थाओ का कथन किया है–

'अत्रोच्यते–पूर्वमेवाभिहित सभोग विप्रलम्भकृत: शृ गार इति। वैशिक शास्त्र कारैश्च दशावस्थोऽभिहित।'[१]

करुणा एव विप्रलम्भ दोनो अलग-अलग रस है। शाप के क्लेश में पड़े हुए इष्ट जन के विभवनाश वध अथवा बन्धन आदि से उत्पन्न निरपेक्षाभाव वाला तो करुणा रस होता है। औत्सुक्य और चिन्ता से उत्पन्न सापेक्ष भाव (आशामय भाव) विप्रलम्भ के कारण होता है। इस प्रकार दोनों रस भिन्न हैं। सुखमय इष्ट सामग्री से सम्पन्न वसन्त आदि ऋतु तथा माल्य आदि उद्दीपक का सेवन करने वाला तथा स्त्री-पुरुष से युक्त रस शृगार होता है। ऋतु, माल्य, अलकार, प्रियजन, सगीत, काव्य के सेवन, उद्यान-गमन और वन-विहार आदि से शृगार रस उत्पन्न होता है। नेत्र अथवा मुख की प्रसन्नता से, मुस्कराहट, मधुर वचन, धृति प्रमोद तथा सुन्दरता के साथ अगो के सचालन के द्वारा शृगार का अभिनय किया जाता है।[२]

सभोग शृगार का चित्रण करते समय विप्रलम्भ का प्रयोग भी प्राय अनिवार्य होता है। 'मृच्छकटिक' म विप्रलम्भ का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकरण के प्रथम अक म तो सभोग शृ गार का चित्रण हुआ है किन्तु द्वितीय, तृतीय, एव चतुर्थ मे विप्रलम्भ ही मुख्य है। 'मृच्छकटिक' म द्वितीय अक के आरम्भ मे ही वसन्तसेना चारुदत्त से मिलने को बहुत उत्कण्ठित है। वह चारुदत्त के विषय मे ही निरन्तर चिन्ता करती रहती है। उसे स्नान तथा देवपूजा आदि मे भी रुचि नही है। वह चेटी से स्पष्ट कह देती है–

'अद्य न स्नास्यामि। तद् ब्राह्मण एव पूजा निर्वर्तयतु इति।"[३]

मदनिका उसके शून्य हृदय एव विक्षिप्त अवस्था को देखकर समझ जाती है कि वह अपने हृदयस्थ किसी प्रेमी की अभिलाषा कर रही है। वह उससे कहती है–

"आर्याया: शून्यहृदयत्वेन जानामि, हृदयगत कमप्यार्या अभिलषतीति।"[४]

'मृच्छकटिक' के द्वितीय अक के अन्त मे वसन्तसेना के खुण्टमोडक नामक हाथी से संवाहक की प्राणरक्षा करने के कारण कर्णपूरक को दिये गये उत्तरीय को वसन्तसेना स्वय प्रेमपूर्वक ओढ लेती है। तत्पश्चात् वह चेटी से कहती है कि चलो ऊपर छत पर चढ कर जाते हुए आर्य चारुदत्त को देखें–

(१) भरत—नाट्यशास्त्र निर्णयसागर पृ० ९६।
(२) भरत नाट्यशास्त्र निर्णयसागर पृ ९६-९७६।
(३) मृच्छकटिक, पृ ९५।
(४) मृच्छकटिक, पृ० ९६

"हञ्जे ! उपरितनमलिन्दकमारुह्य आर्य चारुदत्त प्रेक्षामहे ।"

प्रकरण के तृतीय अक म चारुदत्त अपने विरही एव उत्कठित मन के विनोद के लिए सगीत का आश्रम लेता है तथा रेभिल के गीत एव वीणा की प्रशसा करता है ।[2]

चतुर्थ अक मे वसन्तसेना स्वचित्रित चारुदत्त के चित्र से मनोविनोद करने का प्रयत्न करती है । मृच्छकटिक मे वह मदनिका से चित्रगत चारुदत्त की आकृति के विषय मे प्रश्न करती है--'चेटि मदनिके । अपि सुसदृशीय चित्राकृति रार्य-चारुदत्त-स्य ।' मदनिका 'सुसदृशी' कहकर उसकी प्रशसा करती है ।

'मृच्छकटिक' के चतुर्थ अक मे यह जान कर कि उसे ले जाने के लिए सजा हुआ रथ तैयार है, वह उत्सुकतापूर्वक चेटी से पूछती है--

'किमार्यचारुदत्तो मा नेष्यति ?'

किन्तु शकार के विषय म ज्ञात कर वह चेटी से क्रोध पूर्वक कहती है--

'अपेहि । मा पुनरेव भणसि'

'मृच्छकटिक' के पचम अक मे अपनी निर्धनता का स्मरण करके तथा वेश्याओं के गुणो के स्थान पर धन से वश मे किये जाने के विषय मे अपनी विरह-वेदना को प्रकट करते हुए चारुदत्त कहता है--'वयमर्थे परित्यक्ता ननु त्यक्तैव सा मया ।'[3]

षष्ठ अक के प्रारम मे वसन्तसेना चारुदत्त के प्रति अपनी उत्कण्ठा अभिव्यक्त करती है तथा दुर्भाग्यवश पुष्पकरडक जीर्णोद्यान म चारुदत्त के समीप जाने के लिए अज्ञानवश उसके रथ के स्थान पर शकार के रथ मे चढ जाती है । यह घटना दोनो के वियोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

सप्तम अक के प्रारम्भ मे पुष्प करडक उद्यान मे चारुदत्त वसन्तसेना से मिलने को अत्यधिक उत्सुक है । वह विदूषक से पूछता है-- 'वयस्य, चिरयति वर्धमानक ।'

अष्टम अक मे तो शकार वसन्तसेना का गला ही घोट देता है । इस प्रकार हम यह देखते हैं कि मृच्छकटिक मे विप्रलम्भ शृगार का पर्याप्त चित्रण किया गया है जो सम्भोग की पुष्टि के लिए सर्वथा आवश्यक है ।

हास्य रस

हास्य रस का स्थायी भाव हास होता है । हास्य रस दूसरे के विकृत वेष, विकृत अलकार, निर्लज्जता, लालचीपन, गर्दन अथवा बगल आदि का स्पर्श, असगत भाषण, अगहीनता देखना तथा दोष कथन आदि विभावो से उत्पन्न होता है--

(१) मृच्छकटिक, पृ० १४४ ।

(२) मृच्छकटिक, ३/३ । (३) मृच्छकटिक ५/९

"अथ हास्यो नाम हास स्थायिभावात्मक । स च विकृतपरवेषालकार धार्ष्ट्य लौल्यकुहकासत्प्रलापव्यङ्ग दर्शन दोषोदाहरणादिभिर्विभावैरुत्पद्यते १।"

ओष्ठ नासिका तथा कपोलो के स्पन्दन, आखो को फैलाना, बन्द करना और थोडा भीचना, पसीना, मुख की लालिमा तथा पेट पकडना आदि अनुभावो के द्वारा उसका अभिनय किया जाता है। आकार-गोपन, आलस्य, तन्द्रा, निन्द्रा, स्वप्न, प्रबोध तथा असूया आदि हास्यरस के व्यभिचारि भाव होते है। हास्यरस दो प्रकार का होता है—

(१) आत्मस्थ तथा

(२) परस्थ [२]।

हास्य रस उत्तम प्रकृति मे स्मित तथा हसित, मध्यम प्रकृति मे विहसित तथा उपहसित और अधम प्रकृति मे अपहसित तथा अतिहसित होता है। इस प्रकार इसके छ भेद हैं।

दूसरे व्यक्ति के आकार, वाणी अथवा वेष के विकार को देखकर ही हास की उत्पत्ति होती है। हास का परितोष ही हास्य कहलाता है। 'मृच्छकटिक' मे हास्य का समुचित समावेश हुआ है। शूद्रक के हास्य का तो एक विशाल क्षेत्र है। इसमे विविधता एव विचित्रता है। हास्य के क्षेत्र मे शूद्रक की तुलना किसी भी पाश्चात्य सुखान्त नाटको के रचयिता से की जा सकती है। डा० राइडर महोदय का इस विषय मे यह विचार है—

Sudraka's humour runs the whole ganmt from grim to farcical, fro n satrical to quaint Its variety and keenness are such that king Sudrak need not fear a Comparison with the greatest of oxidental writers of Comedies [३]

हास्य 'मृच्छकटिक' का एक प्रधान गुण है जो पाठको को अत्यधिक आनन्द प्रदान करता है। यह अरुचिकर नहीं है तथा नित्य नवीन रहता है और सम्पूर्ण प्रकरण मे विद्यमान रहता हैं। इसकी विविधता से हम पूर्ण आनन्द प्राप्त करते हैं। इस विषय म भट महोदय का कथन है—

A very delightful and refreshing feature of Mrakshakatika is its humour It is neither stale nor stereotyped. It pervades about the entire play. It has a swntilating quality It is enjoyable in its keeness as in the richness of its variety [४]

---

(१) भरत नाट्यशास्त्र निर्णयसागर मस्कर पृ० ९७।

(२) भरत नाट्यशास्त्र निर्णयसागर संस्करण पृ० ९७।

(३) जी० क० भट 'प्रिफेस टु मृच्छकटिक' पृ० १२२।

(४) जी० क भट प्रिफस टु मृच्छकटिक पृष्ठ १२२

शूद्रक के हास्य की विविधता के विषय मे अपने विचार व्यक्त करते हुए डा० देवस्थली महोदय कहते हैं--

It may thus be readily admitted that Sudrak is a master of humour in all its varieties and aspects and that our play affords a unique instance of a drama very fervently pervaded by humour of every type.

अत. हास्य की दृष्टि से 'मृच्छकटिक' का सस्कृत नाटक साहित्य मे बडा महत्वपूर्ण स्थान है । शूद्रक ने अनेक प्रकार से अपने प्रकरण मे हास्य रस की सुन्दर अभिव्यजना की है । जैसे—

(१) विदूषक एव शकार के सदृश विनोदी पात्रो की सृष्टि करके,

(२) विनोद पूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न करके ।

(३) श्लिष्ट व्यग्योक्तियो के द्वारा तथा,

(४) अद्भुत प्रश्नोत्तरो द्वारा ।

विदूषक तो वस्तुत. हास्य रस का अवतार ही है । विदूषक एव शकार के कार्यों तथा सवादो से सम्पूर्ण प्रकरण म हास्य एव विनोद की अद्भुत व्यजना की गई है ।[१] यहाँ यह विशेष स्मरणीय है कि विदूषक के हास्योत्पादक कार्य उतने तथा मूर्खतापूर्ण नही हैं जितने शकार के । विदूषक के प्रथम अ क मे शकार के साथ तथा पचम अ क मे कु भीलक के साथ प्रश्नोत्तर बड़े विनोदपूर्ण हैं । उसके मूर्खतापूर्ण शब्दो के विपरीत क्रम पाठको को अत्यधिक प्रसन्न करते है—

किं भणसि——चोर कल्पयित्वा सधिर्निष्क्रान्तः ।

\+ \+ \+

स्वय की गधे से तुलना करते वह कहता है —

भूम्यामेव मया ताडितगर्दभेनेव पुनरपि लोठितव्यम्[२]

\+ \+ \+

वसन्तसेना की मोटी माता के बड़े पेट को देख कर वह कहता है कि यदि यह मर जाय तो सहस्त्रो श्रृगालो की उदर पूर्ति के लिए पर्याप्त होगी—

'अहो अस्या. कदर्पकडाकिन्या. उदरविस्तार । यदि म्रियतेऽत्र माता भवति श्रृगालसहस्त्रपर्याप्तिका, ।[४]

(१) डा० जी० वी० देवस्थली-इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ मृच्छकटिक-१३१

(२) मृच्छकटिक, पृ० १७४ ।

(३) मृच्छकटिक, पृ० १५३ ।

(४) मृच्छकटिक, ४/३० ।

संस्कृत पढती हुई स्त्री एवं काकली गायन करते हुए पुरुष को देख कर वह अत्यन्त प्रसन्न होता है[1]।

शकार के पौराणिक अज्ञान की सूचक उक्तियाँ तो अत्यधिक हास्य की सृष्टि करती हैं। यथा—

'किं भीमसेनो जमदग्निपुत्रः कुन्तीसुतो वा दशकन्धरो वा।
एषोऽहं गृहीत्वा केशहस्ते दुःशासनस्यानुकृतिं करोमि॥'[2]

शकार की मूर्खतापूर्ण हास्य योजना का दशम अंक मे कैसा सुन्दर उदाहरण है। चारुदत्त को वध्य-स्थान ले जाते समय वह कहता है—

'एतस्य दरिद्रचारुदत्तस्य वध्यं नीयमानस्य एतावान् जनसमर्दः या वेला अस्मादृश प्रवरो वरमनुष्यो वध्यं नीयते ता वेला कीदृशो भवेत्'।[3]

विनोदपूर्ण परिस्थितियों की उद्भावना करके भी दोनों नाटककारों ने पर्याप्त हास्य प्रस्तुत किया है। 'मृच्छकटिक' के द्वितीय अंक मे संवाहक तथा माथुर और द्यूतकार का झगड़ा तथा दर्दुरक के द्वारा माथुर की आँख मे धूल डालकर संवाहक की रक्षा करना हास्यपूर्ण घटनायें हैं। इसी प्रकार पंचम अंक मे चन्दनक एवं वीरक के द्वारा परस्पर जाति सूचक संकेत देने की घटना भी विनोद उत्पन्न करती है। चन्दनक वीरक को नाई जाति का तथा वीरक चन्दनक को चमार जाति का संकेत करता है।[4]

व्यंग्योक्तियों द्वारा भी शूद्रक ने हास्य की उद्भावना की है। चतुर्थ अंक मे वसन्तसेना की चेटी के स्तन, नितम्ब तथा जघन स्थलों पर व्यंग्य करते हुए विदूषक कहता है—

'भवति किं युष्माकं यानपात्राणि वहन्ति'।[5]

इसी प्रकार अद्भुत प्रश्नोत्तरों एवं प्रहेलिकाओं के माध्यम से भी शूद्रक ने बड़े सुन्दर हास्य को प्रकट किया है। पंचम अंक मे वसन्तसेना के चेट एवं विदूषक के मूर्खतापूर्ण एवं विचित्र वार्तालाप को सुन कर तो सहृदय दर्शक हँसी से लोट-पोट हो जाते हैं—

चेट :—अरे! द्वे अपि एकस्मिन् कृत्वा शीघ्रं भण।
विदूषक :—सेना वसन्ते।

---

(१) मृच्छकटिक, ४/३०
(२) मृच्छकटिक, १/२९
(३) मृच्छकटिक, ५८७
(४) मृच्छकटिक, ६/२२-२३।
(५) मृच्छकटिक, पृ०—२४६।

चेटः–ननु परिवर्त्य भण ।
विदूषकः–(कायेन परिवर्त्य) सेनावसन्ते ।
चेटः–अरे मूर्ख वटुक । पदे परिवर्तय ।
विदूषकः–(पादौ परिवर्त्य) सेनावसन्ते ।
चेटः–अरे मूर्ख ! अक्षर पदे परिवर्तय ।
विदूषकः–(विचिन्त्य) वसन्तसेना ।[1]

शकार अपने पदो की पुनरुक्तियों से मूर्खताजन्य हास्य की भी उत्पत्ति करता है। वह वसन्तसेना का अनुकरण करते हुए उससे कहता है—

कि यासि धावसि, पलायसे, प्रस्खलन्ती[2]

\+ \+ \+

वसन्तसेना के स्थान पर अन्धकार मे रदनिका के केशो को पकड़ कर वह कहता है— "एषासि वासु । शिरसि गृहीता केशेषु वालेषु शिरोरुहेषु ।"[3]

अतः अनेक समालोचक हास्य–रस की अभिव्यंजना मे 'मृच्छकटिक' को संस्कृत नाटक साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटक मानते हैं, जिसका बीज हमे चारुदत्त मे ही प्राप्त होता है ।

वीर रस

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह होता है। वह असम्मोह, अध्यवसाय, नीति, विनय, सेना, पराक्रम, शक्ति, प्रताप तथा प्रभाव आदि विभावों से उत्पन्न होता है—

"अथ वीरो नामोत्तमप्रकृतिरुत्साहात्मकः । स चासंमोहाध्यवसाय नयविनय-वलपराक्रमशक्तिप्रतापप्रभावादिभिर्विभावैरुत्पद्यते ।"[4]

स्थिरता, धैर्य, शौर्य, त्याग, निपुणता आदि अनुभावों के द्वारा उसका अभि-नय किया जाता है। धृति, मति, गर्व, आवेग, उग्रता, अमर्ष, स्मृति, रोमांच तथा प्रतिबोध उसके व्यभिचारि भाव होते हैं ।[5]

वीर रस के चार भेद हैः—

(१) दानवीर
(२) धर्मवीर

---

(१) मृच्छकटिक, पृ० २७१—२७२ ।
(२) मृच्छकटिक १/१८
(३) मृच्छकटिक १/४१
(४) भरत—नाट्यशास्त्र...निर्णयसागर...पृ० १०० ।
(५) भरत नाट्यशास्त्र...निर्णयसागर...पृ० १००

(३) युद्धवीर तथा (४) दयावीर ।

इस विषय मे साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज स्पष्ट कहते है—

"सच दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा ।"[१]

'मृच्छकटिक' मे इन चारो भेदो के उदाहरण स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं। चारुदत्त के त्याग एव उसकी दानशीलता के वर्णन मे दानवीरता की ही झलक मिलती है। चारुदत्त स्वय अपने विषय मे कहता है कि मेरी सम्पत्ति प्रमीजनो के कार्यो मे ही नष्ट हुई है, मैने किसी याचक को असन्तुष्ट नही किया, समस्त सम्पत्ति नष्ट कर देने पर भी मेरा मन क्षयभाव को नही प्राप्त होता—

"क्षीणा समार्था प्रणयिक्रियासु विमानित नैव पर स्मरामि ।
एतत् मे प्रत्ययदत्त मूल्य सत्व सखे ! न क्षयमभ्युपैति ॥"[२]

मृच्छकटिक मे चारुदत्त की दानशीलता की प्रशसा करते हुए विट कहता है —

"सो अस्मद्विधाना प्रणयै कृशीकृतो न तेन कश्चिद्विभवैर्विमानित ।
निदाघकालेष्विव सोदको ह्रदो नृणा स नृष्णामपनीय शुष्कवान् ॥"[३]

चारुदत्त की धार्मिक प्रवृत्ति मे हमे धर्मवीरता की झलक देखने को मिलती है। मृच्छकटिक मे रगमच पर सर्वप्रथम उसके दर्शन गृहदेवताओ को बलि देते हुए होते हैं। वह नित्य नियम से सन्ध्या वन्दन आदि धार्मिक कृत्य करता है, समाधि लगाता है, देवताओ की पूजा करता है और बलि प्रदान करता है। वह विदूषक को भी देव पूजा का महत्व समझाता है और बलि प्रदान करने को प्रेरित करता है। उसका कुल विविध यज्ञों के अनुष्ठान से पवित्र है तथा धार्मिक सभा एव निमन्त्रित मनुष्यो से आकीर्ण यज्ञ शालाओं मे वेद ध्वनियो से प्रकाशित हो चुका है। इस विषय म चारुदत्त स्वय कहता है —

"मखशतपरिपूत गोत्रमुद्भासित मे,
सदसि निबिडचैत्य ब्रह्मघोषै पुरस्तात् ।"[४]

चारुदत्त को अपनी धार्मिकता पर इतना अधिक विश्वास है कि वह कहता है कि मेरे भाग्य के दोष से राजपुरुषो के वाक्यो से कलकित आज मेरे धर्म मे यदि कुछ प्रभाव है तो इन्द्र के भवन म स्थित अथवा अन्य कही भी स्थित वसन्तसेना

(१) विश्वनाथ कविराज–साहित्यदर्पण–हिन्दी डा० सत्यव्रतसिंह ३/२३४

(२) भास–चौखम्बा–१९६०–१/४

(३) मृच्छकटिक चौखम्बा—१९६२–१/४६ ।

(४) मृच्छकटिक, १०/२२ ।

अपने स्वभाव को प्रकट कर मेरे कलंक को दूर करे।[1] कुछ समय पश्चात् वसन्तसेना वास्तव में प्रकट होकर उसकी निर्दोषता और निष्कलंकता सिद्ध करती है।

चतुर्थ अंक मे नेपथ्य में राजपुरुषों के द्वारा घोषित यह सूचना प्राप्त करने पर कि किसी ज्योतिषी के द्वारा कही गई इस बात पर कि 'गोपाल दारक आर्यक राजा होगा' भयभीत होकर राजा पालक ने उसे कठोर कारागार मे डाल दिया है, शर्विलक अपने मित्र आर्यक को मुक्त कराने के लिए अपनी नव-विवाहिता वधू को भी छोड़ कर चल देता है और घोषणा करता है कि मैं राहु के मुख मे पड़े हुए चन्द्र बिम्ब के सदृश उसे शीघ्र ही मुक्त करूँगा—

"प्रियसुहृदमकारणे गृहीत रिपुभिरसाधुभिराहितात्मशंकैः।
सरभसमभिपत्य मोचयामि स्थितमिव राहुमुखे शशांक बिम्बम् ॥[2]

यहाँ वस्तुतः युद्धवीर का ही आभास मिलता है।

चारुदत्त की दयालुता तथा शरणागतवत्सलता मे हमे दयावीरता की ही झलक देखने को मिलती है। चाण्डालो के शब्दो मे चारुदत्त 'सुजनशकुनाधिवास' तथा 'सज्जनपुरुषद्रुम' है। चेट उसे प्रणयिजन-कल्पपादप' कहता है।

चारुदत्त इतना अधिक दयालु है कि वह निर्जीव कुसुमित लता को झुका कर पुष्पचयन इसलिए नही करता कि कहीं उसे कष्ट न हो—

"योऽहं लता कुसुमितामपि पुष्पहेतोः
आकृष्य नैव कुसुमावचयं करोमि।"[3]

चारुदत्त की दयाशीलता उस समय तो पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है जब वह अपने विरुद्ध षड्यन्त्र करने वाले और प्राणदण्ड दिलवाने वाले शकार को भी अभयदान देकर क्षमा कर देता है।

अद्भुत रस

अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। वह दिव्यजनो के दर्शन, अभीप्सित मनोरथ की प्राप्ति, उपवन देवमन्दिर आदि मे गमन, सभा, विमान माया, इन्द्रजाल आदि की सम्भावना आदि विभावो से उत्पन्न होता है। भरत मुनि इस विषय मे कहते हैं—

"अथाद्भुतो नाम विस्मयस्थायि भावात्मकः। स च दिव्यजन दर्शनेप्सित-मनोरथावाप्त्युपवन देवकुलादिगमन सभा विमान मायेन्द्र जाल सम्भावनादिभिर्विभावैः-

१—मृच्छकटिक चौखम्बा—१०/३४।
२— " " ४/२७।
३— " " ९/२८।

उत्पद्यते ।"[1]

नयन विस्तार, निर्निमेष दृष्टि, रोमाच, अश्रु, स्वेद, हर्ष, साधुवाद, दान, निरन्तर हटाकर, बाहु, मुख, वस्त्र अंगुली आदि के घुमाने आदि अनुभावों से उसका अभिनय किया जाता है। स्तम्भ, अश्रु, स्वेद, गद्‌गद्, रोमाच, आवेग, सभ्रम, प्रहर्ष, चपलता, उन्माद, धृति, जड़ता तथा मूर्च्छा आदि उसके व्यभिचारि भाव होते हैं।[2]

परिव्राजक की प्राणरक्षा के विषय मे कर्णपूरक कहता है कि विन्ध्याचल के शिखर के समान विशाल उस क्रुद्ध हाथी को लोह-दण्ड से मार कर, उसके दांतों के बीच मे स्थित उस सन्यासी को मैंने बचा लिया—

"आहत्य सरोष त हस्तिन विन्ध्यशैलशिखराभम् ।
मोचितो मया स दन्तान्तरसस्थित. परिव्राजकः ॥"[3]

उपर्युक्त स्थलो मे कर्णपूरक द्वारा अद्वितीय वीरता का कार्य करने से तथा उपस्थित जन-समुदाय के आश्चर्यचकित होने तथा साधुवाद करने के कारण अद्‌भुत रस ही है। नाटक के अन्त मे अद्‌भुत रस होना चाहिये—'सर्वत्रान्तेऽद्‌भुत'। इस विषय मे विश्वनाथ कविराज अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं—'कार्यो निर्वहणेऽद्‌भुत ।' नाटक और प्रकरण मे अनेक समानतायें होती है। अत अन्तिम अक मे आर्यक के द्वारा राज्य प्राप्ति, चारुदत्त की प्राणरक्षा तथा धूता को अग्नि प्रवेश से रोका जाना तथा वसन्तसेना के कुलवधू पद की प्राप्ति से ईप्सित मनोरथ की प्राप्ति होती है। अत यहा अद्‌भुत रस ही है।

बीभत्स रस

बीभत्स रस का स्थायि भाव जुगुप्सा होता है। वह अहृद्य, अप्रिय, अपवित्र, तथा अनिष्ट वस्तुओं को देखने, सुनने, उद्वेजन तथा परिकीर्तन आदि विभावों से उत्पन्न होता है—"अथ बीभत्सो नाम जुगुप्सास्थायिभावात्मक । स चाहृद्याप्रशस्ताप्रियवेक्षानिष्टश्रवणदर्शनोद्वेजनपरिकीर्तनादिभिर्विभावैरुत्पद्यते ।"[4]

समस्त अगो का संकोचन, मुख के अवयवो का सिकोड़ना, उल्लेखन, थूकना और उद्वेजन आदि अनुभावो के द्वारा उसका अभिनय होता है। अपस्मार, उद्वेग, आवेग, मूर्च्छा, व्याधि और मृत्यु आदि उसके व्यभिचारि भाव होते है।[5]

अष्टम अक मे शकार के प्रस्ताव को वसन्तसेना के द्वारा अस्वीकृत कर दिये जाने

(१) भरत नाट्यशास्त्र ..निर्णयसागर . पृ० १०२ ।
(२) भरत .नाट्यशास्त्र निर्णयसागर...पृ० १०२ ।
(३)—मृच्छकटिक, २।२०
(४) भरत .नाट्यशास्त्र...(निर्णयसागर) पृ० १०२ ।
(५) भरत.. नाट्यशास्त्र...(निर्णयसागर) .पृ० १०२ ।

वह उसे मारने को उद्यत हो जाता है। वसन्तसेना अपनी माता तथा आर्य रुदत्त को पुकारती है तथा मरने से, पूर्व भी अपने प्रेमी को ही नमस्कार रती है। शकार उसका गला घोट देता है और वह मूर्च्छित होकर निश्चेष्ट गिर ती है।

वसन्त सेना — नम आर्य चारुदत्ताय।

शकार — म्रियस्व गर्भदासि म्रियस्व। नाट्येन कण्ठे निपीडयन् मारयति।

(वसन्तसेना मूर्च्छिता निश्चेष्टा पतति)[1]

इस दृश्य मे वीभत्स रस का चित्रण हुआ है।

भयानक रस

भयानक रस का स्थायिभाव भय होता है। भयानक रस अट्टहास आदि कृत शब्द से पिशाच आदि के दर्शन से, शृगाल उलूक आदि के त्रास से, घबराहट , सूने मकान अथवा वन मे जाने से, अपने सम्बन्धियो के बध, बन्धन आदि के र्शन श्रवण अथवा चर्चा आदि विभावो से उत्पन्न होता है। इस विषय मे भरतमुनि ा यह कथन है —

"अथ भयानको नाम भयस्थायिभावात्मक । स च विकृतरवसत्वदर्शनशिवोलूक ासोद्वेगशून्यागारारण्यगमनस्वजनवधबन्धदर्शनश्रुति कथादिभिर्विभावैरुत्पद्यते।"[2]

कापते हुए हाथ-पैर, नेत्रो की चचलता, रोमाञ्च, मुख की विवर्णता तथा वर भेद आदि अनुभावो से उसका अभिनय होता है। हाथ पैर आदि का जकडना सीना, गद्गद् होना, रोमाच, कम्पन, स्वरभेद, विवर्णता, शका, मोह, दीनता, आवेग चञ्चलता, जडता, त्रास, अपस्मार तथा मरण आदि उसके व्यभिचारिभाव होते है।[3]

द्वितीय अक मे वसन्तसेना के हाथी खुण्टमोडक के उन्मत्त होने तथा उपस्थित जनसमुदाय की भगदड के वर्णन म भयानक रस का ही परिपाक हुआ है। दुष्ट हाथी के भय से भागती हुई स्त्रियो के नूपरो के झकृत होने तथा मेखला एव ककणो के टूटने का शद्रक ने कैसा सुन्दर और सजीव वर्णन किया है—

"विचलित नूपुरयुगल छिद्यन्ते च मेखला मणिखचिता ।
वलयाश्च सुन्दरतरा रत्नाङ्कुरजाल प्रतिबद्धा ।[4]

दुष्ट हाथी को सामने आता हुआ देख कर लोग बच्चो को हटाते हैं तथा स्वय पेड पर चढ जाते हैं।[5]

१– मृच्छकटिक चौखम्बा १९६२ पृ० ४२९।
२– भरत, नाट्यशास्त्र, निर्णय सागर सस्करण, पृ० १०१।
३– भरत, नाट्यशास्त्र, निर्णय सागर सस्करण, पृ० १०१।
४– मृच्छकटिक, २/१९।
५– मृच्छकटिक, २/१८।

करुण रस

करुण रस की उत्पत्ति शोक नामक स्थायिभाव से होती है। वह शाप-क्लेश में पतित प्रियजन के वियोग, विभवनाश, वध, बन्धन, देश-निर्वासन (विद्रव) अग्नि आदि में (जलकर) मर जाना अथवा व्यसनों में फस जाने आदि विभावों से उत्पन्न होता है—

"अथ करुणो नाम शोकस्थायिप्रभव। स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविप्रयोगविभवनाशवधबन्धविद्रवोपघातव्यसन सयोगादिभिर्विभावैः समुपजायते।'[1]

नायक चारुदत्त निर्धनावस्था के कारण क्लेश में पड़ा है, उसके वैभव का नाश हो गया है। शकार वसन्तसेना का गला घोट देता है। चारुदत्त को उसकी हत्या के अभियोग में बन्धनागार में डाल दिया जाता है। उसे अपने प्रियजनों का वियोग प्राप्त होता है।

इस प्रकार करुण रस के प्रायः सभी विभाव मृच्छकटिक में प्राप्त होते हैं। अश्रुपात, विलाप, मुख सूखना, विवर्णता, अङ्गों की शिथिलता, लम्बी सांसें मरना तथा स्मृति लोप आदि अनुभावों के द्वारा इसका अभिनय किया जाता है। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, आवेग, भ्रम, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, त्रास, मरण, स्तम्भ, कम्पन, विवर्णता, अश्रु तथा स्वरभेद आदि करुण रस के व्यभिचारि भाव हैं।[2]

महाकवि भवभूति के अनुसार तो करुण रस ही नाटक साहित्य का एकमात्र प्रधान रस है। उन्होंने उत्तर रामचरित में स्पष्ट घोषणा की है—

"एको रस करुण एव निमित्त भेदात्।
भिन्न पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्॥
आवर्तबुद्बुद् तरगमयान् विकारा
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समग्रम्॥[3]

अनिष्ट की प्राप्ति एव इष्ट की हानि से ही करुणा प्रकट होती है। करुण के चित्रण से ही सहृदय करुण रस का आस्वाद लेते हैं। प्रथम अक में चारुदत्त वैभव के विनाश एव निर्धन दशा का बड़ा कारुणिक वर्णन है।

उपर्युक्त अनुभवों तथा व्यभिचारिभावों में से अनेक मृच्छकटिक में प्राप्त होते हैं। इष्ट जन के वध के दर्शन से अथवा अप्रिय वचनों के सुनने से भी करुण रस

१– भरत, नाट्यशास्त्र, निर्णय सागर सस्करण, पृ० ९९।
२– भरत नाट्यशास्त्र निर्णय सागर सस्करण पृ० ९९।
३– भवभूति उत्तर रामचरित ३/४७

उत्पत्ति होती है। बहुत जोर से रोना, मूर्च्छित होना, कोसना, विलाप करना, शरीर को गिराना तथा छाती पीटना आदि के द्वारा करुण रस का अभिनय किया जाता है।[1]

'मृच्छकटिक' में चारुदत्त दरिद्रता के विषय मे कहता है—

'सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रता।
धृत. शरीरेण मृतः स जीवति ॥'[2]

दरिद्रता के कारण चारुदत्त इतना दु खी है कि वह मरण को अच्छा समझता , दरिद्रता को नही—

'दारिद्रयान्मरणाद्वा मरण मम रोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेश मरण दारिद्रयमनन्तक दु.खम् ॥'[3]

उसे इस बात का दु ख है कि धनरहित होने के कारण अतिथियो ने उसका ार त्याग दिया है।[4]

प्रथम अक में ही द्यूतकर एव माथुर के द्वारा सवाहक को पीटे जाने तथा उसके भूमि पर गिर जाने के दृश्य मे भी करुण रस का ही वर्णन है। तृतीय अक ने वसन्तसेना के आभूषणो की चोरी के विषय मे चेटी से सूचना प्राप्त कर चारुदत्त की पत्नी धूता मूर्च्छित हो जाती है।[5]

प्रकरण के चतुर्थ अंक मे शर्विलक के द्वारा चुराये गये आभूषणो को देखकर मदनिका एव वसन्तसेना अत्यधिक दुःखी होती हैं दोनो मूर्च्छित भी हो जाती हैं।

'मृच्छकटिक' के अष्टम अक मे शकार वसन्तसेना का अपने प्रणय प्रस्ताव को स्वीकार न करने पर गला घोट देता है जिससे वह मूर्च्छित हो जाती है। विट उसे मृत समझ कर स्वय मूर्छित हो जाता है तथा आश्वस्त होकर बडा कारुणिक विलाप करता है।[6] करुण रस की जैसी सुन्दर अभिव्यजना इस दृश्य मे हुई है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

दशम अक मे चारुदत्त के मृत्युदण्ड की घोषणा के अनन्तर उसको वध्यस्थल से जाते समय मार्ग मे विदूषक एव चारुदत्त के पुत्र का विलाप तथा स्वयं चारुदत्त

१– भरत नाट्यशास्त्र निर्णयसागर सस्करण" पृ० ९९।
२– मृच्छकटिक, १/१०
३– मृच्छकटिक १।११
४– मृच्छकटिक, १/१२
५– मृच्छकटिक, पृ०–१८२
६– मृच्छकटिक, ८/३८

का रुदन तथा रोहसेन की चाण्डालो से पिता के स्थान पर स्वय उसे मार डालने की प्रार्थना तो मानो मूर्तिमान करुण रस है—

'दारक — व्यापादयत माम्, मुचत आवुकम् ।'[1]

दशम अक मे ही धूता के अग्नि प्रवेश के विषय मे सूचना पाकर चारुदत्त करुणापूर्वक विलाप करता है :—

'हा प्रिये ! जीवत्यपि मयि किमेतत् व्यवसितम्'[2]

वह मूच्छित भी हो जाता है । अतः करुण रस का मार्मिक चित्रण हुआ है।

शान्त रस

शान्त रस का स्थायिभाव शम होता है । वह तत्वज्ञान, वैराग्य और चित्तशुद्धि आदि विभावो से उत्पन्न होता है—

'अथ शान्तो नाम मस्थायि भावात्मको मोक्षप्रवर्तक । स तु तत्वज्ञान वैराग्य शयशुद्धयादिभिर्विभावै समुत्पद्यते ।'[3]

यम, नियम, अध्यात्मध्यान, धारणा, उपासना, सब प्राणियो पर दया, सन्यास धारण आदि अनुभावो से उसका अभिनय किया जाता है । निर्वेद, स्मृति, धृति, शौच, स्तम्भ तथा रोमाच आदि शान्तरस के व्यभिचारिभाव होते हैं ।[4]

अष्टम अक के प्रारम्भ मे बौद्ध धर्म के निदेशक तत्वो का विवेचन करते हुए भिक्षु की उक्तियो मे सहृदय शान्त रस का ही आस्वाद ग्रहण करते हैं । इन्द्रिय दमन एव अविद्या तथा अहकार का विनाश कर आत्मा की रक्षा के विषय में भिक्षु कहता है—

'पञ्चजना येन मारिता' स्त्रिय मारयित्वा ग्रामोरक्षितः
अवलश्च चाण्डालो मारित अवश्य स नरः स्वर्गं गाहते ।।'[5]

जो मनुष्य चोर रूपी पाँच ज्ञानेन्द्रियो का दमन कर देता है, स्त्री रूपी अविद्या का नाश कर ग्रामरूपी आत्मा की रक्षा कर लेता है तथा शिथिलीभूत चाण्डालरूपी अहकार को मार देता है, वह निश्चित ही स्वर्ग जाता है ।

इस प्रकार 'मृच्छकटिक' मे प्राय सभी रसो का सुन्दर परिपाक दृष्टिगोचर होता है ।

१— मृच्छकटिक पृ० ५३८ ।
२— मृच्छकटिक पृ०
३— भरत नाट्यशास्त्र-निर्णय सागर··· पृ० १०३
४— भरत नाट्यशास्त्र-निर्णय सागर··· पृ० १०३ ।
५— मृच्छकटिक ८/२ ।

मृच्छकटिक म प्रत्येक अक की दृष्टि से रस योजना इस प्रकार है—

प्रस्तावना

'मृच्छकटिक' मे नान्दीपाठ के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है। वह प्रेक्षको का नाटककार शूद्रक का परिचय देने के पश्चात् अपने घर म ' वेश करता है। बुभुक्षा से पीडित होने के कारण वह पत्नी से भोजन के विषय म पूछता है, किन्तु पत्नी उससे परिहास करती है—

सूत्रधार — किं किमस्ति ?
नटी — तद्यथा गुडौदन घृत दधि तण्डुलान,
आर्येणातव्य रसायन सर्वमस्तीति। एव तव देवा आशसन्ताम।
सूत्रधार — किमस्माक गेहे सर्वमस्ति ? अथवा परिहससि ?
नटी — (स्वगतम्) परिहसिष्यामि तावत्।
(प्रकाशम्) आर्य, अस्त्यापणे।[1]

एक अन्य स्थल पर नटी के उपवास के विषय म यह ज्ञात होने पर कि यह व्रत परलोक म प्राप्त होने वाले यथेच्छ पति के लिए है— नट कहता है सज्जना ! देखिये मेरे भात क व्यय पर यह पारलौकिक पति ढूढ रही है—

'सूत्रधार — प्रेक्षन्ता प्रेक्षन्तामार्यमिश्रा। मदीयेन भक्त परिव्ययेन पारलौकिको भर्तान्विष्यते।[2]

अत यहां हास्य रस का ही पुट है।

प्रथम अक — प्रथम अक के प्रारम्भ म चारदत्त अपनी निर्धन दशा के कारण अत्यधिक चिन्तित दिखाई पडता है। विदूषक उससे पूछता है 'भो किमिद चिन्त्यते।' इसका उत्तर देते वह निर्धनता के विषय म कहता है कि जो व्यक्ति सुख से दरिद्रता को प्राप्त करता है वह जीवित रहते हुए भी मृत के सदृश है।[3]

इसी प्रकार अनेक श्लोकों म दोनो प्रकरणो म चारुदत्त के द्वारा अपनी धन सबधी चिन्ता अभिव्यक्त करने के कारण यहा चिन्ता रूप सचारी भाव का आस्वाद होता है।

इसके आगे के दृश्य म व्याध के द्वारा अनुसरित भयभीत हरिणी के सदृश, (व्याधानुसार चकित हरिणीव) विट शकार एव चेट के द्वारा पीछा की गई वसन्तसेना रगमच पर प्रवेश करती है। 'मृच्छकटिक' म अभिनय सम्बन्धी निर्देश में कहा गया है – 'तत प्रविशति विटशकारचेटैरनुगम्यमाना वसन्तसेना' इस

१– मृच्छकटिक पृ० १४
२– मृच्छकटिक पृ० १५–१६
३– मृच्छकटिक, १/१०

दृश्य में वस्तुतः शृंगाराभास ही है। वसन्तसेना का पीछा करते हुये शकार अपने पौराणिक कथाओं सम्बन्धी अज्ञान को ही प्रकट करता है तथा हास्य की पर्याप्त सामग्री उपस्थित करता है। वह माल्य-गन्ध को तो सुनता है तथा आभूषणों के शब्दों को नासिका से स्पष्ट नहीं देख पाता है—'श्रृणोमि माल्यगन्धम्, अन्धकार पूरितया पुनर्नासिकया न सुव्यक्त पश्यामि भूषणशब्दम्।'[1] वह वसन्तसेना के द्वारा कहे गये 'शान्तोऽसि' को 'श्रान्तोऽसि' समझता है। अतः यहां भी हास्य का पुट है।

तत्पश्चात् शकार वसंतसेना के स्थान पर रदनिका को केशों से पकड़ लेता है। रदनिका भयभीत होकर अपना दैन्य प्रकट करती है—

'किमार्यमिश्रैर्व्यवसितम्।' रदनिका के बलात्कार का पता लगने पर विदूषक क्रोध से कहता है— भो स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावत् चण्डोभवति, किं पुनरहं ब्राह्मण। तदेतेन अस्मादृश जनभागधेय कुटिलेन दण्डकाष्ठेन दुष्टस्येव शुष्क वेणुकस्य मस्तक ते प्रहारै कुट्टयिष्यामि।'[2] यहाँ क्रोध प्रकट होने के कारण रौद्र ही प्रतीत होता है। बाद में विट के द्वारा क्षमा प्रार्थना करने पर क्रोध की शान्ति हो जाती है।

प्रथम अंक के अन्तिम दृश्य में वसन्तसेना एवं चारुदत्त के प्रथम साक्षात्कार में दोनों की पारस्परिक उत्सुकता प्रकट होती है। वसन्तसेना चारुदत्त के उत्तरीय को देखकर उसके यौवन के विषय में कहती है —

'आश्चर्यम् जातीकुसुमवासित प्रावारक। अनुदासीनमस्य यौवन प्रतिभासते।'[3] वसन्तसेना चारुदत्त के हृदय में अपने प्रति कामना उत्पन्न करती है।'[4] चारुदत्त से विदा होते हुए वसन्तसेना भविष्य में भी उससे अपना सम्बन्ध रखने के लिए अपने आभूषणों को उसके समीप ही धरोहर के रूप में रख जाती है। अतएव यहाँ वस्तुतः सम्भोग शृंगार का उदय होता है।

द्वितीय अंक

प्रकरण के प्रथम दृश्य में वसन्त सेना तथा मदनिका का वार्तालाप है। वसन्तसेना चारुदत्त के प्रति रागात्मक विचारों में मग्न है। मदनिका उससे कहती है—

'आर्यया. शून्यहृदयत्वेन जानामि हृदयगत कमप्यार्याभिलषतीति'[5]

मदनिका वसन्तसेना से कहती है कि चारुदत्त तो दरिद्र है। अतः आपके द्वारा

(१) मृच्छकटिक पृ० ५६

(२) मृच्छकटिक, पृ० ६७।

(३) " पृ० ८२।

(४) " १/५५।

(५) " पृ० ९६।

म करने के योग्य नही है' किन्तु वसन्त सेना उससे स्पष्ट कह देती है कि दरिद्रता कारण ही वह उससे प्रेम करती है, अतएव उसका प्रेम सच्चा है—

अतएव काम्यते ! दरिद्रपुरुषसङ्क्रान्तमनाः खलु गणिका लोके अवचनीया भवति ।'[2]

मदनिका उससे पूछती है,'यदि तुम उससे प्रेम करती हो तो फिर तुरन्त अभिसार क्यों नही करती हो' ।'[3] वसन्तसेना उत्तर देते हुए कहती है—

'सहसा अभिसार्य्यमाणः प्रत्युपकारदुर्बलतया स जनो दुर्लभदर्शनः पुनर्भविष्यति ।'[4]

मदनिका के द्वारा यह पूछने पर कि क्या तुमने पुनर्मिलन के लिए ही अलकार धरोहर के रूप मे उसके यहाँ रखा है, वसन्त सेना कहती है, हा । तुमने ठीक जाना । अतः स्पष्ट रूप से यहाँ विप्रलम्भ श्रृगार की ही झलक है ।

द्वितीय दृश्य मे द्यूतकर एव माथुर सवाहक को खोजते हैं जो उल्टे पैरो से एक मन्दिर मे प्रवेश कर प्रतिमा के रूप मे स्थित हो जाता है । वे दोनो भी आकर मन्दिर मे ही जुआ खेलने लगते हैं । सवाहक भी अपने मन को वश मे न करके आकर खेलने लगता है और वे दोनो उसे पकड़ कर पीटते हैं और अपनी दस सुवर्ण मुद्रायें उसी समय मागते हैं । तभी दर्दुरक आकर उसकी रक्षा करता है । वह माथुर से झगडा करता है, उसे पीटता है और उसकी आँख मे धूल डाल कर सवाहक को भगा देता है और स्वय भी भाग जाता है । निश्चित रूप से इस दृश्य मे सहृदय हास्य-रस का ही अनुभव करते हैं ।

तृतीय दृश्य मे सवाहक वसन्तसेना के घर मे प्रवेश कर शरण की याचना करता है । सवाहक का परिचय प्राप्त करने पर वसन्तसेना उसे माथुर और द्यूतकर के ऋण से मुक्त कर देती है । वह अपनी चेटी से कहती है—'तद् गच्छ एतयोः सभिक द्यूतकरयो. 'अयमार्य एव प्रतिपादयति' इति इद हस्ताभरण त्व देहि ।'[5]

द्वितीय अक के अन्तिम दृश्य मे वसन्तसेना का चेट कर्णपूरक आकर उसे सूचित करता है कि आज उसने विन्ध्यपर्वत शिखर के सदृश विशाल मस्त गन्धगज के दातो के मध्य आये हुए परिव्राजक की रक्षा की है :—

---

(१) मृच्छकटिक. पृ० ९९ ।
(२) „ पृ० ९९ ।
(३) „ पृ० १०० ।
(४) „ १०१ ।
(५) „ .... पृ० ११२

'आहत्य सरोष त हस्तिन विन्ध्यशैलशिखराभम्।
मोचितो मया स दन्तान्तरसंस्थित परिव्राजकः॥'[1]

तृतीय अंक

'मृच्छकटिक' के प्रारम्भ मे अर्ध रात्रि व्यतीत हो जाने पर भी चारुदत्त के घर न आने पर उसका चेट चिन्ता व्यक्त करता है[2] तत्पश्चात् चारुदत्त और विदूषक प्रवेश करते हैं। चारुदत्त रेभिल के गीत एव वीणा की मुक्तकण्ठ से प्रशसा करता है[3]। विदूषक परिहास करते हुए कहता है, मुझे तो सस्कृत पढती हुई स्त्री एव काकली गान करते हुए पुरुष दोनो पर हँसी आती है।[4] जब चारुदत्त चेट से कहता है कि विदूषक को पैर धोने का जल दो तो वह कहता है मुझे जल से क्या प्रयोजन, पीटे हुए गधे के समान मैं पृथ्वी पर ही लोट जाऊँगा।[5] स्पष्ट रूप मे यहाँ हास्य रस ही परिलक्षित होता है। तत्पश्चात चारुदत्त और विदूषक सो जाते हैं।

अगले दृश्य मे शर्विलक चारुदत्त के भवन मे प्रवेश कर वसन्तसेना के आभूषणो की चोरी करता है उसके इस कृत्य पर प्रेक्षको को विस्मय होता है। स्वप्न में ही विदूषक कहता है कि हे मित्र तुम्हे गो और ब्राह्मण की शपथ यदि इस सुवर्णभाण्ड को ग्रहण न करो[6]। तत्पश्चात् रदनिका के द्वारा जगाये जाने पर और चोर के विषय मे बताने पर कहता है—

आ दास्या पुत्रि कि भणसि चौर कल्पयित्वा सन्धिर्निष्क्रान्त'

तृतीय अक के अतिम दृश्य मे चारुदत्त एव धूता की उदारता तथा अपनी कीर्ति के लिए चिन्ता प्रकट होती है। चारुदत्त अपने घर मे लगी सेंध की भी प्रशसा करता है। उसे इस बात का दुःख है कि चोर यहाँ से निराश हो गया होगा किन्तु सुवर्णभाण्ड की चोरी के विषय मे पता लगने पर वह प्रसन्न होकर विदूषक से कहता है—'वयस्य दिष्ट्या ते प्रिय निवेदयामि यदसौ कृतार्थो गत।'[7] उसे इस बात का दुःख है कि धरोहर के रूप मे स्वर्णभूषणो की चोरी पर कोई विश्वास नही करेगा, सब दरिद्र होने के कारण मुझे ही दोष देंगे—

'क श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मा तूलयिष्यति।
शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता॥'[8]

(१) मृच्छकटिक, पृ० २/२०
(२) " पृ० १४७
(३) " पृ० १४७
(४) " पृ० १४८
(५) " पृ० १५३
(६) " पृ० १६८
(७) " पृ० १७९
(८) " ३/२४

किन्तु वह प्रतिज्ञा करता है कि भिक्षा के द्वारा भी धनोपार्जन कर धरोहर समान धन लौटा दूँगा—

'भैक्ष्येणाप्यर्जयिष्यामि पुनर्न्यासप्रतिक्रियाम् ।'[1]

धूता यह जानने पर कि धरोहर की चोरी हो गई है, मूर्च्छित हो जाती है। ...ना प्राप्त होने पर चारुदत्त की कुशलता का समाचार प्राप्त कर वह प्रसन्न होती ...किन्तु उसे पति के शरीर से अधिक उसके चरित्र की चिन्ता है—

'हञ्जे किं भणसि—'अपरिक्षत शरीरः आर्यपुत्र.' इति । वरमिदानीं स...रीरेण परिक्षत. न पुनश्चारित्रेण' ।[2] अतः पति के चरित्र की रक्षा के लिए वह अपनी ...मूल्य रत्नावली का भी बलिदान कर देती है। स्त्रीद्रव्य के द्वारा अनुकम्पित होने ...ा चारुदत्त को दु ख है किन्तु सुख एव दु ख में समान रहने वाली पत्नी प्राप्त करने ...या चरित्र की रक्षा का उसे अभिमान भी है।

चतुर्थ अक—प्रकरण के प्रारम्भिक दृश्य में वसन्त सेना स्वचित्रित चारुदत्त के ...चित्र के विषय में मदनिका से पूछती है—

'हञ्जे मदनिके ! अपि सुसदृशी इय चित्रकृतिः आर्य चारुदत्तस्य'[3] उत्तर देते हुए मदनिका कहती है—'सुसदृशी'

चेटी के द्वारा यह ज्ञात होने पर कि द्वार पर रथ उपस्थित है, वसन्त सेना उत्सुकतापूर्वक पूछती है—"किम् आर्य-चारुदत्तो मा नेष्यति ?" किन्तु चारुदत्त के स्थान पर शकार के विषय में ज्ञात कर वह क्रुद्ध होकर चेटी से कहती है—'अपेहि ! मा पुनरेव भणिष्यसि ।'

द्वितीय दृश्य में मदनिका तथा उसके प्रेमी शर्विलक का वार्तालाप है। यह ज्ञात होने पर कि उसने चारुदत्त के घर से वसन्तसेना के आभूषणों को चुराया है, मदनिका उससे कहती है कि वह इन आभूषणों को चारुदत्त की ओर से वसन्त सेना को वापस कर दे। दोनों के वार्तालाप में शृंगार भाव की भी झलक है।

तृतीय दृश्य में वसन्त सेना मदनिका को मुक्त कर शर्विलक की वधू के रूप में उसके साथ भेज देती है और कहती है—'साम्प्रत त्वमेव वन्दनीया सवृत्ता । तद्गच्छ, आरोह प्रवहणम्, स्मरसि माम् ।'[4] यहाँ वसन्तसेना के औदार्य एव उसके प्रति शर्विलक की कृतार्थता की अभिव्यक्ति होती है। मार्ग में यह ज्ञात होने पर कि राजा पालक ने उसके मित्र गोपालदारक आर्यक को कारागार में डाल दिया है क्योंकि ज्योतिषियों

---

(१) मृच्छकटिक पृ० ३/२६
(२) ,, पृ० १८३
(३) ,, पृ० १९०
(४) ,, पृ० २२३

ने भविष्यवाणी की थी कि वह राजा होगा । तब वह उत्साहपूर्वक घोषणा करता है—

'प्रियसुहृदमकारणे गृहीत, रिपुभिरसाधुभिराहितात्मशङ्कं ।
सरभसमभियत्य मोचयामि, स्थितमिव राहुमुखे शशाङ्कबिम्बम् ॥'[1]

यहाँ वस्तुत वीर रस का ही परिपाक हुआ है ।

चतुर्थ अक के अन्तिम दृश्य मे विदूषक वसन्तसेना के कुबेर के सदृश भवन के आठ प्रकोष्ठों मे अतुल सम्पत्ति को देख कर विस्मित हो जाता है। अत यहाँ अदमुत रस का ही आभास होता है । वसन्तसेना की स्थूलकाय माता को देखकर वह कहता है कि यदि यह मरे तो सहस्रो शृगालो के भोजन के लिए पर्याप्त होगी—

'यदि म्रियतेऽत्र माता भवति शृगालसहस्रपर्याप्ता ।'[2]

इसी प्रकार अनेक स्थल हैं जिनमे हास्य रस की चवणा होती है अत इस दृश्य म हास्य एव अदमुत दोनो का मिश्रित आस्वाद होता है ।

पचम अक—मृच्छकटिक मे पचम अक के प्रथम दृश्य मे विदूषक के द्वारा यह समाचार प्राप्त कर कि वसन्त सेना ने रत्नावली स्वीकार कर ली है चारुदत्त बहुत प्रसन्न होता है । यह जानने पर कि वह सूर्यास्त के पश्चात उससे मिलने आयेगी चारुदत्त कहता है—वयस्य ! आगच्छतु परितुष्टा यास्यति ।' विदूषक चारुदत्त से कहता है कि वेश्या तो धन से वश म की जाती है वह तो धनिक के पास ही रहती है—

'यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता, धनहार्यो ह्यसौ जन "[3]

किन्तु चारुदत्त मन मे ही कहता है कि नहीं वसन्त सेना तो गुण के वशीभूत हो सकती है—(स्वगतम्) न गुण हार्यो ह्यसौ जन ।' किन्तु वह प्रकट रूप से विदूषक से कहता है—

वयमर्थै परित्यक्ता ननु त्यक्तैव सा मया ।[4]

यहा निश्चित रूप से चारुदत्त का वसन्तसेना के प्रति औत्सुक्य प्रकट होता है ।

द्वितीय दृश्य म वसन्त सेना का चेट प्रवेश करता है । वह अपनी प्रशसा करते हुए कहता है कि मैं गध के समान गाना गाता हूँ गन्धर्व, तुम्बुरु और देवर्षि नारद भी मेरे सामने क्या हैं—गीत गायामि गदभस्यानुरूप, को मे गाने तुम्बुरुर्नारदो

(१) मृच्छकटिक पृ० ४/२७
(२) ४/२९
(३) , ५/१
(४) " ५/१

।'। वह चारुदत्त की वाटिका में आकर ककड़ी मार कर विदूषक को संकेत देता तत्पश्चात् वसन्त सेना के आगमन की सूचना विषयक चेट और विदूषक के संवाद ग़स्य रस का ही आस्वाद होता है।

तृतीय दृश्य में उज्ज्वल अभिसारिका-वेश-धारिणी उत्कंठिता वसन्तसेना तथा दुर्दिन का वर्णन करते हुए चारुदत्त के घर जाते हैं। अभिसार विषयक अपनी ा के विषय में वसन्तसेना कहती है—

'मेघा वर्षन्तु गर्जन्तु मुञ्चन्त्वशनिमेव वा।
गणयन्ति न शीतोष्णं रमणाभिमुखाः स्त्रियः ॥'[2]

वस्तुतः यह वर्णन अगले दृश्य में होने वाले चारुदत्त और वसन्तसेना के समा- ा की पृष्ठभूमि के रूप मे ही है।

पचन अंक के अन्तिम दृश्य मे चारुदत्त और वसन्तसेना का एक बार फिर लन होता है। वसन्त सेना को देख कर स्तन पर गिरती हुई वर्षा की बूँदो के पय में चारुदत्त कहता है कि यह स्तन सिंहासनारूढ युवराज के सदृश अभिषिक्त । गया है—

'वर्षोदकमुद्गिरता श्रवणान्तविलम्बिना कदम्बेन।
एकः स्तनोऽभिषिक्तो नृपसुत इव यौवराज्यस्थः ॥'[3]

अपने घर आई हुई वसन्तसेना के शीतल अंगों का आलिंगन करके वह अपने ो धन्य मानता हुआ कहता है—

'धन्यानि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति ॥'[4]

अतः स्पष्ट रूप से इस दृश्य मे सम्भोग शृंगार का पूर्ण परिपाक दृष्टिगोचर ोता है।

षष्ठ अङ्क—षष्ठ अंक के प्रथम दृश्य मे वसन्तसेना और चेटी परस्पर वार्ता- लाप करती हैं। वसन्तसेना चारुदत्त से मिलने को बहुत उत्सुक है। चेटी से यह जान- कर कि उसे भी पुष्पकरण्डक उद्यान में चारुदत्त से मिलने जाना है, वह बहुत प्रसन्न होती है और चेटी का आलिंगन कर लेती है। चारुदत्त के भवन मे आभ्यन्तर चतुः- शालक मे स्वयं प्रविष्ट होने पर वसन्तसेना को आश्चर्य एव आनन्द दोनो की अनुभूति

१—मृच्छकटिक पृ०...५/११
२— „ ५।१६
३— „ ५।४९
४— „ ५।३८

होती है।[1] इसी दृश्य मे धूता की उदारता एव पतिभक्ति की सूचना भी हमें प्राप्त होती है। वसन्तसेना ने द्वारा भेजी गई अपनी ही रत्नावली को अस्वीकार करती हुई वह वसन्तसेना से कहलाती है—

'आर्यपुत्रेण युष्माक प्रसादीकृता न युक्त ममैता गृहीतुम् । आर्य पुत्र एव मम आभरणविशेष इति जानातु भवती।'[2]

द्वितीय दृश्य मे रोहसेन को लेकर रदनिका प्रवेश करती है। रोहसेन सुवर्ण की गाड़ी से खेलने का आग्रह करता है। वसन्तसेना उसे सोने की गाड़ी बनवाने के लिए अपने आभूषण देती है—

'तदगृहाणैतमलङ्करणम् सौवर्णशकटिकां घटय।'[3]

यहाँ वसन्तसेना की उदारता एव चारुदत्त के प्रति उसकी उत्सुकता तथा प्रेम अभिव्यक्त होते हैं।

तृतीय दृश्य मे दैवदुर्विपाक वश वसन्तसेना चारुदत्त के रथ के स्थान पर शकार के रथ पर चढ जाती है। रथ पर चढते समय भविष्य मे अनिष्ट का सूचक उसका वाम नेत्र स्पन्दित होता है।[4] भावी अनर्थ की आशका से पाठक भी यहाँ उद्विग्न हो उठते हैं।

अन्तिम दृश्य मे पालक के कारागार से भागा हुआ आर्यक प्रवेश करता है, वह चारुदत्त के रथ पर चढ जाता है। मार्ग मे चन्दनक और वीरक उसे रोकते हैं। चन्दनक द्वारा रथ की तलाशी लेने पर आर्यक उससे शरण की याचना करता है। चन्दनक उसे अभयदान दे देता है। तत्पश्चात् चन्दनक और वीरक मे झगडा होता है। चन्दनक वीरक की नाई जाति का सकेत करता है तथा वीरक चन्दनक की चमार जाति का। यहाँ हास्य रस की ही चर्वणा होती है। चन्दनक वीरक को पीटता है और अपशब्द कहता है तथा आर्यक को अपना खड्ग दे देता है। खड्ग प्राप्त कर आर्यक मे उत्साह का सचार होता है और वीरता को प्रकट करने वाली उसकी दाहिनी भुजा भी फड़कने लगती है—'अये! शस्त्र मया प्राप्त स्पन्दते दक्षिणो भुजः।'[5]

सप्तम अक—सप्तम अक अन्य अकों की अपेक्षाकृत छोटा है। इसम पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान मे वसन्तसेना की प्रतीक्षा करते हुए चारुदत्त के समीप चेट रथ लाता है, जिसमे आर्यक बैठा हुआ है। चारुदत्त को देखकर वह उससे शरण याचना

१—मृच्छकटिक पृ० ३१५
२— ,, पृ० ३१७
३— ,, पृ० ३२१
४—मृच्छकटिक पृ० ३२६।
५—मृच्छकटिक पृ० ३५४।

करता है । चारुदत्त उसे रक्षा का वचन देता है—

'अपि प्राणानह जह्या न तु त्वां शरणागतम्'[1]

वह उसे बन्धन मुक्त भी करता है। इस अक मे चारुदत्त का औदार्य एव आर्यक की कृतज्ञता प्रकट होती है।

अष्टम अङ्क—अष्टम अक के प्रथम दृश्य मे भिक्षु प्रवेश करता है वह अज्ञानियो को धर्माचरण करने को प्रेरित करता है—'अज्ञा: । कुरुत धर्मसचयम् ।' वह बौद्ध धर्म के सिद्धान्तो को प्रतिपादित करते हुए कहता है—

'पञ्चजना येन मारिताः स्त्रिय मारयित्वा गामोरक्षितः।
अवलश्च चाण्डालो मारितः अवश्य स नरः स्वर्ग गाहते ॥
शिरो मुण्डितं तुण्ड मुण्डित चित्त न मुण्डित किं मुण्डितम् ।
यस्य पुनश्च चित्त मुण्डित साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम् ॥'[2]

यहाँ वस्तुतः शान्त रस का ही आस्वाद होता है। इसी दृश्य मे शकार आकर भिक्षु को अकारण ही पीटता है। अत. पाठको की सहानुभूति भिक्षु के साथ ही रहती है। इस दृश्य में भय का सचार भी होता है। भिक्षु शकार का स्वागत करता है और उसे उपासक कह कर सम्बोधित करता है—'स्वागतम् । प्रसीदतु उपासक.' किन्तु मूर्ख शकार कहता है—'उपासक इति मा भणति । किमह नापित. ।'[3]

इसी प्रकार भिक्षु के द्वारा 'त्व धन्य , त्व पुण्य.' यह कहने पर शकार कहता है ··· 'भाव ! धन्य. पुण्य इति मा भणति । किमह श्रावक', कोष्ठक ,कुम्भकारो वा ?, शकार की इस मूर्खता पर प्रेक्षक बहुत हसते हैं अत. यहाँ हास्य रस का उदय होता है।

द्वितीय दृश्य मे रथ परिवर्तन के कारण अपने रथ पर आरूढ वसन्तसेना को देखकर शकार उसे राक्षसी अथवा चोर समझकर डर जाता है और विट से कहता है— 'भाव ! भाव ! म्रियसे म्रियसे । प्रवहणाधिरूढा राक्षसी चौरो वा प्रतिवमति-यदि राक्षसी, तदा उभावपि मुषितौ, अथ चोरः तदा उभावपि खादितौ ।'[4] इससे पूर्व वह अपने चेट को एक टीले पर चढा कर गाडी लाने को कहता है तथा गाडी के सकुशल आ जाने पर चेट से कहता है—

'न छिन्नौ गावौ ? न मृताः रज्जवः ; त्वमपि न मृतः ?'[5]

१—मृच्छकटिक पृ० ७१६
२—मृच्छकटिक ८।२-३
३—मृच्छकटिक, पृ० ३७७
४—मृच्छकटिक पृ० ३९६—३९७
५—मृच्छकटिक पृ० ३९५

शकार के इस प्रकार मूर्खता पूर्ण वचनो को सुन कर हास्य रस की ही अनुभूति होती है । यह जानने पर कि यह वसन्तसेना है वह उससे अपना प्रणय निवेदन करता है—

'एष पतामि चरणयोर्विशालनेत्रे । हस्ताञ्जलि दशनखे तव शुद्धदन्ति । यत्तव मयापकृत मदनातुरेण तत्क्षामितासि वरगात्रि। तवास्मि दासः।'[1]

यहाँ वस्तुत. शृङ्गाराभास है । किन्तु वसन्तसेना क्रोधपूर्वक उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है ।[2] शकार अपने अपमान से क्रुद्ध होकर वसन्तसेना को मारने का निश्चय कर लेता है—

'य. स मम वचनेनापमानेन तदा रोषाग्नि· सन्धुक्षित·, अद्य एतया पाद प्रहारेणानेन प्रज्वलित., तत् साम्प्रत मारयाम्येनाम् ।'[3] यहा उग्रता का आभास होता है। वह विट और चेट को लालच देता है कि वे वसन्तसेना की हत्या कर दें किन्तु उनके द्वारा इस घृणित कार्य को अस्वीकार कर देने पर उन्हे दूर भेज कर वह वसन्तसेना की हत्या के उद्देश्य से उसका गला दबा देता है और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है ।[4] शकार के इस घृणित एव नीच कार्य के कारण यहाँ वीभत्स रस ही अभिव्यक्त होता है। तृतीय दृश्य मे विट वसन्तसेना को मृत समझ कर करुण विलाप करता है ।[5] शकार के इस इस दुष्कर्म के कारण दु.खी होकर वह जाना चाहता है किन्तु शकार वसन्तसेना की हत्या का अपराध उस पर आरोपित करते हुए कहता है·· ····'मदीये पुष्पकरण्डक जीर्णोद्याने वसन्तसेना मारयित्वा कस्मिन् पलायसे । एहि, मम आवुत्तस्य अग्रतो व्यवहार देहि ।'[6] किन्तु विट के खड्ग खीच लेने पर भयभीत होकर वह उसे जाने देता है । वस्तुत. यहाँ प्रेक्षकों को विषाद और निर्वेद का ही आस्वाद होता है।

अष्टम अक के अन्तिम दृश्य मे भिक्षु जीर्णोद्यान मे आकर मूर्च्छित वसन्तसेना के ऊपर अपने चीवर से जल निचोड़ता है जिससे वह चैतन्य प्राप्त करती है । भिक्षु अपने वस्त्र से उसके ऊपर हवा भी करता है ।[7] वह भिक्षु का सवाहक है, जिसकी वसन्तसेना आभूषण देकर द्यूतकर और माथुर से रक्षा की थी। इस दृश्य मे पाठक

१—मृच्छकटिक पृ० ८।१८
२—मृच्छकटिक पृ०४०५
३—मृच्छकटिक ४०९
४—मृच्छकटिक ४२९
५—मृच्छकटिक ८।३८
६—मृच्छकटिक पृ० ४४०
७—मृच्छकटिक, पृ० ४४७

भिक्षु की दयाशीलता एव वसन्तसेना की ग्लानि का ही अनुभव करता है ।

नवम अङ्क—नवम अङ्क मे शकार न्यायालय म जाकर वसन्तसेना की हत्या का झूठा अभियोग चारुदत्त पर लगाता है । वह न्यायाधीश के समक्ष कहता है– केनापि कुपुत्रेण अथ कल्पवतस्य कारणात् शून्य पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण वसन्तसेना मारिता, न मया ।[1] न्यायाधीश यह जानने के लिए कि वसन्तसेना कहाँ और किसके साथ गई थी, उसकी मा को बुलाते हैं । वह सूचित करती है कि उसकी पुत्री अपने यौवन सुख का अनुभव करने चारुदत्त के घर गई थी । इस पर शकार कहता है 'श्रुतमार्य. ? लिख्यन्तामतान्यक्षराणि । चारुदत्तेन सह मम विवाद ।'[2] यह अभियोग आन वाले दृश्या मे अधिकाधिक प्रमाणित होता जाता है । चारुदत्त स्वय स्वीकार करता है कि वसन्तसेना उसकी मित्र है । यह अपने घर चली गई थी । तभी न्यायालय म वीरक उपस्थित होता है । वह बताता है कि वसन्तसेना चारुदत्त के रथ से ही गई थी । अधिकरणिक के आदेश से पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान जाकर वह इस बात का समर्थन करता है कि वहा एक स्त्री मृत पडी है— 'दृष्ट मया स्त्रीकलेवर यहाँ वीभत्स का अनुभव होता है-तभी विदूषक वसन्तसेना के उन आभूषणों के साथ न्यायालय म आता है, जिन्हे उसने रोहसेन को सोने की गाडी बनवाने के लिए दिया था । उसका शकार से झगडा होता है विदूषक की बगल से आभूषण गिर पडते हैं और चारुदत्त पर यह अभियोग सिद्ध हो जाता है कि उसने आभूषणो के लिए ही वसन्तसेना की हत्या की । चारुदत्त अपने मित्र मैत्रेय,पत्नी धूता और पुत्र रोहसेन का स्मरण कर विलाप करता है ।[3] अधिकरणिक मनु के अनुसार चारुदत्त को सपत्ति सहित राष्ट्र निर्वासन का दण्ड देते हैं ।[4] किन्तु राजा पालक उसे प्राणदण्ड देता है

येन अथकल्पवतस्य कारणात वसन्तसेना व्यापादिना, त तान्येव आभरणानि गले बद्ध्वा, डिण्डिम ताडयित्वा, दक्षिणश्मशान नीत्वा, शूले भङ्क्त ।[5] अत यह स्पष्ट है कि इस अक म प्रेक्षको को चिन्ता तथा करुण की ही अनुभूति होती है । अत यहाँ करुण रस ही प्रधान है ।

दशम अक–दशक अक के प्रारम्भ म तो करुण रस की पराकाष्ठा है,किन्तु अन्त मे नायक-नायिका मिलन के कारण सुखान्त परिणति होने से पाठक हर्ष का ही अनुभव करते है । प्रथम दृश्य म वध्य स्थान को ले जाते हुए चारुदत्त को देखकर महलो म स्थित स्त्रिया खिडकियो से मुख निकाल कर हा चारुदत्त !' यह कह कर विलाप करती हुई अश्रुधारा बहाती हैं–

१—मृच्छकटिक, पृ० ४६५ ।
२—मृच्छकटिक, पृ० ४७१ ।
३—मृच्छकटिक ९।२९
४—मृच्छकटिक ९।३९
५—मृच्छकटिक, पृ० ५१६ ।

'एताः पुनर्हर्म्यगता स्त्रियो मा वातायनार्धेन विनि. सृतास्याः ।
हा ! चारुदत्तेत्यभिभाषमाणा वाष्प प्रणालीभिरिवोत्सृजन्ति ॥'[1]

यज्ञानुष्ठानो के द्वारा पवित्र कुल तथा प्रियतमा वसन्तसेना का स्मरण कर चारुदत्त अत्यधिक दुखी होता है। तभी विदूषक मैत्रेय रोहसेन को लेकर प्रवेश करता है। रोहसेन चाण्डालो से मार्मिक प्रार्थना करता है कि तुम मुझे मार डालो किन्तु मेरे पिता को छोड़ दो—

'व्यापादयत माम्, मुञ्चत आवुकम् ।'[2]

इससे अधिक करुण दृश्य और क्या हो सकता है। इसी प्रकार विदूषक भी चाण्डालो से प्रार्थना करता है—'भो भद्रमुखौ ! मुञ्चत प्रियवयस्य चारुदत्तम्, मां व्यापादयत् ।' तभी शकार का चेट स्थावरक आकर यह निवेदन करता है कि शकार ने गला दबा कर वसन्तसेना की हत्या की है, चारुदत्त ने नही। यहाँ चारुदत्त की प्राणरक्षा की पाठको को आशा हो जाती है, किन्तु शकार की दुष्टता के समक्ष चेट का यह प्रयत्न भी निष्फल हो जाता है और पाठक फिर एक बार करुण रस के प्रवाह मे ही प्रवाहित होने लगते हैं। सम्मुख श्मशान भूमि को देख कर चारुदत्त अपने दुर्भाग्य पर विलाप करता है—'हा हतोऽस्मि मन्द भाग्य ।' मरने से पूर्व चारुदत्त देवी का स्मरण करता है। चाण्डाल उससे कहता है—

'आर्य चारुदत्त ! उत्तानो भूत्वा सम तिष्ठ। एक प्रहारेण मारयित्वा त्वा स्वर्गं नयाव ।'

प्रहार करने को उद्यत चाण्डाल के हाथ से खड्ग गिर जाता है। सौभाग्य से उसी समय भिक्षु और वसन्तसेना उपस्थित हो जाते है और चारुदत्त की प्राण रक्षा होती है। उसी समय शर्विलक आकर घोषणा करता है कि साधु चरित्र युक्त आर्यक ने अपने कुल और सम्मान की रक्षा करते हुए दुष्ट पालक की हत्या कर दी।[3] वह वेणा नदी-तट पर स्थित कुशावती के राज्य को भी चारुदत्त को दे देता है। इस दृश्य मे वस्तुत पाठकों को विस्मय एव हर्ष का आस्वाद होता है। शकार यह देख कर भाग जाता है, किन्तु सेवको के द्वारा भुजायें बांध कर उसे लाया जाता है। तभी नागरिक उसका वध करने की प्रार्थना करते हैं—'व्यापादयत किं निमित्त पातकी जीव्यते ?'[4] । अन्त मे वह चारुदत्त की शरण मे जाता है और उससे अपनी जीवन रक्षा की प्रार्थना करता है अपनी महानता के अनुरूप ही चारुदत्त उसे जीवनदान

१–मृच्छकटिक, पृ० १०/११ ।
२– " पृ० ५६६ ।
३– " पृ० ५८२ ।
४–मृच्छकटिक, पृ० ५८७ ।

देता है। यहाँ चारुदत्त का औदार्य ही प्रकट होता है।

तत्पश्चात् नेपथ्य में हुई घोषणा से ज्ञात होता है कि चारुदत्त की पत्नी धूता अपने प्राण देने के लिए अग्नि में प्रवेश करती है[1]। यह सुन कर चारुदत्त बड़ा उद्विग्न होता है और मूर्छित हो जाता है। अगले दृश्य में अग्नि में प्रवेश करती हुई धूता उसके वस्त्र खींचता हुआ रोहसेन, विदूषक एवं रदनिका प्रवेश करते हैं। रोहसेन माता से प्रार्थना करता है कि मैं तुम्हारे बिना किस प्रकार जीवित रहूँगा, मेरा पालन करो—'मातरार्ये ! प्रतिपालय माम् त्वया विना न शक्नोमि जीवितं धारयितुम्[2]।' विदूषक स्वयं उससे पहले अग्नि में प्रवेश करने की प्रार्थना करता है। यहाँ भी वस्तुतः करुण रस की चरम सीमा ही है। उसी समय सहसा चारुदत्त प्रवेश कर अपनी बाहुओं में पुत्र को उठा कर आलिङ्गन करता है। धूता की जीवन रक्षा से सभी प्रसन्न होते हैं। वसन्तसेना और धूता परस्पर आलिंगन करती हैं। शर्विलक घोषणा करता है कि राजा आर्यक ने सन्तुष्ट होकर वसन्तसेना को वधू शब्द से भूषित किया है—'आर्ये वसन्तसेने ! परितुष्टो राजा भवतीं वधूशब्देनानुगृह्णाति।'' यही वस्तुतः फलागम है। चारुदत्त की इच्छानुसार भिक्षु को सभी विहारों का कुलपति, चाण्डालों को समस्त चाण्डालों का अधिपति तथा चन्दनक को पृथिवीदण्डपालक नियुक्त किया जाता है। यहाँ हर्ष का ही आस्वाद होता है। चारुदत्त की इस उक्ति से कि मुझे मेरी प्रियतमा वसन्तसेना फिर प्राप्त हो गई—'प्राप्ता भूयः प्रियेयम्'' यहाँ सम्भोग शृंगार की ही अनुभूति होती है।

रस सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि 'मृच्छकटिक' में अङ्गी रस शृंगार ही है। शृंगार रस विभिन्न रूपों को धारण करता है। वह प्रारम्भ में सम्भोग फिर विप्रलम्भ उसके पश्चात् फिर सम्भोग और बाद में विप्रलंभ रूप को धारण कर अन्त में सम्भोग में परिवर्तित हो जाता है। यहाँ करुण, हास्य, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, वीर तथा शान्त का अङ्ग-रस के रूप में चित्रण हुआ है।

अष्टम विवेक

'मृच्छकटिक' का मूल्याङ्कन

प्रकरण के रूप में—नाट्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा निर्देशित नियमों के अनुसार 'मृच्छकटिक' प्रकरण की कोटि में आता है। कथानक कल्पित एवं लौकिक है।

१—मृच्छकटिक,पृ० ५८९।
२— " पृ० ५९३।
३— " पृ० ५९८।
४—मृच्छकटिक . १०।५८।

नायक दरिद्र ब्राह्मण युवक चारुदत्त है जो धीर प्रशान्त है। उसके जीवन मे अनेक विघ्न आते हैं, किन्तु वह धर्म, अर्थ तथा काम मे तत्पर रहता है। प्रकरण की नायिका कुलजा अथवा वेश्या तथा कही दोनो होती हैं। 'मृच्छकटिक' मे दो नायिकायें हैं- चारुदत्त की पत्नी धूता कुलजा है तथा वसन्तसेना वेश्या। प्रधान रस शृगार है। धूर्त द्यूतकार, विट, चेट आदि की योजना के कारण 'सकीर्ण' प्रकरण है। 'मृच्छकटिक' मे दस अक है। 'साहित्यदर्पणकार' विश्वनाथ कविराज के अनुसार प्रकरण का नाम नायक एव नायिका के सम्मिलित नाम पर होना चाहिए जैसे 'मालती-माधवम्' किन्तु 'मृच्छकटिक' का नाम छठे अक मे वर्णित एक विशेष घटना के आधार पर। दशरूपककार धनजय के अनुसार नायक को प्रकरण के प्रत्येक अक मे उपस्थित होना चाहिए किन्तु चारुदत्त 'मृच्छकटिक' के द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ तथा अष्टम अको मे अनुपस्थित रहता है। भरतमुनि एव धनजय के अनुसार प्रकरण मे कुलजा एव वेश्या दोनो का रगमच पर मिलन नही होना चाहिए किन्तु 'मृच्छकटिक' मे वसन्तसेना और धूता दोनो परस्पर मिलती है और एक दूसरे का स्वागत करती हैं। 'मृच्छकटिक' के निर्माणकाल मे नाट्य सम्बन्धी नियमो को निर्धारित नही किया गया था, अत इनमे ये अनियमिततायें प्राप्त होती है, किन्तु फिर भी सकीर्ण प्रकरण का 'मृच्छकटिक' से उपयुक्त अन्य कोई उदाहरण प्राप्त नही होता।

परिवर्तित वातावरण एवं परम्परा का उल्लघन—'मृच्छकटिक' मे हमे सस्कृत के अन्य रूपको की अपेक्षा एक परिवर्तित वातावरण प्राप्त होता है। शूद्रक ने रूपक साहित्य से सम्बन्धित कुछ परम्पराओ का पालन नही किया है जिससे सस्कृत रूपको मे 'मृच्छकटिक' की एक अद्वितीय स्थिति है। शूद्रक ने अपने प्रकरण के नवीन वातावरण एव कथावस्तु की विशेष स्थिति के सम्बन्ध मे सूत्रधार के माध्यम से स्पष्ट सकेत किया है—'अन्यदिव सविधानक वर्तते—इद नवमिव सविधानकं वर्तते।' उनका यह कथन सर्वथा उचित भी है। 'मृच्छकटिक' सस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी प्रकरण है जिसमे पात्र एव घटनाओं को वास्तविक जगत से ग्रहण किया गया है। नाट्यशास्त्र के नियमो के अनुसार रगमच पर वध, शयन, आलिगन आदि के दृश्य वर्जित होते हैं किन्तु इस प्रकरण मे ऐसे दृश्यो की योजना की गई है। 'मृच्छकटिक' मे शकार वसन्तसेना का गला घोट देता है। यद्यपि वह मरती नही है, किन्तु उस समय तो उसकी हत्या हुई ही जान पडती है। प्रकरण मे चारुदत्त तथा विदूषक मच पर ही शयन करते हैं जिससे शर्विलक को आभूषण चुराने का अवसर प्राप्त हो जाता है। दुर्दिन मे वर्षा में भीग कर आई हुई वसन्तसेना का चारुदत्त मंच पर ही आलिगन करता है। रगमच पर युद्ध आदि के दृश्य सर्वथा वर्जित होते हैं किन्तु माथुर और द्यूतकर सवाहक को इतना पीटते हैं कि उसकी नासिका से रक्त प्रवाहित होने लगता है और वह मूच्छित हो जाता है। प्रकरण के

प्रत्येक अक मे नायक को उपस्थित न कर शूद्रक ने परम्परा का उल्लघन किया है। नायक और नायिका के सम्मिलित नाम पर अपने प्रकरण का नामकरण न कर शूद्रक ने स्पष्ट ही परम्परा का पालन नहीं किया है। अन्य रूपकों की परम्परा के विपरीत 'मृच्छकटिक' मे सूत्रधार प्राकृत का प्रयोग करता है। वेश्यायें प्रायः धन के लिए धनिकों से दिखावटी और झूठा प्रेम करती हैं किन्तु इस प्रकरण में एक धनिक गणिका वसन्तसेना निर्धन ब्राह्मण युवक चारुदत्त से उसके गुणों से आकृष्ट होकर सच्चा प्रेम करती है। एक रोचक बात यह और है कि प्राय. प्रेम-व्यापार में प्रेमी-प्रेमिका को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है किन्तु इस प्रकरण मे प्रेमिका प्रेम व्यापार मे अधिक सक्रिय है। इनके अतिरिक्त इस प्रकरण के चारुदत्त और शर्विलक जैसे ब्राह्मण वेश्याओ से विवाह करते हैं, ब्राह्मण शर्विलक चोरी करता है तथा चन्दनक और वीरक जैसे शूद्र राज्य के उच्च पदो पर आसीन हैं। इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि रूपक का वातावरण सामान्य रूपकों की अपेक्षा सर्वथा परिवर्तित है तथा रूपक साहित्य के परम्परागत नियमों का भी इनमे पूर्णत. पालन नहीं किया गया है।

एक साहसपूर्ण नवीन प्रयोग—शूद्रक के पूर्व सस्कृत रूपक, समाज के उच्चवर्ग के कुछ विद्वानो एव धनिको के मनोरजन का ही एक साधन, माना जाता था। जन-साधारण विशेष उत्सवो के अवसर पर मन्दिर आदि कुछ सार्वजनिक स्थानो म होने वाले नाटकीय कार्यक्रमो मे ही भाग लेते थे। ऐसे कार्यक्रम बहुत कम होते थे तथा इनका विशेष महत्व नहीं था। अत. नाटककार केवल विद्वानो के द्वारा अपनी कृति की प्रशसा प्राप्त करने को सर्वदा उत्सुक रहते थे। कालिदास ने इस विषय मे स्पष्ट कहा है कि जब तक विद्वान सन्तुष्ट न हो जाएँ तब तक मैं अपने अभिनय कौशल को सफल नहीं समझता—'आ परितोषाद् विदुषा न साधुमन्ये प्रयोगविज्ञानम्'।[1] अत. नाटककार प्रायः अपनी रचनाओं को समाज के उच्च वर्ग के लिए ही लिखते थे। जन-साधारण का बौद्धिक स्तर कुछ निम्न था तथा उनकी रुचि भी भिन्न होती थी अत. प्राय. वे भाण आदि मे मनोरजन प्राप्त करते थे। शूद्रक ने सर्वप्रथम यह एक नवीन एव साहसपूर्ण प्रयोग किया कि वे सस्कृत रूपक का कुछ शिक्षित विद्वानों एव उच्चवर्ग के व्यक्तियों से जन साधारण के समक्ष लाये तथा उन्होंने इसे भी उनके मनोरजन का एक साधन बनाया। अपूर्ण 'चारुदत्त' की कथा को अपनी कल्पना शक्ति से पूर्ण कर उन्होंने उसे उनके मनोरजन योग्य बनाया। इस विषय मे भट महोदय का यह विचार है—

The motive behind this bolt experiment is thus the desire to

१–अभिज्ञान शाकुन्तल, १/२।

take the dignified drama from the select coterie to the masses. For this purpose, Sudrak must have found Bhas's Charudatta a very convenient piece. It Contained the elements which Sudrak wanted to bring on the stage. It was necessary only to improve and elaborate the original at places, and add a few things in between the material already existing.[1]

यथार्थ जीवन पर आधारित —शूद्रक से पूर्व संस्कृत रूपक पुराण, इतिहास आदि पर आधारित रहता था। वास्तविक जीवन की घटनाओं से वह सर्वथा दूर था। प्रायः राजकीय जीवन का उसमें चित्रण रहता था, किन्तु शूद्रक ने सर्वप्रथम संस्कृत रूपक में वास्तविक जीवन के पात्रों एवं घटनाओं का चित्रण किया है। कथानक की विशेषता यह है कि वह किसी साधारण व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर मध्यम श्रेणी के एक साधारण व्यक्ति से सम्बद्ध है। इसमें मध्यम वर्ग की दुर्बलताओं का दिग्दर्शन कराया गया है, अतः यह आदर्श की अपेक्षा यथार्थ पर अधिक आधारित है। इस विषय में भी भट महोदय कहते हैं कि—

It is apparently for the first time that a serious, full fledged drama is presented with incidents and characters drawn from real, familiar life and invested with sentiments whose broad appeal to the larger masses was certainty.[2]

सार्वदेशिकता एवं भारतीयता —डा० राइडर महोदय शूद्रक और कालिदास और भवभूति तथा उनके नाटकों के मुख्य पात्रों में अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कालीदास एवं भवभूति हिन्दू नाटककार हैं। 'शाकुन्तल' और 'उत्तर रामचरित' का भारत के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं लिखा जा सकता था। भारतीय नाटककारों में केवल शूद्रक ही सार्वदेशिक नाटककार हैं। शकुन्तला एक हिन्दू कन्या है, माधव एक हिन्दू नायक है, किन्तु संस्थानक, मैत्रेय तथा मदनिका संसार के नागरिक हैं। किन्तु राइडर के इस मत का खंडन करते हुए कीथ कहते हैं कि—

'यह दावा स्वीकार्य नहीं है। मृच्छकटिक अपने पूर्ण रूप में एक ऐसा रूपक है जो भारतीय विचारधारा और जीवन से ओत-प्रोत है। उपर्युक्त तीनों पात्रों में से कोई ऐसा नहीं है जो कालीदास द्वारा उद्भावित कतिपय पात्रों की अपेक्षा अधिक विश्व नागरिक होने का दावा कर सके।'[3]

१–निरेम टु मृच्छकटिक–पृ० ५–६

२–निरेम टु मृच्छकटिक पृ० ५।

३–मृच्छकटिक–भूमिका, पृ० १८–१९

राइडर के मत से करमरकर महोदय भी सहमत नही हैं। उनका विचार है कि मदनिका वसन्तसेना से अधिक सार्वदेशिक नही है। मैत्रेय और सस्थानक भी प्रमुख रूप से हिन्दू हैं। इस विषय मे वे कहते हैं —

It is very difficult to agree with the learned Doctor. The atmosphere in the Mrikshakatic is hardly different from that in the Shakuntala Madanika is no more cosmopolitan than Vasan tsena is Similarly Matrai and Sansthanak are essentially of the same Hindu stuff, breathing the same atmosphere though their actsare rather out of the way Dr Rider has clearly missed the whole point here.[1]

मौलिकता—साहित्य मे मौलिकता का तात्पर्य केवल कथावस्तु की कल्पना से ही नही होता। वस्तुत साहित्यकार की मौलिकता तो कथावस्तु को एक विशेष रूप देने म होती है। साहित्यकार के मस्तिष्क पर जीवन के विविध अनुभवो तथा ससार की अनेक घटनाओ और वस्तुओ का प्रभाव पडता है। वह अनेक कवियो एव लेखको से प्रभावित होता है किन्तु वह अपनी विषय-वस्तु का चित्रण अपने विचारो प्रवृत्तियो तथा धारणाओ के अनुरूप करता है। यह साहित्यकार की मौलिकता होती है। शूद्रक अनेक कवियो एव विशेष रूप से भास से बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। 'मृच्छकटिक' के प्रथम चार अ क तो पूर्णत 'चारुदत्त' की कथावस्तु पर आधारित है, कि इन बातो मे उन्होने अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है यथा —

(१) उन्होने चारुदत्त तथा वसन्तसेना की प्रणय कथा के साथ आर्यक और पालक से सम्बन्धित राजनीतिक कथा का भी चित्रण किया है। दोनो कथाओ को एक दूसरे से पृथक नही किया जा सकता। नायक और नायिका का भाग्य नगर के राजनीतिक भाग्य से एकात्म हो गया है। इस विषय मे कीथ का यह कथन है —

"लेखक को इस बात की मौलिकता का श्रेय दिया जा सकता है कि उसने राजनैतिक वैदग्ध्य प्रयोग और काम चरित्र का सम्मिश्रण किया है, जिसम रूपक को विशेष महत्व प्रदान किया है।

(२) शूद्रक का चरित्र-चित्रण भी मौलिक है। अनेक पात्र उनकी मौलिक कल्पना शक्ति एव रचनात्मक कला का परिचय देते हैं। भट महोदय का विचार है कि 'मृच्छकटिक' के पात्र सामान्यत सस्कृत नाटको के परम्परागत रगमच के पात्र नही हैं।—

The Characters that move in Mrakshakatic are not to be

१—सस्कृत नाटक—पृ० १३१

easily found on the Conventional stage of the Sanskrit drama.[1]

संस्कृत नाटकों में प्रायः उच्च वर्ग के पात्रों का चित्रण होता है किन्तु मृच्छकटिक में यथार्थ जगत के अनेक सामान्य कोटि के पात्रों का भी चित्रण है जिनकी अपनी व्यक्तिगत विशेषतायें हैं।

(३) 'मृच्छकटिक' के द्वितीय अंक का जुआरियों का दृश्य शूद्रक की मौलिक कल्पना का परिचायक है।

(४) 'मृच्छकटिक' का हास्य भी उनकी मौलिकता को ही प्रकट करता है।

अभिनेयता —संस्कृत काव्य दो प्रकार के होते हैं—दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य का आनन्द उनका दर्शन करके ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः अभिनेयता उनका प्रधान गुण होता है। 'मृच्छकटिक' दृश्य-काव्य के अन्तर्गत आता है।

शूद्रक के समय नाट्य-सिद्धान्त तथा नाट्यकला का पूर्ण विकास नहीं हुआ था। अतः इनमें वध आदि कुछ दृश्य-नियमों के विरुद्ध है, किन्तु इससे इनकी अभिनेयता में कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वध के विषय में यह ध्यान रखना चाहिये कि शूद्रक ने केवल पापियों का वध ही मंच पर दिखाया है, जिसका प्रेक्षकों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यत्र तत्र तथा कुछ अमूर्त पदार्थ मंच पर आकर मानव के सदृश व्यवहार करते हैं। यदि इनकी सूचना मात्र ही दे दी जाती तो अधिक अच्छा था।

रूपक की अभिनेयता के लिए आवश्यक है कि उसका कथानक अधिक विस्तृत न हो, संवाद छोटे हों तथा उसके दृश्यों का विभाजन रंगमंच के अनुकूल हो। इन दृष्टियों से मृच्छकटिक पर विचार करते हैं तो यह निष्कर्ष निकलता है—'मृच्छकटिक' की कथावस्तु आवश्यकता से अधिक विस्तृत है तथा उसका अभिनय एक ही बैठक में नहीं किया जा सकता। प्रकरण में गतिशीलता है किन्तु कथानक पूर्णतः संश्लिष्ट नहीं है। चतुर्थ में विदूषक वसन्तसेना के भवन का विस्तृत वर्णन करता है जो अभिनेयता की दृष्टि से अनावश्यक है। पंचम अंक का वर्षा-वर्णन भी अधिक विस्तृत है। द्वितीय अंक में संवाहक भिक्षु होने का निश्चय करके वसन्तसेना के भवन से बाहर निकलता है तथा तुरन्त ही कर्णपूरक द्वारा भिक्षु वेष में उसकी वसन्तसेना के हाथों से रक्षा की जाती है। अष्टम अंक के अन्त में शकार पुष्पकरण्डक उद्यान से यह कहकर बाहर जाता है—'साम्प्रतं अधिकरणं गत्वा व्यवहारं लेखयामि' किन्तु वह न्यायालय दूसरे दिन जाता है। नवम अंक में वसन्तसेना से प्रेम के विषय में न्यायाधीशों द्वारा बार बार पूछे जाने पर भी चारुदत्त मौन रहता है। कुछ स्थलों

१– दि मेन ट्र मृच्छकटिक पृ० ८।

पर सवाद आवश्यकता से कुछ अधिक विस्तृत हो गय हैं। प्रथम अक के अन्त मे चारुदत्त वसन्तसेना को पहुँचान उसके घर जाता है. किन्तु लम्बे मार्ग में कोई कथोपकथन नही होता। प्रकरण म दृश्या का उचित विभाजन नही है। एक समय में ही अनेक दृश्यो की योजना है। उदाहरण मे लिए प्रथम अक में चारुदत्त के घर का दृश्य तथा शकार और विट के द्वारा पीछा की जाती हुई वसन्तसेना का राजमार्ग का दृश्य दोनो एक समय में ही रगमच पर दिखाये जाते हैं। प्रकरण की कथा अत्यन्त रोचक है। अभिनेयता सम्बन्धी कुछ दोषो का निराकरण करके उसे रगमच के अधिक उपयुक्त बनाया जा सकता है। दृश्य विभाजन के क्रम मे कुछ परिवर्तन करके उसे अभिनय के अधिक अनुकूल बनाया जा सकता है। विस्तृत वर्णन से सम्बन्धित स्थलो को हटाया जा सकता है विशाल रगमच का निर्माण करक कुछ ऐसी भी व्यवस्था की जा सकती है कि एक साथ कई दृश्यो को दिखाया जा सके प्रकरण के सवाद ता प्राय अभिनय के अनुकूल ही हैं। भाषा भी रगमच के उपयुक्त है। कार्य-व्यापार मे गतिशीलता है। पात्रो की वेशभूषा आदि का उचित निर्देश किया जा सकता है। कुछ उचित परिवर्तन करके कथावस्तु को आधुनिक रगमच पर अभिनय के अधिक योग्य बनाया जा सकता है।

पात्रो की विविधता—शूद्रक की रचनाओं की एक मुख्य विशेषता उनके पात्रों की विविधता है। इस विषय म शूद्रक भास के ऋणी हैं। कीथ का स्पष्ट मत है कि—'इस रूपक के पात्रो की विविधता निर्विवाद रूप से प्रशसनीय है, परन्तु उसका आशिक श्रेय भास का है, उनके उत्तरवर्ती शूद्रक को नही।'[1] पात्र अपना निजी व्यक्तित्व लेकर उपस्थित होते है। वे प्रतिनिधि पात्र नही होते। इस विषय मे शूद्रक की तुलना शेक्सपियर से भी की जा सकती है। राइडर महोदय के अनुसार भी पात्रो का वैविध्य 'मृच्छकटिक' की एक प्रमुख विशेषता है। 'मृच्छकटिक' म जुआरियों का दृश्य तथा राजनीतिक उप कथानक है तथा चारुदत्त एव वसन्तसेना के प्रेम से सम्बन्धित मुख्य कथानक भी पूर्ण है, अत उसमे द्यूतकर, माथुर, दर्दुरक आर्यक, पालक, चन्दनक, वीरक, अधिकरणिक, श्रेष्ठि, कायस्थ, शोधनक, तथा चाण्डाल आदि पात्र 'चारुदत्त' से अधिक हैं।

प्रेम एव राजनीति युक्त कथानक—शूद्रक ने भास के 'चारुदत्त' के प्रणय सम्बन्धी कथानक मे गोपालदारक आर्यक तथा पालक के राजनैतिक उप कथानक का बडा गौरवपूर्ण सामजस्य स्थापित किया है। अत 'मृच्छकटिक' का महत्व बढ गया है। इस विषय मे कीथ स्पष्ट कहते हैं -'लेखक की इस बात की मौलिकता का श्रेय दिया जा सकता है कि उसने राजनैतिक वैदग्ध प्रयोग और कामचरित्र का सम्मिश्रण किया है, जिसने रूपक का विशेष महत्व प्रदान किया है।'[2]

---

१ —संस्कृत नाटक—पृ० १३८। २—संस्कृत नाटक—पृ० १३१।

वस्तुत प्रेम और राजनीति के इस समिश्रण से 'मृच्छकटिक' का कथानक अत्यधिक विस्तृत हो गया है । इसका विभाजन दस अंको मे किया गया है तथा केवल सप्तम अक को छोडकर अन्य सबमे कई-कई दृश्य है । वस्तुत 'मृच्छकटिक' मे दो नाटको की कथावस्तु है । राइडर महोदय का इस विषय मे यह कथन है:—

obviously, it is too long indeed, we have in the little playcart the material for two play.

वस्तुत: 'मृच्छकटिक' एक जन-काव्य है जिसमे प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है । इसमे निश्छल एव निस्वार्थ प्रेम का चित्रण किया गया है । इसका प्रेम वास्तविक और रचनात्मक है । बसन्त सेना एक गणिका होते हुए भी निर्धन किन्तु गुणी ब्राह्मण युवक चारुदत्त से निष्कपट एव वास्तविक प्रेम करती है । ब्राह्मणी धूता एक पतिव्रता भारतीय नारी है, जो पति के यश की रक्षा के लिए अपनी बहुमूल्य रत्नावली का भी बलिदान कर देती है । मदनिका अपनी स्वामिनी वसन्त सेना से इतना प्रेम करती है कि वह अपनी दासता से मुक्ति के लिए प्राप्त एकमात्र अवसर को भी खोने को प्रस्तुत है । विदूषक अपने परम मित्र 'चारुदत्त' के लिए अपना जीवन भी बलिदान करने को प्रस्तुत है । चारुदत्त का पुत्र रोहसेन अपने पिता की जीवन रक्षा के लिए अपने प्राण भी प्रस्तुत करना चाहता है । शर्विलक अपने मित्र आर्यक की प्राण रक्षा के लिए अपनी नव-विवाहिता पत्नी को भी छोडकर चला जाता है । अत जागीरदार महोदय के अनुसार 'मृच्छकटिक' एक प्रेम प्रधान कथा न होकर साक्षात् प्रेम की ही कथा है । इस रचनात्मक प्रेम के सम्पर्क मे जो भी आता है, उसे जीवन दायिनी शक्ति प्राप्त होती है । वस्तुत वह एक प्रेम-प्रधान समाज का निर्माण करता है । इस विषय मे वे कहते है '—

But the Mrakshakatic, as said above, is not a love,story but a story of love This love is all creative It creates itself before it creates all Whatever it touches it Vitalises and is ever vitalizing It builds a home, is sets up a society

गतिशीलता—प्रकरण का कथानक घटनाओ के सघात से पूर्ण है । कथानक अनेक घटनाओ के मध्य सचरित होकर भी अपनी गतिशीलता की रक्षा करता है । प्रकरणकारो ने रस-सिद्धि एव भाव-व्यजना के लिए वर्णन विस्तार का प्राय. परिहार ही किया है किन्तु दो स्थल ऐसे हैं जहाँ वर्णन विस्तार के कारण गतिशीलता मे बाधा पहुँचती है । ये स्थल हैं बसन्त सेना के भवन के आठ प्रकोष्ठो का वर्णन तथा वसन्त सेना के अभिसार के समय वर्षा वर्णन । काव्यात्मकता की दृष्टि से तो ये स्थल बहुत सुन्दर हैं किन्तु इनसे गत्यात्मकता मे व्यवधान ही उपस्थित होता है । कथानक

(१) ड्रामा इन सस्कृत लिट्रेचर पेज १०७ ।

सवादा की अपेक्षा कार्य व्यापार स ही अधिक गतिशीलता प्राप्त करता है।

घटनाओं की विविधता—'मृच्छकटिक' की एक विशेषता है, उसकी घटनाओ की विविधता। दुष्ट शकार एव विट के द्वारा वसन्तसेना का अनुसरण, नायक, नायिका का प्रेम-व्यापार, गणिका, दासी मदनिका एव ब्राह्मण शर्विलक का विवाह, रात्रि म सेंध लगा कर चोरी, दुष्ट हाथी से भिक्षु की जीवन रक्षा, जुआरियो का राजमार्ग पर झगडा, वसन्त सेना का वर्षा म अभिसरण, आयक का कारागृह से भागना, गाडियो की अदलाबदली, नगर-रक्षको का परस्पर झगडना, शकार के द्वारा वसन्तसेना का निर्दयतापूर्वक गला घाटना, न्यायालय का कारुणिक दृश्य, चारुदत्त को वधस्थल ले जाया जाना, राज्यक्रान्ति, चारुदत्त एव धूता की प्राणरक्षा आदि कुछ घटनायें एसी हैं जो केवल मृच्छकटिक म हैं अन्य रूपको म अप्राप्त हैं।

नाटकीय महत्व की घटनायें तथा अर्थोपक्षेपको का अभाव—'मृच्छकटिक' की एक विशेषता यह है कि इनम अर्थोपक्षेपका का अभाव है। प्रवेशक तथा विष्कम्भक का तो पूर्ण अभाव है, चूलिका यत्र-तत्र प्राप्त होती है। शूद्रक न केवल अत्यधिक नाटकीय महत्व की घटनाओ को ही कथावस्तु के विकास के लिए चुना है तथा अनावश्यक एव महत्वहीन घटनाआ का सर्वथा परिहार किया है। वस्तुत अर्थोपक्षेपक दो अका के मध्य सूच्य वस्तु की सूचना दन के लिए हाता है जिसका रगमच पर अभिनय नही होता किन्तु कथावस्तु के विकास के लिए उसका ज्ञान परमावश्यक होता है। शूद्रक ने ऐसी समस्त आवश्यक घटनाओ को या तो रगमच पर अभिनीत करा दिया है अथवा उनका सकेत कर दिया है। अत अर्थोपक्षेका की आवश्यकता ही नहीं है। इस विषय म डा० दवस्थली का यह स्पष्ट मत है —

Sudrak has chosen only such events as are of high dramatic significance and avoided altogether everything dry and insipid with the result that the Mrakshakatic has no interludes at all Whatever incidents are necessary have been actually represented on the stage or in some cases hinted at in the actual scenes without having recourse to interludes [1]

छोटी वस्तुओं एव घटनाओ का प्रभावोत्पादक प्रयोग—इसम छाटी एव महत्वहीन प्रतीत होने वाली वस्तुओ का नाटकीय दृष्टि स बडा प्रभावोत्पादक एव सफल प्रयाग किया गया है। जाती कुसुमवासित प्रावारक, सुवर्णाभूषण तथा रत्नावली आदि वस्तुआ का कथानक के विकास म बडा महत्व है। अपन मित्र जूर्णवृद्ध स उपहार म प्राप्त प्रावारक का चारुदत्त रदनिका क धाखे स वसन्त सेना का दे दता

---

(१) इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ मृच्छकटिक, पृ० ११५।

है। प्रावारक की सुगन्ध चारुदत्त के प्रति वसन्तसेना से आकर्षण को बढा देती है। इस प्रावारक को चारुदत्त कर्णपूरक को एक उन्मत्त हाथी से भिक्षु की जीवन रक्षा करने के कारण उसकी वीरता से प्रभावित होकर दे देता है। यह चारुदत्त की दानशीलता को प्रकट करता है। इस प्रावारक को वसन्त सेना ले लेती है,जो चारुदत्त के प्रति उसके प्रगाढ प्रेम का द्योतक है। सुवर्णाभूषणो की चोरी के पश्चात् धूता अपनी मातृगृह से प्राप्त बहुमूल्य रत्नावली को चारुदत्त के समीप भेज देती है, जिसे वह आभूषणो के स्थान पर वसन्त सेना को भिजवा देता है। धूता का यह बलिदान वस्तुत उसकी पति-भक्ति का द्योतक है। इसी प्रकार यह चारुदत्त की सदाशयता एव ईमादारी का भी प्रतीक है इसके अतिरिक्त यह चारुदत्त के समीप आने के लिए वसन्तसेना को एक अवसर भी प्रदान करती है और चारुदत्त के प्रति उसके प्रेम को द्विगुणित कर देती है। सुवणाभूषण दो प्रकार का कार्य करते हैं। प्रथम पाँच अको मे तो वे वसन्त सेना और चारुदत्त को मिलन के अवसर प्रदान करते हैं तथा उनके परस्पर प्रेम को दृढ करते हैं किन्तु षष्ठ अक मे वे रोहसेन द्वारा वसन्तसेना को माता रूप मे स्वीकार करने मे बाधक हो जाते है। सुवर्णशकटिका बनवाने के लिए वसत सेना उन्हे रोहसेन को दे देती है किन्तु चारुदत्त द्वारा विदूषक से उन्हें वसन्त सेना को वापस करने को दिये जाने पर तथा न्यायालय मे विदूषक की बगल मे गिर जाने पर वे वह प्रमाणित करने मे सहायक होते है कि चारुदत्त ने इनके लिए ही वसन्तसेना की हत्या की। परिणामस्वरूप चारुदत्त को मृत्युदण्ड दे दिया जाता है।

प्रकरण के द्वितीय अक मे वसन्त सेना सवाहक को ऋण-मुक्त करके उसकी जुआरियो से रक्षा करती है तथा इसके बदले मे अष्टम अक मे भिक्षु-वेशधारी सवाहक के द्वारा उसकी प्राण रक्षा की जाती है। प्रवहण-विपर्यय की घटना का कथानक के विकास मे अत्यधिक महत्व है। शर्विलक से सम्बन्धित घटना प्रकरण के मुख्य कथानक तथा राजनैतिक उपकथानक को परस्पर जोडती है। इसी प्रकार तेज वर्षा से पुष्पकरण्डक उद्यान मे एक वृक्ष के गिरने से किसी स्त्री का दब जाना, चन्दनक के द्वारा वीरक की पीटा जाना तथा उसका न्यायालय मे आना और न्यायाधीश की आज्ञा से पुष्पकरण्डक उद्यान जाकर उस अज्ञात मृत स्त्री को वसन्त सेना मान कर साक्षी देना आदि घटनाओ का भी कथानक के विकास मे बडा महत्वपूर्ण योगदान है।

गम्भीर एव हास्य प्रधान अथवा शान्त एव अशान्त दृश्यों का क्रमश प्रयोग — इसमे गम्भीर एव साधारण अथवा हास्य प्रधान तथा शान्ति पूर्ण एव अशान्ति पूर्ण दृश्यो का एक के बाद एक के रूप मे प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए प्रथम

अक मे चारुदत्त एव विदूषक के निर्धनता सम्बन्धी वार्तालाप के पश्चात् शकार और विट के द्वारा पीछा की जाती हुई वसन्तसेना का दृश्य, द्वितीय अक मे वसन्तसेना और मदनिका के वार्तालाप के पश्चात् सवाहक, माथुर, द्यूतकर तथा दर्दुरक का दृश्य। तृतीय अक मे चारुदत्त और विदूषक के सगीत गोष्ठी से आने और सोने के पश्चात् शर्विलक के सेंध लगाने का दृश्य। चतुर्थ अक मे शर्विलक एव मदनिका के विदा के दृश्य के पश्चात् राज्य क्रान्ति की घोषणा का दृश्य। अष्टम अक मे बौद्ध भिक्षु के पुष्पकरण्डक उद्यान मे प्रवेश करने के पश्चात् शकार द्वारा वसन्तसेना के गला घोटने का दृश्य। इसी प्रकार अन्य अकों मे भी दृश्यो का ऐसा ही क्रम दृष्टि-गोचर होता है। इन परस्पर विरोधी वातावरण को प्रदर्शित करने वाले दृश्यो के समान ही परस्पर विरोधी गुणो वाले पात्रो का भी चित्रण किया गया है जैसे :—चारुदत्त एव शकार, दर्दुरक एव सवाहक, वीरक एव चन्दनक तथा शकार एव विट।

यथार्थवादी प्रकरण—मृच्छकटिक यथार्थवादी प्रकरण है। इसकी कथावस्तु मध्यम वर्ग से चुनी गई है। इससे पूर्व सस्कृत रूपकों मे प्राय राजाओं की कथा ही मुख्य कथानक के रूप मे चित्रित होती थी किन्तु यहाँ सर्व प्रथम कथावस्तु को यथार्थ जगत् से चुना गया है। इस विषय से डा० भोलाशकर व्यास का यह स्पष्ट मत है कि—'मृच्छकटिक की सबसे बडी विशेषता यह है कि इस रूपक मे सस्कृत नाटक-साहित्य सर्व प्रथम राजाओ की कथा को छोडकर मध्यवर्ग से कथावस्तु को चुनता है। उज्जयिनी के मध्यवर्ग-समाज की दैनन्दिन चर्या को रूपक का आधार बनाकर कवि ने इसे अत्यधिक स्वाभाविकता दे दी है। मृच्छकटिक सस्कृत का एकमात्र यथार्थ-वादी नाटक है। कालिदास और भवभूति मे हमे काव्य और भावना का उदात्त वातावरण मिलता है, जबकि मृच्छकटिक मे जीवन की कठोर वास्तविकता के दर्शन होते हैं।'[1]

'मृच्छकटिक' मे हमे उज्जयिनी के मध्यवर्ग के जीवन का यथार्थ एव स्वाभाविक वर्णन प्राप्त होता है। इसमे चोर, जुआरी, धूर्त, गणिका, विट, चेट, राज्य-कर्मचारी भिक्षु, पतिव्रता पत्नी, तथा उदार एव निर्धन ब्राह्मण आदि का चित्रण किया गया है। ये सब देव अथवा दानव नहीं, अपितु इस लोक के ही प्राणी हैं। उनका आचार व्यवहार, सुख-दुख, रुचि-अरुचि आदि साधारण व्यक्ति के समान ही है। वे अपने स्तर के अनुरूप लोक-भाषा का ही व्यवहार करते हैं। 'मृच्छकटिक' की यथार्थवादी प्रवृत्ति एव वातावरण के विषय मे अपने विचार प्रकट करते हुए भट महोदय कहते हैं—

१-प्रिफेस टु मृच्छकटिक—पेज १४।

The whole atmosphere of the play is filled with such realistic suggestions and draft touches that it almost looks like a slice-cut from real life

इसके अतिरिक्त शकार और विट के द्वारा वसन्तसेना का पीछा, शर्विलक द्वारा चोरी, न्यायालय का दृश्य तथा राज्य क्रान्ति आदि घटनायें भी इसके यथार्थवादी वातावरण का ही संकेत करती हैं।

तत्कालीन दशा—नाटककार कवि अथवा साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। अपने युग की विभिन्न अवस्थाओं को वह अपनी लेखनी द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे अभिव्यक्त करता है। 'मृच्छकटिक' भी तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक तथा धार्मिक दशाओ पर प्रकाश डालते है। राजनैतिक उपकथानक, जुआरियो का दृश्य, न्यायालय का दृश्य तथा विशाल आकार होने से 'मृच्छकटिक' इन दशाओ पर अधिक विस्तार से प्रकाश डालता है।

उस समय देश मे राजनैतिक अस्थिरता थी। राज्य क्रान्तियो से राज्य परिवतन प्राय. होते रहते थे। इस विषय मे जागीरदार महोदय का यह विचार है—

Political revolutions, however, seem to have been such simple affairs in those days as to occur any and every day It was as easy perhaps to occupy a throne in those days as it is for any bully in these days, to occupy a real in third class railway-compartment[1]

राजा नैतिक आदर्श से च्युत हो गये थे। उनकी विलासिता एव अदूरदर्शिता के कारण देश मे अराजकता फैली थी। उनके सम्बन्धी भी प्रजा पर अत्याचार करते थे। राज्य कर्मचारी परस्पर ईर्ष्या-द्वेष रखते थे। राजा के प्रति षड्यन्त्र होते रहते थे। न्याय का अन्तिम निर्णय राजा ही करता था। न्याय-व्यवस्था दोषपूर्ण थी। निरपराध व्यक्तियो को प्राणदण्ड तक दिया जा सकता था। ब्राह्मणो को प्राय प्राणदण्ड निषिद्ध था।

तत्कालीन सामाजिक दशा भी श्लाघ्य नही थी। ब्राह्मणो का सम्मान होता था। वे व्यापार भी करते थे। विदेशो से व्यापार होता था। बहु विवाह प्रथा थी। असवर्ण विवाह भी होते थे। सती प्रथा प्रचलित थी। गणिकाओ को कुलवधू का पद भी दिया जा सकता था। उस समय जुयें की प्रथा भी थी। जुआरियो के अपने नियम होते थे। दास प्रथा प्रचलित थी। धन देकर उन्हें दासता से मुक्त भी किया जा सकता था। आर्थिक रूप से देश समृद्ध था। सुवर्ण की प्रचुरता थी। वेश्यायें बहुत सम्पन्न थीं। रात्रि म राजमार्गो पर चलना सुरक्षित नही था। नाट्य-

१–ड्रामा इन संस्कृत लिट्रेचर—पृ० १०१।

कला, संगीतकला, चित्रकला, मूर्तिकला उन्नत अवस्था मे थी। यहाँ तक कि चोरी भी एक कला थी।

वैदिक धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनो का प्रचार था। यज्ञ, देव पूजा, बलि उपवास आदि पर लोग विश्वास करते थे। भिक्षु प्रायः सयमी होते थे। भिक्षुणियाँ भी विहारो मे निवास करती थी। प्रायः लोग अपशकुनो पर विश्वास करते थे। चाण्डाल और चोर भी अपने देवी-देवताओं पर विश्वास करते थे।

प्रकृति वर्णन—प्रकरण मे हमे प्रकृति का स्वतंत्र रूप दृष्टिगोचर नही होता। इनमे प्रकृति वर्णन का प्रायः अभाव ही है। प्रथम अक के अन्तिम श्लोक मे चन्दोदय तथा तृतीय अक के तीसरे श्लोक मे चन्द्रमा के अस्त होने के वर्णन के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे स्थल हैं जिनमे शूद्रक ने प्रकृति का चित्रण किया है। इसमे पचम अक का वर्षा वर्णन तथा अष्टम अक के पुष्प करण्डक उद्यान का वर्णन विशेष महत्वपूर्ण है। कुछ आलोचको का विचार है कि शूद्रक ने जान-बूझ कर प्रकृति वर्णन के इन प्राप्य अवसरों का लाभ नही उठाया है किन्तु वास्तविकता यह है कि शूद्रक की दृष्टि विशेष रूप से नाटकीयता पर केन्द्रित रही है। प्रकृति वर्णन के विस्तार से प्रकरण की स्वाभाविक गति मे शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। इन स्थलों पर कवि की प्रतिभा के कारण कवित्व जनित रस की धारा तो अवश्य प्रवाहित होने लगी है किन्तु उनमे नाट्यकला सम्बन्धी शिथिलता आ गई है। शूद्रक ने इन वर्णनो से यह सिद्ध कर दिया है कि उनके हृदय मे भी प्रकृति के प्रति अनुराग है तथा अपनी रचनाओं मे वे उसके वर्णन के प्रति उदासीन नही हैं।

भाषा शैली—भाषा शैली सरल एव रोचक है। वह नाट्य के सर्वथा अनुकूल है। प्रकरण मे प्रायः समास प्रधान भाषा को नही अपनाया गया है शूद्रक की शैली मे स्वाभाविक सरलता विद्यमान है। कीथ का यह स्पष्ट मत है कि रूपक (मृच्छकटिक) की सापेक्ष सरलता का श्रेय भी उन्ही (भास) को मिलना चाहिये। कालिदास की शैली मे शूद्रक की अपेक्षा कुछ जटिलता पाई जाती है तथा भवभूति की शैली मे इसकी मात्रा और अधिक है।[1] प्रकरण की शैली मे वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है। नाट्यकार ने कृत्रिमता का समावेश करके शैली को दुरूह नही बनाया है। माधुर्य एव प्रसाद गुण की प्रचुरता है। शब्द योजना पात्रानुकूल है। शूद्रक ने कुछ विशेष स्थलो पर नीतिपरक वाक्यावली का प्रयोग किया है। अतः स्वभावतः अनेक स्मरणीय सूक्तियो से 'मृच्छकटिक' सुशोभित है। कुछ स्थलों पर तो सम्पूर्ण पद्य ही सूक्तिमय हो उठे हैं। ऐसे सूक्तिमय पद्यो मे कहीं तो जीवन को सफल बनाने के लिए शिक्षायें दी गयी हैं, कही आदर्श की उदात्त भावनायें हैं तथा

१–प्रिफेस टु मृच्छकटिक—पृ० १४।

कहीं काव्य सौन्दय है। भाषा में कुछ अपाणिनीय प्रयोग प्राप्त होते हैं। 'शूद्रक' की कल्पनायें भी अधिक कोमल और सुकुमार हैं। वसन्तसेना के भवन के आठ प्रकोष्ठों के वर्णन में अवश्य समास प्रधान एवं क्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया गया है, अन्यथा अन्यत्र भाषा सरल, सरस एवं मधुर ही है।

प्राकृत की दृष्टि से तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकरण है जितनी प्रकार की प्राकृतों का प्रयोग इसमें किया गया है, उतना किसी अन्य रूपक में नहीं। शौरसेनी, अवन्तिका, मागधी, प्राच्या, शकारी, चाण्डाली तथा ढक्की इन सात प्रकार की प्राकृतों अथवा अपभ्रंशों का प्रयोग इसमें किया गया है। पात्र नाट्यशास्त्र के नियमों एवं अपनी स्थिति के अनुसार प्राकृत का प्रयोग करते हैं।

संवाद सरल और संक्षिप्त हैं उनमें वाग्विदग्धता तथा व्यंग्य का भी दर्शन प्राप्त होता है। ये संवाद पात्रों की स्थिति के सर्वथा अनुकूल होते हैं तथा उनकी चरित्रगत विशेषताओं एवं स्वभाव पर भी प्रकाश डालते हैं। ये संवाद स्वाभाविक हैं तथा उनमें अनेक सूक्तियों का प्रयोग किया गया है।

शूद्रक के इस प्रकरण में स्वाभाविक ढंग से अनेक अलंकार आ गये हैं। किसी भी स्थल पर बलपूर्वक अलंकारों को लादा नहीं गया है। प्रकरणकार ने जान-बूझकर अपनी भाषा को अनावश्यक, अवांछित एवं अस्वाभाविक अलंकारों से अलङ्कृत करने का प्रयत्न नहीं किया है। ये अलंकार अर्थ-सौन्दर्य की वृद्धि में सर्वत्र सहायक हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि साम्यमूलक अलंकारों के अतिरिक्त अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, अन्योक्ति अप्रस्तुत प्रशंसा, काव्यलिंग तथा समासोक्ति आदि अलंकार शूद्रक को प्रिय हैं।

प्रकरण में शूद्रक ने अनेक छन्दों का बड़ा सफल प्रयोग किया है। अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित तथा उपजाति विशेष प्रिय हैं, इनके अतिरिक्त इन्द्रवज्रा, उपेन्द्र वज्रा, वंशस्थ, मालिनी, पुष्पिताग्रा, आर्या, प्रहर्षिणी, शिखरिणी, स्रग्धरा आदि छन्दों का भी प्रकरण में सफल प्रयोग किया गया है।

भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार रस रूपक का मुख्य तत्व है। प्रधान कथानक चारुदत्त एवं वसन्तसेना के प्रणय से सम्बन्धित है, अतः शृंगार इसका प्रधान रस है, अन्य रस गौण हैं। शृंगार के संभोग एवं विप्रलम्भ दोनों पक्षों का इनमें चित्रण है। चारुदत्त के दारिद्र्य वर्णन, संवाहक के भूमिपतन, द्यूत तथा वसन्तसेना की मूर्च्छा की घटना में करुण रस का चित्रण है। चारुदत्त की मृत्युदण्ड की घोषणा तथा रोहसेन और मैत्रेय के रुदन तो करुण में रस की पराकाष्ठा ही है। हास्य रस की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ रूपक है। हास्य की व्यंजना मुख्य रूप से चार प्रकार से की गई है—विनोदी पात्रों द्वारा, विनोदपूर्ण परिस्थितियों द्वारा व्यंग्योक्तियों द्वारा तथा विचित्र प्रश्नोत्तरों द्वारा। इनके अतिरिक्त भयानक

तथा अद्‌भुत अलकार रूपक मे प्राप्त होते है किन्तु वीभत्स एव शान्त 'मृच्छकटिक' मे ही। 'मृच्छकटिक' मे प्राय समस्त नव रसो की अभिव्यजना होती है।

नाट्यकला एव नाटकीय सविधान—नाट्यकला की दृष्टि से 'मृच्छकटिक' नि सदेह सफल प्रकरण है। मृच्छकटिक' का वस्तु विन्यास पौर्वत्य नाट्य कला के साथ पाश्चात्य नाट्य कला के भी अनुरूप है। इसकी गतिशीलता पाश्चात्य नाट्य साहित्य की कौमेडी के सदृश मनोरजक है। पाश्चात्य नाटक समीक्षा के अनुसार नाटक की कथा के विकास के पाच भाग होते है—आरम्भ, आरोह, केन्द्र, अवरोह तथा परिणाम। कथानक मे पाचो भाग स्पष्ट रूप से प्राप्त होते है। नाट्यशास्त्र की दृष्टि से सफल रूपक के लिए आवश्यक पाच अर्थ-प्रकृतियो, पाँच कार्यावस्थाओं एवं पाच सधियो का भी 'मृच्छकटिक' मे समुचित समावेश है। कथानक रोचक है, उसमें घटनाओ का धात-प्रतिघात तथा नाट्य-नियमो का निर्वाह परिलक्षित होता है। कुछ स्थलो पर वर्णन प्रचुरता प्राप्त होती है जो प्रकरण की स्वाभाविक गतिशीलता म व्यतिक्रम उत्पन्न करती है। किन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। प्रकरण के कुछ अको मे दृश्यो की विविधता प्राप्त होती है, जिससे अभिनय की दृष्टि से रगमच पर व्यवस्था करने मे कुछ असुविधा होती है।

कुछ आलोचको का विचार है कि 'मृच्छकटिक' ग्रीक नाटको के सविधान से प्रभावित हैं तथा शकार एव उसकी बहन जो राजा पालक की रखैल है, दोनो यूनानी पात्र हैं। यह सम्भव है कि इस प्रकरण की रचना करते समय शूद्रक का ध्यान ग्रीक नाटको पर रहा हो। जहाँ तक अन्विति-त्रय का प्रश्न है, शूद्रक ने कार्यान्विति का स्वाभाविक रूप से सफल निर्वाह किया है। ग्रीक नाटकों के नियमो के पालन की दृष्टि से नही। समय एव स्थान की अन्वितियो का भी सस्कृत नाट्य नियमो के अनुसार पालन किया गया है।

'मृच्छकटिक' सकीर्ण प्रकरण है। शृगार रस प्रधान होने से इसम कैशिकी वृत्ति है। यह प्रकरण नायक प्रधान न होकर नायिका प्रधान है। इनका नायक धीर प्रशान्त एव नायिका गणिका है। इनके पात्र दिव्य अथवा अर्धदिव्य नही, अपितु इस लोक के ही मध्यमवर्ग के पात्र है। वे व्यक्ति हैं प्रतिनिधि नही। चारुदत्त तथा वसन्तसेना के प्रणय सम्बन्धी मुख्य कथानक तथा राजनैतिक उप-कथानक के अतिरिक्त शर्विलक-मदनिका प्रणय सम्बन्धी कथा भी है।

रचना सविधान की दृष्टि से 'मृच्छकटिक' म नान्दी-पाठ है। 'मृच्छकटिक' म आमुख है। कवि शूद्रक का परिचय है। चूलिका के अतिरिक्त अन्य अर्थोपक्षेक प्रकरण मे प्राप्त नही होते। पताका स्थानको का प्रकरण मे उचित प्रयोग किया गया है। 'मृच्छकटिक' के प्रत्येक अ क का शूद्रक ने विशेष घटनाओ अथवा पात्रो के आधार

पर नामकरण किया है। 'मृच्छकटिक' मे भरत वाक्य है। अभिनेयता एव सरलता सब का प्रधान गुण है। कही भी वर्णन की अधिकता नही है और न कही कथावस्तु का अनावश्यक विस्तार है। सवाद सक्षिप्त, सरल एव स्वाभाविक है। नाटकीय दृष्टि से उनके सभी व्यवस्थित एव सुसघटित हैं। शूद्रक की नाट्यकला वस्तुत श्लाघनीय एव नाटकीय रचना सविधान स्पृहरणीय है।

———

॥ अथ ॥

मृच्छकटिकम्

प्रथमोऽङ्कः

पर्यङ्कग्रन्थिबन्ध द्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानो—
रन्तःप्राणावरोधव्युपरतसकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य ।
आत्मन्यात्मानमेव व्यपगतकरणं पश्यतस्तत्त्वदृष्ट्या
शम्भोर्वः पातु शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः समाधिः ॥१॥

अन्वय —पर्यङ्कग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीत जानो, अन्तः प्राणावरोध-व्युपरत सकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य, तत्त्वदृष्ट्या, आत्मनि, व्यपगतकरणम्, आत्मानम्, एव, पश्यतः, शम्भोः, शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः, समाधिः, वः, पातु ॥१॥

पदार्थ —पर्यङ्कग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीत जानो =पर्यङ्क नाम वाले योगासन विशेष के लिए सन्धिस्थल पर गाँठ बाधने मे द्विगुणित सर्प के लिपटने से बँधे हुये घुटनो वाले, अन्तः प्राणावरोध व्युपरतसकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य=भीतर ही प्राणवायु को रोक देने से सम्पूर्ण ज्ञान के विश्रान्त हो जाने से संयत इन्द्रियों वाले, तत्त्वदृष्ट्या=यथार्थ ज्ञान रूपी दृष्टि से, आत्मनि=अपने अन्दर, व्यपगतकरणम्= इन्द्रिय व्यापारनिरोधपूर्वक, आत्मानम्=परमात्मा को, एव=ही, पश्यतः=देखने वाले, शम्भोः=शंकर की, शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः=निराकार के दर्शन से होने वाली एकाग्रता के कारण ब्रह्म मे लगी हुई, समाधिः=तल्लीनता, वः=आप लोगो की, पातु=रक्षा करे ॥१॥

अनुवाद—पर्यङ्क नामक आसन-विशेष मे द्विगुणित सर्प के लिपटने से बँधे हुये घुटनो वाले, भीतर ही प्राणवायु को रोक देने से सम्पूर्ण (बाह्य) ज्ञान के विश्रान्त हो जाने से संयत इन्द्रियो वाले, यथार्थ ज्ञान रूपी दृष्टि से, अपने, इन्द्रिय व्यापार निरोधपूर्वक, परमात्मा को, ही, देखने वाले, भगवान शंकर की, निराकार के साक्षात्कार से होने वाली एकाग्रता के कारण ब्रह्म मे तल्लीनता आप लोगो की रक्षा करे ॥१॥

संस्कृत टीका—पर्यङ्कग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेष संवीत जानो.=योगासन-

विशेष सन्धिनिर्माण द्विगुणीकृतसर्पवेष्टनस्थगितजानुद्वयस्य, अन्त प्राणावरोधव्युपरत सकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य=हृदयाभ्यन्तर प्राणनिरोधविश्रान्तसमस्तबोधवशीकृतकरणस्य, तत्त्वदृष्ट्या=सम्यक बोधदृष्ट्या, आत्मनि=स्वविषये, व्यपगतकरणम्=शान्तेन्द्रियम् आत्मानम्=विशुद्धचैतन्यम् एव पश्यत =साक्षात्कुर्वतः, शम्भो =शिवस्य, शून्येक्षण-घटितलयब्रह्मलग्न =निराकारदर्शनसम्पादितप्रवणताब्रह्मचिन्तनसम्पन्न', समाधि = चित्तवृत्तिनिरोध , व.=युष्मान्, पातु=रक्षतु ।

समास एव व्याकरण—पर्यङ्क—पर्यङ्कस्य ग्रन्थे बन्धेन द्विगुणितस्य भुजगस्य आश्लेषेण सवीते जानुनी यस्य तस्य । अन्तः प्राणा —अन्त प्राणानाम् अवरोधेन व्यु-परतम् यत् सकल ज्ञान तेन रुद्धानि इन्द्रियाणि यस्य तस्य । व्यपगतकरणम्=व्यपगत करण यस्य तम् अथवा व्यपगतानि करणानि यस्मात् तम् । शून्येक्षणघटितलयब्रह्म-लग्न =शून्यस्य ईक्षणेन घटित य लय यस्मिन् स चासौ ब्रह्मलग्न. अथवा शून्येन ईक्षणेन घटित य लय तेन ब्रह्मणि लग्न ।

इन्द्रिय=इन्द्र+घच् । व्यपगतकरणम्—वि+अप+गम्+क्त । कृ+ल्युट् । पश्यत —दृश्+शतृ । समाधि =सम्+आ+धा+कि । व —युष्मद् शब्द का द्वितीया बहुबचन । पातु=पा+लोट् ।

विवृति

पर्यङ्क—यह योगाभ्यास का एक आसन है । कुमार सम्भव ३/४५ मे मल्लिनाथ ने इसकी व्याख्या की है—'वीरासन' प्रो० पराञ्जपे ने लिखा है कि यहाँ पर यह वीरासन नही अपितु योगपट्टक है यद्यपि प्रो० काले ने पर्यङ्क को वीरासन माना है। शिवपुराण मे पर्यङ्क का सुन्दर वर्णन है । 'आत्मानम्'—यहाँ पर आत्मानम् का अर्थ है विशुद्ध चैतन्य योगसूत्र १/३ के अनुसार अर्थ होता है आत्मस्वरूप—'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।

छन्द—प्रस्तुत पद्य मे स्रग्धरा छन्द है—'म्रभ्नैर्यानां त्रयेणत्रिमुनियति युता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।'

अलकार, रस, रीति एव गुण—प्रस्तुत पद्य मे प्रकारान्तर से प्रकृत अर्थ की सूचना होने के कारण पर्यायोक्तअलकार है । कुछ टीकाकारो ने आडम्बर बन्ध होने से गौड़ी रीति प्रस्तुत पद्य मे कहा है । प्रो० पराञ्जपे ने इसमे पाञ्चाली रीति ही मानी है और पद्य मे शान्त रस स्वीकार कर रीति को रसानुकूल कहा है । विकटबन्ध स्वीकार करने वाले टीकाकारो ने पद्य मे ओज गुण कहा है । 'पर्यायोक्त यदा भङ्ग्या गम्यमे-वाभिधीयते' पर्यायोक्त अलकार कहते हैं ।

प्रस्तुत पद्य मे प्रकृत राजा की न्याय प्रक्रिया रूप वस्तु-व्यञ्जना भी है। कुछ टीकाकारो ने कविनिष्ठ शकर विषयक रति की प्रधानता पद्य में कही है । तत्व दृष्टि का भी विवेचन वृहदारण्य उपनिषद ४/३ मे अत्यन्त विस्तृत है वहीं से यह

विचार लिया गया है। यथा—यद् वै तन्नपश्यति पश्यन् वै तन्न पश्यति नहि द्रष्टु दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् ।

अपि च ।

और भी—

पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः ।
गौरीभुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते ॥२॥

अन्वय —यत्र, गौरीभुजलता, विद्युल्लेखा, इव, राजते, (स.), श्यामाम्बुदोपम, नीलकण्ठस्य, कण्ठ, व, पातु ॥२॥

पदार्थ —यत्र = जिसमे, गौरीभुजलता = पार्वती की बाहुरूपी लता, विद्युल्लेखा = बिजली की पंक्ति, इव = यथा, राजते = शोभित होती है, श्यामाम्बुदोपम = कृष्ण मेघ के समान, नीलकण्ठस्य = शकर का, कण्ठ = गल प्रदेश, व = आप लोगों की, पातु = रक्षा करे ।

अनुवाद—जिस (कण्ठ) मे पार्वती की (गौर) बाहु-लता बिजली की रेखा के समान सुशोभित होती है (वह) नीले मेघ के तुल्य शकर का गल प्रदेश आप सब की रक्षा करे ।

संस्कृत टीका—यत्र = यस्मिन्, गौरीभुजलता = जगदम्बाबाहुवल्ली, विद्युल्लेखा = तडित्पंक्ति, इव, राजते = सुशोभते, (स), श्यामाम्बुदोपम = नीलजलदतुल्य, नीलकण्ठस्य = शङ्करस्य, कण्ठ = गलप्रदेश = व = युष्मान्, पातु = रक्षतु ।

समास एवं व्याकरण—गौरी० – गौर्य भुज एव लता । विद्युल्लेखा–विद्युत लेखा । श्याम०–श्याम अम्बुद एव उपमा यस्य स । नीलकण्ठस्य–नीलः कण्ठ यस्य तस्य । राजते–राज् + लट् ।

विवृति

प्रस्तुत पद्य मे एक सुन्दर वर्णन है जो कि नान्दी की मूल वस्तु को प्रस्तुत करता है। पद्य के शब्द-कण्ठ और भुजलता, श्यामाम्बुद और विद्युल्लेखा पञ्चम अङ्क के उस दृश्य को सूचित करते हैं जब वर्षा और विद्युत के बीच मे नायिका नायक के गले मे हाथ रखती है । यह पद्य ससार की कालिमा और पवित्र एव निर्मल प्रेम के आनन्द का भी सूचित करता है । यह १/७ 'तयोरिद सत् सुरतोत्सवाश्रयम् नयप्रचारम् व्यवहार दुष्टताम् ।' को भी अभिव्यक्त करता है । बीज रूप से चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रेम का प्रकटीकरण भी नीलकण्ठ के कण्ठ और गौरी की भुजलता से हो जाता है । नीलाम्बुद से आछन्न समय म वसन्तसेना का अभिसरण भी सूचित हुआ है । शकारादि की दुष्टता एव वसन्तसेना की निश्छलता भी शुभ्रता एव श्यामता से सूचित होती है ।

छन्द—पद्य मे पथ्यावक्त्र छन्द है । जिसका लक्षण है—'युजोश्चतुर्थतोजेन पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।'

अलकार, रस, रीति एव गुण—(१) पद्य मे 'कण्ठस्य कण्ठ' लाटानुप्रास है। 'गौरी भुजलता' मे रूपक अलकार है। विद्युल्लेखा इव' मे उपमा है। 'रूपक रूपिता रोपात विषये निरपह्नवे।' 'उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसतिद्वयो।' 'वर्णसाम्यमनुप्रास'। (२) पद्य मे नाटकीय कथावस्तु की व्यञ्जना है। (३) लाटी रीति है पराञ्जपे ने इस पद्य मे वैदर्भी रीति कहा है जो कि शृगार रस के उपयुक्त है। (४) प्रसाद गुण है (५) पद्य मे शृगार रस की मनोहर अभिव्यक्ति हुई है।

विशेष—पृथ्वीधर लिखते है—'यत्रकवि आत्मबुद्धयावस्तुशरीरञ्च नायक ञ्चैव। विरचयति समुत्पाद्य तत् गेय प्रकरण नाम॥'

जहाँ पर कवि स्वय कथावस्तु और नायक की कल्पना कर रूपक लिखता है उसे प्रकरण कहते हैं इसमें ४ वृत्तियाँ, पञ्च सन्धियाँ और आठ रस तथा दश अङ्क होते हैं। प्रकरण मे यहाँ चार प्राकृत भाषायें—शौरसेनी, अवन्तिका, प्राची और मागधी तथा चार अपभ्रश भाषाये—शकारी, चाण्डाली, शावरी और ढक्कदेशीय है इनमे शाबरी भाषा का प्रयोग मृच्छकटिक मे नही है। कुछ विद्वानो ने ७ प्राकृत भाषायें और ७ अपभ्रश भाषायें स्वीकार किया है। यथा—'मागध्यवन्तिजाप्राच्या शौरसेन्यर्धमागधी। बाह्लीकादाक्षिणात्या च सप्त भाषा प्रकीर्तिता'॥' महाराष्ट्री का काव्य मे ही प्रयोग होता है। अपभ्रश मे 'शकाराभीरचाण्डालशबरद्राविडोड्रजा। हीनावनेचराणाञ्च विभाषा सप्तकीर्तिता॥' वनेचरो की ढक्क भाषा होती है। सूत्रधार, नटी, रदनिका, मदनिका, वसन्तसेना, उसकी माता, चेटी, कर्णपूरक, चारुदत्त की पत्नी, शोधनक और श्रेष्ठी ये ११ पात्र शौरसेनी बोलते हैं। वीरक और चन्दनक अवन्ति भाषा बोलते हैं, विदूषक प्राच्य भाषा बोलता है, सवाहक और तीनो चेट, भिक्षु और चारुदत्त का पुत्र ये छह मागधी बोलते हैं। शकारी भाषा राष्ट्रीय बोलता है चाण्डाली भाषा दोनो चाण्डाल बोलते है। ढक्क भाषा माथुर और द्यूतकर बोलते हैं।

(नान्द्यन्ते।)

(नान्दी पाठ के पश्चात।)

विवृति

नान्दी— 'नन्दन्ति देवता अस्यामिति नान्दी'।

'आशीर्वचनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीना तस्मान्नान्दीति सज्ञिता॥'
'यस्या बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः।
श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा॥'

'आशीर्वचनसयुक्तः श्लोकः काव्यार्थसूचकः । नान्दीति कथ्यते प्राज्ञैः' ।

जिसमे आशीर्वचन के साथ स्तुति प्रयुक्त होती है। उसे नान्दी कहते हैं इसमें देव, द्विज, नृप आदि को प्रसन्न किया जाता है। इसमे काव्यार्थ की सूचना भी दी जाती है। मृच्छकटिक मे आठ पदो वाली पत्रावली नामक नान्दी है। नान्दी का पाठ सूत्रधार करता है कहीं-कहीं १२ पदो वाली नान्दी भी देखी गई है सूत्रधार की परिभाषा है—'नाट्योपकरणादीनिसूत्रमित्यभिधीयते । सूत्र धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥'

नाट्य का प्रबन्धक सूत्रधार कहलाता है नान्दी भी पूर्वरङ्ग का एक भाग है। पूर्वरङ्ग का वर्णन भरत नाट्यशास्त्र के पञ्चम अध्याय मे विस्तार के साथ है। पूर्वरङ्ग के अनेक अगो म से नान्दी और प्ररोचना अब शेष हैं। प्रस्तावना का उल्लेख भी बाद म प्राप्त होता है। स्थापक और प्रस्तावना का उल्लेख प्राचीन परम्परा मे नहीं प्राप्त होता है। नन्द+अच्=नन्द एव नान्द (अण्), नान्द+ई=नान्दी।

सूत्रधार.—अलमनेन परिषत्कुतूहलविमर्दकारिणा परिश्रमण । एवमहमार्यमिश्रान्प्रणिपत्य विज्ञापयामि—यदिद वय मृच्छकटिकं नाम प्रकरण प्रयोक्तु व्यवसिता। एतत्कवि किल—

सूत्रधार—सभ्यजनो के औत्सुक्य के विघातक इस परिश्रम को बन्द करो। इस प्रकार मैं सम्माननीय आपको प्रणाम करके निवेदन करता हूँ कि—हम लोग इस मृच्छकटिक नामक प्रकरण का अभिनय करने के लिये तत्पर हैं। इसके प्रणेता कवि—

विवृति .

(१) यहाँ पर प्ररोचना है दशरूपक के अनुसार—'उन्मुखीकरण तत्र प्रशसात. प्ररोचना ।' ३/६ । श्री हर्ष की रत्नावली की भाँति यहाँ भी कवि की प्रशसा आगे की जा रही है। (२) यद्यपि प्राय सभी सस्करणों मे मृच्छकटिक ही नाम आया है किन्तु नाट्य दर्पण और भाव प्रकाशन म मृच्छकटी अथवा मृच्छकटिका नाम प्राप्त होता है। रदनिका के द्वारा निर्मित मिट्टी की छोटी गाड़ी (अङ्क छठा) रोहसेन का मनोरजन नहीं कर पाती है तब वसन्तसेना उसे अपने आभूषण देती है। शूद्रक ने इसी को अपने प्रकरण का नाम रखने के लिए ग्रहण किया।

मृद शकटिका अस्मिन् अथवा मृच्छकटवद् इति मृच्छकटिकम् अथवा मृद शकट मृच्छकटम्, मृच्छकटम् अत्र अस्ति इति अथवा मृन्निर्मित शकटिका मृच्छकटिका सा अस्ति अस्मिन्निति अथवा मृद शकटिका अस्मिन्निति। पाणिनि के 'अत इनि ठनौ' सूत्र का उपयोग किया गया है। (३) प्रकरण—दशरूपक के अनुसार—'अथ प्रकरणो वृत्तमुत्पाद्यम् न लोकसश्रयम् । अमात्य विप्रवणिजामेकम् कुर्याच्च नायकम् धीरप्रशान्त

सापाय धमकामार्थतत्पर शेषम् नाटकवत् सन्धिप्रवेशकरसादिकम् । नायिका तु द्विधा नेतु कुलस्त्री गणिका तथा ।' (४) आय— कर्तव्यमाचरन् कामम् अकर्तव्यमनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वै आय इति स्मृत ।' मिश्र शब्द विद्वानो के लिये सम्मान का सूचक है (५) बिमर्दकारिण =विमर्द+कृ+णिनि । (६) इस प्रकरण मे कथा कवि कल्पित है शृगार प्रधान रस है धीर प्रशान्त, ब्राह्मण चारुदत्त नायक है वसत सेना वेश्या नायिका है । चारुदत्त ब्राह्मणी धूता कुलजा प्रतिन यिका है । (७) परि षत्०—परिषदा कुतूहलस्य विमर्दकारिणा=सभासदो की उत्सुकता को नष्ट करने वाले । अनेन=नान्दी पाठ से । आयमिश्रान=आदरणीय सदस्यो को, आर्येषु मिश्रा तान् । विज्ञापयामि=निवदन करता हूँ । प्रयोक्तुम=अभिनय करने के लिए । व्यव सिता =तत्पर हैं । किल = निश्चय ।

द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्र परिपूर्णेन्दुमुख सुविग्रहश्च ।
द्विजमुख्यतम कविर्बभूव प्रथित शूद्रक इत्यगाधसत्त्व ॥३॥

अन्वय—द्विरदेन्द्रगति चकोरनेत्र, परिपूर्णेन्दुमुख, सुविग्रह, च, द्विजमुख्य तम, अगाधसत्व, शूद्रक प्रथित, कवि बभूव ॥३॥

पदार्थ—द्विरदेन्द्रगति =गजराज सदृशगमन करने वाले चकोर नेत्र = चकोरनेत्र, परिपूर्ण-दुमुख =सम्पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य मुख वाले, सुविग्रह =सुन्दर शरीर वाले च, द्विजमुख्यतम =क्षत्रियो मे शिरोमणि, अगाधसत्व =असीम बल शाली शूद्रक =शूद्रक नाम के, प्रथित =प्रसिद्ध, कवि = रचयिता, बभूव = हुये ।

अनुवाद—गजराज के समान गति वाले, चकोर के सदृश नेत्रो वाले, अखण्ड चन्द्रमा के तुल्य मुख वाले सुन्दर शरीर वाले क्षत्रियो मे शिरोमणि तथा असीम बलशाली शूद्रक (नाम स) प्रसिद्ध कवि हुये ।

संस्कृत टीका—द्विरदेन्द्रगति = गजपतिगमन, चकोरनेत्र = चकोर लोचन परिपूर्णेन्दुमुख = अखण्ड सुधाकर वदन, सुविग्रह = शोभनशरीर, च, द्विजमुख्यतम = क्षत्रजातिश्रेष्ठ, अगाधसत्व = विपुलबल, शूद्रक = एतन्नामक, प्रथित = प्रसिद्ध कवि = काव्यकलाकुशल बभूव = जात ।

समास एवं व्याकरण—द्विरद०—द्वौ रदौ यस्य स द्विरद द्विरदेषु इन्द्र इव द्विरदेन्द्र तस्य गतिरिव गति यस्य स । चकोर नेत्र- चकोरस्य नेत्रे इव नेत्र यस्य स । परि०—परिपूर्ण इन्दु इव मुख यस्य स । सुविग्रह -शोभन विग्रह यस्य स । द्विज०—द्विजेषु मुख्यतम अगाधसत्व =अगाध सत्व यस्य स । प्रथित =प्रथ्+क्त । कवि-कु+इ । बभूव-भू+लिट् ।

विवृति

(१) मुख्य रूप से प्ररोचना यही प्रारम्भ है कवि की प्रशसा इसमे है ।

(२) प्रस्तुत पद्य मे उपमा अलङ्कार है। (३) माल भारिणी छन्द हैं- 'विषमेऽससजायदा'गुरु'चेत् समरा येन तु मालभारिणीयम् (४) माधुर्यगुण और वैदर्भी रीति है (५) शूद्रक नाम छान्दोग्य० ४/२/३ तथा ब्रह्मसूत्र २/३/३५ से सम्बन्ध नही रखता है। (६) पणिनि के गणपाठ के अनुसार शूद्रक शब्द गोत्र से सम्बन्ध रख सकता है।

ऋग्वेदं सामवेद गणितमथ कला वैशिकीं हस्तिशिक्षां
ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद्व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य ।
राजान वीक्ष्य पुत्र परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा
लब्ध्वा चायु: शताब्द दशदिनसहित शूद्रकोऽग्नि प्रविष्टः ॥४॥

अन्वयः- ऋग्वेदम्, सामवेदम्, गणितम्, अथ, कलाम्, वैशिकीम्, हस्तिशिक्षाम्, ज्ञात्वा, शर्वप्रसादात्, व्यपगततिमिरे, चक्षुषी, च, उपलभ्य, पुत्रम्, राजानम्, वीक्ष्य, परमसमुदयेन, अश्वमेधेन, च, इष्ट्वा दशदिनसहितम्, शताब्दम्, आयु, च, लब्ध्वा, शूद्रक, अग्निम्, प्रविष्ट ॥४॥

पदार्थ.—ऋग्वेदम्=ऋग्वेद को, सामवेदम्=सामवेद को, गणितम्= गणित को, अथ=और, कलाम् = कलाओ को, वैशिकीम्= नाट्य शास्त्र को, हस्तिशिक्षाम्= गजशास्त्र को, ज्ञात्वा=जानकर, शर्वप्रसादात्= शिव की कृपा से, व्यपगत तिमिरे=अज्ञानान्धकार से शून्य, चक्षुषी=नयनो को, उपलभ्य=प्राप्त कर, पुत्रम्= सुत को, राजानम्=राजा के रूप मे, वीक्ष्य=देखकर, परमसमुदयेन=महान् उत्साह से, अश्वमेधेन=अश्वमेध यज्ञ से, इष्ट्वा = यज्ञ कर, दशदिनसहितम्= दशदिन अधिक, शताब्दम्=सौ वर्ष, आयु=उम्र, लब्ध्वा=पाकर, शूद्रकः=शूद्रक, अग्निम्= वह्नि मे, प्रविष्ट.= प्रविष्ट हो गया।

अनुवादः—ऋग्वेदम्, सामवेद, गणित और कलायें, नाटयशास्त्र एव गजशास्त्र को जानकर शकर की कृपा से अज्ञानान्धकार से मुक्त नयनो को प्राप्त करके, अपने तनय को नृप के रूप मे देख कर परमोत्साह से अश्वमेध यज्ञ को करके दशदिन अधिक सौ वर्ष की आयु को पाकर (भोग कर) शूद्रक अग्नि मे प्रविष्ट हो गये।

संस्कृत टीका.-ऋग्वेदम्, सामवेदम्, गणितम्, अथ, कलाम्=नृत्यगीतादिरूपाम्, वैशिकीम्=नाट्यशास्त्रम् हस्तिशिक्षाम्= गजशास्त्रम् ज्ञात्वा=अधिगत्य, शर्वप्रसादात्=महादेवानुग्रहात् व्यपगततिमिरे=निवृताज्ञानान्धकारे, चक्षुषी=नयने, च, उपलभ्य=प्राप्य, पुत्रम्=सतम, राजानम्=नृपासनासीनम्, वीक्ष्य=दृष्ट्वा, परमसमुदयेन=महदुत्कर्षेण, अश्वमेधेन=एतन्नामयज्ञेन, च, इष्ट्वा=याग सम्पाद्य, दशदिनसहितम्=दशदिवसाधिकम्, शताब्दम्=शतवर्षमितम्, आयु.=जीवनम्. च, लब्ध्वा =समधिगत्य, शूद्रकः=कवि. अग्निम्=जातवेदसम्, प्रविष्टः=निविष्टः ।

समास एवं व्याकरण— (१) शर्व०-शर्वस्य प्रसाद शर्वप्रसादः तस्मात् ।

व्यपगत०— व्यपगत तिमिर ययो ते । परम०— परम समुदय यस्मात् यस्य यत्र वा तेन । (२) वैशिकीम्– वेश्+ठक् +ङीप् । वीक्ष्य= वि+ईक्ष्+ क्त्वा(ल्यप्) । इष्ट्वा=यज्+क्त्वा । लब्ध्वा—लभ्+क्त्वा । प्रविष्ट –प्र+विश+क्त ।

विवृति

(१) स्त्रग्धरा छन्द है । (२) वेश शब्द के अर्थ हैं-(क) वेश्यालय । (ख) काम शास्त्र (ग) नेपथ्य । यहाँ पर नेपथ्य अथ है । नेपथ्य सम्बन्धी कला अर्थात् नाटयशास्त्र (३) ज्ञात होता है कि शूद्रक ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अपनी मृत्यु के विषय मे जानते थे और एक निणय ले चुके थे इसीलिये उन्होने स्वय 'अग्नि प्रविष्ट' लिखा है । अथवा ज्ञानाग्नि प्रवेश अथ लिया जायेगा अर्थात् ब्रह्मानन्दानुभूति प्राप्त किया । गीता मे कहा भी गया है—

ज्ञानाग्नि सवकर्माणि भस्मसात कुरुतेऽजु न । कुछ विद्वानो का कहना है कि शूद्रक के पुत्र से अभीष्ट धन प्राप्ति के लिये कीर्ति की उपेक्षा करके इसी कविवर ने मृच्छकटिक प्रकरण लिख कर शूद्रक के नाम से प्रसिद्ध कर दिया गया—धावक कवि ने रत्नावली श्री हृष को समर्पित कर दी थी । कि तु यह सब कवि सम्प्रदाय है । वस्तुत शूद्रक का व्यक्तित्व एक समस्या है कुछ विद्वानो का कहना है कि भविष्य काल मे प्रविष्ट क्त प्रत्यय है । कुछ विद्वान् इस श्लोक को प्रक्षिप्त मानते है परा ञ्जपे अग्नि प्रविष्ट को अमरेष्वगण्यत की भाति इसे मुहावरा स्वीकार करते हैं ।

समर व्यसनी प्रमादशून्य ककुदो वेदविदा तपोधनश्च ।
परवारणबाहुयुद्ध लुब्ध क्षितिपाल किल शूद्रको बभूव ॥५॥

अन्वय —शूद्रक समर व्यसनी प्रमाद शून्य वेदविदाम्, ककुद, तपोधन च, परवारणबाहुयुद्धलुब्ध , क्षितिपाल , बभूव किल ॥५॥

पदाथ —शूद्रक =इस नाम वाला कवि समरव्यसनी= सग्राम मे कुशल प्रमाद शून्य=आलस्य रहित, वेदविदाम्=वेद ज्ञाताओ मे, ककुद =श्रेष्ठ तपोधन =तपस्वी, च परवारणबाहुयुद्धलुब्ध =शत्रुओ के गजो से मल्लयुद्ध के अभिलाषी, क्षितिपाल =पृथ्वी के स्वामी, बभूव=हुये किल=निश्चय ही ।

अनुवाद –शूद्रक युद्ध प्रिय आलस्य रहित वेद के विद्वानो म श्रेष्ठ, तपस्वी तथा शत्रुओ के गजो से मल्लयुद्ध के लोभी नरेश हुये (हैं) ।

सस्कृत टीका –शूद्रक =नरेश , समर व्यसनी=युद्ध प्रशक्त , प्रमादशून्य = आलस्य रहित , वेदविदाम्=श्रुतिज्ञातृणाम, ककुद =प्रधान, तपोधन =तपस्वी, च, परवारणबाहुयुद्धलुब्ध = शत्रुगजमल्ल युद्धाभिलाषी, क्षितिपाल = पृथ्वीरक्षक, बभूव=अभवत्, किल—प्रसिद्धो ।

समास एव व्याकरण — (१) समर०–समरेषु व्यसनी । प्रमाद०–प्रमादेन

शून्य । तपाधन –तप एव धनम् यस्य स परवारण०–परेषाम् वारणे स मल्लयुद्धे लुब्ध अथवा परेषाम् वारणरूपे बाहुयुद्धे लुब्ध । (२) 'प्रमादोऽनवधानता' इत्यमर । प्राधान्ये राजलिङ्गे च वृषाङ्गे ककुदोऽस्त्रियाम्' इत्यमर ।

(३) वि+ अस्+ल्युट्+इनि=व्यसनी । लुब्ध –लुभ्+क्त । भू+लिट् ।

विवृति

(१) मालभारिणी छन्द है । (२) प्रस्तुत पद्य से राजा की सर्वगुण सम्पन्नता व्यञ्जित होती है । यह वस्तु व्यञ्जना है । (३) 'अग्नि प्रविष्ट' की नाति बभूव में भी भूतकालिक क्रिया से सम्बन्धित समाधान अपेक्षित है ।

अस्या च तत्कृतौ,—

और उनकी इस कृति (मृच्छकटिक) म—

अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्र किल चारुदत्त ।
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना ॥६॥

अन्वय —अवन्तिपुर्याम, द्विजसार्थवाह, दरिद्र, युवा, चारुदत्त, किल, यस्य, गुणानुरक्ता, वसन्तशोभा, इव, वसन्तसेना, गणिका, च (आसीत) ॥६॥

पदार्थ –अवन्तिपुर्याम=उज्जयिनी नगरी म, द्विजसार्थवाह =ब्राह्मण व्यापारी, दरिद्र =निधन, युवा=युवक, चारुदत्त =चारुदत्त नामवाला, किल=प्रसिद्धि म, यस्य=जिसके, गुणानुरक्ता=गुणा स आकर्षित, वसन्तशोभा=मधुऋतु की सुषमा, इव=भाँति, वसन्तसेना=नाम वाली, गणिका=वेश्या ।

अनुवाद—उज्जयिनी नगरी म ब्राह्मण व्यापारी, निधन युवक चारुदत्त था, जिसक गुणों स आकर्षित वसन्तकालीन सुषमा के समान वसन्तसना नामक वेश्या थी ।

संस्कृत टीका—अवन्तिपुर्याम्=उज्जयिन्याम्, द्विजसार्थवाह =विप्रवाणिज्यपर, दरिद्र=धन रहित, युवा=तरुण, चारुदत्त=एतन्नामक, नायक, किल, यस्य=चारुदत्तस्य, गुणानुरक्ता=सौन्दर्यादिवशगत, वसन्तशोभा=मधुकान्ति, इव, वसन्तसेना=एतन्नामिका, नायिका, गणिका=वेश्या, च ।

समास एव व्याकरण—द्विज०–सार्थम् वहतीति सार्थवाह द्विजश्चासौ सार्थवाहश्चेति अथवा द्विजाना सार्थम् वहति इति स चासौ । गुणानुरक्ता–गुणै अनुरक्ता । वसन्तशोभा—वसन्तस्य शोभा इव ।

विवृति

(१) पद्य म उपमा अलकार है । (२) श्लोक म उपेन्द्र वज्रा छन्द है—'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।' (३) लाटी रीति है (४) प्रसाद गुण है । (५) वसन्तसेना की सौन्दर्यशालिता रूप वस्तु व्यञ्जना है । (६) सार्थो वणिक समूहे स्यात् अपि सघातमात्रके ।' इति मदिनी (७) 'वारस्त्री गणिका वेश्या' इत्यमर ।

(८) अवन्ति एक जनपद है जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी।

तयोरिद सत्सुरतोत्सवाश्रय नयप्रचार व्यवहारदुष्टताम्।
खलस्वभाव भवितव्यता तथा चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः ॥७॥

अन्वय—इदम्, तयोः, सत्सुरतोत्सवाश्रयम् [अस्ति], शूद्रक, नृप, [अत्र], नयप्रचारम्, व्यवहारदुष्टताम्, खल स्वभावम्, तथा, भवितव्यताम्, [एतत्], सर्वम्, चकार, किल ॥७॥

पदार्थ—इदम्=यह, तयो=उन दोनो के, सत्सुरतोत्सवाश्रयम्=उदात्त विलासलीला पर आश्रित, शूद्रक=शूद्रक नाम वाले, नृप.=भूपति, नय प्रचारम्=नीति का आचरण, व्यवहार दुष्टताम्=विवाद की दोषपूर्णता को, खलस्वभावम्=दुष्ट की प्रकृति को, तथा=और, भवितव्यताम्=होनहार को, सर्वम्=सब को, चकार=प्रस्तुत किया है।

अनुवाद—यह (मृच्छकटिक) उन दोनो की उदात्त विलास लीला को आश्रित करके है, शूद्रक राजा ने नीति के आचरण, विवाद की दोषपूर्णता, दुष्ट का चरित्र और भावी (इन) सबको प्रस्तुत किया है।

संस्कृत टीका—इदम्=मृच्छकटिकम्, तयो=वसन्तसेनाचारुदत्तयो सत्सुरतोत्सवाश्रयम्=उदात्तविलासलीलाश्रित, शूद्रक=एतन्नामक, नृप=राजा, नयप्रचारम्=नीति प्रख्यातिम्, व्यवहारदुष्टताम्=विवाद दोषपूर्णताम्, खलस्वभावम्=दुष्ट प्रकृतिम्, तथा=च, भवितव्यताम्=नियतिम्, सर्वम्=निखिलम्, चकार=निर्ममौ, किल।

समास एव व्याकरण—(१) सत्सुरत०—सुरतम् एव उत्सव इति, सत् य सुरतोत्सव, स आश्रय यस्य तम्। नय प्रचारम्=नयस्य प्रचारम्। व्यवहार०—व्यवहारस्य दुष्टताम्। खल०—खलानाम् स्वभावम्। (२) प्रचार-प्र+चर्+घञ्। भवितव्यताम्=भू+तव्य+तल्+टाप्। चकार-कृ+लिट्।

विवृति

(१) वशस्थ छन्द है। 'जतो तु वशस्थमुदीरितम् जरौ' (२) स्वभावोक्ति अलकार है 'स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादे स्वक्रियारूपवर्णनम्'। (३) इस श्लोक मे अत्र इस पद के अभाव के कारण न्यून पदत्व दोष है। (४) वेश्या के साथ ब्राह्मण का सुरतोत्सव सत् कैसे कहा जा सकता है? क्योकि ब्राह्मणो मे गान्धर्व विवाह नही होता है। (५) पराञ्जपे के अनुसार किल ऐतिह्य प्रकट करता है। (६) प्रथम पक्ति म 'इदम्' शब्द 'सत्सुरतोत्सवाश्रयम्' का विशेषण प्रतीत हाता है जो कि असम्यक् है।

(परिक्रम्यावलोक्य च) अये, शून्येयमस्मत्सगीतशाला। क्व नु गता. कुशीलवा

भविष्यन्ति । (विचिन्त्य) आ, ज्ञातम् ।

(घूमकर और देखकर) अरे ! हमारी संगीतशाला (तो) शून्य है । नट और चारण न जाने कहाँ चले गये ? (विचार कर) हाँ, जान लिया;

शून्यमपुत्रस्य गृहं चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम् ।
मूर्खस्य दिशः शून्याः सर्वं शून्यं दरिद्रस्य ॥८॥

अन्वयः—अपुत्रस्य, गृहम्, शून्यम्, यस्य, सन्मित्रम्, न.अस्ति, [तस्य, गृहम्], चिर शून्यम्, [अस्ति], मूर्खस्य, दिशः शून्या· [सन्ति], दरिद्रस्य, सर्वम्, शून्यम् [भवति] ॥८॥

पदार्थ—अपुत्रस्य=नि.सन्तान का, गृहम्=घर, शून्यम्=सूना, यस्य= जिसका, सन्मित्रम्=अच्छा साथी, न अस्ति=नहीं है । चिरशून्यम्=सदैव सूना, मूर्खस्य=बुद्धि हीन की, दिशः=दिशायें, शून्याः=सूनी, दरिद्रस्य=निर्धन की, सर्वम्=सब कुछ, शून्यम्=सूना ।

अनुवाद—निः सन्तान का घर सूना है, जिसका अच्छा मित्र नहीं होता है, (उसका) सम्पूर्ण समय सूना है, निर्बुद्धि के (लिये) सभी दिशायें सूनी हैं (और) निर्धन के लिए सब कुछ सूना होता है ।

संस्कृत टीका—अपुत्रस्य=निःसन्तानस्य, गृहम्=सदनम्, शून्यम्=रिक्तम्, यस्य=जनस्य, सन्मित्रम्=श्रेष्ठसुहृत्, न अस्ति=न विद्यते, [तस्य] चिरशून्यम्= दीर्घशून्यम्, मूर्खस्य=निर्बुद्धे, दिशः=काष्ठा·, शून्याः=रिक्ताः, दरिद्रस्य=निर्धनस्य, सर्वम्=निखिलम्, शून्यम्=रिक्तम् दुःखकरम् ।

समास एवं व्याकरण—(१) अपुत्रस्य–नास्ति पुत्रः यस्य स·, तस्य । (२) अस्ति–अस्+लट् । पुत्र–पुत्+त्रै+क । 'पुन्नाम्नः नरकात् यस्मात् त्रायते पितर तस्मात् पुत्रः इति प्रोक्तः' । —मनु० । मित्र–'तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियम् यत् ।' —भर्तृ० ।

विवृति

(१) अप्रस्तुत निर्धनता से प्रस्तुत संगीतशाला की शून्यता का वर्णन होने के कारण अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है । कुछ विद्वान् दीपक अलङ्कार भी कहते हैं । कुछ टीकाकार व्यतिरेक अलङ्कार मानते हैं । (२) आर्या छन्द है 'यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ।' (३) प्रसाद गुण है । (४) लाटी रीति है । (५) 'अप्रस्तुतात् प्रस्तुतं चेत् गम्यते पञ्चधा ततः । अप्रस्तुत प्रशंसा स्यात्०' । कृतं च संगीतकं मया । अनेन चिरसंगीतोपसनेन ग्रीष्मसमये प्रचण्डदिनकरकिरणोच्छुष्कपुष्कर बीजमिव प्रचलित तारके क्षुधा ममाक्षिणी खटखटायेते । तद्यावद्गृहिणीमाहूय पृच्छामि, अस्ति किंचित्प्रातराशो न वेति ।

एषोऽस्मिभो , कार्यं वशात्प्रयोगवशाच्च प्राकृतभाषी संवृत्त । अविद, अविद भो ! चिरसगीतोपासनेन शुष्कपुष्करनालानीव मे बुभुक्षया म्लानान्यङ्गानि । तद्यावद्गृह गत्वा जानामि, अस्ति किमपि कुटुम्बिन्या उपपादित न वेति । इद तदस्माक गृहम्, तत्प्रविशामि । आश्चर्यम् ! किं नु खल्वस्माक गृहेऽपरमिव सविधानक वर्तते । आयत-मितराडुलोदकप्रवाहा रथ्या, लोह कटाह परिवर्तन कृष्णसारा कृतविशेषकेव युवत्य-धिकतर शोभते भूमि । स्निग्धगन्धेनोद्दीप्यमानेवाधिकं बाधते मा बुभुक्षा । तत्किं पूर्वार्जित निधानमुत्पन्न भवेत् । अथवाहमेव बुभुक्षात ओदन मय जीवलोक पश्यामि । नास्ति किल प्रातराशोऽस्माक गृहे । प्राणाधिक बाधते मा बुभुक्षा । इह सर्वं नवमिव सविधानक वर्तते । एका वर्णक पिनष्टि, अपरा सुमनसो ग्रथ्नाति । किन्विदम् ? भवतु, कुटुम्बिनी शब्दाप्य परमार्थं ज्ञास्यामि । आर्ये ! इतस्तावत् । [अविद अविद भो ! चिरसंगीदोवासणेण सुक्ख पोक्ख रणालाइं विअ मे बुभुक्खाए मिलाणाइ अगाइ । ता जाव गेहं गदुअ जाणामि, अत्थि किं पि कुडुबिणीए उववादिद ण वेत्ति । (परिक्रम्यावलोक्य च) एद त अम्हाण गेह, ता पविसामि । (प्रविश्यावलोक्य च) हीमाणहे, किं णु खु अम्हाण गेहे अवर विअ सविहाणअ वट्टदि । आआमितडुलोद अप्पवाहारच्छा, लोहकडाहपरिअत्तणकसणसारा किदविसेसआ विअ जुअदी अहिं-अदर सोहदि भूमी । सिणिद्धगधेण उद्दीविअ ती विअ अधिअ बाधेदि म बुभुक्खा । ता किं पुव्वविढत्त णिहाण उप्पराण भवे । आदु अहं ज्जेव्व बुभुक्खादो ओदाणमअ जीअलोअ पेक्खामि । णत्थि किल पादरासो अम्हाण गेहे । पाणज्चअ बाधेदि म बुभुक्खा । इध सव्व णव विअ सविहाण वट्टदि । एक्का वराणअ पीसदि, अवरा सुमणाओ गुफदि । (विचिन्त्य) किं राणेद । भोदु । कुडुबिणिं सद्दाविअ परमत्थ जाणिस्स । (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) अज्जे ! इदो दाव ।

अनुवाद—मैंने सङ्गीत कर लिया । इस बहुत देर तक की सङ्गीत साधना से-ग्रीष्म ऋतु मे तीक्ष्ण सूर्य की रश्मियो से सूखे हुए कमल के बीज के सदृश, भूख से चञ्चल पुतलियो वाली मेरी आखे खट २ कर रही हैं । इसलिए पत्नी को बुला कर पूछता हूँ कि कुछ जलपान है अथवा नही । यह (मैं) कार्य वश एव प्रयोग (बात चीत) की अपेक्षा के कारण प्राकृत बोलने वाला हो गया हूँ । अरे ! अरे ! अधिक समय तक सगीत का कार्य करने से भूख से मेरे अ ग सूखे कमल दण्ड के सदृश विवर्ण हो गये है । तो तब तक मैं घर जाकर पता लगाता हूँ कि गृहिणी ने कुछ (भोजन के लिए) बनाया भी है या नही । (घूम कर और देख कर) तो, यही हमारा घर है, इसलिए प्रवेश करता हूं । (प्रवेश कर और देखकर) आश्चर्य है ! हमारे घर मे तो कुछ दूसरा ही आयोजन हो रहा है । विस्तृत चावलो के जल के प्रवाह से गली व्याप्त है । लोहे की कडाही के माजने से काली चित्रित भूमि तिलक रचना से सुशोभित तरुणी के समान सुशोभित हो रही है । (पकवान की)

मधुर गन्ध से प्रदीप्त होकर भूख मुझे और भी पीडित कर रही है। तो क्या पूर्वसञ्चित कोष मिल गया है ? अथवा क्षुधार्त मैं ही सम्पूर्ण जगत् को अन्नमय देख रहा हूँ। हमारे घर में कलेवा (तो) है ही नही। भूख के कारण मेरा प्राण निकलना चाहता है। यहाँ सब नवीन ही आयोजन हो रहा है। एक सुगन्धित द्रव्य पीस रही है, दूसरी फूलो को गूँथ रही है। (सोचकर) यह क्या है ? अच्छा, गृहिणी को बुलाकर यथार्थ बात जान लूँ। (नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये ! इधर आओ।

विवृति

(१) सगीतकम्=नृत्य, गान और वाद्य। चिरसगीतोपासनेन=बहुत देर तक सगीत का अभ्यास करने से। 'नृत्य गीत तथा वाद्य त्रय सङ्गीतमुच्यते।' सगीतरत्नाकर। (२) प्रचण्ड=प्रदीप्त, दिनकर=सूर्य, किरण=कर, उच्छुष्क=सूखे हुये, पुष्कर=कमल, बीजम्=बीज (फल), क्षुधा=भूख, प्रचलित=चञ्चल, तारके=पुतलियाँ। अक्षिणी=नेत्र, खट-खटायेते=खटखटा रही हैं। प्रातराश=कलेवा, कार्यवसात्=प्रयोजन के कारण, प्रयोगवशात्=अभिनय के नियम के कारण, प्राकृतभापी=प्राकृत बोलने वाला, सम्वृत=हो गया हूँ। (३) चिरम् सङ्गीतस्य उपासनेन। (४) प्रचण्डस्य दिनकरस्य किरणै उच्छुष्कम् यत पुष्करस्य बीजम् तदिव। (५) प्रचलिते तारकेययोस्ते। (६) प्रात अश्यते असौ इति प्रातराश। (७) खटखटायते=खटखटा+क्यप्+लट्। खटत् शब्द से डाच् प्रत्यय होकर तथा द्वित्व होकर खटखटा शब्द बनता है। (८) प्राकृतभापी='स्त्रीपु ना प्राकृत वदेत्' पृथ्वीधर स्त्रियो के साथ नाट्य नियमानुसार पुरुष प्राकृत भाषा बोलता है। कभी-कभी प्रसगानुसार स्त्री भी संस्कृत बोलती है। यथा—वसन्तसेना का वर्षा वर्णन उत्तररामचरित मे है—कार्यवशादहतदानीतन सवृत्त। (९) अविद अविद-निर्वेद, खेद और आश्चर्य सूचक अव्यय है। (१०) शुष्क=सूखे, पुष्कर=कमल, नाल=दण्ड। शुष्क यत् पुष्कर तस्य नालानि इव। बुभुक्षया=भूख से। ग्लानानि=शिथिल। कुटुम्बिन्या=पत्नी। 'भार्या जाया पु भूम्नि दारा स्यात्तु कुटुम्बिनी।' इत्यमर। उपपादितम्=बनाया। अपरम्=दूसरा, सविधानकम्=आयोजन। रथ्या=गली, आयामित=फैले, तण्डुल=चावल, उदक=जल, प्रवाह=बहाव। आयामिन तण्डुलोदकाना प्रवाहा यस्यां तथा भूता (११) लोह=लोहा, कटाह=कडाही, परिवर्तन=घुमाने से, कृष्णसारा=चितकबरी। लोहस्य कटाहस्य परिवर्तनेन कृष्णसारा। कृतविशेषका=तिलक लगाय हुए। उपमा अलकार है—युवती इव। (१२) स्निग्धगन्धेन=सुन्दर गन्ध से। उद्दीप्यमाना=बढी हुई, बाधते=पीडित कर रही है। पूर्वार्जितम्=पूर्वजों से सचित, पूर्व० अर्जितम्। निधानम्=कोश (खजाना)। उत्पन्नम्=सुलभ। वर्णकम्=सुगन्धितममाला। अपरा=दूसरी, पिनष्टि=पीस रही है, ग्रथ्नाति=गूँथ रही है, शब्दाप्य—बुलाकर, परमार्थत=वस्तुत, इतस्तावत्=इधर आओ।

(१३) स्निह्+क्त=स्निग्ध । नि+धा+ल्युट्=निधान । (१४) तावत्—वाक्यालङ्कारे । (१५) नेपथ्य—नाटक मे भाग लेने वाले जहाँ सज्जा करते है और जहाँ से रगमच पर आवागमन करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं । 'नेपथ्य स्याज्जवनिका ।' (१६) 'वाच्यौ नटीसूत्रधारौ आर्यनाम्ना परस्परम्' नटी और सूत्रधार एक दूसरे को सम्बोधन मे आर्य कहते हैं । (१७) 'सविधानकम्—भास ने सविधा शब्द का प्रयोग किया है । (१८) प्राणाधिकम्—के स्थान पर कही कही प्राणात्ययम् भी पाठ है । (१८) ओदनमय जीवलोक पश्यामि–'सर्वमपि जीवलोक गरुडमयम् पश्यामि ।' नागानन्द ।

नटी—(प्रविश्य ।) आर्य ! इयमस्मि । [अज्ज ! इअ म्हि ।]

नटी—(प्रवेश कर) आर्य ! यह (मैं) हूँ ।

सूत्रधार—आर्ये ! स्वागत ते । [अज्जे ! साअद दे ।]

सूत्रधार—आर्ये ! तुम्हारा स्वागत है ।

नटी—आज्ञापयत्वार्य को नियोगोऽनुष्ठीयतामिति । [आणवेदु अज्जो को णिओओ अणुचिट्ठीअदु त्ति ।]

नटी—आर्य आज्ञा दे, किस आज्ञा का पालन किया जाय ?

सूत्रधार—आर्ये (चिरसगीदोवासणेण' इत्यादि पठित्वा ।) अस्ति किमप्यस्माक गेहेऽशितव्य न वेति ।

[अज्जे, अस्थि किं पि अह्माण गेहे असिदव्व ण वेत्ति ।]

सूत्रधार—आर्ये, (अधिक समय तक सगीत का सेवन करने से, इत्यादि को पढकर) हमारे घर मे खाने के योग्य कुछ है अथवा नही ?

नटी—आर्य, सर्वमस्ति । [अज्ज सव्व अत्थि ।]

नटी —आर्य, सब कुछ है ।

सूत्रधार—किं किमस्ति । [किं किं अत्थि ।]

सूत्रधार—क्या क्या है ?

नटी—तद्यथा–गुडोदन घृत दधि तण्डुला आर्येणात्तव्य रसायन सर्वमस्तीति । एव तव देवा आशासन्ताम् । [त जधा–गुडोदण घिअ दहिं तण्डुलाइ अज्जेण अत्तव्व रसाअण सव्व अत्थि त्ति । एव दे देवा आसासेदु ।]

नटी—तो, जैसे–गुडभात, घी, दही, चावल–आय के खाने योग्य सरस पदार्थ सब हैं । इस प्रकार आपके देवता आशीर्वाद दें ।

सूत्रधारः—किमस्माक गेहे सर्वमस्ति । अथवा परिहससि ।] किं अह्माण गेहे सव्व अत्थि । आदु परिहससि ।]

सूत्रधार—क्या हमारे घर म सबकुछ है अथवा परिहास करती है ?

नटी—(स्वागतम्) परिहसिष्यामि तावत् । (प्रकाशम्) आर्य, अस्त्यापणे । [परिहसिस्स दाव । अज्ज, अत्थि आवणे ।]

नटी—(अपने मन म) तो परिहास करूँगी (प्रकट रूप म) आर्य, बाजार म है ।

सूत्रधार —(सक्रोधम्) आः अनार्ये, एवं तवाशाछेत्स्यति । अभाव च गमिष्यसि । यदिदानीमहं वरण्डलम्बुक इव दूरमुत्क्षिप्य पातितः । [सक्रोधम्]

आः अणज्जे, एव्व दे आसा छिज्जिस्सदि । अभाव अ गमिस्ससि । ज दाणि अहं वरण्डलम्बुओ विअ दूर उक्खिविअ पाडिदो ।]

सूत्रधार—(क्रोध के साथ) ऐ अनार्ये, इसी प्रकार तरी आशा नष्ट हो जायगी और अभाव (नाश) को प्राप्त होगी । क्योकि इस समय मैं (ढेंकुली के) लम्बे लट्ठे से (एक कान पर) बँधे मिट्टी के बडे ढेले की भाति ऊँचा उठाकर पटक दिया गया हूँ ।

नटी—मर्षतु मर्षत्वार्य । परिहास खल्वेष [मरिसेदु मरिसेदु अज्जो । परिहासो क्खु एसो ।]

नटी—आर्य, क्षमा करें, क्षमा करें । वास्तव म यह परिहास (मजाक) था ।

सूत्रधार—तत्किं पुनरिद नवमिव सविधानकं वर्तते । एका वर्णकं पिनष्टि अपरा सुमनसो गुम्फति, इयं च पञ्चवर्णकुसुमोपहारशोभिता भूमि ।

[ता किं उण इद पाव विअ सविहाणअ वट्टदि । एक्का वण्णअ पीसेदि, अवरा सुमणाओ गुम्फेदि, इअ अ पञ्चवण्णकुसुमोवहारसोहिदा भूमी ।]

सूत्रधार—तो क्यों फिर यह नवीन-सा आयोजन है । एक (स्त्री) सुगन्धित पदार्थ पीसती है, दूसरी पुष्पों को गूँथती है और यह पांच रंग के पुष्पोहार से सुशोभित भूमि है ।

नटी—आर्योपवासो गृहीत [अज्ज उववासो गहिदो ।]

नटी—आज उपवास ग्रहण किया है ।

सूत्रधार –किं नामधेयोऽयमुपवास । [किं णामधेओ अअ उववासो ।]

सूत्रधार—किस नाम वाला यह उपवास है ?

नटी—अभिरूपपतिर्नाम [अहिरूअवदी णाम ।]

नटी—'अभिरूपपति' नाम है ।

सूत्रधारः—आर्ये, इहलौकिकोऽथवा पारलौकिक । [अज्जे, इहलोइओ आदु पारलोइओ ।]

सूत्रधार—आर्ये, (यह) एहिलौकिक है या पारलौकिक ?

नटी—आर्य, पारलौकिक । [अज्ज, पारलोइओ ।]

नटी—आर्य, पारलौकिक ।

सूत्रधार –(सरोषम् ।) प्रेक्षन्ता प्रेक्षन्तामार्यमिश्रा । मदीयेन भक्तपरिव्ययेन पारलौकिका भर्तान्विष्यत । [पेक्खन्तु पक्खन्तु अज्जमिस्सा । ममकेरकेण भत्तपरिव्व-

एण पारलोइओ भत्ता अण्णेसिअदि ।]

सूत्रधार-(क्रोध के साथ) देखिये, देखिये, सज्जनगण ! मेरा भात व्यय कर पारलौकिक पति ढूँढा जा रहा है ।

विवृति

(१) नियोग =आदेश । अनुष्ठीयताम्=पालन किया जाय । अशितव्यम्= खाने योग्य, गेहे=घर मे, गुडौदनम्=गुड और चावल, अत्तव्यम्=खाने योग्य, रसायनम्=स्वादिष्ट भोजन, आशासन्ताम्=आशीर्वाद दें । परिहससि=हँसी कर रही हो । (२) रसायनम् रसानाम् अयनम् इति । स्वगतम्—'अश्राव्य खलु यद्वस्तु तदिह स्वगत मतम् । सर्वश्राव्य प्रकाश स्यात् ।' सा० द० । (३) आ—अरी, अनार्ये=दुष्टे । छेत्स्यति=नष्ट होगी । अभावम्=विनाश को, गमिष्यसि=प्राप्त होगी, इदानीम्=इस समय, वरण्डलम्बुक=ढेंकुली के लट्ठे से बधा मिट्टी का ढेला, अथवा पत्थर का ढेला । दूरम्=ऊँचे, उत्क्षिप्य=उछालकर, पातित.=गिराया गया । अर्थात् आशा दिलाकर निराश किया गया । (४) वरण्डलम्बुक=इसके टीकाकारो ने कई अर्थ किये हैं—(अ) ढेंकुली के लट्ठे मे बँधा मिट्टी का लोदा । ढेकुली कुएँ से जल निकालने के काम आती है । (ब) डाट के आधार के लिए निर्मित ढोला । (स) लटकला हुआ घास का गठ्ठर । (५) अभाव गमिष्यसि—इससे वसन्त सेना के 'प्रवहणविपर्यासमाटेनयो सूचनम्' इति पृथ्वीधर । (६) वर्णकम्पिनष्टि से चारुदत्त के विनाश हेतु शकारकृत प्रयास की सूचना होती है । सुमनसो गुम्फति वध्यमाला की विज्ञप्ति करता है । 'पञ्चवर्णकुसुमोपहार' से पाच सुखद घटनाओ की अभिव्यक्ति है (क) चारुदत्त के चरित्र की पवित्रता । (ख) चारुदत्त द्वारा शकार को अभयदान । (ख) आर्यक का राज्यलाभ । (घ) नायक-नायिका मिलन । (ङ) शर्विलक से सख्य (७) पञ्चवर्ण=पाँचरग, कुसुमोपहार=फूल चढाना, शोभिता= सज्जित । पञ्चवर्णाना कुसुमानाम् उपहारेण शोभिता । (८) अभिरूपपति = अनुकूल स्वामी, इहलौकिक =इस लोक मे होने वाला, पारलौकिक =परलोक मे मिलने वाला, भर्ता=स्वामी, भक्तपरिव्ययेन=चावल के खर्च से, अन्विष्यते=ढूँढा जाता है । (९) अनुष्ठीयताम्—अनु+स्था+यक् (कर्म)+लोट् । अशितव्यम्— अश्+तव्य । आशासन्ताम्—आ+शास+लोट् (इच्छार्थक) आशसन्तु पाठ भी है— आ+शस्+लोट् (स्तुति अर्थ) (१०) इहलौकिकः—इसके स्थान पर पाणिनि के अनुसार—इह+लोक+ठञ्=ऐहलौकिक होना चाहिये ।

नटी—आर्य, प्रसीद प्रसीद । त्वमेव जन्मान्तरे भविष्यसीति । [अज्ज, पसीद पसीद । तुम ज्जेव जम्मन्तरे भविस्ससि त्ति ।]

नटी—आर्य, प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये, आप ही दूसरे जन्म मे (पति) होंगे (इसलिए व्रत कर रही हूँ ।)

सूत्रधार—अयमुपवास. केन तवोपदिष्टः । [अअ उववासो केण दे उवदिट्टो ।]

सूत्रधार–यह व्रत किसने तुम्हें वताया ?

नटी–आर्यस्यैव प्रियवयस्येन जूर्णवृद्धेन। [अज्जस्स ज्जेव पिअवअस्सेन जूण्णवुड्ढेण।]

नटी—आपके ही प्रिय मित्र "जूणवृद्ध" ने।

सूत्रधार —(सकोपम् ।) आ दास्या पुत्र जूर्णवृद्ध, कदा नु खलु त्वा कुपितेन राज्ञा पालकेन नववधूकेशहस्तमिव सुगन्ध छेद्यमान प्रेक्षिष्ये ।

[आ दासीए पुत्ता जुण्णवुड्ढा, कदा णु क्खु तुम कुविदेण रण्णा पालएण णववहूकेसहत्थ विअ सुअन्ध कप्पिज्जन्त पेक्खिस्सम् ।]

सूत्रधार—(क्रोधपूर्वक) अरे दासीपुत्र जूर्णवृद्ध, कब मैं वास्तव म तुझे क्रोधित राजा, 'पालक' द्वारा नववधू के सुवासित केशपाश की भाँति विच्छिन्न किया जाता हुआ देखूँगा।

नटी—प्रसीदत्वार्य । आर्यस्यैव पारलौकिकोऽयमुपवास । [पसीददु अज्जो। अज्जस्स ज्जेव पारलोइओ अअ उववासो।] (इति पादयोः पतति।)

नटी—आर्य, प्रसन्न हो। आपके लिए ही यह पारलौकिक उपवास है। [चरणो मे गिर पडती है।]

सूत्रधार —आर्य, उत्तिष्ठ। कथयात्रोपवासे केन कार्यम्। [अज्जे, उट्ठेहि। अधेहि एत्थ उववासे केण कज्जम्।]

सूत्रधार–आर्य, उठो। बताओ कि इस उपवास मे किस (व्यक्ति) से प्रयोजन?

नटी—अस्मादृशजनयोग्येन। ब्राह्मणनोपनिमन्त्रितेन। [अह्मारिसजणजोग्गेण बह्मणेण उवणिमन्तिदेण।]

नटी–अपने अनुरूप ब्राह्मण को निमन्त्रित करने से।

सूत्रधार —अनो गच्छत्वार्या। अहमप्यस्मादृशजनयोग्य ब्राह्मणमुपनिमन्त्रयामि। [अदो गच्छदु अज्जा। अहपि अह्मारिसजणजोग्ग बह्मण उवणिमन्तेमि।]

सूत्रधार–अच्छा, आर्य (तुम) जाओ। मैं भी अपने योग्य ब्राह्मण को निमन्त्रित करता हूँ।

नटी—यदार्य आज्ञापयति। [ज अज्जो आणवेदि।] (इति निष्क्रान्ता)।

नटी—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (चली जाती है।)

सूत्रधार —(परिक्रम्य।) आश्चर्यम्। तस्मात्कथ मयैव सुसमृद्धायामुज्जयिन्यामस्मादृशजनयोग्यो ब्राह्मणोऽन्वेपितव्य । (विलोक्य) एप चारुदत्तस्य मित्र मैत्रेय इत एवागच्छति। भवतु। प्रक्ष्यामि तावत्। अद्य मैत्रेय, अस्माक गृहेऽग्रितुमग्रणीर्भवत्वार्य।

[हीमाणहे। ता कध मए एव्व सुसमिद्धाए उज्जइणीए अह्मारिसजणजोग्गो बह्मणो अण्णेसिदव्वो। एसो चारुदत्तस्स मित्त मित्तेओ इदो जेव्व आअच्छदि। भोदु। पुच्छिस्स दाव। अज्ज मित्तेअ, अह्माण गेहे असिदु अग्गणी भोदु अज्जो।]

सूत्रधार—(घूम कर) आश्चर्य ! तो किस प्रकार मेरे द्वारा सुसम्पन्न 'उज्जयिनी' मे अपने अनुरूप ब्राह्मण को ढूँढा जाय ? यह 'चारुदत्त' का मित्र 'मैत्रेय' इधर ही आ रहा है। अस्तु (इससे) पूछूँ तो। आर्य मैत्रेय, आज आप हमारे घर भोजन करने के लिये अग्रेसर हो।

(नपथ्ये)

(नेपथ्य मे।)

भो, अन्य ब्राह्मणमुपनिमन्त्रयतु भवान्। व्यापृत इदानीमहम्। [भो, अण्ण वह्माण उवणिमन्तेदु भवम्। वावुडो दाणि अहम्।]

अरे ! आप दूसरे ब्राह्मण को निमन्त्रित करें। इस समय मैं व्यस्त हूँ।

सूत्रधार—आर्य सपन्न भोजन नि सपत्न च। अपि च दक्षिणापि ते भविष्यति। [अज्ज, सपण्ण भोअण णीसवत्त अ। अवि अ दक्खिणा वि दे भविस्सदि।]

सूत्रधार—आर्य, भोजन तैयार है तथा दूसरा विपक्षी भी नही, और दक्षिणा भी तुम्हारी होगी।

(पुनर्नेपथ्ये)

(फिर नेपथ्य से)

भो, इदानी प्रथममेव प्रत्यादिष्टोऽसि, तत्कि इदानी ते निर्बन्ध पदे पदे मामनुरोद्धम्। [भो, दाणि पढम ज्जेव पच्चादिट्ठोसि, ता को दाणि दे णिब्बन्धो पदे पदे म अनुबन्धेदुम्।]

अरे ! अभी पहले ही निषेध कर दिया है, तो इस समय 'पद पद पर मेरा अनुरोध करने वाला' (यह) तुम्हारा कैसा हठ है ?

सूत्रधार—प्रत्यादिष्टोऽस्म्येतेन। भवतु। अन्य ब्राह्मणमुपनिमन्त्रयामि। [पच्चादिट्ठोम्हि एदिणा। भोदु। अण्ण बम्हण उवणिमन्तेमि।] (इति निष्क्रान्त.।)

सूत्रधार—इसने निषेध कर दिया है। अस्तु, दूसरे ब्राह्मण को निमन्त्रित करता हूँ। (चला जाता है।)

(इत्यामुखम्)

(आमुख समाप्त)

विवृति

(१) जन्मान्तरे=दूसरे जन्म मे, उपोषिता=उपवासी, उपदिष्ट=बतलाया गया। प्रसीद प्रसीद=आदर मे द्विरुक्ति। ससुगन्धम्=सुगन्धित, शोभनो गन्धो यस्यतम्। नववधूकेशहस्तम्=नई दुलहिन के जूडे को, नववध्वा केशहस्तम्, छिद्यमानम्=काटे जाते हुये, अस्मादृशजनयोग्येन=अपने जैसे लोगो के योग्य, उप

निमन्त्रयामि=निमन्त्रित करता हूँ। सुसमृद्धायाम्=धनधान्य से पूरित अशितुम्=खाने के लिए, अग्रणी=अग्रसर, नेपथ्ये=पर्दे मे, व्यापृत=व्यस्त, सम्पन्नम्=बना, नि मपत्नम्=बिना विरोधी के, प्रत्यादिष्ट=मना किया गया, अनुरोद्धुम्=आग्रह करने के लिए, निर्बन्ध=हठ। (३) जूणवृद्ध अथवा चूर्णवृद्ध दोनो नाम प्रयुक्त प्राप्त होते हैं। (४) उज्जयिनी की समृद्धि का वर्णन मेघदूत म भी है। (५) छेद्यमानम् अन्तिम अक के चारुदत्त का निग्रह सूचित होता है। (६) नेपथ्ये='अतर्जवनिका-मार्तृनेपथ्यम्।' नेपथ्यरङ्ग' इतिमेदिनी। (७) प्रत्यादेशो निराकृति' इत्यमर। (८) 'पूर्वजन्मनि या विद्या पूर्वजन्मनि यद्धनम्। पूर्वजन्मनि या नारी अग्रे धावति धावति। (९) अग्रणी=अग्रे नयतीति। (१०) मनु और याज्ञवल्क्य नटा के यहाँ ब्राह्मणो को भोजन निषिद्ध करते हैं—४/२१८-१५ मनु०। १/१६१ याज्ञ०। (११) अग्र+नी+क्विप्। (१२) कहीं-कहीं नि सपत्नम के स्थान पर नि स्रावम् पाठ भी है, जिसका अर्थ है—घृतादिसहिततण्डुलपात्र। (१३) ब्राह्मणो को भोजन के पश्चात् दिया जान वाला द्रव्य दक्षिणा कहलाता है। (१४) आमुख– नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विकएव वा। सूत्रधारेण सहिता सलाप यत्र कुर्वते। चित्रैर्वाक्यै स्वकार्योत्थै प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथ। आमुखतत्तुविज्ञेय नाम्ना प्रस्तावनापि सा।' सा० द०। सूत्रधार यहाँ नटी के साथ वार्तालाप करता हुआ वस्तु का सकेत करता है। आमुख-भारतीवृत्ति का एक अग है। सूत्रधार का यह वाग व्यापार प्राय सस्कृत म होता है। भारतीवृत्ति के ४ अग होते हैं—प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख। कुछ टीकाकार इस कथाद्धात और कुछ प्रयोगातिशय आमुख (प्रस्तावना) प्रकार कहत हैं।

[प्रविश्य प्रावारहस्त ।]

[उत्तरीय हाथ मे लिए प्रवेश कर]

मैत्रेय—['अन्य ब्राह्मण' इति पूर्वोक्त पठित्वा] अथवा मयापि मैत्रेयेण पर-स्यामन्त्रणकानि समीहितव्यानि। हा अवस्थे, तुलयसि। यो नामाह तत्रभवतश्चारु-दत्तस्य ऋद्धयाहाराश्र प्रयत्नसिद्धैरुग्दारसुरभिगन्धिभिर्मोदकैरेवाशितोऽभ्यन्तरचतु शाल-कद्वार उपविष्टो मल्लकशतपरिवृतश्चित्रकर इवाङ्गुलीभि स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वापनयामि। नगरचत्वर वृषभ इव रोमन्थायमानस्तिष्ठामि। स इदानीमह तस्य दरिद्रतया यत्र तत्र चरित्वा गृहपारावत् इवावासनिमित्तमत्रागच्छामि। एष चार्य चारुदत्तस्य प्रिय वयस्येन जूर्णवृद्धेन जाती कुसुम वासित प्रावारकोऽनुप्रेषित सिद्धीकृतदेवकार्यस्यार्य-चारुदत्तस्यापनेतव्य इति। तद्यावदार्यचारुदत्त पश्यामि। (परिक्रम्यावलोक्य च।) एष चारुदत्त सिद्धीकृतदेवकार्यो गृहदेवताना बलि हरन्नित एवागच्छति।

[अथवा, मए वि मित्तेएण परस्स आमन्तणआइ पच्छिदव्वाइ। हा अवत्थे,

तुलीअसि । जो णाम अह तत्तभवदो चारुदत्तस्स रिद्धीए अहोरत्त पअत्तणसिद्धेहिं उग्गार सुरहिगन्धेहिं मोदकेहिं ज्जेव असिदो अब्भन्तर चदुस्साल अदुआए उवविट्ठो मल्लअसदपरिवुदो चित्तअरो विअ अगुलीहिं छिविअ छिविअ अवणेमि । णअरचत्तरवुसहो विअ रोमन्थाअमाणो चिट्ठामि । सो दाणि अह तस्स दलिद्दाए जहिं तहिं चरिअ गहपारावदो विअ आवासणिमित्तं इध आ अच्छामि । एसोअ अज्ज चारुदत्तस्स पिअवअस्सेण जुण्णवुड्ढेण जादीकुसुमवासिदो पावारओ अणुप्पेसिदो सिद्धीकिददेवकज्जस्स अज्ज चारुदत्तस्स उवणेदव्वोत्ति । ता जाव अज्ज चारुदत्त पक्खामि । एसो चारुदत्तो सिद्धिकिददवकज्जो गिहदेवदाण वलि हरेन्तो इदोज्जेव आअच्छदि ।]

मैत्रेय—['अन्य ब्राम्हणम्" इत्यादि पूर्वोक्त वाक्य को पढकर] अथवा मुझ मैत्रेय को भी दूसरो के निमन्त्रण की कामना करनी चाहिए ? हा (निर्धन) अवस्थ ! (मेरी) परीक्षा ले रही हो । जो मैं श्रद्धेय चारुदत्त के समृद्धिकाल में रात-दिन यत्नपूर्वक तैयार किय गये, उदगार (डकार) में सुगन्धि लाने वाले, ऐसे मोदकों को खाकर, भीतरी चतुःशाला के द्वार पर बैठा हुआ सैकड़ो व्यञ्जन पात्रों चित्रकार की भाँति अङ्गुलियो से छू-छू कर छोडता रहा, नगर प्राङ्गण के साँड की भाँति जुगाली करता बैठा रहता वही इस समय में उस (चारुदत्त) की निर्धनता के कारण जहाँ-तहाँ चुनकर पालतू कबूतर की भाँति निवास-मात्र के हेतु यहाँ आता हूँ । आर्य "चारुदत्त के प्रियमित्र "जूर्णवृद्ध' ने जाति पुष्पों (चमेली) से सुवासित दुपट्टा भेजा है कि देवकार्य-सम्पादित करने वाले आर्य चारुदत्त के पास ले जाओ । तो तब तक आर्य चारुदत्त को देखता हूँ [घूमकर और देखकर] यह चारुदत्त देवपूजा से निवृत्त होकर गृह-देवताओं की बलि लिए हुए इधर ही आ रहे है ।

(तत प्रविशति यथा निर्दिष्ट, चारुदत्तो रदनिका च ।)

(इसके बाद पूर्व निर्दिष्ट चारुदत्त और रदनिका प्रवेश करते हैं ।)

विवृति

(१) प्रावारहस्त =हाथ मे उत्तरीय लिए । आमन्त्रकानि=निमन्त्रण । समीहितव्यानि=वाञ्छित होने चाहिए । तुलयसि =परीक्षा ले रही हो । ऋद्ध्या=सम्पन्नता मे, प्रयत्न सिद्धैः =प्रयास पूर्वक बनाये गये । उद्गार-सुरभिगन्धिभिः=डकार लेने मे सुगन्धियुक्त । मोदकैः =लड्डुओं से । अशित —तृप्त । अभ्यन्तरचतुःशालकद्वारे=भीतरी बैठक के दरवाजे पर । मल्लकशतपरिवृत =व्यञ्जन अथवा रंग के सैकड़ो पात्रो से घिरा हुआ । चित्रकर =चित्रलेखक । अपनयामि=दूर करता हूँ । नगर चत्वर-वृषभ नगर की चौक का बैल । रोमन्थायमान —जुगाली करता हुआ । गृहपारावत =घर का कबूतर । आवासनिमित्तम्=बसेरा के लिए । जाती = चमेली । सिद्धीकृत—सम्पादित । उपनेतव्य=देना चाहिए । मनिर्येदम्– दुःख

साथ। बलिम्=पूजा। हरन्=लिए हुए। इत=इधर। यथा-निर्दिष्ट=जैसा कहा गया है। (२) प्रावार हस्त यस्य असौ। आमन्त्र्यत यस्य तानि आमन्त्रणकानि। उद्गारेषु सुरभि गन्ध यथा तै। अभ्यन्तर यत् चतुशालकम् तस्य द्वारे। मल्लकानाम् शतन परिवृत नगरस्य चत्वरस्य वृषम। जात्या कुसुमै वासित सिद्धीकृतम् देवकार्यम् यन तस्य। निर्वेदन सहितम्। (३) तुला+णिच्+लट्=तुल्यसि। प्र+आ+वृ+घञ। चतु शालकम् म स्वार्थे क। रोमन्थ+क्यङ्+शानच्=रोमन्थायमान। आमन्त्रणम् म कृत्यल्युटो बहुलम् स ल्युट् तत कुत्सित अर्थ म क प्रत्यय। तुलयसि=तत्करोति तदाचष्ट स णिच् तलयसि भी प्रयाग बनगा। अमित=अस्+क्त+अच्। 'अर्श आदिभ्य'। मल्लक ह्रस्वार्थे कन्। रञ्जीवश्चित्रकर इत्यमर। अङ्गनम् चत्वराजिरे इत्यमर.। रोमन्थ स्यात् पशूद्गारो। अनकार्थकध्वनिमञ्जरी। (८) यहाँ वसन्तसना और चारुदत्त क आग होन वाले समागम रूप फल का कारण परस्पर अनुराग रूप बीज नाम अर्थ प्रकृति है। 'बीज बिन्दु पताका च प्रकरी कार्यमव च। अर्थ प्रकृतय पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधि।"—साहित्यदर्पण। (५) 'अल्पमात्र समुद्दिष्ट बहुधा यत्प्रसर्पति। फलस्य प्रथमा हेतुर्बीज तदभिधीयत।" (६) "भवदारम्भ औत्सुक्य यन्मुख्यफलसिद्धय"। "यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थ रससम्भवा। प्रारम्भण समायुक्ता तन्मुख परिकीर्तितम्।" चारुदत्त वसन्तसना के भावि समागम रूप प्रधान फल की सिद्धि क लिए वसन्तसेना का चारुदत्त के हाथ म अलङ्कार निक्षेप रूप उत्सुकता आरम्भ नामक अवस्था है। (७) "प्राच्या विदूषकादीनाम्"—सा० द०। विदूषक प्राच्या भाषा बोलता है। (८) इस अ क म विविध महत्वपूर्ण चरित्रों का सुन्दर प्रस्तुतीकरण है। प्रथम अ क की घटना एक अथवा दो घण्टा म सायकाल प्रथम दिन क कार्य व्यापार म हुई है यथा 'अन्यच्च एतस्या प्रदोष वेलायाम्" और भी 'मारुताभिलापो प्रदोषसमय।"

चारुदत्त—(ऊर्ध्वमवलोक्य सनिर्वेद नि श्वस्य।)

चारुदत्त—(ऊपर को देखकर और दु ख के साथ निश्वास लेकर)

यासा बलि सपदि मद्गृहदेहलीना
हसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्व।
तास्वेव सप्रति विरूढतृणाकुरासु
बीजाञ्जलि पतति कीटमुखावलीढ ॥९॥

अन्वय—यासाम्, मद्गृहदेहलीनाम्, बलि, सपदि, हसै, च सारसगणै· विलुप्तपूर्व, सम्प्रति, विरूढतृणाकुरासु, तासु, एव, कीटमुखावलीढ, बीजाञ्जलि, पतति ॥९॥

पदार्थ—यासाम्=जिन, मद्गृहदेहलीनाम्=मेरे भवन की देहलियो की,

बलि =पूजा, सपदि=शीघ्र, हसैं =मरालो से, च, सारसगणैं =सारसो के समूहो से, विलुप्तपूर्व =पहले अदृश्य कर दी जाती थी, सम्प्रति=इस समय, विरूढतृणाकुरासु—उगे हुये घास के अंकुरो वाली, तासु=देहलियो पर, एव=ही, कीटमुखावलीढ =कीडो के मुखो द्वारा खण्डित, बीजाञ्जलि =अन्न की अञ्जलि, पतति= गिरती है।

अनुवाद—जिन मेरे भवन की देहलियो पर पूजा का द्रव्य शीघ्र ही हसो और सारस समूहों द्वारा पहले खा लिया जाता था, इस समय उगी हुई दूर्वा के अकुरो से युक्त उन देहलियो पर ही कीडो के मुखो द्वारा खण्डित, अन्न की अञ्जलि गिरती है।

सस्कृत टीका—यासाम, मद्गृहदेहलीनाम्=चारुदत्तभवनद्वारपिण्डिकानाम्, बलि =पूजोपहार, सपदि=शीघ्रम एव, हसैं =मरालैं, च, सारसगणैं =पक्षि विशेष समूहे, विलुप्त पूर्व =भक्षि पूव, सम्प्रति=इदानीम्, विरूढतृणाकुरासु, उत्पन्नदूर्वांकुरासु, तासु=प्रसिद्धासु, एव, कीटमुखावलीढ=कीटवदनार्वमुक्त, बीजाञ्जलि =धान्याञ्जलि, पतति=पतित अस्ति।

समास एव व्याकरण—(१) मद०—मम् गृहाणि मदगृहाणि तेषा य देहल्य तासाम्। सारसगणैं =सारसानाम् गणैं। विलुप्तपूर्व =पूर्वम् विलुप्त इति। विरूढतृणाकुरासु=विरूढा तृणाकुरा यासु तासु। कीट०=कीटानाम् मुखे अवलीढ। बीजाञ्जलि =बीजानाम् अञ्जलि। (२) अवलीढ =अव+लिह्+क्त। विलुप्त =वि+लुप्+क्त। पतति=पत्+लट। बलि =बल्+इन्।

विवृति

(१) वसन्ततिलका छन्द है—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग।' (२) पर्याय अलङ्कार है—'क्वचिदेकमनेकस्मिन्ननेकमचैतगमक्रमात्। भवति क्रियतेवा चेत् पर्याय इष्यते।' यहाँ पर दारिद्र रूप कारण के तृणाकुरउत्पत्ति बीजाञ्जलि प्रपात रूप कार्य से पर्याय अलङ्कार है। कुछ टीकाकार तुल्ययोगिता अलङ्कार भी कहते हैं। (३) प्रसाद गुण है। (४) पाञ्चाली रीति है। (५) मारकण्डय पुराण के अनुसार—दद्यात् धात्रे विधात्रे च बलि द्वारे गृहस्य च।' (६) आचार्य वामन ने इस पद्य को काव्यालङ्कार वृत्तिसूत्र मे उद्धृत किया है। (७) रघुवश—'हर्म्यप्रसरूढतृणाकुरेषु।' ६/४७।

(इति मन्द मन्द परिक्रम्योपविशति।)

(ऐसा कहकर धनै धनै घूमकर बैठ जाता है।)

विदूषक—एष आर्य चारुदत्त। तद्यावत्साप्रतमुपसर्पामि। (उपसृत्य।) स्वस्ति भवते। वर्धना भवान्। [एसो अज्ज चारुदत्तो। ता जाव सपद उवसप्पामि। सोत्थि भवदे। वड्ढदु भवम्]

विदूषक—यह आप चारुदत्त हैं। तो मैं अब इनके समीप चलता हूँ। (समीप जाकर) आपका कल्याण हो! आपका अभ्युदय हो!

चारुदत्त—अये, सर्वकालमित्र मैत्रेय प्राप्त। सखे, स्वागतम्। आस्यताम्।

चारुदत्त—अरे! सब समय के मित्र मैत्रेय आ गए। मित्र, स्वागत है। बैठिये।

विदूषक—यद्भवानाज्ञापयति। (उपविश्य।) भो वयस्य, एष ते प्रियवयस्येन जूर्णवृद्धेन जातीकुसुमवासित प्रावारकोऽनुप्रेषित सिद्धीकृतदेवकार्यस्यार्य चारुदत्तस्य त्वयोपनेतव्य इति। [ज भव आणवेदि। भो वयस्स, एसो दे पिअवअस्सेण जुण्णवुड्ढेण जादीकुसुमवासिदो पावारओ अणुप्पेसिदो सिद्धीकिददेवकज्जस्स अज्जचारुदत्तस्स तुए उवणेदव्वात्ति।] (समर्पयति।)

विदूषक—जैसी आप आज्ञा देते हैं। (बैठकर) हे मित्र, यह तुम्हारे प्रिय सखा 'जूर्णवृद्ध' ने जाती-पुष्पा (चमेली) से सुवासित उत्तरीय भेजा है (और कहा है कि—) देवताओं की पूजा से निवृत्त आर्य 'चारुदत्त' को दे देना।

[चारुदत्तो गृहीत्वा सचिन्त स्थित।]

['चारुदत्त' लेकर चिन्तित हो जाता है।]

विदूषक—भो, किमिदं चिन्त्यते। [भो, किं इदं चिन्तीअदि।]

विदूषक—अरे, यह क्या सोच रहे हो?

विवृति

(१) साम्प्रतम्=अब। उपसर्पामि=समीप जाता हूँ। सर्वकालमित्रम्=सम्पत्ति और विपत्ति दोनों में साथ देने वाला। सर्वेषु एव हि कालेषु मित्रम्। (२) आस्यताम्=बैठिए।

चारुदत्त—वयस्य,

चारुदत्त—मित्र!

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां धृतः शरीरेण मृतः स जीवति ॥१०॥

अन्वय—घनान्धकारेषु, दीपदर्शनम्, इव, दुःखानि, अनुभूय, सुखम्, हि, शोभते, य, नर, सुखात् दरिद्रताम्, याति, स, शरीरेण, धृत, अपि, मृत, [इव], जीवति ॥१०॥

पदार्थ—घनान्धकारेषु=गहन अन्धकार में, दीपदर्शनम्=दीपक का प्रकाश, इव=भाँति, दुःखानि=कष्ट, अनुभूय=अनुभव करके, सुखम्=आनन्द, हि=निश्चय, शोभते=सुशोभित होना है, य=जो, नर=मनुष्य, सुखात्=आनन्द से, दरिद्रताम्=निर्धनता को, याति=जाता है स=वह शरीरेण=शरीर, धृत=धारी, अपि=होते हुए भी मृत=मृतक, जीवति=जीवित रहता है।

अनुवाद :—सघन अन्धकार में दीपक के प्रकाश के सदृश, कष्टों को अनुभव कर सुख सुशोभित होता है, जो मनुष्य समृद्धि से निर्धनता को जाता है वह शरीर को धारण करते हुए मृतक के समान जीवित रहता है ।

संस्कृत टीका —घनान्धकारेषु-गहनतिमिरेषु, दीपदर्शनम्=प्रदीपप्रकाश, इव दुःखानि=कष्टानि, अनुभूय=उपभोगं कृत्वा, सुखम्=आनन्द, हि=निश्चयेन शोभते=विराजते, य=जन, नरः=मनुष्यः, सुखात्=सुखभोगात्, दरिद्रताम्=निर्धनताम्, याति=आप्नोति, स=जन, शरीरेण=देहेन, धृत=युत, अपि, मृत=निर्जीव, जीवति=श्वसिति ।

समास एवं व्याकरण —(१) घन-घना ये अन्धकारा तेषु । दीपदर्शनम्-दीपस्य दर्शनम् । (२) दर्शन-दृश+ल्युट् । अनुभूय-अनु+भू+क्त्वा (ल्यप्) । दुःख दुस्+खन्+ड अथवा दुःख+अच् । शोभते शुभ+लट । याति-या+लट् । जीवति-जीव+लट । मृत=मृ+क्त । धृत-धृ+क्त । सुखम-सुख्+अच् । शरीर-शृ+ईरन् ।

विवृति

(१) इस श्लोक में पूर्वार्द्ध में उपमा अलङ्कार और उत्तरार्ध में अप्रस्तुत प्रशंसा एवं विरोधाभास अलंकार हैं। (२) प्रसाद गुण है (३) लाटी रीति है। (४) वंशस्थ छन्द । (५) यहाँ पर एक कर्ता न होने से अनुभूय में क्त्वा प्रत्यय चिन्तनीय है। (६) न्यून पदता दोष इस पद्य में है। (७) अनियमाख्य दोष भी है। (८) 'यदेवोपनतम् दुःखात् सुखम् तद्रसवत्तरम्' । विक्र० ३/१/२ ।

विदूषक भो वयस्य, मरणाद्दारिद्र्याद्वा कतरस्ते रोचते । [भो वअस्स, मरणादो दालिद्दादो वा कदर दे रोअदि ।

विदूषक—हे मित्र, मरण या दरिद्रता में से कौन-सा तुम्हें अच्छा लगता है ?

चारुदत्त —वयस्य, ?

चारुदत्त —मित्र ?

दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरण मम रोचते न दारिद्र्यम् ।
अल्पक्लेश मरण दारिद्र्यमनन्तक दुःखम् ॥ ११ ॥

अन्वय —दारिद्र्यात, मरणात्, वा, मम, मरणम्, रोचते, दारिद्र्यम्, न, [यत] मरणम्, अल्पक्लेशम्, [अस्ति], दारिद्र्यम्, अनन्तकम्, दुःखम् [अस्ति] ॥११॥

पदार्थ —दारिद्र्यात्=निर्धनता से, मरणात्=मृत्यु से, वा=अथवा, मम=मुझे, मरणम्=मृत्यु, रोचते=अच्छी लगती है दारिद्र्यम्=गरीबी, न=

नहीं, मरणम्=मृत्यु, अल्पक्लेशम्=न्यूनदुःखद, अनन्तकम्=असीम, दुःखम्=कष्ट।

अनुवाद :—निर्धनता और मृत्यु में से मुझे मृत्यु रुचिकर है निर्धनता नहीं मृत्यु कम कष्ट वाली है निर्धनता असीम कष्टवाली है।

संस्कृत टीका :—दारिद्र्यात्=दैन्यात्, मरणात्=प्राणत्यागात्, वा, मम=चारुदत्तस्य, मरणम्=परलोकगमनम्, रोचते=प्रीणाति, दारिद्र्यम्=निर्धनत्वम्, न=नैव, मरणम्=मृत्युः, अल्पक्लेशम्=लघुकष्टम्, दारिद्र्यम्=दैन्यम्, अनन्तकम्=यावज्जीवनम्, दुःखम्=कष्टम्।

समास एवं व्याकरण :—(१) अल्पक्लेशम्–अल्पः क्लेशः यस्मिन् तत्। *अनन्तकम्-न विद्यते अन्तः यस्य तत् तादृशम्।* (२) *मम के स्थान* पर रोचते के प्रयोग के कारण चतुर्थी होनी चाहिये थी–'रुच्यर्थनां प्रीयमाणः' से, किन्तु सम्बन्ध मात्र विवक्षा में यहाँ षष्ठी है, इसी प्रकार दारिद्र्यात् में भी 'दारिद्र्यम् में भी दारिद्र्यम् आश्रित्य' ल्यप् लोपे पञ्चमी है। मरणाम्–मृ+ल्युट्। दारिद्र्०–दरिद्र+ष्यञ्। रोचते-रुच्+लट्।

विवृति

(१) आर्या नामक छन्द है। (२) प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। क्योंकि पूर्वार्द्ध के साथ उत्तरार्द्ध वाक्यार्थं हेतु रूप से है। कुछ टीकाकारों के अनुसार सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। कुछ टीकाकार व्यतिरेक अलङ्कार भी कहते हैं। (३) पद्य में दारिद्र और मरण शब्द का अनेक बार प्रयोग होने से अनवीकृत और कथित पदत्व दोष है।

विदूषकः—भो वयस्य, अलं सतप्तेन। प्रणयिजनसङ्क्रामितविभवस्य सुरजनपीतशेषस्य प्रतिपच्चन्द्रस्येव परिक्षयोऽपि तेऽधिकतरं रमणीयः। [भो वअस्स, अलं सतप्तिदेण। पणइजणसंकामिदविहवस्स सुरजणपीदसेसस्स पडिवच्चन्दस्स विअ परिक्खओ विदेअहिअदरं रमणीओ।]

विदूषक :—हे मित्र! संतप्त मत होओ! स्नेही जनों को सम्पत्ति अर्पित करने वाले देवगण के पान से बचे हुए प्रतिपदा के चन्द्रमा की भाँति आपका क्षय (दारिद्र्य) भी अत्यधिक सुन्दर है।

विवृति

(१) प्रणयिजन=प्रेमीजन, सङ्क्रामित विभवस्य=धन प्रदान करने वाले। प्रणयिजनेषु सङ्क्रामिताः विभवाः येन तस्य। सुरजन=देवताओं से, पीतशेषस्य=पीने से बचे हुए। सुरजनैः पीतशेषस्य। प्रतिपच्चन्द्रस्य=परेवा के चन्द्रमा के। प्रतिपदः चन्द्रस्य। परिक्षयः=क्षीणता (२) यह आख्यान सिद्ध है कि कृष्णपक्ष में देवगण

चन्द्रमा की सुधा रूपी कलाओं का पान क्रमश करते हैं । (३) कामन्दक कहता है—धर्मार्थं क्षीणकोशस्य क्षीणत्वमपि शोभते । सुरैः पीतावशेषस्य कृष्ण पक्षे विधोरिव । (४) उपमालङ्कार है । (५) 'तम् च सोम पपुर्देवा पर्यायेणानुपूर्वश ।'—रघुवंश २/७३ मल्लिनाथ ।

एतत्तु मा दहति यद्‌गृहमस्मदीय
क्षीणार्थमित्यतिथय परिवर्जयन्ति ।
सशुष्क सान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्त.
कालात्यये मधुकरा करिण. कपोलम् ॥१२॥

अन्वय —भ्रमन्त मधुकरा, कालात्यये, सशुष्कसान्द्रमदलेखम्, करिण, कपोलम्, इव, अतिथय क्षीणार्थम् इति, यत् अस्मदीयम्, गृहम्, परिवर्जयन्ति, एतत्, तु, माम, दहति, ॥१२॥

पदार्थ —भ्रमन्त =भ्रमण करने वाले, मधुकरा =भौरे, कालात्यये=समय समाप्त हो जाने पर, सशुष्कसान्द्रमदलेखम्=सूखे गाढे मद की धारा वाले, करिण -गज के कपोलम्=गण्डस्थल, इव सदृश, अतिथत =आगन्तुक, क्षीणार्थम्=धन से रहित, इति=यह, यत्=जो, अस्मदीयम्=हमारे, गृहम=भवन को, परिवजयन्ति=त्याग रहे है, एतत्=यह, तु=ही, माम्=मुझे, दहति=भस्म कर रहा है ।

अनुवाद —(इधर उधर) भ्रमण करने वाले भ्रमर समय समाप्त हो जाने पर सूखे घने मद की रेखा वाले, गज के गण्डस्थल के सदृश, आगन्तुक, धनरहित समझ कर जो हमारे घर का परित्याग कर रहे हैं, यह तो मुझे भस्म किये दे रहा है ।

संस्कृत टीका —भ्रमन्त =इतस्तत चलन्त, मधुकराः=मिलिन्दा, कालात्यये=समयावसाने, सशुष्कसान्द्रमदलेखम्=शोषङ्गतघनमदरेखम्, करिण =गजस्य, कपोलम=गण्डस्थलम्, इव=यथा, अतिथय =अभ्यागता, क्षीणार्थम्=वित्तविरहितम्, इति, यत् अस्मदीयम्=मामकीयम् गृहम्=सदनम्, परिवर्जयन्ति=परित्यजन्ति, एतत्, तु, माम्=चारुदत्तम्, दहति=सन्तापयति ।

समास एवं व्याकरण —[१] सशुष्क०– सशुष्का सान्द्रा मदलेखा यस्मिन् तम्,तादृशम् । अतिथय –न विद्यते तिथि येषा ते । अस्मदीयम्= अस्माकम् इदम् । [२] भ्रमन्त –भ्रम्+शतृ । परिवर्जयन्ति–परि+वर्ज्+लट् । दहति–दह्+लट् ।

विवृति

(१) श्लोक म उपमा अलङ्कार है । (२) वसन्त तिलका छन्द है—'उक्ता

वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।' (३) माधुर्य गुण है। (४) वैदर्भी रीति है। (५) पद्य मे विधेयाविमर्श दोष है। (६) 'एक रात्र निवसन् अतिथि ब्राह्मण. स्मृतः।' अनित्य हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथि रुच्यते।' (७) महाकवि माघ ने भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं—'त्यजतु त्यजतु प्राण.॰।' (८) सम्भावित-स्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।'–गीता

विदूषक :—भो वयस्य ! एते खलु दास्याः पुत्रा अर्थकल्यवर्ता वरटाभीता इव गोपालदारका अरण्ये यत्र यत्र न खाद्यन्ते तत्र तत्र गच्छन्ति। [भो वअस्स ! एदे खु दासीए॰ पुत्ता अत्थकल्लवत्ता वरडाभीदा विअ गोवाल दारआ अरण्णे जहिं जहिं ण खज्जन्ति तहिं तहिं गच्छन्ति।]

विदूषक :—हे मित्र ! ये क्षुद्र क्षणभङ्गुर कलेवे की भांति धन, वर्रों से डरे अहीर बालको की भांति, वन मे, उसी २ स्थान पर जाता है। जहां खाया नही जाता है।

विवृति

(१) दास्या.=दासी के। अर्थ कल्यवर्ता=प्रात.कालीन कलेवा की भांति धन। नरटाभीता=वर्रों से डरे हुए। गोपालदारका =अहीरो के बालक।

(२) कल्ये वर्तन्ते एभिः इति कल्यवर्ता अर्थाश्च ते कल्यवर्ताश्चेति अर्थकल्य वर्त्ता। वरटाभ्यः भीताः इति।"गन्धोली वरटा द्वयाः"

(३) श्रौती उपमालङ्कार।

चारुदत्तः—वयस्य,

चारुदत्त – मित्र !

सत्यं न मेविभवनाशकृतास्ति चिन्ता
भाग्य क्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।
एतत्तु मा दहति नष्टधनाश्रयस्य
यत्सौहृदादपि जना· शिथिलीभवन्ति॥१३॥

अन्वय.—सत्यम्, मे, चिन्ता, विभवनाशकृता, न, अस्ति, हि, धनानि, भाग्य-क्रमेण, भवन्ति, (तथा) यान्ति, तु, एतत्, माम्, दहति, यत्, जनाः, नष्टधनाश्रयस्य, सौहृदात्, अपि, शिथिलीभवन्ति॥१३॥

पदार्थः—सत्यम्=सचमुच, मे=मुझे, चिन्ता=दैन्य, विभवनाशकृता= धन के नष्ट हो जाने की, न=नहीं, अस्ति=है, हि=क्योंकि, धनानि=सम्पत्तियाँ, भाग्यक्रमेण=भाग्य के अनुसार, भवन्ति=होती हैं, यान्ति=चली जाती हैं, तु= परन्तु, एतत्=यह, माम्=मुझको, दहति=जलाता है, यत=जो कि, जनाः=लोग, नष्टधनाश्रयस्य=द्रव्य रूपी आश्रय के नष्ट होने वाले की, सौहृदात्=मित्रता से,

अपि=भी, शिथिलीभवन्ति=उदासीन हो जाते हैं ।

अनुवाद —वस्तुत मुझे शोक धननाश जन्य नही है, क्योंकि धन भाग्य से होता है चला जाता है । (किन्तु) यह तो मुझे सन्तप्त करता है कि लोग धनरूपी आश्रय से शून्य हुए जनकी मित्रता से भी विमुख हो जाते है ।

संस्कृत टीका—सत्यम्=वस्तुत., मे=मम, चिन्ता=दैन्यम्,विभवनाशकृता=वित्तध्वंसोत्पन्ना, न=नहि, अस्ति=वर्तते, हि=यत, धनानि, भाग्यक्रमेण=लब्धव्ययक्रमेण, भवन्ति=जायन्ते, यान्ति=विनश्यन्ति,तु=किन्तु, एतत् माम्=चारुदत्तम्, दहति=सन्तापयति, यत जना =लोका, नष्टधनाश्रयस्य=क्षीणवित्तस्य, सौहृदात्=मैत्रीतोऽपि, शिथिलीभवन्ति=मैत्रीमपि न कुर्वन्ति ।

समास एवं व्याकरण— (१) विभवनाशकृता=विभवनाशेनकृता । भाग्य०-भाग्यस्य क्रमेण । नष्ट०-नष्ट धनरूप आश्रय यस्य तादृशस्य अथवा नष्टो धनाश्रयो यस्य तस्य । (२) सत्यम् सते हितम्—सत्+यत् । चिन्ता—चिन्त्+णिच्+अङ्+टाप् । अस्ति—अस्+लट् । भवन्ति—भू+लट् । यान्ति—या+लट् । दहति—दह्+लट् । सौहृदम्—सुहृद्+अण् । शिथिली भवन्ति—शिथिल+च्वि+भू+लिट् । भाग्यम्=भज्+ण्यत् ।

विवृति

(१) वसन्ततिलका छन्द है (२) प्रसाद गुण है । (३) वैदर्भी रीति है । (४) काव्यलिङ्ग अलङ्कार है—'हेतोर्वाक्य पदार्थत्वे काव्यलिङ्गम् निगद्यते ।' कुछ टीकाकार भवन्ति यान्ति में दीपक अलङ्कार कहते है कुछ टीकाकारो ने अप्रस्तुत प्रशसा भी कहा है । (५) इस श्लोक मे अन्तिम वाक्यगत विधेयाविमर्श दोष भी है ।

(६) महाकवि कालिदास की उक्ति धनवान और निर्धन के सम्बन्ध मे चरितार्थ है-'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण'-मेघदूत । चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्ति ।'-भास ।

अपि च ।

और भी—

दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्रीपरिगत. प्रभ्रश्यते तेजसो
निस्तेजाः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते ।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धि क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥१४॥

अन्वय,—(मनुष्य) दारिद्र्यात्, ह्रियम्, एति, ह्रीपरिगत', तेजस , प्रभ्रश्यते, निस्तेजा , परिभूयते, परिभवात्, निर्वेदम्, आपद्यते, निर्विण्ण', शुचम्, एति, शोक-

पिहित, बुद्ध्या, परित्यज्यते, निर्बुद्धि, क्षयम्, एति, अहो, निर्धनता, सर्वापदाम्, आस्पदम् ॥१४॥

पदार्थ —दारिद्र्यात्=निर्धनता से, ह्रियम्=लज्जा को, एति=प्राप्त होता है, ह्रीपरिगत =लज्जित पुरुष, तेजस =प्रताप से, प्रभ्रश्यते=रहित हो जाता है, निस्तेजा =तेजरहित, परिभूयते=तिरस्कृत होता है, परिभवात्=अनादर से, निर्वेदम्=ग्लानि को, आपद्यते=प्राप्त होता है, निर्विण्ण =खेदयुक्त, शुचम्=शोक को, एति=प्राप्त होता है,शोकपिहित =शोकयुक्त, बुद्धया=बुद्धि के द्वारा,परित्यज्यते= त्याग दिया जाता है, निर्बुद्धि =बुद्धिहीन, क्षयम्=नाश को, एति=प्राप्त होता है अहो=खेद है, निर्धनता=दरिद्रता, सर्वापदाम्=सभी विपत्तियों की, आस्पदम्= स्थान है।

अनुवाद —निर्धनता से (मनुष्य) लज्जा को प्राप्त होता है, लज्जित मनुष्य तेज रहित हो जाता है, तेजहीन तिरस्कृत होता है, तिरस्कार के कारण विरक्त हो जाता है, विरक्त शोक को प्राप्त होता है, शोकार्त बुद्धिहीन हो जाता है बुद्धि शून्य नाश को प्राप्त होता है। ओह! दरिद्रता सम्पूर्ण विपत्तियों का स्थान है।

संस्कृत टीका—दारिद्र्यात्=निर्धनत्वात्, ह्रियम्=लज्जाम्, एति=याति ह्रीपरिगत =लज्जायुक्त, तेजस =प्रतापात् प्रभ्रश्यते=प्रभ्रष्टो भवति, निस्तेजा = प्रतापशून्य, परिभूयते=तिरस्क्रियते, परिभवात्=तिरस्कारात, निर्वेदम्=विरक्ति-भावम्, आपद्यते=प्राप्नोति,निर्विण्ण =खिन्नमना ,शुचम्=शोकम्, एति=प्राप्नोति, शोकपिहित =शोकाविष्ट, बुद्ध्या=विवेकेन, परित्यज्यते=विहीयते, निर्बुद्धि = विगतविवेक, क्षयम्=नाशम्, एति=गच्छति, अहो, निर्धनता=दरिद्रता, सर्वाप-दाम्=सर्वासाम् विपदाम, आस्पदम्=स्थानम्।

समास एवं व्याकरण—(१) शोक०-शोकेन पिहित। ह्रीपरिगत—ह्रिया परिगत।

(२) दारिद्र्यम्—दरिद्र+ष्यञ्। ह्री—ह्री+क्विप्। एति—इ+लट्। परिभूयते—परि+भू+(यक्)+लट्। आपद्यते-आ+पद्+लट्। परित्यज्यते—परि+त्यज्+(यक्)+लट्। निर्विण्णः-निर+विद्+क्त। क्षयम्—क्षि+अच। आस्पदम्—आ+पद्+ (घ सुट् च)।

(३) सर्वापदाम्-सर्वासाम् आपदाम्

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे कारणमाला अलङ्कार है-'यथोत्तरम् चेत् पूर्वस्यार्थस्य हेतुता तदा कारणमाला स्यात्'। (२) शार्दूल विक्रीडित छन्द है-सूर्याश्वैर्मसजस्तता सगुरव शार्दूलविक्रीडितम्। (३) प्रसाद गुण है। (४) लाटी रीति है। (५) गीता

२/६३ में भी कहा गया है—'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ।' (६) (Poverty is great adversity

भो वयस्य, तमेवार्थकल्यवर्तं स्मृत्वाल संतापितेन । [भो वअस्स, त ज्जेव अत्थकल्लवत्तअ सुमरिअ अल सतप्पिदेण ।]

विदूषक—हे मित्र ! कलेवा रूप उसी धन का स्मरण कर सतप्त मत होओ । ३७

चारुदत्त —वयस्क, दारिद्र्य हि पुरुषस्य

चारुदत्त—मित्र ! दरिद्रता ही पुरुष के—

निवासश्चिन्तायाः परपरिभवो वैरमपर
जुगुप्सा मित्राणा स्वजनजनविद्वेषकरणम् ।
वन गन्तु बुद्धिर्भवति च कलत्रात्परिभवो
हृदिस्थ शोकाग्निर्न च दहति सतापयति च ॥१५॥

अन्वय —चिन्ताया , निवास , पर परिभव , अपरम्, वैरम्, मित्राणाम्, जुगुप्सा, स्वजनजनविद्वेषकरणम्, च, कलत्रात्, परिभव', अत वनम्, गन्तुम्, बुद्धि, भवति, च, हृदिस्थ, शोकाग्नि , न, दहति सन्तापयति च ॥१५॥

पदार्थ :-चिन्ताया =चिन्ता का , निवास =वासस्थान, परपरिभव =दूसरो से अपमान का कारण, अपरम्=दूसरी, वैरम्=शत्रुता, मित्राणाम्=सुहृदो की जुगुप्सा=घृणा, स्वजनजनविद्वेषकरणम्=बन्धुजनो के द्वेष का कारण, कलत्रात्=पत्नी से, परिभवः=तिरस्कार, वनम्=कानन को, गन्तुम्=जाने के लिए, बुद्धि=विचार, भवति=होता है, च=और हृदिस्थः=हृदय स्थित, शोकाग्नि =शोक रूपी वह्नि, न=नही, दहति=जलाती है, सन्तापयति=घुटा कर मारती है ।

अनुवाद —दैन्य का निवास-स्थान, दूसरो से अनादर, दूसरी शत्रुता, मित्रो द्वारा घृणा, बन्धुओ के वैर का कारण और पत्नी से (भी) तिरस्कार है अत वन-गमन की इच्छा होती है, अन्त स्थित शोकानल भस्म नही कर देता, अपितु सन्तप्त करता है ।

संस्कृत टीका —चिन्तायाः =शोकस्य, निवास =आश्रय , पर परिभव = अन्येषा तिरस्कार कारणम्, अपरम् = अन्यत्, वैरम्=शत्रुभाव , मित्राणाम्= सुहृदाम्, जुगुप्सा=घृणा, स्वजनजनविद्वेषकरणम्=बन्धूनाम् च विरोधोत्पादकम्, कलत्रात्=स्वभार्यात , परिभव =तिरस्कार., वनम्=अरण्यम् गन्तुम्=यातुम्, बुद्धि =मति', भवति, च, हृदिस्थ =हृदयस्थायी, शोकाग्नि =शोकानल , न=नहि, दहति=भस्मसात् करोति, सन्तापयति=पीडाम् उत्पादयतिच ।

समास एव व्याकरण -(१) परपरिभव =परेषाम् परिभव अथवा पर परिभव ।

विवृति

(१)-वृद्धि 'वृद्धिः तात्कालिकी ज्ञेयः मतिरागामिगोचरा ।' (२) 'न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ।' (३) प्रस्तुत पद्य में दरिद्रता का अनेक प्रकार से उल्लेख होने के कारण उल्लेख अलङ्कार है। (४) विशेषोक्ति अलङ्कार भी है। (५) शोकाग्नि में रूपक है। (६) 'परिभव' शब्द का दो बार पाठ है अतः कथितपदत्व दोष है। (७) शिखरिणी छन्द है—रसै. रुद्रैश्छिन्ना. यमनसभलाग. शिखरिणी ।' (८) कुछ टीकाकार अतिशयोक्ति अलङ्कार भी कहते हैं। (९) प्रसाद गुण है। (१०) लाटी रीति है।

तद्वयस्य, कृतो मया गृहदेवताभ्योः बलिः। गच्छ। त्वमपि चतुष्पथे मातृभ्यो बलिमुपहर।

तो मित्र ! मैने गृह-देवताओ के लिये बलि (पूजा) सम्पादित कर दी है। जाओ, तुम भी चौराहे पर मातृ-देवियों को बलि भेंट कर दो।

विदूषक :—न गमिष्यामि। [ण गमिस्सम् ।]

विदूषक—मैं नहीं जाऊंगा।

चारुदत्तः—किमर्थम्।

चारुदत्त—क्यो ?

विदूषकः—यत एव पूज्यमाना अपि देवता न ते प्रसीदन्ति। तत्को गुणा देवेष्वर्चितेषु। [जदो एव्व पूइज्जन्ता वि देवणा ण दे पसीदन्ति। ता को गुणो देवेसु अच्चिदेसु।]

विदूषक—क्योंकि इस प्रकार पूजा करने पर भी देवता तुम पर प्रसन्न नही होते तो देवताओ की पूजा करने से क्या लाभ ?

चारुदत्त.—वयस्य, मा मैवम्। गृहस्थस्य नित्योऽय विधिः।

चारुदत्त—मित्र ! ऐसा मत कहो ! गृहस्थ का यह (देवो की पूजा करना) नित्य कर्म है।

विवृति

(१) गृहदेवताभ्यः=घर के देवो के लिए। बलिः=पूजा। चतुष्पथे=चौराहे में। मातृभ्यः=मातृदेवियो के लिए। उपहार=अर्पित करो। गुण=लाभ। (२) चत्वारः पन्थाः यत्र तत चतुष्पथम् तस्मिन् चतुष्पथे। 'शृङ्गाटक चतुष्पथे' इत्यमरः। (३) "ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वाराही वैष्णवी तथा। कौमारी चैव चामुण्डा चर्चिकेत्यष्ट मातर.।" (४) 'यदकरणे प्रत्यवाय. स्यात् स नित्यः।' इति शास्त्रम्। विधि=कर्म। (५) धार्मिक कर्म ३ प्रकार हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य।

तपसा मनसा वाग्भिः पूजिता बलिकर्मभि. ।
तुष्यन्ति शमिना नित्य देवता किं विचारितैः ? ॥१६॥

अन्वय —तपसा, मनसा, वाग्भिः, बलिकर्मभि', पूजिता', देवताः, शमिनाम्, नित्यम्, तुष्यन्ति, विचारितै किम् ॥१६॥

पदार्थ —तपसा=तपस्या से, मनसा=मन से, वाग्भिः=वचन से, बलिकर्मभिः=बलिकर्मों द्वारा, पूजिता पूजा किये गये, देवता =देवगण, शमिनाम्=शान्तचित्त वाले, नित्यम्=सदा, तुष्यन्ति=सन्तुष्ट रहते हैं, विचारितै =विचार करने से, किम्=क्या ।

अनुवाद —तप, मन, वचन, एव बलिकर्मों द्वारा पूजित देवगण, शान्तचित्त वाले व्यक्तियों से सदा सन्तुष्ट रहते हैं विचार करने से क्या ?

संस्कृत टीका-तपसा=तपस्यया,मनसा=चेतसा वाग्भि =वाचा,बलिकर्मभि=पूजाकार्यै , पूजिता=अर्चिता., देवता =देवा शमिनाम्=शान्तचित्तानाम्, नित्यम्=सततम्, तुष्यन्ति=सन्तुष्टा भवन्ति, विचारितै =तर्कवितर्कै किम् ।

समास एव व्याकरण—(१) शमिनाम्=शम+इनि+षष्ठी बहु० । तपस्-तप्+असुन् । मनस्-मन्यतेऽनेन मन् करणे असुन् । वाच्-वच्+क्विप् दीर्घोऽसम्प्रसारण च । बलि —बल्+इन् । पूजित-पूज्+क्त । देवता—देव+तल्+टाप् । विचारित—वि+चर्+णिच्+क्त ।

विवृति

(१) अनुष्टुप् छन्द है–'श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेय सर्वत्र लघु पचमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ।' (२) 'तपसा कृच्छ्चान्द्रायणादिना शारीरेण धर्मेण, मनसा ध्यानघृतेन, वाग्भि जपस्तुतिरूपाभिः मनोवाक्कायकर्मभि. आत्मविश्रान्तैरिति यावत्, बलिकर्मभि बहि स्थानविशेषकल्पितै पूजाविधानैश्च' (श्रीनिवासाचार्य (३) 'साय प्रातर्वैश्वदेवा कर्तव्यो बलि कर्म च । अनश्नतापि सततमन्यथा किल्बिषी भवेत् ।' —इति धर्मशास्त्रोक्ति ।

तद्गच्छ । मातृभ्यो बलिमुपहर ।

तो जाओ, मातृ-देवियों को बलि समर्पित कर दो।

विदूषक —भो , न गमिष्यामि । अन्य. कोऽपि प्रयुज्यताम् । मम पुनर्ब्राह्मणस्य सर्वमेव विपरीत परिणमति आदर्शगतेव छाया वामतो दक्षिणो दक्षिणतो वामा । अन्यच्चैतस्या प्रदोषवेलायामिह राजमार्गे गणिका विटाश्चेटा राजवल्लभाश्च पुरुषा. सचरन्ति तस्मान्मण्डूकलुब्धस्य कालसर्पस्य मूषिक इवाभिमुखापतितो वध्य इदानी भविष्यामि । त्वमिह उपविष्ट किं करिष्यसि । [भो, ण गमिस्सम् । अण्णो को वि पउञ्जीअदु । मम उण बम्हणस्स सव्व ज्जेव विपरीद परिणमदि । आदसगदा विअ छाया वामादो

दक्खिणा दक्खिणादो वामा । अण्ण अएदाए पदोसवेलाए इध राअमग्गे गणिआ विडा चेडा राअवल्लहा अ पुरिसा सचरन्ति । ता मण्डूअलुद्धस्स कालसप्पस्स मूसिओ विअ अहिमुहावदिदो वज्झो दाणि भविस्सम् । तुमं इध उवदिट्टो किं करिस्ससि ।]

विदूषक—जी, मैं नही जाऊँगा । किसी दूसरे को नियुक्त कर दीजिए । फिर मुझ ब्राह्मण की सभी क्रियायें विपरीत प्रतिफलित होती हैं । जिस प्रकार दर्पण मे प्रतिबिम्बित बायाँ भाग दाहिना और दाहिना बायाँ हो जाता है । और दूसरी बात यह है कि इस रात्रि (के प्रथम पहर) मे यहाँ सडक पर वेश्यायें, विट, चेट और राजा के स्नेही जन (राजश्याल) घूम रहे हैं । जिससे मेढक के इच्छुक काले सर्प के मुख मे चूहे की भाँति गिर कर इस समय वध्य हो जाऊँगा । आप यहाँ बैठे हुए क्या कर लेंगे ?

चारुदत्त.—भवतु । तिष्ठ तावत् । अह समाधि निर्वर्तयामि ।

चारुदत्त—अच्छा, तब तक ठहरो । मैं सन्ध्या (समाधि) समाप्त करता हूँ ।

नेपथ्ये

(नेपथ्य मे)

तिष्ठ वसन्तसेने, तिष्ठ ।

ठहरो, वसन्तसेने ! ठहरो ।

(तत. प्रविशति विट शकार चेटैरनुगम्यमाना वसन्तसेना ।)

विवृति

(तदन्तर विट् शकार और चेट से अनुगत वसन्तसेना का प्रवेश होता है ।)

(१) प्रयुज्यताम्=नियुक्त कर दो । आदर्शगता=दर्पण मे प्रतिबिम्बित । प्रदोषवेलायाम्=सायकाल मे । गणिका=वेश्या । विट=आवारा । चेट=सेवक । वल्लभ=प्रिय । मण्डूकलुब्धस्य=मेढक का लालची । अभिमुख: पतित=मुख मे आया वध्य=मारने योग्य । निर्वर्तयामि=निवृत्त होता हूँ । (२) आतर्शगता=गणिका शब्द से वसन्तसेना की राजवल्लभ शब्द से शकार की सूचना होती है । (३) 'ना सूचित विशेत् पात्रम् ।' इति भरतः । (४) 'सम्भोगहीन सम्पद् विटस्तु धूर्तः कलैक-देशज्ञः । वेशोपचारकुशलो वाग्मीमधुरोथ बहुमतो गोष्ठ्याम् ।' (५) 'मदमूर्खताभि-मानी दुष्कुलतैश्वर्यसयुक्तः । सोऽयमनूढा भ्रातः राज्ञ. श्यालः शकारः ।' (६) विट, वेश्या और कामीजन के सदेशो को एक दूसरे के निकट पहुँचाता है । चेट, सेवक एव शृगार मे सहायक होता है—'हीन जातीय दासः' । विट और चेट नामक और प्रति-नायक दानो के होते है—शृगारेऽस्य सहाया विट चेट विदूषकाद्याः स्युः । भक्ता नर्मसु निपुणाः कुपितवधूमानभजना शुद्धा. ।' सा० द० ।

विट.—वसन्तसेने, तिष्ठ तिष्ठ ।

विट—वसन्तसेने ! ठहरो, ठहरो।

किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या
नृत्यप्रयोगविशदौ चरणौ क्षिपन्ती
उद्विग्नचञ्चलकटाक्षविसृष्टदृष्टि-
र्व्याधानुसारचकिता हरिणीव यासि ? ॥१७॥

अन्वय—भयेन, परिवर्तितसौकुमार्या, नृत्यप्रयोगविशदौ, चरणौ, क्षिपन्ती, उद्विग्नचञ्चलकटाक्षविसृष्टदृष्टि, त्वम्, व्याधानुसारचकिता, हरिणी, इव, किम्, यासि ? ॥१७॥

पदार्थ—भयेन=भय से, परिवर्तितसौकुमार्या=सुकुमारता को छोड़कर, नृत्य प्रयोगविशदौ=नृत्यकला में निपुण, चरणौ=पैरों को, क्षिपन्ती=शीघ्रता में रखती हुई, उद्विग्नचञ्चलकटाक्षविसृष्टदृष्टि=घबराहट के कारण चञ्चल कटाक्षों को छोड़ती हुई, त्वम्=तुम, व्याधानुसारचकिता=व्याध के पीछा करने से भयभीत, हरिणी=मृगी, इव=भाँति, किम्=क्यों, यासि=जा रही हो।

अनुवाद—भय से सुकुमारता को त्यागकर नृत्यकला में निपुण चरणों को शीघ्रता से रखती हुई, घबराहट के कारण चञ्चल कटाक्षों को छोड़ती हुई तुम, व्याध के पीछा करने से भयभीत हरिणी की भाँति क्यों जा रही हो ? ।

समास एवं व्याकरण—(१)परिवर्तित०परिवर्तितम् सौकुमार्यम् यया सा। नृत्य०नृत्य-प्रयोगे विशदौ। उद्विग्न०—उद्विग्नेन चञ्चलेन कटाक्षेण विसृष्टा दृष्टिर्यया सा। व्याध०-व्याधस्य अनुसारम् तेन चकिता (२) भयम्—बिभेत्यस्मात्—भी-अपादाने अच्। सौकुमार्यम्—सुकुमार+ष्यञ। नृत्य=नृत्+क्यप्। चरण—णम्=(चर्+ल्युट्) उद्विग्न—उद्+विज्+क्त। चञ्चल—चच्+अलच्, चञ्च गतिं लाति ला+क (वा तारा०)। विसृष्ट—वि+सृज्+क्त। दृष्टि—दृश्+क्तिन्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में इव शब्द के कारण श्रौती उपमा अलंकार है। (२) कुछ टीकाकार परिवृत्ति अलंकार भी कहते हैं—'परिवृत्तिर्विनिमयः समन्यूनाधिकैर्भवेत्'। (३) माधुर्य गुण है। (४) वैदर्भी रीति है। (५) विट—'सम्भोगहीनसम्पद् विटस्तु धूर्तः कलैकदेशज्ञः। वेशोपचारकुशलो वाग्मी मधुरोऽथबहुमतोगोष्ठ्याम्।'—सा०द०। (६) यासि हरिणी एवं वसन्तसेना के लिए पुरुष-भेद होने से भग्नप्रक्रमता—दोष सम्भावित है। (७) वसन्ततिलका छन्द है। (८) 'ग्रीवा भङ्गाभिरामम्०'—शाकुन्तल।

शकार—तिष्ठ वसन्तसेनिके, तिष्ठ। [चिष्ठ वशन्तशेणिए, चिष्ठ।]

शकार—रुको वसन्तसेने, रुको।

किं याशि धावशि पलाअशि पक्खलती
　　वाशू ! पशीद ण मलिस्सशि च्चिट्ठ दाव ।
कामेण दज्झदि हु मे हडके तवश्शी
　　अगाल लाशिपडिदे विअ मशखडे ॥१८॥
[किं यासि धावसि पलायसे प्रस्खलन्ती
　　वासु ! प्रसीद न मरिष्यसि तिष्ठ तावत् ।
कामेन दह्यते खलु मे हृदयं तपस्वि
　　अङ्गारराशिपतितमिव मांसखण्डम् ॥]

अन्वय —प्रस्खलन्ती, किम, यासि, धावसि, पलायसे, हे वासु ! प्रसीद, न मरिष्यसि, तावत्, तिष्ठ, अङ्गारराशिपतितम्, मांसखण्डम्, इव, तपस्वि, मे, हृदयम्, कामेन, खलु दह्यते ॥१८॥

पदार्थ — प्रस्खलन्ती=लडखडाती हुई, किम्=क्यो, यासि=जाती हो, धावसि=दौडती हो, पलायसे=भागती हो, हे वासु=हे सुन्दरि ! प्रसीद=प्रसन्न हो, न मरिष्यति=मर नही जायेगी, तावत्=थोडा, तिष्ठ=ठहर जा, अङ्गारराशिपतितम्=अङ्गारो के ढेर पर पडे हुये, मांसखण्डम्=मांस के टुकडे के, इव=समान, तपस्वि=बेचारा, मे=मेरा, हृदयम्=हृदय, कामेन=काम के द्वारा, दहृति=जल रहा है ।

अनुवाद —लडखडाती हुई क्यो जाती हो, दौडती हो, भागती हो । सुन्दरि ! प्रसन्न हो, मर नही जायेगी, थोडा ठहर जा । अङ्गारो के समूह पर गिरे हुये मांसखण्ड की भाति, बेचारा मेरा हृदय काम के द्वारा दग्ध हो रहा है ।

संस्कृत टीका—प्रस्खलन्ती=प्रस्खलनम् कुर्वती, किम्=कथम्,यासि, धावसि, पलायसे, हे वासु ! =सुन्दरि, प्रसीद=प्रसन्नाभव, न मरिष्यसि = मृत्युम् न गमिष्यसि, तावत्तिष्ठ=स्थिता भव, अङ्गारराशिपतितम्=अग्नि समूह भ्रष्टम्, मांसखण्डम्=पललपिण्डमिव तपस्वि=वराकम्, मे=मम, हृदयम्, कामेन मनोमवेन खलु दह्यते=सन्तप्यते ।

समास एवं व्याकरण ‒(१) अङ्गार०‒अङ्गाराणाम् राशौ पतितमिति । मांसखण्डम्‒मांसस्यखण्डम् । (३) प्रस्खलन्ती‒प्र+स्खल्+शतृ+ङीप् । (४) पलायसे‒परा+अय्+लट् । (५) प्रसीद‒प्र+सद्+लट् । (६) धावसि‒धाव+लट् । (७) मरिष्यसि‒मृ+लृट् । (८) दह्यते‒दह्+यक्+लट् । (९) तिष्ठ‒स्था+लोट् ।

विवृति

(१) लक्षण ग्रन्थों के अनुसार शकार शकारी भाषा बोलता है वह नीच कुलोत्पन्न

एव राजा की उपपत्नी का भाई होता है। मूर्खता और अभिमान उसकी विशेषतायें है–'क्षदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्यसंयुक्त । सोऽयमनूढाभ्राता राज्ञ श्याल शकार "अपार्थमक्रम व्यर्थ पुनरुक्त हतोपमम् । लोकन्यायविरुद्धञ्च, शकारवचन विदु ॥ इस कारण व्यर्थता,क्रमराहित्य और पुनरुक्ति इत्यादि शकार के दोष नही माने जाते हैं। शकारप्रायभाषित्वात् शकारो राष्ट्रियस्य स्मृत ।' (२) 'श्याला स्यात्‌वाल' इत्य मर । (३) उपमा अलङ्कार है। (४) वसन्ततिलका छन्द है। (५) शकार प्राय पशुजाति एव जीवन से तथा भोजन के किसी प्रकार से अपनी उपमायें सन्चित करता है।

चेट –आर्ये, तिष्ठ तिष्ठ । [अज्जुके, चिट्ठ चिट्ठ ।]

चेट–आर्ये, रुको, रुको ।

उत्ताशिता गच्छशि अतिका मे शपुण्णपच्छा विअ गिम्हमोरी।
ओवग्गदी शामिअभस्टके मे वण्णे गडे कुक्कडशावके व्व ॥१९॥
[उत्त्रासिता गच्छस्यन्तिकान्मम सपूर्णपक्षेव ग्रीष्ममयूरी ।
अववल्गति स्वामिभट्टारको मम वने गत कुकुक्टशावक इव ॥]

अन्वय –(त्व) मम, अन्तिकात्, सम्पूर्णपक्षा, ग्रीष्ममयूरी, इव उत्त्रासिता, गच्छसि, मम्, स्वामिभट्टारक वने, गत, कुक्कुटशावक, इव, अववल्गति ॥१९॥

पदार्थ –मम=मेरे अन्तिकात्=निकट से, सम्पूणपक्षा=सम्पूर्ण पखोवाली ग्रीष्म मयूरी=ग्रीष्मकालिक मोरनी की, इव=भाति, उत्त्रासिता=भयभीत हुयी गच्छसि=जा रही हो मम=मेरे स्वामिभट्टारक =श्रेष्ठ स्वामी, वने=अरण्य मे गत =गयेहुये,कुक्कुटशावक =मुर्गे के बच्चे इव=भाति, अववल्गति=उतावली के साथ आ रहा है।

अनुवाद –मेरे पास से सम्पूण पखो वाली ग्रीष्म कालिक मयूरी की भाति भयभीत हुयी जा रही हो। मेरे श्रेष्ठ स्वामी (शकार) अरण्य मे गये हुए मुर्गे के बच्चे की भाँति उतावली के साथ आ रहे हैं।

सस्कृत टीका–मम=मे,अन्तिकात्=समीपात्,सम्पूर्णपक्षा=परिपूर्णपुच्छयुक्ता ग्रीष्ममयूरी=ग्रीष्मकालीनशिखिनीव, उत्त्रासिता=भीतभीता सती, गच्छसि=यासि मम=चेटस्य, स्वामिभट्टारकः— स्वामिश्रेष्ठ, वने=अरण्ये, गत = सप्राप्त कुक्कुटशावक =तज्नामपक्षिविशेषशिशु, इव, अववल्गति=ससभ्रमम् आगच्छति।

समास एव व्याकरण–(१) ग्रीष्म०—ग्रीष्मस्य मयूरी । कुक्कुटशावक = कुक्कुटस्य शावक । (२) अन्तिका–अन्त+इ स्वार्थे कन् टाप् । उत्त्रासिता–उद् +त्रस्+णिच्+क्त+गच्छसि–गम+लट् । भट्टारक–भट्टार+कन् । वनम्=वन्+अच् । गत –गम+क्त । कुक्कुट –कुक्+कुट्+क । शावक –शाव+कन् । अव

ेगति=अव+वल्+लट् (भ्वा० उभ०) ।

विवृति

(१) इन्द्रवज्रा छन्द है–'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।' (२) उपमा अलङ्कार है–'उपमायत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसतिद्वयो.।' (३) चेट–'कलहप्रियो बहुकथो विरूपो गन्धसेवकः। मान्यामान्य विशेषज्ञः चेटोऽप्येवम् विधः स्मृतः।'

विट :—वसन्तसेने, तिष्ठ तिष्ठ ।

विट–हे वसन्तसेने, रुको रुको ।

किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना
रक्तांशुकं पवनलोलदशं वहन्ती ।
रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलमुत्सृजन्ती
टङ्कैर्मनःशिलगुहेव विदार्यमाणा ॥२०॥

अन्वय :—बालकदली, इव, विकम्पमाना, पवनलोलदशम्, रक्तांशुकम्, वहन्ती टङ्कैः, विदार्यमाणा, मनःशिलगुहा, इव, रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलम्, उत्सृजन्ती, किम्, यासि ? ॥२०॥

पदार्थ :—बालकदली=नवीन केला के, इव=समान, विकम्पमाना=कांपती हुई, पवनलोलदशम्=वायु से चञ्चल अञ्चल वाले, रक्तांशुकम्=लाल दुपट्टे को, वहन्ती=धारण करती हुई, टङ्कैः=टाँकी द्वारा विदार्यमाणा=काटी गई, मनःशिलगुहा="मनसिल" की, गुफा की इव=भाँति, रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलम्=लाल कमलो की कलियो को, उत्सृजन्ती = बिखराती हुई, किम् = क्यो, यासि = जा रही हो ।

अनुवाद :–नवीन केले के सदृश कांपती हुई, पवन से चञ्चल अञ्चल वाले लाल दुपट्टे को धारण करती हुई, टाँकी द्वारा खण्डित "मनसिल" की गुफा की भाँति, लाल कमलो की कलियो को बिखेरती–सी क्यों जा रही हो ?

संस्कृत टीका–हे वसन्तसेने ! बालकदली=नूतनकदलीतरुरिव, विकम्पमाना=कम्पिता, पवनलोलदशम्=वायुप्रकपितदशम्, रक्तांशुकम्=रक्तवर्णवस्त्राञ्चलम्, वहन्ती=धारयन्ती, टङ्कैः=पाषाणदारणैः, विदार्यमाणा=खण्डिता, मनःशिलगुहा=मन.शिल कन्दरा इव, रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलम्=रक्तवर्णकमलकलिकासमूहमिव, उत्सृजन्ती=परित्यजन्ती, किम्=कथम्; यासि=गच्छसि ।

समास एवं व्याकरण—(१) पवन०–पवनेन लोला दशा यस्य तत् तादृशम् । मन शिलगुहा=मनः शिलायाः गुहा इव मन. शिला अस्या अस्तीति, सा चासौ गुहा च इति । रक्त०–रक्तोत्पलाना प्रकर तस्य कुड्मलम् । विकम्पमाना–विशेषेण कम्पमाना । (२) कदली–कद्+कलच्+ङीप् । विकम्पमाना–वि+कम्प्+शानच् ।

नशुकम्—अशु+क । टङ्क—कम्—टङ्क+घञ्, अच् वा । कुड्मल-कुड्+कल, मुट् । यासि=या+लट् ।

विवृति

१- यहाँ उत्प्रेक्षा से अनुप्राणित उपमा अलंकार है । २- वसन्ततिलका छन्द है । ३- कुछ टीकाकार उत्प्रेक्षा अलंकार भी स्वीकार करते हैं । 'भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।' ४- प्रसाद गुण है । ५- लाटी रीति है । ६- 'टङ्कः पाषाणदारण' इत्यमरः । ७- 'मन. शिलातु कुनदी ।' इत्यमर. । ८- मन शिला शब्द स्त्रीलिंग है । अत यहाँ 'मन शिलागुहा' होना चाहिए । महाभारत मे 'मन शिल, शब्द भी आया है—पृथ्वीधर । ९- 'विजृम्भणोद्‌गन्धिषु कुड्मलेषु ।' रघु० ।

शकार—तिष्ठ वसन्तसेने, तिष्ठ । [चिट्ठ वसन्तशेणिए, चिट्ठ ।]

शकार—रुको वसन्तसेने, रुको ।

मम मअणमणग मम्मथ वड्ढअती
णिशि अ शअणके मे णिद्दुअ आक्खिवती ।
पशलशि भअभीदा पक्खलती खलती
मम वशमणुजादा लावणश्शेव कुंती ॥२१॥

[मम मदनमनङ्गं मन्मथं वर्धयन्ती
निशि च शयनके मम निद्रामाक्षिपन्ती ।
प्रसरसि भयभीता प्रस्खलन्ती स्खलन्ती ।
मम वशमनुयाता रावणस्येव कुन्ती ॥]

अन्वय—मम, मदनम्, अनङ्गम्, मन्मथम्, वर्धयन्ती, निशि, शयनके, च, मम निद्राम्, आक्षिपन्ती, (त्वम्), भयभीता, प्रस्खलन्ती, स्खलन्ती, प्रसरसि, (किन्तु), रावणस्य, कुन्ती, इव, (त्वम्) मम् वशम्, अनुयाता ॥२१॥

पदार्थ-मम=मेरे, मदनम्=अनङ्गम्, मन्मथम्=कामदेव को, वर्धयन्ती=बढ़ाती हुई, निशि=रात म, शयनके=बिस्तर पर, च=और, मम=मेरी, निद्राम्=नींद के, आक्षिपन्ती=उचाटती हुई, भयभीता=डरी हुई, प्रस्खलन्ती=स्खलन्ती=गिरती—पड़ती, प्रसरसि=भाग रही हो, रावणस्य=रावण के, कुन्ती=कुन्ती की, इव=तरह, मम=मेरे, वशम्=वश मे, अनुयाता=आ गयी हो ।

अनुवाद—मेरे कामदेव (अनङ्ग, मन्मथ) को बढ़ाती हुई और रात्रि मे शय्या पर मेरी नींद को उचाटती हुई, भयभीत गिरती-पड़ती भाग रही हो । किन्तु रावण (के वश मे) कुन्ती की भाँति मेरे वश मे आ गई हो ।

संस्कृत टीका—मम्=मे, मदनम्, अनङ्गम्, मन्मथम्, वर्धयन्ती=उद्दीपयन्ती निशि=रात्रौ, शयनके=शय्यायाम्, च, मम=मे, निद्राम्=शयनम्, आक्षिपन्ती=विक्षिपन्ती, भयभीता=भीतभीता, प्रस्खलन्ती=स्खलन, कुर्वती, प्रसरसि=प्रगच्छसि रावणस्य=दशाननस्य, कुन्ती=अर्जुनमातेव, मम=मे, वशम्, अनुयाता=आगता।

समास एवं व्याकरण – (१) भयात् भीता। (२) वर्धयन्ती-वृध्+णिच्+शतृ+ङीप्। (३] आक्षिपन्ती आ+क्षिप्+शतृ+ङीप् (४) प्रस्खलन्ती—प्र+स्खल्+शतृ+ङीप् (५) प्रसरसि-प्र+सृ+लट् (६) अनुयाता - अनु+या+क्त+टाप्।

विवृत्ति

१- शकारोक्ति होने से सभी दोष क्षम्य हैं। २- मालिनी छन्द है। ३- 'रावणस्येव कुन्ती' में हतोपमा है। ४- पद्य मे शकार का उल्टा-सीधा आख्यान एवं पात्र प्रस्तुतीकरण है। जैसे रावण लङ्कापति और कुन्ती पाण्डवो की माता को एककालिक एव निकट कर देना।

विटः—वसन्तसेने,

विट—हे वसन्तसेना।

किं त्वं पदैर्मम पदानि विशेषयन्ती
व्यालीव यासि पतगेन्द्रभयाभिभूता।
वेगादहं प्रविसृतः पवनं न रुन्ध्यां
त्वन्निग्रहे तु वरगात्रि! न मे प्रयत्नः ॥२२॥

अन्वयः—हे वसन्तसेने! पतगेन्द्रभयाभिभूता, व्याली, इव, पदैः, मम पदानि, विशेषयन्ती, त्वम्, किम् यासि? वेगात् प्रविसृतः, अहम् पवनम्, न, रुन्ध्याम्? हे वरगात्रि! तु त्वन्निग्रहे, मे, प्रयत्नः न ॥२२॥

पदार्थः— हे वसन्तसेने! पतगेन्द्रभयाभिभूता=गरुड़ से डरी हुई, । व्यालीइव=सर्पिणी के समान, पदैः=डगो से, मम=मेरे, पदानि=डगो को, विशेषयन्ती=अतिक्रान्त करती हुई, त्वम्=तुम, किम्=क्यो, यासि=जा रही हो। वेगात्=वेग से, प्रविसृतः=दौड़ा हुआ, अहम्=मैं, पवनम्=वायु को, न=नही, रुन्ध्याम्=रोक सकता हूँ। हे वरगात्रि। हे सुन्दरि!, तु=किन्तु त्वन्निग्रहे=तुम्हें पकड़ने में, मे=मेरा, प्रयत्न=प्रयास, न=नही।

अनुवादः—वसन्तसेने। गरुड़ से भयभीत, सर्पिणी की भांति डगो से मेरे डगों को अतिक्रान्त करती हुई, तुम क्यो जा रही हो? वेग से दौड़ कर (क्या) मैं वायु को नहीं रोक सकता? हे सुन्दरि! किन्तु तुम्हे पकड़ने मे मेरा प्रयास नहीं है।

संस्कृत टीका —हे वसन्तसेने ! पतगेन्द्रभयाभिभूता=गरुड भीता व्याली इव=सर्पी इव, पदं=स्वपदं, मम=विटस्य पदानि=पादविक्षेपान्, विशेषयन्ती= अतिशयाना, त्वम्, किम्=कथम्, यासि=गच्छसि, वेगात्=जवात्, प्रविसृत=प्रच लित, अहम्=विट, पवनम्=वायुम्, न=नहि, रुन्ध्याम्=रोद्धुम् शक्नुयाम् ?, हे वरगात्रि !=हे सुन्दरशरीरे, तु=किन्तु, त्वन्निग्रहे=तव बलात् ग्रहणे, मे=मम, प्रयत्न=प्रयास न अस्ति ।

समास एवं व्याकरण-१- पतगेन्द्र०-पतगेन्द्रात् यद् भयम् तेन अभिभूता इति । वरगात्रि—वरम् शरीरम् यस्या सा तत्सम्बुद्धौ । २- अभिभूता=अभि+भू+क्त +टाप् । विशेषयन्ती=वि+शिष्+णिच्+शतृ+ङीप् । यासि=या+लट् । प्रविसृत-प्र+वि+सृ+क्त । प्रयत्न=प्र+यत्+नङ् । वेगात्=ल्यब् लोपे पञ्चमी । रुन्ध्याम्=रुध्+लिङ् ।

विवृति

१–अतिशयोक्ति एवं उपमा अलंकार है। २– भग्नप्रक्रमता दोष है। ३–वसन्ततिलका छन्द है। ४– शकार का कहना है कि वसन्तसेना का पकडना लडको का खेल है इसके लिए प्रयत्न की क्या आवश्यकता ? स्त्री का पकडना वीरता का कार्य है। वसन्तसेना तो शकार की मित्र है जिसे वह भाग जाने देना चाहता है।

शकार —भावे भावे, [भाव भाव,]
शकार—महानुभाव ! महानुभाव !

एशा णाणकमूशिकामकशिका मच्छाशिका लाशिका
णिण्णाशा कुलणाशिका अवशिका कामस्स मजूशिका ।
एशा वेशवहू शुवेशणिलआ वेशगणा वेशिआ
एशे शे दशणाम के मयि कले अज्जावि म णेच्छदि ॥२३॥

[एषा नाणकमोषिकामकशिका मत्स्याशिका लासिका
निर्नासा कुलनाशिका अवशिका कामस्य मञ्जूषिका ।
एषा वेशवधू सुवेशनिलया वेशाङ्गना वेशिका
एतान्यस्या दश नामकानि मया कृतान्यद्यापि मा नेच्छति ॥]

अन्वय —एषा, नाणकमोषिकामकशिका, मत्स्याशिका, लासिका, निर्नासा कुलनासिका, अवशिका, कामस्य, मञ्जूषिका, एषा, वेशवधू, सुवेशनिलया, वेशाङ्गना, वेशिका, एतानि, अस्या, दश, नामकानि, मया, कृतानि [किन्तु], अद्य, अपि, [इयम्] माम्, न, इच्छति ॥२३॥

पदार्थ —एषा=यह, नाणकमोषिकामकशिका=बहुमूल्य निष्क तस्करों की काम वासना को दूर करने वाली, मत्स्याशिका=मछली खाने वाली, लासिका=

नृत्य करने वाली, निर्नासा=सम्मान शून्य, कुलनासिका=वशनाशिनी, अवशिका=वश मे न आने वाली, कामस्य=कामदेव की, मञ्जूषिका=पिटारी, एषा=यह, वेशवधूः=वेश्यागामियों की प्रेयसी, सुवेशनिलया=सुन्दर सज्जा की पात्र, वेशाङ्गना=वेश्यालय की कामिनी, वेशिका=वेश्या, एतानि=ये, अस्याः=इसके, दश, नामकानि=नाम, मया=मेरे द्वारा, कृतानि=कहे गये हैं, अद्य=आज, अपि=भी, माम्=मुझे न, इच्छति=चाहती है।

अनुवाद :—यह 'बहुमूल्य निष्क-तस्करों की काम वासना को शान्त करने वाली, मछली खाने वाली, नृत्य करने वाली, सम्मान शून्य, वशनाशिनी, वश मे न आने वाली, कामदेव की पिटारी, यह वेश्यागामियों की प्रेयसी, सुन्दर सज्जा का स्थान, वेश्यालय की कामिनी और 'वेश्या' ये इसके दश नाम मेरे द्वारा कहे गये हैं [किन्तु यह] आज भी मुझे नहीं चाहती है।

संस्कृत टीका :—एषा=इयम्, नाणकमोषिकामकशिका=बहुमूल्यनिष्कतस्करकामनाशिका, मत्स्याशिका=मत्स्यभक्षिका, लासिका=नृत्यशालिनी, निर्नासा=सम्मानशून्या, कुलनासिका=वशनासिका, अवशिका=अवशीभूता, कामस्य=अनङ्गस्य, मञ्जूषिका=पेटिका, एषा=इयम्, वेशवधू=वेश्यागयजनस्त्री, सुवेशनिलया=मज्जाश्रया, वेशाङ्गना=वेश्यालय सुन्दरी, वेशिका=वेशवती, एतानि=इमानि, अस्या.=वसन्तसेनायाः, दश नामकानि=दशनामानि, मया=शकारेण, कृतानि=घटितानि, अद्य=इदानीम्, अपि, माम्=शकारम्, न=नहि, इच्छति=अभिलपति ॥२३॥

समास एवं व्याकरण :—(१) नाणक०—नाणकानि मुष्णन्ति इति नाणकमोषिणः तेषामुकामस्य कषिका। मत्स्याशिका=मत्स्यान् अश्नाति इति। कुलनाशिका—कुलस्य नाशिका। वेशवधू.=वेशस्य वधूः। सुवेशनिलया=शोभनानाम् वेशानाम् निलयः यस्याम् सा। मञ्जूषिका=मञ्जूषा इव। कृतानि-कृ+क्त। इच्छति=इष्+लट्। निर्नासा=निर्+नासा।

विवृति

(१) 'वेशो वेश्याजनाश्रय.' इत्यमरः। (२) 'वधूर्जाया स्नुषा स्त्री' इति कोष.। (३) वेशवधू और वेशाङ्गना मे पुनरुक्त दोष है। (४) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। (५) शकार दश नाम कहता है किन्तु सख्या मे ये नाम ११ हैं। पराञ्जपे का कहना है कि—"The poet is probably parodying here the alliterative style of his contemporaries."

विट :—

विट—

प्रसरसि भयविक्लवा किमर्थं प्रचलित कुण्डल घृष्ट गण्डपार्श्वा।
विटजननखघट्टितेव वीणा, जलधरगर्जितभीतसारसीव ॥२४॥

अन्वय —विटजननखघट्टिता, वीणा, इव, प्रचलितकुण्डलघृष्टगण्डपार्श्वा, (त्वम्), जलधरगर्जिभीतसारसी, इव, भयविक्लवा, (सती) किमर्थम् प्रसरसि ॥२४॥

पदार्थ :—विटजननखघट्टिता=विट जनो के नख से घर्षित, वीणा इव=वीणा की भाँति, प्रचलितकुण्डलघृष्टगण्डपार्श्वा=हिलते हुए कुण्डलो से रगड खाये कपोलस्थल वाली, जलधरगर्जितभीतसारसी=मेघो के गर्जन से डरी हुई सारसी की, इव=भाँति, भयविक्लवा=भय से व्याकुल होकर, किमर्थम्=किसलिए, प्रसरसि=भाग रही हो।

अनुवाद —विट जनो के नख से घर्षित वीणा की भाँति, हिलते हुए कुण्डलों से रगड खाये कपोलस्थल वाली, मेघो के गर्जन से डरी हुई सारसी की भाँति, भय से व्याकुल होकर किस हेतु भाग रही हो ।

संस्कृत टीका —विटजनखघट्टिता=विलासिजननखपरिमृष्टा, वीणा, इव=तुल्या, प्रचलितकुण्डलघृष्टगण्डपार्श्वा=चञ्चलकर्णाभूषणघर्षितकपोलपार्श्वभागा, जलधरगर्जितभीतसारसी=मेघगर्जनविह्वला सारसी इव, भयविक्लवा=भयविह्वला, किमर्थम्=किं हेतुकम्, प्रसरसि=धावसि ।

समास एवं व्याकरण —(१) विट०–विटजनाना नखैं घट्टिता । प्रचलित०-प्रचलिताभ्या कुण्डलाभ्या घृष्टौ गण्डयो पार्श्वौ यस्याः तादृशी । जलधर०-जलधरस्य गर्जितेन भीता सारसी इव । भयविक्लवा=भयेन विक्लवा । (२) विट–विट्+क । नख, नखम्-नह्+ख, हकारस्य लोप । वीणा-वेति वृद्धिमात्रमपगच्छति–वी+न, नि० णत्वम् । कुण्डल, लम्-कुण्+ड + मत्वर्थे ल । घृष्ट-घृष्+क्त म्वा०प०। गण्ड -गण्ड्+अच् । गर्जित=गर्ज्+क्त । भीत-भी+क्त । विक्लव-वि+क्लु+अच् ।

विवृति

[१] मालोपमा अलङ्कार है—'मालोपमा यदैकस्योपमानम् बहुदृश्यते ।' [२] पुष्पिताग्रा छन्द है—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि तु न जौजरगागारच पुष्पिताग्रा ।'

शकार —

शकार—

झाणज्झणतबहुभूशणशद्द मिश्श
किं दोव्वदी विअ पलाअशि लामभीदा ?
एशे हलामि शहश त्ति जधा हणूमे
विश्शावशुश्श बहिणिं विअ त शुभद्द ॥२५॥

[झणज्झणमिति बहुभूपण शब्दमिश्र किं द्रौपदीव पलायसे रामभीता ?
एप हरामि सहसेति यथा हनूमान्विश्वावसोर्भगिनीमिव ता सुभद्राम् ॥]

अन्वय :—रामभीता, द्रौपदी, इव, बहुभूपणशब्दमिश्रम्, झणज्झणम्, इति, (कुर्वती) किम्, पलायसे, यथा, हनुमान, विश्वावसो, ताम् भगिनीम्, सुभद्राम्, इव, एप, (अहम्) इति, सहसा, हरामि ॥२५॥

पदार्थ :—रामभीता=राम से डरी, द्रौपदी इव=द्रौपदी की भाँति, बहुभूपणशब्दमिश्रम्=विविध आभूपणो के शब्द से मिश्रित, झणज्झणम्—"झन-झन" शब्द, इति=इस प्रकार, किम्=क्यो, पलायसे=भागी जा रही हो, यथा=जैसे हनुमान्='हनुमान्' जी, विश्वावसो='विश्वावसु' की, ताम्=उस (प्रसिद्ध) भगिनीम्=बहिन, सुभद्राम्='सुभद्रा' को, एप.=यह, इति=इस प्रकार, सहसा=बलपूर्वक, हरामि=हरण करता हूँ।

अनुवाद —राम से डरी पाञ्चाली की भाँति, विविध आभूपणो के शब्द से मिश्रित "झन-झन" शब्द (करती हुई), क्यो भागी जा रही हो ? जिस प्रकार "हनुमान्" जी ने "विश्वावसु" की बहिन "सुभद्रा" यह (मैं) उसी प्रकार बलात् (तुम्हारा) हरण करता हूँ।

संस्कृत टीका :—रामभीता दशरथतनयत्रस्ता, द्रौपदी=पाञ्चाली, इव=यथा, बहुभूपणशब्दमिश्रम्=विविधालङ्काररवसमन्वितम्, झणज्झणम्=झणझणेत्यव्यक्तशब्दम्, किं=कथम्, पलायसे द्रुतमन्यत्र गच्छसि, यथा हनुमान्=पवनसुत, विश्वावसो=सिद्धराजविशेपस्य, ताम्=प्रसिद्धाम्, भगिनीम्=सोदराम् सुभद्राम्=श्रीकृष्णभगिनीमिव, एप, (अहम्) इति=इत्थम्, सहसा=बलात्, त्वा हरामि=अपनयामि।

समास एव व्याकरण —(१) रामभीता=रामात् भीता। बहु०-बहुभूपणानाम् शब्दस्तेन मिश्रम् यथा स्यात्तथा। [२] भूपणम्-भूप्+ल्युट्। झणज्झणम्-झणत्+डाच्, द्वित्वम्, पूर्वपदटिलोप। भगिनी-भगिन्+ङीप्। सहसा-सह+सो+डा। पलायसे-परा+अय्+लट्। हरामि-हृ+लट्।

विवृति

[१] वसन्ततिलका छन्द है। [२] श्लोक मे हतोपमा अलङ्कार है। [३] शकारोक्ति होने से आख्यान काल एव पात्र सम्बन्धो की असम्बद्धता है।

चेट —

चेट—

लामेहि अ लाअवल्लह तो क्खाहिशि मच्छमशक।
एदेहि मच्छमशकेहि शुणआ मडअं ण शेवदि ॥२६॥

[रमय च राजवल्लभ ततः खादिष्यसि मत्स्यमासकम्
एताभ्या मत्स्यमासाभ्या श्वानो मृतक न सेवन्ते ॥]

अन्वय —(हे वसन्तसेने !) राजवल्लभम्, रमय, ततः मत्स्यमासकम्, च, खादिष्यसि, एताभ्याम्, मत्स्यमासाभ्याम्, (तृप्ता), श्वान, मृतकम्, न, सेवन्ते ॥२६॥

पदार्थ —राजवल्लभम्=राजा के प्रिय (शकार के साथ), रमय=रमण करो, तत =ऐसा करने पर, मत्स्यमासकम्=मछली और मास को, खादिष्यसि= खाओगी, एताभ्याम्=इन दोनो से, मत्स्यमासाभ्याम्=मछली और मांस के द्वारा, श्वान =कुत्ते, मृतकम्=मृत पशु को, न=नही, सेवन्ते=सेवन करते है।

अनुवाद —नृप के अधिक प्रिय (शकार) के साथ रमण करो, ऐसा करने पर मछली और मास खाओगी। इन दोनो मछली और मास से (सन्तुष्ट) कुत्ते शव का सेवन नही करते हैं।

सस्कृत टीका —राजवल्लभम्=नृपतेर्बहुप्रियम्, रमय, ततः=तस्मात् मत्स्यमासकम्, खादिष्यसि=भक्षयिष्यसि, एताभ्याम्, मत्स्यमासाभ्याम् श्वान =कुक्कुरा, मृतकम्=शवशरीरम्, न=नहि, सेवन्ते=खादन्ति।

समास एव व्याकरण —(१) राजवल्लभम्=राज्ञ वल्लभम्। मत्स्य०- मत्स्याश्च मासम् च तदेव मत्स्यमासकम्। (२) वल्लभ=वल्ल+अभच्। मत्स्य- मद्+स्यन्। मृतकम्=मृत+कन्। मासम्-मन्+स दीर्घश्च। सेवन्ते-सेव्+लट्।

विवृति

(१) आर्या छन्द है। (२) उत्तरार्ध से पूर्वार्द्ध का अर्थ साधन होने के कारण काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (३) पृथ्वीधर इसमे मात्रासमक छन्द स्वीकार करते है।

विट —भवति वसन्तसेने

विट—सुश्री वसन्तसेने

किं त्व कटीतटनिवेशितमुद्वहन्ती
तारविचित्ररुचिर रशनाकलापम्।
वक्त्रेण निर्मथितचूर्णमन शिलेन
त्रस्ताद्भुत नगरदैवतवत्प्रयासि ॥२७॥

अन्वय—त्वम्, कटीतटनिवेशितम् ताराविचित्ररुचिरम्, रशनाकलापम्, उद्वहन्ती, निर्मथित चूर्णमन शिलेन, वक्त्रेण, (उपलक्षिता सती), नगरदैवतवत्, त्रस्ताद्भुतम्, किम् प्रयासि ॥२७॥

पदार्थ—त्वम्, =तुम, कटीतटनिवेशितम्=कमर भाग म जडी हुई, ताराविचित्ररुचिरम्=सितारो से अद्भुत एव सुन्दर, रशनाकलापम्=करधनी को, उद्व-

हन्ती=धारण करती हुई, निर्मथितचूर्णमनः शिलेन=चूर्ण 'मनसिल' को तिरस्कृत करने वाले, वक्त्रेण=मुख से, नरदैवतवत्='नगरदेवी' के समान, त्रस्ताद्भुतम्=विचित्र प्रकार से डर कर, किम्=क्यों, प्रयासि=जा रही हो।

अनुवाद—तुम कटि-प्रदेश में सुशोभित सितारों से अद्भुत एवं सुन्दर कर धनी को धारण करती हुई, चूर्णमनसिल को तिरस्कृत करने वाले मुख से 'नगरदेवी' की भांति डरी हुई विचित्र प्रकार से क्या जा रही हो?

संस्कृत टीका— त्वम्, कटीतटनिवेशितम्= श्रोणिप्रदेशसस्थापितम्, तारा-विचित्ररुचिरम्=ताराशबल मनोहरम् रशनाकलापम्=मेखलाभूषणाम्, उद्वहन्ती=धारयन्ती, निर्मथित चूर्णमनः शिलेन=तिरस्कृत चूर्णमनसिलधातुविशेषेण, वक्त्रेण=मुखेन, नगर दैवतवत्=नगरदेवतेव, त्रस्ताद्भुतम्=विचित्र प्रकारभीतम्, किम्=कथम्, प्रयासि=प्रकर्षेण गच्छसि।

समास एव व्याकरण—(१) कटी०—कटीतट निवेशितम्। तारा०-ताराभि विचित्रश्चासौ रुचिरश्च। इतितम् निर्मथित ०—निर्मथिता चूर्णमन शिला येन, अथवा निर्मथितेन अतएव चूर्णेन मन शिलेन।

(२) भवति=भू+लट्। कटी-कटि+ङीप्। तट-तट्+अच्। तारा०-तृ+णिच्+अच्+टाप्। रशना-अश्+युच्, रशादेशः। कलापम्-कला+आप्+अण्, घञ्। निर्मथित=निर्+मथ्+क्त। चूर्णम्-चूर्ण+अच्। वक्त्रम्—वक्ति अनेन, वच्+ (करणे) ष्ट्रन्। त्रस्त-त्रस्+क्त। अद्भुत अद्+भू+डुतच्। न भूतम् इति वा।

विवृति

(१) वति प्रत्यय के कारण श्रौती उपमा अलङ्कार है। (२) वसन्तसेना म देवता की सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। (३) वसन्ततिलका छन्द है।

शकार—

शकार—

अम्हेहिं चड अहि शालि अँती वणे शिआली विअ कुक्कुलेहिं।
पलाशि शिग्घ तुलिद शवेग शवेटण मे हलअ हलती॥२८॥
(अस्माभिश्चण्डमभिसार्यमाणा वने श्रृगालीव कुक्कुरै।
पलायसे शीघ्र त्वरित सवेग सवृन्त मम हृदय हरन्ती॥]

अन्वयः—वने, कुक्कुरै, श्रृगाली, इव, अस्माभि, चण्डम्, अभिसार्यमाणा (त्वम्), मम, हृदयम्, सवृन्तम्, हरन्ती, शीघ्रम्, त्वरितम् सवेगम्, पलायसे॥२८॥

पदार्थ—वने=वन में, कुक्कुरै=कुत्तों से, श्रृगाली=सियारिन (श्रृगाली) इव=भांति, अस्माभि.=हमारे द्वारा से, चण्डम्=तीव्र गति से, अभिसार्यमाणा=

अनुसृत होकर, मम =मेरे, हृदयम् =हृदय को, सवृन्तम् =मूलसहित, हरन्ती =चुराती हुई, शीघ्रम, त्वरितम्, सवेगम् =वेगपूर्वक, पलायसे =भागी जाती है।

अनुवाद —अरण्य में कुत्तो से पीछा की गई शृगाली की भांति, हमारे द्वारा तीव्र गति से अनुसृत होकर मेरे हृदय को समूल चुराती हुई शीघ्र झटिति [और वेग पूर्वक भागी जाती हो।

संस्कृत टीका —वने=अरण्ये, कुक्कुरैः=श्वभिः, शृगाली=क्रोष्ट्री, इव, अस्माभि शकारादिभि, चण्डम् =द्रुतम्, अभिसार्यमाणा=अनुगम्यमाना, मम=मे, हृदयम् =मन, सवृन्तम् =सवेष्टनम्, हरन्ती=चोरयन्ती, शीघ्रम्, त्वरितम्, सवेगम्= वेगसहितम्, पलायसे= पलायनम् करोषि।

समास एव व्याकरण –(१) सवृन्तम् वृन्तेन सहितम्। (२) चण्डम्—चड्+ अच् विभक्ति कर्म। कुक्कुरः—कुक्+कुर्+क। शृगाली-शृगाल+ङीष्।

अभिसार्यमाणा – अभि+सृ+णिच्+यक्+शानच+टाप्। हरन्ती—हृ+ शतृ+ङीप्।

विवृति

(१) पद्य मे उपमा अलङ्कार है। (२) शकार की मूर्खता के कारण शीघ्रम त्वरितम, सवेगम् मे पुनरुक्ति दोष है। उपजाति छन्द है।

वसन्तसेना—पल्लवक पल्लवक, परभृतिके परभृतिके [पल्लवआ पल्लवआ, परहुदिए परहुदिए।]

वसन्तसेना—पल्लवक ! पल्लवक !! परभृति के परभृति के !!

शकार—(सभयम्।) भाव भाव, मनुष्या मनुष्या। [भावे भावे, मणुस्श मणुस्शे।[

शकार—(भय के साथ) भाव ! भाव !! मनुष्य, मनुष्य।

विट – न भेतव्य न भेतव्यम्।]

विट— मत डरो, मत डरो।

वसन्तसेना— माधविके माधविके। [माहविए माहविए।]

वसन्तसेना— माधविके ! माधविके !

विट —(सहासम्) मूर्ख परिजनोऽन्विष्यति।

विट– (हँसी के साथ) मूर्ख ! भृत्य को खोज रही है।

शकार – भाव भाव, स्त्रियमन्वेषयति। [भावे भावे, इत्थिआ अण्णशदि।]

शकार—भाव ! भाव ! स्त्री को खोज रही है ?

विट— अथ किम्।

विट— और क्या ?

शकार–स्त्रीणा शत मारयामि। शूरोऽहम्। [इत्थिआण शद मालेमि। शूले हगे।]

शकार– सौ स्त्रियों को मार सकता हूँ। मैं बहादुर हूँ।

वसन्तसेना–(शून्यमवलोक्य) हा धिक् हा धिक्। कथ परिजनोऽपि परिभ्रष्ट। अत्र मयात्मा स्वयमेव रक्षितव्य। [हद्धी हद्धी, कध परिअणो वि परिब्भट्टो एत्थ मए अप्पा शअ ज्जेव रक्खिदव्वो।]

वसन्तसेना–(सूना देख कर) हाय! हाय! क्या सेवक भी विलग हो गये? यहाँ मुझे अपनी स्वय ही रक्षा करनी चाहिये।

विट–अन्विष्यतामन्विष्यताम्।

विट–ढूँढो, ढूँढो!

शकार–वसन्तसेनिके, विलप, विलप परभृतिका वा पल्लवक वा सर्वं च वसन्तमासम्। मयाभिसार्यमाणा त्वा क परित्रास्यत। [वशन्तशेणिए, विलव विलव परहुदिअ वा पल्लवअ वा शव्व एव्व वशन्त माशम्। मए अहि शालि अन्ती तुम को पलित्ताइश्शदि।]

शकार—वसन्तसेने! विलाप कर, विलाप कर, परभृतिका का अथवा पल्लवक का या सम्पूर्ण वसन्तमास का। मेरे द्वारा अभिसरण की जाती हुई तुमको कौन बचायेगा?

विवृति

(१) पल्लवक=वसन्तसेना का नौकर। परभृतिका=वसन्तसेना की सेविका माधविका=वसन्तसेना की परिचायिका। परिभ्रष्टः=भटक गए। परभृतिका=कोयल। पल्लवक=किसलय। (२) वक्रोक्ति अलङ्कार है। (३) पल्+क्विप्+लु+अप्=पल्लव। पल् चासौ लवश्च पल्लव, पल्लव एव पल्लवक। परि+भ्रश्+क्त=परिभ्रष्ट। (४) नायिका वसन्तसेना के नामानुरूप ही सेवक सेविकायें अन्वर्थ नाम रखती है (५) पल्लवक रक्तवर्ण एव परभृतिका मधुर कण्ठ थी। माधविका म उक्तिवैचित्र्य से अर्थान्तर ध्वनि है। सर्वत्र वक्रोक्ति है।

किं भीमशेणे जमदग्गिपुत्ते कुंतीशुदे वा दशकधले वा।
एशे हगे गेण्हिअ केशहत्थे दुश्शाशणश्शाणुकिदिं कलेमि ॥२९॥
[किं भीमसेनो जमदग्निपुत्र. कुन्तीसुतो वा दशकन्धरो वा।
एषोऽहं गृहीत्वा केशहस्ते दु शासनस्यानुकृतिं करोमि ॥]

अन्वय—किम्, जमदग्निपुत्र, वा, कुन्तीसुत, वा, दशकन्धर, (त्वाम्, रक्षिष्यति), एषः, अहम्, केशहस्त, (त्वाम्), गृहीत्वा, दु शासनस्य, अनुकृतिम् करोमि ॥२९॥

पदार्थ .–किम्=क्या, जमदग्निपुत्रः=परशुराम, भीमसेन=भीमसेन, कुन्तीसुतः=कुन्तीपुत्र कर्ण अथवा अर्जुन, वा=अथवा, दशकन्धरः=रावण, एष=यह अहम्=मैं, केशहस्ते=केशपाश, गृहीत्वा=पकड़कर, दुःशासनस्य.=दुःशासन का, अनुकृतिम्=अनुकरण, करोमि=करता हूँ।

अनुवाद –क्या परशुराम अथवा भीमसेन वा कुन्तीपुत्र अथवा दशानन ? (तुझे छुडायेंगे ?) (देख !) यह मैं (तेरे) केशपाश पकड कर दुःशासन का अनुकरण करता हूँ।

संस्कृत टीका–किम्, जमदग्निपुत्रः=परशुराम , भीमसेन=वृकोदर, कर्णः अर्जुन वा, दशकन्धर=रावण एष अहम्=शकार, केशहस्ते=केशपाशे, गृहीत्वा = आकृष्य, दुःशासनस्य = कनिष्ठधृतराष्ट्रपुत्रस्य, अनुकृतिम् = अनुकरणम्, करोमि।

समास एव व्याकरण–(१) सुत=सु+क्त। पुत्र —पुत्+त्रै+क। केश–क्लिश्यते क्लिश्नाति वा—क्लिश्+अन्, लोलोपश्च। अनुकृतिम्–अनु+कृ+क्तिन्। गृहीत्वा—ग्रह्+क्त्वा।

विवृति

(१) पद्य मे उपमा अलङ्कार है। (२) इन्द्रवज्रा छन्द है। (३) पद्य मे नौ पौराणिक व्यतिक्रम है। (४) 'पाश पक्षस्य हस्तश्च कलापार्थाः कचात् परे।' इत्यमर।

ण पेक्ख ण पेक्ख।

देखो, देखो,

अशी शुतिक्खे वलिदे अ मस्तके
कप्पेम शीश उद मालएम वा।
अल तवेदेण पलाइदेण
मुमुक्खु जे होदि ण शे खु जीअदि ॥३०॥

[असिः सुतीक्ष्णो वलित च मस्तक कल्पये शीर्षमुत मारयामि वा।
अल तवैतेन पलायितेन मुमूर्षुर्यो भवति न स खलु जीवति ॥]

अन्वय –(मम) असि, सुतीक्ष्णः,(अस्ति),तव,मस्तकम्, च, वलितम्,(वर्तते), (अहम्, तव) शीर्षम्, कल्पये, उत, मारयामि, वा, तव, एतेन, पलायितेन, अलम्, य, मुमूर्षुः, भवति, स, खलु, न, जीवति ॥३०॥

पदार्थ –असि=तलवार, सुतीक्ष्णः–पैनी, तव=तेरा, मस्तकम्=सिर, च=और, वलितम्=सुन्दर, मस्तकम्=मस्तक, कल्पये=काट डालूँ, उत=अथवा मारयामि=मार डालूँ, तव=तेरा, एतेन=इस प्रकार से, पलायितेन=भागना,

अलम्=व्यर्थ है, यः=जो, मुमूर्षुः = मरणासन्न, भवति = होता है, सः=वह, खलु=निश्चय ही, न=नही, जीवति=जीवित रहता ।

अनुवाद :—कृपाण पैनी है और तेरा मस्तिष्क सुन्दर है, तुम्हारा मस्तक काट डालूँ अथवा मार डालूँ । तुम्हारा इस प्रकार से भागना व्यर्थ है जो मरणासन्न होता है वह निश्चय ही नहीं जीवित रहता ।

सस्कृत टीका–असिः=कृपाणः, सुतीक्ष्णः = निशितः, तव, मस्तकम्=मस्तिष्कम्, च वलितम्=ललितम्, शीर्षम्=मस्तकम् कल्पये=छिनधि, उत=अथवा, मारयामि=प्राणविनाशम् करोमि, वा, तव=वसन्तसेनायाः, एतेन, पलायितेन=पलायनेन, अलम्=व्यर्थम्, यः=जनः मुमूर्षुः=मरणासन्नः, भवति=अस्ति, सः=जनः खलु=निश्चयेन, न=नहि, जीवति=प्राणान् धारयति ।

समास एवं व्याकरण—(१) मुमूर्षुः—मृ+सन्, मुमूर्ष+उ । असि.–अस्+इन् । मस्तकम्—मस्मति परिमारयनेन मस् करणेत स्वार्थे क । वलित–वल्+क्त । शीर्षम्—शिरस् पृषो० शीर्षादिशः, शृ+क सुक् च वा ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे वशस्थ और इन्द्रवज्रा छन्द का मिश्रण उपजाति छन्द है ।

वसन्तसेना–आर्य, अबला खल्वहम् । [अज्ज, अबला क्खु अहम् ।]

वसन्तसेना–आर्य ! मैं तो अबला हूँ ।

विटः–अत एव ध्रियसे ।

विट–इसीलिए जीवित हो ।

शकार —अत एव न मार्यसे । [अदो ज्जेव ण मालीअशि]

शकार— इसीलिए नही मारी जा रही हो ।

वसन्तसेना–(स्वगतम् ।) कथमनुनयोऽप्यस्य भयमुत्पादयति । भवतु । एव तावत् । (प्रकाशम् ।) आर्य, अस्मात्किमप्यलकरण तर्क्यते । [कथ अणुणओ वि शे भअ उप्पादेदि । भोदु । एव्व दाव । इमादो किंपि अलकरणं तक्कीअदि ।]

वसन्तसेना–(अपने आप) क्यो, इसका अनुनय भी भय उत्पन्न करता है ? अस्तु; ऐसा करती हूँ । (प्रकट रूप से) आर्य ! मुझ से किसी आभूषण की अपेक्षा है ?

विट.—शान्तम् । भवति वसन्तसेने, न पुष्पमोषमर्हत्युद्यानलता । तत्कृतमलकरणैः ।

विट—ऐसा मत कहो ! अयि वसन्तसेने ! उद्यानलता का पुष्पाहरण उचित नही । इसलिये आभूषणो को रहने दो ।

वसन्तसेना–तर्त्कि खल्विदानीम् । [ता किं क्खु दाणिम् ।]

वसन्तसेना–तो अब क्या ?

शकारः–अहं वरपुरुषमनुष्यो वासुदेवः कामयितव्यः । [हगे वरपुलिशमणुस्शे वाशुदेवके कामइदव्वे ।]

शकार–मुझ पुरुषश्रेष्ठ, मनुष्य वासुदेव की कामना कर !

वसन्तसेना–(सक्रोधम् ।) शान्त शान्तम् । अपेहि । अनार्य मन्त्रयसि । [शन्त शन्तम् । अवेहि । अणज्ज मन्तेशि ।]

वसन्तसेना–(क्रोध पूर्वक) चुप ! चुप! दूर हटो । अशिष्ट बात कहते हो ।

शकार :–(सतालिकं विहस्य ।) भाव भाव, प्रेक्षस्व तावत् । मामन्तरेण सुस्निग्धैषा गणिकादारिका ननु । येन मा भणति–'एहि । श्रान्तोऽसि । क्लान्तोऽसि' इति । अहं न ग्रामान्तरं न नगरान्तरं वा गतः भट्टालिके,शपे भावस्य शीर्षमात्मीयाभ्यां पादाभ्याम् । तवैव पृष्ठानुपृष्ठिकयाहिण्डमानः श्रान्तः क्लान्तोऽस्मि संवृत्तः । [भावे भावे, पेक्ख दाव । मं अन्तलेण शुशिणिद्धा एशा गणिआ दालिआ णम् । जेण मं भणादि–'एहि । शन्तेशि । किलिन्तेशि' त्ति हगे ण गामन्तलं ण णअलन्तलं वा गडे । अज्जुके, शवामि भावस्श शीशं अत्तणकेहिं पादेहिं । तव ज्जेव पश्चाणुपश्चिआए आहिण्डन्ते शन्ते किलिन्ते म्हि शवुत्ते ।]

शकार–(ताली बजाता हुआ हँस कर) भाव ! भाव !! देखो तो, यह वेश्या-पुत्री निश्चय ही हृदय से मुझमे अनुरक्त है, जिससे मुझे कहती है कि– "आओ ! थक गये हो, खिन्न हो गये हो ।" मैं न किसी दूसरे गाँव को गया, न किसी दूसरे नगर को ही । मान्य गणिके ! मैं अपने पैरों से पूज्य (विट) का शिर-स्पर्श कर शपथ खाता हूँ, कि तुम्हारे ही पीछे-पीछे चलता हुआ श्रान्त (थका हुआ) और खिन्न हो गया हूँ ।

विट –(स्वगतम् ।) अये, कथं शान्तमित्यभिहिते श्रान्त इत्यवगच्छति मूर्खः ! (प्रकाशम् ।) वसन्तसेने, वेशवासविरुद्धमभिहितं भवत्या । पश्य ।

विट–(अपने आप) अरे ! शान्त (घृणासूचक शब्द) कहे जाने पर कैसे यह मूर्ख श्रान्त (थका हुआ) समझ रहा है ? (प्रकट रूप से) वसन्तसेने ! वेश्याजन के विरुद्ध यह बात कही है । देखो–

विवृति

(१) तर्क्यते=इच्छा रखते हैं । अनुनय=विनय । अलङ्करणम्=आभूषण । कृतम्=बस करो । पुष्पमोषम्=फूल तोड़ना । अपेहि=दूर भागो । अनार्यम्=अनुचित । अन्तरेण=विषय में । सुस्निग्ध=प्रसन्न । भाव=विद्वान् । पृष्ठानुपृष्ठिकया=पीछे-पीछे । वेशवासविरुद्धम्=गणिकालय में निवास के प्रतिकूल ।

आहिण्डमान =घूमता हुआ। (२) कम्+णिच्+तव्य=कामयितव्य। (३) कृतम् अलङ्करणे म कृतम् (अलम्) के योग मे तृतीया है। (४) माम अन्तरेण मे अन्तरेण के योग म द्वितीया। (५) शीर्षम्-यहाँ पाणिनि व्याकरण के अनुसार शीर्षण होना चाहिए। (६) पृष्ठानुपृष्ठ+ठन्। पृष्ठानुपृष्ठम् अस्ति अस्याम् क्रियायामिति पृष्ठानुपृष्ठिका तया। (७) आ+हिण्ड+शानच्। (८) वेशे वासः तस्य विरुद्धम् वशवास विरुद्धम्। वेशा वश्याजनाश्रय।' इत्यमर।

तरुणजनसहायश्चिन्त्यता वेशवासो
विगणय गणिका त्व मार्गजाता लतेव।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूत शरीर
सममुपचर भद्रे! सुप्रिय वाप्रिय वा ॥३१॥

अन्वय—वशवास, तरुणजनसहाय, चिन्त्यताम्, त्वम्, मार्गजाता, लता, इव, गणिका, (इति), विगणय हि, पण्यभूतम्, धनहार्यम्, शरीरम्, वहसि, (अत), हे भद्रे! सुप्रियम् वा, अप्रियम्, वा समम् उपचर ॥३१॥

पदार्थ—वेशवास—वेश्यालय म निवास, तरुणजनसहाय =युवालोगो की सहायता वाला, चिन्त्यताम्=स्मरण करो, त्वम्=तुम, मार्गजाता=रास्ते म उगी हुई, लता=वल्लरी की, इव=भाति, गणिका=वेश्या, विगणय=समझो, हि=क्योकि, पण्यभूतम्=विक्रय योग्य वस्तु के समान, धनहार्यम्—वित्त से ग्रहण करन योग्य, शरीरम्=देह का, वहसि=धारण करती हो, हे भद्रे! सुप्रियम्=रसिक वा=अथवा, अप्रियम्=अरसिक, समम्=समान, उपचर=सत्कार करो।

अनुवाद—वश्यालय म निवास युवा जनो की सहायता वाला स्मरण करो तुम पथ म उत्पन्न वल्लरी की भाति वश्या (अपन का) समझो, क्योकि विक्रय योग्य वस्तु क समान, वित्त, स ग्रहण करने योग्य देह को धारण करती हो, हे भद्रशीले! रसिक अथवा अरसिक दानो का समान सत्कार करो।

सस्कृत टीका—वशवास =वेश्यालय निवास, तरुणजनसहाय =युवजनाश्रय, चिन्त्यताम् =विचार्यताम् त्वम्=वसन्तसेना, मार्गजाता=पथिसमुत्पन्ना, लता=वल्ली, इव=यथा, गणिका=वश्या, विगणय- विचारय, पण्यभूतम्=विक्रयस्वरूपम्, धनहार्यम्=वित्तेन ग्राह्यम् शरीरम्=वपु, वहसि=धारयसि, हे भद्रशीले! सुप्रियम्=रसिकम् वा=अथवा, अप्रियम्=अरसिकम्, वा, समम्=समानरूपेण, उपचर=सवा सत्कार कर्तव्य।

समास एव व्याकरण—(१) वेशवास–वेशेवास। तरुण०–तरुणजन सहाय यस्य तादृश। मार्ग जाता–मार्गे जाता। धनहार्यम्–धनेन हार्यम्। पण्य०–पण्यम् भूतम्। (२) उपचार–उप+चर्+घञ्। वेश–विश्+घञ्। तरुण–तॄ+उनन्।

लता—लत्+अच्+टाप् । गणिका-गण+ठच्+टाप् । पण्य—पण्+यत् । प्रिय—प्री+क । मद्र—भन्द्र+रक्, नि० नलोपः । वहसि=वह्+लट् ।

विवृति

(१) पद्य मे अप्रस्तुत प्रशसा एव उपमा अलङ्कार है। (२) काव्यलिङ्ग अलङ्कार भी है। (३) मालिनी छन्द है । (४) प्रसाद गुण है । (५) लाटी रीति है ।

अपि च ।

और भी—

वाप्या स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः
फुल्ला नाम्यति वायसोऽपि हि लता या नामिता बर्हिणा ।
ब्रह्मक्षत्र विशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे
त्व वापीव लतेव नौरिव जन वेश्यासि सर्व भज ॥३२॥

अन्वय :—विचक्षण , द्विजवर , वर्णाधम , मूर्ख , अपि, वाप्याम्, स्नाति या, बर्हिणा, नामिता, फुल्लाम्, (ताम्)। लताम् वायस अपि, नाम्यति, हि, यया, नावा, ब्रह्मक्षत्रविश , तरन्ति, तया, एव, इतरे, च, त्वम्, वेश्या, असि, (अत), वापी, इव, लता, इव, नौ , इव, सर्वम्, जनम्, भज ॥३२॥

पदार्थ —विचक्षण =पण्डित, द्विजवर =ब्राह्मण, वर्णाधम =शूद्र, मूर्ख =मूर्ख, अपि=भी, वाप्याम्=बावडी भ, स्नाति=स्नान करता है, या=जो, बर्हिणा=मयूर के द्वारा, नामिता=झुकाई जाती है, फुल्लाम्=पुष्पिता, लताम्=वल्लरी को, वायस =कौआ, अपि=भी, नाम्यति=झुकाता है, हि=जैसे, यया=जिस, नावा=नौका से, ब्रह्मक्षत्रविश =ब्राह्मण क्षत्रिय एव वैश्य, तरन्ति=पार उतरते है, तया=उसी से, एव=ही, इतरे=अन्य, च =अपि, त्वम्=तुम, वेश्या=गणिका, असि=हो, वापी =बावडी, लता =वल्लरी, नौ =नौका की, इव=भाँति, सर्वम्=सभी, जनम् =व्यक्तियो का, भज=सम्मान करो ।

अनुवाद —पण्डित, ब्राह्मण, शूद्र और मूर्ख भी बावडी मे स्नान करता है, जो मयूर के द्वारा झुकाई जाती है (उस) पुष्पित वल्लरी को कौआ भी झुकाता है जैसे जिस नौका से ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्य पार उतरते है उसी से ही अन्य भी। तुम गणिका हो, अत बावडी, वल्लरी एव नौका की भाँति सभी व्यक्तियो का सम्मान करो ।

संस्कृत टीका—विचक्षण विद्वान्, द्विजवर =श्रेष्ठ ब्राह्मण , वर्णाधम =शूद्रः, मूर्ख =मूढ , अपि, वाप्याम्=दीर्घिकायाम, स्नाति=स्नानम् करोति, या=लता, बर्हिणा =मयूरेण, नामिता=अवनतीकृता, फुल्लाम्=पुष्पिताम्, लताम्=वल्लरीम्,

वायसः=काकः, अपि नाम्यति=नमयति, हि, यथा, नावा=नौकया, ब्रह्मक्षत्रविशः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः, तरन्ति=पारम् यान्ति, तया, एव=नावा, इतरे=शूद्रादयः, च= अपि, त्वम् वेश्या=गणिका, असि=वर्तसे, अतः वापी=दीर्घिका, इव, लता=वल्लरी, इव, नौः=नौका, इव, सर्वम्=सकल, जनम्=मनुष्य, भज=सेवस्व।

समास एवं व्याकरण—(१) द्विजवरः—द्विजेषुवरः। (२) वर्णाधमः—वर्णेषु अधमः। (३) स्नाति—ष्णा+लट्। (४) फुल्लाम्-फुल्+क्त+टाप्। (५) नाम्यति नाम (कण्ड्वादि गण)+लट्। (६) तरन्ति—तृ+लट्।

विवृति

(१) मालोपमा अलङ्कार है। वेश्या रूप उपमेय के वापी आदि बहुत से उपमान हैं। (२) 'सर्वम् भज', 'वेश्यासि', यह काव्यलिङ्ग अलकार है। (३) नकार भेद होने से भग्न प्रक्रमता-दोष है। (४) शार्दूलविक्रीडित छन्द है—'सूर्याश्वै-र्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।' (५) प्रसाद गुण है। (६) लाटी रीति है।

वसन्तसेना—गुणः खल्वनुरागस्य कारणम्, न पुनर्बलात्कारः। [गुणो क्खु अणुराअस्स कारणम्, ण उण बलक्कारो।]

वसन्तसेना—गुण ही अनुराग का कारण होते हैं, न कि बलात्कार।

शकार :—भाव भाव, एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात्प्रभृति तस्य दरिद्र-चारुदत्तस्यानुरक्ता न मां कामयते। वामतस्तस्य गृहम्। यथा तव मम च हस्तान्न परिभ्रश्यति तथा करोतु भावः। [भावे भावे, एशा गब्भदाशी कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि ताह दलिद्दचालुदत्ताह अणुलत्ता ण म कामेदि। वामदो तश्श घलम्। जधा तव मम अ हत्थादो ण एशा पलिब्भशदि तधा कलेदु भावे।]

शकार—भाव! भाव!! यह जन्म-दासी कामदेव के मन्दिर और उद्यान (में जाने) से उस दरिद्र "चारुदत्त" से प्रेम करने लगी है—और मुझे नहीं चाहती। बायीं ओर उसका घर है, जिससे तुम्हारे और मेरे हाथ से यह न निकलने पाये, आप वैसा करें।

विट :—(स्वगतम्।) यदेव परिहर्तव्यं तदेवोदाहरति मूर्खः। कथं वसन्त-सेनार्यचारुदत्तमनुरक्ता। सुष्ठु खल्विदमुच्यते-'रत्नं रत्नेन सगच्छते' इति। तद्गच्छतु। किमनेन मूर्खेण। (प्रकाशम्।) काणेलीमातः, वामतस्तस्य सार्थवाहस्य गृहम्।

विट—(अपने आप) यह मूर्ख जो बात छोड़ने की है वही कह रहा है! क्या वसन्तसेना आर्य चारुदत्त से प्रेम करती है? वस्तुतः यह ठीक ही कहा गया है। कि—"रत्न की संगति रत्न से ही होती है।" तो जाने दो। इस मूर्ख से क्या प्रयोजन? (प्रकट रूप से) काणेलीपुत्र! (व्यभिचारिणी पुत्र!), बायीं ओर उस

सार्थवाह (चारुदत्त) का घर है।

शकार —अथ किम्। वामतस्तस्य गृहम्। [अव इं। व.मदो तदश घलम्।]

शकार—और क्या ? बायी ओर उसका घर है।

वसन्तसेना—(स्वगतम्) आश्चर्यम्। वामतस्तस्य गृहमिति यत्सत्यम्, अपराध्यतापि दुर्जनेनोपकृतम्, येन प्रियसगमः प्रापित । [अम्महे। वामदो तदश गेह त्ति ज शच्चम्, अवरज्झन्तेण वि दुज्जणेण उवकिदम्, जेण पिअशङ्गम पाविदम्।]

वसन्तसेना—(अपने आप) आश्चर्य है। बायी ओर उसका घर है, सच तो यह है कि अपराध करते हुए भी दुष्ट ने उपकार किया है, जिसने प्रिय समागम तो प्राप्त कराया।

शकार —भाव भाव, बलीयसि खल्वन्धकारे माषराशि प्रविष्टेव मसीगुटिका दृश्यमानैव प्रनष्टा वसन्तसेना। [भावे भावे, बलिए क्खु अन्धआले माशलाशिपविट्टा विअ मशिगुडिआ दीशन्दी ज्जेव पणट्टा वशन्तशेणिआ।]

शकार—भाव ! भाव !! गहन अन्धकार मे उडद के ढेर मे प्रविष्ट हुई स्याही की टिक्की की भांति दिखाई देती हुई ही वसन्तसेना तिरोहित हो गई।

विट —अहो, बलवानन्धकार । तथाहि।

विट—ओह ! बड़ा घना अन्धकार है, क्योंकि—

विवृति

बलात्कार = जबर्दस्ती। गर्भदासी = नीच। कामदेवायतनोद्यानात् = अनङ्ग-मन्दिर के उपवन से । परिभ्रश्यति = छूटती है । परिहर्तव्यम् = त्यागने योग्य। उदाहरति = कह रहा है। सगच्छने = मिलता है। काणेलीमात = कुलटा का पुत्र। अपराध्यता = अपकार करते हुए। बलीयसि = घने । माषराशिप्रविष्ट = उडद के समूह मे गिरी हुई। मसीगुटिका = स्याही की टिकिया। प्रनष्ट = विलुप्त हो गई। (२) गुण खलु—'चारुदत्त' भासकृत नाटक मे आया है—कुलपुत्रजनस्य शीलपरितोषोपजीविनी गणिका खल्वहम्।' (३) गर्भदासी — इसका प्रयोग अपशब्द के रूप मे होता है। (४) कामदेवस्य आयतनम् तस्य उद्यानम् तस्मात्। (५) अनुरक्त — यहाँ पर उपदेशन नामक नाट्यालङ्कार है—'शिक्षा स्यादुपदेशनम्।' सा० द०। (६) रत्नम्०—'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्' (७) सस्कृत नाटको मे एव कथाओ मे कामदेव मन्दिर और उद्यान का युवक युवतियो के सन्दर्भ मे वर्णन प्राप्त होता है। (८) काणेली मात यस्य तत्सम्बुद्धौ। काणेली = अविवाहिता (९) वसन्तसेना (स्वगतम्) आश्चर्यम्०—यहा पर आनन्द नामक निर्वहण का अङ्ग प्रदर्शित है—'आनन्दो वाञ्छितागमः।'—सा० द०। (१०) उद्+आ+हृ+लट् = उदाहरति। अप्+राध्+शतृ+तृतीया = अपराध्यता । (११) माषाणाम् राशौ प्रविष्ट । (१२) 'मसीगुटिका इव'—उपमालङ्कार।

आलोकविशाला मे सहसा तिमिरप्रवेशविच्छिन्ना ।
उन्मीलितापि दृष्टिर्निमीलितेवान्धकारेण ॥३३॥

अन्वयः—आलोकविशाला, मे, दृष्टिः, सहसा, तिमिरप्रवेशविच्छिन्ना, [जाता], उन्मीलिता, अपि, [दृष्टिः] अन्धकारेण, निमीलिता, इव, [भवति] ॥३३॥

पदार्थः—आलोकविशाला=प्रकाश मे विस्तृत (दूर तक देखने में समर्थ), मे=मेरी, दृष्टिः=नेत्र, सहसा=अकस्मात्, तिमिरप्रवेशविच्छिन्ना=अन्धकार में प्रविष्ट होने से आच्छन्न, उन्मीलिता=खुली हुई, अपि=भी, अन्धकारेण=अन्धेरे से, निमीलिता=बन्द, इव=भाँति ।

अनुवादः—प्रकाश मे आयत मेरी दृष्टि अकस्मात् अन्धकार में प्रविष्ट होने से आच्छन्न हो गयी है । अनावृत भी मेरे नेत्र अन्धकार से मानो आवृत कर दिये गये हैं ।

संस्कृत टीका—आलोकविशाला=दर्शन महती, मे=मम, दृष्टिः=चक्षुः, सहसा=झटिति, तिमिरप्रवेशविच्छिन्ना=अन्धकारप्रवेशविनष्टा, उन्मीलिता=अवलोकनाय व्यापारिता, अपि, अन्धकारेण=तिमिरेण, निमीलिता=मुद्रिता, इव ।

समास एवं व्याकरण—(१) आलोक०—आलोके विशाला इति । तिमिर०—तिमिरे प्रवेशेन विच्छिन्ना इति अथवा तिमिरस्य प्रवेशेन विच्छिन्ना । (२) आ+लोक्+घञ् । प्रवेश=प्र+विश्+घञ् । विच्छिन्न=वि+छिद्+क्त । उन्मीलिता=उद्+मील्+क्त । निमीलिता = नि+मील्+क्त । दृष्टिः= दृश्+क्तिन् ।

विवृति

(१) श्लोक मे उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । (२) आर्या छन्द है । (३) 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।' उत्प्रेक्षा ॥ 'यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥'

अपि च ।

और भी—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ॥३४॥

अन्वयः—तमः, अङ्गानि, लिम्पति, इव, नभः, अञ्जनम्, वर्षति, इव, दृष्टिः, असत्पुरुषसेवा, इव, विफलताम्, गता ॥३४॥

पदार्थः—तमः=अन्धकार, अङ्गानि=अङ्गो को, लिम्पति=व्याप्त कर रहा

है, इव=भाँति नभ=आकाश, अञ्जनम्=काजल, वर्षति=वर्षा कर रहा है, दृष्टि=नेत्र, असत्पुरुषसेवा=दुष्ट मनुष्यों की सेवा की, इव=भाँति, विफलताम्=निष्फलता, गता=प्राप्त हुई है।

अनुवाद—अन्धकार अङ्गों को अवलिप्त सा कर रहा है, आकाश मानो कज्जल की वर्षा कर रहा है, नेत्र दुर्जन की सेवा के सदृश निष्फल हो रहे हैं।

संस्कृत टीका—तम=अन्धकार, अङ्गानि=शरीरम्, लिम्पति=लेपनम् क्रियते इव, नभ=आकाशम्, अञ्जनम्=कज्जलम्, वर्षति=वृष्टिं करोति, इव, दृष्टि=चक्षु, असत्पुरुषसेवा=दुर्जनपरिचर्या, इव, विफलताम्=फलशून्यताम्, गता=प्राप्ता।

समास एवं व्याकरण— (१) असत्०-असत् पुरुषस्य सेवा। (२) लिम्पति लिम्प्+लट्। वर्षति=वृष्+लट्। अञ्जनम्-अञ्ज्+ल्युट्। दृष्टि-दृश्+क्तिन्। गता-गम्+क्त+टाप्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे पूर्वार्द्ध मे उत्प्रेक्षा और उत्तरार्द्ध मे उपमा अलङ्कार है। (२) माधुर्य गुण है। (३) वैदर्भी रीति है। (४) अनुष्टुप् छन्द है। "श्लोके षष्ठ गुरुज्ञेयम् सर्वत्र लघुपञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तमम् दीर्घमन्ययो।" (५) मम्मट ने काव्यप्रकाश मे इसे संसृष्टि के उदाहरण मे प्रस्तुत किया है। (६) दण्डी ने अपने काव्यादर्श मे उद्धृत करते हुए कहा है कि पूर्वार्द्ध मे कुछ लोगो को उपमा की भ्रान्ति हो गई है। वस्तुत वहाँ उत्प्रेक्षा ही है। (७) प्रो० पिशेल ने इस श्लोक के आधार पर कहा है कि मृच्छकटिक के रचयिता दण्डी है।

शकार—भाव भाव, अन्विष्यामि वसन्तसेनिकाम्। [भावे भावे, अण्णेशामि वशन्तशेणिअम्।]

शकार—भाव ! भाव !! वसन्तसेना को खोज रहा हूँ।

विट—काणेलीमात, अस्ति किंचिच्चिह्न यदुपलक्षयसि।

विट—काणेलीपुत्र ! कुछ चिह्न है जो (वसन्तसेना को) खोज रहे हो ?

शकार—भाव भाव, किमिव। [भावे भावे, किं विअ।]

शकार—भाव ! भाव !! कैसा (चिह्न) ?

विट—भूषणशब्द सौरभ्यानुविद्ध माल्यगन्ध वा।

विट—आभूषणो की खनखनाहट अथवा सुगन्धयुक्त माला की गन्ध ?

शकार—शृणोमि माल्यगन्धम्, अन्धकारपूरितया पुनर्नासिकया न सुव्यक्त पश्यामि भूषणशब्दम्। [शुणामि मल्लगन्धम्, अन्धआलपुलिदाए उण णाशिआए ण शुव्वत्त पेक्खामि भूशणशद्दम्।]

कारेण, न=नहि, दृश्यसे=अवलोक्यसे, तु=किन्तु, हे भीरु !=हे भयशीले। माल्यसमुद्भव =माल्यनिर्गत, अयम्=अनुभवगोचर, गन्ध =सौरभ, त्वाम्, सूचयिष्यति=ज्ञापयिष्यति, च, मुखराणि=वाचालानि, नूपुराणि = अलङ्कार विशेषाणि, च ॥

समास एवं व्याकरण—(१) जल०-जलम् ददाति इति जलद तस्य उदरे य सन्धि तत्र लीना। प्रदोष०—प्रदोषस्य तिमिर तेन। माल्यसमुद्भव =माल्यात समुद्भव यस्य स । (२) जलद-जल+दा+क। सन्धि-सम्+धा+कि। सौदामिनी-सुदामन्+अण्+ङीप् (पृषो०)। दृश्यसे-दृश्+यक+लट्। सूचयिष्यति-सूच्+णिच्+लृट्।

विवृति

(१) सौदामिनी इव मे श्रौती उपमा है। (२) सूचयिष्यति एक क्रिया के कारण तुल्ययोगिता अलङ्कार है। (३) अनुमान अलङ्कार भी कुछ टीकाकार कहते है। (४) आत्म रक्षार्थ अवसरानुकूल कुछ करो यह व्यञ्जना है। (५) वसन्त तिलका छन्द है। (५) मेघदूत—'सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीम्।'

श्रुत वसन्तसेने।

सुना, वसन्तसेना !

वसन्तसेना—(स्वगतम्) श्रुत गृहीत च। (नाट्येन नूपुराण्युत्सार्य माल्यानि चापनीय किंचित्परिक्रम्यहस्तेन परामृश्य) अहो, भित्तिपरामर्शसूचित पक्षद्वारक खल्वेतत्। जानामि च सयोगेन गेहस्य सवृत्त पक्षद्वारकम्। [सुद गहिद अ। अम्मो, भित्तिपरामरिससूइद पक्खदुआरअं क्खु एदम्। जाणामि अ सजोएण गेहस्य सवुद पक्खदुआरअम्।]

वसन्तसेना—(अपने आप) सुना और समझ भी लिया। (अभिनय से नूपुरों को उतार कर और मालाओं का दूर कर, कुछ घूम कर हाथ से छूकर) अहो! दीवार के स्पर्श से ज्ञात हुआ कि यह अवश्य ही बगल का दरवाजा (खिडकी) है और लगता है कि सयोगवश घर का पक्षद्वार [खिडकी] बन्द है।

चारुदत्त—वयस्य, समाप्तजपोऽस्मि। तत्साप्रत गच्छ। मातृभ्यो बलिमुपहर। चारुदत्त—मित्र ! मैं भजन कर चुका हूँ। तो अब जाओ। मातृ-देवियों के लिए बलि (पूजा) ले जाओ।

विदूषक—भो, न गमिष्यामि। [भो, ण गमिस्सम्।]

विदूषक—अजी, मैं नहीं जाऊँगा।

चारुदत्त—धिक्कष्टम्।

चारुदत्त—हा ! खेद है। –

विवृति

(१) गृहतीम्=समझ लिया गया। भित्तिपरामर्शसूचितम्=दीवाल के स्पर्श से ज्ञात होता है। पक्षद्वारकम्=बगल का दरवाजा। सयोगेन=स्पर्श से। सवृतम्=बन्द। (२) भित्ते परामर्शेन सूचितमिति। समाप्त जप येन स =समाप्तजप। (३) सयोगेन का अर्थ कुछ लोगो ने किवाडो के मिलन से और कुछ विद्वानो ने दैवयोग से किया है।

दारिद्र्यात्पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सतिष्ठते
सुस्निग्धा विमुखीभवन्ति सुहृद स्फारीभवन्त्यापद ।
सत्त्व ह्रासमुपैति शीलशशिन कान्ति परिम्लायते
पाप कर्म च यत्परैरपि कृत तत्तस्य सभाव्यते ॥३६॥

अन्वय—दारिद्र्यात्, बान्धवजन, पुरुषस्य वाक्ये, न सन्तिष्ठते, सुस्निग्धा, सुहृद, विमुखीभवन्ति, आपद, स्फारीभवन्ति, सत्वम्, ह्रासम्, उपैति, शीलशशिन, कान्ति, परिम्लायते, च, यत्, पापम्, कर्म, परै अपि कृतम्, तत्, तस्य, सम्भाव्यते ॥३६॥

पदार्थ—दारिद्र्यात्=निर्धनता के कारण, बान्धवजन=बन्धु लोग भी, पुरुषस्य=दरिद्र मनुष्य के, वाक्ये=वचन मे, न, सन्तिष्ठते,=रहते हैं, सुस्निग्धा.=अत्यन्त प्रेमी, सुहृद=मित्र, विमुखीभवन्ति=उदासीन हो जाते हैं, आपद=विपत्तियाँ, स्फारीभवन्ति=अधिक हो जाती है, सत्वम्=बल, ह्रासम्=क्षीण, उपैति=हो जाता है, शीलशशिन=आचार रूपी चन्द्रमा, कान्ति=आभा, परिम्लायते=मलिन हो जाती है, च=और, यत्=जो, पापम्=बुरा, कर्म=कार्य वा, परै=दूसरो से, अपि=भी, कृतम्=किया गया, तत्=पाप कर्म, तस्य=निर्धन का, सम्भाव्यते=समझा जाता है।

अनुवाद—निर्धनता के कारण बन्धुजन भी (दरिद्र) पुरुष के कथन मे नही रहते, अत्यन्त प्रेमी मित्र भी उदासीन हो जाते है तथा विपत्तियाँ बढ जाती है, शक्ति क्षीण हो जाती है, आचार रूपी चन्द्रमा की आभा मलिन पड जाती है और जो बुरा कार्य दूसरो से भी किया गया (है) वह निर्धन का (किया गया) समझा जाता है।

सस्कृत टीका—दारिद्र्यात्=धनाभावात्, बान्धवजन=ज्ञातिजन, पुरुषस्य=दरिद्रस्य, वाक्ये=वचने, न, सन्तिष्ठते=तिष्ठति, सुस्निग्धा=प्रीतिपूरिता, सुहृद=मित्राणि, विमुखीभवन्ति=प्रतिकूलम्, आचरन्ति, आपद=विपत्तय, स्फारीभवन्ति=विस्तारम् गच्छन्ति, सत्वम्=बलम्, ह्रासम्=क्षीणताम्, उपैति=गच्छति, शीलशशिन=आचारचन्द्रस्य, कान्ति=शोभा, परिम्लायते=क्षीणा सञ्जायते, च, यत्, पापम्=निन्दितम् कर्म=चौर्यादिकम्, परै=अन्यै, अपि कृतम्=विहितम्, तत=

पापम्, तस्य=दरिद्रस्य, सम्भाव्यते=आशङ्क्यते ।

समास एव व्याकरण – (१) शील०—शीलम् एव शशी शीलशशी तस्य। (२) दारिद्र्यम्=दरिद्र+ष्यञ् । सन्तिष्ठते—सम्+स्था+लट् । विमुखीभवन्ति-विमुख+च्वि+भू+लट् । स्फारीभवन्ति—स्फार+च्वि+भू+लट् । उपैति - उप+इ+लट् । परिम्लायत-परि+म्लै+यक्+लट् । कृतम्-कृ+क्त । शशी=शश+इन । कान्ति —कम्+क्तिन् । सम्भाव्यते=सम्+भू+णिच्+यक्+लट् ।

विवृति

(१) अप्रस्तुत जन सामान्य से प्रस्तुत चारुदत्त की प्रतीति से अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार तथा कष्ट रूप कार्य के प्रति अनेक कारणो के कथन से समुच्चय अलकार। (२) शीलशशी मे रूपक अलङ्कार है। (३) शार्दूलविक्रीडित छन्द है- सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम् । (४) दारिद्र्य दोषो गुणराशिनाशी। सुभाषित ।

अपि च–

और भी–

सङ्ग नैव हि कश्चिदस्य कुरुते सभापते नादरात्
सम्प्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिना सावज्ञमालोक्यते ।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया
मन्ये निर्धनता प्रकाममपर षष्ठ महापातकम् ॥३७॥

अन्वय – हि, कश्चित्, अस्य, सङ्गम्, न, एव, कुरुते, आदरात्, न सम्भाषते, उत्सवेषु, धनिनाम्, गृहम्, सम्प्राप्त , सावज्ञम्, आलोक्यते, अल्पच्छद , (दरिद्र), लज्जया, महाजनस्य, दूरात्, एव, विहरति, (अत अहम्) मन्ये, निर्धनता, अपरम् प्रकामम्, षष्ठम्, महापातकम् (अस्ति) ॥३७॥

पदार्थ – हि=क्योकि, कश्चित्=कोई भी, अस्य=दरिद्र का, सङ्गम्=ससर्ग न=नही, एव=ही, कुरुते=करता है, आदरात्=आदर से, सम्भाषते=बोलता है, उत्सवेषु=उत्सवो मे, धनिनाम्=धनवानो के, गृहम्=घर को, सम्प्राप्त=पहुँचा हुआ, सावज्ञम्=तिरस्कार के साथ, अवलोक्यते=देखा जाता है, अल्पच्छद= अल्पवस्त्र, लज्जया=लज्जावश, महाजनस्य=धनवान का, दूरात=दूर मे, एव= ही, विहरति=चलता है, मन्ये=मानता है, निर्धनता=दरिद्रता, अपरम्=अतिरिक्त, प्रकामम्=महा, षष्ठम् = छठा,=महापातकम्=भयकर पाप ।

अनुवाद — कोई भी इसकी सगति नही करता है, सम्मान से न बोलता है। उत्सवों म धनवानो के भवनों को गया हुआ तिरस्कार के साथ देखा जाता है। थोड़े वस्त्र होने स लज्जा के कारण सम्भ्रान्त लोगो से दूर ही चलना है । मानता हूँ

दरिद्रता अतिरिक्त बड़ा छठा महापाप है।

संस्कृत टीका:—हि=यतः, कश्चित्=कोऽपि, अस्य=निर्धनस्य, सङ्गम्=सङ्गतिम्, न=नहि, एव, कुरुते=ससज्जते, आदरात्=सम्मानात्, न, सम्भाषते=आलपति, उत्सवेषु=आनन्दावसरेषु, धनिनाम्=विभववताम्, गृहम्=सदनम्, सम्प्राप्तः=समायातः, सावज्ञम्=सावहेलनम्, अवलोक्यते=दृश्यते, अल्पच्छदः=लघुवस्त्रः लज्जया=त्रपया, महाजनस्य=धनवतः, दूरात्, एव, विहरति=चलति, मन्ये=स्वीकरोमि, निर्धनता=दरिद्रता, अपरम्=भिन्नम्, प्रकामम्=अतिरिक्तम्, षष्ठम् महापातकम्=प्रबलपापम्।

समास एवं व्याकरण:– (१) अल्प०–अल्प छदः यस्य सः। (२) सङ्गम्=सञ्ज+घञ्। कुरुते=कृ+लट्। सम्भाषते=सम्+भाष्+लट्। सम्प्राप्तः=सम्+प्र+आप्+क्त। आलोक्यते=आ+लोक्+यक्+लट्। विहरति=वि+हृ+लट्। मन्ये=मन्+लट्।

विवृति

(१) मनु ने पाँच महापातक कहे हैं—"ब्रह्महत्या, सुरापानम्, गुर्वङ्गनागमः। महान्तिपातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥" (२) दरिद्र को छठे पातक के रूप में उत्प्रेक्षा की गई है उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। (३) प्रसाद गुण है। (४) लाटी रीति है। (५) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। (६) कुछ टीकाकारों के कारण अप्रस्तुत प्रशंसा, समुच्चय और काव्यलिङ्ग अलङ्कार भी हैं। (७) कुरुते के साथ आलोक्यते क्रिया विरुद्धवाच्य होने से भग्न प्रक्रमता दोष है। (८) तीसरे चरण में यकार न कहने से न्यूनपदता दोष है।

अपि च।

और भी।

दारिद्र्य ! शोचामि भवन्तमेवमस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा।
विपन्नदेहे मयि मन्दभाग्ये ममेति चिन्ता क्व गमिष्यसि त्वम्॥३८॥

अन्वय–हे दारिद्र्य ! भवन्तम्, एवम्, शोचामि, [यत्], अस्मच्छरीरे, सुहृद्, इति, उषित्वा, मयि, मन्दभाग्ये, विपन्नदेहे, [सति], त्वम्, क्व, गमिष्यसि, इति, मम, चिन्ता (अस्ति)॥३८॥

पदार्थ—हे दारिद्र्य ! हे निर्धनता ! भवन्तम्=तुमको, एवम्=इस प्रकार शोचामि=दुखी होता हूँ, अस्मच्छरीरे=मेरी देह में, सुहृद्=मित्र, उषित्वा=वास करके, मयि=मुझ मन्दभाग्ये=भाग्यहीन, विपन्नदेहे=मरने पर, त्वम्=तुम, क्व=कहाँ, गमिष्यसि=जाओगी, मम=मेरी, चिन्ता=दुख।

अनुवाद – हे निर्धनता ! तुम्हारे (विषय मे) दु खी हो रहा हूँ कि मेरे शरीर मे मित्र की भाँति वास करके, मुझ भाग्यहीन के मर जाने पर तुम कहाँ जाओगी, यह मुझे चिन्ता है ।

सस्कृत टीका—हे दारिद्रय ! हे निर्धनते ! भवन्तम्=त्वाम्, एवम्=इत्थम्, शोचामि=दु खी भवामि, अस्मच्छरीरे=ममकलेवरे, सुहृद्=मित्रम्, इति, उषित्वा =वासम् विधाय, मयि=चारुदत्ते, मन्दभाग्ये=भाग्यहीने, विपन्नदेहे=मृते, त्वम्= भवान्, क्व=कुत्र, गमिष्यसि=यास्यसि, इति=ईदृशी, मम=चारुदत्तस्य, चिन्ता= भावना ।

समास एव व्याकरण—(१) विपन्नदेहे—विपन्न देह यस्य तस्मिन् । (२) शोचामि—शुच्+लट् ।'विपन्न—वि+पद्+क्त । उषित्वा=वस्+क्त्वा,गमिष्यसि= गम्+लृट् ।

विवृति

(१) चारुदत्त के औदार्य गुण की अभिव्यञ्जना होती है । (२) यहा वस्तु ध्वनि है । (३) दारिद्र्य नपु सक के लिए भवन्तम् पुल्लिङ्ग का प्रयोग च्युतसस्कार दोष है । (४) इन्द्रवज्रा और उपेन्द्र वज्रा के मेल से उपजाति छन्द है "अनन्तरोदी-रित लक्ष्मभाजौ पादौयदीयावुपजातयस्ताः ।"

विदूषक—(सवैलक्ष्यम्) भो वयस्य, यदि मया गन्तव्यम्, तदेषापि मम सहा-यिनी रदनिका भवतु । [भो वअस्स, जइ मए गन्तव्वम्, ता एसा वि मे सहाइणी रदणिआ भोदु] ।

विदूषक—(लज्जा के साथ) हे मित्र ! यदि मुझे जाना चाहिये, तो यह रद-निका भी मरी महायिका होवे ।

चारुदत्त —रदनिके, मैत्रेयमनुगच्छ ।

चारुदत्त—रदनिके ! मैत्रेय का अनुगमन करो ।

चेटी—यदार्य आज्ञापयति । [ज अज्जा आणवेदि ।]

चेटी—जो आर्य आज्ञा देते हैं !

विदूषक —भवति रदनिके, गृहाण बलिं प्रदीप च । अहमपावृत पक्षद्वारक करोमि । [भोदि रदणिए गेण्ह बलि पदीव अ । अह अपावुद पक्खदुआरअ करोमि । (तथा करोति ।)

विदूषक—ऐ रदनिके ! बलि और दीपक को ले लो । मैं पक्षद्वार (खिड़की) खोलता हूँ । (वैसा करता है ।)

वसन्तसेना—ममाभ्युपपत्तिनिमित्तमिवापावृत पक्षद्वारकम् । तद्यावत्प्रविशामि । (दृष्ट्वा) हा धिक् हा धिक् । कथ प्रदीप. । [मम अब्भुववत्तिणिमित्त विअ अवावुद

पक्खदुआरअम् । ता जाव पविसामि । हद्धी हद्धी । कध पदीवो ।] (पटान्तेन निर्वाप्य प्रविष्टा ।)

वसन्तसेना— मेरे पर अनुकम्पा करने के लिये मानो बगल का द्वार (खिडकी) खुला है तो जब तक प्रवेश करती हूँ । (देख कर) खेद है ! खेद है ! क्या दीपक है ? (अञ्चल से दीप बुझा कर प्रविष्ट हो जाती है)।

चारुदत्त —मैत्रेय, किमेतत् ।

चारुदत्त—मैत्रेय ! यह क्या ?

विदूषक —अपावृतपक्षद्वारेण पिण्डीभूतेन वातेन निर्वापित प्रदीप भवति रदनिके, निष्काम त्व पक्षद्वारकेण। अहमप्यभ्यन्तरचतु शालातः प्रदीप प्रज्वाल्यागच्छामि। [अवावुदपक्खदुआरएण पिण्डीभूदेण वादेण णिव्वाविदो पदीवो। भोदि रदणिए, णिक्कम तुम पक्खदुआरएण । अहपि अब्भन्तरचदुस्सालादो पदीव पज्जालिअ आअच्छामि ।] (इति निष्क्रान्त ।)

विदूषक—पक्षद्वार के खुलने के कारण एकत्रित पवन के वेग से दीपक बुझ गया है। रदनिके ! तुम पक्षद्वार से बाहर निकलो ! मैं भी अन्दर के घर से दीपक जलाकर आता हूँ। (निकल जाता है)।

शकार —भाव भाव, अन्वेषयामि वसन्तसेनिकाम्। [भावे भावे, अण्णेशामि वशन्तशेणिअम् ।]

शकार—भाव ! भाव !! वसन्तसेना को ढूँढता हूँ !

विट —अन्विष्यतामन्विष्यताम् ।

विट—ढूँढो ! ढूँढो !

शकार—(तथाकृत्वा)भाव भाव,गृहीता गृहीता।[भावे भावे, गहिदा गहिदा ।]

शकार—(वैसा करके) भाव ! भाव !! पकड ली ! पकड ली।

विट —मूर्ख, नन्वहम् ।

विट—मूर्ख ! (यह तो) मैं हूँ !

शकार —इतस्तावद्भूत्वा एकान्ते भावस्तिष्ठतु। (पुनरन्विष्य चेट गृहीत्वा) भाव भाव, गृहीता गृहीता। [इदो दाव भविअ एअन्ते भावे चिट्ठदु। भावे भावे, गहिदा गहिदा ।]

शकार—तो आप इधर होकर एकान्त म खडे हो जायँ। (फिर खोजकर चेट को पकड कर) भाव ! भाव !! पकड ली ! पकड ली !

चेट —भट्टारक, चेटोहम्। [भट्टके, चेडे हगे ।]

चेट—स्वामिन् ! मैं (तो) 'चेट' हूँ।

शकार —इतोभावः, इतश्चेट । भावश्चेट, चेटो भाव । युवा तावदेकान्ते तिष्ठतम् ।(पुनरन्विष्य रदनिका, केशेषु गृहीत्वा)भाव भाव,साम्प्रत गृहीता गृहीता वसन्त-

सेनिका । [इदो भावे, इदो चेडे । भावे चडे, चेडे भावे । तुम्हे दाव एअन्ते चिट्ठ । भावे भावे, शपद गहिदा गहिदा वशन्तशेणिआ ।]

शकार—इधर 'भाव' (विट), इधर 'चेट' । 'भाव' ! 'चेट' ! 'चेट !' 'भाव' ! तुम दोनो तो एकान्त मे खड़े रहो ! (फिर ढूँढकर 'रदनिका' के केशो को पकड़ कर) भाव ! भाव !! अब वसन्तसेना पकड़ ली !

विवृति

(१) सवैलक्ष्यम्=लज्जापूर्वक । अपावृतम्=खुला हुआ । अभ्युपपत्तिनिमित्तम्=दया करने के लिए । पिण्डीभूतेन=एकत्रित हुए । अपावृतपक्षद्वारेण=खुले दरवाजे से । वातेन=हवा से । निर्वापित=बुझा दिया गया । (२) विलक्ष्यस्य भाव वैलक्ष्यम् तेन सहितम्सवैलक्ष्यम् यथा स्यात् तथा । अभ्युपपत्तेः निमित्तम् । 'अभ्युपपत्तिरनुग्रह' इत्यमरः । अपावृतम् च तत्पक्षद्वारम् तेन ।

अंधआले पलाअंती मल्लगंधेण शूइदा ।
केशविंदे पलामिश्टा चाणक्केणेव्व दोव्वदी ॥३९॥
[अन्धकारे पलायमाना माल्यगन्धेन सूचिता ।
केशवृन्दे परामृष्टा चाणक्येनेव द्रौपदी ॥]

अन्वय—अन्धकारे, पलायमाना, माल्यगन्धेन सूचिता, [वसन्तसेना], चाणक्येन, द्रौपदी, इव, केशवृन्दे, परामृष्टा ॥३९॥

पदार्थ—अन्धकारे=अन्धेरे मे, पलायमाना=भागती हुई, माल्यगन्धेन=माला की सुगन्ध से, सूचिता=पहचानी गयी, चाणक्येन=चाणक्य से, द्रौपदी=पाञ्चाली, इव=भाँति, केशवृन्दे=केशो मे, परामृष्टा=पकड़ ली गई ।

अनुवाद—अन्धेरे मे भागती हुई एव माला की सुगन्ध से पहचान ली गई (वसन्तसेना) चाणक्य के द्वारा द्रौपदी की भाँति (मेरे द्वारा) केशो से पकड़ ली गई ।

संस्कृत टीका—अन्धकारे=तमसि, पलायमाना=धावन्ती, माल्यगन्धेन=सुकसौरभेण, सूचिता=सकेतिता, चाणक्येन=कौटिल्येन, द्रौपदी=द्रुपदपुत्री, इव, केशवृन्दे=कचकलापे, परामृष्टा=वृता ।

समास एवं व्याकरण—(१) माल्यगन्धेन—माल्यस्य गन्ध माल्यगन्धः तेन । (२)पलायमाना=परा+अय्+शानच्+टाप् । सूचिता=सूच+क्त । परामृष्टा—परा+मृष्+क्त+टाप् । द्रौपदी=द्रुपद+अण्+ङीप् ।

विवृति

(१) चाणक्येन—चाणक्य अभी कलियुग का व्यक्ति है जो कि चन्द्रगुप्त

४०० ई० पू० का मन्त्री था। जबकि द्रौपदी द्वापर युग की है दोनो म समय का बहुत अन्तर है यह उपमा व्याघात है जो कि शकार जैसे मूर्ख के लिए क्षन्तव्य है। (२) द्रौपदी—'अहल्या द्रौपदी सीता तारा मन्दोदरी तथा। पञ्चकन्या स्मरेन्नित्य महापातकनाशिनी।' (३) अनुष्टुप् छन्द है। (४) 'श्लोके षष्ठ गुरुज्ञेय सर्वत्र लघु-पञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तमम्दीर्घमन्ययो।'

विट —

विट—

एषासि वयसो दर्पात्कुलपुत्रानुसारिणी।
केशेषु कुसुमाढ्येषु सेवितव्येषु कर्षिता ॥४०॥

अन्वय—वयस, दर्पात्, कुलपुत्रानुसारिणी, एषा, (त्वम्), पुष्पाढ्येषु, सेवितव्येषु, केशेषु, कर्षिता, असि ॥४०॥

पदार्थ—वयस—आयु के, दर्पात्=अभिमान से, कुलपुत्रानुसारिणी=कुलीन (सु) पुत्र का अनुसरण करने वाली, एषा=यह, पुष्पाढ्येषु=सुमनो से सजे हुये, सेवितव्येषु=सेवन के योग्य, केशेषु=बालो म, कर्षिता=खीची जा रही, असि=हो।

अनुवाद—तरुणाई के अभिमान से कुलीन सुपुत्र चारुदत्त का अनुसरण करने वाली यह तुम सुमन सुसज्जित एव सेवन योग्य केशो से (पकडी गई) खीची जा रही हो।

सस्कृत टीका—वयस—अवस्थाया, दर्पात्=अहङ्कारात्, कुलपुत्रानुसारिणी=सद् वशमुतानुगमनशीला, एषा=वसन्तसेना, पुष्पाढ्येषु=कुसुमयुक्तेषु, केशेषु=कचेषु, कर्षिता=हठात् आकृष्टा, असि।

समास एव व्याकरण—(१) कुल०—कुलस्य पुत्रम् कुलपुत्रम् तमनुसरतीति। पुष्पाढ्येषु=पुष्पस्य आढ्यषु (२) सेवितव्य—सेव+तव्यत्। असि=अस्+लट्। अनुसारिणी=अनु+सृ+णिनि+ङीप्।

विवृति

(१) अनुष्टुप् छन्द है। (२) अनुप्रास अलङ्कार है।

शकार—

शकार—

एशाशि वाशू शिलशि गाहीदा केशेशु बालेशु शिलोलुहेशु।
अक्कोश विक्कोश लवहिचड शभु शिव शकलमीशल वा ॥४१॥
[एषासि वासु शिरसि गृहीता केशेषु बालेषु शिरोरुहेषु।
आक्रोश विक्रोश लपाधिचण्ड शभु शिव शकरमीश्वर वा ॥]

अन्वय —हे वासु ! एपा, (त्वम्) शिरसि, केशेषु, बालेषु, शिरोरुहेषु, गृहीता, असि, (सम्प्रति), आक्रोश, विक्रोश, वा, शम्भुम्, शिवम्, शङ्करम्, ईश्वरम्, अधिचण्डम्, लप ॥४१॥

पदार्थ —हे वासु ! = हे बाले ! एषा = यह, शिरसि = शिर मे, केशेषु = बालो म, बालेषु = कचो मे, शिरोरुहेषु = केशो मे, गृहीता = पकडी गई, असि = हो, आक्रोश = अपशब्द कहो, विक्रोश = चिल्लाओ, वा = अथवा, शम्भुम् = शङ्कर को, शिवम् = महादेव को, शङ्करम् = उमापति को, ईश्वरम् = महादेव को, अधिचण्डम् = बलपूर्वक, लप = पुकारो ।

अनुवाद —हे बाले ! यह (तुम) शिर के बालो, कचो, केशो मे पकडी गई हो, अपशब्द कहो, चिल्लाओ अथवा शङ्कर, महादेव, उमापति, शिव को बलपूर्वक पुकारो ।

सस्कृत टीका—हे वासु ! = हे बाले ! एपा = वसन्तसेना, शिरसि = मूर्धनि, केशेषु = कचेषु, बालेषु = कुन्तलेषु शिरोरुहेषु = केशेषु, गृहीता = परामृष्टा असि, आक्रोश = शापदेहि, विक्रोश = आह्वय, वा, शम्भुम = शिवम, शिवम् = शङ्करम्, शङ्करम् = महादवम्, ईश्वरम् = परमेश्वरम् = अधिचण्डम = भीषणम्, लप = विलाप कुरु ।

समास एव व्याकरण–(१) शिरोरुहेषु–शिरसि रुहा, तेष । (२) गृहीता = ग्रह् + क्त + टाप् । असि—अस् + लट् । आक्रोश आ + क्रुश् + लोट् । विक्रोश–वि + क्रुश् + लोट् । लप–लप् + लोट् । शङ्करम–शम + कृ + अच् । शम्भुम्—शम् + भू + डु । शिवम् = शो + वन् ।

विवृति

(१) 'एकोदेव केशवो वा शिवो वा ।'–भर्तृहरि । (२) 'बाला स्यात् वासु ।' इत्यमर । (३) 'चिकुर कुन्तलो बाल कच केश शिरोरुह ।' इत्यमर. । (४) इन्द्र वज्रा छन्द है—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौग ।' (५) शकार की मूर्खता के कारण पुनरुक्तियाँ क्षम्य हैं । (६) चण्डम क्रिया–विशेषण है ।

रदनिका–(सभयम्) किमार्यमिश्रैर्व्यवसितम् । [कि अज्जमिस्सेहि ववसिदम् ।]

रदनिका–(भयपूर्वक) (आप) सम्माननीयो न (यह) क्या किया ?

विट–कामेलीमात , अन्य एवैष स्वरसयाग ।

विट—काणेलीपुत्र ! यह तो दूसरा ही शब्द है ।

शकार —भाव भाव, यथा दधिउरपरिपुष्याया मार्जारिकाया स्वरपरिवृत्ति भवति, तथा दास्या पुत्र्या स्वरपरिवृत्ति कृता । [भाव भाव, जधा दहियर—पति पुदाए मज्जालिए शलपलिवत्ते होदि, तथा दाशीए धीए शल–पलिवत्ते कडे ।]

शकार—भाव ! भाव ! ! जिस प्रकार दही की मलाई की अभिलाषिणी बिल्ली के स्वर म परिवर्तन हो जाता है, उसी प्रकार दासी की पुत्री (दुष्ट वसन्तसेना) न स्वर बदल लिया है।

विट—कथ स्वरपरिवर्त कृत । अहा चित्रम् । अथवा किमत्र चित्रम ।

विट—स्वर-परिवर्तन कैसे कर लिया ? अहो आश्चर्य है ! या इसम आश्चर्य ही क्या है ?

विवृति

(१) आर्य मिश्रं =मान्यवरो स । व्यवसितम्=किया गया । स्वरसयोग= ध्वनि । स्वरपरिवृत्ति =स्वर म परिवर्तन (२) आर्याश्चे मिश्रा तै अथवा आर्येषु मिश्रा तै । (३) दधि सरपरिलुब्धाया=दही के ऊपर के मक्खन की अभिलाषिणी । दध्न सर. दधिसर तस्मिन् परिलुब्धाया । (४) मार्जारिकाया =बिल्ली के । (५) व्यवसितम्-वि+ अव्+सो+क्त ।

इय रङ्गप्रवेशेन कलाना चोपशिक्षया ।
वञ्चनापण्डितत्वेन स्वरनैपुण्यमाश्रिता ॥४२॥

अन्वय —इयम्, रङ्गप्रवेशेन, कलानाम्, उपशिक्षया, वञ्चनापण्डितत्वेन, च, स्वरनैपुण्यम्, आश्रिता ॥४२॥

पदार्थ –इयम्=वसन्तसना, रङ्गप्रवशेन=नाट्यशाला मे प्रवेश से, कलानाम् =कलाओ की, उपशिक्षया=शिक्षा के द्वारा, वञ्चनापण्डितत्वेन=ठगने म निपुणता प्राप्त कर लेन मे, च=और, स्वरनैपुण्यम=स्वर सम्बन्धी दक्षता, आश्रिता= प्राप्त कर ली ।

अनुवाद —यह वसन्तसेना नाट्यशाला म प्रवेश तथा कलाओ के अभ्यास के कारण एव ठगने म दक्षता प्राप्त कर लने मे स्वर सम्बन्धी कौशल नी प्राप्त कर चुकी है ।

सस्कृत टीका–इय =वसन्तसेना, रङ्गप्रवेशेन=नाट्यशाला प्रवेशेन, कलानाम्=विविध भङ्गीनाम्, उपशिक्षया=अभ्यासेन, वञ्चनापण्डितत्वेन= छलविद्या निपुणेन, स्वरनैपुण्यम्=ध्वनि परिवर्तन पटुताम्, आश्रिता=प्राप्ता ।

समास एव व्याकरण-(१) रङ्गप्रवशेन=रङ्गे प्रवेश रङ्गप्रवेश तेन । वञ्चना०-वञ्चनाम् पण्डितत्वम् तेन । (२) नैपुण्यम्-निपुण+ष्यञ् । आश्रिता— आ+श्रि+क्त+टाप् । कला-कल्+कच्+टाप् । प्रवेश=प्र+विश्+घञ् । रङ्ग–रञ्ज्+घञ् ।

विवृति

(१) शाकुन्तल—'अहा रागवद्धचित्तवृत्ति आलिखित इव सर्वतोरङ्ग ।'

(२) कला—साठ कलायें शास्त्रों में कही गई है ये सङ्गीत, नृत्य आदि ललित कलायें हैं, चन्द्रमा की षोडश कला कही गई है। (३) पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (४) कुछ टीकाकार समुच्चय अलङ्कार भी कहते है। (५) अनुष्टुप् छन्द है।

(प्रविश्य ।)

(प्रवेश कर)

विदूषक—आश्चर्यं भो, प्रदोषमन्दमारुतेन पशुवन्धोपनीतस्येव छागलस्य हृदयम्, फुरफुरायते प्रदीप.। (उपसृत्य रदनिका दृष्ट्वा) भो रदनिके। [ही ही भो·, पदोसमन्द मारुदेण पशुबन्धोवणीदस्स विअ छागलस्य हिअअम् फुरफुराअदि पदीवो। भो रदणिए।]

विदूषक—अरे आश्चर्य है! रात्रि के प्रथम पहर की मन्द-मन्द समीर से पशुओ के वध्यस्थान पर ले जाये गये बकरे के हृदय की भांति, दीपक फुर-फुर कर (कांप) रहा है! (समीप आकर रदनिका को देख कर) हे रदनिके!

शकार.—भाव भाव, मनुष्यो मनुष्य। [भावे भावे, मणुश्शे मणुश्शे।]

शकार—भाव! भाव! मनुष्य! मनुष्य!

विदूषक – युक्त नेदम्, सदृश नेदम्, यदार्यचारदत्तस्य दरिद्रतया सांप्रत परपुरुषा गेह प्रविशन्ति। [जुत्त णेदम् सरिस णेदम्, ज अज्जचारुदत्तस्य दलिद्ददाए सपद परपुरिसा गेह पविशन्ति।]

विदूषक-यह उचित नही, यह योग्य नही कि आर्य चारुदत्त की निर्धनता के कारण आजकल दूसरे लोग घर मे प्रवेश करते हैं।

रदनिका—आर्य मैत्रेय, प्रेक्षस्व मे परिभवम्। [अज्ज मित्तेअ, पेक्ख परिहवम्।]

रदनिका—आर्य मैत्रेय, ! मेरा अपमान (तो) देखो!

विदूषक: - किं तव परिभवः। अथवास्माकम् [किं तव परिहवो। आदु अह्माणम्।]

विदूषक—क्या तुम्हारा अपमान अथवा हमारा?

रदनिका—ननु युष्माकमेव। [ण तुह्माण ज्जेव।]

रदनिका—तुम्हारा ही।

विदूषक –किमय बलात्कारः [किं एसो बलक्कारो।]

विदूषक—क्या यह बलात्कार?

रदनिका—अथ किम्। [अध इ।]

रदनिका—और क्या?

विदूषकः—सत्यम् । (सच्चम्)

विदूषक–सच ?

रदनिका—सत्यम् । [सच्चम् ।]

रदनिका—सच ।

विदूषक.—(सक्रोध दण्डकाष्ठमुद्यम्य) मा तावत् । भोः स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावच्चण्डो भवति, किं पुनरहं ब्राह्मणः । तदेतेनास्मादृशजनभागधेयकुटिलेन दण्ड-काष्ठेन दुष्टस्येव शुष्कवेणुकस्य मस्तकं ते प्रहारैः कुट्टयिष्यामि । मा दाव । भो, सकेगे हे कुक्कुरो वि दाव चण्डो भोदि, किं उण अहं बह्मणो । ता एदिणा अह्मारिसज-णभाअधेअकुडिलेण दण्डकट्ठेण दुट्टस्सविअ सुक्खाण वेणुअस्स मत्थअं दे पहारेहिं कुट्टइस्सम् ।]

विदूषक—(क्रोधपूर्वक लकड़ी का डण्डा तानकर) ऐसा मत कहो ! अरे ! "अपने घर मे तो कुत्ता भी घोर हो जाता है", फिर मैं ब्राह्मण तो क्या ? इसलिए इस हमारे भाग्य जैसे टेढ़े-मेढे काठ के डण्डे से विकृत (दुष्ट) सूखे बाँस के समान तेरे मस्तक को प्रहारो से चकनाचूर कर डालूँगा ।

विटः—महाब्राह्मण, मर्षय मर्षय ।

विट—महाब्राह्मण ! क्षमा करो ! क्षमा करो !

विदूषक :— (विटं दृष्ट्वा) नात्र एषोऽपराध्यति । (शकारं दृष्ट्वा) एष खल्व-त्रापराध्यति । अरे रे राजश्यालक संस्थानक दुर्जन दुर्मनुष्य, युक्त नेदम् । यद्यपि नाम तत्रभवानार्यचारुदत्तो दरिद्रः संवृत्तः । तत्किं तस्य गुणैर्नालंकृतोज्जयिनी । येन तस्य गृहं प्रविश्य परिजनस्येदृश उपमर्दः क्रियते । [ण एत्थ एसो अवरज्झदि । एसो क्खु एत्थ अवरज्झदि । अरे रे राअसालअ सट्ठाणअ दुज्जण दुम्मणुस्स, जुत्तं णेदम् । जइ वि णाम तत्तभवं अज्जचारुदत्तो दलिद्दो संवुत्तो, ता किं तस्स गुणेहिं ण अलंकिदा उज्जइणी ।जेण तस्स गेहं पविसिअपरिअणस्स ईरिसो उवमद्दो करीअदि ।]

विदूषक–(विट को देखकर) यह अपराधकर्ता नहीं है । (शकार को देख कर) निश्चय ही यह अपराधी है । अरे ! राजश्यालक ! संस्थानक ! दुष्ट ! नीच मनुष्य ! यह उचित नही है । यद्यपि पूजनीय आर्य चारुदत्त निर्धन हो गये हैं तथापि क्या उनके गुणो से उज्जयिनी विभूषित नही है ? जिससे उनके घर में घुस कर सेवको का इस प्रकार अपमान कर रहा है ?

विवृति

(१) 'प्रदोष मन्दमारुतेन—रात्रि के प्रथम पहर की धीमी वायु से । पशुबन्धो पनीतस्य=बलिपशु बाँध ने के खूँटे के पास ले जाये गये । छागलस्य=बकरे के । फुरफु-फुरायते-काँप रहा है (फुर-फुर कर रहा है)। परिभवः=अनादर । चण्ड=भयङ्कर ।

सदृशम्+योग्य । दरिद्रतया=निर्धनता से । अस्माद्भाग्यभागधेयकुटिलेन= हम लोगों के भाग्य के समान वक्र । दुष्टस्य=दोषयुक्त । शुष्कवेणुकस्य=सूखे हुए बाँस के । कुट्टयिष्यामि=कूट डालूँगा । महाब्राह्मण=अधम ब्राह्मण । (२) 'सल्ये तैले तथा मानसे वैद्ये ज्योतिषके द्विजे । यात्रायां पथि—निद्रायां महच्छब्दो न दीयते ।' (३) सस्थानक शकार का नाम है । (४) उपमर्द =अनादर । (५) पशुः बध्यते अत्र इति पशुबन्ध तस्य उपनीतस्य (६) अस्माद्‌राजनानां भागधेयवत् कुटिलेन । (७) 'असिजीवी मसीजीवी देवलोग्रामयाचक । धावक पाचकश्चैतान् षड्विप्रान् नाभिवादयेत् । (८) विदूषक की उक्ति कुट्टयिष्यामि में विमर्श सन्धि का सफेट नामक अंग है-'सफेटो रोषमाषणात् ।' (९) फुरफुरायते खटखटायते की भाँति प्रयोग है।

मा दुग्गदो त्ति परिहवो णत्थि कदन्तस्स दुग्गदो णाम ।

चारित्तेण विहीणो अड्ढो वि अ दुग्गदो होइ ॥४३॥

[मा दुर्गत इति परिभवो नास्ति कृतान्तस्य दुर्गतो नाम ।

चारित्र्येण विहीन आढ्योऽपि च दुर्गतो भवति ॥]

अन्वयः—(अयम्) दुर्गत, इति, परिभव, मा, (कर्तव्य), कृतान्तस्य (समीप), दुर्गत, न, अस्ति, नाम च चारित्र्येण, विहीन, आढ्य, अपि, दुर्गत भवति ॥४३॥

पदार्थ —=दुगत =निर्धन, इति=इसलिए,परिभव =तिरस्कार, मा=नहीं, कृतान्तस्य=यमराज क दुर्गत =निर्धन, न=नही, अस्ति=है, नाम=सम्भवत, च=और, चारित्र्यण=चरित्र से, विहीन =रहित, आढ्य =धनिक, अपि=भी, दुर्गत =निर्धन, भवति—होता है ।

अनुवाद —निर्धन है इसलिए तिरस्कार न करो, यमराज के (निकट मे) निर्धन (कोई) नहीं है तथा सदाचार स रहित धनवान भी दुर्दशा को प्राप्त होता है ।

सस्कृत टोका—दुर्गत =निर्धन, इति=अस्मात् हेतो, परिभव =तिरस्कार, मा =न, कृतान्तस्य=यमराजस्य, दुर्गत, न, अस्ति, नाम, च,चारित्र्यण=शिष्टाचारेण, विहीन =शून्य, आढ्यः=धनिक, अपि, दुगत =दरिद्र, भवति=जायते ।

समास एव व्याकरण—(१) दुर्गत =दुर्+गम्+क्त । परिभव =परि+भू+अप् । अस्ति+अस्+लट् । विहीन =वि+हा+क्त । भवति=भू+लट् । चारित्र्य—चरित्र=ष्यञ् । आढ्य—आ+ध्यै+क (पृषो०)

विवृति

(१) 'आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।'—भग० (२) नाम सम्भावना अर्थ म अव्यय है (३) पद्य म सामर्थ्यलिङ्ग और अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार

है। (४) गाथा छन्द है। (५) आर्या छन्द इसलिए नही है कि प्रथम पाद मे १३ मात्रायें आ जाती हैं गाथा का लक्षण है—'विषमाक्षरपादत्वात् पादौ रसमञ्जसमधर्मवत्। यत् छन्दसि नोक्तमत्त गाथेति तत् सूरिभि कथितम्।' (६) पद्य मे शकार की दुष्टता तथा राजा पालक का बल दोनो दुर्गति को प्राप्त होंगे यह वस्तु—व्यञ्जना है।

विट—(सवैलक्ष्यम्।) महाब्राह्मण, मर्षय मर्षय।अन्यजनशङ्कया खल्विदमनुष्ठितम्, न दर्पात्। पश्य।

विट—(लज्जापूर्वक) महाब्राह्मण! क्षमा करो! क्षमा करो! दूसरे व्यक्ति (वसन्तसेना) के भ्रम से ऐसा अनुचित कार्य हो गया, अहङ्कार से नही।

देखो—सकामान्विष्यतेऽस्माभि —

हमारे द्वारा एक कामासक्ता (युवती) खोजी जा रही है।

विदूषक—किमियम्। [किं इअम।]

विदूषक—क्या यह (रदनिका)?

विट—शान्त पापम्।

विट—पाप शान्त हो।

काचित्स्वाधीनयौवना।

सा नष्टा शङ्कया तस्या प्राप्तेय शीलवञ्चना ॥४४॥

अन्वय—अस्माभि, सकामा, स्वाधीनयौवना, काचित्, अन्विष्यते, सा, नष्टा, तस्या, शङ्कया, इयम्, शीलवञ्चना, प्राप्ता ॥४४॥

पदार्थ—अस्माभि =हम लोगो से, सकामा=कामासक्त, स्वाधीनयौवना=अपने यौवन की स्वामिनी, काचित्=कोई युवती, अन्विष्यते=खोजी जा रही है, सा=वह, नष्टा=अदृश हो गई, तस्या =उसी की, शङ्कया=भ्रान्ति से इयम्=यह, शीलवञ्चना=चारित्रिक पतन, प्राप्ता=हुआ।

अनुवाद —हम लोगों से कामासक्त एव अपने यौवन की स्वामिनी कोई तरुणी खोजी जा रही है, वह अदृश्य हो गई उसकी भ्रान्ति से यह चारित्रिक धोखा हो गया।

संस्कृत टीका—अस्माभि =शकारादिभि, सकामा=कामासक्ता, स्वाधीनयौवना=स्वेच्छानुचरितयौवना, काचित्, अन्विष्यते=निभाल्यते, सा = रमणी, नष्टा=पलायिता, तस्या =रमण्या, शङ्कया=भ्रान्त्या, इयम्=प्रस्तुत, शीलवञ्चना=सदाचारप्रतारणा, प्राप्ता=सञ्जाता।

समास एव व्याकरण—(१) स्वाधीन०—स्वाधीनम् यौवनम् यस्या सा। शील०—शीलस्य वञ्चना शीलवञ्चना। (२) अन्विष्यते—अनु+इष्+यक्+लट् वञ्चना—वञ्च्+ल्युट्। टाप्। नष्टा—नश्+क्त+टाप्। प्राप्ता—प्र+आप्+क्त+टाप्।

विवृति

(१) पथ्यावक्त्र छन्द है–'युजोर्जेन सरित् भर्तुः । पथ्यावक्त्रम् प्रकीर्तितम्।' (२) हम निर्दोष है, यह व्यञ्जना होती है। (३) 'वञ्चना परिहर्तव्या बहुदोषा हि शर्वरी।' मृच्छ०।

सर्वथा इदमनुनयसर्वस्व गृह्यताम्। (इति खड्गमुत्सृज्य कृताञ्जलिः पादयो पतति।

सर्वथा इस विनय के सर्वस्वभूत (प्रणाम को) स्वीकार करिये! (ऐसा कहकर तलवार त्यागकर, हाथ जोडकर पैरो पर गिर पडता है।)

विदूषक :—सत्पुरुष, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। अजानता मया त्वमुपालब्ध। साम्प्रत पुनर्जानन्ननुनयामि।[सपुरिस, उट्ठेहि उट्ठेहि। अआणन्तेण मए तुम उवालद्धे। सपद उण जाणन्तो अणुणेमि।]

विदूषक—हे सज्जन! उठो, उठो। अनजाने मे ही मैंने तुम्हे उपालम्भ दिया है। इस समय तो (निर्दोष) जानकर (आपसे) विनय करता हूँ।

विट—ननु भवानेवात्रानुनेय। तदुत्तिष्ठामि समयत।

विट—यहाँ तो आप ही विनय के पात्र हैं। तो एक शर्त पर उठता हूँ।

विदूषकः—भणतु भवान्। [भणादु भवम्।]

विदूषक—आप कहे।

विट—यदीम वृत्तान्तमार्यचारुदत्तस्य नाख्यास्यसि।

विट—यदि इस घटना को "आर्य चारुदत्त" से नही कहेगे।

विदूषक -न कथयिष्यामि। [न कधइस्सम्।]

विदूषक—नही कहूँगा।

विवृति

(१) अनुनयसर्वस्वम्=सबसे बड़ी मनुहार। उपालब्ध=उलाहना। अनुनयामि=मनाता हूँ। अनुनेय=मनाने योग्य। समयत=शर्त से। (२) अनुनयस्य-सर्वस्वम् (३) समयत–'समय सत्यथाचार काल सिद्धान्तसम्पद.।' इति विश्व। 'क्रियाबन्ध' इति पृथ्वीधर। समयत। इति केचित्। (४) अनुनयामि—अनु+नी+लट्।

> एष ते प्रणयो विप्र! शिरसा धार्यं ते मया।
> गुण शस्त्रैर्वयं येन शस्त्रवन्तोऽपि निर्जिताः॥४५॥

अन्वय—हे विप्र! एष, ते, प्रणय, मया, शिरसा, धार्यते, येन शस्त्रवन्त, अपि, वयम्, गुणशस्त्रैः, निर्जिताः॥ ४५॥

पदार्थ.—हे विप्र!=हे ब्राह्मण! एष=यह, ते=तुम्हारा, प्रणय=प्रेम, मया=मुझसे, शिरसा=मस्तक से, धार्यते=धारण किया जाता है, येन=जिससे

शस्त्रवन्तः=शस्त्र युक्त, अपि=भी, वयम्=हम, गुणशस्त्रैः=गुण रूपी आयुधो से, निर्जिता=पराजित कर दिये गये हैं।

अनुवाद —हे द्विज! यह तुम्हारा प्रेम मैं शिर से धारण करता हूँ। जिससे कि शस्त्रधारी भी हम लोग (आपके) गुण रूपी आयुधो से हरा दिये गये।

संस्कृत टीका —हे विप्र!=हे द्विज!, एष=अयम्, ते=तव, प्रणय=प्रीति, मया=विटेन, शिरसा=मस्तकेन, धार्यते=स्वीक्रियते, येन=कारणेन, शस्त्रवन्त=आयुधयुक्ता, अपि, वयम्=विटादय, गुणशस्त्रैः=गुणायुधैः, निर्जिता=पराजिता।

समास एव व्याकरण —(१) गुण०–गुणा एव शस्त्राणि तैः (२) धार्यते–धृति+णिच्+यक्+लट्। निर्जिता —निर्+जि+क्त।

विवृति

(१) गुणशस्त्रैः मे रूपक अलङ्कार है। (२) पथ्यावक्त्र छन्द है। (३) कुछ टीकाकार परिणाम अलङ्कार कहते हैं।

शकार —(सासूयम्) किंनिमित्त पुनर्भाव, एतस्य दुष्ट बटुकस्य कृपणाञ्जलिं कृत्वा पादयोर्निपतित। (किंणिमित्त उण भावे, एदश्श दुट्टबडुअश्श किविणअञ्जलिं कदुअ पाएशु णिवडिदे।)

शकार —(ईर्ष्या सहित) भाव! किसलिए आप इस दुष्ट ब्राह्मण को हाथ जोड कर चरणो पर गिर पडे?

विटः—भीतोऽस्मि।

विट —डर गया हूँ।

शकार —कस्मात्त्व भीत.। (कश्श तुम भीदे।)

शकार—आप किससे डर गये?

विट —तस्य चारुदत्तस्य गुणेभ्य।

विट —उस चारुदत्त के गुणो से।

शकारः—के तस्य गुणा यस्य गृह प्रविश्याशितव्यमपि नास्ति। (के तश्श गुणा जश्श गेह पविशिअ अशिदव्व पि णत्थि।)

शकार —कौन से उसके गुण हैं? जिसके घर मे घुसने पर भोजन भी नही है।

विट —मा मैवम्।

विट —ऐसा मत कहो!

विवृति

(१) सासूयम्=ईर्ष्यापूर्वक। दुष्टबटुकस्य=दुष्टब्राह्मण। कृपणाञ्जलिम्=दीनतापूर्वक जोडे गये हाथ। असितव्यम्=भोजन। (२) असूयया सहितम् सासूयम्।

'गुणेषु दोषा विष्करणम् असूया ।' (३) अश्+तव्य—अशितव्य । (४) कहीं कहीं 'आह्निक द्रव्यम्' भी पाठ है। इसका अर्थ होता है दैनिक वस्तु । (५) 'कस्मात्त्व भीत' मे 'भी' के योग में पञ्चमी । (६) प्रविश्य—प्र+विश्+क्त्वा+ल्यप् ।

सोऽस्मद्विधाना प्रणयै कृशीकृतो
न तेन कश्चिद्विभवैर्विमानित. ।
निदाघकालेष्विव सोदको ह्रदो
नृणा स तृष्णामपनीय शुष्कवान् ॥४६॥

अन्वय –स , अस्मद्विधानाम्, प्रणयैः कृशीकृतः, तेन, कश्चित्, विभवैः, न, विमानित नृणाम्, तृष्णाम्, अपनीय, स निदाघकालेषु, सोदक , ह्रद , इव, शुष्कवान् ॥४६॥

पदार्थ —स —वह, अस्मद्विधानाम्=हम जैसे, प्रणयैः =स्नेहो से, कृशीकृत =धनहीन कर दिये गये, तेन=उनसे, कश्चित्=कोई, विभवैः =धनो से, न, विमानितः=तिरस्कृत किया गया, नृणाम्=मनुष्यो की, तृष्णाम्=प्यास, अपनीय= दूर कर, स.=वह, निदाघकालेषु=ग्रीष्म के समय मे, सोदक =जलयुक्त, ह्रद = सरोवर, इव=भाँति, शुष्कवान=सूख गया ।

अनुवाद —वह हम जैसे जनो के स्नेहो से निर्धन किये गये । चारुदत्त के द्वारा कोई समृद्धि से तिरस्कृत नही हुआ, मनुष्यो की प्यास दूर कर वह ग्रीष्म ऋतु मे जलयुक्त जलाशय की भाँति सूख गया ।

संस्कृत टीका —सः=चारुदत्त , अस्मद्विधानाम्=मादृशानाम्, प्रणयैः = प्रार्थनाभि , कृशीकृत =धनरहितः विहित , तेन=चारुदत्तेन, कश्चित्=कोऽपि, विभवैः =समृद्धिभि , न=नहि, विमानित =तिरस्कृत , नृणाम्=मनुष्याणाम्, तृष्णाम्=अभिलाषाम् पिपासाम् वा, अपनीय=दूरीकृत्य, स =चारुदत्त , निदाघ-कालेषु=ग्रीष्मदिवसेषु, सोदक =जलयुक्त , ह्रद =जलाधार., इव, शुष्कवान्= क्षीण सञ्जात ।

समास एव व्याकरण— (१) अस्मद्०–अस्माकम् विधा इव विधा येषा तेषाम् । निदाघ०–निदाघस्य काल निदाघकाल तेषु । (२) प्रणय–प्र+नि+अच् । विमानित —वि+मन्+णिच्+क्त । कृशीकृत —कृश्+च्वि+कृ+क्त । ह्रद = अपनीय—अप्+नी+क्त्वा—ल्यप् । तृष्ण –तृष्+न+टाप् । शुष्कवान–शुष्क+ तवतु ।

विवृति

(१) 'तृष्णाम् छिन्धि' । -भर्तृहरि । (२) 'तृष्णा छिनत्त्यात्मनः' ।-हितोपदेश (३) 'साधारणोऽस्य प्रणय ' ।-शाकुन्तल । (४) 'अलङ्कृतोऽस्मि स्वय ग्राह प्रणयेन भवता । मृच्छ० । (५) 'सर्वाधिनो मे प्रणय विहन्तुम्' । रघु० । (६) श्लोक मे उपमा अलङ्कार है । (७) उपजाति छन्द है ।

शकार —कः स गर्भदास्या पुत्र । [(सामर्षम् ।) के शे गब्भदासीए पुत्ते ।]

शकार —(क्रोधपूर्वक) कौन है वह जन्मदासी का पुत्र ?

शूले विक्कते पड्वे शेदकेद्
पुत्ते लाधाए लावणे इ ददत्ते ।
आहो कुतीए तेण लामेण जादे
अश्शत्थामे धम्मपुत्ते जडाऊ ॥४७॥

[शूरो विक्रान्त पाण्डव श्वेतकेतु पुत्रो राधाया रावण इन्द्रदत्त ।
आहो कुन्त्यास्तेन रामेण जात अश्वत्थामा धर्मपुत्रो जटायु ॥]

अन्वय —विक्रान्त, शूर, (स, किम्) पाण्डव, श्वेतकेतु, इन्द्रदत्त, राधाया, पुत्रः, रावण, आहो, तेन, रामेण, जात', कुन्त्या (पुत्र), अश्वत्थामा, (वा) धर्मपुत्र, जटायु ॥ ४७ ॥

पदार्थ —विक्रान्त =पराक्रमी, शूर =वीर, पाण्डव =पाण्डु का तनय, श्वेतकेतु =श्वेतकेतु इन्ददत्त =इन्द्र से प्रदत्त, राधाया =राधा का पुत्रः=सुत, रावण =दशानन, आहो=अथवा, तेन=उस, रामेण=रघुनन्दन से, जात =उत्पन्न, कुन्त्या=कुन्ती का, अश्वत्थामा, धर्म पुत्र =यमराज का सुत, जटायुः=गृद्धराज।

अनुवाद —पराक्रमी, वीर, पाण्डु का पुत्र श्वेतकेतु है ? अथवा इन्द्र का दिया हुआ राधा का पुत्र रावण है ? अथवा विख्यात रघुनन्दन स उत्पन्न कुन्ती का सुत अश्वत्थामा है ? अथवा धम का तनय जटायु है ?

संस्कृत टीका —विक्रान्त =पराक्रमशील., शूर =भट, पाण्डव =पाण्डुपुत्र', श्वेतकेतु =औद्दालकि', इन्द्रदत्त =देवराजप्रदत्त राधायाः, पुत्र.=सुत, रावण =दशानन, आहो=अथवा, तेन=विख्यातेन, रामेण=दाशरथिना, जात =उत्पन्न, कुन्त्या =पृथाया, अश्वत्थामा=द्रौणि, धर्मपुत्र =धर्मतनय, जटायु =पक्षिराज ।

समास एव व्याकरण —(१) धर्मपुत्र —धर्मस्य पुत्रः धर्मपुत्र । (२) विक्रान्त —वि+क्रम्+क्त। राम—रम्+घञ्। रावण —रु+णिच्+ल्युट्। रावयति सर्वाणि इति रावण । रमन्ते अस्मिन् इति राम ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य शकार—पुराण का एक सुन्दर उदाहरण है। (२) शकार के वचन होन से क्षमतव्य है (३) पद्य मे वैश्व देवी छन्द है—'वाणाश्वै छिन्न वैश्व देवी म मौ यौ'।

विट·—मूख, आर्यचारुदत्त खल्वसौ ।

विट—मूर्ख ! यह ता "आर्य चारुदत्त" हैं।

दीनाना कल्पवृक्ष स्वगुणफलनत. सज्जनाना कुटुम्बी
आदर्श शिक्षिताना सुचरितनिकष शीलवेलासमुद्र ।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुपगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्वो
ह्येक श्लाध्य सजीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये ॥४८॥

अन्वय — दीनानाम्, स्वगुणफलनतः, कल्पवृक्ष, सज्जनानाम्, कुटुम्बी, शिक्षितानाम्, आदर्श, सुचरितनिकष, शीलवेलासमुद्र, सत्कर्ता, न, अवमन्ता; पुरुषगुणनिधि, दक्षिणोदारसत्त्व., हि, अधिक गुणतया, श्लाध्य, एक, स, जीवति, अन्ये, उच्छ्वसन्ति, इव, च ॥४८॥

पदार्थ — दीनानाम् = दरिद्रों के, स्व गुणफलनत = अपने गुण रूपी फलो से नम्र, कल्पवृक्ष = कल्पतरु, सज्जनानाम् = साधुओ के, कुटुम्बी = बान्धव, शिक्षितानाम् = पढे-लिखे जनो के, आदर्श = मानदण्ड, सुचरितनिकष = सदाचारियो की कसौटी, शीलवेलासमुद्र = सच्चरित्रता रूपी मर्यादा के सिन्धु, सत्कर्ता = आदर करने वाले, न, अवमन्ता = तिरस्कार करने वाले, पुरुषगुणनिधि = मानवीय गुणो के निधान, दक्षिणोदारसत्व = कुशल और उदार प्रकृति वाले, हि = निश्चय ही, अधिक गुणतया = गुणो के उत्कर्ष के कारण, श्लाध्य = प्रशसनीय, एक = एकाकी, स = वह, जीवति = जी रहे हैं, अन्ये = दूसरे, उच्छ्वसन्ति = श्वास लेते हैं, इव = भांति, च = और।

अनुवाद — अकिञ्चनो के (लिए) अपने गुण रूपी फलो (के भार) से विनम्र कल्पतरु हैं, साधुओं के बान्धव है, शिक्षितो के मानदण्ड हैं, पुण्यवानो की कसौटी है, सदाचार की मर्यादा के सागर हैं, सम्मान करने वाले हैं, तिरस्कार करने वाले नही हैं, मानवोचित गुणो के निधान हैं, कुशल, सरल एव उदार प्रकृति वाले हैं, निश्चय ही गुणो के उत्कर्ष के कारण वन्दनीय एकाकी वह (सफल) जीवन हैं, दूसरे जन तो मानो श्वास लेते हैं।

सस्कृत टीका—दीनानाम् = दरिद्राणाम्, स्वगुणफलनत = निजगुण परिपाक-नम्र. कल्पवृक्ष = कल्पतरु, सज्जनानाम् = सत्पुरुषाणाम्, कुटुम्बी = बान्धव, शिक्षितानाम् = विदुषाम्, आदर्श = दृष्टान्तभूत, सुचरितनिकष = पुण्यवताम् परीक्षापाषाण, शीलवेलासमुद्र = सदाचार मर्यादासिन्धु, सत्कर्ता = सत्कारकारक, न, अवमन्ता = अपमानकर्ता, पुरुषगुणनिधि = मानवीयगुणालय, दक्षिणोदारसत्व = सरलोदारस्वभाव, हि = खलु, अधिकगुणतया = गुणोत्कर्षेण, श्लाध्य = अभिनन्दनीय, एक. = केवल, स = चारुदत्त, जीवति = प्राणान् धारयति, अन्ये = अपरे, उच्छ्वसन्ति = उच्छ्वासम् कुर्वन्ति, इव, च।

समास एव व्याकरण-(१) स्व०—स्वस्य गुणानाम् फलै नत । अथवा स्व-

स्य गुणा एव फलानि तैः नत । कल्पवृक्ष —कल्पस्य वृक्ष । अथवा कल्पपूर्ण वृक्ष । सुचरित० — सुचरितानाम् निकष , निकष्यते अस्मिनिति निकष । शील०-शीलम् एव वेला तस्या समुद्र । पुरुष०—पुरुषाणाम् ये गुणा तेषाम् निधि । दक्षिणोदार-सत्व –दक्षिणाम् च उदारम् च सत्वम् यस्य स ।

(२) नत.—नम्+क्त। आदर्श —आ+ दृश+घञ् । सत्कर्ता सत्+ कृ+ तृच् । अवमन्ता–अव+मन्+तृच् । श्लाघ्य –श्लाघ्+ ण्यत् । शील–शील् +अच् । जीवति-जीव+लट् । उच्छ्वसन्ति–उद्+श्वस्+लट् ।

विवृति

(१) उल्लेख, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं। (२) चारुदत्त का अनेक प्रकार से उल्लेख है अत उल्लेख अलङ्कार है। 'एकस्यानेकधोल्लेखो य स उल्लेख उच्यते ।' (३) चतुर्थ चरण म क्रियोत्प्रेक्षा है। (४) शीलवेलासमुद्र म रूपक है। (५) गुण—कीर्तन नामक नाट्यालङ्कार है। 'गुणानाम् कीर्तनम् यत्तु तदेव गुणकीर्तनम् ।' (६) धीर प्रशान्त नायक का सुन्दर वर्णन है। (७) स्रग्धरा छन्द है। 'म्रभ्नैर्यानाम ।' त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।' (८) प्रसाद गुण है।(९) वैदर्भी रीति है। (१०) 'पञ्चैतेदेवतरवो मन्दार पारिजातक । सन्तान कल्पवृक्षश्च पुंसिवा हरिचन्दनम् । (११) 'यस्मिन् जीवति जीवन्ति बहव स तु जीवति ।' इति न्याय । (१२) 'Glass of fashion (Hamlet III)। 'Gl ·s of learning ।

तदितो गच्छाम ।

तो यहाँ स चलें ।

शकार –अगृहीत्वा वसन्त सेनाम् । [आगेण्हिअ वशन्तशेणिअम् ।]

शकार—"वसन्तसेना" को विना लिये ?

विट –नष्टा वसन्तसेना ।

विट— 'वसन्तसेना" अदृश्य हो गई ।

शकार –कथमिव । [कथ विअ ।]

शकार—कैसे ?

विट —

विट—

अन्धस्य दृष्टिरिव पुष्टिरिवातुरस्य
मूर्खस्य बुद्धिरिव सिद्धिरिवालसस्य ।
स्वल्पस्मृतेर्व्यसनिन परमेव विद्या
त्वा प्राप्य सा रतिरिवारिजने प्रनष्टा ॥४९॥

अन्वय –सा, त्वाम् प्राप्य, अन्धस्य, दृष्टि , इव, आतुरस्य, पुष्टि , इव, मूर्खस्य, बुद्धि , इव, अलसस्य, सिद्धि , इव, अल्पस्मृते , व्यसनिन', परमा, विद्या, इव,

अरिजन, रति, इव, प्रनष्टा ॥४९॥

पदार्थ –मा=वसन्तसेना, त्वाम्=तुमको, प्राप्य=पाकर, अन्धस्य=अन्धे के दृष्टि=नेत्र, इव=सदृश, आतुरस्य=रुग्ण के, पुष्टि=बल, इव=सदृश, मूर्खस्य=मूर्ख की, बुद्धि=मेधा, अलसस्य=आलसी की, सिद्धि=सफलता, अल्पस्मृते=न्यूनस्मरणसामर्थ्य वाले, व्यसनिन=कामुक की, परमा= उत्तम, विद्या=ज्ञान, अरिजने=शत्रुओं में रति=अनुराग प्रनष्टा=लुप्त हो गई।

अनुवाद–वह (वसन्तसेना) तुमको पाकर नेत्रविहीन की दृष्टि के सदृश, रुग्ण के बल के तुल्य मूर्ख की मेधा की भाँति, मन्द की सफलता के सदृश, क्षीण स्मरण शक्ति वाले कामुक की उत्तम विद्या की भाँति और शत्रुओं में अनुराग के समान लुप्त हो गई।

संस्कृत टीका–मा= गणिका, त्वाम्=शकारम्, प्राप्य=लब्ध्वा, अन्धस्य=नेत्रशक्तिविहीनस्य, दृष्टि=दर्शनशक्तिः, इव, आतुरस्य=रोगग्रस्तस्य, पुष्टि=शक्ति, इव मूर्खस्य=अज्ञस्य बुधि=मेधा, इव, अलसस्य= मन्दस्य, सिद्धि=कार्यसाफल्यम् इव, अल्पस्मृत=न्यूनस्मरणशक्ति, व्यसनिन=कामुकस्य, परमा=उत्कृष्टा, विद्या=ज्ञानम इव अरिजने=परे, रति=प्रीति, इव, प्रनष्टा=अदर्शनम् गता।

समास एवं व्याकरण–(१) अल्पस्मृत=अल्पा स्मृति यस्य तस्य। व्यसनिन-व्यसनम् अस्ति अस्य इति व्यसनी तस्य। (२) प्राप्य—प्र+ आप्+क्त्वा—ल्यप्। दृष्टि=दृश्+क्तिन्। पुष्टि पुष्+क्तिन्। बुद्धि—बुध+क्तिन्। सिद्धि—सिध्+क्तिन। रति–रम्+क्तिन्। प्रनष्टा–प्र+नश+क्त+टाप्। विद्या–विद+क्यप्+टाप्।

विवृति

(१) यहाँ पर एक ही वसन्तसेना के कई उपमान होने से मालोपमा अलङ्कार है। मालोपमा यदेकस्योपमानम् बहुदृश्यते। (२) वसन्ततिलका छन्द है। 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग।

शकार –अगृहीत्वा वसन्तसेना न गमिष्यामि।[अगण्हिअ वसन्तसेणिअं ण गमिस्सम्।)

शकार— वसन्तसेना' को बिना लिये नहीं जाऊँगा।

विट –एतदपि न श्रुतं त्वया।

विट—वह भी नहीं सुना तुमने–

आलाने गृह्यते हस्ती वाजी वल्गासु गृह्यते।
हृदये गृह्यते नारी यदीदं नास्ति गम्यताम् ॥५०॥

अन्वयः–हस्ती, आलाने, गृह्यते, वाजी, वल्गासु, गृह्यते, नारी, हृदये, गृह्यते, यदि, इदम्, नास्ति, (तदा), गम्यताम् ॥५०॥

पदार्थ.—हस्ती=गज, आलाने=स्तम्भ मे, गृह्यते=बाँधा जाता है। वाजी=अश्व, वल्गासु=लगाम मे, गृह्यते=रोका जाता है, नारी=स्त्री, हृदये=हृदय से, गृह्यते=वशीभूत होती है, यदि, इदम्=ऐसा, नास्ति=नही है, गम्यताम्=जाओ।

अनुवाद.—गज स्तम्भ मे बांधा जाता है, अश्व लगाम से रोका जाता है और स्त्री हृदय से वश मे की जाती है। यदि ऐसा नही है, तो जाइये।

संस्कृत टीका-हस्ती=गज, आलाने=बन्धस्तम्भे, गृह्यते=वशीक्रियते, वाजी=अश्वः, वल्गासु=मुखरज्जुसु, गृह्यते=निरुध्यते, नारी=स्त्री, हृदये=अन्तःकरणे, गृह्यते=स्वाधीनीक्रियते, यदि, इदम्=पूर्वोक्तम्, धारणाम्, नास्ति=न विद्यते, गम्यताम्=निवर्त्यताम्।

समास एवं व्याकरण-(१) गृह्यते-ग्रह्+यक्+लट्। नास्ति-न+अस्+लट्। गम्यताम्-गम्+यक्+लोट्। आलान आ+ली+ल्युट्। वाजी-वाजि+इनि।

विवृति

(१) 'न गर्दभा. वाजिधुरम् वहन्ति।' मृच्छ०। (२) 'आलान बन्धनस्तम्भ.' इत्यमर। (३) निदर्शना अलङ्कार है। (४) कुछ टीकाकार एक ही क्रिया गृह्यते से हस्ति, वाजि, और स्त्री से सम्बन्ध होने से दीपक अलङ्कार कहते हैं–। 'अप्रस्तुत प्रस्तुतयोर्दीपक तु निगद्यते।' (५) उदाहरण नामक नाट्य लक्षण भी है। (६) यहा पर गृह्यते क्रिया के तीन बार पठन के कारण अनवीकृत दोष है तथा हस्ति, वाजी और स्त्री इत्यादि पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग निर्देश से भग्न प्रक्रमता दोष भी है। (७) (७) पथ्यावक्त्र छन्द है।

शकार—यदि गच्छसि, गच्छ त्वम्। अहं न गमिष्यामि। (यदि गच्छशि, गच्छ तुमम्। हगे ण गमिश्शम्।)

शकार—यदि जाते हो तुम आओ मैं नहीं जाऊँगा।

विटः-एवम्। गच्छामि। (इति निष्क्रान्त.।)

विट-अच्छा, जाता हू। (निकल जाता है)।

शकार-गत खलु भावोऽभावम्। (विदूषकमुद्दिश्य) अर काकपदशीर्षमस्तक दुष्टवटुक, उपविशोपविश। (गडे बलु भावे अभावम्। अले काकपदशीशमश्तका दुट्टवडुका, उवविश उवविश।)

शकार—भाव (विट) तो अभाव को प्राप्त हुए। (विदूषक को लक्ष्य कर)

अरे ! कौए के पञ्जों के समान शिर वाले दुष्ट ब्राह्मण ! बैठ ! बैठ !

विदूषक–उपवेशिता एव वयम् । [उववेसिदा ज्जेव अम्हे]

विदूषक–हम तो बैठा ही रक्खे हैं ।

शकार—केन । (केण ।)

शकार—किसने ?

विदूषक – कृतान्तेन । (कअन्तेण ।)

विदूषक—यमराज ने ?

शकार —उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । (उट्ठेहि उट्ठहि ।)

शकार—उठ ! उठ !

विदूषक —उत्थास्याम । (उट्ठिस्सामो ।)

विदूषक–उठेंगे ।

शकार –कदा । (कदा ।)

शकार— कब ।

विदूषक –यदा पुनरपि दैवमनुकूल भविष्यति । (जदा पुणे वि देव्व अणुऊल भविस्सदि ।)

विदूषक—*जब फिर भी भाग्य अनुकूल होगा ।*

शकार –अरे, रुदिहि रुदिहि । (अले, लोद लोद ।)

शकार–अरे ! रोओ ! रोओ !

विदूषक –रोदिता एव वयम । (रोदाविदा ज्जेव अम्हे ।)

विदूषक–हम तो रुलाए जा चुके ।

शकार –केन । (केण ।)

शकार– किससे ?

विदूषक —दुगत्या । [दुगादीए ।]

विदूषक—दुगति से ।

शकार —अरे, हस हम । [अले हश हश ।]

शकार—अरे ! हँस ! हंस !

विदूषक – हसिष्याम । [हसिस्सामो ।]

विदूषक–हँसेंगे ।

शकार —कदा । [कदा ।]

शकार—कब ।

विदूषक —पुनरपि ऋद्धयार्य चारुदत्तस्य । [पुणो वि ऋद्धीए अज्जचारुदत्तस ।]

विदूषक—पुन आर्य चारुदत्त की समृद्धि से ।

शकार—अरे दुष्टवटुक, भणिष्यसि मम वचनेन त दरिद्र चारुदत्तकम्—'एषा ससुवर्णा सहिरण्या नवनाटकदर्शनोत्थिता सूत्रधारीव वसन्तसेनानाम्नी गणिकादारिका कामदेवायतनोद्यानात्प्रभृति त्वामनुरक्तास्माभिर्बलात्कारानुनीयमाना तव गेहं प्रविष्टा । तद्यदि मम हस्ते स्वयमेव प्रस्थाप्यैना समर्पयसि, ततोऽधिकरण व्यवहार विना लघु निर्यातयतस्तव मयानुवद्धा प्रीतिर्भविष्यति । अथवानिर्यातयतो मरणान्तिक वैर भविष्यति । अपि च प्रेक्षस्व । [अले दुट्टवडुका, भणेशि मम वअणेण त दलिद्दचालुदत्तकम्—'एशा शशुवण्णा शहिलण्णा णवणाउअदशणुट्ठिदा शुत्तदालि व्व वसन्तशेणा णाम गणिआदालिआ कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि तुम अणुलत्ता अम्हेहिं बलक्कालाणुणीअमाणा तुह गेह पविट्टा । ता जइ मम हत्थे शअ ज्जेव पट्टाविअ एण शमप्पेशि, तदो अधिअलणे ववहाल विणा लहु णिज्जादमाणाह तव मए अणुवद्धा पीदी हुविश्शदि । आदु अणिज्जादमाणाह मलणन्तिके वेले हुविश्शदि । अवि अपेक्ख ।]

शकार—अरे ! दुष्ट ब्राम्हण ! मेरे कथनानुसार उस दरिद्र चारुदत्त से कहना—'यह सुन्दर वर्ण (रग) वाली, सोने (के आभूषणो) वाली, नवीन नाटक देखकर उठी हुई सूत्रधारी के समान वसन्तसेना नाम की वेश्या—पुत्री कामदेवायतनोद्यान (मे जाने) से लेकर तुझम अनुरक्त है, हमारे द्वारा बलात्कारपूर्वक पीछा की जाती हुई तुम्हारे घर म घुस गई है । तो यदि मेरे हाथ मे स्वय ही भेज कर इसको सौंप देते हो तो न्यायालय म अभियोग (मुकदमे) के बिना शीघ्र ही तेरी मेरे साथ घनिष्ठ मित्रता हो जायेगी, अथवा (वसन्तसेना को) न लौटाने पर मृत्युपर्यन्त शत्रुता हो जायगी ।

और भी देखो—

विवृति

(१) भाव =आदरणीय । अभावम्=विलोप । काकपदशीर्षमस्तक=कौवे के पैर के समान क्षीण मस्तक वाले । कृतान्तेन=दैव से । दुर्गत्या=दुर्दशा से । ऋद्धया=सम्पत्ति से । बलात्कारानुनीयमाना=जबर्दस्ती विनय की गई । अधिकरणे=न्यायालय म । व्यवहारम्=अभियोग । लघु=जल्दी । निर्यातयत =लौटाते हुए । अनुवद्धा=दृढ । (२) काकपदवत् शीर्षं मस्तक च यस्य तत्सम्बोधने । बलात्कारेण अनुनीयमाना । (३) ससुवर्णा=सोने के गहनों से सजी । नवनाटकदर्शनोत्थिता=नवीन नाटक के अभिनय के लिए आई हुई । नवनाटकस्य दर्शनाय उत्थिता । सूत्रधारी=नटी । गणिकादारिका=वेश्या । (४) 'पुनरपि ऋद्धया' यहाँ पर प्रसगवश चरित्र के कथन से प्रकरी नामक कार्यावस्था है ।(५) 'विवादो व्यवहार. स्यात्'। (६) 'निर्यातनम् वैरशुद्धौ दाने न्यासार्पणेऽपि च ।' इति हेमचन्द्रः । (७) बल्+अत्+क्विप्+कृ+अण्=बलात्कार ।

कश्चालुका गोच्छडलित्तवेंटा
शाके अ शुक्खे तलिदे हु मशे ।
भत्ते अ हेमतिअलत्ति शिद्धे
लीणे अ वेले ण हु होदि पूदी ।।५१।।

[कूष्माण्डी गोमयलिप्तवृन्ता शाकं च शुष्कं तलितं खलु मासम् ।
भक्तं च हैमन्तिकरात्रिसिद्धं लीनायां च वेलायां न खलु भवति पूतिः ।।]

अन्वय—गोमयलिप्तवृन्ता, कूष्माण्डी, शुष्कम्, शाकम्, च, तलितम्, मासम्, खलु, हैमन्तिकरात्रिसिद्धम्, भक्तम्, च, वेलायाम्, लीनायाम्, च न, खलु, पूतिः, भवति ।।५१।।

पदार्थ—गोमयलिप्तवृन्ता=गोबर से लिपी हुई डाली वाली, कूष्माण्डी=कुम्हडी, शुष्कम=सूखा, शाकम्=साग, तलितम्=तला हुआ, मासम्=मास, खलु=निश्चय, हैमन्तिकरात्रिसिद्धम्=हेमन्त ऋतु की रात मे पकाया गया, भक्तम्=भात, वेलायाम्=समय, लीनायाम्=बीत जाने पर, च=भी, न=नही, निश्चय, पूतिः=दुर्गन्धयुक्त, भवति=होते हैं ।

अनुवाद—गोबर से लिपी हुई डाली वाली कुम्हडी, सूखा हुआ साग, तला हुआ मास और हेमन्त ऋतु की रात म पका हुआ भात समय बीत जाने पर भी दुर्गन्धयुक्त नही होता है ।

संस्कृत टीका—गोमयलिप्तवृन्ता=गोपुरीषवेष्टितवन्धास्थानम्, कूष्माण्डी=लघुकर्कारु, शुष्कम्=रसहीनम्, शाकम्, च, तलितम्=समृष्टम्, मासम्, खलु=निश्चयेन, हैमन्तिकरात्रिसिद्धम्=हेमन्तनिशापरिपक्वम्, भक्तम्=अन्नम्, च, वेलायाम्=काले, लीनायाम्=व्यतीते, च, न=नहि, खलु, पूतिः=दुर्गन्धयुतम्, भवति=जायते ।

समास एवं व्याकरण—(१) गोमय०—गोमयेन लिप्तम् वृन्तम् यस्या. सा । हैमन्तिक०—हेमन्तऋतुभवायाम् रात्रौ सिद्धमिति । (२) कूष्माण्डी—कूष्माण्ड+ङीप् । शुष्कम्—शुष्+क्त । लीनायाम्—ली+क्त+टाप् । भवति—भू+लट् ।

विवृति

(१) अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है । (२) इन्द्रवजा छन्द है । (३) कुछ टीकाकार तुल्ययोगिता अलङ्कार भी कहते हैं ।

शोभन भणिष्यति, मकपट भणिष्यसि । तथा भणिष्यसि यथाहमात्मकीयाया प्रासादबालाग्रकपोतपालिकायामुपविष्ट. शृणोमि । अन्यथा यदि भणसि, तदा कपाटप्रविष्टकपित्थगुलिकमिव मस्तकं ते मडमडायिष्यामि । [शोहतक भणेदि, लहतक भणेधि । तथा भणेधि जधा हगे अत्तणकेलिकाए पाशादबालग्गकवोदवालिआए उव-

विट्ठे शुणामि । अण्णघा जदि भणेशि, ता कवालपविट्ठकविट्ठगुडिअ विअ मश्तअ दे मडमडाइश्शम् ।

भली-भांति कहोगे, कपटपूर्वक कहोगे । उस प्रकार कहोगे जिससे मैं अपने राजभवन के नूतन अग्रभाग वाले कबूतरो के पालने के स्थान पर बैठा हुआ सुनता रहूँ । किसी दूसरे प्रकार से यदि कहा, तो किवाडो म फँसे हुए कैथ के गोले के समान तरे सिर का 'मडमडा' (कूट) दूँगा ।

विदूषक—भणिष्यामि [भणिस्सम् ।]

विदूषक—कहूँगा ।

शकार—(अपवार्य) चेट गत सत्यमेव भाव । [चेडे, गडे शच्चक ज्जेव भावे ।]

शकार—(अलग हट कर) चेट ! सचमुच ही विट चला गया ?

चेट—अथ किम् । [अघ इ ।]

चेट—और क्या ?

शकार—तच्छीघ्रमपक्रमाव । [ता शिग्घ अवक्कमम्ह ।]

शकार—तो शीघ्र ही चलते हैं ।

चेट—तद्गृह्णातु भट्टारकोऽसिम् । [ता गेण्हदु भट्टके असिम् ।]

चेट—तो स्वामी तलवार ग्रहण करे ।

शकार—तवैव हस्त तिष्ठतु । [तव ज्जेव हत्थे चिट्ठदु ।]

शकार—तुम्हारे ही हाथ म रहे ।

चेट—एप भट्टारक । गृह्णात्वेन भट्टारकोऽसिम् । [एशे भट्टालके । गण्हदु ण भट्टक असिम् ।]

चेट—स्वामिन् ! यह है । आप इस तलवार को ले लें ।

विवृति

(१) शोभनम्=भली प्रकार । सकपटम्=चालाकी से । आत्मकीयाम्= अपनी । प्रासादबालाग्रकपोतपालिकायाम्=राजभवन की नूतन कपोतपालिका पर । उपविष्ट=बैठा हुआ । कपाट प्रविष्टकपित्थगुल्मिकम्=किवाड के बीच मे रखे हुए कैथा के समान । मडमडायिष्यामि=मडमडा डालूँगा अर्थात चूरा कर दूँगा । (२) प्रासादस्य बालम् अग्रम् यस्या सा, कपोतपालिका (कपोतानाम् पालिका इति तस्याम्) । बालाग्रम्—कोश के अनुसार बालाग्र शब्द का अर्थ है मत्तवारण और कपोतपालिका का अर्थ है कबूतर पालने का स्थान—'कपोतपालिकाया तु विटङ्क पुनपुसकम् । (३) 'लघुक्षिप्रतर द्रुतम्' इत्यमर । (४) अपवार्य—'रहस्य तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाशते तद्भवेदपवारितम् ।' सा० द० ।

शकार —(विपरीत गृहीत्वा ।)
शकार—(उलटी पकड कर)—

णिव्वक्कल मूलकपेशिवण्ण खधेण घेत्तण अ कोशशुत्त।
कुक्केहि कुक्कीहि अ वुक्कअ ते जघा शिआले शलण पलामि ॥५२
[निर्वल्कल मूलकपेशिवर्णं स्कन्धेन गृहीत्वा च कोशसुप्तम्।
कुक्कुरै कुक्करीभिश्च बुक्कयमानो यथा शृगाल शरण प्रयामि ॥]

अन्वय—निर्वल्कलम्, मूलकपेशिवर्णम्, कोशसुप्तम्, (असिम्), स्कन्धेन, गृहीत्वा, च, कुक्कुरै, कुक्कुरीभि, च, बुक्कयमान, शृगाल, यथा, शरणम्, प्रयामि ॥५२॥

पदार्थ—निर्वल्कलम्=नग्न, मूलकपेशिवर्णम्=मूली के छिलके के तुल्य वर्ण वाली, कोशसुप्तम्=म्यान मे स्थित (तलवार को), स्कन्धेन=कन्धे पर, गृहीत्वा=रखकर, च=और, कुक्कुरै=कुत्तो से, कुक्कुरीभि—कुतियो से, च= और, बुक्कयमान.=भौंका गया, शृगाल=गीदड, यथा=भाँति, शरणम्=घर को, प्रयामि=जा रहा हूँ।

अनुवाद—नग्न एव मूली के छिलके के तुल्य वर्ण वाली, म्यान म स्थित खड्ग को कन्धे पर रख कर, कुत्तो और कुतियो से भौंका (शब्द किया) गया, सियार के सदृश वासस्थान को जा रहा हूँ।

सस्कृत टीका—निर्वल्कलम्=त्वक्रहितम्, मूलकपेशिवर्णम्=शुभ्रोज्ज्वलम्, कोशसुप्तम्=कोशस्थितम् (खडगम्), स्कन्धेन=अशदेशेन, गृहीत्वा=धृत्वा, च, कुक्कुरै=श्वभि, कुक्कुरीभि=शुनीभि, च, बुक्कयमान=अनुशब्दायमान, शृगाल=जम्बुक, शरणम्=गृहम्, प्रयामि=व्रजामि।

समास एव व्याकरण—(१) निर्वल्कलम्—वल्कलात् निर्गतम् इति। मूल०— मूलकस्य पेशि इव वर्ण यस्य तम्। (२) सुप्तम्—सुप्+क्त। गृहीत्वा—ग्रह्+ क्त्वा। बुक्कयमान—बुक्क+शानच्। प्रयामि=प्र+या+लट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में उपमा अलकार है। (२) उपजाति छन्द है। (३) शरणम् गृहरक्षित्रो' इत्यमर'। (४) यहाँ 'निर्वल्कलम्' और 'कोशगुप्त' दोनो शब्दो का विरोध दूर करने के लिए यह कहा जा सकता है कि शकार न कन्धे पर रखने से पहले तलवार का कोश म रख लिया था।

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ।)
(घूमकर निकल जाते हैं)

विदूषक.—भवति रदनिके, न खलु तेऽयमपमानस्तत्रभवतश्चारुदत्तस्य निवेदयितव्यः । दौर्गत्यपीडितस्य मन्ये द्विगुणतरा पीडा भविष्यति । [भोदि रदणिए, ण क्खु दे अअं अवमाणो तत्तभवदो चारुदत्तस्स णिवेदइदव्वो । दोग्गच्चपीडिअस्स मण्णे दिउणदरा पीडा हुविस्सदि ।]

विदूषक—अरी रदनिके ! अपने इस अपमान को आर्य चारुदत्त से न कहना! मैं समझता हूँ कि दरिद्रता से पीडित (आर्य चारुदत्त की) पीड़ा दुगुनी हो जायेगी ।

रदनिका—आर्य मैत्रेय, रदनिका खल्वहं संयतमुखी । [अज्ज मित्तेअ, रदणिआ क्खु अहं सजदमुही ।]

रदनिका—आर्य मैत्रेय ! मैं 'रदनिका' मुख (जिव्हा) को वश में रखने वाली हूँ ।

विदूषक.—एवमिदम् । [एव ण्णेदम् ।]

विदूषक—ऐसा ही है ।

चारुदत्त.—(वसन्तसेनामुद्दिश्य ।) रदनिके, मारुताभिलाषी प्रदोषसमयशीतार्तो रोहसेनः । तत. प्रवेश्यतामभ्यन्तरमयम् । अनेन प्रावारकेण छादयैनम् । (इति प्रावारक प्रयच्छति ।)

चारुदत्त—(वसन्तसेना को लक्ष्य कर) रदनिके ! वायु (सेवन) का इच्छुक रोहसेन सायकालीन ठण्ड से पीड़ित है । अत. अन्दर ले जाओ । इस उत्तरीय से इसे ढँक दो । (ऐसा कहकर उत्तरीय प्रदान करता है) ।

वसन्तसेना--(स्वगतम्) कथ परिजन इति मामत्रगच्छति । [प्रावारक गृहीत्वा समाघ्राय च स्वगत सस्पृहम्] आश्चर्यम्, जातीकुसुमवासित. प्रावारकः । अनुदासीनमस्य यौवन प्रति भासते । [कध परिअणोत्ति म अवगच्छदि । अम्हहे, जादीकुसुमवासिदो पावारओ । अणुदासीण से ज्जोव्वण पडिभासेदि । [अपवारितकेन प्रावृणोति] ।

वसन्तसेना—[अपने आप] क्या मुझे परिजन समझ रहे हैं ? [उत्तरीय ले करके सूँघ कर उत्कण्ठा सहित स्वय ही] आश्चर्य है ! जाति पुष्पो [चमेली] से सुवासित उत्तरीय है । उदासीनता रहित इसका यौवन प्रतीत होता है ।

[अलग हटकर अपने आप को ढँक लेती है]

चारुदत्तः—ननु रदनिके, रोहसेन गृहीत्वाभ्यन्तर प्रविश ।

चारुदत्त—अरी रदनिके ! रोहसेन को लेकर अन्दर जाओ ।

वसन्तसेना—[स्वगतम्] मन्दभागिनी खल्वहं तवाभ्यन्तरस्य ।

[मन्दभाइणी क्खु अहं तुम्हे सब्भन्तरस्स ।]

वसन्तसेना—[अपने आप] मैं तुम्हारे घर आने में मन्दभागिनी हूँ ।

चारुदत्तः—ननु रदनिके, प्रतिवचनमपि नास्ति । कष्टम् ।

चारुदत्त—अरी रदनिके ! उत्तर भी नहीं है। खेद है !—

विवृति

(१) दौर्गत्य पीडितस्य=दुर्दशा से दुखी। द्विगुणतरा=दुगुनी। सयत-मुखी=जिह्वा पर सयमवाली। मारुताभिलाषी=हवा का इच्छुक। प्रदोष समय-शीतार्ता=रात्रि के प्रथम पहर की ठण्ड से पीडित। रोहसेन=चारुदत्त का पुत्र। प्रावारकेण=उत्तरीय से। अनुदासीनम्=नहीं तटस्थ। अपवारितकेन=दृष्टि से ओझल होकर। अभ्यन्तरम्=गृह के भीतर। प्रतिवचनम्=उत्तर। परिजन=सेवक। (२) रदनिका—यह सेविका का नाम है। (३) अनुदासीनम से ज्ञात होता है कि चारुदत्त अब भी विलास प्रिय है। (४) प्रावृणोति—से ज्ञात होता है कि वसन्तसेना के हृदय मे चारुदत्त के प्रति गाढ अनुराग है। उसके उत्तरीय को ओढने म वह आनन्द का अनुभव करती है। (५) 'तवाभ्यन्तरस्य'—मे गहरी अभिव्यञ्जना है। मैं अभागिनी हूँ यह मार्मिक भावना व्यक्त होती है। इस शब्द का अर्थ है घर के भीतर—तथा हृदय के भीतर। (६) रदनिका- रदन्+ठन्+टाप्। (७) रोह-तीति रोहा तादृशी सेना यस्य असौ रोहसेन। रुह+अच्+टाप्=रोहा। (८) 'सुमनामालती जाति" इत्यमर। (९) "नाकामी मण्डनप्रिय।" (१०) वसन्तसेना की उक्तियो मे चारुदत्त के प्रति अतिशय अनुराग द्योतित होने के कारण परिकर नामक मुख सन्धि का अङ्ग है। 'समुपन्नार्थबाहुल्यम् ज्ञेय परिकर इति।"

यदा तु भाग्य क्षय पीडिता दशा
नर कृतान्तोपहिता प्रपद्यते।
तदास्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रता
चिरानुरक्तोऽपि विरज्यते जन ॥५३॥

अन्वय—यदा, तु, नर, कृतान्तोपहिताम्, भाग्यक्षयपीडिताम्, दशाम्, प्रपद्यते, तदा, अस्य, मित्राणि, अपि, अमित्रताम्, यान्ति, चिरानुरक्त, जन, अपि, विरज्यते ॥५३॥

पदार्थ—यदा=जब, नर=मनुष्य, कृतान्तोपहिताम्=दैव के द्वारा प्राप्त करायी गयी, भाग्यक्षयपीडिताम्=पुण्यो के नष्ट हो जाने से दलित, दशाम्=अवस्था को, प्रपद्यते=प्राप्त हो जाता है, तदा=तब, अस्य=इसके, मित्राणि=सुहृद, अपि=भी, अमित्रताम्=शत्रुता को, यान्ति=प्राप्त हो जाते हैं, चिरानुरक्त=दीर्घकाल से स्नेह करने वाला, जन=व्यक्ति, विरज्यते=विमुख हो जाता है।

अनुवाद—जब मनुष्य दैव के द्वारा प्राप्त कराई गई एव पुण्यो के नष्ट हो जाने से दलित दशा को प्राप्त हो जाता है, तब इसके सुहृद भी शत्रुता को प्राप्त

हो जाते हैं तथा दीर्घकाल से स्नेह करने वाला व्यक्ति भी विमुख हो जाता है।

संस्कृत टीका—यदा=यस्मिन् काले, तु, नरः=मनुष्यः, कृतान्तोपहिताम्=दैवप्रापिताम्, भाग्यक्षयपीडिताम्=पुण्यनाशदलिताम्, दशा=स्थितिम्, प्रपद्यते=लभते, तदा=तस्मिन् काले, अस्य=मनुष्यस्य, मित्राणि=सखायः, अपि, अमित्रताम्=शत्रुताम्, यान्ति=व्रजन्ति, चिरानुरक्तः=दीर्घकालिकप्रीतिभाजनभूत, जनः=मानव, अपि, विरज्यते=विमुखः भवति।

समास एवं व्याकरण—(१) कृतान्त०—कृतान्तेन उपहिताम्। भाग्य०—भाग्यस्य क्षयेन पीडिताम्। चिर०—चिरेण अनुरक्तः। अथवा चिरात् अनुरक्तः। (२) उपहिताम्—उप्+धा+क्त+टाप्। प्रपद्यते—प्र+पद्+लट्। पीडित् पीड्+क्त। यदा—यद्+दाच्। तदा—तद्+दाच्। यान्ति—या+लट्। विरज्यते—वि+रञ्ज्+लट्। अनुरक्तः—अनु+रञ्ज+क्त।

विवृति

(१) अप्रस्तुत मित्र आदि के वर्णन प्रस्तुत रदनिका की प्रतीति होने के कारण अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार और अनुरक्त भी विरक्त होता है यह विरोधाभास। (२) यान्ति क्रिया के बाद विरज्यते क्रिया होने से भग्नप्रक्रमता दोष है। (३) वंशस्थ छन्द है।

(रदनिकामुपसृत्य।)

(रदनिका के पास जाकर)

विदूषक—भोः इयं सा रदनिका। [भो, इअं सा रदणिआ।]

विदूषक—अरे! यह तो वह रदनिका है।

चारुदत्त.—इयं सा रदनिका। इयमपरा का।

चारुदत्त—यह तो वह रदनिका है। यह दूसरी कौन है?—

अविज्ञातावसक्तेन दूषिता मम वाससा।

वसन्तसेना—(स्वगतम्) ननु भूषिता। [ण भूसिदा।]

वसन्तसेना—(अपने आप) अपितु भूषित हूँ।

चारुदत्तः—

छादिता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव दृश्यते ॥५४॥

अन्वयः—(या), अविज्ञातावसक्तेन, मम, वाससा, दूषिता, (तथा), शरदभ्रेण, छादिता, चन्द्रलेखा, इव, दृश्यते ॥५४॥

पदार्थ.—अविज्ञातावसक्तेन—अज्ञान मे स्पर्श किये हुये, मम=मेरे, वाससा=पट से, दूषिता=दूषित, शरदभ्रेण—शरद् ऋतु के जलद से, छादिता=आच्छन्न, चन्द्रलेखा=चन्द्रकला, इव=भाँति, दृश्यते=दिखलाई देती है।

अनुवाद — (जो) अज्ञान मे स्पर्श किये हुये मेरे पट से दूषित हो गई, (और जो) शरद् ऋतु के जलद से आवर्त चन्द्रकला के सदृश दिखलाई देती है।

संस्कृत टीका — अविज्ञातावसक्तेन=अज्ञानस्पृष्टेन, मम = चारुदत्तस्य, वाससा=पटेन, दूषिता=उत्पन्नदोषा, शरदभ्रेण=शरद्कालिकजलदेन, छादिता=आवृता, चन्द्रलेखा=चन्द्रकला, इव, दृश्यते=अवलोक्यते।

समास एवं व्याकरण—(१) अविज्ञाता०-अविज्ञातायाम् अवसक्तेन। अथवा अविज्ञातम् यथा तथा अवसक्तेन। चन्द्रलेखा-चन्द्रस्य लेखा (२) अविज्ञातनञ्+विअ्+ज्ञा+क्त। शरदभ्रेण-शरद अभ्र शरदभ्र तेन। अवसक्त अव+सञ्ज+क्त। छादिता-छद्+णिच्+क्त+टाप्। दृश्यते-दृश+यक्+लट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे उपमा अलकार है। (२) पथ्यावक्त्र छन्द है।

अथवा, न युक्त परकलत्रदर्शनम्।

अथवा, दूसरे की स्त्री को देखना उचित नही।

विदूषक—भो, अल परकलत्रदर्शनशङ्कया। एषा वसन्तसेना कामदेवायतनोद्यानात्प्रभृति त्वामनुरक्ता। [भो, अल परकलत्रदसणसङ्काए। एसा वसन्तसेणा कामदेवाअदनुज्जाणादो पहुदि भवन्तमणुरत्ता।]

विदूषक—अरे! पर-स्त्री-दर्शन की शङ्का मत करो। यह वसन्तसेना कामदेवायतनोद्यान से तुझमे अनुरक्त है।

विवृति

(१) परकलत्रदर्शनशङ्कया=दूसरे की स्त्री को देखने की शङ्का। (२) कामदेवायतनोद्यानात्=कामदेव मन्दिर के उपवन से। (३) न युक्त परकलत्रदर्शनम् =तुलना-'अनिर्वर्णनीय परकलत्रम्'-शाकु०।

चारुदत्त—इय वसन्तसेना। (स्वगतम्।)

चारुदत्त-(अपने आप) यह वसन्तसेना है?—

यया मे जनित कामः क्षीणे विभवविस्तरे।
क्रोध कुपुरुषस्येव स्वगात्रेष्वेव सीदति॥५५॥

अन्वय—विभवविस्तरे, क्षीणे, यया, जनित, मे, काम, कुपुरुषस्य, क्रोध, इव, स्वगात्रेषु, एव, सीदति॥५५॥

पदार्थ—विभवविस्तरे=धन के कोश के, क्षीणे=नष्ट हो जाने पर, यया=जिस वसन्तसेना से, जनित=उत्पन्न की गई, मे=मेरी, काम=वासना, कुपुरुषस्य—कायर मनुष्य के, क्रोध इव—कोप की भाँति, स्वगात्रेषु—अपने शरीर मे, एव—ही, सीदति—विलीन हो जाती है।

अनुवाद —धन की अधिकता के न रह जाने पर वसन्तसेना के द्वारा उत्पन्न किया गया मेरा काम-भाव कायर पुरुष के कोप की भांति अपने शरीर मे ही विलीन हो जाता है।

संस्कृत टीका — विभवविस्तरे=प्रचुरधने, क्षीणे= विनष्टे, यया=वसन्तसेनया. जनित =प्रकटित, मे=मम, काम =कामभाव, कुपुरुषस्य=निन्दित-मनुष्यस्य, क्रोध =कोप, इव, स्वगात्रेषु=स्वशरीरेषु, एव, सीदति=विनाशम् गच्छति।

समास एवं व्याकरण — (१) विभव०—विभवस्य विस्तरे। (२) कुपुरुषस्य—कुत्सित पुरुष कुपुरुष तस्य (३) विभव—वि+भू+अच्। (४) विस्तर—वि+स्तृ+अप्। (५) जनित —जन्+णिच्+क्त (६) सीदति—षद्+लट्।

विवृति

(१) उपमा अलकार है। [२] पथ्यावक्त्र छन्द है। [३] 'णम् मूसिदेति' इत्यादि वसन्तसेना के कथन से और 'यया मे जनित'। इत्यादि चारुदत्त के कथन से दोनो के परस्पर अनुराग के अतिशय का वर्णन होने से परिन्यास नामक मुख सन्धि का अङ्ग है। [४] काले के अनुसार विदूषक के कथन 'अल परकलत्रशङ्कया' से श्लोक के पहिले तक 'नायकोपकारिकाया अर्थसम्पत्ते अवगमात्' प्रथम पताका-स्थानक है।

विदूषक —भो वयस्य, एष खलु राजश्यालो भणति। [भो वअस्स, एसो क्खु राअसालो भणादि।]

विदूषक—हे सुहृद ! यह राजश्याल (शकार) कहता है।

चारुदत्त –किम्।

चारुदत्त–क्या ?

विदूषक —एषा ससुवर्णा सहिरण्या नवनाटकदर्शनोत्थिता सूत्रधारीव वसन्तसेनानाम्नी गणिकादारिका कामदेवायतनोद्यानात्प्रभृति त्वामनुरक्तास्माभिर्बलात्कारानुनीयमाना तव गृह प्रविष्टा। [एसा ससुवण्णा सहिलण्णा णवणाडअदसणुट्ठिदा सुत्तधालि व्व वसन्तसेणा णाम गणिआदालिआ कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि तुम अणुलत्ता अम्हेहिं बलक्कालाणुणीअमाणा तुह गेह पविट्ठा।]

विदूषक—यह सुन्दर वर्ण (रग) वाली, सोने (के आभूषणो) वाली नवीन नाटक देखकर उठी हुई सूत्रधारी के समान वसन्तसेना नाम की वेश्या-पुत्री कामदेवायतनोद्यान से लेकर तुझमे अनुरक्त है, हमारे द्वारा बलात्कारपूर्वक पीछा की जाती हुई (भी) तेरे घर मे घुस गई है—

वसन्तसेना— (स्वगतम्) बलात्कारानुनीयमानेति यत्सत्यम्, अलङ्कृतास्म्य-

तैरक्षरैः । [वलक्कालाणुणीअमाणेत्ति ज सच्चम् अलकिदह्मि एदेहिं अक्खरेहिं ।]

वसन्तसेना–(अपने आप) 'बलात्कारपूर्वक पीछा की जाती हुई' यदि यह सत्य है तो मैं इन शब्दों से अलङ्कृत हो गई।

विदूषक :—तद्यदि मम हस्ते स्वयमेव प्रस्थाप्यैनां समर्पयसि, ततोऽधिकरणे व्यवहारं विना लघु निर्यातयतस्तव मयानुबद्धा प्रीतिर्भविष्यति । अन्यथा मरणान्तिकं वैरं भविष्यति । [ताजइ मम हत्थे सअं ज्जेव पट्ठाविअ एणं समप्पेसि, तदो अधिअलणे ववहालं विणा लहुं णिज्जदमाणाहं तव मए अणुबद्धा पीदी हुविस्सदि । अण्णधा मलणन्तिके वेले हुविस्सदि ।]

विदूषक—तो यदि मेरे हाथ में स्वयं ही भेज कर इस (वसन्तसेना) को समर्पित कर देते हो तो न्यायालय में अभियोग (मुकदमे) के बिना शीघ्र ही तेरी मेरे साथ घनिष्ठ मित्रता हो जायेगी । अन्यथा मृत्युपर्यन्त शत्रुता हो जायेगी।

चारुदत्त –(सावज्ञम् ।) अज्ञोऽसौ । (स्वगतम् ।) अये, कथं देवतोपस्थानयोग्या युवतिरियम् । तेन खलु तस्या वेलायाम् ।

चारुदत्त—(अनादरपूर्वक) यह (शकार) मूर्ख है। (अपने आप) अरे! कैसी देवता के समान उपासना योग्य यह युवती है ! जिससे कि उस समय—

विवृति

(१) 'अलङ्कृता अस्मि'=सौभाग्यशालिनी हूँ। प्रस्थाप्य=देकर, निर्यातय–लौटाने वाले। अनुबद्ध=प्रबल। आमरणम्=मृत्युपर्यन्त। सावज्ञम्=तिरस्कार के साथ। अज्ञ=मूर्ख। देवतोपस्थानयोग्या=देवता के समान पूजा के योग्य। वेलायाम्=समय में।

प्रविश गृहमिति प्रतोद्यमाना
न चलति भाग्यकृतां दशामवेक्ष्य ।
पुरुषपरिचयेन च प्रगल्भं
न वदति यद्यपि भाषते बहूनि ॥५६॥

अन्वय–गृहम्, प्रविश, इति, प्रतोद्यमाना, भाग्यकृताम्, दशाम्, अवेक्ष्य, न, चलति, यद्यपि, बहूनि, भाषते, पुरुषपरिचयेन, प्रगल्भम्, न, च, वदति ॥५६॥

पदार्थ –गृहम्=घर में, प्रविश=प्रवेश करो, इति=इस प्रकार, प्रतोद्यमाना=प्रेरित की गई, भाग्यकृताम् = विधि से विहित, दशाम् = अवस्था को, अवेक्ष्य = अवलोकन कर, न=नहीं, चलति=जाती है, बहूनि=बहुत, भाषते=बोलने वाली है, पुरुष परिचयेन = मनुष्यों के समक्ष, प्रगल्भम् = धृष्टता के साथ, वदति = बोलती है।

अनुवाद :—'घर में प्रवेश करो' इस प्रकार प्रेरित की गई (भी) विधि–

विहित (दुर्) अवस्था को देख कर नही जाती है। यद्यपि बहुत बोलने वाली है (फिर भी) पुरुषो के समक्ष निर्लज्जतापूर्वक नहीं बोलती है।

संस्कृत टीका—गृहम् = गेहम्, प्रविश = आगच्छ, इति, प्रतोद्यमाना = प्रेर्यमाणा, भाग्यकृताम् = विधिविहिताम्, दशाम् = अवस्थाम्, अवेक्ष्य = विचार्य, न = नहि, चलति = गच्छति, यद्यपि, बहूनि = अधिकानि, भाषते = जल्पति, पुरुषपरिचयेन = पुरुषसंसर्गेण, प्रगल्भम् = धृष्टम्, न, च, वदति = वक्ति।

समास एवं व्याकरण—(१) भाग्य०—भाग्येन कृताम् (२) पुरुष०—पुरुषस्य परिचयेन (३) प्रविश = प्र + विश् + लोट्! (४) कृताम्—कृ + क्त + टाप् (५) अवेक्ष्य — अव् + ईक्ष + क्त्वा — ल्यप्। (६) प्रतोद्यमाना—प्र + तुद् + णिच् + यक् + शानच् + टाप्।

विवृति

(१) इस श्लोक का अर्थ एवं अन्वय विवादास्पद है। (२) प्रस्तुत पद्य से ध्वनित होता है कि वसन्तसेना मे सौन्दर्यातिशय के साथ-साथ लज्जा का योग स्वर्ण मे सुगन्ध है। (३) परस्मैपद की क्रिया के साथ भाषते आत्मनेपद की क्रिया का योग भग्नप्रक्रमता दोष है। (४) पुष्पिताग्रा छन्द है—'अयुजिनयुगरेफतोयकारो युजि च नजौ जरगाश्चपुष्पिताग्रा।' (५) भाग्यकृता दशाम्—तुलना—'मन्दभागिनी खल्वहम् तवाभ्यन्तरस्य।'

(प्रकाशम्।) भवति वसन्तसेने, अनेनाविज्ञानादपरिज्ञातपरिजनोपचारेणापराद्धोऽस्मि। शिरसा भवतीमनुनयामि।

(प्रकट रूप मे) मानिनि! वसन्तसेने!! इस प्रकार अज्ञान के कारण ठीक से न जानी गई सेवक की भाँति व्यवहार करने से मैं अपराधी हूँ इसलिए मैं शिर से प्रणाम कर आपसे अनुनय करता हूँ।

वसन्तसेना—एतेनानुचितभूमिकारोहणेनापराद्धार्य शीर्षेण प्रणम्य प्रसादयामि। [एदिणा अणुचिदभूमिआरोहणेण अवरज्झा अज्ज सीसेण पणमिअ पसादेमि।]

वसन्तसेना—(बिना आपकी आज्ञा के) अनुचित इस भूमि (भवन मे) पर चले आने के कारण अपराधिनी मे शिर से प्रणाम कर आर्य (आप) को प्रसन्न करती हूँ।

विदूषक :— भोः, द्वावपि युवा सुख प्रणम्य कलमकेदारावन्योन्य शीर्षेण शीर्षं समामतौ। अहमप्यमुना करभजानुसदृशेन शीर्षेण द्वावपि युवा प्रसादयामि। [भो, दुवेवि तुम्हे सुख पणमिअ कलमकेदरा अण्णोण्ण सीसेण सीस समाअदा। अह पि इमिणा करहजाणुसरिसेण सीसेण दुवेवि तुम्हे पसादेमि।] (इत्युत्तिष्ठति।)

विदूषक—अरे! आप दोनो ने तो सुख पूर्वक प्रणाम कर धान की बालो की

भांति सिर से सिर मिला दिया। मैं भी ऊँट के बच्चे की जङ्घा के समान अपने सिर से आप दोनो को ही प्रसन्न करता हूँ। (उठता है।)

चारुदत्त –भवतु तिष्ठतु प्रणय ।

चारुदत्त–अस्तु प्रणय को रहने दो।

वसन्तसेना–(स्वगतम्) चतुरो मधुराश्चायमुपन्यास । न युक्तमद्येदृशेनेहागतया मया प्रतिवस्तुम् । भवतु । एवं तावद्भणिष्यामि ।(प्रकाशम्)आर्य, यद्येवमहमार्यस्यानुग्राह्या तदिच्छाम्यहमिममलकारकमार्यस्य गेहे निक्षेप्तुम् । अलकारस्य निमित्तमेते पापा अनुसरन्ति। [चदुरो मधुरो अ अअं उवण्णासो । ण जुत्तं अज्ज एरिसेण इध आअदाए मए पडिवासिदुम् । भोदु । एव्वं दाव भणिस्सम् । अज्ज, जइ एव्वं अहं इमं अज्जस्स अणुग्गज्झा ता इच्छे अहं इमं अलकारअं अज्जस्स गेहे णिक्खिविदुम् । अलकारस्स णिमित्तं एदे पावा अणुसरन्ति ।]

वसन्तसेना—(अपने आप) यह वाक्य विन्यास प्रौढ एव मधुर है। इस प्रकार आयी हुई मेरे द्वारा आज (यहाँ) रहना उचित नहीं है। अस्तु, तो इस प्रकार कहूँगी। (प्रकट रूप से) आर्य! यदि इस प्रकार मैं आर्य के द्वारा अनुग्रह की पात्र हूँ तो मैं इस आभूषण को श्रीमान् जी के घर मे धरोहर (गिरवी) रखना चाहती हूँ, आभूषणो के कारण ये पापी मेरा पीछा कर रहे हैं।

विवृति

(१) अविज्ञानात्=अज्ञान से । अपरिज्ञातपरिजनोपचारेण=अनजान मे तुम्हारे साथ दासी का सा व्यवहार करने के कारण। अनुचितभूमिकारोहणेण=बिना सूचित पक्षद्वार से प्रवेश करने के कारण अथवा वेश्या होकर ब्राह्मण के घर मे प्रवेश करने स। अनुनयामि=मनाता हूँ। प्रसादयामि=प्रसन्न करती हूँ। कलमकेदारौ=धान की दो क्यारियाँ। करभजानुसदृशेन=ऊँट के बच्चे के घुटने के समान। प्रणय =प्रेम। उपन्यास = प्रस्ताव, औपचारिकता । अनुग्राह्या = कृपापात्री। निक्षेप्तुम्=धरोहर। पापा =दुष्ट लोग । अपरिज्ञातपरिजनोपचारेण—अपरिज्ञातः य परिजनोपचार तेन। (२) अनुचिताया भूमिकायामारोहणेन । (३) कलमकेदारौ—कलमानाम् केदारौ। शालय कलमाद्यास्च' इत्यमर । 'वप्र केदार क्षेत्रम्।' इत्यमर । (४) करभस्य जानु तत्सदृशेन। (५) प्रणय—पूर्वापर के अनुसार प्रणय शब्द से सम्भोग प्रार्थना व्यक्त की गई है। चारुदत्त नाटक म इस प्रकार उक्ति है—'अदक्षिण खलु प्रथमदर्शने यदृच्छागतया इह वस्तुम्।' काले क अनुसार— 'यह प्रेम स्थिर रहे एसी गूढ व्यञ्जना है।' (६) यहाँ मुख सन्धि का युक्ति नामक अङ्ग है— सम्प्रधारणमर्थानाम् युक्तिरिति।' सा० द० (७) एतेन—वसन्तसेना की इस उक्ति स अनुनय नामक नाट्यलक्षण व्यक्त होता है—'वाक्यै स्निग्धै. अनुनया भवदर्थस्य साधनम्।'

चारुदत्त –अयोग्यमिदं न्यासस्य गृहम्।

चारुदत्त—'धरोहर' रखने योग्य यह घर नहीं है।

वसन्तसेना–आर्य, अलीकम्। पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते, न पुनर्गेहेषु। [अज्ज, अलीअम्। पुरुसेसु णासा णिक्खिविअन्ति, ण उण गेहेसु।]

वसन्तसेना–आर्य! झूठ है।"पुरुषों मे धरोहर रखी जाती है–न कि घरों मे।"

चारुदत्त :–मैत्रेय, गृह्यताममलकारः।

चारुदत्त–मैत्रेय ! यह आभूषण ले लो !

वसन्तसेना–अनुगृहीतास्मि। [अणुग्गहीदह्मि।] (इत्यलकारमर्पयति।)

वसन्तसेना—मैं कृतार्थ हो गई हूँ। (आभूषण देती है)।

विदूषकः–(गृहीत्वा) स्वस्ति भवत्यै। [सात्थि भोदीए।]

विदूषक–(लेकर) आपका कल्याण हो !

चारुदत्तः–धिङ् मूर्ख, न्यासः खल्वयम्।

चारुदत्त–धिक्कार मूर्ख ! यह तो धरोहर है।

विदूषक.–(अपवार्य) यद्येव तदा चोरोह्रियताम् ! [जइ एव्व ता चोरेहि हरिज्जउ।]

विदूषक–(अलग हट कर) यदि ऐसा है तो चोर चुरा ले ?

चारुदत्त–अचिरेणैव कालेन।

चारुदत्त–स्वल्प समय मे ही–

विदूषक.–एषोऽस्या अस्माकं विन्यासः। [एसो से अह्माण विण्णासो।[

विदूषक–यह इसकी हमारे पास विशेष धरोहर है।

चारुदत्त —निर्यातयिष्ये।

चारुदत्त—लौटा दूँगा।

वसन्तसेना—आर्य,इच्छाम्यहमनेनार्येणानुगम्यमाना। स्वक गेह गन्तुम्।[अज्ज, इच्छे अहम्, इमिणा अज्जेण अणुगच्छिज्जन्ती सक गेहं गन्तुम्।]

वसन्तसेना–आर्य ! मैं इस आर्य के द्वारा अनुगमन करते हुए अपने घर जाना चाहती हूँ।

चारुदत्त.—मैत्रेय, अनुगच्छ तत्रभवतीम्।

चारुदत्त–मैत्रेय ! आपका अनुगमन करो।

विवृति

(१) न्यासाः=धरोहर। निक्षिप्यन्ते=रखे जाते हैं। पुरुषेषु=पुरुषों के विश्वास पर। भवत्यै=आपके लिए। स्वस्ति=कल्याण हो। मैत्रेय समझता है कि वसन्तसेना पुरस्कार दे रही है। "यद्येवम्' अर्थात् यदि न्यास है निर्यातयिष्ये=लौटा दूँगा। विन्यास.=विशेष धरोहर। स्वकम्=अपने। (२) 'अलीकन्तु अप्रिये अनृते' इत्यमरः। (३) यहाँ पर तृतीय पताका–स्थानक है।

विदूषक—त्वमेवैतां कलहंसगामिनीमनुगच्छन्राजहंस एव शोभसे । पुनर्ब्राह्मणो यत्र तत्र जनैश्चतुष्पथोपनीत उपहार कुक्कुरैरिव खाद्यमानो विपत्स्ये । [तुमं ज्जेव एदं कलहंसगामिणी अणुगच्छन्तो राअहंसो विअ सोहसि । अहं उण ब्रह्मणो जहिं जणेहिं चउप्पहोवणीदो उवहारो कुक्करेहिं विअ खज्जमाणो विवज्जिस्सम् ।]

विदूषक—तुम ही इस हंसगामिनी का अनुगमन करते हुये राजहंस की भाँति सुशोभित होते हो । फिर मैं (बेचारा) ब्राह्मण हूँ, जहाँ तहाँ मनुष्यो द्वारा चौराहे पर लाए हुए उपहार की भाति कुत्तो के द्वारा खाने पर बडी विपत्ति मे पड जाऊँगा ।

चारुदत्त —एवं भवतु । स्वयमेवानुगच्छामि तत्रभवतीम् । तद्राजमार्गविश्वास-योग्या प्रज्वाल्यन्तां प्रदीपिका' ।

चारुदत्त—ऐसा ही हो ! स्वयं ही सम्माननीया का अनुगमन करता हूँ । तो राजपथ मे विश्वसनीय दीपिका' (लालटेन, डिबिया आदि) को जलवाओ ।

विदूषक —वर्धमानक, प्रज्वालय प्रदीपिकान् । [वड्ढमाणअ, पज्जालेहि पदी-विआओ ।]

विदूषक—वधमानक ! दीपिका को जलाओ ।

चेटी—(जनान्तिकम्)अरे तैलेन विना प्रदीपिका प्रज्वाल्यन्ते ।[अले, तेल्लेण विणा पदीविआओ पज्जालीअन्ति ।]

चेटी—(अलग से) अरे ! तेल के बिना दीपिकायें जलाई जाती है ?

विदूषक —(जनान्तिकम्) आश्चर्यम ता खल्वस्माक प्रदीपिका अपमानित-निर्धनकामुका इव गणिका नि स्नेहा इदानी संवृत्ता [ही, ताओ क्खु अम्हाण पदीवि-आओ अवमाणिदनिद्धणकामुआ विअ गणिआ णिस्सिणेहाओ दाणिं संवुत्ता ।]

विदूषक—(अलग से) आश्चर्य ! वस्तुत व हमारी दीपिकायें दरिद्र कामुको को अपमानित करने वाली वेश्या की भाँति स्नेह—(तेल) रहित हो गई हैं ।

चारुदत्त —मैत्रेय, भवतु । कृत प्रदीपिकाभि । पश्य ।

चारुदत्त—मैत्रेय ! रहने दो ! प्रदीपिकाओ की आवश्यकता नही है । देखो—

विवृति

चतुष्पथोपनीत =चौराहे पर रखा हुआ । उपहार =पूजा सामग्री । कुक्कुरैं —कुत्तों से । विपत्स्ये=मारा जाऊँगा । राजमार्ग विश्वासयोग्या =सड़क मे विश्व-सनीय । प्रदीपिका =दिये (दीपक) । कृतम्=व्यर्थ । अपमानितनिर्धनकामुका — गरीब कामी व्यक्तियो को निरस्कृत करने वाली । (२) चतुष्पथोपनीत—चतुष्पथे उपनीत । (३) राजमार्गे विश्वासयोग्या इति । (४) 'स्नेह स्यात्तु सि तैलादिरस-इन्येच सौहृदे ।' इति मेदिनी । (५) निर्गत स्नेह यास्य ता निस्नेह । (६) 'कृत पर्याप्तयो कृतम्' इत्यमर ।

उदयति हि शशाङ्कः कामिनीगण्डपाण्डु—
ग्रहगणपरिवारो राजमार्गप्रदीपः ।
तिमिरनिकरमध्ये रश्मयो यस्य गौरा.
स्रुतजल इव पङ्के क्षीरधारा. पतन्ति ॥५७॥

अन्वय —हि, कामिनीगण्डपाण्डु, ग्रहगणपरिवार, राजमार्गप्रदीप, शशाङ्क, उदयति, यस्य, गौरा, रश्मय, स्रुतजले, पङ्के, क्षीरधारा, इव, तिमिरनिकरमध्ये, पतन्ति ॥५७॥

पदार्थ —हि=क्योकि, कामिनीगण्डपाण्डु =तरुणी के कपोल के सदृश, ग्रहगणपरिवार =नक्षत्रमण्डल रूपी कुटुम्बवाला, राजमार्ग प्रदीप =राजपथ दीपक, शशाङ्क =शशी, उदयति=उदित हो रहा है, यस्य=जिसके,गौरा =धवल,रश्मय= किरणे, स्र तजले=शुष्कसलिलवाले, पङ्के =कीचड मे, क्षीरधारा =दुग्ध की धाराओ की, इव=भाति, तिमिरनिकरमध्ये=अन्धकार समूह के बीच मे, पतन्ति = गिर रही हैं।

अनुवाद—तरुणी के कपोल के तुल्य धवल, नक्षत्रमण्डल रूपी कुटुम्ब वाला एव राजपथ का प्रकाशक सुधाशु उदित हो रहा है जिसकी उज्ज्वल किरणे, शुष्क सलिल वाले कर्दम (कीचड) मे, दुग्ध की धाराओ की भांति अन्धकार की राशि के मध्य मे गिर रही हैं।

संस्कृत टीका—हि=यत, कामिनीगण्डपाण्डु =तरुणीकपोलधवल, ग्रहगणपरिवार =नक्षत्रमण्डलसहचर, राजमार्गप्रदीप =राजपथप्रकाशक, शशाङ्क =चन्द्र, उदयति=समुदेति, यस्य=चन्द्रस्य, गौरा =श्वेता, रश्मय =किरणा, स्रुतजले= निर्गतजले, पङ्के=कर्दमे, क्षीरधारा =दुग्धधाराः, तिमिरनिकरमध्य=तम समूहाभ्यन्तरे, पतन्ति ।

समास एव व्याकरण-(१)कामिनी-कामिन्याः गण्डवत् पाण्डु इति।(२)ग्रह० ग्रहाणाम् गणा एव परिवार यस्य सः (३) राज०–राज्ञ मार्ग राजमार्ग राजमार्गस्य प्रदीप । (४) स्रुतजले–स्रुतानि जलानि यस्मात् तादृशे। (५) तिमिर०–तिमिरस्य निकरस्य मध्ये। (६) कामिनी–कम्+णिनि+ङीप्। (७) परिवार–परि+वृ+घञ्। (८) पतन्ति–पत्+लट्।

विवृति

(१) 'पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ' इत्यमर । (२) 'हरिण पाण्डुर पाण्डु' इत्यमर (३) 'गौर पीतेऽरुणेश्वेते' इति मेदिनी। (४) कामिनी गण्ड पाण्डु मे लुप्तोपमा, द्वितीय चरण म रूपक, उत्तरार्द्ध मे श्रौती उपमा अलकार हैं।(५)मालिनी छन्द है। 'ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकै' । [६] अत्यन्त प्रशसनीय प्रकृति चित्रण है ।

[सानुरागम् ।] भवति वसन्तसेने, इद भवत्या गृहम् । प्रविशतु भवती ।
(प्रेम पूर्वक) अयि वसन्तसेने ! यह आपका घर है । आप प्रवेश करो ।

(वसन्तसेना सानुरागमवलोकयन्ती निष्क्रान्ता ।)

[वसन्तसेना प्रेमपूर्वक देखती हुई निकल जाती है ।]

चारुदत्तः—वयस्य, गता वसन्तसेना । तदेहि । गृहमेव गच्छाव ।
चारुदत्त—मित्र ! वसन्तसेना चली गई । तो आओ, घर को ही चलें ।

राजमार्गो हि शून्योऽय रक्षिण सचरन्ति च ।
वञ्चना परिहर्तव्या बहुदोषा हि शर्वरी ॥५८॥

अन्वय —हि, अयम, राजमार्ग , शून्य , च, रक्षिण , सञ्चरन्ति, वञ्चना, परिहर्तव्या, हि शर्वरी, बहुदोषा, (भवति) ॥५॥

पदार्थ —हि = क्योकि, अयम् = यह, राजमार्ग = राजपथ, शून्य = निर्जन, च = और, रक्षिण = पहरेदार, सञ्चरन्ति = चल रहे हैं, वञ्चना = ठगी, परिहर्तव्या = बचाना चाहिए, हि = क्योकि, शर्वरी = रात, बहुदोषा = बहुत दोषो से युक्त ।

अनुवाद.—यह राजपथ निर्जन है एव प्रहरी घूम रहे हैं, चोरी [ठगी] बचाना चाहिये क्योकि रात्रि बहुत दोषवती होती है ।

सस्कृत टीका—हि = यत , अयम, राजमार्ग = राजपथ. शून्य = निर्जन. च, रक्षिण = प्रहरिण , सञ्चरन्ति = इतस्तत गच्छन्ति, वञ्चना = प्रतारणा , परिहर्तव्या = वारणीया , हि = यत , शर्वरी = रात्रि , बहुदोषा = अनेकोपद्रवा (भवति)

समास एव व्याकरण—१–राजमार्ग–राज्ञ मार्ग २–बहुदोषा = बहवो दोषाः यस्या तादृशी । ३-सञ्चरन्ति-सम् + चर् + लट् । ४-रक्षिण –रक्ष् + णिनि । ५-शर्वरी –शृ + वनिप् + ङीप् (वनोरच) । ६-शून्य –शूना + यक् । ७—वञ्चना-वञ्च् + ल्युट् + टाप् । ८-परिहर्तव्या–परि + हृ + तव्य + टाप् ।

विवृति

१–'शून्येषु शूरा न के ।'–वाक्य० । २–शशिन पुनरेति शर्वरी ।' रघु० । ३–चतुर्थ पाद से तृतीय पाद का समर्थन करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है इसमे सामान्य से विशेष का समर्थन है । कुछ टीकाकार काव्यलिङ्ग अलकार भी कहते हैं क्योकि वञ्चना परिहर्तव्या के प्रति शून्यादि हेतु हैं । ४—पथ्यावक्त्र छन्द है–युजोर्‌जेन सरिद्‌भर्तु पथ्यावक्त्रम् प्रकीर्तितम् ।' ५—'सामान्य वा विशेषो व यदन्येन समर्थ्यते । सोऽर्थान्तरन्यास ००० ।'

(परिक्रम्य ।) इद च सुवर्णभाण्ड रक्षितव्य त्वया रात्रौ, वर्धमानकेनापि दिवा ।
(घूम कर) और इस 'स्वर्ण-पात्र की रात्रि मे तुम्हे तथा दिन मे वर्धमानक को रक्षा करनी चाहिये ।

विदूषक —यथा भवानाज्ञापयति । (जधा भव आणवेदि ।)

विदूषक—जैसी आप आज्ञा देते हैं ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)
(दोनो निकल जाते हैं ।)

विवृति

१—इस अक का अलङ्कार न्यास नामक नाम सार्थक है। वसन्तसेना ने चारुदत्त के प्रति गुणो से आकृष्ट होकर चारुदत्त के घर मे आवागमन बढाने के लिए धरोहर रूप से अपने अलङ्कारो को रख दिया है। इस अङ्क की यही केन्द्रीभूत घटना है। अनेक स्थलो पर वसन्तसेना और चारुदत्त के अनुराग की अभिव्यञ्जना हुई है।

इति मृच्छकटिकेऽलकारन्यासो नाम प्रथमोऽङ्क ।

मृच्छकटिक का अलकार-न्यास नामक प्रथम अक समाप्त ।

द्वितीयोऽङ्कः

(प्रविश्य ।)
(प्रवेश कर)

चेटी— मात्रार्यासकाशं सदेशेन प्रेषितास्मि । तद्यावत्प्रविश्यार्यासकाश गच्छामि। एषार्या हृदयेन किमप्यालिखन्ती तिष्ठति। तद्यावदुपसर्पामि। [अत्ताए अज्ज आमआस सदेसेण पेसिदम्हि। ता जाव पविसिअ अज्जआसआस गच्छामि । (परिक्रम्या वलोक्य च ।) एसा अज्जआ हिअएण किंपि आलिहन्ती चिट्ठदि । ता जाव उवसप्पामि ।]

चेटी— मां ने आर्या (वसन्तसेना) के समीप सन्देश देकर भेजा है। तो जब तक प्रवेश कर आर्या के पास जाती हूँ (घूमकर और देखकर) ये आर्या हृदय से कुछ सोचती हुई बैठी है। तो जब तक उनके निकट जाती हूँ।

(तत प्रविशत्यासनस्था सोत्कण्ठा वसन्तसेना मदनिका च ।)

(तदनन्तर आसन पर बैठी हुई उत्कण्ठित वसन्तसेना और मदनिका प्रविष्ट होती हैं।)

वसन्तसेना— चेटि, ततस्तत । [हञ्जे, तदो तदा ।]

वसन्तसेना— सखि ! उसके पश्चात् ?

चेटी— आर्ये, न किमपि मन्त्रयसि किं ततस्तत । [अज्जए ण किंपि मन्तेसि । किं तदो तदो ।]

चेटी— आर्ये ! कुछ भी नहीं कहती हो, 'उसके पश्चात्' क्या ?

वसन्तसेना— किं मया भणितम् । [किं मए भणिदम् ।]

वसन्तसेना— मैंने क्या कहा ?

चेटी— ततस्तत इति । [तदो तदो त्ति ।]

चेटी— 'तदनन्तर ।'

वसन्तसेना— (सभ्रूक्षेपम्) आम्एवम् । [आ, एवम् ।]

वसन्तसेना— (भौं घुमाकर) अच्छा, ऐसा !

(उपसृत्य ।)

(निकट जाकर)

प्रथमा चेटी— आर्ये, माता दिशति— 'स्नाता भूत्वा देवताना पूजा निर्वर्तय' इति । [अज्जए, अत्ता आदि सदि— 'ण्हादा भविअ देवदाणं पूअ णिव्वत्तेहि त्ति ।]

पहली चेटी— आर्ये ! माता जी आज्ञा देती हैं— 'स्नान करके देव-पूजा सम्पादित कर दें ।

वसन्तसेना— चेटि, विज्ञापय मातरम्- 'अद्य न स्नास्यामि । तद्ब्राह्मण एव पूजा निर्वर्तयतु' इति । [हञ्जे, विण्णवेहि अत्तम्— 'अज्ज ण ण्हाइस्सम् । ता बह्मणो ज्जेव पूअ णिव्वत्तेदु' त्ति ।]

वसन्तसेना— सखि ! माता जी से कहो कि— 'आज मैं स्नान नहीं करूँगी ।' इसलिए ब्राह्मण ही पूजा कर दें ।

विवृति

(१) मात्रा=माता के द्वारा । आर्यासकाशम्=पूज्य वसन्तसेना के पास । सदेशेन=सन्देश के प्रयोजन से (हेतु मे तृतीया विभक्ति है ।) आलिखन्ती=चित्रित करती हुई । उपसर्पामि=निकट जाती हूँ । सोत्कण्ठा=उत्सुक । मन्त्रयसि=कहती हो । आम्=अच्छा । निर्वर्तयतु=सम्पन्न कर ले । (२) हञ्जे-यह चेटी का सम्बोधन है । (३) सोत्कण्ठा— 'इष्टानवाप्तेरौत्सुक्य कालक्षेपा सहिष्णुता । चित्ततापत्वरास्वेददीर्घनि श्वसितादिकृत् ।' (४) उद् + कण्ठ + अ + टाप्=उत्कण्ठा (५) 'हण्डे हञ्जे हलाह्वान नीचा चेटीं सखी प्रति ।' इत्यमर ।

चेटी— यदार्याज्ञापयति । [ज अज्जआ आणवेदि ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

चेटी— जो आर्या आज्ञा देती हैं । (निकल जाती है)

मदनिका— आर्ये, स्नेह पृच्छति, न पुरोभागिता, तत्किं न्विदम् । [अज्जए, सिणेहो पुच्छदि ण पुरोभाइदा ता किं णेदम् ।]

मदनिका— आर्ये ! स्नेहवश पूछती हूँ– दोषदृष्टि से नही, यह क्या बात है?

वसन्तसेना— मदनिके कीदृशीं मा प्रेक्षसे । [मदणिए, केरिसिं म पेक्खसि ।]

वसन्तसेना— मदनिके । कैसी मुझे देखती हो ?

मदनिके— आर्यायाः शून्यहृदयत्वेन जानामि हृदयगत कमप्यार्याभिलषतीति । [अज्जआए सुण्णहिअअत्तणेण जाणामि हिअअगद कपि अज्जआ अहिलसदि त्ति ।]

मदनिका— आर्या के 'शून्य हृदयता' से जानती हूँ कि हृदयस्थ किसी (प्रेमी) को आर्या चाहती हैं।

वसन्तसेना— सुष्ठु त्वया ज्ञातम् । परहृदयग्रहणपण्डिता मदनिका खलु त्वम् । [सुट्ठु तुए जाणिदम् । परहिअअग्गणपण्डिआ मदणिआ क्खु तुमम् ।]

वसन्तसेना— तूने ठीक जाना ! दूसरे के हृदय (की बातों) को परखने मे विदुषी 'मदनिका' हो तुम ।

मदनिका—प्रियं मे प्रियम् । कामः खलु नामैष भगवान् । अनुगृहीतो महोत्सवस्तरुणजनस्य । तत्कथयत्वार्या, किं राजा राजवल्लभो वा सेव्यते । [पिअं मे पिअम् । कामो क्खु णाम एसो भअवं । अणुगहिदो महूसवो तरुणजणस्स । ता कधेदु अज्जआ, किं राआ राअवल्लहो वा सेवीअदि ।

मदनिका— मेरा बहुत प्रिय । यह तो भगवान कामदेव हैं, युवकों का महोत्सव आपके द्वारा अनुगृहीत हो गया है । तो आर्या बताइये कि क्या राजा अथवा राजा का प्रिय चाहा जा रहा है ?

वसन्तसेना— चेटि, रन्तुमिच्छामि, न सेवितुम् । [हञ्जे, रमिदुमिच्छामि, ण सेविदुम् ।]

वसन्तसेना— सखि ! रमण करना चाहती हूँ, न कि सेवा करना ।

मदनिका— विद्याविशेषालङ्कृतः किं कोऽपि ब्राह्मणयुवा काम्यते । [विज्जाविसेसालंकिदो किं कोवि ब्रह्मणजुआ कामीअदि ।]

मदनिका— विद्या-विनय आदि गुणों से विभूषित क्या किसी ब्राह्मण युवक की कामना करती हो ?

वसन्तसेना— पूजनीयो मे ब्राह्मण जनः । [पूअणीओ मे बह्मणजणो ।]

वसन्तसेना— ब्राह्मणगण तो पूजनीय हैं । (सेवनीय नहीं ।)

मदनिका— किमनेकनगराभिगमनजनितविभवविस्तारो वाणिजयुवा वा काम्यते । [किं अणेअणअराहिगमणजणिद विहववित्थारो वाणिअजुआ वा कामीअदि ।]

मदनिका— क्या अनेक नगरों मे गमन से अपने वैभव का विस्तार करने वाले किसी वणिक् युवक की कामना करती हो ?

वसन्तसेना— चेटि, उपारूढस्नेहमपि प्रणयिजनं परित्यज्य देशान्तरगमनेन वाणिजजनो महद्वियोगजं दुःखमुत्पादयति । [हञ्जे, उवारूढसिणेहं पि पणइजणं परिच्चइअ देसन्तरगमणेण वाणिअजणो महन्तं विओअजं दुक्खं उप्पादेदि ।]

वसन्तसेना— सखि ! प्रेम उत्पन्न करके प्रेमीजन को त्याग कर विदेश चले जाने से व्यापारी लोग महान् विरह जनित दुःख उत्पन्न कर देते हैं ।

मदनिका— आर्ये, न राजा, न राजवल्लभः न ब्राह्मण, न वाणिजजनः । तत्क

इदानी न भर्तृदारिकया काम्यते। [अज्जए, ण राआ, ण राअवल्लहो, ण बह्मणो, ण वाणिअजणो। ता को दाणि सो भट्टिदारिआए कामीअदि।

मदनिका– आर्ये! न राजा, न राजप्रेमी, न ब्राह्मण, न वणिक् ही। तो कौन है वह जिसे अब स्वामिनी चाहती है?

वसन्तसेना– चेटि, त्वं मया सह कामदेवायतनोद्यानं गतासी। [हञ्जे, तुमं मए सह कामदेवाअदणुज्जाणं गदा आसि।

वसन्तसेना– सखि! तू मेरे साथ नाम देवायतन उद्यान' गई थी?

मदनिका– आर्ये गतास्मि। [अज्जए, गदह्मि।]

मदनिका– आर्ये! गई थी।

वसन्तसेना– तथापि मामुदासीनेव पृच्छसि। [तह वि मं उदासीणा विअ पुच्छसि।]

वसन्तसेना– तो भी अनजान सी मुझसे पूँछ रही हो।

मदनिका– ज्ञातम्। किं स एव येनार्या शरणागताभ्युपपन्ना। [जाणिदम्। किं सो ज्जेव जेण अज्जआ सरणागदा अब्भुववण्णा।]

मदनिका– जान गई। क्या वही जिसने आर्या को शरण देकर कृपा की थी?

वसन्तसेना– किं नामधेयः खलु स। [किं णामहेओ क्खु सो।]

वसन्तसेना– किस नाम वाला वह है?

मदनिका– स खलु श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति। (सो क्खु सेट्ठिचत्तरे पडिवसदि।)

मदनिका– वह सेठो के चबूतरे पर रहते हैं।

वसन्तसेना– अयि नामास्य पृच्छसि। (अइ णाम से पुच्छिदासि।)

वसन्तसेना– अरी! मैंने उसका नाम पूँछा है।

मदनिका– स खलु आर्ये सुगृहीतनामधेय आर्यचारुदत्तोनाम। (सो क्खु अज्जए सुगहीदणामहेओ अज्जचारुदत्तो णाम।)

मदनिका– आर्ये! वह स्वनामधन्य आर्य चारुदत्त हैं।

विवृति

(१) स्नेह पृच्छति=स्नेह पूछने की प्रेरणा देता है। पुरोभागिता=दोष देखना। शून्यहृदयत्वेन=हृदय के सूना होने में। परहृदय ग्रहण पण्डिता=दूसरे के हृदय के भावों को जानने में दक्ष तथा दूसरे के हृदय को वशीभूत करने में चतुर। (२) मदनिका –चेटी का नाम है। काम से युक्तता नाम की सार्थकता है। (३) तरुण –युवक। अनुगृहीत –कामदेव द्वारा अनुगृहीत हुआ। विद्या विशेषालङ्कृता=विशिष्ट विद्या को जानने वाला। गम्यते=गमन करना अभीष्ट है। रन्तुम्=रमण करने के लिए। अनेक नगराभिगमनजनितविभव विस्तार =बहुत से नगरों में जाकर

असीमित धन पैदा करने वाला । उपारूढस्नेहम्=बढ़ा हुआ है स्नेह जिसका । वियोगजम्=विरह से उत्पन्न । उदासीनता=अनजान सी । शरणागत=शरण में आई हुई । अभ्युपन्ना=स्वीकार की गई । श्रेष्ठिचत्वरे=धनवानों की चौक में । सुगृहीतनामधेयः=स्वनाम धन्य । (४) पुरोभागः अस्य अस्तीति पुरोभागी तस्य भावः पुरोभागिता । 'दोषैकदृक् पुरोभागी' इत्यमरः । (५) मदनम् अस्या अस्तीति मदनिका । (६) परहृदय०— 'सहचारी विजानीयात् धूर्तताम् महचारिणः । खग एव विजानाति खगस्य चरणौ सखे ।' (७) रम्+तुमुन् रन्तुम् । (८) कुछ टीकाकारों ने 'रन्तुमिच्छामि से लेकर भर्तृदारिकया काम्यते' तक का पाठ प्रक्षिप्त माना है । (९) 'श्रेष्ठ मस्ति इति श्रेष्ठिनः तेषां चत्वरे– श्रेष्ठि चत्वरे । (१०) सुगृहीतम् नामधेयम् यस्य स. । 'अभिधानम् च नाम धेय च' इत्यमरः । 'स सुगृहीतनामा स्यात् यः प्रातः अनुकीर्त्यते ।' इत्यमरः । (११) अभि+उप+पद्+क्त+टाप्—अभ्युपपन्ना । (१२) श्रेष्ठ धनादि अस्य अस्तीति श्रेष्ठी । श्रेष्ठ+इन् । (१३) 'वैदेहकः सार्थवाहः नैगमो वाणिजो वणिक्' इत्यमरः । (१४) 'राजा भट्टारको देव. तत्सुता भर्तृदारिका ।' इत्यमरः ।

वसन्तसेना— (सहर्षम्) साधु मदनिके, साधु । सुष्ठु त्वया ज्ञातम् । (साहु मदणिए, साहु । सुट्ठु तुए जाणिदम् ।)

वसन्तसेना— (प्रसन्नता के साथ) वाह ! मदनिके ! वाह ! तुमने ठीक जाना ।

मदनिका— (स्वगतम्) एवं तावत् । (प्रकाशम्) आर्ये दरिद्रः खलु स श्रूयते । (एव्व दाव । अज्जए, दलिद्दो क्खु सो सुणीअदि ।)

मदनिका— (अपने आप) तो ऐसा है । (प्रकट रूप से) आर्ये ! "वह तो दरिद्र है" ऐसा सुना जाता है ।

वसन्तसेना— अत एव काम्यते । दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमनाः खलु गणिका लोकेऽवचनीया भवति । (अदोज्जेव कामीअदि । दलिद्दपुरिससंकन्तमणा क्खु गणिआ लोए अवअणीआ भोदि ।)

वसन्तसेना— इसीलिए, चाहा जाता है । निर्धन मनुष्य में मन लगाने (स्नेह करने) वाली वेश्या नि.सन्देह लोक में अनिन्दनीय होती है ।

मदनिका— आर्ये, किं हीनकुसुमं सहकार पादपं मधुकर्यः पुनः सेवन्ते । (अज्जए, किं हीण कुसुमं सहआर पादवं महुअरीओ उण सेवन्ति ।)

मदनिका— आर्ये ! क्या बौर रहित आम्रवृक्ष का मधुकरियाँ सेवन करती हैं ।

वसन्तसेना— अत एवता मधुकर्य उच्यन्ते । (अदोज्जेव ताओ महुअरीओ वुच्चन्ति ।)

वसन्तसेना— इसीलिये तो 'मधुकरी' कही जाती हैं ।

मदनिका— आर्ये, यदि स मनीषितस्तत्किमर्थमिदानीं सहसा नाभिसार्यते । (अज्जए, जइ सो मणीसिदो ता कीस दाणिं सहसा ण अहिसारीअदि ।

मदनिका– आर्ये, ! यदि वह अभीप्सित (प्रेमी) है तो क्यो नही इसी समय तुरन्त अभिसार करती है ?

वसन्तसेना– चेटि, सहसाभिसार्यमाणः प्रत्युपकारदुर्बलतया, मा तावत्, जनो दुर्लभदर्शन· पुनर्भविष्यति। (हञ्जे, सहसा अहिसारिअन्तो पच्चुअआरदुब्बलदाए, मा दाव, जणो दुल्लहदसणो पुणो भविस्सदि।)

वसन्तसेना– सखि ? सहसा सगम करने से प्रत्युपकार करने मे असमर्थ होने के कारण, ऐसा न हो, कि फिर इस जन (आर्य चारुदत्त) का दर्शन दुर्लभ हो जायेगा।

मदनिका– किमत एव सोऽलकारस्तस्य हस्ते निक्षिप्त.। (किं अदो ज्जेव सो अलकारओ तस्स हत्थे णिक्खित्तो।)

मदनिका– क्या इसीलिए वह आभूषण उनके हाथ मे दे दिया है ?

वसन्तसेना– चेटि, सुष्ठु त्वया ज्ञातम्। (हञ्जे, सुट्ठु दे जाणिदम्।)

वसन्तसेना– सखि ! तुमने ठीक समझा।

(नेपथ्ये ।)
(नेपथ्य मे)

अरे भट्टारक, दशसुवर्णस्य रुद्धो द्यूतकर. प्रपलायित प्रपलायितः। तद्गृहाण गृहाण। तिष्ठ तिष्ठ। दूरात्प्रदृष्टोऽसि। (अले भट्टा, दशसुवण्णाह लुद्ध. जूदकव पपलीणु पपलीणु। ता गेण्ह गेण्ह। चिट्ठ-चिट्ठ। दूलात्पदिट्ठोसि।

अरे स्वामी ! दश-सुवर्ण मोहरो का धारक रोका हुआ जुआरी भाग गया, भाग गया। तो (उसे) पकड़ो ! पकड़ो ! ठहरो ! ठहरो ! दूर से ही दिखलायी पड़ गया है।

(प्रविश्यापटीक्षेपेण सभ्रान्त ।)
(बिना पर्दा गिरे घबराते हुए प्रवेश कर)

सवाहक – आश्चर्यम्। कष्ट एष द्यूतकरभाव.। (हीमाणहे। कट्टे एशे जुदिअलभावे।)

सवाहक– आश्चर्य है। यह जुआरीपन भी कष्टप्रद है।

विवृति

(१) दरिद्र पुरुष सक्रान्तमना =गरीब व्यक्ति से स्नेह करने वाले। अवचनीय=नही निन्दनीय। मधुकर्य.=भ्रमरियाँ। उच्यन्ते=कही जाती हैं। मनीषित: =मनचाहा। अभिसार्यते=चुपचाप मिले जाते हैं। प्रत्युपकारदुर्बलतया=बदला चुकाने मे अयोग्य होने से। दुर्लभदर्शन =मिलने मे कठिन। भट्टारक=स्वामी। दशसुवर्णस्य=दशस्वर्ण मुद्रायें, रुद्ध =रोका गया। द्यूतकरः=जुआरी। प्रपलायितः =भाग गया। (२) दरिद्रपुरुषे सक्रान्तम् मन· यस्या· सा। (३) हीनानि कुसुमानि

यस्य तम् । (४) सहकारपादपम्=आम का पेड़ । (५) मधुकुर्वन्तीति मधुकर्यं । विल्सन के अनुसार याचक अर्थ भी होगा । पृथ्वीधर ने मत्ता अर्थ किया है । (६) मनस ईप्सित मनीषित । (७) प्रत्युपकारे दुर्बलतया । (८) 'मधुकर्यं उच्यन्ते' यहाँ पर अक्षर सघात नामक नाट्य लक्षण है । 'वर्णनाक्षरसघात चित्रार्थैरक्षरैमितैं ।'— सा० द० । (९) दुर्लभ दर्शन यस्य स दुर्लभदर्शन । (१०) काम के वशीभूत होकर प्रेमिका का छिपकर प्रेमी से मिलना अभिसार कहलाता है और स्त्री अभिसारिका कही जाती है । 'अभिसारयते कान्तम् या मन्मथवशवद । स्वय वा अभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका ।' (११) 'श्रिया दुराप कथमीप्सितो भवत् ।'–शाकु० । (१२) अतएव=विश्वास पैदा करने के लिए । (१३) अपटीक्षेपेण=बिना पर्दा गिराये । 'पटीक्षेप न कर्तव्य आर्तराजप्रवेशने' इति मतं । आर्त सवाहक का प्रवेश बिना पर्दा गिराये हुआ है । (१४) वसन्तसेना के कथन हज्जे–से लेकर 'सुष्ठु से ज्ञातम्' तक उद्भेद् नामक मुख सधि का अङ्ग है । क्योंकि अनुराग रूप बीजार्थ का नायिका म फिर से प्रकटीकरण हुआ है–'बीजार्थस्य प्ररोह स्यात् उद्भेद इति ।'–सा० द० । यद्यपि परिभावना नामक अङ्ग के पहले होने से क्रम मे विपर्यय हो गया है ।

नवबन्धनमुक्तयेव गर्दभ्या हा ताडितोऽस्मि गर्दभ्या ।
अङ्गराजमुक्तयेव हा शक्त्या घटोत्कच इव घातितोऽस्मि शक्त्या ॥

[णवबंधणमुक्काए विअ
गद्दहीए हा ताडिदो म्हि गद्दहीए ।
अ गलाअमुक्काए विअ शत्तीए
घडुक्को विअ घादिदो म्हि शत्तीए ॥१॥]

अन्वय —हा !, नवबन्धनमुक्तया, गर्दभ्या, इव, गर्दभ्या, ताडित, अस्मि, हा ! अङ्गराजमुक्तया, शक्त्या, घटोत्कच , इव, शक्त्या, घातित , अस्मि ॥१॥

पदार्थ —हा !=हाय !, नवबन्धनमुक्तया=नवीन बन्धन से खुली हुई, गर्दभ्या=गधी क, इव=सदृश, गदभ्या=कौडी के द्वारा, ताडित =मारा गया, अस्मि=हूँ, हा !=हाय !, अङ्गराजमुक्त्या=कर्ण के द्वारा छोडी गई, शक्त्या= शक्ति (अस्त्र) से, घटोत्कच =हिडिम्बापुत्र, इव=सदृश, शक्त्या=पासे की चाल से, घातित =मारा गया, अस्मि—हूँ ।

अनुवाद —हाय ! नवीन बन्धन से स्वतन्त्र हुई गधी के तुल्य कौडी से आहत हुआ हूँ, हाय ! कर्ण के द्वारा छोडी गई शक्ति (अस्त्र) से भीम पुत्र (घटोत्कच) के सदृश (मैं) पासे की चाल से मार दिया गया हूँ ।

सस्कृत टीका.—हा ! =कष्टम् ! नवबन्धनमुक्तया=नवीनपाशस्वतन्त्रया, गर्दभ्या=रासभस्त्रिया, इव, गर्दभ्या=वराटिकया, ताडित =आहत , अस्मि, हा !

=खेदे ! अङ्गराजमुक्तया=कर्णप्रहितया, शक्त्या=अस्त्रेण, घटोत्कच =भीम सुत, इव, शक्त्या=द्यूतवरादिकया, घातित =मारित अस्मि ।

समास एव व्याकरण– (१) नव०–नवबन्धनात् मुक्तया । (२) अङ्गराज-मुक्तया–अङ्गराजेन मुक्तया । (३) अङ्गराज–अङ्गानाम् राज । (४) मुक्तया–मुच् +क्त+टाप् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में दो श्रौती उपमायें है। (२) यमक भी दो है। (३) इसमे चित्र जाति छन्द है। (४) सवाहक मागध भाषा बोलता है। (५) अङ्गराज–महाभारत के अनुस र हिडिम्बा राक्षसी से उत्पन्न भीम के पुत्र घटोत्कच ने एक रात्रि म कौरव सेना का विनाश प्रस्तुत कर दिया। तब कर्ण न एकघ्नी' नामक अमाव शक्ति से उसे मार दिया था।

लेखक व्यापृतहृदय सभिक दृष्टवा झटिति प्रभ्रष्ट ।
इदानी मार्गनिपतित क नु खलु शरण प्रपद्ये ॥
[लेख अवावडहिअअ शहिअ दट्ठूण झत्ति पब्भट्ठे ।
एण्हि मग्गणिवडिदे क णु खु शलण पपज्जे ॥२॥]

अन्वय–लेखकव्यापृतहृदयम्, सभिकम्, दृष्ट्वा, झटिति, प्रभ्रष्ट, इदानीम्, मार्गनिपतित, (अहम्) नु कम खलु, शरणम्, प्रपद्ये ॥२॥

पदार्थ–लेखकव्यापृतहृदयम्=लिखने मे सलग्न चित्त वाले, सभिकम्=द्यूताध्यक्ष को, दृष्ट्वा=देखकर, झटिति=जल्दी, प्रभ्रष्ट=निकल गया, इदानीम् =इस समय, मार्गनिपतित =पथ पर पहुँच आया, नु=अरे, कम्=किसको, खलु =निश्चय, शरणम्=आश्रय, प्रपद्ये=पाऊँ ।

अनुवाद–लिखने मे सलग्न चित्त वाले द्यूताध्यक्ष को देखकर शीघ्र ही निकल भागा (मैं) इस समय पथ पर आ गया हूँ, अरे ! किसके आश्रय मे जाऊँ ।

सस्कृत टीका–लेखकव्यापृतहृदयम्=लेखनसलग्नचेत, सभिकम्=द्यूतकार कम्, दृष्ट्वा=निरीक्ष्य, झटिति=शीघ्रम्, प्रभ्रष्ट=पलायित, इदानीम्=साम्प्रतम् मार्गनिपतित=राजपथे आगत, (अहम्) नु=अरे ! कम्=मनुष्यम् खलु, शरणम् =रक्षकम्, प्रपद्ये=श्रये ।

समास एव व्याकरण– १ लेखक०–लेख एव लेखक तस्मिन् व्यापृतम् हृदयम यस्य तम् । २. मार्गनिपतित=मार्गे निपतित । ३ दृष्ट्वा=दृश्+क्त्वा, सभिकम्–सभा+ठन् । ४ प्रभ्रष्ट–प्र+भ्रश्+क्त । ५ प्रपद्ये–प्र+पद्+लट् ।

विवृति

(१) गाथा छन्द है–विषमाक्षरपादत्वात् पादौ रसमञ्जसम् धमवत् यच्छन्द-

सिनोक्तमत्र गाथेति तत्सूरिभि. कथितम् ।'

(२) 'सभिकः द्यूतकारक.' इत्यमर. ।

तद्यावदेतौ सभिकद्यूतकरावन्यतो मामन्विष्यतः, तावदहं विपरीताभ्यां पादाभ्यामेतच्छून्यदेवकुलं प्रविश्य देवीभविष्यामि । [ता जाव एदे शहिअजूदिअला अण्णदो म अण्णेशन्ति, ताव हक्के विप्पडीवेहिं पादेहिं एद शुण्णदेउलं पविशिअ देवीभविरशम् ।] (बहुविध नाट्य कृत्वा स्थितः ।) तो जब तक ये सभिक और जुआरी दूसरी ओर मुझको खोजते हैं, तब तक मै उलटे पैरो से इस शून्य देव-मन्दिर मे प्रवेश कर "देव" (की प्रतिमा) बन जाऊँ । (विविध प्रकार से अभिनय करके वैसा हो जाता है) ।

(ततः प्रविशति माथुरो द्यूतकरश्च ।)

(तदनन्तर माथुर और द्यूतकर का प्रवेश होता है ।)

माथुर'–अरे भट्टारक, दशसुवर्णस्य रुद्धो द्यूतकरः प्रपलायित. । तद्गृहाण गृहाण । तिष्ठ तिष्ठ । दूरात्प्रदृष्टोसि । [अले भट्टा, दशसुवण्णाह लुद्धु जूदकरु पपलीणु पपलीणु । ता गेण्ह गेण्ह । चिट्ठ चिट्ठ । दूरात्पदिट्टोर्ऽसि ।

माथुर–अरे स्वामी ! दश–सुवर्ण मोहरो का धारक रोका हुआ जुआरी भाग गया, भाग गया । तो पकड़ो ! पकड़ो ! ठहरो ! ठहरो ! दूर से ही दिखाई पड़ गया है ।

विवृति

(१) अन्यतः=दूसरी ओर । (२) विपरीताभ्याम्=उल्टे । (३) पादाभ्याम् =पैरो से । (४) देवकुलम्=मन्दिर मे । (५) देवीभविष्यामि=देव हो जाऊँगा । माथुरः=जुआरियो का अगुआ । द्यूतकर =जुआरी । दूरात् प्रदृष्ट =दूर से देख लिया गया । (६)'न देवः अदेवः, अदेव. देवः सम्पद्यमान. भविष्यामि । देव+च्वि+भू+लृट् । (७) यहाँ पर कपट से अन्य रूप करने के कारण कपट नामक नाट्यालङ्कार है । 'कपट मायया यत्र रूपमन्यत् विभाव्यते ।'–सा० द० ।

द्यूतकर —

द्यूतकर—

यदि व्रजसि पातालमिन्द्रं शरणं च साम्प्रतं यासि ।
सभिकं वर्जयित्वैकं रुद्रोऽपि न रक्षितुं तरति ॥
[जइ वज्जसि पादाल इदं शलणं च सपदं जासि ।
सहिअं वज्जिअ एकं रुद्दो वि ण रक्खिदुं तरइ ॥३॥]

अन्वय.—यदि, पातालम्, व्रजसि, इन्द्रम्, शरणम्, च, यासि, (किन्तु), एकम्, सभिकम्, वर्जयित्वा, रुद्रः, अपि, (त्वाम्) रक्षितुम्, न तरति ॥३॥

पदार्थ.—यदि=यदि, पातालम्=पाताल को, व्रजसि=जाते हो, इन्द्रम्=

इन्द्र, शरणम्=शरण, यासि=जाते हो, एकम्=एकमात्र, सभिकम्=सभिक को, (माथुर को) वर्जयित्वा=छोड़कर, रुद्र=शङ्कर, अपि=भी, रक्षितुम्=बचाने के लिए, न=नहीं, तरति=समर्थ हैं।

अनुवाद—यदि पाताल मे जाते हो अथवा इन्द्र की शरण मे जाते हो (तो भी) सभिक (माथुर) को छोडकर शकर भी रक्षा करने लिए सामर्थ्यवान नही हैं।

संस्कृत टीका:— यदि=चेत (त्वम्), पातालम्=अधोलोकम्, व्रजसि=गच्छसि, (वा) इन्द्रम्=देवेशम्, शरणम्=रक्षकम्, च, यासि=गच्छसि तु एकम्=केवलम्, सभिकम्=द्यूताध्यक्षम, वर्जयित्वा=हित्वा, रुद्र=महादेव, अपि, (त्वाम्) रक्षितुम्=पातुम्, न=नहि, तरति=समर्थं भवति।

समास एवं व्याकरण—(१) व्रजसि—व्रज्+लट्। यासि—या+लट्। रक्षितुम्=रक्ष+तुमुन्। तरति=तृ+लट् इन्द्र—इन्द्+रन् (इदि ऐश्वर्ये)। सभिकम्—सभा+ ईक।(२) सभिकम्—सभा(द्यूतम्)प्रयोजनम् अस्य सभिक।

विवृति

(१) मनु के अनुसार द्यूतकराध्यक्ष को दण्ड देना चाहिए। ९/२२१, मनु० 'अर्थशास्त्र याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति, अग्निपुराण सभिक को राजरक्षित मानते हैं।' —पराञ्जपे। (२) ब्रह्मा, स्वयम्भुव, चतुराननो वा। रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा। इन्द्रो महेन्द्र सुरनायको वा त्रातुम् न शक्ता युधिरामवध्यम्।' (३) पद्य मे आर्या छन्द है।

माथुर —

माथुर—

कुत्र कुत्र सुसभिकविप्रलम्भक! पलायसे रे भयपरिवेपिताङ्गक!।
पदे पदे समविषम स्खलन्कुल यशोऽतिकृष्ण कुर्वन्॥

[कहिं कहिं सुसहिअवप्पलभआ
पलासि ले भअपलि वेविदगआ।
पदे पदे समविसम खलतआ
कुल जस अइकसण कलॅतआ॥४॥]

अन्वय—हे सुसभिक विप्रलम्भक! भयपरिवेपिताङ्गक! कुलम्, यश, अति कृष्णम्, कुवन्, पदे, पदे, समविषमम्, स्खलन्, कुत्र, कुत्र, पलायसे॥४॥

पदार्थ—हे सुसभिक विप्रलम्भक!=हे उत्तम द्यूताध्यक्ष को ठगने वाले, भयपरिवेपिताङ्गक=भय के मारे प्रकम्पित शरीर वाले, कुलम्=वश को, यश=कीर्ति को, अतिकृष्णम्=अत्यन्त मलिन, कुर्वन्—करते हुए, पदे पदे—पग-पग पर, सम-

विषमम—ऊँचे नीचे, स्खलन्—लड़खड़ाते हुए, कुत्र, कुत्र—कहाँ कहाँ, पलायसे—भाग रहे हो ।

अनुवादः—हे श्रेष्ठ समिक के वञ्चक ! तथा डर के मारे प्रकम्पित अंगो वाले ! वंश को एवं कीर्ति को अत्यन्त मलिन करते हुए और पग-पग पर ऊँचे नीचे लड़खड़ाते हुए कहाँ-कहाँ भाग रहे हो ।

संस्कृत टीका—हे सुसमिक विप्रलम्भक !=हे द्यूताध्यक्ष प्रतारक !, भयपरिवेपिताङ्गक != हे भीतिकम्पितशरीर !, कुलम्=वंशम्, यश=कीर्तिम्, अतिकृष्णम्=बहुमलिनम् कुर्वन्=विदधत्, पदे, पदे=प्रतिपादन्यासम्, समविषमम्=उच्चावचम्, स्खलन्=पतन्, कुत्र, कुत्र पलायसे=गच्छसि ।

समास एवं व्याकरण-सुसमिक०—शोभन समिक सुसमिक, विप्रलम्भयति इति विप्रलम्भक सुसमिकस्य विप्रलम्भक तत्सम्बुद्धौ । भय०—भयेन परिवेपितानि अङ्गानि यस्य तत्सम्बुद्धौ । (२) विप्रलम्भक-वि+लम्+ण्वुल् (मुमागम) । कुर्वन्-कृ+शतृ । स्खलन्-स्खल्+शतृ ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे रुचिरा छन्द है-'जभौ सजौ गिति रुचिराचतुरग्रहैं ।'

द्यूतकर-(पदवीक्ष्य ।) एष व्रजति । इयं प्रनष्टा पदवी । (एसो वज्जदि । इअं पणट्टा पदवी ।

द्यूतकर-(पद चिन्ह देख कर) यह जा रहा है । यह पद पंक्ति अदृश्य हो गयी ।

माथुर -(आलोक्य सवितर्कम्) अरे विप्रतीपौ पादौ । प्रतिमाशून्यं देवकुलम् । (विचिन्त्य) धूर्तो द्यूतकरो विप्रतीपाभ्यां पादाभ्यां देवकुलं प्रविष्ट । (अले, विप्पदीवु पादु । पडिमाशुण्णु देउलु । (धुत्त् जूदकरु पिप्पदीवेहिं पादेहिं देउल पविट्ठो ।)

माथुर—(देखकर तर्क पूर्वक) अरे ! उलटे पैर हैं ! मूर्ति रहित देव-मन्दिर! (विचार कर) धूर्त जुआरी उलटे पैरो से देव मन्दिर म घुस गया है ।

द्यूतकर —ततोऽनुसराव । [ता अणुसरेम्ह ।]

द्यूतकर—इसलिए अनुसरण करते हैं ।

माथुर —एवं भवतु । [एव्वं भोदु ।]

माथुर —ऐसा ही हो ।

(उभौ देवकुलप्रवेशं निरूपयत । दृष्ट्वान्योन्यं संज्ञाप्य ।)

(दोनो देव मन्दिर मे प्रवेश का अभिनय करते हैं । देखकर परस्पर संकेत कर)

द्यूतकर —कथं काष्ठमयी प्रतिमा । [कधं कट्ठमयी पडिमा ।]

द्यूतकर—क्या काठ की मूर्ति है ?

माथुर—अरे, न खलु न खलु । शैल प्रतिमा । (इति बहुविध चालयति । सज्ञाप्य च) एव भवतु । एहि । द्यूतेन क्रीडाव. । [अले, णहु णहु । शैलपाडिमा । एव्व भोदु । एहि । जूदं किलेह्य ।] (इति बहुविध द्यूत क्रीडति ।)

माथुर—अरे ! नहीं ! पत्थर की मूर्ति (है)। (ऐसा कह कर विविध प्रकार से हिलाता है और सकेत करके) ऐसा ही करें। आओ ! जुआ खेलते हैं। (ऐसा कह कर नाना प्रकार से जुआ खेलते हैं ।)

विवृति

(१) पदवी=पदपंक्ति । प्रनष्टा=अदृश्य हो गई। विप्रतीपौ=उल्टे। संज्ञाप्य=सकेत करके, शैलप्रतिमा=पत्थर की मूर्ति । द्यूतेच्छाविकारसवरणम= जुआ खेलने की इच्छा की चञ्चलता को रोक। (२) 'अयनम् वर्त्म मार्गाध्वपन्थान पदवी सृति' इत्यमर । (३) शैली च असौ प्रतिमा च शैलप्रतिमा। (४) तुलना— 'कच्चिदासादिता तस्य दुरात्मन कौरवाधमस्य पदवी ।'—वेणीसहार। (५) यहाँ पर परिभावना नामक मुख सन्धि का अङ्ग है। 'कुतूहलोत्तरा वाच प्रोक्ता तु परिभावना ।'—सा० द० ।

सवाहक.—(द्यूतेच्छाविकारसवरण बहुविध कृत्वा स्वगतम् ।) अरे, [अले,]

सवाहक—(जुआ की इच्छा से उत्पन्न होने वाले भावों को विविध प्रकार से रोक कर अपने आप) अरे !

कत्ताशद्दे णिण्णाणअदश हलइ हडक मनुश्शश्श ।
ढक्काशद्देव्व णडाधिवश्श पब्भट्टलज्जश्श ।।५।।
[कत्ताशब्दो निर्नाणकस्य हरति हृदय मनष्यस्य ।
ढक्काशब्द इव नराधिपस्य प्रभ्रष्टराज्यस्य ।।

अन्वय—कत्ताशब्द, निर्नाणकस्य, मनुष्यस्य, प्रभ्रष्टराज्यस्य, नराधिपस्य, ढक्काशब्द, इव, हृदयम्, हरति ।।५।।

पदार्थ—कत्ताशब्द =कौडी की ध्वनि, निर्नाणकस्य=निर्धन के, प्रभ्रष्टराज्यस्य=राज्यच्युत, नराधिपस्य=राजा के, ढक्काशब्द =भेरी की ध्वनि, इव= भाँति, हृदयम्=मन को, हरति=आकर्षित करता है ।

अनुवाद—कौडी की ध्वनि निर्धन मनुष्य के, राज्यच्युत राजा की भेरी ध्वनि की भाति हृदय को आकर्षित करती है ।

संस्कृत टीका—कत्ताशब्द =कत्ताध्वनि, निर्नाणकस्य=निर्धनस्य, मनुष्यस्य=जनस्य, प्रभ्रष्टराज्यस्य=नष्टश्रिय, नराधिपस्य=राज्ञ, ढक्काशब्द'=भेरीरव, इव, हृदयम्=चेत', हरति=आकर्षति ।

समास एव व्याकरण—(१) कत्ता०—कत्ताया. शब्द. । निर्नाणकस्य—न

वणक नाणक, नि (नास्ति) नाणकम् यस्य स निर्नाणक तस्य। प्रभ्रष्ट०प्रभ्रष्टम् राज्यम् यस्य तस्य । नरा०—नराणाम् अधिप तस्य । ढक्काशब्द =ढक्काया शब्द । (२) हरति—हृ+लट् । ढक्का—ढक् इति शब्देन कायति—ढक्+कै+क +टाप् ।

विवृति

(१) उपमा अलकार है (२) अप्रस्तुत—प्रशसा अलकार है। (३) विपुला छन्द है—'उल्लङ्घ्यगणत्रयमादिमम शकलयोर्द्वयामवति पाद । यस्यास्ता पिङ्गलनागो विपुलामिति समाख्याति ।' (४) 'कुकूय कुत्सितावद्यखेटगर्ह्यणिका समा ।' इत्यमर । (५) ढक्का—बडा ढोल—न ते हुडुक्केन न सोपि ढक्कया न मद लैं सापि न तेऽपि ढक्कया'—नैषध० १५/१७ । (६) कत्ताशब्द का प्रयोग केवल मृच्छकटिक म मिलता है।

जाणामि ण कीलिश्श शुमेलुशिहलपघण शण्णिहं जूअ ।
तह वि हु कोइलमहुले कत्ताशद्दे मण हलदि ॥६॥
[जानामि न क्रीडिष्यामि सुमेरुशिखरपतनसंनिभ द्यूतम् ।
तथापि खलु कोकिलमधुर कत्ताशब्दो मनो हरति ॥]

अन्वय—द्यूतम्, सुमेरुशिखरपतनसन्निभम्, जानामि, (अत) न, क्रीडिष्यामि, तथापि, कोकिलमधुर, कत्ताशब्द, खलु, मन, हरति ॥६॥

पदार्थ—द्यूतम्=जुए को, सुमेरुशिखरपतनसंनिभम्=सुमरु गिरि क शृङ्ग से गिरने के समान, जानामि=मानता हूँ, न क्रीडिष्यामि=नही खलूँगा, तथापि= फिर भी, कोकिलमधुर =कोयल की कूक के सदृश मीठी, कत्ताशब्द =कौडी की ध्वनि, खलु=निश्चय ही, मन =मन को, हरति=आकृष्ट कर लेती है ।

अनुवाद—जुए को सुमेरु गिरि के शृङ्ग से गिरने के समान समझता हूँ (इसलिये) नही खलूँगा, फिर भी कोयल की कूक क तुल्य मीठी कौडी की ध्वनि हृदय को हर लेती है ।

सस्कृत टीका—द्यूतम्=अक्षक्रीडनम, सुमेरुशिखरपतनसन्निभम्=हेमाद्रिशृङ्ग-भ्रंशनम, जानामि=अवगच्छामि, अत न=नहि, क्रीडिष्यामि=देविष्यामि तथापि, कोकिलमधुर =पिकरव इव, कत्ताशब्द =कत्तारव, खलु=निश्चयन, मन =चेत, हरति=आकर्षति ।

समास एव व्याकरण—(१) सुमरु०—सुमेरो शिखरात् पतनम तेन सन्निभम् । कोकिल०-कोकिल इव (लक्षणया बोध्य) कोकिलशब्द इव, मधुर । (२) जानामि-ज्ञा+लट् । क्रीडिष्यामि—क्रीड्+लृट् । हरति—हृ+लट ।

विवृति

(१) श्लोक मे उपमा अलकार है (२) विपुला छन्द है (३) कुछ टीकाकार आर्या छन्द मानते हैं। (४) सुमेरु पर्वत पुराणो मे सुवर्ण का कहा गया है और इसे सबसे ऊँचा पर्वत माना गया है इसके चारों ओर सूर्यादि ग्रह घूमते रहते हैं।

द्यूतकर—मम पाठे, मम पाठे। [मम पाठे, मम पाठे।]

द्यूतकर—मेरा दांव ! मेरा दाव !

माथुर—न खलु। मम पाठे मम पाठे। [ण हु। मम पाठे, मम पाठे।]

माथुर—नहीं, मेरा दांव है, मेरा दाव है।

सवाहक—(अन्यत सह सोपसृत्य।) ननु मम पाठे। [ण मम पाठे।]

सवाहक—(दूसरी ओर से सहसा पास आकर) दाव तो मेरा है।

द्यूतकर—लब्ध पुरुष। [लद्धे गोहे।]

द्यूतकर—(अपराधी) मनुष्य मिल गया।

माथुर—(*गृहीत्वा*) *अरे लुप्तदण्डक, गृहीतोऽसि। प्रयच्छ तद्दशसुवर्णम्।* [अले पेदण्डा, गहीदोसि। पअच्छ त दशसुवण्णम्।]

माथुर—(पकड कर) अरे ! दण्ड (हारा हुआ धन) न देने वाले, पकड लिये गये हो, तो वह दश सुवर्ण दो।

सवाहकः—अद्य दास्यामि। [अज्ज दइस्सम्।]

सवाहक—आज दूँगा।

माथुर—अधुना प्रयच्छ। [अहुणा पअच्छ।]

माथुर—अभी दो।

सवाहक—दास्यामि। प्रसाद कुरु। [दइस्सम्। पसाद कलेहि।]

सवाहक—दूँगा। प्रसन्न होइए।

माथुर—अरे, ननु साप्रत प्रयच्छ। [अले, ण सपद पअच्छ।]

माथुर—अरे ! इसी समय दो।

सवाहक—शिरः पतति। [शिलु पडदि।] (इति भूमौ पतति।)

सवाहक—शिर चक्कर खा रहा है। (पृथ्वी पर गिर पडता है।)

(*उभौ बहुविध ताडयत।*)

(दोनो विविध प्रकार से पीटते हैं)।

माथुर—एष त्व खलु द्यूतकरमण्डल्या बद्धोऽसि। [एसु तुम हु जूदिअलमण्ड-लीए बद्धोसि।]

माथुर—यह तुम जुआरियो की टोली के द्वारा पकड लिये गए हो।

सवाहक—(उत्थाय सविषादम्) कथ द्यूतकर मण्डल्या बद्धोऽस्मि। कष्टम्, एषोऽस्माक द्यूतकराणामलघनीय समय। तस्मात्कुतो दास्यामि। [कघ जूदिअल-

मण्डलीए वद्धो ह्मि । ही, एशे अह्माण जूदिअलाण अलघणीए शमए । ता कुदो दइश्शम् ।

संवाहक—(उठकर विषादपूर्वक) क्या जुआरिओ की मण्डली के द्वारा निगृहीत हूँ ? खेद है ! यह हम जुआरिओ का उल्लंघन न करने योग्य समय (नियम) है। इसलिए कहाँ से दूँगा।

माथुर—अरे, गण्ड क्रियता क्रियताम् । [अले गण्डे कुलु कुलु ।]

माथुर—अरे ! शर्त मान लो।

संवाहक—एव करोमि । (द्यूतकरमुपस्पृश्य ।) अर्धं तुभ्य ददामि, अर्धं मे मुञ्चतु । [एव्व कलेमि । अद्ध ते देमि, अद्ध मे मुञ्चदु ।]

संवाहक—ऐसा ही करता हूँ । (द्यूतकर को छूकर) आधा तुम्हें देता हूँ, आधा मेरे लिए छोड दें।

द्यूतकर—एव भवतु । [एव्व भोदु ।)

द्यूतकर—ऐसा ही सही !

संवाहक—(सभिकमुपगम्य ।) अर्धस्य गण्ड करोमि । अर्धमपि म आर्यो मुञ्चतु । (अद्धश्श गण्डे कलेमि । अद्ध पि मे अज्जो मुञ्चदु ।)

संवाहक—(सभिक के समीप जाकर) आधे की शर्त करता हूँ । आर्य ! आधा मेरे लिए भी छोड दे !

माथुर—को दोष । एव भवतु । (को दोसु । एव्व भोदु ।)

माथुर—क्या हर्ज है ? ऐसा ही सही ।

संवाहक—(प्रकाशम्) आर्य, अर्धं त्वया मुक्तम् । (अज्ज, अद्धे तुए मुक्के ।)

संवाहक—(प्रकट रूप म) आर्य ! आधा तुमने छोड दिया ?

माथुर—मुक्तम् । (मुक्के ।)

माथुर—छोड दिया ।

संवाहक—(द्यूतकर प्रति) अर्धं त्वयापि मुक्तम् । (अद्धे तुए वि मुक्के ।)

संवाहक—(जुआरी से) आधा तुमने भी छोड दिया ?

द्यूतकर—मुक्तम् । (मुक्के ।)

द्यूतकर—छोड दिया ।

संवाहक—साप्रत गमिष्यामि । (सपद गमिश्शम् ।)

संवाहक—इस समय (मैं) जाता हूँ ।

माथुर—प्रयच्छ त दशसुवर्णम् । कुत्र गच्छसि । (पअच्छ त दशसुवण्णम्, कहिं गच्छसि ।)

माथुर—उन दस मोहरो को दो ! कहाँ जाते हो ?

विवृति

(१) पाठे=दाँव । लुप्तदण्ड=हारा हुआ द्रव्य न देने वाले । पतति= घूमता है । अलघनीया=जिसका उल्लघन न हो सके । समय=नियम । गण्ड= प्रबन्ध । साम्प्रतम्=अब । (२) लुप्त दण्ड येन तत्सम्बुद्धौ । (३) द्यूतकर मण्डल्या—द्यूतकराणा मण्डली तया । (४) 'समया शपथाचारकालसिद्धान्तसविदः' इत्यमर । (५) 'प्राप्ते नपतिना भागे प्रसिद्धे धूर्तमण्डली । जित ससभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ।'—याज्ञ०

सवाहक—प्रेक्षध्व प्रेक्षध्व भट्टारका । हा, साप्रतमेव एकस्यार्धो गण्ड कृत, *अपरस्यार्ध मुक्तम् । तथापि माम बल साप्रतमेव याचते ।* (पेक्खध पेक्खध भट्टालआ। हा, सपद ज्जेव एक्काह अद्धे गण्डे कडे, अवलाह अद्धे मुक्के । तहवि म अबल शपद ज्जेव मग्गदि ।)

सवाहक—महानुभावो ! देखिये ! देखिये ! हा ! अभी ही तो एक ने आधे की शर्त की है, दूसरे ने आधा छोड दिया है । फिर भी मुझ दुर्बल से इस समय माँग रहे हो ।

माथुर—(गृहीत्वा) धूर्त, माथुरोऽह निपुण । अत्र नाह धूर्तयामि । तत्प्रयच्छ त लुप्तदण्डक, सर्वं सुवर्णं साप्रतम् । (धुत्त, माथुरु अह णिअणु । एत्थ तुए ण अह धुत्तिज्जामि । ता पअच्छ त पेदण्डआ, सव्व सुवण्ण सपदम् ।)

माथुर—(पकडकर) अरे धूर्त ! मैं चतुर माथुर हूँ । यहाँ मैं धूर्तता नही कर रहा हूँ । इसलिए दण्ड न देने वाले (ठग) ! वहसभी सोना इसी समय दे !

सवाहक—कुतो दास्यामि । (कुदो दइश्शम् ।)

सवाहक—कहाँ से दूँगा ?

माथुर—पितर विक्रीय प्रयच्छ । (पिदरु विक्किणिज्ज पअच्छ ।)

माथुर—पिता को बचकर दे !

सवाहकः—कुतो मे पिता । (कुदो मे पिदा ।)

सवाहक—मेरे पिता कहाँ है ?

माथुर—मातर विक्रीय प्रयच्छ । (मादरु विक्किणिज्ज पअच्छ ।)

माथुर—माता को वेचकर दे !

सवाहक—कुतो मे माता । (कुदो मे मादा ।)

सवाहक—मेरी माता कहा है ?

माथुर—आत्मान विक्रीय प्रयच्छ । (अप्पाण विक्किणिअ पअच्छ ।)

माथुर—अपने को बचकर दे !

सवाहक—कुरुत प्रसादम् । नयत मा राजमार्गम् । (कलेध पशादम् । णेध

म लाजमग्गम् ।)

सवाहक—कृपा कीजिये । मुझे राजपथ (सड़क) पर ले चलें ।

माथुर-प्रसर । [पसरू ।]

माथुर-चलो ।

सवाहक—एव भवतु (परिक्रामति ।) आर्या, क्रीणीध्व मामस्य समिकस्य हस्ताद्दशभि सुवर्णकै (दृष्ट्वा आकाशे) किं भणत-'किं करिष्यसि' इति । गेहे ते कर्मकरो भविष्यामि । कथम् । अदत्वा प्रति वचन गत । भवत्वेवम् । इममन्य भणिष्यामि । कथम् । एषोऽपि मामवधीर्य गत । हा, आर्यचारुदत्तस्य विभवे विघटिते एष वर्ते मन्द भाग्य । [एव्व भोदु । अज्जा, किणिध म इमदश शहिअश्श हत्थादो दशेहि शुवण्णकेहि । किं भणाध-'किं क्लइश्शशि' त्ति । गेहे दे कम्मकले हुविश्शम् । कधम् अदइअ पडिवअण गदे । भोदु एव्वम् । इम अण्ण भणइस्सम् । (पुनस्तदेव पठति ।) कधम् । एशे वि म अवधीलिअ गदे । हा, अज्जचानुदत्तास्स विहवे विहडिदे एशे वड्ढामि मन्दभाए ।]

सवाहक—ऐसा ही हो । (घूमता है ।) सज्जनो ! मुझे इस समिक के हाथ से दश सोने की मुहरो से खरीद लीजिए । (आकाश की ओर देखकर) क्या कहते हो कि क्या करोगे ? तुम्हारे घर मे नौकर हो जाऊँगा । क्यो ? बिना उत्तर दिये ही चला गया । जाने दो ! इस दूसरे (मनुष्य) से कहूँगा ? (फिर वही पढता है ।) क्यों ? यह भी मेरी उपेक्षा करके चला गया ? हा ! आर्य चारुदत्त के वैभव के विनाश से मैं इस प्रकार अभागा हो गया हूँ ।

माथुर – ननु देहि । [ण देहि ।]

माथुर – दो न !

सवाहक – कुतो दास्यामि । [कुदो दइश्शम् ।] (इति पतति ।)

सवाहक – कहाँ से दूँ ? (ऐसा कह कर गिर पड़ता है ।)

(माथुर कर्षति ।)

(माथुर खीचता है ।)

सवाहक – आर्या, परित्रायध्व परित्रायध्वम् । [अज्जा, पलित्ताअध पलित्ताअध ।]

सवाहक — सज्जनो ! रक्षा कीजिये ! रक्षा कीजिये !

(तत प्रविशति दर्दुरक ।)

(तदनन्तर दर्दुरक प्रवेश करता है ।)

दर्दुरक — भो, द्यूत हि नाम पुरुषस्या सिंहासन राज्यम् ।

दर्दुरक — अरे ! जुआ भी मनुष्य का बिना राजगद्दी (सिंहासन) का राज्य है ।

विवृति

(१) अबलम्=दुर्बल । धूर्तयामि=छल कर रहा हूँ । प्रसर=चलो । आकाशे=आकाश की ओर । कर्मकर=सेवक । प्रतिवचनम्=उत्तर । अवधीर्य= उपेक्षा करके । विघटिते=विनष्ट हो जाने पर । वर्त्ये=हो गया हूँ । असिंहासनम्= बिना सिंहासन का । (२) आकाशे-बिना पात्र के आकाश की ओर देखकर कहा गया आकाशभाषित कहलाता है—'किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये बिना पात्रं प्रयुज्यते । श्रुत्वे वा नुक्तमप्यर्थम् तत्स्यात् आकाशभाषितम् । (३) नास्ति सिंहासनम् यस्मिन् तत् असिंहासनम् । (४) 'धूर्तं करोति आचष्टेवा' इस अर्थ में धूर्त+णिच्+लट् । (५) द्यूतम् हि नाम०-'वीणा असमुद्रोत्थितं रत्नम् ।' यज्ञोपवीतम् अमौक्तिकमसौवर्णम् ब्राह्मणानाम् विभूषणम् ।

न गणयति पराभवं कुतश्चिद्धरति ददाति च नित्यमर्थजातम् ।
नृपतिरिव निकाममायदर्शी विभववता समुपास्यते जनेन ॥७॥

अन्वय :-(द्यूतम्), कुतश्चित्, पराभवम्, न, गणयति, नित्यम्, अर्थजातम्, हरति, ददाति, च, निकामम्, आयदर्शी, राजा, इव, विभववता, जनेन, समुपास्यते ॥७॥

पदार्थ —कुतश्चित्=किसी से अथवा कहीं से, पराभवम्=तिरस्कार अथवा पराजय, न=नहीं, गणयति=गिनता है, नित्यम्=प्रतिदिन, अर्थजातम्=धनराशि, हरति=लेता है ददाति=देता है, निकामम्=पर्याप्त, आयदर्शी=लाभ दर्शयिता, राजा=नरेश, इव=भांति, विभववता=धनशाली, जनेन=मनुष्य से, समुपास्यते= सेवित होता है ।

अनुवाद —किसी से अथवा कहीं से तिरस्कार अथवा पराजय को नहीं गिनता है, प्रतिदिन धनराशि का आहरण करता है और दान करता है पर्याप्त रूप से लाभदर्शयिता नरेश की भाँति धनशाली मनुष्य से सेवित होता है ।

संस्कृत टीका —कुतश्चित्=कस्मादपि, पराभवम्=पराजयम् अनादरम् वा, न गणयति=न मनुते, नित्यम्=सदा, अर्थजातम्=धनराशिम्, हरति=गृह्णाति, ददाति=अर्पयति, च, निकामम्=पर्याप्तम्, आयदर्शी=अर्थागमदर्शी, राजा=नरेश, इव, विभववता=सम्पत्तिशालिन, जनेन=मनुष्येण, समुपास्यते=सेव्यते ।

समास एवं व्याकरण – (१) आयदर्शी-आयम्द्रष्टुम् शीलमस्य अथवा आयम् दर्शयतीति विभववता-प्रशस्त विभव अस्यास्तीति विभववान् तेन (२) आयदर्शी-आय+दृश्+णिनि (ताच्छील्ये) । विभववान्=विभव+मतुप् । पराभवम्—परा+भू+अप् । गणयति—गण्+लट् । हरति—हृ+लट् । ददाति—दा+ लट् । समुपास्यते—सम+उप+आस्+यक्+लट् ।

विवृति

(१) 'कामम् प्रकामम् पर्याप्तम् निकामेष्टम् यथेप्सितम्' इत्यमर : (२) उपमाअलङ्कार है। (२) पुष्पिताग्रा छन्द है–'अयुजि न युग रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा'। (३) अनेक क्रियाओं का एकत्र अन्वय होने से दीपक अलङ्कार है।

अपिच्।

और भी–

द्रव्य लब्ध द्यूतेनैव दारा मित्र द्यूतेनैव।
दत्त भुक्त द्यूतेनैव सर्वं नष्ट द्यूतेनैव ॥८॥

अन्वय—द्यूतेन, एव, द्रव्यम्, लब्धम्, द्यूतेन, एव, दारा मित्रम्, (लब्धम्), द्यूतेन, एव, दत्तम् भुक्तम्, द्यूतेन, एव, सर्वम्, नष्टम् ॥८॥

पदार्थ—द्यूतेन=जुए से, एव=ही, द्रव्यम्=धन, लब्धम्=प्राप्त किया, एव=ही, दारा=स्त्री, मित्रम्=साथी, दत्तम्=दिया, भुक्तम्=खाया गया, सर्वम् सब कुछ, नष्टम्=समाप्त हो गया।

अनुवाद—जुए से ही धन प्राप्त किया, जुए से ही स्त्री और मित्र (प्राप्त किये), जुए ने ही दिया और खाया। जुए ने ही सब कुछ समाप्त कर दिया।

संस्कृत टीका—द्यूतेन=द्यूत क्रीडनेन, एव, द्रव्यम्=द्रविणम्, लब्धम्= प्राप्तम्, द्यूतेन, एव, दारा =स्त्रिय', मित्रम्=सुहृत्, द्यूतेन, एव, दत्तम्=समर्पितम्, भुक्तम्=उपभोग कृत, द्यूतेनैव, सर्वम्=निखिलम्, धनम्, नष्टम्=हृरितम्।

समास एव व्याकरण—लब्धम्–लभ्+क्त। दत्तम्–दा+क्त। भुक्तम्= भुज्+क्त। नष्टम्=नश्+क्त। द्रव्यम्–द्रु+यत्। द्यूत–दिव्+क्त (ऊठ्)। दारा–दॄ=घञ्।

विवृति

(१) पद्य मे प्राप्ति और विनाश रूप विरूप वस्तुओं का एक सघटन होने से विषम अलङ्कार है। (२) विद्युन्माला छन्द है–'मो मो गो गो विद्युन्माला (३) दारा– 'दार' शब्द का प्रयोग पुल्लिङ्ग एव बहुवचन मे होता है इसका अर्थ है स्त्री। 'एते वयममी दारा कन्येयम् कुलजीवितम्'—कु०

अपि च।

और भी–

त्रेताहृतसर्वस्वः पावरपतनाच्च शोषितशरीर'।
नर्दितदर्शितमार्ग. कटेन विनिपातितो यामि ॥९॥

अन्वय—त्रेताहृतसर्वस्व, पावरपतनात्, शोषितशरीर, नर्दितदर्शितमार्ग,

कटेन, विनिपातित , यामि ॥९॥

पदार्थ—त्रेताहृतसर्वस्व =तीया ने जिसका सब कुछ छीन लिया है, पावर-पतनात्=दूआ के गिरने से, शोषित शरीर =जिसका शरीर सुखा दिया गया है, नर्दितदर्शितमार्ग =नक्का के द्वारा रास्ता दिखा दिया गया, कटेन=पूरा के द्वारा, विनिपातित =मारा हुआ, यामि =जा रहा हूँ।

अनुवाद—तीया के कारण सबकुछ छीन लिया गया, दूआ के गिरने से शुष्क शरीर वाला, नक्का के द्वारा रास्ता दिखाया गया तथा पूरा से मारा गया, जा रहा हूँ।

संस्कृत टीका—त्रेताहृतसर्वस्व ='तीया' क्रीडापहृतधन , पावरपतनात्= 'दूआ' इति पातात्, शोषितशरीर =शुष्कीकृतवपु , नर्दितदर्शितमार्ग ='नक्का' इति निर्दिष्टपन्था , कटेन=पूरेति ख्यातेन, विनिपातित =नि शेषेण, नाशित , यामि= व्रजामि।

समास एवं व्याकरण—(१) त्रेता०-त्रेता हृतम् सर्वस्वम् यस्य तादृश । पावर०—पावरस्य पतनात्। शोषित०-शोषितम् शरीरम् यस्य स । नर्दिता०-नार्दितेन दर्शित मार्ग यस्य स । (२) विनिपातित—वि+नि+पत्+णिच्+क्त। यामि-या+लट्।

विवृति

(१) त्रेता=तीया (३, ७, ११, १५)। (२) पावर=दूआ (२, ६, १०, १४)। (३) नर्दित=नक्का (१, ५ ९, १३)। (४) कट=पूरा (४, ८, १२, १६)। (५) इस पद्य में जुए के ४ सङ्केतित शब्दों का प्रयोग हुआ है जिसकी टीकाकारों ने पूर्वकथित व्याख्या की है ये जुए के चार प्रकार के दाँव हैं। (६) आर्या छन्द है।

(अग्रतोऽवलोक्य।) अयमस्माक पूर्वसभिको माथुर इत एवाभिवर्तते। भवतु। अपक्रमितु न शक्यते। तदवगुण्ठयाम्यात्मानम्। (बहुविध नाट्य कृत्वा स्थित। उत्तरीय निरीक्ष्य।

(आगे की ओर देखकर) यह हमारा भूतपूर्व सभिक (जुआ कराने वाला) इधर ही आ रहा है। अच्छा, भागा तो नहीं जा सकता। तो अपने को ढक लेता हूँ। (विविध अभिनय पूर्वक खड़ा हो जाता है। अपने दुपट्टे को देखकर)

अय पट. सूत्रदरिद्रता गतो ह्यय पटश्छिद्र शतैरलङ्कृत.।
अय पट प्रावरितु न शक्यते ह्यय पट सवृत एव शोभते ॥१०॥

अन्वय—अयम्, पट , सूत्रदरिद्रताम्, गत , अयम्, पट , हि, छिद्रशतै , अलङ्कृत , अयम्, पट , प्रावरितुम्, न, शक्यते, अयम्, पट , हि, सवृत , एव, शोभते ॥ १० ॥

पदार्थ –अयम् = यह, पट = वस्त्र, सूनदरिद्रताम् = तन्तुओं की जीर्णता को, गत = प्राप्त हो गया है, हि = निश्चय, छिद्रशतैं = सैंकडो छेदो से, अलकृत = विभूषित, प्रावरितुम् = ढकने मे, न = नहीं, शक्यते = समर्थ है, सवृत = सकुचित, शोमते = सुन्दर प्रतीत होता है ।

अनुवाद –यह वस्त्र तन्तुओं की जीर्णता को प्राप्त हो गया है, यह वस्त्र निश्चय ही सैंकडो विवरो से विभूषित है, यह वस्त्र ढकने मे समर्थ नही है और यह वस्त्र वस्तुत सकुचित ही सुशोभित होता है ।

सस्कृत टीका–अयम् = असौ, पट = वस्त्रम्, सूनदरिद्रताम् = तन्तुजीर्णताम्, गत = प्राप्त , अयम्, पट , हि = निश्चयेन, छिद्रशतैं = विवरबहुत्वै , अलकृत = विभूषित , अयम्, पट , प्रावरितुम् = आच्छादयितुम्, न = नहि, शक्यत = समर्थ्यते, अयम्, पट , हि = वस्तुत , सवृत = सकुचित , एव, शोमते = भाति ।

समास एव व्याकरण—(१) सूत्र०-सूत्राणाम् दरिद्रताम् । छिद्र०-छिद्राणाम् शतै । (२) गत—गम् + क्त । अलकृत —अलम् + कृ + क्त । प्रावरितुम्—प्र + आ + वृ + तुमुन् । सवृत —सम + वृ + क्त । शक्यत—शक् + यक् + लट् । शोभते—शुभ + लट् ।

विवृति

(१) वशस्य छन्द है—'जतौ तु वशस्यमुदीरित जरौ '। (२) इस पद्य म 'अयम् पट ' का कई वार प्रयोग होने स अनवीकृत दोष है किन्तु अज्ञ व्यक्ति से प्रयुक्त होने के कारण क्षम्य है ।

अथवा किमय तपस्वी करिष्यति । यो हि

अथवा, यह बेचारा (मायुर) क्या करेगा ? जो मैं—

पादेनैकेन गगने द्वितीयेन च भूतले ।
तिष्ठाम्युल्लम्बितस्तावद्यावत्तिष्ठति भास्करः ॥११॥

अन्वय—एकेन, पादेन, गगने, द्वितीयेन, च, भूतले उल्लम्वित , तावत, तिष्ठामि, यावत्, भास्कर , तिष्ठति ॥११॥

पदार्थ —एकेन = एक, पादन = चरण से, गगने = आकाश म, द्वितीयेन = दूसरे (पैर) से, च = और, भूतले = पृथ्वी पर, उल्लम्वित = लम्बायमान, तावत् = तब तक, तिष्ठामि = स्थिर रह सकता हूँ, यावत् = जब तक, भास्कर = सूर्य, तिष्ठति = रहता है ।

अनुवाद —एक चरण से आकाश म तथा दूसरे (चरण) से धरणी पर लम्बायमान तब तक स्थिर रह सकता हू, जब तक सूर्य रहता है ।

सस्कृत टीका–एकेन, पादेन = चरणेन, गगन = आकाशे, द्वितीयेन = अपरेण,

च, भूतले=धरण्याम्, उल्लम्बित =ऊर्ध्वलम्बितशरीर, तावत्=तावत्काल-पर्यन्तम्, तिष्ठामि=स्थातुम् शक्नोमि, यावत्=यावत्कालम्, भास्कर= दिनकर, तिष्ठति-अस्त न भवति।

समास एव व्याकरण-उल्लम्बित —उद्+लम्ब्+क्त। तिष्ठामि—स्था+लट्। भास्कर = भास्+कृ+अप्।

विवृति

(१) पथ्यावक्त्र छन्द है।

माथुर—दापय दापय। [दापय दापय।]

माथुर—दिलाओ! दिलाओ!

संवाहक—कुतो दास्यामि। [कुदो दइस्सम्।]

संवाहक—कहाँ से दूँ?

(माथुर कर्षति)

(माथुर खींचता है।)

दर्दुरक—अये, किमेतदग्रत। आकाशे।) किं भवानाह—'अय द्यूतकर सभिकेन खलीक्रियते, न कश्चिन्मोचयति।' इति नन्वय दर्दुरो मोचयति। (उपसृत्य)। अन्तरमन्तरम्। (दृष्ट्वा।) अये, कथ माथुरो धूर्त। अयमपि तपस्वी संवाहक।

दर्दुरक-अरे! यह आगे क्या हो रहा है? (आकाश की ओर) आप क्या कहते हैं-'यह जुआरी सभिक के द्वारा पीटा जा रहा है, कोई नही छुडाता है?' तो लो यह दर्दुरक छुडाता है। (समीप जाकर) बस! बस! अलग हटो! (देख कर) अरे! क्या धूर्त माथुर है? यह भी बेचारा संवाहक?—

विवृति

(१) अग्रत =सामने से। खलीक्रियते=सताया जा रहा है, कुचला जा रहा है, प्रताडित किया जा रहा है। अन्तरमन्तरम्=जगह दो, जगह दो। तपस्वी=बेचारा। धूर्त =जुआरी।

य. स्तब्ध दिवसान्तमानतशिरा नास्ते समुल्लम्बितो
यस्योद्धर्षण लोष्टकैरपि सदा पृष्ठे न जात. किण।
यस्यैतच्च न कुक्कुरैरहरहर्जङ्घान्तर चर्व्यते
तस्यात्यायत कोमलस्य सतत द्यूतप्रसङ्गेन किम्? ॥१२॥

अन्वय—य, दिवसान्तम्, आनतशिरा, (सन्), स्तब्धम्, समुल्लम्बित, न आस्ते, यस्य, पृष्ठे, उद्घर्षणलोष्टकै, अपि, सदा, किण, न, जात, यस्य च, एतत्, जङ्घान्तरम् कुक्कुरै, अह अह, न, चर्व्यते, अत्यायतकोमलस्य, तस्य, सततम्, द्यूत-प्रसङ्गेन, किम्? ॥१२॥

पदार्थ–य =जो, दिवसान्तम्=सायकाल तक, आनतशिरा =नीचे शिर करके स्तब्धम्=शान्त, समुल्लम्बित =लटका हुआ, न=नही, आस्ते=रह सकता है, यस्य =जिसकी, पृष्ठे=पीठ म, उद्घर्षणलोप्टकै =घसीटे जाने पर ढेलों से, अपि=भी, सदा=सदैव, किण =घाव का चिन्ह, न—नही, जात =हुआ है, यस्य=जिसके, जङ्घान्तरम्=जांघ का मध्यभाग, कुक्कुरै =कुत्तो से, अह अह =प्रतिदिवस, न= नही, चर्व्यते=चबाया जाता है, अत्यायतकोमलस्य=अत्यन्त कोमल, द्यूतप्रसङ्गेन= जुआ खेलने से, किम=क्या प्रयोजन ?

अनुवाद—जो सायङ्काल तक नतमस्तक एव निश्चल लटका नही रह सकता, जिसकी पीठ पर प्रतिदिन घसीटे जाने से ढेलो के द्वारा भी व्रण चिन्ह नही बना है तथा जिसके जाङ्घो का यह मध्यभाग कुत्तो से प्रतिदिवस नही चबाया जाता है, (ऐसे) अतिशय सुकुमार पुरुष को सदा जुआ खेलने से क्या प्रयोजन ?

संस्कृत टीका—य =मनुष्य, दिवसान्तम्=सन्ध्याम् यावत्, आनतशिरा = नतमस्तक, स्तब्धम्=शान्तम्, समुल्लम्बित =अधोलम्बित, न=नहि, आस्ते= तिष्ठति, यस्य=मनुष्यस्य, पृष्ठे=पृष्ठ प्रदेशे, उद्घर्षणलोप्टकै =उद्घर्षणेष्टिका-खण्डै, अपि, सदा= सर्वदा, किण=शुष्कव्रण, न=नहि, जात =उत्पन्न यस्य= जनस्य, च, एतत् =इदम्, जङ्घान्तरम्=जङ्घान्तरालम्, कुक्कुरै =श्वभि, अह अह.=प्रतिदिनम्, न, चर्व्यते—खाद्यते, अत्यायतकोमलस्य=अतिशय—सुकुमारस्य, तस्य=जनस्य, सततम्=सदा, द्यूतप्रसङ्गेन=द्यूतव्यापारेणा, किम् - किम् प्रयोजनम् ?

समास एव व्याकरण— [१] आनतशिरा—आनतम् शिरा यस्य स । उद्घर्षणलोप्टकै – उद्घृष्यन्ते एभि इति उद्घर्षणानि कुत्सितानि लोप्टानि लोप्टकानि उद्घषणानि च तानि लोप्टकानि उद्घर्षणलोप्टकानि तै । जङ्घान्तरम्— जङ्घयो अन्तरम् । अत्यायतकोमलस्य—अत्यायत कोमल तस्य अथवा अत्यायत चासौ कोमलश्चेति अत्यायतकोमल तस्य । द्यूतप्रसङ्गेन—द्यूतस्य प्रसङ्ग द्यूतप्रसङ्ग तेन ।

[२] स्तब्धम्—स्तम्भ्+क्त । समुल्लम्बित —सम्+उत्+लम्ब्+क्त । आस्ते—आस्+लट् । उद्घर्षण—उद्+घृष्+ल्युट् । लोप्टक= लोप्ट्+कन् । अह अह—नित्यवीप्सयो से द्वित्व । चर्व्यते= चर्व्+यक्+लट् । जात—जन् +क्त ।

विवृति

(१) काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । (२) कुछ टीकाकार अप्रस्तुत प्रशसा अलकार कहते है। (३) कुछ टीकाकार व्यतिरेक अलङ्कार कहते हैं । (४) इसमे दर्दुरक की सर्वदु खसहिष्णुता रूपी वस्तुध्वनि है । (५) शार्दूलविक्रीडित छन्द है । 'सूर्याश्वैर्यदिम सजौसततगा शार्दूलविक्रीडितम् ।'

भवतु । माथुर तावत्सान्त्वयामि । (उपगम्य ।) माथुर, अभिवादये । अच्छा, माथुर को तब तक सान्त्वना देता हू (पास जाकर) माथुर जी नमस्कार !

(माथुर प्रत्यभिवादयते ।)

(माथुर नमस्कार का उत्तर देता है ।)

दर्दुरक —किमेतत् ।

दर्दुरक—यह क्या ?

माथुर —अय दशसुवर्ण धारयति । [अअ दशपुवण्ण धालेदि ।]

माथुर—यह दश–स्वर्ण मोहरें लिये हुए है ।

दर्दुरक —ननु कल्यवर्तमेतत् ।

दर्दुरक—यह तो प्रातराश जैसा (तुच्छ धन) है ।

माथुर —(दर्दुरस्य कक्षतललुण्ठीकृत पटमाकृष्य) भर्तार, पश्यत । जर्जरपटप्रावृतोऽय पुरुषो दशसुवर्ण कल्यवर्त भणति । [मट्टा, पश्शत पश्शत । जज्जरपडप्पावुदो अअ पुलिशो दशसुवण्ण कलवत्त भणादि]

माथुर—(दर्दुरक की बगल मे लिपटे कपडो को खीच कर) महाशय गण ! देखिये ! देखिये ! जीर्ण शीर्ण वस्त्र से शरीर ढकने वाला यह मनुष्य दश स्वर्ण मोहरो को कलेवा बतलाता है ।

दर्दुरक –अरे मूर्ख, नन्वह दशसुवर्णान्कटकरणेन प्रयच्छामि । तत्कि यस्यास्ति धन स कि क्रोडे कृत्वा दर्शयति । अरे,

दर्दुरक —अरे मूर्ख ! म दश स्वर्ण मुहरें एक दांव से (कौडी या पाशा फेंककर) देता हूँ ! तो क्या जिसके पास धन होता है, वह क्या गोदी मे रख कर (ससार को) दिखलाता फिरता है ? अरे !—

विवृति

(१) सान्त्वयामि=शान्त करता हू । कल्यवर्तम्=कलेवा सदृश तुच्छ । कक्षातललुण्ठीकृतम्=कांख के नीचे लटेटा हुआ । जर्जरपटप्रावृत =जीर्ण शीर्ण कपडे मे ढका हुआ । कटकरणेन=पूरा नामक दांव से । क्रोडे=गोद मे (२) कक्षतल–लुण्ठीकृतम्–कक्षतले लुण्ठीकृतम् । (३) जर्जरपटेन प्रावृत य स । (४) कटस्य करणेन इति ।

दुर्वर्णोऽसि विनष्टोऽसि दशस्वर्णस्य कारणात् ।

पञ्चेन्द्रियसमायुक्तो नरो व्यापाद्यते त्वया ॥१३॥

अन्वय –(हे माथुर ! त्वम्), दुर्वर्ण , असि, विनष्ट , असि, (यत्) त्वया, दशस्वर्णस्य, कारणात्, पञ्चेन्द्रियसमायुक्त , नर व्यापाद्यते ॥ १३ ॥

पदार्थ –दुर्वर्ण –अधम जाति, असि=हो, विनष्ट=पतित, त्वया=तुमसे, दशस्वर्णस्य=सोने की दश मुहरो के, कारणात्=कारण से, पञ्चेन्द्रियसमायुक्त= पाँच इन्द्रियो से युक्त, नर =मनुष्य, व्यापाद्यते=मारा जाता है ।

अनुवाद –(हे माथुर ! तुम) नीच जाति हो तथा पतित हो (जो कि) तुमसे दश स्वर्णमुद्राओ के कारण पाँच इन्द्रियों से युक्त मनुष्य मारा जा रहा है ।

सस्कृत टीका –दुर्वर्ण =अधम जाति, असि, विनष्ट =पतित, असि, (यत्) त्वया=माथुरेण, दशस्वर्णस्य कारणात्=दशकनकमुद्राहेतो, पञ्चेन्द्रियसमायुक्त =पञ्चकरणसवलित:, नर =मनुष्य, व्यापाद्यते=हन्यते ।

समास एव व्याकरण –(१) दुर्वर्ण –दुष्ट वर्ण यस्य स । दशस्वर्णस्य– दशानाम् स्वर्णानाम् समाहार तस्य । पञ्चन्द्रियसमायुक्त —पञ्चभि इन्द्रियै समायुक्त । (२) असि-अस्+लट् । विनष्ट —वि+नश्+क्त । समायुक्त —सम्+आ+ युज्+क्त । व्यापाद्यते—वि+आ+पद्+णिच्+यक्+लट् ।

विवृत्ति

(१) काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । (२) अनुष्टुप् छन्द है ।

माथुर —मर्त, तव दशसुवर्ण कल्यवर्त । ममैष विभव । [भट्टा, तुए दशसुवण्णु कल्लवत्तु । मए एसु विहवु ।]

माथुर-प्रभो ! तुम्हारे लिय दश-स्वर्ण मोहरें कलेवा हैं । यह तो मेरी सम्पत्ति है ।

दर्दुरक—यद्येवम्, श्रूयता तर्हि । अन्यास्तावद्दश सुवर्णानस्यैव प्रयच्छ । अयमपि द्यूत खीलयतु ।

दर्दुरक—यदि ऐसा है, तो सुनिए–तो इसे दश-स्वर्ण मुहरें और दो, यह भी जुआ खेले ।

माथुर – तत्कि भवतु । [तत्कि भोदु ।]

माथुर—तो क्या होगा ?

दर्दुरक —यदि जेष्यति तदा दास्यति ।

दर्दुरक–यदि जीतेगा तो देगा ।

माथुर –अथ न जयति । [अह ण जिणादि ।]

माथुर–यदि नहीं जीतता है ।

दर्दुरक —तदा न दास्यति ।

दर्दुरक–तब नही देगा ।

माथुर —अथ न युक्त जल्पितुम् । एवमाचक्षाण त्व प्रयच्छ धूर्तक । अहमपि नाम माथुरा धूतो द्यूतं मिथ्या दर्शयामि । अन्यस्मादप्यह न बिभेमि । धूर्त, खण्डित-वृत्तोऽसि त्वम् । [अस ण जुत्त जप्पिदुम् । एव्व अक्खन्तो तुम पयच्छ धुत्तआ । अह

पि णाम माथुरु धुत्तु जूद मिरथा आदसआमि । अण्णस्स वि अहू ण बिभेमि । धुत्ता, खण्डितो सि तुमम् ।]

माथुर—अनर्गल बात बोलना उचित नहीं है । धूर्त ! इस प्रकार कहते हो, तुम्ही दे दो । मैं भी धूर्त माथुर हूँ ! जुआ छल से खेलता हूँ । दूसरे से भी मैं नहीं डरता हूँ । धूर्त ! तू चरित्रहीन है ।

दर्दुरक –अरे, क खण्डितवृत्त ।

दर्दुरक–अरे ! कौन चरित्रहीन है ?

माथुर –त्वं खलु खण्डितवृत्त । [तुम हु खण्डिअवुत्तो ।]

माथुर–तुम्ही चरित्रहीन हो ।

दर्दुरक –पिता ते खण्डितवृत्त । (सवाहकस्यापक्रमितु सज्ञा ददाति ।)

दर्दुरक–तेरे पिता चरित्रहीन हैं । (सवाहक को भाग जाने का सकेत देता है।)

माथुर –वेश्यापुत्र, एवमेव द्यूत त्वया सेवितम् । [गोसाविआपुत्ता, एव्व ज्जेव जूद तुए सेविदम् ।]

माथुर–गणिका के बच्चे ! ऐसे ही जुआ तुमने खेला है ?

दर्दुरक –मयैव द्यूतमासेवितम् ।

दर्दुरक–मैंने इसी प्रकार जुआ खेला है ।

माथुर –अरे सवाहक, प्रयच्छ तद्दशसुवर्णम् । [अले सवाहआ, पअच्छ त दशसुवण्णम् ।]

माथुर–अरे सवाहक ! वह दश स्वर्ण मुहरें दो ।

सवाहक –अद्य दास्यामि । तावद्दास्यामि । [अज्ज दइस्शम् । दाव दइस्शम् ।]

सवाहक–आज दूँगा । तब तक दूँगा ।

(माथुर कर्षति ।)

(माथुर घसीटता है ।)

दर्दुरक –मूर्ख, परार्क्षे खलीकर्तुं शक्यते न ममाग्रत खलीकर्तुम् ।

दर्दुरक–मूर्ख ! मेरी अनुपस्थिति में अपमानित कर सकते हो, मेरे सम्मुख दुर्गति नहीं कर सकते ।

(माथुर सवाहकमाकृष्य घोणाया मुष्टिप्रहार ददाति । सवाहक सशोणित मूर्च्छा नाटयन्भूमौ पतति । दर्दुरक उपसृत्यान्तरयति । माथुरो दर्दुरक ताडयति । दर्दुरको विप्रतीप ताडयति ।)

(माथुर सवाहक को खीचकर नाक पर मुक्का मारता है । सवाहक खून से लथपथ होकर मूर्च्छा का अभिनय करता हुआ पृथ्वी पर गिर पडता है । दर्दुरक पास आकर बीच-बचाव करता है । माथुर दर्दुरक को पीटता है । दर्दुरक उलटा (माथुर

को) मारता है।

माथुर —अरे अरे दुष्ट पुंश्चली पुत्रक, फलमपि प्राप्स्यसि। (अले अले दुट्ट छिण्णालिआपुत्तअ, फलंपि पाविहसि।)

माथुर—अरे! अरे दुष्ट व्यभिचारिणी के बच्चे! इसका फल भी पाओगे।

दर्दुरक—अरे मूर्ख, अहं त्वया मार्गगत एव ताडितः। श्वो यदि राजकुले ताडयिष्यसि, तदा द्रक्ष्यसि।

दर्दुरक—अरे मूर्ख! मैं तेरे द्वारा रास्ते चलते ही मारा गया हूँ। कल यदि राजकुल (कचहरी) में मारोगे तब देखना।

माथुर—एष प्रेक्षिष्ये। (एसु पेक्खिस्सम्।)

माथुर—यह (मैं) देखूँगा।

विवृत्ति

(१) द्यीलयतु=पुनः पुन. खेले। जल्पितुम्=बकवास करने के लिए। आचक्षाण=कहने वाला। खण्डित वृत्त.=चरित्रहीन। सज्ञाम्=सकेत को। परोक्षे=अनुपस्थिति में। खलीकर्तुम्=सताने के लिए। घोणायाम्=नाक में। सश्रोणितम्=रक्त के साथ। अन्तरयति=बीच मे पडता है। प्रतीपम्=विरुद्ध। पुंश्चलीपुत्रक=व्यभिचारिणी के लडके। (२) द्यील्+णिच्+(स्वार्थे)+लोट्=द्यीलयतु। (३) आ+चक्ष्+शानच्=आचक्षाण। (४) खण्डितम् वृत्तम् यस्य स. खण्डित वृत्त.। (५) अक्ष्णो. परम् परोक्षम् तस्मिन् परोक्षे। (६) 'घोणा नासा च नासिका' इत्यमरः। (७) पुम्सः चलति इति पुंश्चली तस्या पुत्रकः तत्सम्बुद्धौ पुंश्चलीपुत्रक। (८) प्रति+अप्+अच्=प्रतीप।

दर्दुरक—कथं द्रक्ष्यसि।

दर्दुरक—कैसे देखोगे?

माथुर :-(प्रसार्य चक्षुषी।) एवं प्रेक्षिष्ये। [एव्व पेक्खिस्सम्।]

माथुर—(आँखें फाड़कर) ऐसे देखूँगा।

(दर्दुरको माथुरस्य पांसुना चक्षुषी पूरयित्वा संवाहकस्यापक्रमितुं सज्ञां ददाति। माथुरोऽक्षिणी निगृह्य भूमौ पतति। संवाहकोऽपक्रामति।)

(दर्दुरक माथुर के नेत्रो में धूल झोंक कर संवाहक को भागने का सकेत दे देता है माथुर नेत्र मूँदकर भूमि पर गिर जाता है। संवाहक भाग जाता है।)

दर्दुरक —(स्वगतम्।) प्रधानसभिको माथुरो मया विरोधितः। तन्नात्र युज्यते स्थातुम्। कथितं च मम प्रियवयस्येन शर्विलकेन, यथा किल—'आर्यकनामा गोपालदारकः सिद्धादेशेन समादिष्टो राजा भविष्यति।' इति। सर्वश्चास्मद्विधो जनस्तमनुसरति। तदहमपि तत्समीपमेव गच्छामि। (इति निष्क्रान्तः।)

दर्दुरक—(अपने आप) प्रधान सभिक माथुर से मैंने विरोध कर लिया है, तो यहाँ ठहरना उचित नहीं है और मेरे प्रिय मित्र शर्विलक ने कहा भी है कि—आर्यक नामक अहीर का लड़का सिद्ध के कथनानुसार राजा होगा।' सभी मुझ जैसे लोग उसका अनुसरण करते हैं। तो मैं भी उसके समीप ही जाता हूँ। (निकल जाता है।)

संवाहक —(सत्रासपरिक्रम्यदृष्ट्वा) एतत्कस्याप्यनपावृतपक्षद्वारक गेहम्। तदत्र प्रविशामि। (प्रवेश रूपयित्वा वसन्तसेनामालोक्य) शरणागतोऽस्मि। [एदे कस्सावि अणपावुदपक्खदुवालके गुहे। ता एत्थ पविशिश्शम्। अज्जे, शलणागदे म्हि।

संवाहक—(भयपूर्वक घूमकर एवं देखकर) यह किसी का खुले हुये पक्ष द्वार (खिड़की) वाला घर है, तो इसमें प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश का अभिनय करते हुये वसन्तसेना को देखकर) आर्ये! शरण में आया हुआ हूँ।

वसन्तसेना—अभय शरणागतस्य। चेटि, पिधेहि पक्षद्वारकम्। [अभअ सरणागदस्स। हञ्जे, ढक्केहि पक्खदुआरअम्।]

वसन्तसेना—शरणागत (आप) निर्भय हो। सखि! पक्षद्वार बन्द कर दो!

(चेटी तथा करोति।)

(चेटी वैसा ही करती है।)

वसन्तसेना–कुतस्ते भयम्। [कुदो दे भअम्।]

वसन्तसेना–किससे तुम्हे डर है?

संवाहक –आर्ये, धनिकात्। [अज्जे, धणिकादो।]

संवाहक-आर्ये! धनवान से।

वसन्तसेना–चेटि, साम्प्रतमपावृणु पक्षद्वारकम्। [हञ्जे, संपद अवावुणु पक्खदुआरअम्।]

वसन्तसेना–सखि! अब पक्षद्वार (बगल का दरवाजा) खोल दो।

संवाहक –(आत्मगतम्) कथ धनिकात्तुलितमस्या भयकारणम् सुष्ठुखल्वेवमुच्यते। [कध धणिकादो तुलिद से भअकालणम्। शुट्ठु क्खु एव्व वुच्चदि।]

संवाहक–(स्वगत) क्या धनी व्यक्ति से इसके भय का कारण मेरे ही समान है? यह ठीक ही कहा जाता है —

विवृत्ति

(१) पांसुना=धूल से। निगृह्य=पकड़ कर। अपक्रामति=भागता है। विरोधित=विरुद्ध कर लिया गया। सिद्धादेशेन=सिद्ध पुरुष की वाणी से। समाविष्ट=निर्दिष्ट। अनपावृतपक्षद्वारकम्=खुली हुई खिड़की वाला। पिधेहि=बन्द करो। अपावृणु=खोल दो। तुलितम्=शक्ति के अनुकूल। (२) सिद्धस्य आदेशेन

सिद्धादेशेन । (३) अनपावृतम् पक्षद्वारकम् यस्य तत् । (४) तदहमपि०–दर्दुरक की इस उक्ति मे आश्रय नामक अलकार है । 'गृहणम् गुणवत्कार्यहेतोराश्रय उच्यते ।'

जेअत्तवल जाणिअ भाल तुलिद वहेइ माणुश्शे ।
ताह खलण ण जायदि ण अ कतालगडे विवज्जदि ॥ ॥१४॥
[यः आत्मवलं ज्ञात्वा भार तुलित वहति मनुष्यः ।
तस्य स्खलन न जायते न च कान्तारगतो विपद्यते ॥]

अन्वय :—यः, मनुष्य, आत्मबलम्, ज्ञात्वा, तुलितम्, भारम्, वहति, तस्य, स्खलनम्, न, जायते, कान्तारगतः, च, (स.) न, विपद्यते ॥१४॥

पदार्थ :—यः=जो, मनुष्यः=पुरुष, आत्मबलम्=अपने बल को, ज्ञात्वा=जानकर, तुलितम्=तदनुसार, भारम्=बोझ को, वहति=ढोता है, तस्य=उसका, स्खलनम्=पतन, न=नही, जायते=होता है, कान्तारगतः=गहन वन मे गया हुआ, विपद्यते=नही नष्ट होता है ।

अनुवाद :–जो मनुष्य अपने सामर्थ्य को जानकर सन्तुलित भार को वहन करता है, उसका पतन नहीं होता है (और वह) दुर्गम वन मे गया भी नष्ट नहीं होता है ।

सस्कृत टीका :—य मनुष्य.=यः जन, आत्मवलम्=स्वकीयसामर्थ्यम्, ज्ञात्वा=बुद्ध्वा, तुलितम्=तुल्यम् भारम्=गुरुद्रव्यम्, वहति=धारयति, तस्य=मनुष्यस्य, स्खलनम्=पतनम्, न जायते=न भवति, कान्तारगत.=दुर्गमवनपतित, अपि, न विपद्यते=न विपत्तिग्रस्त. भवति ।

समास एवं व्याकरण – (१) आत्मवलम्–आत्मनः वलम् । कान्तारगतः – कान्तारम् गत । (२) ज्ञात्वा—ज्ञा+क्त्वा । स्खलनम्–स्खल्+ल्युट् । वहति—वह्+लट् ।

विवृत्ति

(१) आर्या छन्द है । (२) अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है ।

अत्र लक्षितोऽस्मि । [एत्थ लक्खिदह्मि ।]

मैं ही यहाँ लक्ष्य हूँ ।

माथुर :—(अक्षिणी प्रमृज्य द्यूतकर प्रति ।) अरे, देहि देहि । [अले, देहि देहि ।]

माथुर– (आँखे पोछकर, द्यूतकर से) अरे ! दे ! दे !

द्यूतकर :–भर्त, यावदेव वयं दर्दुरेण कलहायितास्तावदेव स पुरषोऽपक्रान्त । [भट्टा, जावदेव अह्मे दद्दुरेण कलहायिदा तावदेव सो गोहो अवक्कन्तो ।]

द्यूतकर–प्रभो ! जैसे ही हम दर्दुरक से झगडा करने लगे वैसे ही वह मनुष्य

(सवाहक) भाग गया।

माथुर—तस्य द्यूतकरस्य मुष्टिप्रहारेण नासिका भग्नासीत्। तदेहि। रुधिरपथमनुसराव। [तस्स जूदकलस्स मुट्टिप्पहालेण णासिका भग्गा आसि ता एहि। रुहिरपह अणुसरेम्ह।

माथुर—उस जुआरी की घूँसे की चोट से नाक टूट गई थी। तो आओ। रक्तधारा का अनुसरण करें।

(अनुसृत्य ।।)

(अनुसरण करके)

द्यूतकर —भर्त, वसन्तसेनागृह प्रविष्टः स। [भट्दा वसन्तसेणागेहं पविट्टो सो।]

द्यूतकर—प्रभो! वह वसन्तसेना के घर मे घुस गया है।

माथुर —भूतानि सुवर्णानि। [भूदाइ सुवण्णाइ।]

माथुर—(तो अब) मुहरें मिल गईं!

द्यूतकर —राजकुल गत्वा निवेदयावः। [लाअउल गदुअ णिवेदेम्ह।]

द्यूतकर—राजकुल (कोतवाली) में जाकर निवेदन कर दें।

माथुर —एष धूर्तोऽन्तो निष्क्रम्यान्यत्र गमिष्यति। तदुपरोधेनैव गृह्णीव। [एसो धुत्तो अदो णिक्कमिअ अण्णत्त गमिस्सदि। ता उअरोधेणेव्वगेण्हेम्ह।]

माथुर—यह दुष्ट (सवाहक) यहाँ से निकल कर दूसरी जगह चला जायेगा। तो (वसन्तसेना के) अनुरोध से ही पकड ले।

(वसन्तसेना मदनिकाया सज्ञा ददाति।)

(वसन्तसेना मदनिका को सकेत देती है।)

मदनिका—कुत आर्य। को आर्य। कस्य वार्य। का वा वृत्तिमार्य उपजीवति। कुतो वा भयम्। [कुदो अज्जो। को वा अज्जो। कस्स वा अज्जो। किं वा वित्ति अज्जो उवजीअदि। कुदो वा भअम्।]

मदनिका—आप कहाँ से आए हैं? अथवा आप कौन है? आप किसके (सुपुत्र आदि) हैं किस व्यवसाय से आप जीवन यापन करते हैं? और (आपको) किससे भय है?

सवाहक—शृणोत्वार्या। आर्ये, पाटलिपुत्र मे जन्मभूमि। गृहपतिदारकोऽहम्। सवाहकस्य वृत्तिमुपजीवामि। [सुणादु अज्जआ। अज्जए, पाडलिउत्ते मेजन्मभूमी। गहवइदालके हगे। सवाहअस्स वित्ति उवजीआमि।]

सवाहक—आर्या सुनिये! आर्ये! पाटलिपुत्र (पटना) मेरी जन्मभूमि है। मैं समृद्ध घराने का लडका हूँ। सवाहक (देह दबा दबा कर) की वृत्ति से जीवन यापन करता हूँ।

वसन्तसेना–सुकुमारा खलु कला शिक्षितार्येण । [सुउमारा क्खु कला सिक्खिदा अज्जेण ।]

वसन्तसेना–आपने तो बडी कोमल कला सीखी है ।

संवाहक —आर्ये, कलेति शिक्षिता । आजीविकेदानीं संवृत्ता । [अज्जए, कलेति सिक्खिदा । आजीविआ दाणिं संवुत्ता ।]

संवाहक–आर्ये ! कला सीखी थी । इस समय तो 'आजीविका' ही बन गई ।

चेटी–अतिनिर्विण्णमार्येण प्रतिवचनं दत्तम् । ततस्ततः [अदिणिव्विण्ण अज्जेण पडिवअणं दिण्णम् । तदो तदो ।]

चेटी–अत्यन्त दीन होकर आपने जवाब दिया । तदनन्तर ?

संवाहक –ततः आर्ये, एष निजगृहे आहिण्डकानां मुखाच्छ्रुत्वापूर्वदेशदर्शन-कुतूहलेनेहागतः । इहापि मया प्रविश्योज्जयिनीमेक आर्यः शुश्रूषितः । यस्तादृशः प्रियदर्शनः प्रियवादी दत्त्वा न कीर्तयति,अपकृत विस्मरति । किं बहुना प्रलपितेन। दक्षिणतया परकीयमिवात्मानमवगच्छति, शरणागतवत्सलश्च । [तदो अज्जए, एशे णिजगेहे आहिण्डकाण मुहादो शुणिअ अपुव्वदेशदशण कुदूहलेण इह आगदे । इहवि मए पविशिअ उज्जइणिं एक्के अज्जे शुश्शूशिदे । जे तालिशे पिअदशणे पिअवादी, दइअ ण कित्तेदि, अवकिद विशुमलेदि । किं बहुणा पलन्तेण । दक्खिणदाए पलकेलअं विअ अत्ताणअं अवगच्छदि, शलणागअवच्छले अ ।]

संवाहक–आर्ये ! तदनन्तर अपने घर पर यात्रियों के मुख से वर्णन सुनकर अपूर्व देश को देखने की इच्छा से यहाँ आया । यहाँ भी उज्जैन में प्रवेश करके मैंने एक महानुभाव की सेवा की जो अत्यन्त दर्शनीय, मधुरभाषी, किसी को कुछ देकर (उस दान का) कीर्तन न करने वाले, अपने प्रति किये गये बुरे बर्ताव को भुलाने वाले हैं । अधिक कहने से क्या ? उदारता से पराई वस्तु को अपना ही समझते हैं और शरण में आये हुये को प्रेम करने वाले है ।

विवृति

(१) लक्षित =उदाहरण । कलहायिता =झगडा करने में लगे हुए । भूतानि= मिल गईं । उपक्रान्त =चला गया । उपरोधेन=घेरने से । सज्ञाम्=सङ्केत । वृत्तिम् । जीविका । उपजीवति=आश्रित हैं । अतिनिर्विण्णम्=अत्यन्त दुःखी । पाटलिपुत्रम्= पटना । गृहपतिदारक =गृहस्थ का लडका । संवाहकस्य=शरीर दबाने वाले की । आजीविका=जीवन-यापन का सहारा । संवृत्ता=हो गई । आहिण्डकानाम्=घूमने वाला के । अपूर्वदेशदर्शनकुतूहलेन=अद्भुतदेशदेखने की उत्कण्ठा से । कीर्तयति= कहता है । अपकृतम्=अपकार को, दक्षिणतया=उदारता से, परकीयम्= दूसरों का। (२) गृहपतिदारक —गृहपते दारक (३) भूतानि सुवर्णानि–

कुछ टीकाकार इसका अर्थ सुवर्ण चला गया करते हैं। (४) संवाहक—सम्+वह्+ण्वुल्। संवाहयति शरीरमिति। कलहायिता=कलह्+क्यङ्=कलहाय+क्त। (५) आहिण्डन्ते इति आहिण्डका। आ+हिण्ड+ण्वुल, तेषाम्। (६) वसन्तसेना की सुकुमारा खलु० उक्ति में प्रतिमुख सन्धि का नर्म नामक अङ्ग है। परिहास-वचो नर्म (७) इसके बाद संवाहकोक्ति में गर्भ सन्धि का मार्ग नामकअंग है—तत्वार्थकथनम् मार्ग।

चेटी—क इदानीमार्याया मनोरथान्तरस्य गुणाश्चोरयित्वोज्जयिनीमलकरोति। [को दाणि अज्जआए मणोरहन्तरस्स गुणाइ चोरिअ अज्जइणि अलंकरेदि।]

चेटी-ऐसा कौन है जो आजकल आर्या (वसन्तसेना) के अभिलषित (आर्य चारुदत्त) के गुण का अपहरण कर उज्जयिनी को विभूषित कर रहा है?

वसन्तसेना-साधु चेटि, साधु। मयाप्येवमेव हृदयेन मन्त्रितम्। [साहु हञ्जे, साहु। मए वि एव्व ज्जेव हिअएण मन्तिदम्।]

वसन्तसेना-वाह! सखि! वाह! मैंने भी ऐसा ही हृदय से सोचा था।

चेटी-आर्य, ततस्तत। [अज्ज तदो तदो।]

चेटी-आर्य! तदनन्तर?

संवाहक—आर्ये, स इदानीमनुक्रोशकृतै प्रदानै। [अज्जए, शेदाणि अणुक्कोश-किदेहिं पदाणेहिं।]

संवाहक-आर्ये! "वह अब दयापूर्वक किये गये दानों से···।"

वसन्तसेना-किमुपरतविभवः संवृत्तः। [किं उवरदविहवो संवुत्तो।]

वसन्तसेना-क्या क्षीणवैभव (निर्धन) हो गये?

संवाहक—अनाख्यातमेव कथमार्यया विज्ञातम्। [अणाजक्खिदे ज्जेव कध अज्जआए विण्णादम्।]

संवाहक-बिना कहे ही कैसे आर्या ने समझ लिया?

वसन्तसेना-किमत्र ज्ञातव्यम्। दुर्लभा गुणा विभवाश्च। अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति। [किं एत्थ जाणीअदि। दुल्लहा गुणा विहवा अ। अपेएसु तडाएसु बहुदरं उदअं भोदि।]

वसन्तसेना-इसमें जानने योग्य ही क्या है? गुण और सम्पत्ति का एकत्र संयोग दुर्लभ है, न पीने योग्य (जल युक्त) जलाशयों में अधिक जल होता है।

चेटी—आर्य, किंनामधेयः खलु सः। [अज्ज, किं णामधेओ क्खु सो।]

चेटी-आर्य! वह किस नाम वाले हैं?

संवाहक—आर्ये, क इदानीं तस्य भूतलमृगाङ्कस्य नाम न जानाति। स खलु श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति। श्लाघनीयनामधेय आर्यचारुदत्तो नाम। [अज्जे, के दाणिं तश्श भूदलमिअङ्कस्स णाम ण जाणादि। शो क्खु शेट्ठिचत्तले पडिवशदि। शला-

हणिज्जणामवेए अज्जचा लुदत्ते णाम ।]

सवाहक—आर्ये ! कौन आज उस पृथ्वी के चन्द्रमा का नाम नही जानता ? वह सेठो के मुहल्ले म रहते हैं। प्रशसनीय नाम वाले 'आर्य चारुदत्त' (उनका) नाम है।

वसन्तसेना—(सहपमासनादवतीय ।) आर्यस्यात्मीयमेतद्गेहम् चेटि, देह्यस्यासनम्। तालवृन्तक गृहाण। परिश्रम आर्यस्य बाधत। [अज्जस्स अत्तणकेरक इद गहम्। हञ्जे, देहि स आसणम्। तालवेण्ठअ गण्ह। परिस्समो अज्जस्स वाधदि।]

वसन्तसेना—(प्रसन्नतापूर्वक आसन स उतर कर) आर्य ! आपका यह अपना घर है। हला ! इन्ह आसन दो ! पखा ल लो। आर्य को परिश्रम पीडित कर रहा है।

(चेटी तथा करोति ।)

(चेटी वैसा ही करती है ।)

सवाहक —(स्वगतम्) कथमार्यचारुदत्तस्य नामसकीर्तनेनेदृशो म आदर। साधु आर्य चारुदत्त, साधु। पृथिव्या त्वमेको जीवसि। शेष पुनर्जनः श्वसिति। (इति पादयोर्निपत्य) भवत्वार्ये, भवतु। आसने निषीदत्वार्या। [कध अज्जचालुदत्तस्स णामसकीत्तणेण ईदिशे मे आदले। शाहु अज्जचालुदत्तो शाहु। पुहवीए तुम एक्क जीवशि शेशे उण जणे शशदि। भोदु अज्जए, भोदु। आशणे णिशीददु अज्जआ।]

सवाहक—(अपने आप) क्या 'आर्य चारुदत्त' का नाम लेने से इतना मेरा सम्मान ? धन्य ! आर्य चारुदत्त ! धन्य ! अखिल भूतल पर तुम्ही एकमात्र जीवित हो, बाकी मनुष्य तो केवल साँस लेते है (चरणो पर गिरकर) बस करो ! आर्ये। बस करो ! आर्ये आसन पर विराजिय।

वसन्तसेना—(आसने समुपविश्य) आर्यै कुत स धनिक। [अज्ज, कुदो सो धणिओ।]

वसन्तसेना—(आसन पर बैठ कर) आर्य ! वह धनिक कहाँ हैं ?

विवृति

(१) मनोरथाभिमुखस्य=अभिलषित के। मन्त्रितम्=विचारा है। अनुक्रोशकृतै=कृपा के कारण किये गय। उपरतविभव=निधन। अनाख्यातम्=बिना कहा गया। अपेयेषु=न पीने योग्य। तडागेषु=सरोवरो म। उदकम्=जल। भूतलमृगाङ्कस्य=धरती के चन्द्रमा का। श्लाघनीयनामधेय=प्रशसा के योग्य नाम वाले। नामसङ्कीर्तनेन=नाम लेने से। श्वसिति=साँस लेते हैं। निषीदतु=बैठें (२) मनोरथस्य अभिमुख। (३) अनुक्रोशेन कृतानि इति। (४) कारुण्य करुणा घृणा कृपा दयानुकम्पा स्यादनुक्रोश इत्यमर.। (५) मृग अङ्के यस्य स मृगाङ्क। (६) श्लाघ-

नीयम् नामधेयम् यस्य स । श्लाघ्+अनीयर् । अवतीर्य=अव+त्रि+क्त्वा—ल्यप् । उतर कर । (७) वसन्तसेना की उक्ति अपेयेषु० मे अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है। (८) यत्रास्ति लक्ष्मी विनयो न तत्र सुशीलता यत्र न तत्र लक्ष्मी । उभौ च ते यत्र न तत्र विद्या नैकत्र सर्वत्र गुणत्रयम् च ।'(१९) वसन्तसेना की आर्यस्य० इस उक्ति मे प्रहर्ष नामक नाट्यालङ्कार है।

सवाहक —

सवाहक—

शक्कालधणे खु शज्जणे काह ण होइ चलाचले घणे।
जे पूइदु पि ण जाणादि शे पूआविशेश पि जाणादि ॥१५॥

[सत्कारधन खलु सज्जन कस्य न भवति चलाचल धनम्।
य पूजयितुमपि न जानाति स पूजाविशेषमपि जानाति ॥]

अन्वय —सत्कारधन, सज्जन, (भवति), खलु, कस्य, धनम्, चलाचलम्, न, भवति, ? य, पूजयितुम् अपि न, जानाति,अपि स ,पूजाविशेषम्, जानाति ? ॥१५॥

पदार्थ —सत्कारधन =सम्मान करना है धन जिनका, सज्जन =सत्पुरुष, खलु=निश्चय ही, कस्य—किसका, धनम्=सम्पत्ति, चलाचलम्—नश्वर न=नहीं, भवति=होता है,य =जो,पूजयितुम्=सत्कार करना अपि=भी,न=नहीं जानाति= जानता है, अपि स = क्या वह पूजाविशेषम् = सम्मान विशेष को, जानाति= जानता है।

अनुवाद—सत्कार रूपी धन वाले सज्जन (होते हैं) निश्चय ही किसका धन नश्वर नहीं होता है ? जो सत्कार करना भी नहीं जानता है क्या वह सम्मान की रीति को जानता है ?

संस्कृत टीका—सत्कारधन =सम्मानसम्पत्ति, सज्जन =सत्पुरुष, खलु= निश्चितम्, कस्य=पुरुषस्य, धनम=वित्तम, चलाचलम्=नश्वरम्, न भवति=न भवति, य =मनुष्य , पूजयितुम् =सत्कर्तुम् अपि न, जानाति=वेत्ति, अपि=किम्, स = पुरुष , पूजाविशेषम् = सत्काररीतिम् जानाति = अवगच्छति ?

समास एवं व्याकरण—१—सत्कारधन—सत्कार एव धनम् यस्य स । पूजाविशेषम्—पूजाया विशेषम् । २—चलाचलम्—चल्+अच् (द्वित्व और आत्व) भवति भू— लट । पूजयितुम्—पूज्+णिच्+तुमुन् । जानाति ज्ञा+लट् ।

विवृति

१—अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है २—कुछ टीकाकार परिसंख्या और काव्य लिङ्ग अलंकार भी कहते हैं। ३—कुछ टीकाकारों ने मात्रा समक छन्द कहा है— मात्रासमकं न व मा ल न्तर ।" ४—कुछ टीकाकार वैतालीय छन्द कहते हैं।

"षड्विषमेऽष्टौ समेकलास्ताश्च समेस्युर्नोनिरन्तरा
न समोऽत्रपराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरु ॥"

वसन्तसेना—ततस्तत । (तदो तदो ।)

वसन्तसेना—तदनन्तर ?

सवाहक—ततस्तेनार्येण सवृत्ति परिचारक कृतोऽस्मि । चारित्र्यावशेषे च तस्मिन्द्यूतोपजीव्यस्मि सवृत्त । ततो भागधेयविषमतया दशसुवर्णं द्यूते हारितम् ।(तदो तेण अज्जेण शवित्ती पलिचालके किदो म्हि । चालित्तावशेशे अ तस्सि जूदोवजीवी म्हि शवुत्ते । तदो भाअधेअ विशमदाए दशशुवण्णअ जूदे हालिदम् ।)

सवाहक—उसके बाद उस आर्य ने (मुझे) वैतनिक सेवक रख लिया । उनका केवल चरित्रमात्र रह जाने पर मैं जुआ से जीविका चलाने वाला हो गया । तत्पश्चात् भाग्य की कुटिलता से दश-स्वर्ण मुहरें जुए म हरा दी ।

माथुर—उत्सादितोऽस्मि । मुषितोऽस्मि । (उच्छादिदा म्हि । मुसिदो म्हि ।)

माथुर—विनष्ट हो गया हूँ ! लुट गया हूँ !

सवाहकः—एतौ तौ सभिकद्यूतकरौ मामनुसरत । साप्रत श्रुत्वार्या प्रमाणम् । (एदे दे शहिअजूदिअला म अणुशलअन्ति । शपद शुणिअ अज्जआ पमाणम् ।)

सवाहक—ये दोनो वे सभिक और द्यूतकर मुझे खोज रहे हैं । अब (यह सब कुछ) सुनकर आप ही निर्णायक हैं ।

वसन्तसेना—मदनिके. वासपादपविसष्ठुलतया पक्षिण इतस्ततोऽप्याहिण्डन्ते । चेटि, तद्गच्छ । एतयो. सभिकद्यूतकरयो , अयमार्य एव प्रतिपादयतीति, इद हस्ताभरण त्व देहि । [मदणिए, वासपादवविसठुलदाए पक्खिणो इदो तदो वि आहिण्डन्ति । हञ्जे, ता गच्छ । एदाण सहिअजूदिअराणम्, अअ अज्जो ज्जेव पडिवादे सि, इम हत्थाभरणअ तुम देहि ।] (इति हस्तात्कटकमाकृष्य चेट्या, प्रयच्छति ।)

वसन्तसेना—मदनिके ! निवास योग्य वृक्ष के अस्त-व्यस्त होने से पक्षीगण (बसेरा करने के लिये) इधर उधर भटकते हैं । हञ्जे ! तो जाओ ! इन सभिक और द्यूतकर को "यह (कगन) आर्य (सवाहक) ही दे रहे हैं ।" ऐसा कह कर इस हाथ के आभूषण को तुम दे दो । (हाथ कगन उतार कर चेटी को दे देती है ।)

चेटी— (गृहीत्वा) यदार्याज्ञापयति । [ज अज्जआ आणवेदि । (इति निष्क्रान्ता ।]

चेटी—(लेकर) जो आर्या आज्ञा देती हैं । (निकल जाती है ।)

माथुर—उत्सादितोऽस्मि मुषितोऽस्मि । [उच्छादिद्दो म्हि । मुसिदो म्हि ।]

माथुर—विनष्ट हो गया हूँ । लुट गया हूँ ।

चेटी—यथैतावूर्ध्वं प्रेक्षेते, दीर्घं निश्वसतः अनिलपतश्च द्वारनिहितलोचनौ, तथा तर्कयामि, एतौ तौ सभिकद्यूतकरौ भविष्यत । (उपगम्य ।)आर्य, वन्दे । [जधा एदे उद्ध पेक्खन्ति, दीह णीससन्ति, अहिल्हन्ति अ दुआरणिहिदलोअणा, तधा तक्केमि, एदे दे सहिअजूदिअरा हुविस्सन्ति । अज्ज,वन्दामि ।]

चेटी—जैसे ये दोनों ऊपर को ताक रहे, लम्बी आहें भर रहे, परस्पर वार्तालाप कर रहे और दरवाजे पर आँखें गड़ाये हैं, उससे अनुमान लगाती हूँ कि ये दोनों वे ही सभिक और द्यूतकर होंगे। (पास जाकर) आर्य ! प्रणाम करती हूँ।

माथुर—सुखं तव भवतु। [सुहं तुए होदु।]

माथुर—तुम्हें सुख हो।

चेटी—आर्य, कतरो युवयो सभिक । (अज्ज, कदमो तुम्हाण सहिओ।)

चेटी—आर्य ! दोनों में सभिक कौन है ?

विवृति

१-सवृत्ति =वैतनिक। चारित्र्यावशेषे=चरित्र ही जिसका बचा है। द्यूतोपजीवी–जुआ से जीविका चलाने वाला। भागधेयविषमतया=भाग्य के प्रतिकूल होने से। उत्सादित =मर गया। मोषित =लूट लिया गया। अनुसन्धत्त =खोज रहे हैं। प्रमाणम्=निर्णायक। वामपादपविसंष्ठुलतया=रहने वाले पड़ के ठूठ हो जाने से अथवा अस्त व्यस्त हो जाने से। प्रतिपादयति=दे रहा है। कटकम=कंगन को। आकृष्य=उतार कर। द्वारनिहितलोचनौ=दरवाजे पर आँखें लगाए हुए। २-वृत्या सहित सवृत्ति । 'वृत्तिवर्तनजीवने' इत्यमर । ३-द्यूतमुपजीवति इति द्यूतोपजीवी। ४-भागधेयस्य विषमतया। ५-मुष+क्त=मुषित । ६-वासपादपस्य विसंष्ठुलस्य भाव, तया। ७-द्वारे निहिते लोचने ययो तौ। ८-किङ्कर प्रेष्य भुजिष्य परिचारका इत्यमर। ९-वसन्तसेना के वासपादप० उक्ति मे अप्रस्तुत प्रशसा तथा साहाय्य नामक नाट्यालकार है।

माथुर—

माथुर—

कस्स तुहं तणुमज्झे अहरेण रददट्ठदुव्विणीदेण।
जम्पसि मणोहलवअण आलोअन्ती कडक्खेण ॥१६॥
[कस्य त्व तनुमध्ये अधरेण रतदष्टदुर्विनीतेन।
जल्पसि मनोहरवचनमालोकयन्ती कटाक्षेण ॥]

अन्वय—हे तनुमध्ये ! कटाक्षेण, आलोकयन्ती, त्वम्, रतदष्टदुर्विनीतेन, अधरेण, मनोहरवचनम्, कस्य, जल्पसि ॥१६॥

पदार्थ—हे तनुमध्ये !=हे क्षीणकटि !, कटाक्षेण=तिरछे नयनों से, आलोकयन्ती=देखती हुई, त्वम्=तुम, रतदष्टदुर्विनीतेन=सम्भोग काल में काटे गये ढीठ अधरेण=ओठ से, मनोहरवचनम्=मन को हरने वाले वचन, कस्य=किसके, जल्पसि=कह रही हो।

अनुवाद—हे कृशोदरि! तिरछे नयनों से देखती हुई तुम सम्भोगकाल में क्षत एवं

घृष्ट ओष्ठ स मन का मोहन वाले वचन किससे बाल रही है ?

संस्कृत टीका—हे तनुमध्ये !=हे कृशोदरि ! कटाक्षेण=अपाङ्गदर्शनेन, आलोकयन्ती=पश्यन्ती, त्वम्, रतदष्टदुर्विनीतेन=सुरतक्षतघृष्टेन, अधरेण=निम्नोष्ठेन, मनोहरवचनम्=मधुरवाक्यम्, कस्य=कम् जनम् प्रति, जल्पसि=ब्रूषे ।

समास एवं व्याकरण—(१) तनुमध्य—तनुमध्यम् यस्या सा तत्सम्बुद्धौ । रत० —रते दष्ट अतएव दुर्विनीत तेन । (२) आलोकयन्ती—आ+लोक्+णिच्+शतृ+ङीप् । रत—रम्+क्त । दष्ट—दंश+क्त । दुर्विनीत—दुर्+वि+नी+क्त । जल्पसि—जल्प+लट् ।

विवृति

(१) विरोध अलङ्कार है । (२) आर्या छन्द है । शाकुन्तल—पिबसि रतिसर्वस्वमधरम्० ।'

नास्ति मम विभव । अन्यत्र व्रज ।

[णत्थि विहवो अण्णत्त व्वज]

मेरे पास सम्पत्ति नही है । कही और जा !

चेटी—यदीदृशानि ननु मन्त्रयसि, तदा न भवसि द्यूतकर । अस्ति कोऽपि युष्माक धारक । [जइ इदिसाइ ण मन्तसि, ता ण होसि जूदिअरो । अत्थि कावि तुम्हाण धारओ ।]

चेटी—यदि एसी बातें करत हो, तब तुम द्यूतकर नही हो । क्या कोई आप लोगा का ऋणी है ?

माथुर—अस्ति । दशसुवर्णं धारयति । किं तस्य ।(अत्थि । दशसुवण्ण धालेदि । किं तस्स ।)

माथुर—है । दश-स्वर्ण मुहरो का ऋणी है । उसका क्या ?

चेटी—तस्य कारणादार्येद हस्ताभरण प्रतिपादयति । नहि नहि स एव प्रतिपादयति । (तस्स कारणादो अज्जआ इम हत्थाभरण पडिवादेदि । णहि णहि । सो ज्जेव पडिवादेदि ।)

चेटी—उसी के कारण आर्या यह हाथ का कगन दे रही है । नही, नहीं, वही (आपका ऋणी है) दे रहा है ।

माथुर—(सहर्ष गृहीत्वा) अरे, भणसि त कुलपुत्रम्—भूतस्तव गण्ड ।आगच्छ । पुनर्द्यूत रमस्व' । [अले, भणेशि त कुलपुत्तम्—'भूद तुए गण्डे । आअच्छ । पुणो जूद रमअ' ।]

माथुर—(प्रसन्नतापूर्वक लेकर) अरी ! उस कुलीन पुत्र से कहना—'तुम्हारी घात पूरी हो गई । आ ! फिर जुआ खेलें ।'

(इति निष्क्रान्तौ।

(ऐसा कहकर दोनों चले जाते हैं ।)

चेटी—(वसन्तसेनामुपसृत्य ।)आर्ये, परितुष्टौ गतौ सभिकद्यूतकरौ । [अज्जए, पडितुट्ठा गदा सहिअजूदिअरा ।]

चेटी—(वसन्तसेना के समीप जाकर) आर्ये ! सभिक और द्यूतकर सन्तुष्ट होकर चले गये ।

वसन्तसेना—तद् गच्छतु । अद्य बन्धुजन समाश्वसितु । (ता गच्छदु । अज्ज बन्धुअणो समस्ससदु ।)

वसन्तसेना—तो अब (आप भी जाइए । आज बान्धवों को सान्त्वना दीजिए ।

सवाहक –आर्ये, यद्येव तदिय कला परिजनहस्तगता क्रियताम् । [अज्जए, जइ एव्व ता इअ कला पलिअणहत्थगदा कलीअदु ।]

सवाहक–आर्ये ! यदि ऐसा है तो यह (देह दबाने की)कला अपनी सेविका की हस्तगता (मुझसे सिखलवा कर) करा ले ।

वसन्तसेना–आर्य, यस्य कारणादिय कला शिक्ष्यते, स एवार्येण शुश्रूषितपूर्वः शुश्रूषितव्य । (अज्ज, जस्स कारणादो इअ कला सिक्खीअदि, सो ज्जेव अज्जेण सुस्सूसिदपुव्वा सुस्सूसिदव्वो ।)

वसन्तसेना–आर्य ! जिस (चारुदत्त) के कारण यह कला सीखी गई है, उसी पूर्व सेवित पुरुष की सेवा करिये ।

सवाहक –(स्वगतम् ।) आर्यया निपुण प्रत्यादिष्टोऽस्मि । कथ प्रत्युपकरिष्ये । (प्रकाशम्) आर्ये, अहमेतेन द्यूतकरापमानेन शाक्यश्रमणको भविष्यामि । तत्सवाहको द्यूतकरः शाक्यश्रमणक सवृत्त इति स्मर्तव्यान्यार्ययैतान्यक्षराणि । (अज्जआए णिउअ पच्चादिट्ठा म्हि । कध पच्चुवकलिश्शम् अज्जए, अह् एदिणा जूदिअलावमाणेण शक्कशमणके हुविश्शम् । ता शवाहके जूदिअले शक्कशमणके शवुत्तेति शुमलिदव्वा अज्जआए एदे अक्खलु ।)

सवाहक— (अपने आप) आर्या के द्वारा बड़ी निपुणतापूर्वक अस्वीकृत कर दिया गया हूँ । कैसे प्रत्युपकार करूँ ? (प्रकट रूप में) आर्ये ! मैं इस द्यूतकर के अपमान से बौद्ध-सन्यासी हो जाऊँगा । इसलिए—"जुआरी सवाहक बौद्ध भिक्षु हो गया है" इन अक्षरों को आप स्मरण रखना ।

वसन्तसेना—आर्य, अल साहसेन । (अज्ज, अल साहसेण ।)

वसन्तसेना–आर्य ! इतना साहस मत करना ।

सवाहक –आर्ये, कृतो निश्चय (अज्जए, कले णिच्चए ।) (इति परिक्रम्य ।)

सवाहक –आर्ये ! (मैंने) दृढ़ सकल्प कर लिया है । (घूमकर)

विवृति

(१) मन्त्रयसि=कहते हो। धारक =ऋणी। प्रतिपादयति=देता है। भूत —पूर्ण हो गया। गण्ड =वादा। रमस्व=खेलो। परिजन=सेविका। प्रत्यादिष्ट =अस्वीकार कर दिया। शाक्य श्रमणक =बौद्धभिक्षु। (२) नि+पुण्+क= निपुणम्। (३) प्रति+आ+दिश+क्त=प्रत्यादिष्ट।

जूदेण त कद मे ज वीहत्थ जणश्श शव्वश्श
एणहिं पाअडशीशे णलिन्दमग्गेण विहलिश्श ॥१७॥
[द्यूतेन तत्कृत मम यद्विहस्त जनस्य सर्वस्य।
इदानी प्रकटशीर्षो नरेन्द्रमार्गेण विहरिष्यामि "]

अन्वय– द्यूतेन, मम, तत्, कृतम्, यत्, सर्वस्य, जनस्य, (समक्षम्) विहस्तम् इदानीम्, प्रकटशीर्ष, नरेन्द्रमार्गेण, विहरिष्यामि ॥ १७॥

पदार्थ – द्यूतेन=जुए से, मम=मेरा, तत्=वह, कृतम्=किया गया, यत्=जा, सर्वस्य=सब, जनस्य=लोगो का, विहस्तम्=अपमान किया गया इदानीम्=इस समय, प्रकट शीर्ष =ऊँचा शिर होकर, नरेन्द्र मार्गेण=राजमार्ग से, विहरिष्यामि=घूमूगा।

अनुवाद – जुए से मेरा वह हुआ कि सभी जनो के (समक्ष) अपमानित हुआ, अव खुले शिर, राजमार्ग पर विचरण करूँगा।

सस्कृत टीका – द्यूतेन=अक्षक्रीडनेन, मम=सवाहकस्य, तत, कृतम्= व्याकुलत्वम् विहितम्, यत्, सर्वस्य जनस्य=अखिल लोकस्य (समक्षम्) विहस्तम्= परामूतम्, इदानीम्=अधुना, प्रकटशीर्ष =उन्नमितमस्तक, नरेन्द्र मार्गेण=राज मार्गेण, विहरिष्यामि=सचरिष्यामि।

समास एव व्याकरण – (१) प्रकट०–प्रकटम् शिर यस्य स। नरेन्द्र०– नरेन्द्रस्य मार्गेण। (२) कृतम्=कृ+क्त। विरहिष्यामि–वि+हृ+लृट्। (३) विहस्तम्–विगत हस्त यस्य स विहस्त तम्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म आर्या छन्द है– "यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रा स्तथा तृतीयेऽपि अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या।" (२) 'विहस्त व्याकुलौ समौ।" (३) विहस्तम् के आगे कृतवान् पद का अध्याहार करना हागा। (४) तुलना 'रामापरित्राण विहस्त योधम्।'– रघु० ५/४९।

(नेपथ्य कलकल ।)
(नेपथ्य म कोलाहल)

सवाहक – (आकर्ण्य) अरे, किं न्विदम् (आकाशे) किं भणत— 'एप खनु

वसन्तसेनाया खुण्टमोडको नाम दुष्टहस्ती विचरति' इति । अहो, आर्यायागन्धगज प्रेक्षिष्ये गत्वा । अथवा किं ममैतेन । यथाव्यवसितमनुष्ठास्यामि । अले, किं ण्णेदम् किं भणाथ— एशे क्खु वशन्तशेणआए खुण्टमोडके णाम दुट्टहत्थी विअलेदि' त्ति । अहो, अज्जआए गन्धगअ पेक्खिश्श गदुअ । अहवा किं मम एदिणा । जधावविशिद अणुचिट्ठिश्शम ।) [इति निष्क्रान्ता ।]

सवाहक— (सुनकर) अरे ! यह क्या है ? (आकाश की ओर) क्या कहते हो ?— "यह 'वसन्तसेना' का खुण्टमोडक' नामक दुष्ट (मतवाला) हाथी घूम रहा है ?" ओह ! आर्या (वसन्तसेना) के मदवाले हाथी को जाकर देखूँगा । अथवा मेरा इससे क्या (प्रयोजन) ? निश्चयानुसार (सन्यास लेने का कार्य) करूँगा । ऐसा कह कर निकल जाता है ।)

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण प्रहृष्टो विकटोज्ज्वलवेष कर्णपूरक ।)

(तदनन्तर पर्दे के बिना गिरे प्रसन्न एव बहुत ही उज्ज्वल वेष मे कर्णपूरक प्रवेश करता है ।)

कणपूरक – कुत्र कुत्रार्या । (कहिं वहिं अज्जआ ।)

कर्णपूरक— कहाँ हैं ? कहाँ हैं आर्या ?

चेटी— दुर्मनुष्य, कि त उद्वेगकारणम्, यदग्रतोऽवस्थितामार्या न प्रेक्षसे । (दुम्मणुस्स, किं ते उव्वेअकालणम् ज अग्गदो वट्टिदं अज्जअ ण पेक्खसि ।)

चेटी– रे दुजन ! तुम्हारी घबराहट का कारण क्या है ? जो सम्मुखस्थित आर्या को नही दख रहे हो ?

कणपूरक – (दृष्ट्वा) आर्ये, वन्दे । (अज्जए, वन्दामि ।)

कणपूरक— (देख कर) आर्ये ! प्रणाम् !

वसन्तसेना– कणपूरक परितुष्टमुखो लक्ष्यसे । तत्किं न्विदम् । (कण्णऊरअ, परितुट्टमुहो लक्खीअसि । ता किं ण्णदम् ।)

वसन्तसेना— कणपूरक ! अत्यन्त प्रसन्नमुख दिखाई पडते हो ? तो यह क्या (कारण) है ? कणपूरक – (सविस्मयम्) आर्ये वञ्चितासि, यदाद्य कणपूरकस्य पराक्रमा न दृष्ट । (अज्जए, वञ्चिदासि जाए अज्ज कण्णऊरअस्य परक्कमो ण दिट्ठा ।)

कर्णपूरक – (आश्चर्य सहित) आर्ये ! वञ्चित रह गयी (क्योकि) जो आज (आपने) कणपूरक का पराक्रम नही देखा ।

वसन्तसना– कणपूरक किं किम् । (कण्णऊरअ, किं किम् ।)

वसन्तसना— कणपूरक ! क्या ? क्या ?

कणपूरक– शृणोत्वार्या य स आर्याया खुण्टमाडको नाम दुष्टहस्ती, स आलानस्तम्भं भङ्क्त्वा महामात्रं व्यापाद्य महान्त सक्षाभ कुर्वन्राजमार्गमवतीर्ण ।

ततोऽन्तरे उद्घुष्ट जनेन– (सुणादु अज्जआ । जो सो अज्जआए खुण्टमोडओ णाम दुट्टहत्थी, सो आलाणत्थम्भ भञ्जिअ महमेत्य वावादिअ महन्त सखोह करन्तो राअमग्ग ओदिण्णो । तदो एत्थन्तरे उग्घुट्ट जणेण—)

कर्णपूरक– सुनिए आर्या ! यह जो आपका खुण्टमोडक नामक दुष्ट हाथी है, वह (अपन) बांधने के खूंटे को तोडकर, महावत को मारकर घोर उपद्रव मचाते हुए राजपथ (सडक) पर उतर गया । तब इसी बीच म लोग चिल्लाने लगे—

विवृति

(१) खुण्टमोडक=खूंटा तोडने वाला हाथी । यथा व्यवसितम्=निश्चित किये गय का । परितुष्टमुख =प्रसन्नमुख । वञ्चितासि = वञ्चित रह गई । आलानस्तम्भम्= हाथी बांधने का खम्भा । महामात्रम्=महावत को । उद्घुष्टम्=चिल्ला कर कहा । (२) खुण्टम् मोडयनीति खुण्टमोडक । (३) 'महामात्र समृद्धे चामात्रे हस्तिपकाधिप ।' इति मेदिनी । (४) 'आलान बन्धनस्तम्भेऽत्र शृङ्खले ? इत्यमर । (५) तत प्रविशति अपटीपक्षेण०— यहां पर बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है । 'अवान्तरार्थ विच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ।'

अवणेध वालअजण तुरिद आरुहध वुक्खपासाद ।
किं ण हु पेक्खध पुरदो दुट्टो हत्थी इदो एदि ॥१८॥
[अपनयत बालकजन त्वरितमारोहत वृक्षप्रासादम् ।
किं न खलु प्रेक्षध्व पुरतो दुष्टो हस्तीत एति ॥]

अन्वय – बालकजनम्, अपनयत, वृक्षप्रासादम् त्वरितम्, आरोहत, किम्, न, खलु प्रेक्षध्वम्, पुरत, दुष्ट, हस्ती, इत, एति ॥१८॥

पदार्थ :– बालकजनम्=बच्चो का, अपनयत=हटा लो, वृक्षप्रासादम्= पेडों और भवनो पर, त्वरितम्=शीघ्र, आरोहत=चढ जाओ, किम्=क्या, प्रेक्षध्वम् =देख रहे हो, पुरत =समक्ष, दुष्ट =दुर्जन, हस्ती=गज, इत =इधर, एति= आ रहा है ।

अनुवाद – बालकों को हटा लो, तरुओ और भवनो पर शीघ्र चढ जाओ । क्या नहीं, देख रहे हो ? सामने से दुष्ट हाथी इधर आ रहा है ।

संस्कृत टीका – बालकजनम्=शिशुजनम्, अपनयत=दूरम् कुरुत, वृक्षप्रासादम्=तरुम् भवनम् च, त्वरितम्=शीघ्रम्, आरोहत=अधिश्रयत, किम्, न खलु, प्रेक्षध्वम्=पश्यथ, पुरत =अग्रत, दुष्ट =प्रमत्त, हस्ती=गज, इत =अस्या दिशि, एति=आगच्छति ।

समास एव व्याकरण - (१) वृक्ष०— वृक्षश्च प्रासादश्च इति वृक्षप्रासादम् । (२) अपनयत— अप्+नी+लोट् । आरोहत—आ+रुह्+लोट् । प्रेक्षध्वम्— प्र+ईक्ष+लोट् । पुरत — पुर+तस् (अव्यय) । इत – इदम्+तस् (अव्यय) ।

विवृति

(१) आर्या छन्द है। (२) कुछ टीकाकारों ने गाथा छन्द कहा है।

अपि च।

और भी।

विचलति नूपुरयुगलं छिद्यन्ते च मेखला मणिखचिताः।
वलयाश्च सुन्दरतरा रत्नाङ्कुरजालप्रतिबद्धाः॥
[विचलइ णोउरजुअलं छिज्जंति अ मेहला मणिक्खइआ।
वलआ अ सुन्दरदरा रअणकुरजालपडिवद्धा ॥१९॥]

अन्वय—नूपुरयुगलम्, विचलति, मणिखचिता, मेखला, रत्नाङ्कुरजालप्रतिबद्धाः, सुन्दरतरा, वलया, च, छिद्यन्ते ॥१९॥

पदार्थ—नूपुरयुगलम्=नूपुरों का जोड़ा, विचलति=गिर रहा है, मणिखचिता=मणिजटित, मेखला=करधनिया, रत्नाङ्कुरजालप्रतिबद्धा.=लघुरत्नसमूह से जड़े हुए, सुन्दरतरा=अत्यन्त सुन्दर, वलया=कङ्गन, च=और, छिद्यन्ते=टूट रहे हैं।

अनुवाद—नूपुरों का जोड़ा गिर रहा है, मणिजटित करधनियाँ एवं लघु रत्नसमूह से खचित अतिशय सुन्दर कङ्गन टूट रहे हैं।

संस्कृत टीका—नूपुरयुगलम्=चरणकटकयुग्मम्, विचलति=पतति, मणिखचिता=रत्नजटिता, मेखला=काञ्च्य, रत्नाङ्कुरजालप्रतिबद्धा=लघुरत्नसमूहानुस्यूता, सुन्दरतरा=मञ्जुलतरा, वलया च,=कटका च, छिद्यन्ते=विशीर्यन्ते।

समास एवं व्याकरण—(१) मणि०-मणिभि खचिता। रत्ना० रत्नाङ्कुराणाम् जालेन प्रतिबद्धा (२) विचलति-वि+चल्+लट्। नूपुरयुगलम् जातौ एकवचनम्। छिद्यन्ते-छिद्+यक्+लट्।

विवृति

(१) अन्तिम पंक्ति में न्यूनपदता दोष है। (२) आर्या छन्द है।

ततस्तेन दुष्टहस्तिना करचरणरदनैः फुल्लनलिनीमिव नगरीमुज्जयिनीमवगाहमानेन समासादितः परिव्राजकः। तं च परिभ्रष्टदण्डकुण्डिकाभाजनं शीकरैः सिक्त्वा दन्तान्तरे क्षिप्तं प्रेक्ष्य पुनरप्युद्घुष्टं जनेन—'हा, परिव्राजको व्यापाद्यते' इति। [तदो तेण दुट्टहत्थिणा कलचलणलदणेहिं फुल्लणलिणिं विअ णअलिं उज्जइणिं अवगाहमाणेण समासादिदो परिव्वाजओ। तं च परिब्भट्टदण्डकुण्डिआभाअणं सीअरेहिं सिञ्चिअ दन्तन्तरे खिवन्तं पेक्खिअ पुणोवि उग्घुट्टं जणेण—हा परिव्वाजओ वावादीअदि' त्ति।]

तदनन्तर उस दुष्ट हाथी ने सूँड, पैरों और दाँतों से, फूली हुई कमल की लता के समान, उज्जयिनी नगरी को रौंदते हुए (एक) सन्यासी को पकड़ लिया।

उसके दण्ड-कमण्डलु गिर गए। (गज द्वारा) जल बिन्दुओं से भिगोकर (सन्यासी को) दाँतो के बीच मे रखा (फँसा) हुआ देखकर फिर से नागरिको ने चिल्लाना प्रारम्भ किया–'हाय ! सन्यासी मारा जा रहा है ?'

वसन्तसेना--(ससम्भ्रमम्) अहो प्रमाद, अहो प्रमाद। [अहो पमादो अहो पमादो।]

वसन्तसेना--(घबराहट के साथ) ओह ! अनवधानता (लापरवाही)! ओह ! अनवधानता !

कर्णपूरक--अलं सम्भ्रमेण। शृणोतु तावदार्या। ततो विच्छिन्नविसष्ठुल-शृङ्खलाकलापमुद्वहन्तं दन्तान्तरपरिगृहीतं परिव्राजकमुद्वहन्तं तं प्रेक्ष्य कर्णपूरकेण मया, नहि नहि, आर्याया अन्नपिण्डपुष्टेन दासेन, वामचरणेन द्यूतखेलकं उद्घुष्योद्घुष्य त्वरितमापणाल्लोहदण्डं गृहीत्वाकारितः स दुष्टहस्ती। (अलं सम्भमेण। सुणादु दाव अज्जआ। तदो विच्छिण्णविसठुल सिङ्खलाकलावं उव्वहन्तं दन्तन्तरपरिगहिदं परिव्वाजअं उव्वहन्तं तं पेक्खिअ कण्णऊरएण मए, णहि णहि, अज्जआए अण्णपिण्ड-उट्ठेण दासेण, वामचलणेण जूदलेक्खअं उग्घुसिअ ऊघुसिअ तुरिदं आवणादो लोहदण्डं गेण्हिअ आआरिदो सो दुट्ठहत्थी।)

कर्णपूरक--घबराइये नही सुनिए तो आर्या ! तब टूटी फूटी एवं अस्त-व्यस्त जञ्जीरो को धारण किये हुए दाँतो के बीच पकड़े हुए सन्यासी को ऊपर उठाते हुए उस (हाथी) को देखकर मैं 'कर्णपूरक' ने–नही, नही, आपके अन्न के कौर से पले हुए इस सेवक ने बाएँ चलने से (बाईं ओर पैंतरा बदल कर) जुआरी (संवाहक जो सन्यासी होकर हाथी के दाँत मे दबा है) को ऊँची आवाज देकर, शीघ्र ही बाजार से लोहे की एक छड लेकर उस दुष्ट हाथी को ललकारा।

वसन्तसेना–ततस्तत। (तदो तदा।)

वसन्तसेना–तत्पश्चात्।

विवृति

(१) फुल्लनलिनीम्=फूले कमलवाली सरसी। अवगाहमानेन=विलोडन करने वाले। समासादित.=पकड लिया गया। सीकरैः=जलबिन्दुओ से। व्यापाद्यते =मारा जा रहा है। सम्भ्रमेण=जल्दी में। विच्छिन्नविसष्ठुलशृङ्खलाकलापम्= छिन्न भिन्न एवं अस्त व्यस्त जंजीरो को। अन्न पिण्ड पुष्टेन=अन्न से पले हुए। वामचलनेन=टेढ़ी चाल से। आकारित =ललकारा गया। आपणात्=बाजार से। (२) फुल्लानि नलिनानि यस्याम् ताम्। (३) विच्छिन्न अतएव विसष्ठुल शृङ्खला-कलाप तम्। (४) 'हूतिराकरणाह्वानम्।' इत्यमर। (५) परिभ्रष्टदण्डकुण्डिका-भाजनम्=जिसके दण्डकमण्डलु गिर गये हैं। परिभ्रष्टे दण्डकुण्डिकाभाजने यस्य

तादृशम् । (६) उद्घुष्य-उद्घुष्य=ऊँची आवाज दे देकर। आ+कृ+णिच्+क्त=आकारित ।

कर्णपूरक —

कर्णपूरक—

आहत्य सरोष त हस्तिन विन्ध्यशैलशिखराभम् ।
मोचितो मया स दन्तान्तरसस्थित परिव्राजक ॥
[आहणिऊण सरोस त हत्थि विञ्झसेलसिहराभ ।
मोआविओ मए सो दन्तरसठिओ परिव्वाजओ ॥२०॥]

अन्वय —विन्ध्यशैलशिखराभम् तम्, हस्तिनम्, सरोषम्, आहत्य, मया, दन्तान्तरसस्थित, स, परिव्राजक, मोचित ॥२०॥

पदार्थ —विन्ध्यशैलशिखराभम्=विन्ध्य पर्वत की चोटी की जैसी कान्ति वाले, तम्=उस, हस्तिनम्=गज पर, सरोषम्=क्रोध पूर्वक, आहत्य=आघात कर, मया=मैंने, दन्तान्तरसस्थित =दांतो के मध्य मे दवे हुए, स =उस, परिव्राजक=भिक्षु, मोचित =छुडा लिया ।

अनुवाद —विन्ध्य पर्वत के शिखर सदृश शोभा वाले उस गज पर क्रोध पूर्वक आघात करके मेरे द्वारा दांतो के मध्य मे दबा हुआ वह भिक्षु छुडा लिया गया।

संस्कृत टीका —विन्ध्यशैलशिखराभम् = विन्ध्य पर्वतशिखरसन्निभम्, तम्, हस्तिनम्=गजम्, सरोषम्=सकोपम्, आहत्य=प्रहृत्य, मया=कर्णपूरकेन, दन्तान्तरसस्थित =दन्तमध्यपतित, स, परिव्राजक =भिक्षु, मोचित =मुक्त कृत ।

समास एव व्याकरण —(१) विन्ध्य०—विन्ध्यशैलस्य शिखरस्य आभा इव आभा यस्य तम् । दन्त०—दन्तान्तरे सस्थित इति दन्तान्तरसस्थित । (२) आहत्य आ+हन्+क्त्वा+ल्यप् । सस्थित—सम्+स्था+क्त। परिव्राजक—परि+व्रज्+ण्वुल् । मोचित—मुच्+णिच्+क्त ।

विवृति

(१) पद्य मे गीति छन्द है। (२) कुछ लोग इस गाथा छन्द भी कहते है वह आर्या का ही एक प्रकार है—"आर्या पूर्वार्द्धसम द्वितीयमपि भवति यत्र हसगते। छन्दोविदस्तदानीम् गीति ताममृतवाणि भाषन्ते ।"

वसन्तसेना—सुष्ठु त्वया कृतम् । ततस्तत । [सुट्ठु दे किदम् । तदो तदो ।]

वसन्तसेना तुमने बहुत अच्छा किया ! उसके बाद ?

कर्णपूरक —तत आर्ये, 'साधु रे कर्णपूरक, साधु' इत्येतावन्मात्र भणन्ती, विषमभराक्रान्ता इव नौ, एकत पर्यस्ता सकलाऽऽज्जयिन्यासीत् । तत आर्ये, एकेन शून्यान्याभरणस्थानानि परामृश्य ऊर्ध्व प्रेक्ष्य दीर्घ नि श्वस्याय प्रावारको ममोपरि

क्षप्तः । [तदो अज्जए, 'साहु रे कण्णऊरअ, साहु' ति एत्तिअमेत्तं भणन्ती, विसम-मरक्कन्ता विअ णावा, एक्कदो पल्हत्था सअला उज्जइणी आसि । तदो अज्जए, एक्केण सुण्णाइ आहरणट्ठाणाइ परामुसिअ उद्ध पेक्खिअ दीह णीससिअ अअ पावारओ मम उवरि क्खित्तो ।]

कर्णपूरक—तब तो आर्ये ! 'वाह ! कर्णपूरक ! वाह !' एकमात्र यही कहती हुई, विषम-भार से दबी हुई नौका की भाँति सम्पूर्ण 'उज्जयिनी' (उज्जैन की जनता) एक ओर ही एकत्रित हो गयी । तब आर्ये ! एक (नागरिक चारुदत्त) ने अपने आभूषण पहिनने के खरिक्त अङ्गों को स्पर्श कर, ऊपर (आकाश की ओर) देखकर लम्बी श्वास खीचकर यह दुपट्टा मेरे ऊपर फेंक दिया ।

वसन्तसेना—कर्णपूरक, जानीहि तावत्किमेष जातीकुसुमवासितः प्रावारको न वेति । [कण्णऊरअ, जाणीहि दाव किं एसो जादीकुसुमवासिदो पावारओ ण वेत्ति]

वसन्तसेना—कर्णपूरक ! देखो तो, क्या यह उत्तरीय चमेली के सुमनो से सुवासित है अथवा नही ?

कर्णपूरक :—आर्ये मदगन्धेन सुष्ठु त गन्ध न जानामि । [अज्जए, मदगन्धेण सुट्ठु त गन्ध ण जाणामि ।]

कर्णपूरक—आर्ये ! (अपने शरीर मे लिपटे हाथी के) मद की गन्ध (अधिक होने) के कारण उस (चमेली) की महक को भलीभाँति नही जान पा रहा हूँ ।

वसन्तसेना—नामापि तावत्प्रेक्षस्व । [णाम पि दाव पेक्ख ।]

वसन्तसेना—तो नाम भी देखो !

कर्णपूरक—इद नामार्यैव वाचयतु । [इम णाम अज्जआ एव्व वाएदु ।] (इति प्रावारकमुपनयति ।)

कर्णपूरक—यह नाम आप ही बाँचे । (उत्तरीय दे देता है)

वसन्तसेना—आर्यचारुदत्तस्य । [अज्जचारुदत्तस्स] (इति वाचयित्वा सस्पृह गृहीत्वा प्रावृणोति ।)

वसन्तसेना—'आर्य चारुदत्त का' –(इतना पढकर प्रेमपूर्वक लेकर ओढती है।)

चेटी—कर्णपूरक, शोभत आर्यायाः प्रावारकः । [कण्णऊरअ, सोहदि अज्जआए पावारओ ।]

चेटी—कर्णपूरक ! आर्या के दुपट्टा अच्छा लगता है ?

कर्णपूरक.—आ शोभत आर्यायाः प्रावारकः । [आ सोहदि अज्जआए पावारओ]

कर्णपूरक—हाँ, आर्या के (शरीर पर) दुपट्टा बहुत अच्छा लगता है ।

वसन्तसेना—कर्णपूरक, इद ते पारितोषिकम् । [कण्णऊरअ, इद दे पारितोसिअम् ।] (इत्याभरण प्रयच्छति ।)

वसन्तसेना—कर्णपूरक ! यह तुम्हारा पुरस्कार है। (ऐसा कह कर आभूषण देती है।)

कर्णपूरक.-(शिरसा गृहीत्वा प्रणम्य च।) साम्प्रतं सुष्ठु शोभते आर्याया प्रावारकः। [संपद सुट्ठु सोहदि अज्जआए पावारओ।]

कर्णपूरक-(सिर से लेकर और प्रणाम कर) अब आपका दुपट्टा बहुत अच्छा लग रहा है।

वसन्तसेना—कर्णपूरक, एतस्यां वेलायां कुत्रार्यचारुदत्तः। [कण्णऊरअ, एदाए वेलाव कहिं अज्जचारुदत्तो।]

वसन्तसेना—कर्णपूरक ! इस समय 'आर्यचारुदत्त' कहाँ है ?

कर्णपूरकः-एतेनैव मार्गेण प्रवृत्तो गन्तुं गेहम्। [एदेण ज्जेव मग्गेण पवुत्तो गन्तुं गेहम्।]

कर्णपूरक—इसी रास्ते से घर लौटे जा रहे हैं।

वसन्तसेना-चेटि, उपरितनमलिन्दकमारुह्यार्यचारुदत्तं पश्यामः। [हञ्जे, उवरिदण अलिन्दअं आरुहिअ अज्जचारुदत्तं पेक्खेम्ह।]

वसन्तसेना—हला ! ऊपर वाली अटारी (छत) पर चढ़कर 'आर्यचारुदत्त' को देखें।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे।)

(सब निकल जाते है।)

विवृति

इति द्यूतकरसंवाहको नाम द्वितीयोऽङ्कः

द्यूतकर संवाहक नामक दूसरा अङ्क समाप्त।

(१) विषमभराक्रान्ता=अधिक बोझ से दबी नौका। पर्यस्ता=झुक गई। शून्यानि=रिक्त। आभरणस्थानि=गहने पहनने के अङ्गों को। प्रेक्ष्य=देखकर। परामृश्य=स्पर्शकर। दीर्घम् निःश्वसस्य=लम्बी साम लेकर। क्षिप्तः=फेंका गया। जातीकुसुमवासित =चमेली के फूलों से सुगन्धित। सस्पृहम्=लालसापूर्वक। प्रावृणोति=ओढ़ती है। अलिन्दकम्=छत पर। (२) सुष्ठु—स्था+कु। (३) जाती कुसुमैः वासितः। (४) मदस्य गन्धेन मदगन्धेन। (५) स्पृहा सहितम् सस्पृहम्. (६) यहाँ पर मुख सन्धि का कर्ण नामक अंग है क्योंकि प्रकृत अनुराग का आरम्भ है। (७) द्यूतकर संवाहक चारुदत्त का सेवक है। वह सुवर्ण हार जाने से जुआरियों के नेता द्वारा बांध लिया गया। उसे वसन्तसेना ने मुक्त कराया है। वसन्तसेना ने अति प्रेम में चारुदत्त का दुपट्टा ओढ़ा है।

तृतीयोऽङ्कः

तृतीय अङ्क।

(तत प्रविशति चेट ।)

(तदनन्तर चेट प्रवेश करता है।)

चेट :—

चेट —

सुजनः खलु भृत्यानुकम्पक स्वामी निर्धनकोऽपि शोभते।
पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्कर खलु परिणामदारुण. ॥१॥
[सुअणे खु भिच्चाणुकम्पके शामिए णिद्धणके वि शोहदि।
पिशुणे उण दव्वगव्विदे दुक्कले क्खु पलिणामदालुणे ॥१॥]

अन्वय :—भृत्यानुकम्पक, सुजन, स्वामी, निधनकः, अपि, (सन्), खलु, शोभते, पुन, द्रव्यगर्वित, पिशुन, दुष्कर, परिणामदारुण, खलु, (भवति) ॥१॥

पदार्थ .—भृत्यानुकम्पक.=सेवको पर दया करने वाला, सुजन =सज्जन, स्वामी=मालिक, निर्धनक =गरीब, द्रव्यगर्वित =धन के मद म चूर, पिशुन = दुर्जन, दुष्कर.=दु ख से सेवा करने योग्य, परिणामदारुण =अन्त म भयङ्कर।

अनुवाद .—सेवको पर कृपा करने वाला, साधु स्वामी, धनहीन होने पर भी सुखकर होता है किन्तु सम्पत्ति के मद से मत्त दुर्जन स्वामी दु ख से सेवा करने योग्य एव अन्त म दु खदायी होता है।

संस्कृत टीका :—भृत्यानुकम्पकः=सेवकपापः, सुजन =सज्जन, स्वामी= प्रभु, निर्धनक =धनरहित, अपि, खलु=निश्चयेन, शोभते=रोचते, पुन =किन्तु, द्रव्यगर्वित =धनमदमत्त, पिशुन =दुर्जन, दुष्कर =दु खेनसेवायोग्य, परिणाम-दारुण =कार्यसिद्धौ भयङ्कर, खलु=निश्चयन, (भवति) ॥

समास एव व्याकरण—(१) द्रव्य०=द्रव्यन गर्वित । दुष्कर =दु खेन क्रियत इति। परिणामदारुण =परिणाम दारुण । (२) दुष्कर—दुष्+कृ+खल्। परिणाम—परि+नम्+घञ् । पिशुन =पिश्+उनच् (किच्च) । भृत्यानाम् अनुकम्पक भृत्यानुकम्पक । निर्धन एव निर्धनक । निर्धन+कन्।

विवृति

(१) 'पिशुनजनम खलु बिभ्रति क्षितीन्द्राः'—भामिनी०। (२) 'अप्रियस्यापि-स्यात् पथ्यस्य परिणाम सुखावह ।' —हितोपदेश। (३) 'पिशुनो दुर्जन खल' इत्यमर। (४) अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है। (५) वैतालीय छन्द है—'वैतालीयेऽन्त रलौ गुरु ।' (६) कुछ टीकाकार विषमालङ्कार भी कहते हैं। (७) उत्तरार्ध म व्यञ्जना से धकार अर्थ भी द्योतित होता है। (८) इस अङ्क मे प्रतिमुख सन्धि है।

वसन्तसेना का चारुदत्त के प्रति महानुराग ही दोनों के समागम रूप फल का प्रधान उपाय है—'फल प्रधानोपायस्य मुख सन्धिनिवेशिन ।' लक्ष्यालक्ष्यबोद्भेदो यत्र प्रति-मुख च तत् ।' (९) चेट मागधी भाषा बोलता है। (१०) पूर्वार्ध में व्यजना से चारुदत्त अर्थ द्योतित होता है।

अपि च ।

और भी—

सस्यलम्पटबलीवर्दो न शक्यो वारयितु-
मन्य–कलत्र–प्रसक्तो न शक्यो वारयितुम् ।
द्यूतप्रसक्तमनुष्यो न शक्यो वारयितु
योऽपि स्वाभाविकदोषो न शक्यो वारयितुम् ॥
[शश्शपलक्कबलद्दे ण शक्कि वालिदु
अण्णपश्शत्तकलत्ते ण शक्कि वालिदु ।
जूदपशत्तमणुश्शे ण शक्कि वालिदु
जे वि शहाविअदोशे ण शक्कि वालिदु ॥२॥]

अन्वय —सस्यलम्पटबलीवर्द, वारयितुम्, न, शक्य, अन्यकलत्रप्रसक्त, वारयितुम्, न, शक्य, द्यूतप्रसक्तमनुष्य, वारयितुम्, न, शक्य, य, अपि, स्वाभाविक-दोष (अस्ति, स) वारयितुम्, न, शक्य ॥ २ ॥

पदार्थ —सस्यलम्पटबलीवर्द =धान्य का लोभी बैल, वारयितुम्=रोकने मे, न शक्य =नही सम्भव, अन्यकलत्रप्रसक्त =परस्त्रीगामी, द्यूतप्रसक्तमनुष्य.=जुए मे अनुरक्त पुरुष, स्वाभाविकदोष =प्राकृतिक बुराई।

अनुवाद —(हरित) धान्य का लोभी वृषभ, परस्त्रीगामी मनुष्य और जुए मे अनुरक्त पुरुष रोका नही जा सकता है, जो भी प्रकृति से प्राप्त दुर्गुण है उसका निवारण नही किया जा सकता है।

सस्कृत टीका —सस्य०-धान्यभक्षणरतवृषभ, वारयितुम्=अवरोद्धुम्, न शक्य =न सम्भव, अन्यकलत्रप्रसक्त =परनारीलम्पट, वारयितुम्, न, शक्य, द्यूत-प्रसक्तमनुष्य =अक्षक्रीडानुरक्तजन, वारयितुम्, न, शक्य, य, अपि, स्वाभाविक-दोष =प्रकृतिसिद्धदूषणम्, तद् वारयितुम् न शक्यम्।

समास एवं व्याकरण –(१) सस्य० सस्यानाम् लम्पट. बलीवर्द.। अन्य०–अन्येषाम् कलत्रेषु प्रसक्त । द्यूत०–द्यूते प्रसक्त मनुष्य.। स्वाभा०–स्वाभाविक दोष । (२) शक्य.—शक्+यत् । प्रसक्त—प्र+सञ्ज्+क्त ।

विवृति

(१) श्लोक म अप्रस्तुत प्रशसा एव दृष्टान्त अलङ्कार है –'दृष्टान्तस्तु

सधर्मस्य वस्तुत प्रतिविम्बनम् ।' 'अप्रस्तुतात् प्रस्तुत चेत् गम्यते पचधा तत । अप्रस्तुतप्रशसास्यात्' (२) 'चतुर्दशाक्षरा शक्करी जाति (छन्द)' इति पृथ्वीधर। (३) 'स्वभावोदुरतिक्रम' । (४) शक्यो वारयितुम् जलेन हुतभुक् ।—भर्तृहरि। (५) चारुदत्त की अतिशय उदारता भी दोष बन गई—वित्त परिमितमपि कव्ययशील पुरुषमाकुलीक्रियत । उनामुकमिवपीनस्तनजघनाया कुलीनाया ।'

कापि वेलार्यचारुदत्तस्य गान्धर्वं श्रोतु गतस्य । अतिक्रामत्यर्धरजनी । अद्यापि नागच्छति । तद्यावदवहिर्द्वारशालाया गत्वा स्वप्स्यामि । (इति तथा करोति ।) [का वि वेला अज्जचारुदत्तस्स गन्धव्व शुणिदु गदस्स । आदिक्कमदि अद्धलअणी । अज्ज वि ण आअच्छदि । ता जाव वाहिलदुआलशालाए गदुअ शुविश्शम् ।]

'आर्य चारुदत्त' को गाना सुनने के गये हुए कितनी देर हो गई ? अर्धरात्रि व्यतीत हो रही है । अब भी नही आ रहे हैं, इसलिए तब तक वाहर ड्योढी म जाकर सोता हूँ । (वैसा करता है ।)

(तत प्रविशति चारुदत्तो विदूषकश्च ।)

(तदनन्तर चारुदत्त और विदूषक प्रवेश करते है ।)

चारुदत्त —अहो अहो, साधु साधु, रेभिलेन गीतम् । वीणा हि नामासमुद्रोत्थित रत्नम् । कुत ।

चारुदत्त—वाह ! वाह !! 'रेभिल' ने बहुत अच्छा गाया । 'वीणा तो वास्तव म बिना समुद्र से निकला हुआ (अलौकिक) रत्न है ।' क्योकि—

विवृति

(१) गान्धर्वं=गीत को । अतिक्रामति=बीत रही है । रजनी=रात्रि । स्वप्स्यामि=सोऊँगा । असमुद्रोत्थितम्=जो समुद्र स नही निकला । (२) गन्धर्वाणाम् इदम् गान्धर्वम् । गन्धर्व+अण् । दवलोक के गायक गन्धर्व कहलाते हैं । सङ्गीत विद्या का गान्धर्व उन्ही क नाम पर कहा जाता है । (३) समुद्रात् उत्थितमिति समुद्रात्थितम् न समुद्रोत्थितम् असमुद्रोत्थितम् । (४) अहो=आश्चर्य है । 'अहो हि च विस्मये' इत्यमर । (५) 'लक्ष्मी कौस्तुभ पारिजातक सुराधन्वन्तरिश्चन्द्रमा, गाव कामदुहा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गना । अश्व सप्तमुखा विषमहरिधनु शङ्खोऽमृतम् चाम्बुवे, ग्लानीह चतुर्दशप्रतिदिनम् कुर्यु सदा मङ्गलम् ॥"

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या
सकेतके चिरयति प्रवरो विनोद ।
सस्थापना प्रियतमा विरहातुराणा
रक्तस्य रागपरिवृद्धिकर प्रमाद ॥३॥

अन्वय —(वीणा), उत्कण्ठितस्य, हृदयानुगुणा, वयस्या, सङ्केतके, चिरयति,

प्रवर, विनोद, विरहातुराणाम्, प्रियतमा, संस्थापना, रक्तस्य, रागपरिवृद्धिकर, प्रमोद, (अस्ति) ॥३॥

पदार्थ—उत्कण्ठितस्य=व्याकुल व्यक्ति की, हृदयानुगुणा=मनोनुकूल, वयस्या=मित्र, सङ्केतके=अभिसार का वादा करने वाले प्रेमी के, चिरयति=विलम्ब करने पर, प्रवर=उत्कृष्ट, विनोद=मनोरञ्जन, विरहातुराणाम्=वियोग से उद्विग्न जनों की, प्रियतमा=अत्यन्त प्रिय, संस्थापना=सान्त्वना देने वाली, रक्तस्य=प्रेमी के, रागपरिवृद्धिकर=अनुराग को बढ़ाने वाला, प्रमोद=विनोद।

अनुवाद—प्रिय के लिए आकुल व्यक्ति के लिए मनोनुकूल मित्र है, अभिसार के लिए दत्त वचन प्रेमी के देर करने पर उत्कृष्ट मनोरंजन है। विरह व्याकुल जनों की अत्यन्त प्रिय सान्त्वना है तथा प्रेमियों के प्रेम को बढ़ाने वाला विनोद है।

संस्कृत टीका—उत्कण्ठितस्य=प्रियमिलनातुरस्य जनस्य, हृदयानुगुणा=मनोऽनुकूला, वयस्या=प्रियसखी, सङ्केतके=सकेतदायिनिप्रिये, चिरयति=विलम्बम् कुर्वति, प्रवर=उत्कृष्ट, विनोद=प्रमोद, विरहातुराणाम्=वियोगव्याकुलानाम्, प्रियतमा=अत्यन्तप्रिया, संस्थापना=धैर्यदात्री, रक्तस्य=अनुरागिण, रागपरिवृद्धिकर=अनुरागसवर्धक, प्रमोद=आल्हाद।

समास एवं व्याकरण—(१) विरह०-विरहेण आतुराणाम् (२) राग०—रागस्य परिवृद्धिकर। (३) विनोद-वि+नुद्+घञ्। (४) प्रमोद=प्र+मुद्+घञ्। (५) प्रियतमा-प्रिय+तमप्+टाप्। (६) वयस्या-वयस्+यत्+टाप्। (७) रक्तस्य-रञ्ज्+क्त। (८) सम्+कित्+णिच्+ण्वुल् (अक)=संकेतक। चिर+णिच् (नामधातु)+शतृ+सप्तमी=चिरयति।

विवृति

(१) "अयमैन्द्रीमुख पश्य रक्तश्चुम्बति चन्द्रमा।"—चन्द्रालोक। (२) एक ही वीणा का अनेक रूपों में उल्लेख होने से उल्लेखालङ्कार है। (३) वीणा शब्द का सर्वत्र संयोजन होगा। (४) विनोद और प्रमोद रूप कार्य का कारण रूप वीणा से अभेद कथन होने से हेतु अलङ्कार भी है। (५) 'एकस्यानेकधोल्लेखो य स उल्लेख उच्यते।'—सा० द०। (६) अभेदेनाभिधा हेतुर्हेतोर्हेतुमता सह।"—सा० द०। (७) वसन्ततिलका छन्द है। (८) 'प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानाम् विनोदा।'—मेघ०।

विदूषक—भो, एहि। गृहं गच्छाव। [भो, एहि। गेहं गच्छेम्ह।]

विदूषक—अजी! आइये! घर चलें!

चारुदत्त—अहो, सुष्ठु भावरेभिलेन गीतम्।

चारुदत्त—अहा! 'रेभिल' महोदय ने बहुत अच्छा गाया।

विदूषक—मम तावद्द्वाभ्यामेव हास्यं जायते। स्त्रिया संस्कृतं पठन्त्या, मनुष्येण च काकलीं गायता। स्त्री तावत्संस्कृतं पठन्ती, दत्तनवनस्येव गृष्टि, अधिक

सूसूशब्द करोति । मनुष्योपि काकली गायन् शुष्कसुमनोदामवेष्टितो वृद्धपुरोहित इव मन्त्र जपन्, दृढ मे न रोचते । [मम दाव दुवेहिं ज्जेव्व हस्स जाअदि । इत्थिआए सक्कअं पठन्तीए, मणुस्सेण अ काअली गाअन्तेण । इत्थिआ दाव सक्कअ पठन्ती, दिण्णणवणस्सा विअ गिट्टी, अहिअं सुसुआअदि । मणुस्सो वि काअली गाअन्तो, सुक्खसुमणोदामवेट्टिदो वुड्ढपुरोहिदो विअ मन्त्त जवन्तो, दिढ से ण रोअदि ।]

विदूषक—मुझे तो इन दोनो पर ही हँसी आती है । संस्कृत पढती हुई स्त्री पर, महीन-मधुर-ध्वनि से गाते हुए पुरुष पर । स्त्री तो संस्कृत पढती हुई नवीन नासिका-छिद्रित प्रथम प्रसूता गौ की भाँति अत्यधिक 'सू-सू' शब्द करती है । मनुष्य भी महीन-मधुर-ध्वनि से गाता हुआ शुष्क पुष्पमाला स वेष्टित (पहने हुये) बूढे पुरोहित की भाँति मन्त्र जपते हुये मुझे बिल्कुल अच्छा नही लगता ।

चारुदत्त—वयस्य, सुष्ठु खल्वद्य गीत भावरेभिलेन । न च भवान्परितुष्ट ।

चारुदत्त—सुहृद् ! आज तो 'रेभिल' महोदय ने बहुत ही सुन्दर गाया ! और आप सन्तुष्ट नही हुय ।

विवृति

(१) भावरेभिलेन=विद्वान् रेभिल ने । काकलीम्=धीमी मधुर ध्वनि से । दत्तनवनस्या—नाक मे पहली बार नाथी गई । गृष्टि=प्रथम प्रसूता गौ । शुष्क-सुमनोदामवेष्टित=सूखे फूलो की माला पहने । दृढ=पूरी तरह से । (२) भाव-श्चासौरेभिलश्चति भावरेभिल तेन भावरेभिलेन । (३) 'काकली तु कले सूक्ष्मेध्वनौ' इत्यमर । (४) दत्तानवानस्या यस्यै सा दत्तनवनस्या । (५) शुष्क यत् सुमनसा दाम तेन वेष्टित इति । (६) 'भावा विद्वान्' इत्यमर ।

रक्त च नाम मधुर च सम स्फुट च
भावान्वित च ललित च मनोहर च ।
किं वा प्रशस्तवचनैर्बहुभिर्मदुक्तै-
रन्तर्हिता यदि भवेद्वनितेति मन्ये ॥४॥

अन्वय—(गीतम्), नाम, रक्तम्, च, मधुरम्, च, समम्, स्फुटम्, च, भावान्वितम्, च, ललितम्, च, मनोहरम्, च, (आसीत्), वा, मदुक्तै, बहुभि, प्रशस्तवचनै, किम् ? यदि, वनिता, अन्तर्हिता भवेत्, इति, मन्ये ॥४॥

पदार्थ—नाम=निश्चय, रक्तम्=रागपूर्ण, समम्=सुसङ्गत, स्फुटम्=स्पष्ट भावान्वितम्=भावमय, ललितम्=कोमल मदुक्तै=मुझ से कहे गये, प्रशस्तवचनै=प्रशसा के वाक्यो स, वनिता=स्त्री, अन्तर्हिता=छिपी हुई, मन्ये=मानता हूँ ।

अनुवाद—निश्चय ही (गीत) रागपूर्ण, सुनने मे मीठा, सुसङ्गत, स्पष्ट, भावमय, कामल एव चित्ताकर्षक था अथवा मेरे द्वारा कहे गय बहुत प्रशसा क वाक्यो से क्या ? कदाचित् स्त्री छिपी हुई हो ऐसा मैं मानता हूँ ।

संस्कृत टीका—नाम=निश्चयेन (गीतम्), रक्तम्=अनुरागोत्पादकम, च, मधुरम्=श्रवणसुभगम्, च, समम्=स्वरतालसवलितम्, स्फुटम्=स्पष्टम्, च, भावान्वितम्=रत्यास्पदम्, च, ललितम्=सुन्दरम्, च, मनोहरम्=चित्ताकर्षकम्, च, वा= अथवा, मदुल =मयाक्थितै , बहुभि =अनेकै , प्रशस्तवचनै =प्रशसा वाक्यै , किम्? यदि, वनिता=स्त्री, अन्तर्हिता=आछन्ना, भवेत्, इति मन्ये=तर्कयामि ।

समास एव व्याकरण—(१) भावा०- भावै अन्वितम् । (२) रक्तम्-रञ्ज् +क्त । भाव-भू+घञ् । अन्वितम्-अनु+इ+क्त । नाम=नम्+णिच्+ड । भवेत्-भू+लिङ् । मन्य-मन्+लट् । अन्तर्हिता—अन्तर्+धा+क्त+टाप् ।

विवृति

(१) पद्य से गीत का माधुर्यातिशय व्यञ्जित होता है। (२) नारद शिक्षा के अनुसार रक्तम्-वाद्यस्वरों के पूर्णतया मेल को रक्त कहते हैं-'वेणुवीणा स्वराणाम् एकीभावे रक्तम् ।' (३) मधुर का अर्थ है स्वर तथा भावानुकूल ललित पदों तथा वर्णों से युक्त । 'मधुरम् नाम स्वर भावोपनीत ललित पदाक्षर गुणसमृद्धम् ।' (४) व्यक्त का अर्थ है व्याकरण की शुद्धता—'व्यक्तम् नाम पदपदार्थविकारागमलोपकृत् तद्धितविभक्त्यर्थवचनानाम् सम्यग् उपपादनम्' । (५) उत्प्रेक्षा और समुच्चय अलङ्कार हैं। वसन्ततिलका छन्द है ।

अपि च ।

और भी—

त तस्य स्वरसक्रम मृदुगिर श्लिष्ट च तन्त्रीस्वन
वर्णानामपि मूर्च्छनान्तरगत तार विरामे मृदुम् ।
हेलासयमित पुनश्च ललित रागद्विरुच्चारित
यत्सत्य विरतेऽपि गीतसमये गच्छामि शृण्वन्निव ॥५॥

अन्वय —सत्यम्, यत्, गीतसमय, विरते, अपि, वर्णानाम्, मूर्च्छनान्तरगतम्, अपि, तारम् विरामे, मृदुम्, पुन , च, हेलासयमितम् रागद्विरुच्चारितम्, तस्य, मधुरगिर , तम्, स्वरसक्रमम् श्लिष्टम, तन्त्रीस्वनम्, श्रृच, स्वन्, इव, अहम्, गच्छामि ।।५।।

पदार्थ —सत्यम्=यथार्थ है, यत्=जो, गीतसमये=गाने का समय, विरते= व्यतीत हो जाने पर, वर्णानाम्=अक्षरों की, मूर्च्छनान्तरगतम्=स्वरों के क्रम से आरोह एव अवरोह के अन्तर्गत, तारम्=अत्युच्च, विरामे=अवसान के समय, मृदुम्=कोमल, हेलासयमितम्=लीलापूर्वक नियन्त्रित, रागद्विरुच्चारितम्=रागों म दो बार उच्चारण की गई, मधुरगिर =कोमल वाणी, स्वरसक्रमम्=स्वरयोजना का, श्लिष्टम्—(स्वरयोजना व) मिश्रित, तन्त्रीस्वनम्=वीणा की ध्वनि को,

शृण्वन्=सुनता हुआ, अहम्=मैं, गच्छामि=जा रहा हूँ।

अनुवाद—वस्तुत गान का समय व्यतीत हो जाने पर भी अक्षरो के स्वरो का क्रम से आरोह और अवरोह के अन्तर्गत (आरोह के समय) अत्युच्च, विराम के समय कोमल तथा पुन लीलापूर्वक नियन्त्रित, रागो में दो वार उच्चारण की हुई रेभिल की कोमल वाणी की उस स्वर-साधना को एवम् उससे मिश्रित वीणा की ध्वनि को मैं सुनता हुआ सा जा रहा हू।

संस्कृत टीका—सत्यम्, यत्, गीतसमये=सङ्गीतकाले, विरते=व्यतीते, अपि, वर्णानाम्=गानाक्षराणाम्, मूर्च्छनान्तरगतम्=स्वरारोहावरोहणमध्यवर्तिनम्, अपि, तारम्=अत्युच्चै, विरामे=अवसाने, मृदुम्=कोमलम्, पुन=मुहु, च हेलासंयमितम्, लीलानियन्त्रितम्, रागद्विरुच्चारितम्=रागविशेषेपु वारद्वयमुक्तम्, तस्य=रेभिलस्य, मधुरगिर=स्निग्धवाण्या, तम्=श्रुतपूर्वम्, स्वरसंक्रमम्=निपादादीनाम् सुमचारम्, श्लिष्टम्=गीताक्षरमिलितम्, तन्त्रीस्वनम्=वीणाध्वनिम्, च, शृण्वन्=आकर्ण्यन्, इव, अहम्, गच्छामि=यामि।

समास एवं व्याकरण—(१) गीत०—गीतस्य समये। मूर्च्छनाया अन्तरगतम्। हेला०—हेलया सयमितम्। राग०—रागेपु द्विरुच्चारितम्। स्वर०—स्वराणाम् सक्रमम्। तन्त्री०—तन्त्र्या स्वनम्। (२) विरते–वि+रम्+क्त। विरामे–वि+रम्+घञ्। संयमितम्–सम्+यम्+णिच्+क्त। सत्यम्=सत्+यत्। सते हितमित्यर्थ। मृदुम्–मृद्+कु। सक्रमम्–सम्+क्रम्+घञ्। श्लिष्टम्–श्लिष्+क्त। शृण्वन्–श्रु+शतृ।

विवृति

(१) क्रमात्स्वराणाम् सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।' सामूर्च्छेत्युच्यते ग्रामस्था एता सप्त सप्त च' अथवा 'यथाकुटुम्बिन सर्वे एकीभूता भवन्ति तथा स्वराणाम् सदोहो मूर्च्छना इत्यभिधीयते' इति पूर्वाचार्य। (२) वहुत से स्वर सक्रमो का उपन्यास होने से समुच्चय अलङ्कार है। (३) उत्प्रेक्षालङ्कार भी है। (४) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। (५) प्रसाद गुण है। (६) वैदर्भी रीति है। (७) तुलना—'रणद्भिराघट्टनया नमवस्त पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलै स्वरै। स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाण महती मुहुर्मुहु।"—शिशुपालवधम् १/१०।। प्रस्तुत पद्य मे चारुदत्त की सङ्गीतकलामर्मज्ञता प्रकट होती है।

विदूषक—भो वयस्य आपणान्तररथ्याविभागेपु सुख कुक्कुरा अपि सुप्ता। तद्गृह गच्छाव। (अग्रतोऽवलोक्य।) वयस्य, पश्य पश्य। एपाऽन्धकारस्येवावकाश ददन्तरिक्षप्रासादादवतरति भगवाश्चन्द्र। [भो वअस्स, आवणन्तररच्छाविभाएसु सुह कुक्कुरा वि सुत्ता। ता गेह गच्छेम्ह। वअस्स, पेक्ख पक्ख। एसो वि अन्धआरस्स विअ अवआस देन्तो अन्तरिक्खपासादादो ओदरदि भअव चन्दो,]

विदूषक—हे सखे ! बाजार की मध्यवर्तिनी गलियों की शाखाओं में सुख से कुत्ते भी सो गये हैं। इसलिए घर चलें। (आगे की ओर देखकर) मित्र ! देखो ! देखो ! यह भी अन्धेरे को अवकाश-सा देते हुये आकाश रूपी महल से चन्द्रदेव उतर (ढल) रहे हैं।

विवृति

(१) आपणान्तररथ्याविभागेषु=बाजार की गलियों में। अवकाशम्=स्थान को। अन्तरिक्ष प्रासादात्=आकाश रूपी अट्टालिका से। अवतरति=उतर रहे हैं। (२) आपणस्य अन्तरे रथ्यानाम् विभागेषु। (३) अन्त ईक्ष्यते इति अन्तरिक्षम् तदेव प्रासाद तस्मात्। (४) अन्तर्+ईक्ष्+घञ्=अन्तरिक्षम्। अन्तरीक्षम् प्रयोग भी होता है। (वैकल्पिक ह्रस्व) (५) अव्+काश्+घञ्=अवकाशम्।

चारुदत्त—सम्यगाह भवान्।

चारुदत्त–आपने ठीक कहा–

असौ हि दत्वा तिमिरावकाशमस्तं व्रजत्युन्नतकोटिरिन्दुः।
जलावगाढस्य वनद्विपस्य तीक्ष्णं विषाणाग्रमिवावशिष्टम्॥३॥

अन्वय—जलावगाढस्य, वनद्विपस्य, अवशिष्टम्, तीक्ष्णम्, विषाणाग्रम्, इव, हि, उन्नतकोटिः, असौ, इन्दु, तिमिरावकाशम्, दत्वा, अस्तम्, व्रजति॥६॥

पदार्थ—जलावगाढस्य=जलमग्न, वनद्विपस्य=जंगली हाथी के, अवशिष्टम्=बचे हुए, तीक्ष्णम्=नुकीले, विषाणाग्रम्=दांत के अग्रभाग की, इव=भाँति, उन्नतकोटिः=उठे हुए किनारे वाला, असौ=यह, इन्दु=चन्द्रमा, तिमिरावकाशम्=अन्धकार को स्थान, दत्वा=देकर, अस्तम्=अस्ताचल, की ओर, व्रजति=जा रहा है।

अनुवाद–जलमग्न जंगली हाथी के शेष रह गये दाँत के नुकीले अग्रभाग की भाँति उठे हुए किनारे वाला यह चन्द्रमा अन्धकार को स्थान देकर अस्ताचल की ओर जा रहा है।

संस्कृत टीका—जलावगाढस्य=सलिलमग्नस्य, वनद्विपस्य=अरण्यहस्तिन, अवशिष्टम्=अवशेषीभूतम्, तीक्ष्णम्=तीव्रम्, विषाणाग्रम्=दन्ताग्रम्, इव, हि=खलु, उन्नतकोटि=समुन्नताग्रभाग, असौ=अयम्, इन्दु=चन्द्रमा, तिमिरावकाशम्=अन्धकारप्रसारस्थानम्, दत्वा=प्रदाय, अस्तम्=अन्तर्हितम्, व्रजति=गच्छति।

समास एवं व्याकरण (१) जला०—जले अवगाढस्य। उन्नत०—उन्नता कोटि यस्य स.। तिमिरा०—तिमिरेभ्य अवकाशम्। (२) अवगाढ-अव्+गाह्+क्त। उन्नता—उत्+नम्+क्त+टाप्। दत्वा—दा+क्त्वा। अवशिष्टम्—अव+शिष्+क्त।

विवृति

(१) श्रौती उपमालङ्कार है। (२) उपजाति छन्द है। (३) गौडी रीति है। (४) माधुर्य गुण है। (५) 'विषाण स्यात्पशुशृङ्गेभदन्तयाः' इत्यमर। (६) "पादन्यास क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरो क्रान्त यन क्षपिततमसा मध्यम धाम विष्णोः। सोऽय चन्द्र पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखै, अत्यारुढिभवति महतामप्यपभ्रशनिष्ठा।।"—शाकुन्तल, ४/५।।

विदूषक—भो इदमस्माक गेहम्। वधमानक, वधमानक, उद्घाटय द्वारम्। [भो एद अह्माण गेहम्। वड्ढमाणअ, वड्ढमाणअ, उग्घाटेहि दुआरअम्।]

विदूषक—श्रीमान् जी यह हमारा घर है। वर्धमानक! वर्धमानक! किवाड खोल!

चट—आर्यमैत्रयस्य स्वरसयोग श्रूयते। आगत आर्यचारुदत्त। तद्यावद्द्वारमस्योद्घाटयामि। (तथा कृत्वा।) आर्य, वन्दे। मैत्रेय, त्वामपि वन्दे। अत्र विस्तीर्णे आसन निषीदतमार्यौ। (अज्जमित्तअस्स शलशजोए शुणीअदि। आगदे अज्ज, चालुदत्त। ता जाव दुआलअ शे उग्घाटमि। अज्ज वन्दामि। मित्तअ, तुमपि वन्दामि। एत्थ वित्थिण्णे आशणे णिशीदन्दु अज्जा।)

चेट—'आर्य मैत्रेय' की आवाज सुनाई पडती है। 'आर्य चारुदत्त' आ गये। तो अब दरवाजा खोलता हूँ। (वैसा करके) आर्य! प्रणाम! मैत्रेय! तुमको भी प्रणाम है। यहाँ बिछे हुए बिछौने (आसन) पर आप दोनों बैठें।

(उभौ नाट्यन प्रविश्योपविशत ।)

(दोनों अभिनय के द्वारा प्रवेश कर बैठ जाते हैं।

विदूषक—वधमानक रदनिकामाकारय पादौ धावितुम्।

(वड्ढमाणअ, रअणिअ सद्दावेहि पादाइ धाइदुम्।)

विदूषक—वधमानक! 'रदनिका को पैर धुलाने के लिए बुला!

चारुदत्त—(सानुकम्पम्।) अल सुप्तजन प्रबोधयितुम्।

चारुदत्त—(कृपा पूर्वक) सोये हुए जन (रदनिका) को मत जगाओ।

चेट—आर्य मैत्रेय, अह पानीय गृह्णामि। त्व पादौ धाव। [अज्जमित्तेअ, अह पाणिअ गण्ह। तुम पादाइ धावेहि।]

चेट—आर्य। मैत्रेय! मैं पानी लेता हूँ, तुम पैरों को धोओ?

विदूषक—(सक्रोधम्।) भो वयस्य, एष इदानीं दास्या पुत्रो भूत्वा पानीय गृह्णाति। मा पुनर्ब्राह्मण पादौ धावयति। [भो वअस्स, एसो दाणि दासीए पुत्तो भविअ पाणिअ गण्हदि। म उण ब्रह्मण पादाइ धावावदि।]

विदूषक—(क्रोध पूर्वक) हे मित्र? यह अब दासीपुत्र होकर पानी लेता है और मुझ ब्राह्मण से पैर धुलवाता है।

चारुदत्त —वयस्य मैत्रेय, त्वमुदकं गृहाण । वर्धमानक पादौ प्रक्षालयतु ।

चारुदत्त—मित्र ! मैत्रेय ! तुम जल लो । वर्धमानक पैरो को धोवे ।

चेट —आर्यमैत्रेय, देह्युदकम् । [अज्जमित्तेअ, देहि उदअम् ।]

चेट—आर्य मैत्रेय ! जल दीजिए''।

(विदूषकस्तथा करोति । चेटश्चारुदत्तस्य पादौ प्रक्षाल्यापसरति ।)

(विदूषक वैसा करता है । चेट चारुदत्त के पैरो को धोकर भाग जाता है)

चारुदत्त —दीयतां ब्राह्मणस्य पादोदकम् ।

चारुदत्त—ब्राह्मण (विदूषक) को पैर धोने के लिए पानी दो ।

विदूषक —किं मम पादोदकेन । भूम्यामेव मया ताडितगर्दभेनेव पुनरपि लोठितव्यम् । [किं मम पादोदएहिं । भूमीए ज्जेव मए ताडिदगद्दहेण विअ पुणोवि लोट्ठिदव्यम् ।]

विदूषक–पादोदक से मेरा क्या ? मुझे तो पीटे हुए गधे की भाँति फिर भी पृथ्वी पर ही लोटना है ।

चेट —आर्यमैत्रेय, ब्राह्मण खलु त्वम् । [अज्जमित्तेअ, वह्मणे क्खु तुमम् ।]

चेट–'आर्य मैत्रेय' ! तुम तो ब्राह्मण हो ।

विदूषक :–यथा सर्वनागानां मध्ये डुण्डुभ, तथा सर्वब्राह्मणानां मध्येऽहं ब्राह्मण । [जधा सव्वणागाण मज्झे डुण्डहो, तवा सव्वबह्मणाणमज्झे अह बह्मणो ।]

विदूषक–जैसे सभी सर्पों मे डोड़हा (जल का साँप, निर्विष) होता है वैसे ही ब्राह्मणो के बीच मैं (नाममात्र का) ब्राह्मण हूँ ।

चेट —आर्य मैत्रेय, तथापि धाविष्यामि । (तथा कृत्वा ।) आर्य मैत्रेय एतत्सुवर्णभाण्ड मम दिवा तव रात्रौ च । तद्गृहाण । (इति दत्वा निष्क्रान्त ।) अज्जमित्तेअ, तधा वि धोइस्सम् । अज्जमित्तेअ, एद त सुवण्णभण्डअ मम दिवा, तुह रत्तिं च । ता गेण्ह ।]

चेट—आर्य मैत्रेय ! तो भी धोऊँगा । (वैसा करके) आर्य मैत्रेय ! यह स्वर्ण-पात्र (सोने के गहना का बक्स) दिन मे मेरा तथा रात मे तुम्हारा है । इसलिए लो ! (देकर निकल जाता है ।)

विदूषक –(गृहीत्वा ।) अद्याप्येतत्तिष्ठति । किमत्रोज्जयिन्यां चौरोऽपि नास्ति, य एतं दास्याः पुत्र निद्राचौरं नापहरति । भो वयस्य, अभ्यन्तरचतुःशालकं प्रवेशयाम्येनम् । [अज्ज वि एदं चिट्ठदि । किं एत्थ उज्जइणीए चोरा वि णत्थि, जो एदं दासीए पुत्तं णिद्दाचोरं ण अवहरदि । भो वअस्स, अब्भन्तरचदुस्सालअं पवेसआमि एदम् ।)

विदूषक–(लेकर) यह आज भी स्थित है । क्या इस उज्जयिनी में कोई चोर भी नहीं है जो इस दासी पुत्र नींद के चोर (निद्रा में विघ्न डालने वाले स्वर्ण-

पात्र) को नही चुरा लेता। हे मित्र ! इसे अन्दर के प्रकोष्ठ म रखता हूँ।

विवृति

(१) स्वरसयोग —स्वरा का मल। विस्तीर्णे=बिछे हुए। प्रबोधयितुम्=जगाने को। धाव=धोओ। धावयति=धुलवाता है। अपसरति=हटता है। पादोदकम्=चरण धोने के लिए जल। लोठितव्यम=लेटना है। डुण्डुभ=विषहीन मटियारा साँप। अभ्यन्तरचतु शालकम्=अन्त पुर मे। निद्राचोर=नीद चुराने वाला। (२) पाद प्रक्षालनार्थम् उदकमिति पादोदकम्। (३) "अलगर्दो जलव्याल समौ राजिलडुण्डुभौ" इत्यमर। (४)अभ्यन्तरस्य चतु शालकमिति (५) अल सुप्तजनम्०—इनसे सेवकों के प्रति चारुदत्त की सहृदयता व्यक्त होती है। (६) निद्राचौर—इससे ज्ञात होता है कि रात्रि म रक्षार्थ चिन्तित रहने के कारण निद्रा नही आती। (७) अभ्यन्तरचतु शालकम्=भीतरी चौपार मे। (८) वि+स्तृ+क्त=विस्तीर्ण। प्र+बुध्+णिच्+तुमुन्=प्रबोधयितुम्। धाव्+णिच्+लट्=धावयति। (९) चतसृणा शालाना समाहार चतु शालम्।अभ्यन्तरवर्ति चतु शालम् अभ्यन्तरचतु शालम्, तदेव इति। अभ्यन्तरचतु शालकम्।

चारुदत्त —

चारुदत्त—

अल चतु शालमिम प्रवेश्य प्रकाशनारीधृत एप यस्मात्।
तस्मात्स्वय धारय विप्र ! तावद्यावन्न तस्या खलु भो समर्प्यते ॥७॥

अन्वय—इमम्, चतु शालम्,प्रवेश्य,अल यस्मात्,एप, प्रकाशनारीधृत,तस्मात्, भो विप्र ! तावत्, स्वयम्, धारय, यावत्, खलु, तस्या, (हस्त), समर्प्यते ॥७॥

पदार्थ —इमम्=इस (सुवर्णपात्र) को, चतु शालम्=चौपाल म प्रवेश्य=पहुँचाना, अलम्=ठीक नही, यस्मात्=क्योंकि, एप=यह, प्रकाशनारीधृत=वश्या की धरोहर, तस्मात्=इसलिए, भो विप्र ! हे ब्राह्मण ! तावत्=तब तक, धारय=रक्खो, यावत्=जब तक, खलु=निश्चय ही, तस्या=उसको, न=नही समर्प्यते=लौटा दिया जाता।

अनुवाद —इसको चौपाल म पहुँचाना व्यर्थ है क्योंकि यह वश्या की धरोहर है इसलिए हे ब्राह्मण ! तब तक स्वय रखो जब तक उसको लौटा नहीं दिया जाता।

सस्कृत टीका—इमम्=अलङ्कारम्, चतु शालम्=चतु प्रकोष्ठगृहम्, प्रवेश्य=प्रापय्य, अलम्=व्यर्थम्, यस्मात्=यत, एप=अलङ्कार, प्रकाशनारीधृत=वेश्यान्यास, तस्मात्=तत, भो विप्र=हे ब्राह्मण ! तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्, स्वयम्, धारय=स्थापय, यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, खलु=अवश्य, तस्या वसन्तसेनाया, न समर्प्यते=न दीयते ॥

समास एवं व्याकरण—(१) चतु०—चतस्र शाला यस्मिन् तम्। प्रकाश०—प्रकाशनार्थं घृत इति। (२) चतु शाल+कन्=चतु शालम्। प्रवेश्य—प्र+विश्+णिच्+क्त्वा→ल्यप्। घृत —घृ+क्त। धारय=घृ+णिच्+लोट्। समर्प्यते—सम्+अर्प्+यक्+लट्।

विवृति

(१) उपजाति छन्द है जो उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बनता है।(२) चारुदत्त वसन्तसेना के आभूषणों को अपनी पत्नी के आभूषणों के साथ जो कि कुलवधू है, नहीं रखना चाहता है।

(निद्रां नाट्यन्, 'त तस्य स्वरसक्रमम्—' (३/५) इति पुन पठति।)

(निद्रा का अभिनय करता हुआ,'उसकी उस स्वर-परम्परा को'—(३/५) यह फिर पढ़ता है।)

विदूषक –अपि निद्राति भवान्। [अवि णिद्दाअदि भवम्।]

विदूषक—आप तो सो रहे हैं ?

चारुदत्त —अथ किम्।

चारुदत्त—और क्या ?

इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम्।
अदृश्यरूपा चपला जरेव या मनुष्यसत्त्वं परिभूय वर्धते ॥८॥

अन्वय :–हि, ललाटदेशात्, नयनावलम्बिनी, इयम्, निद्रा, माम्, उपसर्पति, इव, अदृश्यरूपा, चपला, जरा, इव, या, मनुष्यसत्व, परिभूय, वर्धते ॥८॥

पदार्थ —हि=क्योंकि, ललाटदेशात्=मस्तक प्रदेश से, नयनावलम्बिनी=आँखों का आश्रय लेने वाली, उपसर्पति=आ रही है, अदृश्यरूपा=अन्तर्हित आकृति वाली, चपला=चञ्चल जरा=वृद्धावस्था मनुष्यसत्व=मानव बल को, परिभूय=अनाहत करके, वर्धते=बढ़ती है।

अनुवाद निश्चय ही मस्तक प्रदेश से आँखों का आश्रय-सा लेने वाली यह नींद मेरे निकट आ रही है जो अन्तर्हित आकृति वाली चञ्चल वृद्धावस्था के सदृश मानव बल को अनाहत कर वृद्धि को प्राप्त होती है।

संस्कृत टीका–हि=यत, ललाटदेशात्=मस्तकस्थानात्, नयनावलम्बिनी=नेत्राश्रया, इयम्=एषा, निद्रा=स्वाप माम्=चारुदत्तम्, उपसर्पति=आगच्छति, इव अदृश्यरूपा=अन्तर्हिताकृति, चपला=चञ्चला, जरा=वृद्धावस्था, इव, या = निद्रा, मनुष्यसत्त्वम् = मानवबलम्, परिभूय=तिरस्कृत्य, वर्धते = वृद्धिम् गच्छति।

समास एवं व्याकरण–(१) ललाट०—ललाटस्य देश ललाटदेश तस्मात्।

अदृश्य०— अदृश्यम् रूपम् यस्या सा। मनुष्य०— मनुष्याणाम् सत्वम्। ललाटम्— लड्+अच् डस्य ल, ललमटति अट्+अण्। उपसर्पति— उप+सृप्+लट्। निद्रा— निन्द्+रक्+टाप्, नलोप। परिभूय— परि+भू+क्त्वा—ल्यप्। वर्धते— वृध्+ लट्। नयन०— नयन+अव्+लम्ब्+णिनि।

विवृति

(१) पद्य के पूर्वार्ध म उत्प्रेक्षा और उत्तरार्द्ध मे उपमालङ्कार है। (२) वशस्थ छन्द है। (३) नीद आने का बडा स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

विदूषक – तत्स्वपिव। (नाट्येन स्वपिति।) [ता सुवेह्म।]

विदूषक— तो सोते हैं। (अभिनय के द्वारा सो जाता है।)

(तत प्रविशति शर्विलक।) (तदनन्तर शर्विलक प्रवेश करता है।)

शर्विलक—

कृत्वा शरीरपरिणाहसुखप्रवेश
शिक्षाबलेन च वलेन च कर्ममार्गम्।
गच्छामि भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वो
निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्ग ॥

अन्वय - शिक्षाबलेन च वलेन च शरीरपरिणाहसुखप्रवशम्, कर्ममार्गम्, कृत्वा, भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्व, (सन्, अहम्), निर्मुच्यमान, जीर्णतनु, भुजङ्ग, इव, गच्छामि ॥ ९ ॥

पदार्थ – शिक्षा वलेन=शिक्षा की सामर्थ्य से, वलेन=शक्ति से, शरीर परिणाहसुखप्रवेशम्=देह की विशालता के सरलता से घुसन योग्य, कर्ममार्गम्=सेंध को, कृत्वा=करके, भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्व=धरती पर सरकने से घिसे हुए पार्श्व भाग वाला, निर्मुच्यमान=केंचुल छोडते हुए, जीर्णतनु=जर्जरदेह वाले, भुजङ्ग=सर्प।

अनुवाद – शिक्षा की सामर्थ्य और (शरीर की) शक्ति से देह की विशालता के सरलता से घुसने योग्य सेंध करके, धरती पर सरकन स घिसे हुए पार्श्व भाग वाला मैं, केंचुल छोडते हुए जर्जर देह वाले सर्प के सदृश जा रहा हूँ।

सस्कृत टीका— शिक्षा वलेन=चौर्यकलासामर्थ्येन, च, वलेन=शरीर शक्त्या च, शरीरपरिणाहसुखप्रवेशम=देहविशालतानायासगमनम्, कर्ममार्गम्=सन्धिच्छेदम्, कृत्वा=विधाय, भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्व=पृथ्वीगमन-घर्षणकक्ष, निर्मुच्यमान=हीयमान, जीर्णतनु=जर्जरशरीर, भुजङ्ग=सर्प, इव, गच्छामि=यामि।

समास एव व्याकरण— (१) शिक्षा०— शिक्षाया वलेन। शरीर०— शरीरस्य परिणाहस्य सुखेन प्रवेश यस्मात् स तम्। कर्म०— कर्मण मार्गम्। भूमि०— भूमौ

परिसर्पणम् तेन घृष्ट पार्श्व यस्य स । जीर्ण०-- जीर्णा तनू यस्य स । (२) निर्मुच्यमान =निर्+मुच+शानच् । भुजङ्ग -- भुज+गम्+खच (मुम्) परिणाह- परि+नह +घञ ।

विवृति

(१) स्नायुगपरिणाहाछादिन वल्कलेन शाकु० । (२) परिणाहो विशालता इत्यमर (३) शर्विलक की केंचुल छोडने वाले सप से सादृश्य द्योतित करने क कारण उपमालङ्कार है । (४) पतद्पते परिसपण च तुल्य ।-- मृच्छ० । (५) वसन्त तिलका छन्द है उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग

(नमोऽवलोक्य सहर्षम् ।) अये कथमस्तमुपगच्छति स भगवा मृगाङ्क । (आकाश की ओर देख कर प्रसन्नतापूर्वक) अरे ! क्या वह भगवान चन्द्रमा अस्त होने जा रहे हैं ?

तथा हि ।

क्योंकि--

नृपतिपुरुषशङ्कितप्रचार परगृहदूषणनिश्चितैकवीरम ।
घनपटलतमोनिरुद्धतारा रजनिरिय जननीव सवृणोति ॥१०॥

अन्वय -- घनपटलतमोनिरुद्धतारा इयम् रजनि जननी इव नृपतिपुरुष शङ्कितप्रचारम् परगृहदूषणनिश्चितैकवीरम (माम्) सवृणोति ॥ १० ॥

पदाथ -- घन०--मेघो क समूह की भाँति अन्धकार से ताराओ को ढकने वाली मातृ पक्ष म-- पटल नामक रोग क अन्धकार से व्याप्त आँख की पुतली वाली इयम्=यह रजनि = रात्रि जननी=माता इव=समान नृपति०-- राजा क पुरुषो द्वारा आवागमन के विषय म शङ्का किये जाने वाले पुत्र पक्ष म-- राजपुरुषो क लिए शङ्कास्पद आचरण वाल परगृह०-- दूसरे क घर को चोरी के द्वारा दूषित करने म मान हुए अन्य वीर पुत्रपक्ष म-- दूसरे क घर को व्यभिचार से दूषित करने म मान गय सवम बड़ वार सवृणोति=छिपा रही है ।

अनुवाद -- मेघ समूह के समान अन्धकार म आच्छादित ताराओ वाली यह रात्रि माता के समान राजपुरुषों के द्वारा शङ्कित आवागमन वाले तथा दूसरे के घर को धन से दूषित करने म माने हुए सबस बड़ वीर (मुझको) छिपा रही है ।

संस्कृत व्याख्या घन०--मेघसमूहा धकारावृतनक्षत्रा इयम्--एषा रजनि -- रात्रि जननी--माता इव नृपति०=राजपुरुषवितर्कितसञ्चरणम परगृह= अन्यजनगृहापकरणमात्रप्रधानशूरम मां पाति--आच्छादयति ।

समास एव व्याकरण -- (१) घन०-- घनानाम् पटलेन इव तमसा निरुद्ध तारा यया सा याम् वा सा । नृपति पुरु शङ्कित प्रचार यस्य तम् । परगृह०--

परयाम् गृहेषु दूषणे निश्चित एक वीर. तम् । (२) संवृणोति— सम्+वृ+लट् रजनी— रञ्ज्+कनि+ङीप्, रजनि प्रयोग भी होता है। जननी— जन्+णिच्+अनि+ङीप्, जननि प्रयोग भी होता है।

(१) "हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम् ।" गीत०। (२) एकवीर शब्द पाणिनि व्याकरणानुसार ठीक नही है वीरैकः होना चाहिए किसी प्रकार एक वीर साधु कहा जाता है। (सिद्धान्त०)। (३) रजनी को जननी के सदृश कहे जाने से उपमालङ्कार है। (४) पुष्पिताग्राछन्द है— "अयुजि नयुगरेफतो युजितु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।"

वृक्षवाटिकापरिसर सधि कृत्वा प्रविष्टोऽस्मि मध्यमकम् । तद्यावदिदानी चतुःशालकमपि दूषयामि । भो,

उद्यान–प्रान्त मे सेंध करके चहारदीवारी म प्रविष्ट हो गया हूँ। तो अब घर के भीतरी भाग म भी सेंध लगाता हूँ। अरे !

काम नीचमिद वदन्तु पुरुषा स्वप्ने च यद्वर्धते
विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत् ।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वर बद्धो न सेवाञ्जलि–
र्मार्गो ह्येप नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना ॥११॥

अन्वय – यत्, स्वप्न, वर्धत, विश्वस्तेषु, वञ्चनापरिभव, च, हि, तत् चौर्यम् शौर्यम्, न, (अत), पुरुषा, इदम, कामम्, नीचम्, वदन्तु, स्वाधीना, वचनीयता, अपि, हि, वरम्, बद्ध, सेवाञ्जलि, न, हि, एष, मार्ग, पूवम्, द्रौणिना, नरेन्द्र सौप्तिकवधे, कृत ॥ ११ ॥

पदार्थः– यत्=जो, स्वप्ने=सो जान पर, वर्धत=बढती है, विश्वस्तेषु= विश्वास युक्त जनो म, वञ्चना०=द्रव्यहरण रूप तिरस्कार, हि=निश्चय, तत्= वह, चौयम्=चोरी, शौर्यम्=वीरता, कामम्=मले ही, नीचम्=अधम, वदन्तु= कहें, स्वाधीना=स्वतन्त्र, वचनीयता=निन्दा, वरम्=श्रेष्ठ, बद्ध=जोडी गई, सेवाञ्जलि=दास्यभाव की हस्ताञ्जलि, एप=यह, मार्ग=रास्ता, पूर्वम्=पहले, द्रौणिना=अश्वत्थामा स, नरेन्द्र०– राजा के सोये हुए पुत्रो की हत्या म, कृत – किया गया।

अनुवाद — जो (चौर्य लागो के) सो जान पर बढता है और (जिसम) विश्वास क साथ (सोय हुए जनो का) धनहरण रूप तिरस्कार होता है, वह चोरी वीरता नही। (अत) मनुष्य इसको भले ही अधम (कार्य) कहें, किन्तु स्वतन्त्र होन स (यह) निन्द्य भी श्रेष्ठ है (दास्यता म) बन्धी हुई हस्ताञ्जलि (अच्छी

नहीं) तथा यह मार्ग तो पहले से अश्वत्थामा ने पाण्डवों के सुप्त पुत्रों के वध में दिखा दिया है।

संस्कृत टीका – यत्, स्वप्ने=निद्रायाम्, वर्धते=सम्भवति, विश्वस्तेषु=स्निग्धेषु, वञ्चनापरिभवः=द्रव्यहरणतिरस्कार, च, हि=यत, तत् चौर्यम्=वर्णितम् चौर कर्म, शौर्यम्=वीरकर्म, न, पुरुषा =जना, इदम्=चौर्यम्, कामम्=यथेष्टम्, नीचम्=अधमम्, वदन्तु=उद्घोषयन्तु, स्वाधीना=स्वायत्ता, वचनीयता=निन्दा, अपि, हि=निश्चयेन, वरम्=श्रेष्ठम्, बद्ध =सम्पुटित, सेवाञ्जलि =दास्यभावेन, न =नहि, हि = यत, एष मार्ग = अयम् पन्था, पूर्वम् = पुरा, द्रौणिना=अश्वत्थाम्ना, नरेन्द्रसौप्तिकवधे=सुप्तपाण्डवपुत्रमारणे, कृत =विहित ।

समास एव व्याकरण – (१) वञ्चना०– वञ्चनया परिभव । सेवा०– सेवाया अञ्जलि । नरेन्द्र०— सुप्ते भव सौप्तिक नरेन्द्राणाम् सौप्तिक चासौ वध तस्मिन् । सौप्तिक– स्वप्+क्त=सुप्त+ठञ् । वञ्चना-वञ्च्+ल्युट्+टाप् । द्रौणि – द्रोण+इञ् । चौर्यम्=चोर+ष्यञ् । शौर्यम्– शूर+ष्यञ् । वचनीयता-वच्+अनीयर्+तल्+टाप् ।

विवृति

(१) 'भवति योजयितुर्वचनीयता' । पञ्चतन्त्र । (२) काव्यलिङ्ग एव अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । (३) कुछ टीकाकार दीपक अलकार भी कहते हैं । (४) दृष्टान्त नामक नाट्यालङ्कार भी है । (५) शार्दूलविक्रीडित छन्द है । (६) महाभारत मे अपने पिता द्रोणाचार्य के वध से कुपित अश्वत्थामा ने रात्रि में पाण्डवो के शिविर मे प्रवेश कर बहुत से राजाओ का, राजपुत्रो का बध कर डाला । उनमे पाण्डव पुत्र, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि थे ।

तत्कस्मिन्नुद्देशे सन्धिमुत्पादयामि ।

तो किस स्थान पर सेंध बनाऊँ ?

देश को नु जलावसेकशिथिलो यस्मिन्न शब्दो भवेत्–
भित्तीना च न दर्शनान्तरगतः सधि. करालो भवेत् ।
क्षारक्षीणतया च लोष्टककृश जीर्णं क्व हर्म्यं भवे–
त्कस्मिन्स्त्रीजनदर्शन च न भवेत्स्यादर्थसिद्धिश्च मे ॥१२॥

अन्वय –क, नु, भित्तीनाम्, देश, जलावसेकशिथिल, भवेत्, यस्मिन्, शब्द, न, भवेत्, सन्धि, च, कराल, भवेत्, न च, दर्शनान्तरगत, क्व, च, हर्म्यम्, क्षारक्षीणतया, लोष्टककृशम् जीर्णम्, च, भवेत्, कस्मिन्, स्त्रीजनदर्शनम् च, न, भवेत् मे अर्थसिद्धि, च, स्यात् ॥१२॥

पदार्थ – क =कौन, भित्तीनाम्=दीवारो का, देश =स्थान, जला०=

जल पड़ने से गीला, सन्धि=सेंध, कराल=भयङ्कर, दर्शनान्तरगत:=दिखलाई पड़े, हर्म्यम्=भवन, क्षारक्षीणतया=लोना लग जाने से कमजोर हो जाने के कारण, लोष्टककृशम्=ढेले के समान जर्जर, स्त्रीजनदर्शनम्=स्त्रियों का साक्षात्कार, अर्थसिद्धि:=कार्य में सफलता।

अनुवाद.–कौन सा दीवारों का स्थान पानी पड़ने से गीला हो ? जिसमें शब्द न हो; सेंध बड़ी हो किन्तु दृष्टिगोचर न हो, कहाँ भवन लोना लग जाने से निर्बल हो जाने के कारण ढेले के समान क्षीण एवं जर्जर हो, किस स्थान पर स्त्रियों का साक्षात्कार न हो और मेरे कार्य की सिद्धि हो।

संस्कृत टीका–क: नु=वितर्के, भित्तीनाम्=कुड्यानाम्, देश.=भाग:, जला०—सलिलपतननिर्बल', भवेत्=स्यात, यस्मिन्=देशे, शब्द:=ध्वनि:, न भवेत्=न स्यात्, सन्धि:=सुरग', च, कराल=विशाल, भवेत्, न, च, दर्शनान्तरगत.=दृष्टिपथगत', क्व=कुत्र, च, हर्म्यम्=भवनम, क्षारक्षीणतया=लवणकृशितया, लोष्टककृशम्=मृत्तिकापिण्डक्षीणम्, जीर्णम्=पुराणम्, च, भवेत्, कस्मिन्=कस्मिन् देशे, स्त्री०—नारीसाक्षात्कार:, च, न, भवेत्, मे=मम, अर्थसिद्धि.=कार्य सफलता, च स्यात्=भवेत्।

समास एवं व्याकरण—(१) जला०–जलस्य अवसेकेन शिथिल:। दर्शना०–दर्शनस्य अन्तरम् गत:। क्षार०–क्षारेण क्षीणतया, लोष्टककृशम्=कृशानि लोष्टकानि यत्र तत्। स्त्री०–स्त्रीजनानाम् दर्शनम्। अर्थ०–अर्थस्य सिद्धि.। जीर्णम्=जृ+क्त। भवेत्=भू+लिङ्। सिद्धि–सिध्+क्तिन्। स्यात्–अस्+लिङ्।

विवृति

(१) हर्म्यादि धनिना वास प्रासादो देवभूभुजाम्।' इत्यमर:। (२) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। (३) चौर्यशास्त्र में स्त्रियों का दर्शन अशुभ माना जाता है। (४) श्रीनिवासाचार्य के अनुसार स्त्री कातरस्वभाव होने के कारण घबराहट में जोर से चिल्लाने लगती हैं (५) भवेत् पद के बार २ प्रयोग से अनवीकृतत्व दोष है तथा चतुर्थ चरण में भग्नप्रक्रमता दोष है।

(भित्ति परामृश्य।) नित्यादित्यदर्शनोदकसेचनेन दूषितेयं भूमि. क्षारक्षीणा। मूषिकोत्करश्चेह। हन्त, सिद्धोऽयमर्थ। प्रथममेतत्स्कन्दपुत्राणा सिद्धिलक्षणम्। अत्र कर्मप्रारम्भे कीदृशमिदानीं सन्धिमुत्पादयामि। इह खलु भगवता कनकशक्तिना चतुर्विध: सन्ध्युपायो दर्शित:। तद्यथा—पक्वेष्टकानामाकर्षणम्, आमेष्टकाना छेदनम्, पिण्डमयाना सेचनम्, काष्ठमयाना पाटनमिति। तदत्र पक्वेष्टके इष्टिकाकर्षणम्। तत्र।

(दीवार का स्पर्श कर) प्रतिदिन सूर्य के दिखलायी पड़ने पर जल (अर्घ्य) देने से यह भूमि (दीवार) गीली एवं नमक (लोनख) लगने से जर्जर है और चूहों

के द्वारा (उखाडी हुई मिट्टी का) ढेर भी यहा है । वाह ! यह प्रयोजन (चोरी) सफल हो गया । यह कार्तिकेय-पुत्रों (चोरो) की सफलता का पहला चिन्ह है । यहाँ कार्यारम्भ करने पर किस प्रकार की सेंध बनाऊँ ? वस्तुत इस विषय में भगवान् 'कनकशक्ति' (चौर्यशास्त्र के एक आचार्य) ने चार प्रकार का 'सेंध' फोडने का उपाय प्रदर्शित किया है । जैसे—(१) पक्की ईंटो (के मकान मे ईंटो को बाहर) खींच देना (२) कच्ची ईंटो को काट देना (३) मिट्टी के लोदो (से निर्मित दीवारो) को सीच देना (४) लकडी (से बनी दीवारो की लकडी) काट डालना । तो यहा पक्की ईंटो को खीचना चाहिये । वहाँ—

विवृति

(१) परामृश्य=टटोल कर । नित्या०=सर्वदा सूर्य के दिखलायी देने पर जल देने से । दूषिता=शिथिल । मूषिकोत्कर =चूहो द्वारा निर्मित ढेर । हन्त=हर्ष स्कन्दपुत्राणाम्=कार्तिकेय के पुत्रो की । सिद्धिलक्षणम्=सफलता का चिन्ह । कर्म० कार्य आरम्भ करने पर । कनक०—चौर्यशास्त्र के आचार्य से । आमेष्टितानाम्= कच्ची ईटो का । पाटनम्=विदीर्ण करना । (२) नित्या०—नित्यम् आदित्यस्य दर्शने उदकस्य सेचनेन इति । स्कन्द०-स्कन्दस्य पुत्राणाम् । कर्म०-कर्मण प्रारम्भे । (३) उदकर-उद् कृ+अप् । (४) 'पुञ्जराशितूत्कर कूटमस्त्रियाम्' इत्यमरः । (५) हन्त हर्षेनुकम्पायाम्' इत्यमरः । (६) कनक०—कनकमयी शक्ति यस्य स तेन कनकशक्तिना ।

पद्मव्याकोश भास्कर बालचन्द्रं
वापी विस्तीर्णं स्वस्तिक पूर्णकुम्भम् ।
तत्कस्मिन्देशे दर्शयाम्यात्मशिल्प
दृष्ट्वा श्वो य यद्विस्मय यान्ति पौराः ॥१३॥

अन्वय—पद्मव्याकोशम्, भास्करम् बालचन्द्रम्, वापी, विस्तीर्णम् स्वस्तिकम्, पूर्णकुम्भम्, (एते, सप्त, सन्धिप्रकारा, सन्ति,), तत्, कस्मिन्, देशे आत्मशिल्पम्, दर्शयामि, यत्, यम्, दृष्ट्वा, श्व पौरा, विस्मयम् यान्ति ॥१३॥

पदार्थ—पद्म०=खिले हुए कमल के समान, भास्करम्=सूर्य के सदृश, बालचन्द्रम्=द्वितीया के चन्द्रमा के तुल्य, वापी=बावडी विस्तीर्णम्=लम्बी, स्वस्तिकम् —स्वस्तिक के आकार की, पूर्णकुम्भम्=पूर्णघट के सदृश, आत्मशिल्पम्=अपनी कला को, श्व =कल, पौराः=नागरिक ।

अनुवाद—विकसित कमल, सूर्य मण्डल, उदयकालिकचन्द्रमा, बावडी, विस्तृत, स्वस्तिक, पूर्णघट । (ये सेंध के सात प्रकार हैं ।) तो किस स्थान पर अपनी कला दिखलाऊँ कि जिसे देखकर कल नागरिक आश्चर्यचकित हो जायें ।

संस्कृत टीका—पद्म०-पद्मकोशतुल्यम्, भास्करम्=सूर्यमण्डलम्, बालचन्द्रम्

=उदितचन्द्राकारम्, वापी=दीर्घिका, विस्तीर्णम्=विस्तृतम्, स्वस्तिकम्=स्वस्तिक चिन्हवत्, पूर्णकुम्भम्=घटवत् । तत्=तस्मात्, कस्मिन्, देशे=स्थले, आत्मशिल्पम् =आत्मकौशलम्, दर्शयामि, यत्=यस्मात् यम्=सन्धिम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, श्व =प्रात काले, पौरा =नागरिका, विस्मयम्=आश्चर्यम्, यान्ति=व्रजन्ति ।

समास एवं व्याकरण—(१) पद्म०- पद्मवत व्याकोशम् । आत्म०-आत्मन. शिल्पम् । (२) विस्मयम्—वि+स्मि+अच् । पौरा -पुर+अण्, पुरे भवा पौरा । यान्ति=या+लट् । दृष्ट्वा=दृश्+क्त्वा ।

विवृति

(१) पद्य म ७ प्रकार की सन्धियों का वर्णन है । (२) वैश्वदेवी नामक छन्द है । 'बाणाश्वै श्छिन्नां वैश्वदेवी ममौ यौ ।'

तदत्र पक्वेष्टके पूर्णकुम्भ एव शोभते । तमुत्पादयामि ।

तो यहाँ पक्की ईंटा (वाले मकान) मे 'पूर्ण कुम्भ' (नामक सेंध) ही सुशोभित होती है । उसी को बनाता हू ।

अन्यासु भित्तिषु मया निशि पाटितासु
क्षारक्षतासु विषमासु च कल्पनासु ।
दृष्ट्वा प्रभातसमये प्रतिवेशिवर्गो
दोषाश्च मे वदति कर्मणि कौशल च ॥१४॥

अन्वय-निशि, अन्यासु, क्षारक्षतासु भित्तिषु, विषमासु, कल्पनासु, मया, पाटितासु, प्रभातसमये, प्रतिवेशिवर्ग, दृष्ट्वा, मे, दोषान्, कर्मणि, कौशलम्, च, वदति ॥१४॥

पदार्थ—निशि=रात्रि मे, अन्यासु=दूसरी, क्षारक्षतासु=लोना से कटी हुई, भित्तिषु=दीवारो म, विषमासु=विचित्र, कल्पनासु=सूझ बूझ म, मया=शर्विलक से, पाटितासु=विदीर्ण, प्रभातसमये=प्रात काल, प्रतिवेशिवर्ग=पडोसी लोग, दृष्ट्वा=देखकर, म=मेरे, दोषान्=दोषों को, कर्मणि=काम मे, कौशलम्=चतुरता को, वदन्ति= कहते हैं ।

अनुवाद-रात्रि म दूसरी लोना से जर्जरित दीवारो मे विचित्र दुष्कर रचनाओं म मेरे द्वारा फोडी जाने पर प्रात काल पडोसी जन (सेंध को) देखकर मेरी त्रुटियां को तथा कार्य की कुशलता को कहग ।

सस्कृत टीका—निशि=रात्रौ, अन्यासु=इतरासु=लवणदूषितासु, भित्तिषु =कुड्येषु, विषमासु=दुष्करासु, कल्पनासु=प्रतिमासु, मया=शर्विलकेन, पाटितासु =छिन्नासु, प्रभातसमये=प्रात काले, प्रतिवेशिवर्ग =गृहपार्श्ववासिजन दृष्ट्वा= अवलोक्य, मे=मम, दोषान्=अपराधान, कर्मणि=चौर्ये, कौशलम=नैपुण्यम्, च,

वदति=आलोचयिष्यति ।

समास एवं व्याकरण–(१) क्षार०–क्षारेण क्षतासु । प्रति०–प्रतिवेश अस्ति येषाम् इति प्रतिवेशिन तेषाम् वर्ग । (२) प्रतिवेश–प्रति+विश्+घञ्=प्रतिवश +इनि । भित्ति–भिद्+क्तिन् । कल्पना–क्लृप्+ल्युट्+टाप् । पाटिता–पट्+णिच्+क्त+टाप् । कौशलम्–कुशल+अण् ।

विवृति

(१) हाव हार्यं हसितम् वचनानाम् कौशलम् दृशि विकार विशेषा ।' शिशु०। (२) 'योग कर्मसु कौशलम् ।' गीता । (३) तुल्ययोगिता अलङ्कार है 'पदार्थानाम् प्रस्तुतानाम् अन्येषा वा यदा भवेत् । एक धर्माभिसम्बन्ध स्यात् तदा तुल्ययोगिता ।'' (४) वसन्ततिलका छन्द है। (५) चारुदत्त मे यह श्लोक है- ''अद्यास्य भित्तिषु मया निशि पाटितासु छेदात् समासु शक्रदर्पितकाकलीषु । काल्य विषाद विमुख प्रतिवेशि- वर्गो दोषाश्च मे वदतु कर्मसु कौशलम् च ।''

नमो वरदाय कुमारकार्तिकेयाय, नम कनकशक्तये ब्रह्मण्यदेवाय देवव्रताय, नमो भास्करनन्दिने, नमो योगाचार्याय यस्याह प्रथम शिष्य तेन च परितुष्टेन योग रोचना मे दत्ता ।

वर देने वाले कुमार कार्तिकेय' के लिए नमस्कार है। ब्रह्मण्यदेव एव देव व्रत तथा 'कनकशक्ति' के लिये नमस्कार है ? 'भास्करनन्दी' को नमस्कार है। योगा चार्य को नमस्कार है। जिनका मैं प्रथम शिष्य हूँ और उन्होने सन्तुष्ट होकर योगरोचना मुझे प्रदान की है।

विवृति

(१) वरदाय=वरदान देने वाले। वरं ददातीति वरद तस्मै । वर+दा+क। (२) कुमारकार्तिकेयाय=ऐसी परम्परा है कि चोर लोग शिवपुत्र कुमार कार्ति केय को अपना देवता मानते हैं। यह प्रवाद है कि कार्तवीर्यार्जुन का स्मरण करने से चुराई गई वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। (३) कनकशक्तये =कनकशक्ति चौर्य विद्या के प्रथम आचार्य कहे जाते हैं ब्रह्मण्यदेव, देवव्रत, भास्कर नन्दिन और योगा- चार्य य भी चौर्य विद्या के आचार्य है। योगाचार्य शर्विलक के गुरु थे कुछ टीकाकारों न ब्रह्मण्यदव पद को देवव्रत का विशेषण कहा है । (४) योगरोचना=यह एक विशिष्ट प्रकार की सिद्ध की गई विद्या होती है जो जादू की भाति होती है।

अनया हि समालब्ध न मां द्रक्ष्यन्ति रक्षिण ।
शस्त्र च पतित गात्रे रुज नोत्पादयिष्यति ॥१५॥

अन्वय —अनया, समालब्धम्, माम्, रक्षिण , हि, न, द्रक्ष्यन्ति, (तथा) गात्रे पतितम्, शस्त्रम, च, रुजम्, न, उत्पादयिष्यति ॥१५॥

पदार्थ — अनया = योगरोचना से, समालब्धम् = लेपन किए

गये को, माम्=मुझको, रक्षिण:=राजपुरुष, द्रक्ष्यन्ति=देखेंगे, गात्रे=शरीर पर, रुजम्=पीडा को, उत्पादयिष्यति=उत्पन्न करेगा ।

अनुवाद.—इस (योगरोचना) से लिप्त शरीर मुझको राजपुरुष न देखेंगे और शरीर पर गिरे हुए शस्त्र पीडा नहीं उत्पन्न करेंगे ।

संस्कृत टीका—अनया=योगरोचनया, समालब्धम् = लिप्तगात्रम्, माम्= शर्विलकम्, रक्षिणः=राजपुरुषा·, हि=खलु, न, द्रक्ष्यन्ति=अवलोकयिष्यन्ति । गात्रे =शरीरे, पतितम्=प्रक्षिप्तम्, शस्त्रम्=आयुधम्, च, रुजम्=पीडाम्, न, उत्पादयिष्यति=जनयिष्यति ।

समास एवं व्याकरण—(१) समालब्धम्—सम्+आ+लभ्+क्त । द्रक्ष्यन्ति—दृश्+लृट् । पतितम्-पत्+क्त । उत्पादयिष्यति—उत्+पद्+णिच्+ल्युट् । शस्त्रम्—शस्+ष्ट्रन् । रुजम्-रुज्+क्विप् ।

टिप्पणी

(१) 'अनिशमपि मकरकेतुः मनसो रुजम् ।'—शाकु० । (२) 'ज्वररुजा हृदयप्रमाथिनी ।'—माल० (३) समुच्चयालङ्कार है । (४) अनुष्टुप् छन्द है ।

(तथा करोति ।) विक्रुष्टम् । प्रमाणसूत्रं मे विस्मृतम् । (विचिन्त्य ।) आ, इदं यज्ञोपवीतं प्रमाणसूत्रं भविष्यति । यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्, विशेषतोऽस्मद्विधस्य । कुत. ।

(वैसा करता है ।) हाय, खेद है ! मैं अपना 'प्रमाण–सूत्र' (नापने का डोरा) भूल आया हूँ ! (सोच कर) हाँ, यह यज्ञोपवीत नापने का धागा बन जायेगा । यज्ञोपवीत भी ब्राह्मण की बहुत ही उपकार की वस्तु है, विशेषकर हम जैसे की । क्योंकि—

विवृति

(१) प्रमाणसूत्रम्=नापने का धागा । प्रमाणार्थम् सूत्रमिति ।" (२) विस्मृतम्=भूल गया । (३) उपकरणद्रव्यम्=साधन । (४) अस्मद्विधस्य=हम जैसों के लिए ।

एतेन मापयति भित्तिषु कर्ममार्ग-
मेतेन मोचयति भूषणसम्प्रयोगान् ।
उद्घाटनं भवति यन्त्रदृढे कपाटे
दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनं च ॥१६॥

अन्वय – (मादृशः, चौर.) एतेन, भित्तिषु, कर्ममार्गम्, मापयति, एतेन, भूषणसम्प्रयोगान्, मोचयति, यन्त्रदृढे, कपाटे, (एतेन), उद्घाटनम्, भवति, कीटभुजगैः, दष्टस्य, परिवेष्टनम्, च (भवति) ॥१६॥

पदार्थ—एतेन=यज्ञोपवीत से, भित्तिषु=दीवारों पर, कर्ममार्गम्=सेंध को, मापयति=नापता है, भूषण०-गहनों के जोड़ों को, मोचयति=खोलता है यन्त्रदृढे= सिटकिनी से कस कर बन्द किये गये, कपाटे=किवाड़ में, उद्घाटनम्=खोलना, कीट भुजगै=कीड़ों और सांपों से, दष्टस्य=काटे गये, परिवेष्टनम्=बन्धन।

अनुवाद—यज्ञोपवीत से दीवारों पर (चोर) सेंध नापता है, इससे गहनों के जोड़ खोलता है, सिटकनी से कस कर बन्द किये गये किवाड़ खुलते हैं, कीड़ों और और सांपों से काटे गये (स्थान का) बन्धन होता है।

संस्कृत टीका—एतेन=यज्ञोपवीतेन, चौर, भित्तिषु=कुयेड्डषु, कर्ममार्गम्= सन्धिम्, मापयति=मित करोति, एतेन, भूषणसम्प्रयोगान्=अलङ्कारदृढलग्नान्, मोचयति=श्लथयति, यन्त्रदृढे=अर्गलादि संयमिते, कपाटे, उद्घाटनम्=मोचनम्, भवति=जायते, कीटभुजगैः=वृश्चिकादिसर्पैः, दष्टस्य=विहितदशनस्य, परिवेष्टनम्=बन्धनम्, च, भवति।

समास एवं व्याकरण—(१) भूषण०-भूषणानाम् सम्प्रयोगान् इति । यन्त्र०- यन्त्रेण दृढे। कीट०-कीटैः भुजगैश्च। (२) उद्घाटनम्—उद्+घट्+णिच्+ल्युट्। परिवेष्टनम्-परि+वेष्ट्+ल्युट्। दष्ट-दश्+क्त।

विवृति

(१) समुच्चयालङ्कार है। (२) वसन्ततिलका छन्द है। (३) कुछ टीकाकार तुल्ययोगिता भी कहते हैं। (४) 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग.।'

मापयित्वा कर्मसमारभे। (तथा कृत्वावलोक्य च।) एकलोष्टावशेषोऽयं संधि। धिक्कष्टम्। अहिना दष्टोऽस्मि। (यज्ञोपवीतेनाङ्गुली।) बद्ध्वा विषवेगं नाटयति। चिकित्सा कृत्वा। स्वस्थोऽस्मि। (पुन कर्म कृत्वा। दृष्ट्वा च।) अये, ज्वलति प्रदीप। तथा हि।

नाप कर कार्य (सेंध लगाना) प्रारम्भ करता हूँ। (वैसा करके और देख कर) इस सेंध म एक ईंट बची (बाकी) है। हाय! हाय!। सर्प के द्वारा काट लिया गया हूँ। (यज्ञोपवीत से अङ्गुली बांधकर विष के चढ़ने का अभिनय करता है। चिकित्सा करके।) अब मैं स्वस्थ हूँ। (फिर कार्य कर तथा देखकर) अरे! दीपक जल रहा है। जैसे कि—

विवृति

(१) मापयित्वा=नापकर। मा+णिच्+पुक्+क्त्वा। (२) कर्म= सेंध। (३) समारभे=प्रारम्भ करता हूँ। (४) एक०—एक ईंट बाकी है। (५) सन्धि=सेंध। अहिना=सांप से। (६) दष्ट=काटा गया।

शिखा प्रदीपस्य सुवर्णपिञ्जरा महीतले सन्धिमुखेन निर्गता ।
विभाति पर्यन्ततमः समावृता सुवर्णरेखेव कषे निवेशिता ॥१७॥

अन्वय.—सुवर्ण पिञ्जरा, सन्धिमुखेन, महीतले, निर्गता, पर्यन्ततम॰ समावृता, प्रदीपस्य, शिखा, कषे, निवेशिता सुवर्णरेखा, इव, विभाति ॥१७॥

पदार्थ.—सुवर्ण॰—सोने के समान पीली, सन्धिमुखेन=सेंध की राह से, महीतले=धरती पर, निर्गता=निकली हुई, पर्यन्त॰—चारो ओर अन्धकार से घिरी, प्रदीपस्य=दीपक की, शिखा=लौ, कषे=कसौटी पर, निवेशिता=खीची गई, सुवर्ण रेखा=सोने की पंक्ति, विभाति=शोभित हो रही है ।

अनुवाद—स्वर्ण के सदृश पीत एवं सेंध के द्वार से पृथ्वी पर निकली हुई, सभी ओर अन्धकार से घिरी हुई, दीपक की लौ कसौटी पर खीची गई स्वर्ण पंक्ति की भाँति सुशोभित हो रही है ।

संस्कृत टीका—सुवर्ण॰—कनक पिङ्गला, सन्धिमुखेन=सन्धिछिद्रेण, मही-तले=भूमौ, निर्गता=निःसृता, पर्यन्त॰=प्रान्तप्रदेशान्धकारनिरुद्धः, प्रदीपस्य=दीपकस्य, शिखा=कान्तिः, कषे=शाणे, निवेशिता=दत्ता, सुवर्णरेखा=कनकरेखा इव, विभाति=शोभते ।

समास एवं व्याकरण—(१) सुवर्ण॰—सुवर्णवत् पिञ्जरा इति । पर्यन्त॰—पर्यन्तेषु तमसा समावृत इति । सुवर्णरेखा—सुवर्णस्य रेखा । (२) निर्गता—निर्+गम्+क्त+टाप् । सन्धि—सम्+धा+कि । समावृता—सम्+आ+वृ+क्त+टाप् । विभाति—वि+भा+लट् । निवेशिता—नि+विश्+णिच्+क्त ।

विवृति

(१) श्लोक मे उपमालङ्कार है । (२) वंशस्थ छन्द है । (३) 'उपमा यत्र सादृश्य लक्ष्मीरुल्लसतिद्वयो. ।' (४) 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितम् जरौ ।' (५) प्रकृति से गृहीत स्वाभाविक सुन्दर उपमा है । दीवार की छेद से भीतर जलते दीपक की सुनहरी प्रकाश रेखा बाहर के घने अन्धकार म इस प्रकार दिख रही है जैसे काली कसौटी पर स्वर्ण रेखा हो ।

(पुनः कर्म कृत्वा ।) समाप्तोऽयं सन्धिः । भवतु । प्रविशामि । अथवा न तावत्प्रविशामि । प्रतिपुरुषं निवेशयामि । (तथा कृत्वा ।) अये, न कश्चित् । नमः कार्तिकेयाय । (प्रविश्य । दृष्ट्वा च ।) अये, पुरुषद्वय सुप्तम् । भवतु । आत्मरक्षार्थं द्वारमुद्घाटयामि । कथं जीर्णत्वाद्गृहस्य विरौति कपाटम् । तद्यावत्सलिलमन्वेषयामि । क्व नु खलु सलिलं भविष्यति । (इतस्ततो दृष्ट्वा सलिलं गृहीत्वा क्षिपन्सशङ्कम् ।) मा तावद् भूमौ पतच्छब्दमुत्पादयेत् । भवतु । एवं तावत् । (पृष्ठेन प्रतीक्ष्य कपाटमुद्घाट्य च ।) भवतु । एवं तावत् । इदानीं परीक्षे किं लक्ष्यसुप्तम्, उत परमार्थसुप्तमिद

द्वयम् । (त्रासयित्वा परीक्ष्य च ।) अये, परमार्थसुप्तेनानेन भवितव्यम् । तथा हि ।

(फिर कार्य करके) यह सेंध पूरी हो गई । अस्तु; प्रवेश करता हूँ । अथवा तब तक प्रवेश नहीं करता हूँ । 'प्रतिपुरुष' (पुरुष की आकृति के समान लकड़ी आदि के बने पुतले) को प्रविष्ट कराता हूँ । (वैसा करके) अरे ! कोई नहीं है ! 'कार्तिकेय जी' को प्रणाम है । (प्रवेश कर और देखकर) अरे ! दो मनुष्य सो रहे हैं । अच्छा, अपनी रक्षा के लिए दरवाजा खोलता हूँ । क्या घर के पुराने होने के कारण किवाड़ चरचराते है ? तो जब तक जल ढूँढता हूँ । जल कहाँ होगा ? (इधर-उधर देखकर जल लेकर शङ्कापूर्वक छिड़कता हुआ) (कहीं ऊपर से) धरती पर गिरता हुआ (यह जल) शब्द उत्पन्न न करे । अस्तु, तो ऐसा करूँ । (पीठ के सहारे किवाड़ उतार कर) अच्छा, अब ऐसा करूँ । अब परीक्षा करूँगा कि क्या ये दोनों बनावटी सो रहे हैं अथवा वास्तव में सोये हुये हैं । (डरा कर और परीक्षा कर) अरे ! वास्तव में ये सो रहे होने चाहिये ।

क्योंकि—

विवृति

(१) प्रतिपुरुषम् = काठ से बना पुतला । विरौति = चरमराता है । प्रतीक्ष्य = अच्छी तरह देखकर । लक्ष्यसुप्तम् = छल से सोये हुए । परमार्थसुप्तम् = यथार्थ में सोये हुए, (२) आत्मन रक्षार्थमिति आत्मरक्षार्थम् । परमार्थसुप्तम्—परमार्थेन सुप्तम् ।

निःश्वासोऽस्य न शङ्कितः सुविशदस्तुल्यान्तरं वर्तते
दृष्टिर्गाढनिमीलिता न विकला नाभ्यन्तरे चञ्चला ।
गात्रं स्रस्तशरीरसन्धिशिथिलं शय्याप्रमाणाधिकं
दीपं चापि न मर्षयेदभिमुखं स्याल्लक्ष्यसुप्तं यदि ॥१८॥

अन्वय—अस्य, निःश्वास, शङ्कित, न, (अपि तु), सुविशद, तुल्यान्तरम्, वर्तते, दृष्टि, गाढनिमीलिता (अस्ति, सा) न, विकला, अभ्यन्तरे, न चञ्चला (वर्तते), गात्रम्, स्रस्तशरीरसन्धिशिथिलम्, शय्याप्रमाणाधिकम् (च, वर्तते), यदि, लक्ष्यसुप्तम्, स्यात्, (तदा), अभिमुखम्, दीपम्, च, अपि, न मर्षयेत् ॥१८॥

पदार्थ—अस्य = इन सुप्त पुरुषों की, निःश्वास = सांस, शङ्कितः = शङ्कायुक्त, सुविशद = स्पष्ट, तुल्यान्तरम् = समान अन्तर, गाढनिमीलिता = अच्छी तरह बन्द, विकला = विकारयुक्त, गात्रम् = शरीर, स्रस्त० = ढीली देह-सन्धियों के कारण शिथिल, शय्या० = खाट के आकार से अधिक, लक्ष्य० = कपट से सोये हुए, अभिमुखम् = सामने, मर्षयेत = सहन करते हैं ।

अनुवाद —इन (दोनों सुप्त पुरुषों) की सांस निःशङ्क है, (तथा) स्पष्ट एवं समान व्यवधान वाले नेत्र अच्छी तरह बन्द हैं, न तो व्याकुल हैं, और न भीतर चञ्चल हैं, शरीर ढीली पड़ी देह सन्धियों के कारण शिथिल है तथा शय्या के आकार से अधिक है, यदि कपट से सोये हुये होते तो समक्ष दीपक को भी सहन नहीं करते।

संस्कृत टीका —अस्य=सुप्तपुरुषद्वयस्य, निश्वासः=वायुः, शङ्कितः=शङ्कायुक्तः, न, (अपितु) सुविशदः=स्पष्टः, तुल्यान्तरम्=समानव्यवधानम्, वर्तते, दृष्टिः=नेत्रम्, गाढनिमीलिता=अत्यन्तं सम्पुटिता, न, विकला=विव्हला, अभ्यन्तरे=नेत्राभ्यन्तरे, न, चञ्चला=चपला, गात्रम्=शरीरम्, स्रस्त०=शिथिलदेहावयवस्रस्तम्, शय्या०—खट्वाकारातिरिक्तम, यदि, लक्ष्यसुप्तम्=व्याजशयितम्, स्यात्=भवेत्, अभिमुखम्=समक्षम्, दीपम्=दीपकम्, च, अपि, न, मर्षयेत्=सहेत।

समास एवं व्याकरण — (१) गाढ०-गाढम् निमीलिता। तुल्यान्तरम्=तुल्यम् अन्तरम् यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात् तथा। स्रस्त०-स्रस्ता शरीरसन्धयः तैः शिथिलम्। शय्या०—शय्यायाः प्रमाणात् अधिकम्। लक्ष्य०—लक्ष्येण सुप्तम्। (२) शङ्कितः—शङ्का+इतच्। दृष्टि—दृश्+क्तिन्। स्यात्—अस्+लिङ्। मर्षयेत्—मृष+लिङ्।

विवृति

(१) पद्य में सुप्तपुरुषों का सजीव एवं स्वाभाविक वर्णन है। (२) स्वभावोक्ति अलङ्कार है। (३) कुछ टीकाकारों के अनुसार समुच्चय एवं अनुमानालङ्कार भी है। (४) 'स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थ स्वक्रियारूपवर्णनम्।' (६) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। —"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।

(समन्तादवलोक्य।) अये, कथं मृदङ्गः। अयं दर्दुरः। अयं पणवः। इयमपि वीणा। एते वंशाः। अमी पुस्तकाः। कथं नाट्याचार्यस्य गृहमिदम्। अथवा भवनप्रत्ययात्प्रविष्टोऽस्मि। तत्किं परमार्थदरिद्रोऽयम्, उत राजभयाच्चौरभयाद्वा भूमिष्ठं द्रव्यं धारयति। तन्ममापि नाम शर्विलकस्य भूमिष्ठं द्रव्यम्। भवतु। बीजं प्रक्षिपामि। (तथा कृत्वा।) निक्षिप्तं बीजं न क्वचित्स्फारी भवति। अये, परमार्थदरिद्रोऽयम्। भवतु। गच्छामि।

(चारों ओर देख कर) अरे! क्या (यह) ढोल! यह ढोलक! यह पणव (वाद्य-यन्त्र विशेष)! यह वीणा! ये बांसुरियाँ! (तथा) ये पुस्तकें हैं! क्या यह सङ्गीताचार्य का घर है? या (बड़े) घर के विश्वास से घुस आया हूँ। तो क्या ये सर्वथा निर्धन हैं, या राजा अथवा चोरों के डर से भूमि में धन गाड़कर रखता है? तो क्या मुझ 'शर्विलक' के लिए भी भूमि में गड़ा धन (अज्ञेय) है? अच्छा, बीज

फेकता हूँ। (वैसा करके) फेके गये बीज कही नही प्रभाव दिखलाते है। अरे! वास्तव मे यह निर्धन है। अच्छा, (यहाँ से) जाता हूँ।

विदूषक –भो वयस्य सघिरिव दृश्यते। चौरमिव पश्यामि। तद्गृह्णातु भवानिद सुवर्णभाण्डम्। (उत्स्वप्नायते।) [भो वअस्स, सधी विअ दिज्जदि। चोर विअ पेक्खामि। ता गेण्हदु भव एद सुवण्णमण्डअम्।]

विदूषक–(स्वप्न देखता हुआ बडबडाता है।) हे मित्र! सेंध-सी दिखाई दे रही है। चोर-सा देख रहा हूँ। इसीलिए आप इस सुवर्ण–पात्र (सोने के बक्स) को ले लें!

शर्विलकः—किं न खल्वयमिह् मा प्रविष्ट ज्ञात्वा दरिद्रोऽस्मीत्युपहसति। तत्किं व्यापादयामि उत लघुत्वादुत्स्वप्नायते। (दृष्ट्वा।) अये जर्जरस्नानशाटीनिबद्ध दीपप्रभयोद्दीपित सत्यमेवैतदलकरणभाण्डम्। भवतु। गृह्णामि। अथवा न युक्त तुल्यावस्थ कुलपुत्रजन पीडयितुम्। तद्गच्छामि।

शर्विलक–क्या सचमुच यह मुझे यहा प्रविष्ट हुआ जान कर 'निर्धन हूँ' इस प्रकार मेरी हँसी उडाता है? तो क्या मार डालूँ? अथवा चञ्चल होने के कारण स्वप्न देखता हुआ बडबडा रहा है? (देख कर) ओह! नहाने की जीर्ण-शीर्ण धोती मे बँधा हुआ, दीपक के प्रकाश से देदीप्यमान सचमुच ही यह आभूषणो का पात्र (डिब्बा आदि) है! अच्छा, लेता हूँ। या, अपने जैसे ही (निर्धन) अवस्था वाले अच्छे कुल म उत्पन्न व्यक्ति को सताना उचित नही है! तो जाता हूँ।

विवृति

(१) भवनप्रत्ययात्=घर के विश्वास से। भूमिष्ठम्=भूमि मे गडा हुआ। निक्षिप्तम्=फेंका हुआ। स्फारीभवति=फैल रहा है। उत्स्वप्नायते=स्वप्न मे बडबडा रहा है। व्यापादयामि=मार डालूँ। लघुत्वात्=क्षुद्र होने के कारण। जर्जरस्नानशाटी निबद्धम्=जीर्णशीर्ण धोती मे बँधा हुआ। दीप०=दीपक के प्रकाश मे चमकने वाला। तुल्यावस्थम्=समान दशा वाला। (२) भवन०–भवनस्य प्रत्ययात्। जर्जर०–जर्जरास्नानशाटी इति तथा निबद्धम्। तुल्यावस्थम्—तुल्या अवस्था यस्य तम्। (३) वि+अन्+ड (उपसर्ग को दीर्घ)=बीजम्। स्फार+च्वि+भू+लट्=स्फारी भवति। उत्+स्वप्न+क्यङ्+लट्=उत्स्वप्नायते (नामधातु)।

विदूषक —भो वयस्य, शापितोऽसि गोब्राह्मणकाम्यया, यद्येतत्सुवर्णभाण्ड न गृह्णासि। [भो वअस्स, सा।विदोऽसि गोवह्मणकामाए, जइ एद सुवण्णमण्डअ ण गेह्णसि।)

विदूषक—हे मित्र! गाय और ब्राह्मण की अभिलाषा के द्वारा तुम्हे शपथ

दिलाता हूँ, यदि यह आभूषणो का डिब्बा न लो ।

शर्विलकः—अनतिक्रमणीया भगवती गोकाम्या ब्राह्मणकाम्या च तद्गृह्णामि । अथवा ज्वलति प्रदीपः । अस्ति च मया प्रदीपनिर्वापणार्थमाग्नेयः कीटो धार्यते । तं तावत्प्रवेशयामि । तस्याय देशकालः । एष मुक्तो मया कीटो यात्वेवास्य दीपस्योपरि मण्डलैर्विचित्रैर्विचरितुम् । एष पक्षद्वयानिलेन निर्वापितो भद्रपीठेन धिक्कृतमन्धकारम् । अथवा मयाप्यस्मद्ब्राह्मणकुलेन धिक्कृतमन्धकारम् । अहं हि चतुर्वेदविदोऽप्रतिग्राहकस्य पुत्र. शर्विलको नाम ब्राह्मणो गणिकामदनिकार्थमकार्यमनुतिष्ठामि । इदानी करोमि ब्राह्मणस्य प्रणयम् । (इति जिघृक्षति ।)

शर्विलक—भगवती गौ की अभिलाषा और ब्राह्मण की अभिलाषा अनुल्लङ्घनीय है, तो ले लेता हूँ । अथवा दीपक जल रहा है । मैं दीपक बुझाने वाला आग का कीड़ा रखता हूँ । तब तक उसको छोड़ता हूँ । उसका यह (उचित) स्थान एव समय है । यह मेरे द्वारा छोड़ा गया कीड़ा इस दीपक के ऊपर विचित्र रूप से मडलाकार मँडराये । इस 'भद्रपीठ' ने दोनो पखो की हवा से दीपक बुझा दिया, हाय ! अन्धकार कर दिया, अथवा, हाय ! मैंने भी अपने ब्राह्मण कुल मे ही अन्धकार कर दिया । मैं चारो वेदो के ज्ञाता एव दान न लेने वाले का पुत्र 'शर्विलक' नामक ब्राह्मण वेश्या 'मदनिका' के लिए ऐसा अनर्थ कर रहा हूँ । अब ब्राह्मण को प्रसन्न करता हूँ । (लेना चाहता है ।)

विदूषक.—भो वयस्य, शीतलस्तेऽग्रहस्तः । (भो वअस्स, सीदलो दे अग्गहत्थो ।)

विदूषक—हे मित्र ! तुम्हारे हाथ का अग्रभाग (अङ्गुलियाँ) ठण्डी हैं ।

शर्विलक –धिक्प्रमाद. ! सलिलसम्पर्काच्छीतलो मेऽग्रहस्त. । भवतु । कक्षयोर्हस्तं प्रक्षिपामि । (नाट्येन सव्यहस्तमुष्णीकृत्य गृह्णाति ।)

शर्विलक—हाय ! असावधानता ; जल के ससर्ग से मेरे हाथ का अग्रभाग शीतल है । अच्छा, बगलो मे हाथ दबाता हूँ । (अभिनय से दायें हाथ को गर्म कर स्वर्ण पात्र ले लेता है) ।

विदूषक.—गृहीतम् । (गहिदम् ।)

विदूषक—ले लिया ?

शर्विलक.—अनतिक्रमणीयोऽयं ब्राह्मणप्रणयः । तद्गृहीतम् ।

शर्विलक—ब्राह्मण का यह आग्रह अनुल्लङ्घनीय है । इसलिए ले लिया ।

विदूषकः—इदानी विक्रीतपण्य इव वणिक्, अहं सुखं स्वप्स्यामि ।

(दाणिं विक्कीणिदपण्णो विअ वाणिओ, अहं सुहं सुविस्सं ।)

विदूषक—अब सामान बेचे हुये बनिये की भाँति मैं सुख से सोऊँगा ।

शर्विलक—महाब्राह्मण, स्वपिहि वर्षशतम्। कष्टमेव मदनिकागणिकार्थे ब्राह्मणकुल तमसि पातितम्। अथवा आत्मा पातित।

शर्विलक—महाब्राह्मण! सौ वर्ष सोते रहो! खेद है! मदनिका वश्या के लिये (मैंने अपने पिता आदि के गोत्र वाले) ब्राह्मण वश को अधकार मे डाल दिया। अथवा,(कुल को ही क्या) अपने आप को डाल दिया है।

विवृति

(१) गोब्राह्मण०=गाय और ब्राह्मण की इच्छा से। शापित=शपथ दिलाया गया। अनतिक्रमणीया=अनुल्लङ्घनीया। प्रदीप०=दीपक बुझाने के लिए। आग्नेय=अग्नि बुझाने वाला। पक्षद्वयानिलेन=दोनो पखो की वायु से। निर्वापित=बुझा दिया। अप्रतिग्राहकस्य=दान न लेने वाले का। अकार्यम्=बुरा कार्य। जिघृक्षति=लेना चाहता है। विक्रीतपण्य=सामान बेंच देने वाला। (२) गो०-गवा ब्राह्मणानाम् च काम्यया अथवा गौश्च ब्राह्मणश्चेति गोब्राह्मणौ तयो काम्या तया। (३) आग्नेय-अग्निर्देवता अस्य इति आग्नेय। अग्नि+ढक्। निर्वापित-निर्+वा+णिच्+पुक्+क्त। चतुर्वेदविद=चत्वारोवदा, तान् वेत्ति इति। चतुर्वेद+विद्+क्विप्। अप्रति०-प्रति ग्रह्णाति प्रतिग्राहक न प्रति ग्राहक तस्य। प्रति+ग्रह+ण्वुल्। जिघृक्षति-ग्रह+सन+लट्। ग्रहीतुमिच्छति। अग्र हस्त अग्रहस्तः। (४) "वाम शरीर सव्य स्यात् अपसव्यम् तु दक्षिणम्।" इत्यमर।

धिगस्तु खलु दारिद्र्यमनिर्वेदितपौरुषम्।
यदेतद्गर्हित कर्म निन्दामि च करोमि च ॥१९॥

अन्वय—अनिर्वेदितपौरुषम्, दारिद्र्यम्, खलु, धिक्, अस्तु, यत्, एतत, गर्हितम्, कर्म, निन्दामि, च, करोमि, च ॥१९॥

पदार्थ :—अनिर्वेद०=जिसमे पुरुषार्थ विरक्त नही होता, दारिद्र्यम्=निर्धनता, गर्हितम्=निन्दनीय।

अनुवाद—जिसमे पुरुषार्थ विरक्त नही होता ऐसी निर्धनता को निश्चय ही धिक्कार है जिससे इस निन्द्य कार्य की निन्दा कर रहा हूं, और भी कर रहा हूं।

संस्कृत टीका—अनिर्वेदितपौरुषम्=अदर्शितपौरुषम्, दारिद्र्यम्=अकिञ्चनत्वम् खलु, धिक्=धिक्कार, अस्तु, यत् एतत्, गर्हितम्=निन्दितम्, कर्म, निन्दामि=निनत्संयामि, च, करोमि च।

समास एव व्याकरण - अनिर्वेद०-निर्वेदः सञ्जात अस्येति निर्वेदितम् न निर्वेदितम् अनिर्वेदितम्। (२) दारिद्र्यम्-दरिद्र+ष्यञ्।

विवृति

(१) काव्यलिङ्ग और दीपकालङ्कार है। (२) अनुष्टुप् छन्द है।

मार्जार. क्रमणे मृग प्रसरणे श्येनो ग्रहालुञ्चने
सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने श्वा सर्पणे पन्नग. ।
माया रूपशरीरवेशरचने वाग्देशभाषान्तरे
दीपो रात्रिषु सकटेषु डुडुमो वाजी स्थले नौर्जले ॥२०॥

अन्वय –क्रमणे, मार्जार , प्रसरणे, मृग , ग्रहालुञ्चने, श्यन , सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने, श्वा, सर्पणे, पन्नग , रूपशरीरवेशरचने, माया, देशभाषान्तरे, वाक्, रात्रिषु, दीप , सङ्कटेषु, डुडुम , स्थले, वाजी, जले, नौ (अस्मि) ॥२०॥

पदार्थ – क्रमणे=नि शब्द भागन म, मार्जार =विलाव (बिल्ली), प्रसरणे=शीघ्र पलायन म, मृग =हरिण, ग्रहालुञ्चन=झपट कर अपहरण म, श्यन =बाज, सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलन=सोय अथवा जागे हुए मनुष्य के पराक्रम निरूपण म, श्वा=कुत्ता, सर्पणे=सरकने म, पन्नग =सर्प, रूपशरीरवशरचने=स्वरूप एव शरीर की वेशभूषा बनान म, माया=छलना (इन्द्रजाल), देशभाषान्तरे=अन्य देशों की भाषा बालने मे, वाक्=सरस्वती, रात्रिषु=रात म, दीप =दीपक, सङ्कटेषु=विपत्ति के समय, डुडुम =विशिष्ट सर्प, स्थले=धरती पर, वाजी=अश्व, जले=पानी मे, नौ=नौका (नाव), ।

अनुवाद—नि शब्द भागन म विलाव, शीघ्रपलायन म हरिण, झपटकर पकडने म बाज, साय अथवा जाग हुए मनुष्य के पराक्रम निरूपण म कुत्ता, सरकन म सर्प, स्वरूप एव शरीर की देशभूषा बनाने म छलना (इन्द्रजाल), अन्य देशो की भाषा बालन म सरस्वती, रातों म दीपक, आपत्तियो म डुडुमसर्प (अथवा भेडिया) पृथ्वी पर अश्व तथा पानी पर नाव हू ।

सस्कृत टीका–क्रमणे=नि शब्द चलने, मार्जारः=विडाल , प्रसरणे=तीव्रगमन, मृग =हरिण , ग्रहालुञ्चन=सहसादाने, श्यन =पक्षिविशेष , सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलन=शयितजागरितमानवबलाबलज्ञाने, श्वा=कुक्कुर , सर्पणे=भूमिगमने, पन्नग ,=सर्प , रूपशरीरवेशरचने=वर्णविग्रहवेशभूषादिनिर्माणे, माया=इन्द्रजालविद्या, देशभाषान्तरे=अन्यप्रदेशवाणीभेदे, वाक्=सरस्वती, रात्रिषु=रजनीषु, दीपः=आलोक , सङ्कटषु=विपत्सु, डुडुम =शृगाल , स्थले=भूमौ, वाजी=अश्व , जले=पयसि, नौ=नौका ।

समास एव व्याकरण– (१) ग्रहा०–ग्रहेण युक्तम् आलुञ्चनम् तस्मिन् । सुप्तासुप्त०–सुप्तासुप्तया मनुष्ययो वीर्यस्य तुलने । रूप०–रूपस्य शरीरवेशस्य च रचने, देश०–अन्या देशभाषा इति देशभाषान्तरम् तस्मिन् ।

(२) क्रमणे–क्रम्+ल्युट् । प्रसरण-प्र+सृ+ल्युट् । पन्नग –पन्न+गम्+

ड । वाक्—वच्+क्विप् (दीर्घ) ।

विवृति

(१) डुडुम – कुछ टीकाकार वृक कुछ शृगाल और कुछ गोह अर्थ इस शब्द का करते हैं कुछ टीकाकारो ने सर्प विशेष भी अर्थ किया है। (२) पद्य मे शर्विलक विडालादि का अभेद रूप से आरोप हुआ है अत मालारूपकालङ्कार है। (३) कुछ टीकाकारो के अनुसार शर्विलक का विविध विषय-भेद से पुन पुन उल्लेख होने के कारण उल्लेखालङ्कार है। (४) शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

अपि च।

और भी–

भुजग इव गतौ गिरि स्थिरत्वे पतगपते परिसर्पणे च तुल्य'।

शश इव भुवनावलोकनेऽह वृक इव च ग्रहणे बले च सिह.॥२१॥

अन्वय–अहम् गतौ भुजग, इव, स्थिरत्वे, गिरि परिसर्पणे, पतगपतें, तुल्य भुवनावलोकने, शश, इव, वृक इव, बले, च, सिंह, (अस्मि) ॥२१॥

पदार्थ—अहम्, मैं, गतौ=चलने मे, भुजग =सर्प, स्थिरत्वे=अडिग होने म, गिरि =पर्वत, परिसर्पणे=वेग से चलने मे, पतगपते =गरुड के, तुल्यः=समान भुवनावलोकने=ससार का देखने मे, शश =खरगोश, ग्रहणे=पकडने मे, वृक= भेडिया, बले=शक्ति म, सिंह =मृगराज।

अनुवाद—मैं चलने मे सर्प के सदृश धैर्य मे पर्वत, शीघ्र गमन मे गरुड के समान, ससार को देखने मे खरगोश एव पकडने मे भेडिया की भांति और शक्ति मे मृगराज हूँ।

सस्कृत टीका–अहम्=शर्विलक, गतौ=गमने, भुजग =सर्प, इव=यथा, स्थिरत्वे=स्थैर्ये, गिरि =पर्वत, परिसर्पणे=शीघ्रगमने, पतगपते =गरुडस्य, तुल्य = सदृश, भुवनावलोकने– ससार प्रेक्षणे, शश =शशक इव, ग्रहणे=धरणे, वृक, इव, बले=सत्वे, च, सिंह =मृगराज।

समास एव व्याकरण–(१) भुवना०–भुवनस्य अवलोकनं इति। पतगस्य पति इति पतगपति तस्य। (२) भुजग =भुज्+गम्+ड। परिसर्पण–परि+ सृप्+ल्युट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म एक ही शर्विलक मे बहुत से उपमानो का आरोप किया गया है। अत मालारूपकालङ्कार है। (२) कुछ टीकाकारो ने अतिशयोक्ति अलङ्कार भी कहा है। (३) कुछ टीकाकार उल्लेख अलकार भी कहते हैं। (४) एक ही उपमेय शर्विलक को बहुत स उपमानो के साथ समानता दिखलाने के कारण मालोपमा अलङ्कार है। (५) पुष्पिताग्रा छन्द है।

(प्रविश्य ।)

(प्रवेश कर)

रदनिका—हा धिक् हा धिक्, बहिर्द्वारशालाया प्रसुप्तो वर्धमानक. । सोऽप्यत्र न दृश्यते । भवतु । आर्यमैत्रेयमाह्वयामि । [हद्धी हद्धी, बाहिरदुआरसालाए पसुत्तो वड्ढमाणओ । सेवि एत्थ ण दीसइ । भोदु । अज्जमित्तेअ सद्दावमि ।] (इति परिक्रामति ।)

रदनिका—दुःख है ! दुःख है ! बाहर बैठक मे 'वर्धमानक' सोता था । वह भी यहाँ नहीं दिखाई पड़ता है ? अच्छा, 'आर्य मैत्रेय' को आवाज लगाती हूँ । (घूमती है ।)

शर्विलकः—(रदनिका हन्तुमिच्छति । निरूप्य ।) कथ स्त्री । भवतु गच्छामि । (इति निष्क्रान्तः ।)

शर्विलक—('रदनिका' को मारना चाहता है ! देखकर) क्या स्त्री है ? अच्छा, जाता हूँ । (निकल जाता है ।)

रदनिका—(गत्वा सत्रासम् ।) हा धिक् हा धिक्, अस्माक गृहे सधि कल्पयित्वा चौरो निष्क्रामति । भवतु । मैत्रेय गत्वा प्रबोधयामि । (विदूषकमुपगम्य ।) आर्य मैत्रेय, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । अस्माक गेहे सधि कर्तयित्वा चौरो निष्क्रान्तः । [हद्धी हद्धी, अह्माण गेहे सधि कप्पिअ चोरो णिक्कमति । भोदु । मित्तेअं गदुअ पबोधेमि । अज्जमित्तेअ, उट्ठेहि उट्ठेहि । अह्माण गेहे सधि कप्पिअ चोरो णिक्कन्तो ।]

रदनिका—(जाकर भय से) हाय ! हाय ! हमारे घर मे सेंध लगा कर चोर निकला जाता है । अच्छा, 'मैत्रेय' को जाकर जगाती हूँ । ('विदूषक' के पास जाकर) 'आर्य मैत्रेय' ! उठो ! उठो ! हमारे घर मे सेंध लगाकर चोर निकल गया ।

विदूषकः—(उत्थाय ।) आः दास्याः पुत्रिके, किं भणसि 'चौर कर्तयित्वा सधिर्निष्क्रान्तः' । [आः दासीए, धीए किं भणासि—'चोर कप्पिअ सधी णिक्कन्तो ।,]

विदूषक—(उठ कर) अरी ! दासी की बालिके ! क्या बकती है ?—'चोर फोड़ कर सेंध निकल गई ।'

रदनिका—हताश, अल परिहासेन । किं न प्रेक्षस एनम् । [हदास, अल परिहासेण । किं ण पेक्खसि एणम् ।]

रदनिका—अरे घरारती ! हँसी मत करो ! क्या इसे नहीं देखते ?

विदूषकः—आ दास्याः पुत्रिके, किं भणसि—'द्वितीयमिव द्वारमनुद्घाटितम्' इति । भो वयस्य चारुदत्त, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । अस्माक गेहे सधि दत्वा चौरो निष्क्रान्त । [आः दासीए धीए, किं भणासि—'दुदिअ विअ दुआरअ उग्घाडिद' त्ति । भो वअस्स चारुदत्त, उट्ठेहि उट्ठेहि । अम्हाण गेहे सधि दइअ चोरो णिक्कन्तो ।]

विदूषक—अरी ! दासीपुत्रि ! क्या कहती है ?—दूसरा दरवाजा-सा खोल दिया है।' हे मित्र ! 'चारुदत्त' ! उठिए ! उठिए ! हमारे घर मे सेंध लगाकर चोर भाग गया !'

चारुदत्त —भवतु। भो अल परिहासेन।

चारुदत्त—अच्छा। अरे ! हँसी मत करो।

विदूषक — भो, न परिहास । प्रेक्षता भवान्। [भो, ण परिहासो। पेक्खदु भवम्।]

विदूषक—अजी ! हँसी नही है। आप देख लीजिए।

चारुदत्त –कस्मिन्नुद्देशे ।

चारुदत्त—किस स्थान पर ?

विदूषक —भो, एष । [भो, एसो।]

विदूषक—अरे ! यह रहा।

चारुदत्त —(विलोक्य।) अहो, दर्शनीयोऽय सधि ।

चारुदत्त—(देख कर) अहा ! देखने योग्य यह सेंध है।

विवृति

(१) कल्पयित्वा—करके, कृप+णिच्+क्त्वा (रस्य ल)। (२) निष्क्रामति निकल रहा है, निस्+क्रम+लट। (३) प्रबोधयामि—जगाती हूँ, प्र+बुध्+णिच् + लट्। (४) उद्देश=स्थान म। (५) दर्शनीय.—सुन्दर। (६) चोर कर्तयित्वा यह विदूषक के उपयुक्त हास्यकर उक्ति है। (७) हताश स्त्रियोचित शब्द है, अर्थ है—निगोड़ा।

उपरितलनिपातितेष्टकोऽय
शिरसि तनुर्विपुलश्च मध्यदेशे।
असदृशजनसप्रयोगभीरो—
र्हृदयमिव स्फुटित महागृहस्य ॥२२॥

अन्वय —उपरितलनिपातितेष्टक, शिरसि, तनु, मध्यदेशे, विपुल, च, अयम् (सन्धि), असदृशजनसम्प्रयोगभीरो, महागृहस्य, स्फुटितम्, हृदयम्, इव, (दृश्यते) ॥२२॥

पदार्थ —उपरि०=जिसम ऊपर के भाग स ईटे गिराई हैं, ऐसी, शिरसि=सिर म, तनु =सँकरी, मध्यदेशे=मध्यभाग म, विपुल =विशाल, असदृश०=अयोग्य व्यक्ति क घुसने से डरे हुए, महागृहस्य=विशाल घर क, स्फुटितम्=फटे हुए, हृदयमिव=कलेजा क समान।

अनुवाद—ऊपरी भाग से गिराई गई ईंटो वाली, ऊर्ध्वभाग म पतली और

मध्यभाग में विशाल यह (सन्धि) अयोग्य व्यक्ति के सम्पर्क से डरे हुए महाभवन के विदीर्ण हृदय के समान (दिखाई) पडती है।

संस्कृत टीका—उपरि०=ऊर्ध्वस्थाननिम्नस्थानाकृष्टेष्टक, शिरसि=ऊर्ध्व-भागे, तनुः=क्षीण, मध्यदेशे=मध्यभागे, विपुल=विस्तीर्णः, च, अयम्=सन्धि असदृश०=अयोग्यव्यक्तिप्रवेशभीतस्य, महागृहस्य=विशालप्रासादस्य, स्फुटितम्=विदीर्णम्, हृदयमिव=वक्ष.स्थलमिव (दृश्यते)॥

समास एवं व्याकरण—(१) उपरि० उपरिनलात् निपातिता इष्टका यस्य तादृशः। असदृश०—असदृश जन तस्य सप्रयोगात् भीरो ।

(२) तनु—तन्+उ। विपुल—वि+पुल्+क। स्फुटित=स्फुट्+क्त।

विवृति

(१) प्रस्तुत श्लोक मे 'यह सेंध क्या है? मानो चोर के प्रवेश से व्यथित भवन का फटा हुआ हृदय है' इस प्रकार की कल्पना करने के कारण उत्प्रेक्षालङ्कार है। (२) पुष्पिताग्रा छन्द है—'अयुजि न युगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। (३) अचेतन घर का मानवीयकरण सा कर दिया गया है।

कथमस्मिन्नपि कर्मणि कुशलता।

क्या इस कार्य म भी दक्षता है?

विदूषक—भो वयस्य, एष संधिर्द्वाभ्यामेव दत्तो भवेत्। अथवा आगन्तुकेन, शिक्षितुकामेन वा। अन्यथात्रोज्जयिन्या गृहविभव न जानाति। [भो वअस्स, अअ सधी दुवेहिं ज्जेव दिण्णो भवे। आदु आगन्तुएण, सिक्खिदुकामेण वा। अण्णधा इध उज्जइणीए को अम्हाण घरव्हिव ण जाणादि।]

विदूषक—हे मित्र! यह सेंध दो (तरह के मनुष्यों) के द्वारा ही लगाई हुई हो सकती है। या तो किसी परदेशी के द्वारा अथवा (चौर्य विद्या) सीखने के इच्छुक के द्वारा। नहीं तो यहां 'उज्जयिनी' मे हमारे घर के वैभव को कौन नहीं जानता है।

विवृति

(१) आगन्तुकेन=आने वाले परदेशी के द्वारा। (२) शिक्षितुकामेन=सीखने के इच्छुक, यहां पर 'लुम्पेद०, पाणिनि व्याकरण नियम से तुम् के मकार का लोप हो गया है। यहां समास होगा शिक्षितुम् काम यस्य स.। (३) व्यापारम्=संधि-कार्य को, (४) अभ्यस्यता=सीखते हुए।

चारुदत्त—

चारुदत्त—

वैदेश्येन कृतो भवेन्मम गृहे व्यापारमभ्यस्यता
नासौ वेदितवान् धनैर्विरहितं विस्रब्धसुप्तं जनम् ।
दृष्ट्वा प्राङ्महतीं निवासरचनामस्माकमाशान्वितः
सन्धिच्छेदनखिन्न एव सुचिरं पश्चान्निराशो गतः ॥२३॥

अन्वय—वैदेश्येन, व्यापारम्, अभ्यस्यता, मम, गृहे, (संधि) कृतः, भवेत्, असौ, धनैः, विरहितम्, विस्रब्धसुप्तम् जनम्, न, वेदितवान्, प्राक्, महतीम्, अस्माकम्, निवासरचनाम, दृष्ट्वा, आशान्वितः सुचिरम्, सन्धिच्छेदनखिन्नः, पश्चात्, निराशः, एव, गतः ॥२३॥

पदार्थ—वैदेश्येन=परदेशी के द्वारा, व्यापारम्=क्रिया अर्थात् सन्धिक्रिया को, अभ्यस्यता=अभ्यास करते हुए, मम=मेरे, गृहे=घर मे, कृत=की गयी, भवेत्=हो, असौ=यह चोरी करने वाला, धनैः=धनो से, विरहितम्=रहित, विश्रब्धसुप्तम्=निश्चन्त होकर सोये हुये, न वेदितवान्=नही जान पाया, प्राक्=पहले, निवासरचनाम्=घर की बनावट या ठाट-बाट को, आशान्वित=आशावान् होकर, सुचिरम्=देर तक, सन्धिच्छेदनखिन्न=सेंध फोडने से क्लान्त, पश्चात्=बाद म, निराशः=निराश, एव=ही, गत=चला गया ।

अनुवाद—(किसी) परदेशी ने सन्धि-कार्य का अभ्यास करते हुये मेरे घर म (सेंध) की होगी। वह धनहीन निश्चिन्त सोये हुए लोगो को नही जान पाया पहले विशाल हमारे भवन की बनावट को देखकर आशा से युक्त बहुत देर तक सेंध करने के कारण श्रान्त हुआ और इसके बाद निराश ही चला गया ।

सस्कृत टीका—वैदेश्येन=अपरिचितेन, व्यापार=चौर्यवृत्तिम्, अभ्यस्यता=शिक्षमाणेन, मम=मे, गृहे=भवने (सधि.) कृत=विहितः, भवेत्=स्यात्, असौ=चोर, धनैः=विभवै, विरहितम्=हीनम्, विश्रब्धसुप्तम्=निःशङ्कशयानम्, जनम्=पुरुषम्, न वेदितवान्—न ज्ञातवान्, प्राक्=पूर्वम्, महतीम्=विशालाम्, अस्माकम्=चारुदत्तस्य, निवासरचनाम्=भवननिर्माणम्, दृष्ट्वा=विलोक्य, आशान्वित=मनोरथविशिष्ट, सुचिरम्=बहुकालम्, सन्धिच्छेदनखिन्न=सन्धिखननश्रान्त, पश्चात्, निराश.=असफलमनोरथ, एव, गत=यातः ।

समास एव व्याकरण—(१) वैदेश्येन=विदेशभव वैदेश्य तेन। विश्रब्धसुप्तम् विश्रब्ध यथा स्यात् तथा सुप्तमिति । निवासरचनाम्—निवासस्य रचनाम् । आशान्वित.=आशया अन्वित इति । सन्धि०—सन्धिच्छेदनेन खिन्न । (२) वैदेश्येन-विदेश+ष्यञ् +तृतीया । वेदितवान्=विद्+णिच्+क्तवतु ।

टिप्पणी

(१) प्रस्तुत पद्य म पहले चरण के प्रति द्वितीय चरण का कारण के रूप म निर्देश

होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (२) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। (३) वेदितवान्—विद् धातु से क्तवतु प्रत्यय म विदितवान् रूप बनता है किंतु यहां पर स्वार्थिक णिच् मान लेने पर रूप शुद्ध हो जाता है। (४) यहाँ पर 'मेरे घर मे संधि करने वाला विदेशी है अथवा नौसिखिया है क्योंकि निर्धन के घर मे निःशङ्क सोए मानव का देखकर भी संधि-कार्य करता है।, यह अनुमानालङ्कार है। (५)पद्य मे विकल्प बोधक पद के अनभिधान से तथा संधि पद के अनिभधान से न्यूनपदता दोष है। (६) 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्ग निगद्यते।'

तत सुहृद्भ्य. किमसौ कथयिष्यति तपस्वी–'सार्थवाहसुतस्य गृह प्रविश्य न किंचिन्मया समासादितम्' इति।

तब मित्रो से यह बेचारा क्या कहेगा कि—"सार्थवाहपुत्र (चारुदत्त) के घर मे घुस कर कुछ भी मैंने नही पाया।"

विदूषक—भो, कथ तमव चौरहतकमनुशोचसि। तेन चिंतित महदेतद्गृहम्। इतो रत्नभाण्ड सुवर्णभाण्ड वा निष्क्रामयिष्यामि। (स्मृत्वा। सविषादमात्मगतम्।) कुत्र तत्सुवर्णभाण्ड। (पुनरनुस्मृत्य। प्रकाशम्।) भो वयस्य, त्व सर्वकाल भणसि—'मूर्खो मैत्रय, अपण्डितो मैत्रेयः' इति। सुष्ठु मया कृत तत्सुवर्णभाण्ड भवतो हस्ते समर्पयता। अन्यथा दास्याः पुत्रेणापहृत भवेत्। [भो, कध त ज्जेव चोरहदअ अणुसोचसि। तेण चिन्तिद महन्तं एद गेहम्। इदो रअणभण्डअ सुवण्णभण्डअ वा णिक्कामिस्सम्। कहिं त सुवण्णभण्डअम्। भो वअस्स, तुम सव्वकाल भणासि–'मुक्खो मित्तेअओ' 'अपण्डिदो मित्तेअओ' ति। सुट्ठु मए किद त सुवण्णभण्डअ भवदो हत्थे समप्पअन्तेण। अण्णधा दासीए पुत्तेण अवहिद भवे।]

विदूषक—अरे! क्यो उसी दुष्ट चोर की चिन्ता करते हो? उसनेसोचा-'यह बहुत बडा घर है। यहाँ से रत्नो का पात्र अथवा सोने का पात्र निकालूँगा। (स्मरण कर दुःखपूर्वक अपने आप) वह 'स्वर्ण–पात्र' कहाँ है? (पुनः स्मरण कर प्रकट रूप म) हे मित्र! तुम सदा कहा करते हो कि—'मैत्रेय' मूर्ख है: 'मैत्रेय' अज्ञानी है। मैंने बहुत अच्छा किया कि वह स्वर्ण–पात्र आपके हाथ मे दे दिया। नही तो दासीपुत्र (चोर) ने चुरा लिया होता।

चारुदत्तः—अल परिहासेन।

चारुदत्त—हँसी मत करो।

विदूषक—भो, यथा नामाह मूर्खस्तत्कि परिहासस्यापि देशकाल न जानामि।

विदूषक—अरे! जो मैं मूर्ख हूँ, तो क्या हँसी करने का स्थान एव समय भी नही जानता?

चारुदत्त—कस्या वेलायाम्।

चारुदत्त—किस समय (दिया था ?)

विदूषक—भोः, यदा त्वं मया भणितोऽसि—'शीतलस्तेऽग्रहस्तः' । [भो, जदा तुम मए भणिदोसि—'सीदलो दे अग्गहत्थो' ।

विदूषक—अरे ! जब तुमने मुझसे कहा था कि—'तुम्हारी उंगलियाँ ठण्डी हैं ।'

चारुदत्त.—कदाचिदेवमपि स्यात् । (सर्वतो निरूप्य । सहर्षम् ।) वयस्य, दिष्ट्या ते प्रियं निवेदयामि ।

चारुदत्त—सम्भवतः ऐसा ही हुआ हो । (चारों ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक) मित्र ! भाग्य से तुम्हें प्रिय (बात) सुनाता हूँ ।

विदूषक—किं नापहृतम् । [किं ण अवहिदम् ।]

विदूषक—क्या नहीं चुराया ?

चारुदत्तः—हृतम् ।

चारुदत्त—चुरा लिया ।

विदूषकः—तथापि किं प्रियम् । [तवा वि किं पिअम् ।]

विदूषक—तो फिर क्या 'प्रिय' है ?

चारुदत्त.—यदसौ कृतार्थो गत ।

चारुदत्त—यह कि वह सफल होकर गया ।

विदूषक—न्यासः खलु सः । [णासो क्खु सो ।]

विदूषक—वह तो धरोहर है ।

चारुदत्त.—कथं न्यासः । (मोहमुपगत. ।)

चारुदत्त—क्या धरोहर ? (बेहोश हो गया ।)

विदूषक—समाश्वसितु भवान् । यदि न्यासश्चौरेणापहृतस्त्वं किं मोहमुपगत । [समस्ससदु भवम् । जइ णासो चोरेण अवहिदो तुम किं मोहं उगवदो ।]

विदूषक—आप धैर्य धारण करें । यदि धरोहर चोर ने चुरा लिया (तो) तुम क्यों मूर्च्छित हो गये ?

विवृति

(१) तत =तव । (२) तपस्वी=बेचारा, 'तपस्वी तापसे चानुकम्प्ये त्रिष्वथ-योषित् ।' इति मेदिनी । (३) समासादितम्=पाया गया । (४) सार्थवाह-सुतस्य=वैश्यपुत्र के । (५) चोरहतकम्=दुष्ट चोर को, हतकश्चासौ चौरस्य इति चौरहतक (विशेष स्येव पूर्वनिपात) । (६) दिष्ट्या=भाग्य से (७) निष्क्रामयिष्यामि=निकाल दूँगा । (८) कृतार्थ =सतुष्ट । (९) न्यास =धरोहर । (१०) मोहम्=मूर्च्छा को ।

चारुदत्तः—(समाश्वस्य ।) वयस्य,

चारुदत्त—(प्रकृतिस्थ होकर ।) मित्र !

कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तुलयिष्यति ।
शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन्निष्प्रतापा दरिद्रता ॥२४॥

अन्वयः—कः, भूतार्थम्, श्रद्धास्यति, सर्वः, माम्, तुलयिष्यति, हि, अस्मिन्, लोके, निष्प्रतापा, दरिद्रता, शङ्कनीया, (भवति) ॥२४॥

पदार्थ—कः=कौन, भूतार्थम्=वास्तविकता को, श्रद्धास्यति=विश्वास करेगा, सर्वः=सभी, तुलयिष्यति=दोषी समझेंगे, निष्प्रतापा=तेजहीन, दरिद्रता=निर्धनता, शङ्कनीया=सन्देह के योग्य ।

अनुवाद—कौन यथार्थ तथ्य पर विश्वास करेगा ? सभी मुझ पर सन्देह करेंगे क्योंकि इस संसार में तेजहीन निर्धनता ही शङ्का करने योग्य होती है ।

संस्कृत टीका—कः=लोकः, भूतार्थम्=सत्यघटनाम्, श्रद्धास्यति=विश्वसिष्यति, सर्वः=निखिलः जनः, माम्=चारुदत्तम्, तुलयिष्यति=अवज्ञास्यति, हि=यस्मात्, अस्मिन्, लोके=संसारे, निष्प्रतापा=निस्तेजस्का, दरिद्रता=निर्धनता, शङ्कनीया=सन्देह योग्या, (भवति) ॥

समास एवं व्याकरण—(१) निष्प्रतापा—नास्ति प्रतापः यस्याम् सा । (२) तुलयिष्यति—तुल+णिच् (नामधातु+लृट्) ।

विवृति

(१) तुलयिष्यति और तूलयिष्यति ये दोनों प्रयोग बनते हैं । दोनों का पाठान्तर प्राप्त होता है । (२) श्रद्धास्यति—यह क्रिया श्रत्+धा, इन दो को मिलाकर बनी है । इसलिए यह मिश्रित क्रिया है । (३) प्रस्तुत पद्य में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है—'दरिद्रता शङ्कनीया होती है ।' इस सामान्य वचन से 'सभी सन्देह करेंगे' इस विशेष वचन का समर्थन हुआ है । (४) अनुष्टुप् छन्द है ।

भोः, कष्टम् ।

हाय ! कष्ट है !

यदि तावत्कृतान्तेन प्रणयोऽर्थेषु मे कृतः ।
किमिदानीं नृशंसेन चारित्रमपि दूषितम् ? ॥२५॥

अन्वय—यदि, तावत्, कृतान्तेन, मे, अर्थेषु, प्रणयः, कृतः, (तर्हि), नृशंसेन, इदानीम्, चारित्रम्, अपि, किम्, दूषितम् ॥२५॥

पदार्थ—कृतान्तेन=भाग्य के द्वारा, अर्थेषु=धनों में, प्रणयः=प्रेम, कृतः=किया गया, नृशंसेन=क्रूर के द्वारा, चारित्रम्=चरित्र को, दूषितम्=मलिन किया गया ।

अनुवाद—यदि दैव के द्वारा मेरे धन से प्रेम किया गया (छीन लिया गया), (तो क्यों) उस निष्ठुर के द्वारा अब चरित्र भी मलिन कर दिया गया ?

संस्कृत टीका—यदि, तावत्, कृता-तेन=दैवेन, मे=चारुदत्तस्य, अर्थेषु=विभवेषु, प्रणय=प्रीति, कृत=विहित, (तर्हि), नृशंसेन=निष्ठुरेण, इदानीम्=साम्प्रतम्, चारित्रम्=चरित्रम्, अपि किम्, दूषितम्=कलङ्कितम्।

समास एवं व्याकरण—(१) प्रणय—प्र+नी+अच्। नृशंसेन—नृ+शस्+अण्, 'नृन् शसति' इति नृशस। चारित्रम्—चरित्र+अण्।

विवृति

(१) अनुष्टुप् छन्द है। (२) 'कृतान्तो यमसिद्धान्तो दैवाकुशलकर्मसु' इत्यमर।

विदूषक—अहं खल्वपलपिष्यामि—'केन दत्तम' केन गृहीतम्, को वा साक्षी इति। [अहं क्खु अवलविस्सम केण दिण्णम्, केण गहीदम्, को वा स क्खि' त्ति।]

विदूषक—मैं झूठे ही कह दूँगा कि—किसने दिया ? किसने लिया ? और कौन गवाह है ?'

चारुदत्त—अहमिदानीमनृतमभिधास्ये।

चारुदत्त—क्या मैं अब झूठ बोलूँगा ?

> भैक्ष्येणाप्यर्जयिष्यामि पुनर्न्यासप्रतिक्रियाम्।
> अनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणम् ॥२६॥

अन्वय—भैक्ष्येण, अपि, न्यासप्रतिक्रियाम्, पुनः अर्जयिष्यामि, चारित्रभ्रंशकारणम्, अनृतम् न, अभिधास्यामि ॥२६॥

पदार्थ—भैक्ष्येण=भिक्षावृत्ति से अपि=भी, न्यासप्रतिक्रियाम्=धरोहर के बदले का धन, पुनः=फिर अर्जयिष्यामि—कमा लूँगा, चारित्र०=चरित्र पतन का कारण, अनृतम्=झूठ, न=नहीं, अभिधास्यामि=बोलूँगा।

अनुवाद—भिक्षावृत्ति से भी धरोहर योग्य धन को अर्जित कर लूँगा, किन्तु चरित्र पतन का कारण रूप असत्य नहीं बोलूँगा।

संस्कृत टीका—भैक्ष्येण=भिक्षाटनेन, अपि, न्यासप्रतिक्रियाम्=निक्षेपपरिशोधम् पुनः, अर्जयिष्यामि=एकत्रीकरिष्यामि, चरित्र०=सच्चरित्रताविनाशहेतुभूतम्, अनृतम्=असत्यम्, न, अभिधास्यामि=वदिस्यामि।

समास एवं व्याकरण—(१) न्यास०—न्यासस्य प्रतिक्रियाम्। चरित्र०—चारित्रस्य भ्रंशकारणम्। (२) भैक्ष्येण—भिक्ष्+अ+टाप्=भिक्षा, भिक्षा+ष्यञ्+तृतीया एकवचनम्। (३) अर्जयिष्यामि—अर्ज्+णिच्+लृट्। अभिधास्यामि—अभि+धा+लृट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

रदनिका—तद्यावदार्याधूतायै गत्वा निवेदयामि। [ता जाव अज्जा धूदाए गदुअ णिवेदेमि।] (इति निष्क्रान्ता सर्वे।)

रदनिका—तो जब तक 'आर्या धूता' से जाकर (सारी घटना) निवेदन करती हूँ। (सब निकल जाते हैं।)

(ततः प्रविशति चेट्या सह चारुदत्तवधू ।)

(तदनन्तर चेटी' के साथ 'चारुदत्त' की पत्नी (धूता) प्रवेश करती है।)

वधू—(ससंभ्रमम् ।) अयि, सत्यमपरिक्षतशरीर आर्यपुत्र आर्यमैत्रेयेण सह। [अइ, सच्च अवरिक्खदसरीरो अज्जउत्तो अज्जमित्तेएण सह।]

वधू—(घबराहट के साथ) अरी! 'आर्यपुत्र' 'आर्य मैत्रेय' के साथ सचमुच सकुशल हैं?

चेटी—भर्त्रि, सत्यम्। किं तु यः स वेश्याजनस्यालङ्कारकः सोऽपहृत। [भट्टिणि, सच्चम्। किं तु जो सो वेस्साजणकेरको अलंकारओ सो अवहिदो।]

चेटी—स्वामिनि! सचमुच। किन्तु वह जो वेश्या का आभूषण था, वह चुरा लिया गया।

(वधूर्मोहं नाटयति)

('वधू' मूर्च्छा का अभिनय करती है।)

चेटी—समाश्वसित्वार्या धूता। [समस्ससदु अज्जाधूदा।]

चेटी—आर्या धूता! धीरज रखें।

वधू—(समाश्वस्य।) चेटि किं भणसि—'अपरिक्षतशरीर आर्यपुत्र' इति। वरमिदानीं स शरीरेण परिक्षत। न पुनश्चारित्रेण। साम्प्रतमुज्जयिन्या जन एवं मन्त्रयिष्यति—'दरिद्रतयार्यपुत्रेणैवेदृशमकार्यमनुष्ठितम्' इति। (ऊर्ध्वमवलोक्य निःश्वस्य च।) भगवन्कृतान्त, पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुचञ्चलैः क्रीडसि दरिद्रपुरुषभागधेयैः। इयं च मे एका मातृगृहलब्धा रत्नावली तिष्ठति। एतामप्यतिशौण्डीरतयार्यपुत्रो न ग्रहीष्यति। चेटि, आर्यमैत्रेय तावदाह्वय। [हञ्जे, किं भणासि—'अवरिक्खदसरीरो अज्जउत्तो' त्ति। वरं दाणिं सो सरीरेण परिक्खदो, ण उण चारित्तेण। सम्पदं उज्जइणीए जणो एव्वं मन्तइस्सदि—दलिद्ददाए अज्जउत्तेण ज्जेव ईदिसं अकज्जं अणुचिट्ठिदम्' त्ति। भअवं कअन्त, पोक्खरवत्तपडिदजलबिन्दुचञ्चलेहिं कीलसि दलिद्दपुरिसभाअधेएहिं। इअं च मे एक्का मादुघरलद्धा रअणावली चिट्ठदि। एदं पि अदिसोण्डीरदाए अज्जउत्तो ण गेण्हिस्सदि। हञ्जे, अज्जमित्तेअं दाव सद्दावेहि।]

वधू—(आश्वस्त होकर) प्रिय दासी ! क्या कहती है ? 'आर्यपुत्र' शरीर से सकुशल हैं। यह ठीक है कि वे शरीर से सुरक्षित हैं, किन्तु चरित्र से नहीं। अब 'उज्जयिनी' में लोग इस प्रकार मन्त्रणा करेंगे कि—'निर्धनता के कारण आर्यपुत्र (चारुदत्त) ने ही ऐसा अनुचित कार्य कर डाला है। (आकाश की ओर देखकर और लम्बी साँस लेकर) भगवान् दैव ! कमल पत्र पर पड़ी हुई जलबिन्दुओं के समान चञ्चल निर्धन मनुष्य के भाग्य से क्यों खेला करते हो ? यह मेरे नैहर से प्राप्त हुई रत्नों की एक माला है। इसको भी अत्यन्त उदार चित्त होने के कारण आर्यपुत्र लगे। रदनिके ! तनिक 'आर्य मैत्रेय' को बुला !

चेटी—यदार्या धूताज्ञापयति। (विदूषकमुपगम्य।) आर्यमैत्रेय, धूता त्वामाह्वयति। [जं अज्जा धूदा आणवेदि। अज्जमित्तेअ, धूदा दे सद्दावेदि।]

चेटी—जो 'आर्याधूता' आज्ञा देती हैं। ('विदूषक' के पास जाकर) 'आर्य मैत्रेय !' 'धूता' तुम्हें बुला रही हैं।

विदूषक—कुत्र सा। [कहिं सा।]

विदूषक—वह कहाँ हैं ?

चेटी—एषा तिष्ठति। उपसर्प। [एसा चिट्ठदि। उवसप्प।]

चेटी—ये बैठी हैं। आ जाओ !

विदूषक—(उपसृत्य।) स्वस्ति भवत्या। [सोत्थि भोदीए।]

विदूषक—(समीप जाकर) आपका कल्याण हो !

वधू—आर्य, वन्दे। आर्य, पुरस्तान्मुखो भव। अज्ज, वन्दामि। अज्ज, पोरत्थिमामुहो होहि।]

वधू—आर्य ! प्रणाम करती हूँ। आर्य ! जरा सामने मुँह कीजिये।

विदूषक—एष भवति, पुरस्तान्मुखः संवृत्तोऽस्मि। [एसो भोदि, पोरत्थिमामुहो संवुत्तो म्हि।]

विदूषक—श्रीमती जी ! यह मैं आपके सम्मुख हो गया हूँ।

वधू—आर्य, प्रतीच्छेमाम्। [अज्ज, पडिच्छ इमम्।]

वधू—आर्य ! इसे लीजिये।

विदूषक—किं न्विदम्। [किं ण्णेदम्।]

विदूषक—यह क्या है ?

वधू—अहं खलु रत्नषष्ठीमुपोषितासम्। तत्र यथाविभवानुसारेण ब्राह्मणः प्रतिग्राहितव्यः। स च न प्रतिग्राहित, तत्तस्य कृते प्रतीच्छेमां रत्नमालिकाम्। [अहं क्खु रअणसट्ठिं उववसिदा आम्हि। तहिं जधाविहवाणुसारेण बह्मणो पडिग्गाहिदव्वो। सो अ ण पडिग्गाहिदो, ता तस्स किदे पडिच्छ इमं रअणमालिअम्।]

वधू—मैंने 'रत्नषष्ठी' व्रत किया था । उसमें यथा शक्ति ब्राह्मण को दान देना चाहिये । वह (मैंने) नहीं दिया था, अतः उसके लिये यह रत्नावली ले लो ।

विदूषक.—(गृहीत्वा ।) स्वस्ति । गमिष्यामि । प्रियवयस्यस्य निवेदयामि । [सोत्थि । गमिस्सम् । पिअवअस्सस्स णिवेदेमि ।]

विदूषक—(लेकर) कल्याण हो ! जाता हूँ । प्रिय मित्र ('चारुदत्त') से निवेदन करता हूँ ।

वधू.—आर्यमैत्रेय, मा खलु मा लज्जितं कुरु । [अज्जमित्तेअ मा क्खु म लज्जावेहि ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

वधू—'आर्य मैत्रेय' ! मुझे लज्जित मत करो । (निकल जाती है ।)

विदूषक —(सविस्मयम् ।) अहो, अस्या महानुभावता । [अहो, से महाणुभावदा ।]

विदूषक—(आश्चर्य के साथ) ओह ! इसकी उदारता !

चारुदत्तः—अये, चिरयति मैत्रेय । मा नाम वैक्लव्यादकार्यं कुर्यात् । मैत्रेय, मैत्रेय ।

चारुदत्त—अरे ! 'मैत्रेय' विलम्ब कर रहे हो । कहीं विकलता के कारण अनुचित कार्य न कर डाले । मैत्रेय ! मैत्रेय !

विदूषक —(उपसृत्य ।) एषोऽस्मि । गृहाणैतम् । [एसो ह्मि । गेण्ह एदम् ।] (रत्नावलीं दर्शयति ।)

विदूषक—(समीप जाकर) यह हूँ । इसे लो । (रत्नावली दिखाता है ।)

चारुदत्त —किमेतत् ।

चारुदत्त—यह क्या है ?

विदूषक —भो यत्ते सदृशदारसंग्रहस्य फलम् । [भो, ज दे सरिसदारसग्गहस्स फलम् ।]

विदूषक—अरे ! जो तुम्हारे समान (गुणवती) स्त्री के पाने का फल ।

विवृति

(१) अपरिक्षतशरीरः=सकुशल । (२) अकार्यम्=अनुचित काम । (३) अपहृत =चुरा लिया गया, अप+हृ+क्त । (४) परि+क्षण्+क्त=परिक्षत, न परिक्षतम् अपरिक्षतम् । (५) पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुचञ्चलं =कमल के पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूंदों के तुल्य अस्थिर । (६) दरिद्रपुरुषभागधेयैः=दरिद्र पुरुषों के भाग्यों से । (७) मातृगृहलब्ध =मायके से प्राप्त । (८) अतिशौण्डीर्यतया= अत्यन्त उदार होने के कारण । (९) पुरस्तान्मुखः=सामने अथवा पूर्व दिशा में मुख-वाला । (१०) प्रतीच्छ=लीजिये । (११) रत्नषष्ठीम्=अनन्तषष्ठी नामक श्रीष्मव्रत । यहाँ पर 'अनुत्यर्यस्य न' इस वार्तिक के कारण द्वितीया न होनी चाहिये किन्तु

'गत्यर्थ०' सूत्र से प्राचीनों ने वस् धातु का अर्थ स्थित मानकर कार्य चला लिया है। (१२) शब्दापय=बुलाओ। (१३) यथा विभवानुसारेण–'विभवम् अनतिक्रम्य यथा विभवम्' इस प्रकार आशय प्रकट हो जाता है 'अनुसारेण' किमर्थ है, विचारणीय है (१४) तत्तस्य कृते=उस ब्राह्मण चारुदत्त के लिए अथवा उस व्रत के लिए। (१५) लज्जिताम मा कुरु–अर्थात् धूता मैत्रेय से चारुदत्त के द्वारा उपहार को स्वीकार कराने की प्रार्थना करती है क्योंकि चारुदत्त से उपहार अस्वीकृत होने पर उसे लज्जित होना पड़ेगा। (१६) महानुभावता=उदारता (१७) वैक्लव्याद्=व्यग्रता के कारण, विक्लवस्य भाव वैक्लव्यम्। विक्लव+ष्यञ्। (१८) सदृशदारसग्रहस्य=योग्यस्त्री के ग्रहण का।

चारुदत्त—कथम्। ब्राह्मणी मामनुकम्पते। कष्टम्। इदानीमस्मि दरिद्र।

चारुदत्त—क्या? ब्राह्मणी मुझ पर दया करती हैं। खेद है! इस समय मैं निर्धन हूँ।

आत्मभाग्यक्षतद्रव्य स्त्रीद्रव्येणानुकम्पित.।
अर्थतः पुरुषो नारी या नारी साऽर्थत पुमान् ॥२७॥

अन्वय—आत्मभाग्यक्षतद्रव्य, स्त्रीद्रव्येण, अनुकम्पित, पुरुष, अर्थत, नारी (भवति, तथा) या, नारी, सा, अर्थत, पुमान् (भवति) ॥२७॥

पदार्थ—आत्म०=अपने भाग्य के कारण नष्ट धनवाला, स्त्रीद्रव्येण=स्त्री के धन से, अनुकम्पित=अनुगृहीत, अर्थत=धन (न होने) से, नारी=स्त्री, या=जो, नारी=स्त्री, सा=वह, अर्थत=धन से, पुमान्=पुरुष।

अनुवाद—दुर्दैव के कारण नष्ट धनवाला तथा स्त्री के धन से अनुगृहीत पुरुष धन (न होने) से स्त्री (के समान) है और जो स्त्री है वह धन के कारण पुरुष (के समान) है।

संस्कृत टीका—आत्म०=स्वदुर्दैवनष्टधनम्, स्त्रीद्रव्येण=पत्नीधनेन, अनुकम्पित=अनुगृहीत, पुरुष=जन, अर्थत=धनात्, नारी=स्त्री, (भवति, तथा) या, नारी, सा, अर्थत=धनेन, पुमान्=पुरुष (भवति)।

समास एवं व्याकरण—(१) आत्म०=आत्मनः भाग्येन क्षतं द्रव्य यस्य तादृशः। (२) अर्थत—अर्थ+तसिल्। पुरुष—पुर्+कुषन्।

विवृति

(१) अर्थत—इसमे धन का महत्व प्रकट किया गया है। इसका अर्थ विवादास्पद है। (२) अनुकम्पित–भाव यह है कि नारी के धन से दया प्राप्त पुरुष वस्तुत नारी के समान हो जाता है अत धन का बड़ा माहात्म्य है। मेरे पास धन

नही है अतएव आज मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि मैं वस्तुत दरिद्र हूँ। (३) प्रस्तुत श्लोक म काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (४) अनुष्टुप् छन्द है–"श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेय सवत्र लघु पञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ॥" (५) पद्य मे पुरुष पर नारी का आरोप होने से और नारी मे पुरुष का आरोप होने से प्रकृत् दारिद्र्योपयोगितया परिणामालङ्कार है। (६) पुरुष यह कह कर पुमान् इस कथन से भग्नप्रक्रमतादोष है।

अथवा। नाह दरिद्र । यस्य मम

अथवा, मैं निर्धन नही हूँ। जिस मेरी–

विभवानुगत भार्या सुखदु खसुहृद्भवान्।
सत्य च न परिभ्रष्ट यद्दरिद्रेषु दुर्लभम् ॥२८॥

अन्वय–स्त्री, विभवानुगता, भवान्, सुखदुःखसुहृत्, सत्यम् च, न, परिभ्रष्टम्, यत्, दरिद्रेषु दुर्लभम् ॥२८॥

पदार्थ–स्त्री=पत्नी, विभवानुगता=धन से युक्त या धन के अनुसार घर के खच की व्यवस्था करने वाली, भवान्=आप, सुखदु खसुहृत्=सुख एव दु ख के मित्र, परिभ्रष्टम्=छूटा, दरिद्रेषु=निर्धनो म, दुर्लभम्=मुश्किल।

अनुवाद–पत्नी धन स युक्त है। आप सुखदु ख म (समान) मित्र हैं और सत्य भी नही छूटा है जो कि निर्धनो म दुर्लभ है।

सस्कृत टीका–स्त्री=पत्नी, विभवानुगता=धनयुक्ता, भवान्=त्वम्, सुखदु खसुहृत्=सम्पत्तिविपत्तिमित्रम्, सत्यम्=सत्यवचनम, च, न, परिभ्रष्टम्=च्युतम, यत=एतत् त्रय, दरिद्रेषु=निर्धनेपु, दुर्लभम्=दुष्प्रापम्।

समास एवं व्याकरण–(१) विभवानुगता–विभवेन अनुगता। सुख०–सुखदु खयो सुहृत्। (२) परिभ्रष्टम्–परि+भ्र श्+क्त। सत्यम्–सते हितम्–सत्+यत्।

विवृति

(१) यत्–जो (तीन वस्तुएँ)। भाव यह है कि य तीना वस्तुएँ दरिद्रो के लिए दुर्लभ हैं, किन्तु मुझे प्राप्त है, अत मैं दरिद्र नही हूँ। (२) दरिद्रता के अभाव के समर्थन के लिए अनेक कारणो का वर्णन होन से इसमे समुच्चय अलङ्कार है। (३) अनुष्टुप् छन्द है।

मैत्रेय, गच्छ रत्नावलीमादाय वसन्तसेनाया सकाशम्। वक्तव्या च सा मद्वचनात्–'यत्खल्वस्माभि सुवर्णभाण्डमात्मीयमिति कृत्वा विश्रम्भाद्द्यूते हारितम्। तस्य कृते गृह्यतामियं रत्नावली' इति।

'मैत्रेय' ! 'रत्नावली' लेकर 'वसन्तसेना' के पास जाओ ! और उससे मेरी ओर से कहना कि–'आपका स्वर्ण–पात्र, जो कि हमने अपना (समझ) करके जुए में हरा दिया । उसके बदले में यह रत्नावली ले लीजिए ।'

विदूषक —मा तावदखादितस्यामुक्तस्याल्पमूल्यस्य चौरैरपहृतस्य कारणाच्चतु समुद्रसारभूता रत्नावली दीयते । (मा दाव अक्खाइदस्स अभुत्तस्स अप्पमुल्लस्स चोरेहिं अवहिदस्स कारणादो चतु समुद्दसारभूदा रअणावली दीअदि ।]

विदूषक—बिना खाये हुए बिना उपभोग किए हुए, कम मूल्यवाले तथा चोरों के द्वारा चुराये गये (आभूषण) के बदले में 'चारो समुद्रो की सारभूत 'रत्नावली' मत दीजिये ।'

विवृति

(१) सकाशम्=समीप । (२) मद्वचनात्=मेरी ओर से । (३) विश्रम्भात्=विश्वास से । (४) हारितम्=हरा दिया गया । (५) अखादितस्य=न खाये गये । (६) अभुक्तस्य=उपभोग मे न लाये गये । (७) चतु समुद्रसारभूता= चारो समुद्रों की सारभूत ।

चारुदत्त —वयस्य, मामैवम् ।

चारुदत्त—मित्र ! ऐसा मत कहो ।

य समालम्ब्य विश्वास न्यासोऽस्मासु तया कृत ।

तस्यैतन्महतो मूल्य प्रत्ययस्यैव दीयते ।।२९।।

अन्वय—तया, यम्, विश्वासम्, समालम्ब्य, अस्मासु, न्यास, कृत, तस्य, महत, प्रत्ययस्य एव, एतत्, मूल्यम्, दीयते ।।२९।।

पदार्थ —तया=उसके द्वारा, यम्=जिस, विश्वासम=विश्वास को, समालम्ब्य=सहारा बनाकर, अस्मासु= हम लोगो मे, न्यास =धरोहर, कृत =रक्खी गयी, तस्य=उस, महत =बहुत बडे, प्रत्ययस्य=विश्वास को एव=ही, मूल्यम्= कीमत, दीयते=दी जा रही है ।

अनुवाद=उस (वसन्तसेना) ने जिस विश्वास के सहारे हमारे पास धरोहर रक्खी, उस महान् विश्वास का ही यह मूल्य दिया जा रहा है ।

संस्कृत टीका—तया=वसन्तसेनया, यम्=दृढम् विश्वासम्=प्रत्ययम्, समालम्ब्य=आश्रित्य, अस्मासु=मादृशनिर्धनेषु, न्यास =निक्षेप, कृत =सम्पादित, तस्य=पूर्वोक्तस्य, महत =प्रधानभूतस्य, प्रत्ययस्य=विश्वासस्य, एव, एतत =रत्नावलीरूपम्, मूल्यम्=अर्घ, दीयते=समर्प्यते ।

समास एव व्याकरण—(१) न्यास –नि+अस्+घञ्, विश्वासम्–वि+श्वस्+घञ् । दीयते–दा+यक्+लट् । प्रत्यय–प्रति+इ+अच् ।

विवृत्ति

(१) महत प्रत्ययस्य–महान् विश्वास का। चूँकि निर्धन होने पर भी मुझ पर उसने विश्वास किया, अत उसका यह विश्वास-कार्य महान् है। (२) प्रस्तुत श्लोक मे अतिशयोक्ति अलङ्कार है। (३) अनुष्टुप् छन्द है। (४) 'दुर्जन प्रियवादीति नैतत् विश्वासकारणम् ।'–शाकुन्तलम। (४) 'मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धिः।' मालवि०।

तद्वयस्य, अस्मच्छरीरस्पृष्टिकया शापितोऽसि, नैनामग्राहयित्वात्रावगन्तव्यम्। वर्धमानक,

तो मित्र ! तुम्हे हमारे शरीर स्पर्श की सौगन्ध है, इसे बिना दिए यहाँ मत आना। वर्धमानक !

एताभिरिष्टिकाभि· सन्धि· क्रियता सुसहतः शीघ्रम्।
परिवादवहलदोषान्न यस्य रक्षा परिहरामि ॥३०॥

अन्वय—एताभि·, इष्टिकाभि, सन्धि, शीघ्रम्, सुसहत, क्रियताम्, परिवादवहलदोषात्, यस्य, रक्षाम्, न परिहरामि ॥३०॥

पदार्थ—एताभि = इन, इष्टिकाभि = ईंटो से, सन्धि —सेंध, शीघ्रम् = जल्द, सुसहत = भरी हुई, जोडी हुई, क्रियताम् = की जाय, परिवादवहलदोषात् = लोकापवाद क महान् दोष स, यस्य = जिस सेंध की, रक्षाम् = मरम्मत को, न = नही, परिहरामि = उपेक्षा करता हूँ।

अनुवाद—इन ईंटो से सेंध को शीघ्र ही ठीक से भर दो, लोकापवाद के महान् दोप स जिस (सेंध) की रक्षा की उपेक्षा नहीं करूँगा।

सस्कृत टीका—एताभि = वहि क्षिप्ताभि, इष्टिकाभिः = पक्वमृत्खण्डै, सन्धि = विवरम्, शीघ्रम् = झटिति, सुसहत = सम्यक्पूर्ण, क्रियताम् = विधीयताम्, परिवाद० = निन्दाधिक्यदूषणात्, यस्य = सन्धे, रक्षाम् = रक्षणम्, न, परिहरामि = त्यजामि ॥

समास एव व्याकरण—(१) परिवाद०—परिगतः वाद परिवादः अथवा परीवाद स एव बहुल दाप अथवा परिवादस्य बहुल दोषः तस्मात्। (२) परिहरामि—परि + हृ + लट । सुसहत—सु + सम् + हन् + क्त । सन्धि—सम् + धा + कि ।

विवृति

(१) प्रो० काले ने इस श्लोक के उत्तरार्द्ध के अर्थ को विवादास्पदता का कथन किया है। (२) पद्य मे काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (३) *आर्या छन्द है*–'यस्या

पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादशद्वितीये चतुर्थके पञ्चदशसार्या ॥"
(४) चारुदत्त का मन्तव्य है कि यदि यह सेंध इसी तरह खुली पडी रहेगी तो जनता मे मेरे सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की निन्द्य वार्तायें प्रसार पायेंगी। अत वह सेंध की मरम्मत चाहता है। (५) प्रो० राइडर ने नयस्यरक्षाम् परिहरामि के स्थान 'नयस्य रक्षा परिहरामि' पाठ ठीक कहा है।

वयस्य मैत्रेय, भवताप्यकृपणशौण्डीर्यमभिधातव्यम् ।

मित्र मैत्रेय ! तुम भी कृपणता छोडकर (उदारतापूर्वक) कहना।

विदूषक —भो, दरिद्र किमकृपण मन्त्रयति । [भो, दलिद्दो किं अकिवण मन्तेदि ।]

विदूषक—अरे ! क्या दरिद्र भी उदारतापूर्वक कहता है ?

चारुदत्त—अदरिद्रोऽस्मि सखे, यस्य मम । (विभवानुगता भार्या' (३/२८) इत्यादि पुन पठति ।) तदगच्छतु भवान् । अहमपि कृतशौच सध्यामुपासे । (इति निष्क्रान्ता सर्वे ।)

मित्र ! निर्धन नही हूँ। जिस-मेरी (सम्पत्ति के अनुसार चलने वाली पत्नी (३/२८) इत्यादि पुन पढता है ।) तो आप जायें। मैं भी शौचादि से निवृत्त होकर सध्योपासन करता हूँ। (सब निकल जाते हैं।)

इति सधिच्छेदोनाम तृतीयोऽङ्क ।

'सधिच्छेद नामक तृतीय अङ्क समाप्त ।

विवृति

(१) अकृपणशौण्डीर्यम्=अत्यन्त उदारता से। अकृपणम् शौण्डीर्यम् यत्र तत् यथा तथा। सन्ध्याम्=सन्ध्यावन्दन सध्या यन्ति जनाः अस्यामिति सध्या ताम्। सम्+ध्यै+अङ+टाप् अथवा सन्धि+यक्+टाप्।

चतुर्थोऽङ्क

चतुर्थ अङ्क ।

(तत प्रविशति चेटी)

(तदनन्तर 'चेटी' प्रवेश करती है।)

चेटी—आज्ञप्तास्मि मात्रार्याया सकाश गन्तुम्। एषार्या चित्रफलकनिषण्णदृष्टिर्मदनिकया सह किमपि मन्त्रयती तिष्ठति । तद्यावदुपसर्पामि । [आणत्तम्हि अत्ताए अज्जआए सआस गन्तुम्। एसा अज्जआ चित्तफलअणिसण्णदिट्ठी मदणिआए सह किंपि मन्तअन्ती चिट्ठदि । ता जाव उवसप्पामि ।] (इति परिक्रामति ।)

चेटी—माता जी ने 'आर्या' (वसन्तसेना) के पास जाने की आज्ञा दी है।

यह 'आर्या' चित्र-पट पर आँखें गडाये हुये 'मदनिका' के साथ कुछ वार्तालाप करती हुई बैठी हैं। जब तक (इनके) समीप चलती हूँ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा वसन्तसेना मदनिका च।)

(तदनन्तर यथोक्त 'वसन्तसेना' और 'मदनिका' प्रवेश करती हैं।)

वसन्तसेना—चेटि मदनिके, अपि सुसदृशीय चित्राकृतिरार्यचारुदत्तस्य। [हञ्जे मदणिए, अवि सुसदिसी इअ चित्ताकिदी अज्जचारुदत्तस्स।]

वसन्तसेना—चेटि मदनिके ! क्या यह चित्र की आकृति 'आर्य चारुदत्त' के अनुरूप है ?

मदनिका—सुसदृशी। [सुसदिसी।]

मदनिका—अनुरूप है।

वसन्तसेना—कथं त्वं जानासि। [कधं तुम जाणासि।]

वसन्तसेना—तू कैसे जानती है ?

मदनिका—येनार्यया. सुस्निग्धादृष्टिरनुलग्ना। [जेण अज्जआए सुमिणिद्धा दिट्ठी अणुलग्गा।]

मदनिका—क्योंकि आपकी प्रेममयी दृष्टि (इसमें) अनुरक्त है।

वसन्तसेना—चेटि, किं वेशवासदाक्षिण्येन मदनिके, एवं भणसि। हञ्जे, किं वेसवासदाक्खिण्णेण मदणिए, एव्वं भणासि।]

वसन्तसेना—मदनिके ! क्या वेश्यालय में रहने के कारण चतुरता से ऐसा कहती है ?

मदनिका—आर्ये, किं य एव जनो वेशे प्रतिवसति, स एवालीकदक्षिणो भवति। [अज्जए, किं जो ज्जेव जणो वेसे पडिवसदि, सो ज्जव अलीअदक्खिणो भोदि।]

मदनिका—आर्ये ! क्या जो भी व्यक्ति वेश्या-गृह में रहता है, वह झूठ बोलने में चतुर होता है ?

वसन्तसेना—चेटि, नानापुरुषसङ्गेन वेश्याजनोऽलीकदक्षिणो भवति। [हञ्जे, णाणापुरिससङ्गेण वेस्साजणो अलीअदक्खिणो भोदि।]

वसन्तसेना—चेटी ! अनेक मनुष्यों के संसर्ग से वेश्याएँ 'असत्यपटु' हो जाती हैं।

मदनिका—यतस्तावदार्याया दृष्टिरिहाभिरमते हृदयं च, तस्य कारणं किं पृच्छ्यते। [जदो दाव अज्जआए दिट्ठी इध अभिरमदि हिअअं च, तस्स कारणं किं पुच्छीअदि।]

मदनिका—जब कि आपकी दृष्टि और हृदय इसमें अनुरक्त है (तो फिर) उसका कारण क्यों पूछती हैं !

वसन्तसेना—चेटि, सखीजनादुपहसनीयता रक्षामि। [हञ्जे, सहीजणादो

उवहणीअदा रक्खामि ।]

वसन्तसेना—हञ्जे ! सखियों की हँसी से बचना चाहती हूँ ।

मदनिका—आर्ये, एव नेदम् । सखीजनचित्तानुवर्त्यबलाजनो भवति। [अज्जए, एव्व णेदम् । सहीजणचित्ताणुवत्ती अबलाजणो मोदि ।]

मदनिका—आर्ये ! यह ऐसा नहीं । अबलायें सखियों के चित्त के अनुसार ही कार्य करती है ।

प्रथमा चेटी—(उपसृत्य) आर्ये, माताज्ञापयति-'गृहीतावगुण्ठनं पक्षद्वारे सज्जं प्रवहणम् । तद्गच्छ' इति । [अज्जए, अत्ता आणवेदि—'गहिदावगुण्ठणं पक्खदुआरए सज्जं पवहणम् । ता गच्छ' त्ति ।]

प्रथम चेटी—(समीप जाकर) माता जी आज्ञा देती है- पर्दे से ढका हुआ बगल के दरवाजे पर रथ तैयार है, अतः जाओ ।'

वसन्तसेना—चेटि, किमार्यचारुदत्तो मां नेष्यति । [हञ्जे, किं अज्जचारुदत्तो मं णइस्सदि ।]

वसन्तसेना—हञ्जे ! क्या 'आर्य चारुदत्त' मुझे ले जायेंगे ?

चेटी—आर्ये, येन प्रवहणेन सह सुवर्णदशसाहस्त्रिकोऽलङ्कारोऽनुप्रेषित । [अज्जए, जेण पवहणेण सह सुवण्णदससाहस्सिओ अलंकारओ अणुप्पेसिदो ।]

चेटी—आर्ये ! जिसने रथ के साथ दश हजार के स्वर्ण-आभूषण भेजे हैं ।

वसन्तसेना—क पुन स । [को उण सो ।]

वसन्तसेना—कौन है फिर वह ?

चेटी—एष एव राजश्याल संस्थानक । [एसो ज्जेव राअस्सालो सठाणओ ।]

चेटी—यही राजा का साला 'संस्थानक' ।

वसन्तसेना (सक्रोधम् ।) अपेहि । मा पुनरेवं भणिष्यसि । [अवेहि । मा पुणो एव्वं भणिस्ससि ।]

वसन्तसेना-(क्रोध के साथ) दूर हटो । फिर कभी ऐसा मत कहना ।

चेटी-प्रसीदतु प्रसीदत्वार्या । संदेशेनास्मि प्रेषिता । [पसीददु पसीददु अज्जआ । संदेसेण म्हि पेसीदा ।]

चेटी-आर्ये ! प्रसन्न हो ! प्रसन्न हो ! (मैं तो केवल) संदेश लाई हूँ ।

वसन्तसेना-अहं संदेशस्यैव कुप्यामि । [अहं संदेसस्स ज्जेव कुप्पामि ।]

वसन्तसेना-मैं सन्देश पर ही कुपित होती हूँ ।

चेटी—तत्किमिति मातरं विज्ञापयिष्यामि । [ता किंति अत्तं विण्णविस्सम् ।]

चेटी—तो माता जी से क्या कहूँगी ?

वसन्तसेना—एवं विज्ञापयितव्या-'यदि मां जीवन्तीमिच्छसि, तदैवं न पुनरहं

मात्राज्ञापयितव्या' । [एव्व विण्णाविदव्वा—'जइ म जीअन्ती इच्छसि, ता एव्व ण पुणो अहू अत्ताए आण्णाविदव्वा' ।

वसन्तसेना—यह निवेदन करना कि—'यदि मुझे जीवित चाहती हो, तो ऐसी फिर मुझे माता जी के द्वारा आज्ञा नही मिलनी चाहिए ।'

चेटी—यथा ते रोचते । [जधा दे रोअदि ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

चेटी—जैसा आपका अच्छा लगता है । (निकल जाती है ।)

विवृति

(१) चेटी=दासी । (२) मात्रा=माता के द्वारा । (३) चित्रफलकनिषण्णदृष्टि =चित्रपट (तस्वीर) पर दृष्टि गडाये हुए । (४) मन्त्रयन्ती=वार्ता करती हुई । (५) यथानिदिष्ट =जैसे कही गई । (६) सुसदृशी=पूर्णतया अनुरूप । (७) सुस्निग्धा=प्रेमपूर्ण । (८) अनुलग्न =लगी हुई (९) वेशवासदाक्षिण्येन=वेश्या के घर मे रहने स कुशलता के कारण । (१०) वेदो=वेश्या के घर म । (११) अलीकदक्षिण =असत्य बोलने मे कुशल । (१२) उपहसनीयताम्=उपहास को । (१३) रक्षामि=बचा रही हूँ । (१४) अबलाजन =स्त्री । (१५) सखीजनचित्तानुवृत्ति=सखीजनस्य चितमनुवर्तत, सखियो के हृदय का अनुसरण करने वाले । (१६) गृहीतावगुण्ठनम्=पर्दे से ढका हुआ । (१७) प्रवहणम्=बैलगाडी । (१८) सुवर्णदशसाहस्रिक =दश हजार स्वर्ण मुद्राओ के मूल्य वाला । सुवर्णानाम् दशसहस्रम् तेन क्रीत. इति । महस्र+ठञ् । (१९) सस्थानक.=सस्थानक नाम का, सस्थीयते अस्मिन्निति सस्थापनम् तत् अस्ति अस्मिन्निति सस्थान कुत्सित सस्थान इति सस्थानक । सम्+स्था+ल्युट्+सस्थान+अच्=सस्थान+क=सस्थानक । (२०) सन्देशेन—सन्देश दने के लिए (हेतु मे तृतीया) । (२१) प्रवहण शब्द का अर्थ अमरकोश के अनुसार रथ, भानु जी दीक्षितानुसार पालकी, और सामान्यतया बैलगाडी अथवा बहली अर्थ लिया है ।

(प्रविश्य ।)

(प्रवेश कर ।)

शर्विलक —

शर्विलक—

दत्वा निशाया वचनीयदोष निद्रा च जित्वा नृपतेश्च रक्ष्यान् ।

स एष सूर्योदयमन्दरश्मि. क्षपाक्षयाच्चन्द्र इवास्मि जात: ॥१॥

अन्वयः—निशाया , वचनीयदोषम्, दत्वा, निद्राम्, च, नृपते , रक्ष्यान्, च, जित्वा, स , एष , (अहम्), क्षपाक्षयात्, सूर्योदयमन्दरश्मि , चन्द्र:, इव, जात , अस्मि ॥१॥

पदार्थ —निशाया =रात्रि को, वचनीयदोषम्=निन्दा के दोष को, दत्वा=देकर, निद्राम्=नींद को च=और, नृपते =राजा के, रक्ष्यान=पहरेदारों को, जित्वा=जीतकर, क्षपाक्षयात्=रात्रि के समाप्त हो जाने से, सूर्योदयमन्दरश्मि =सूर्योदय के कारण जिसकी किरणें मन्द हो गई हैं ऐसे, चन्द्र =चन्द्रमा, इव=जैसा, जात =हो गया, अस्मि=हूँ ।

अनुवाद —रात्रि को निन्दा का दोष देकर, नींद एव राजा के रक्षकों को जीतकर, वह (मैं) रात्रि का अवसान हो जाने से सूर्योदय के कारण मन्द प्रकाश वाले चन्द्रमा के समान हो गया हूँ ।

संस्कृत टीका–निशाया =यामिन्या , वचनीयदोषम्=बहुदोषा हि शर्वरीति अपवादरूप दूषणम्, दत्वा =समर्प्य, निद्राञ्च=आत्मन स्वापञ्च, नृपते =राज्ञ, रक्ष्यान्=प्रहरिण , च, जित्वा—विजित्य, स एष अहमिति शेष , क्षपाक्षयात्=रात्रिनाशात्, सूर्योदय०=प्रभाकरप्रभाह्वानकिरणा , चन्द्र =शशि , इव=यथा, जात =सवृत , अस्मि=वर्ते ।।

समास एव व्याकरण—(१) क्षपाक्षयात्—क्षपाया क्षयात् । सूर्योदय०-सूर्योदयेन मन्दा रश्मय यस्य तथाविध । (२) दत्वा—दा+क्त्वा । रक्ष्यान्–रक्षा+यत् । जित्वा—जि+क्त्वा । अस्मि–अस्+लट् । जात –जन+क्त । (३) रक्षाया नियुक्ता रक्षा तान् ।

विवृति

(१) रात्रि मे ही सब पाप होते हैं (बहुदोषा हि शर्वरी)—यह अपवाद है । (२) प्रस्तुत पद्य मे दिन के कारण प्रमाद शून्य शर्विलक एव सूर्य की किरणों से निष्प्रभ चन्द्रमा मे समानता बतलाने के कारण उपमा अलङ्कार है । (३) उपजाति छन्द है—

"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥"

अपि च ।
और भी ।

य कश्चित्त्वरितगतिर्निरीक्षते मा
सभ्रान्त द्रुतमुपसर्पति स्थित वा ।
त सर्वं तुलयति दूषितोऽन्तरात्मा
स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्य ॥२॥

अन्वय —य, कश्चित्, त्वरितगति, (सन्) सम्भ्रान्तम्, माम्, निरीक्षते, वा, स्थितम्, (माम्), द्रुतम्, उपसर्पति, तम् सर्वम् दूषित, अन्तरात्मा, तुलयति, हि, मनुष्य, स्वै, दोषै, शकित, भवति ॥२॥

पदार्थ —य =जो, कश्चित्=कोई, त्वरितगति =शीघ्रगामी, सम्भ्रान्तम्= भयभीत, माम्=मुझको, निरीक्षते=ध्यान से देखता है, वा=अथवा, स्थितम्= खडे हुए, द्रुतम्=शीघ्र, उपसर्पति=पास आता है, दूषित =भ्रष्ट या अपराधी, अन्तरात्मा=अन्त करण, तुलयति=तौलता है, शका की दृष्टि से देखता है, शकित =शका से युक्त।

अनुवाद—जो कोई शीघ्रगामी व्यक्ति भयभीत मुझे देखता है या खडे हुए मेरे पास शीघ्रता से आ जाता है, उन सबको (मेरा) कलुषित अन्त करण सन्देह से देखता है। क्योकि मनुष्य अपने दोषो क कारण शङ्का वाला होता है।

सस्कृत टीका—य, कश्चित्=कोऽपि, त्वरितगति =शीघ्रगामी, सभ्रान्तम् भयातुरम्, माम्=सर्वविदितम्, निरीक्षते=पश्यति, वा=अथवा, स्थितम्=वर्तमानम्, द्रुतम्=शीघ्रम्, उपसर्पति=आगच्छति, तम्=पूर्वोक्तम्, सर्वम्=निखिलम्, दूषित =कृतापराध, अन्तरात्मा=अन्त करणम्, तुलयति=शकादृष्ट्या विलोकयति हि=यत, मनुष्य =नर, स्वै =स्वकृतै, दोषै =अकार्यकरणै, शकित =शकायुक्त, भवति=जायते।

समास एव व्याकरण – (१) त्वरितगति =त्वरिता गति यस्य स। (२) दूषित –दूष्+णिच्+क्त। शकित –शक्+क्त।

विवृति

(१) समीप मे आये हुए पुरुष को देखने से उत्पन्न शर्विलक की शङ्का का अन्तिम पाद से समर्थन होने के कारण, सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(२) प्रहर्षिणी छन्द है—"त्रासमिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम्।"

मया खलु मदनिकाया कृते साहसमनुष्ठितम्।

वास्तव म मैंन 'मदनिका' के लिए यह साहस (चोरी) किया है।

परिजनकथासक्त कश्चिन्नर समुपेक्षित
क्वचिदपि गृह नारीनाथ निरीक्ष्य विवर्जितम्।
नरपतिबले पार्श्वायाते स्थित गृहदारुव—
द्व्यवसितशतैरेवप्रायैर्निशा दिवसीकृता ॥३॥

अन्वय —(मया), परिजनकथासक्त, कश्चित्, नर, समुपेक्षित, क्वचित्,

अपि, गृहम्, नारीनाथम्, निरीक्ष्य, विवर्जितम्, नरपतिबले, पार्श्वायते, गृहदारुवत्, स्थितम्, एवं प्रायैः, व्यवसितशतैः, निशा, दिवसीकृता ॥३॥

पदार्थ—परिजनकथासक्त + आश्रितजनो के साथ वार्तालाप मे लगा हुआ, कश्चित् = कोई, नर = मनुष्य, समुपेक्षित = उपेक्षित कर दिया गया, नारीनाथम् = स्त्री है स्वामिनी जिसकी ऐसे गृह को, निरीक्ष्य = भलीभांति देखकर, विवर्जितम् = छोड दिया, नरपतिबले = राजा के रक्षको के, पार्श्वायते = समीप मे आने पर, गृहदारुवत् = घर के खम्भे के समान, व्यवसितशतैः = सैकडो कार्यव्यापारो मे, एवं प्रायैः = इस प्रकार वाले, निशा = रात्रि, दिवसीकृता = दिन बना दी गई।

अनुवाद—परिवार के साथ वार्तालाप मे सलग्न किसी मनुष्य (के घर) की उपेक्षा कर दी, कही घर को अबलास्वामिनी वाला देखकर छोड दिया और राजा के रक्षको के समीप आने पर गृह मे लगे हुए काष्ठ के स्तम्भ के समान स्थित हो गया। इस प्रकार सैकडो कार्यों से रात्रि को दिन बना दिया।

सस्कृत टीका—परिजनकथासक्तः = बन्धुवर्गवार्तालापसलग्न, कश्चित्, नर = मनुष्य, समुपेक्षित = त्यक्त, क्वचित् अपि = कुत्रचिदपि, गृहम् = भवनम्, नारीनाथम = स्त्री स्वामिनम् निरीक्ष्य = अवलोक्य, विवर्जितम = त्यक्तम्, नरपतिबले = राजरक्षकसमूहे, पार्श्वायते = समीपम् आगते, गृहदारुवत् = स्तम्भादिवत्, स्थितम् = अवस्थितम्, एवं प्रायैः = एवम्भूतैः, व्यवसितशतैः = व्यापार शतैः, निशा = रात्रि, दिवसीकृता = दिवसवत् कृता।

समास एवं व्याकरण—(१) परिजन०—परिजनेन सह कथायामासक्त य स। नारीनाथम्—नारी नाथायस्य तत्। नरपतिबले—नरपते बले इति। गृहदारुवत्—गृहस्यदारुवत्। व्यवसितशतैः—व्यवसितानाम् शतैः। दिवसीकृता—अदिवस अपि दिवसवत् कृता इति। (२)

सम + उप + ईक्ष् + क्त। निरीक्ष्य—निर् + ईक्ष् + क्त्वा + ल्यप्।

दिवसीकृता—दिवस + च्वि (ईत्व) + कृ + क्त + टाप्।

व्यवसित—वि + अव + सो + क्त।

विवृति

(१) स्वाभावोक्ति अलङ्कार है। (२) रात्रि मे दिवसीकरण रूप कार्य के प्रति उपायशतका कारण के रूप मे निर्देश होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (३) दिवसीकरण से आत्मकौशल व्यजित होता है। इसलिए अलकार से वस्तुध्वनि है। (४) हरिणी छन्द है—'न समरसलाग षड्वेदैर्हयैर्हरिणीमता॥'

(इति परिक्रामति।)

(घूमता है।)

वसन्तसेना—चेटि, इमं तावच्चित्रफलकं मम शयनीये स्थापयित्वा तालवृन्तं गृहीत्वा लघ्वागच्छ। [हञ्जे, इमं दाव चित्तफलअं मम सअणीए ठाविअ तालवण्टअं गेण्हिअ लहु आअच्छ।]

वसन्तसेना—हला! तब तक इस चित्रपट को मेरी शय्या पर रखकर ताड़ का पंखा लेकर शीघ्र आ!

मदनिका— यदार्याज्ञापयति। [ज अज्जआ आणवेदि।] (इति फलकं गृहीत्वा निष्क्रान्ता।)

मदनिका— जो आर्या आज्ञा देती हैं। ऐसा कहकर फोटो लेकर निकल जाती है।)

शर्विलक — इदं वसन्तसेनाया गृहम्। तद्यावत्प्रविशामि। (प्रविश्य।) क्व नु मया मदनिका द्रष्टव्या।

शर्विलक— यह 'वसन्तसेना' का घर है। इसलिए प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश कर) मुझे 'मदनिका' को कहाँ देखना चाहिए?

(ततः प्रविशति तालवृन्तहस्ता मदनिका।)

(तदनन्तर ताड़ का पंखा हाथ में लिये 'मदनिका' प्रवेश करती है।)

विवृत्ति

(१) चित्रफलकम्=चित्रपट को। (२) शयनीये=पलङ्ग पर। (३) तालवृन्तम्=पंखा, 'व्यजनम् तालवृन्तकम्।' इत्यमरः। तालस्य इव वृन्तम् अस्य इति। अथवा ताले (करतले) वृन्तमिव बन्धनमस्य। (४) लघु=शीघ्र, 'लघु क्षिप्रं तरं द्रुतम्।' इत्यमरः।

शर्विलक.— (दृष्ट्वा।) अये, इयं मदनिका।

शर्विलक— (देखकर) अरे! यह 'मदनिका।'

मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती रतिरिव मूर्तिमती विभाति येयम्।
मम हृदयमनङ्गवह्नितप्तं भृशमिव चन्दनशीतलं करोति ॥ ४ ॥

अन्वय – या, इयम्, गुणैः मदनम् अपि, विशेषयन्ती, मूर्तिमती, रतिः, इव, विभाति, (सा), अनङ्गवह्नितप्तम्, मम, हृदयम्, भृशम्, चन्दनशीतलम्, इव, करोति ॥४॥

पदार्थ — या=जो, इयम्=यह मदनिका, गुणैः=गुणों के द्वारा, मदनम्=कामदेव को, अपि=भी, विशेषयन्ती=जीतती हुई, मूर्तिमती=देहधारिणी, रतिः=काम-पत्नी, इव=जैसी, विभाति=शोभित हो रही है, अनङ्गवह्नितप्तम्=कामाग्नि से झुलसे हुए, मम=मेरे, हृदयम्=हृदय को, भृशम्=अत्यधिक, चन्दनशीतलम्=चन्दन की भाँति शीतल, इव=सा, करोति=कर रही है।

अनुवाद – जो यह (सौन्दर्यादि) गुणों से कामदेव को भी अतिक्रमण करती हुई देहधारिणी रति के समान सुशोभित हो रही है, (वह) स्मराग्नि से सन्तप्त मेरे हृदय को चन्दन से शीतल सा कर रही है।

संस्कृत व्याख्या— या इयम्=मदनिका, गुणैः=सौन्दर्यविलासादिभिः, मदनम्=कन्दर्पम्, अपि, विशेषयन्ती=अतिक्रामन्ती, मूर्तिमती=साक्षाद्देहधारिणी, रतिः=कामदेवपत्नी, इव=यथा, विभाति=शोभते, (सा) अनङ्गवह्नितप्तम्=कामाग्निसन्तप्तम्, मम=मे, हृदयम्=चित्तम्, भृशम्=अत्यधिकम्, चन्दनशीतलम् =चन्दनानुलेपनेन शैत्ययुक्तमिव, करोति=विदधाति ॥

समास एवं व्याकरण–(१) अनङ्ग०– अनङ्गवह्निना तप्तम्। चन्दन०–चन्दनेन शीतलम्। (२) मदनम्—माद्यति अनेन-मद्करणेल्युट्। मूर्तिमती-मूर्ति+मतुप् रति=रम्+क्तिन्। चन्दनम्- चन्द्+णिच्+ल्युट्। करोति- कृ+लट्। विशेषयन्ती- वि+शिष्+णिच्+शतृ+ङीप्। विभाति- वि+भा+लट्।

विवृत्ति

(१) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध में मदनिका की मूर्तिमती रति के रूप में सम्भावना करने के कारण एवम् उत्तरार्द्ध में बिना चन्दन के भी शीतल हृदय में चन्दन की शीतलता की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षालङ्कार है। (२) प्रयुक्त छन्द का नाम है– पुष्पिताग्रा। छन्द का लक्षण– "अयुजि नयुगरेफतो यकारो। युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।" (३) अनङ्गवह्नि में रूपकालङ्कार है। (४) 'व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।' शाकु०।

मदनिके।

मदनिके!

मदनिका— (दृष्ट्वा) आश्चर्यम्, कथं शर्विलकः। शर्विलक, स्वागतं ते। कुत्र त्वम्। [अम्मो, कधं सव्विलको। सव्विलअ साअदं दे कहिं तुमम्।]

मदनिका— (देखकर) आश्चर्य है! क्या 'शर्विलक' है? 'शर्विलक'! तुम्हारा स्वागत है। तुम कहाँ?

शर्विलक— कथयिष्यामि।

शर्विलक— बताऊँगा।

(इति सानुरागमन्योन्यं पश्यतः।)

(प्रेमपूर्वक एक दूसरे को देखते हैं।)

वसन्तसेना— चिरयति मदनिका। तत्कुत्र नु खलु सा। (गवाक्षेण दृष्ट्वा।) कथम्। एषा केनापि पुरुषेण सह मन्त्रयन्ती तिष्ठति। यथातिस्निग्धया निश्चल-दृष्ट्या पिबन्तीवैतं निध्यायति तथा तर्कयामि, एष स जन एनामिच्छत्यभुजिष्यां

कर्तुम् । तद्रमता रमताम् मा कस्यापि प्रीतिच्छेदो भवतु । न खल्वाकारयिष्यामि । [चिरअदि मदणिआ ता कहिं णु क्खु सा । कथम् । एसा केनावि पुरिसकेण सह मन्तअन्ती चिट्ठदि । जधा अदिसिणिद्धाए णिच्चलदिट्ठीए आपिबन्ती विअ एद णिज्झाअदि तधा तक्केमि, एसो सो जणो एद इच्छदि अभुजिस्स कादुम् । ता रमदु-रमदु । मा कस्सावि पीदिच्छेदो भोदु । ण क्खु सद्दाविस्सम् ।]

वसन्तसेना— 'मदनिका' विलम्ब कर रही है । तो वह कहाँ है ? (खिड़की से देख कर) क्या वह किसी मनुष्य के साथ बातें करती हुई खड़ी है ? जिस प्रकार अत्यन्त स्नेहमयी एकटक दृष्टि से पीती हुई-सी ध्यान से देख रही है, उससे अनुमान लगाती हूँ कि यह वह व्यक्ति है जो इस (मदनिका) को विवाहिता बनाना चाहता है, तो रमण करे, रमण करे । किसी का भी (आपस का) प्रेम न टूटे । (इसलिए मैं) बुलाऊँगी नहीं ।

मदनिका—शर्विलक, कथय । [सव्विलअ, कधेहि ।]

मदनिका— शर्विलक !' कहो ।

(शर्विलक सशङ्कं दिशोऽवलोकयति ।)

('शर्विलक' शङ्कापूर्वक चारों ओर देखता है ।)

मदनिका—शर्विलक, किं न्विदम् । सशङ्क इव लक्ष्यसे । [सव्विलअ, किं ण्णेदम् । ससङ्को विअ लक्खीअसि ।

मदनिका— शर्विलक !' यह क्या है ? शङ्कित से दिखलाई पड़ रहे हो ।

शर्विलक —वक्ष्ये त्वा किंचिद्रहस्यम् । तद्विविक्तमिदम् ।

शर्विलक—तुमसे कुछ गुप्त बातें कहूँगा । यह (स्थान) निर्जन तो है ?

मदनिका—अथ किम् । [अध इ ।]

मदनिका—और क्या ?

वसन्तसेना—कथ परमरहस्यम् । तन्न श्रोष्यामि । कध परमरहस्सम् । ता ण सुणिस्सम् ।]

वसन्तसेना—क्या बिल्कुल गुप्त बात है ? तो नहीं सुनूँगी ।

शर्विलक —मदनिके, किं वसन्तसेना मोक्ष्यति त्वा निष्क्रयेण ।

शर्विलक — मदनिके ! क्या 'वसन्तसेना' तुम्हें मूल्य से छोड़ देगी ?

वसन्तसेना—कथ मम सबन्धिनी कथा । तच्छ्रोष्याम्यनेन गवाक्षेणापवारित-शरीरा । [कध मम सबन्धिणी कधा । तासुणिस्सं इमिणा गवक्खेन वोवारिदसरीरा ।]

वसन्तसेना—क्या मेरे विषय की बातें है ? तो शरीर छिपाकर इस खिड़की से सुनूँगी ।

अनुवाद — जो यह (सौन्दर्यादि) गुणों से कामदेव को भी अतिक्रमण करती हुई देहधारिणी रति के समान सुशोभित हो रही है, (वह) स्मराग्नि से सन्तप्त मेरे हृदय को चन्दन से शीतल सा कर रही है।

संस्कृत व्याख्या— या इयम्=मदनिका, गुणैः=सौन्दर्यविलासादिभि, मदनम्=कन्दर्पम्, अपि, विशेषयन्ती=अतिक्रामन्ती, मूर्तिमती=साक्षाद्देहधारिणी रतिः=कामदेवपत्नी, इव=यथा, विभाति=शोभते, (सा) अनङ्गवह्नितप्तम्=कामाग्निसन्तप्तम्, मम=मे, हृदयम्=चित्तम्, भृशम्=अत्यधिकम्, चन्दनशीतलम् =चन्दनानुलेपनेन शैत्ययुक्तमिव, करोति=विदधाति ॥

समास एवं व्याकरण–(१) अनङ्ग०– अनङ्गवह्निना तप्तम्। चन्दन०–चन्दनेन शीतलम्। (२) मदनम्—माद्यति अनेन-मद्करणेल्युट्। मूर्तिमती-मूर्ति+मतुप् रति=रम्+क्तिन्। चन्दनम्– चन्द्+णिच्+ल्युट्। करोति– कृ+लट्। विशेषयन्ती– वि+शिष्+णिच्+शतृ+ङीप्। विभाति– वि+भा+लट्।

विवृत्ति

(१) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध में मदनिका की मूर्तिमती रति के रूप में सम्भावना करने के कारण एवम् उत्तरार्द्ध में बिना चन्दन के भी शीतल हृदय में चन्दन की शीतलता की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षालङ्कार है। (२) प्रयुक्त छन्द का नाम है–पुष्पिताग्रा। छन्द का लक्षण– "अयुजि नयुगरेफतो यकारो। युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।" (३) अनङ्गवह्नि में रूपकालङ्कार है। (४) 'व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।' शाकु०।

मदनिके।

मदनिके!

मदनिका— (दृष्ट्वा) आश्चर्यम्, कथं शर्विलक। शर्विलक, स्वागतं ते। कुत्र त्वम्। [अम्मो, कधं सव्विलको। सव्विलअ साअदं दे कहिं तुमम्।]

मदनिका— (देखकर) आश्चर्य है! क्या शर्विलक' है? 'शर्विलक'! तुम्हारा स्वागत है। तुम कहाँ?

शर्विलक— कथयिष्यामि।

शर्विलक— बताऊँगा।

(इति सानुरागमन्योन्यं पश्यतः।)

(प्रेमपूर्वक एक दूसरे को देखते हैं।)

वसन्तसेना— चिरयति मदनिका। तत्कुत्र नु खलु सा। (गवाक्षकेन दृष्ट्वा।) कथम्! एषा केनापि पुरुषकेण सह मन्त्रयन्ती तिष्ठति। यथातिस्निग्धया निश्चल-दृष्ट्या पिबन्तीवैतं निध्यायति तथा तर्कयामि, एष स जन एनामिच्छत्यभुजिष्यां

कर्तुम् । तद्रमता रमताम् मा कस्यापि प्रीतिच्छेदो भवतु । न खल्वाकारयिष्यामि । [चिरअदि मदणिआ ता कहिं णु क्खु सा । कथम् । एसा केनावि पुरिसकेण सह मन्तअन्ती चिट्ठदि । जधा अदिसिणिद्धाए णिच्चलदिट्ठीए आपिवन्ती विअ एद णिज्झाअदि तधा तक्केमि, एसो सो जणो एद इच्छदि अभुजिस्स कादुम् । ता रमदु-रमदु । मा कस्सावि पीदिच्छेदो भोदु । ण क्खु सद्दाविस्सम् ।]

वसन्तसेना— 'मदनिका' विलम्ब कर रही है । तो वह कहाँ है ? (खिडकी स देख कर) क्या यह किसी मनुष्य के साथ बातें करती हुई खडी है ? जिस प्रकार अत्यन्त स्नेहमयी एकटक दृष्टि से पीती हुई सी ध्यान स देख रही है, उससे अनुमान लगाती हूँ कि यह वह व्यक्ति है जो इस (मदनिका) को विवाहिता बनाना चाहता है, तो रमण करे, रमण करे । किसी का भी (आपस का) प्रेम न टूटे । (इसलिए मैं) बुलाऊँगी नही ।

मदनिका—शर्विलक, कथय । [सव्विलअ, कधेहि ।]

मदनिका— शर्विलक !' कहो ।

(शर्विलक सशङ्क दिशोऽवलोकयति ।)

('शर्विलक' शङ्कापूर्वक चारो ओर देखता है ।)

मदनिका—शर्विलक, किं न्विदम् । सशङ्क इव लक्ष्यसे । [सव्विलअ, किं ण्णदम । ससङ्को विअ लक्खीअसि ।

मदनिका— शर्विलक !' यह क्या है ? शङ्कित से दिखलाई पड रहे हो ।

शर्विलक —वक्ष्य त्वा किंचिद्रहस्यम् । तद्विविक्तमिदम ।

शर्विल्क—तुमस कुछ गुप्त बातें कहूँगा । यह (स्थान) निर्जन तो है ?

मदनिका—अथ किम् । [अध इ ।]

मदनिका—और क्या ?

वसन्तसेना—कथ परमरहस्यम् । तन्न श्रोष्यामि । कध परमरहस्सम् । ता ण सुणिस्सम ।]

वसन्तसेना—क्या बिल्कुल गुप्त बात है ? तो नही सुनूगी ।

शर्विलक —मदनिक, किं वसन्तसेना मोक्ष्यति त्वा निष्क्रयण ।

शर्विलक— मदनिके ! क्या वसन्तसेना' तुम्हे मूल्य स छोड देगी ?

वसन्तसेना—कथ मम सबन्धिनी कथा । तच्छोष्याम्यनन गवाक्षे ।पवारित-शरीरा । [कघ मम सबन्धिणी कधा । तासुणिस्स इमिण गवक्खेन थो वारिदसरीरा ।]

वसन्तसेना—क्या मरे विषय की वार्ता है ? तो शरीर छिपाकर इस खिडकी से सुनूगी ।

मदनिका—शर्विलक, भणितामयार्या । तदाभणति- 'यदि मम छन्दस्तदा विनार्थं सर्वं परिजनमभुजिष्यं करिष्यामि । अथ शर्विलक, कुतस्त एतावान्विभवः येन मामार्यसकाशान्मोचयिष्यसि । [सव्विलअ, भणिदा मए अज्जआ । तदो भणादि- 'जइ जम छन्दो तदा विणा अत्थं सव्वं परिजणं अभुजिस्सं करइस्सम् ।' अध सव्विलअ, कुदो दे एत्तिओ विहवो, जेण मं अज्जआसआसादो मोआइस्ससि ।]

मदनिका—शर्विलक ! मैंने आर्या ('वसन्तसेना') से कहा था। तब बोली— यदि मेरा वश हो तो बिना धन के ही सभी सेवकों को मुक्त कर दूँ।' फिर शर्विलक ! तुम्हारे पास इतना धन कहाँ है, जिससे मुझे 'आर्या' के पास से छुड़ा लोगे ?

विवृत्ति

(१) गवाक्षकेन=झरोखे से, गवामक्षीव इति गवाक्ष, गवाक्ष एव गवाक्षक, गवाक्ष+कन् । (२) अतिस्निग्धया=अत्यन्त स्नेह से पूर्ण । (३) निश्चलदृष्ट्या=अपलक नेत्रों से । (४) निध्यायति=विशेष एकाग्रता से देख रही है । 'निवर्णनम् तु निध्यानम् दर्शनालोकनेक्षणम् ।' इत्यमर । (५) अभुजिष्याम्- दासीपन से मुक्त, भुजिष्या 'भुजिष्या परिचारिका ।' इत्यमर । भुङ्क्ते स्वामी उच्छिष्टमिति भुजिष्या, भुज्+किष्यन्+टाप्, न भुजिष्या अभुजिष्या ताम् । (६) रहस्यम्- गोपनीय, रहसि भवम् इति, रहस्+यक् । (७) विविक्तम्- निर्जनस्थान, वि+विच्+क्त विविञ्चन्ति जना अत्रेति । (८) निष्क्रयेण- द्रव्यविनिमय से । (९) अपवारित शरीर=छिपे हुए शरीर वाली (९) छन्द=स्वाधीनता । (१०) भीरु=डरने वाली । (११) अभिभूतेन=पीडित । (१२) त्वत्स्नेहानुगतेन=तुम्हारे प्रेम के वशीभूत ।

शर्विलक –

शर्विलक–

दारिद्र्येणाभिभूतेन त्वत्स्नेहानुगतेन च ।
अद्य रात्रौ मया भीरु ! त्वदर्थे साहसं कृतम् ॥ ५ ॥

अन्वय—हे भीरु ! दारिद्र्येण, अभिभूतेन, च, त्वत्स्नेहानुगतेन, मया, अद्य, रात्रौ, त्वदर्थे, साहसम्, कृतम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे भीरु !=हे डरपोक स्त्री । दारिद्र्येण=निर्धनता से, अभिभूतेन =आक्रान्त, पीडित, त्वत्स्नेहानुगतेन=तुम्हारे प्रेम के वशीभूत, त्वदर्थे=तुम्हारे लिए, साहसम्=हिम्मत, कृतम्=की गयी है ।

अनुवाद—हे भयशीले ! दरिद्रता से पीड़ित तथा तुम्हारे प्रेम के वशीभूत मैंने आज रात्रि में तुम्हारे लिए साहस (चौर्य-कर्म) किया है ।

संस्कृत टीका—हे भीरु ! हे भयशीले ! दारिद्र्येण=दैन्येन, अभिभूतेन=

पीडितेन, च=पुनः त्वत्स्नेहानुगतेन=त्वदीयप्रेमासक्तेन, मया=शर्विलकेन, अद्य, रात्रौ =रजन्याम्, त्वदर्थे=त्वन्निष्क्रयसाधनार्थं, साहसम्=चौर्य्यम्, कृतम्=अनुष्ठितम्।

समास एवं व्याकरण—(१) त्वत्स्नेहानुगतेन—त्वत्स्नेह अनुगतः तेन। (२) दारिद्र्यम्=दरिद्रा+क=दरिद्र, दरिद्र+ष्यञ्। साहसम्—सहसा बलेन निर्वृत्तम् अण्। कृतम्—कृ+क्त।

विवृति

(१) "साहस तु दमे दुष्करकर्मणि अविमृष्य कृतौ धार्ष्ट्ये" इति हैमः। (२) प्रस्तुत पद्य मे पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण— "युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम्॥"

वसन्तसेना— प्रसन्नास्याकृति. साहसकर्मतया पुनरुद्वेजनीया। [पसण्णा से आकिदी, साहसकम्मदाए उण उव्वेअणीआ।]

वसन्तसेना—इसकी आकृति बहुत सुन्दर है किन्तु साहसिक कार्य से भयभीत सी लगती है।

मदनिका—शर्विलक, स्त्रीकल्यवर्तस्य कारणेनोभयमपि सशये विनिक्षिप्तम्।

[सव्विलअ, इत्थीकल्लवत्तस्स कारणेण उहअं पि ससए विणिक्खित्तम्।]

मदनिका—शर्विलक! कलेवे के समान (तुच्छ) स्त्री के कारण (तुमने) दोनो को ही सन्देह मे डाल दिया।

शर्विलकः—किं किम्।

शर्विलक— क्या, क्या?

मदनिका— शरीर चारित्र्यं च। [सरीर चारित्त च।]

मदनिका— शरीर एव चरित्र को।

शर्विलक.— अपण्डिते, साहसे श्री. प्रतिवसति।

शर्विलक— अज्ञे! 'साहस' मे 'लक्ष्मी' निवास करती है।

मदनिका— शर्विलक, अखण्डित चारित्रोऽसि। तत्र खलु त्वया मम कारणात्साहस कुर्वतात्यन्तविरुद्धमाचरितम्। [सव्विलअ, अखण्डिदचारित्तो सि। ता ण खु ते मम कारणादो साहस करन्तेण अच्चन्तविरुद्ध आचरिदम्।]

मदनिका— शर्विलक! तम्हारा चरित्र निर्दोष है? तो तुमने मेरे कारण हिम्मत करते हुए नितान्त विरुद्ध आचरण नहीं किया?

विवृति

(१) साहस कर्मतया=चोरी के कारण, 'साहस तुदमे दुष्करकर्मणि अवमृष्य कृतो धार्ष्ट्ये' इति हैमः। (२) उद्वेजनीया=उद्वेग उत्पन्न करने वाली, उद्+विज्+

धनीयर्+टाप् । (३) स्त्रीकल्यवर्तम्य=कलेवा के समान स्त्री के । (४) निक्षिप्त =डाल दिया । (५) चारित्र्यम्=चरित । चरित्रमेव चारित्र्यम् चरित्र+ष्य स्वार्थे । (६) अखण्डितचारित्र्यः=निर्दोष चरित्र वाला । (७) अत्यन्तविरुद्धम्-अत्यन्त विपरीत अर्थात् लोक और शास्त्र की मर्यादा के विरुद्ध ।

शर्विलक—

शर्विलक—

नो मुष्णाम्यबलां विभूषणवतीं फुल्लामिवाहं लतां
विप्रस्वं न हरामि काञ्चनमथो यज्ञार्थमभ्युद्धृतम् ।
धात्र्युत्सङ्गगतं हरामि न तथा बालं धनार्थी क्वचि
त्कार्याकार्यविचारिणी मम मतिश्चौर्येऽपि नित्यं स्थिता ॥६॥

अन्वय —धनार्थी, अहम्, फुल्लाम्, लताम्, इव, विभूषणवतीम्, अबलाम्, नो मुष्णामि; विप्रस्वम्, अथो, यज्ञार्थम्, अभ्युद्धृतम्, काञ्चनम्, न, हरामि; तथा क्वचित्, धात्र्युत्सङ्गगतम्, बालम्, न, हरामि; चौर्ये, अपि, मम, मतिः, नित्यम्, कार्याकार्यविचारिणी, (सती), स्थिता ॥६॥

पदार्थः—धनार्थी=धन को चाहने वाला, फुल्लाम्=खिली हुई, विभूषणवतीम्=आभूषणों से युक्त या सजी हुई, नो मुष्णामि=नहीं लूटता हूँ, विप्रस्वम्=ब्राह्मण के धन को, अभ्युद्धृतम्=निकाले गये, काञ्चनम्=सुवर्ण को, धात्र्युत्सङ्गगतम्=धाय की गोद में स्थित, कार्याकार्यविचारिणी=कर्तव्याकर्तव्य का विवेक करने वाली ।

अनुवाद —धन का इच्छुक मैं पुष्पित लता की तरह आभूषणों से अलंकृत अबला को नहीं लूटता हूँ, ब्राह्मण का धन और यज्ञ के लिये एकत्र किए गये सुवर्ण को नहीं चुराता हूँ तथा कहीं धाय की गोद में स्थित बालक को नहीं हरता हूँ। चोरी में भी मेरी बुद्धि सदैव कर्तव्याकर्तव्य का विचार करने वाली रहती है ।

संस्कृत टीका —धनार्थी=द्रव्याभिलाषी, अहम्=शर्विलकः, फुल्लाम्=कुसुमिताम्, लताम् इव=वल्लरीमिव, विभूषणवतीम्=अलङ्कारयुताम्, अबलाम्=स्त्रियम्, नो=नहि, मुष्णामि=चोरयामि, विप्रस्वम्=ब्राह्मणसम्पत्तिम्, अथो=तथ यज्ञार्थम्=यज्ञनिमित्तम्, अभ्युद्धृतम्=सञ्चितम्, काञ्चनम्=सुवर्णम्, न हरामि=न चोरयामि, तथा=अपि च, क्वचित्=कुत्रचित्, धात्र्युत्सङ्गगतम्=उपमातृक्रो स्थितम्, बालम्=शिशुम्, न हरामि=न चोरयामि, चौर्ये=चौर्यकर्मणि, अ मम=शर्विलकस्य, मतिः=बुद्धिः, नित्यम्=सततम्, कार्याकार्यविचारिणी=कर्तव्य कर्तव्यविवेकिनी, (सती) स्थिता=तिष्ठति ॥

समास एवं व्याकरण—(१) विप्रस्वम्—विप्रस्य स्वम् । यज्ञार्थम्—यज्ञ

र्म् । धाम्युत्सङ्गगतम्—धाम्या उत्सङ्गे गतम् । कार्याकार्य०—कार्यं च अकार्यं च (० स०), तयो विचार (प० त०), स अस्ति अस्याम इति । (२) कार्याकार्य-चार+इनि+ङीप् ।

अभ्युद्‌धृतम्—अभि+उद्+हृ (धृ)+क्त । फुल्ल—फल्+क्त, उत्व त्त्वम् । ष्णामि—मुष्+लट् । हरामि—हृ+लट् ।

विवृति

(१) ब्राह्मण का धन चुराना विषभक्षण तुल्य माना गया है— 'न विष पमित्याहुर्विप्रस्व विषमुच्यते' (भागवत) । 'देवस्व ब्राह्मणस्व वा लोभेनोपहिनस्ति । स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥' मनु० ११, २६ । (२) कुछ ाख्याकारों ने 'काञ्चनम्' का 'विप्रस्वम्' स सम्बन्ध किया है किन्तु 'यज्ञार्थम-द्धृत काञ्चनम्' यह अन्वय अधिक उचित प्रतीत होता है । (३) ' धात्री स्यादुप-तापि' इत्यमर । (४) प्रस्तुत श्लोक के पहल तीन चरण के वाक्यार्थ के प्रति चौथे रण के वाक्यार्थ के हेतु रूप से निर्देश करने के कारण काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ।) प्रयुक्त छन्द का नाम है—शार्दूलविक्रीडित । लक्षण—'सूर्याश्वैर्यदि म सजौ ततगा शार्दूलविक्रीडितम् ॥"

तद्विज्ञाप्यता वसन्तसना—

अत. 'वसन्तसना' से निवेदन करो कि—

'अय तव शरीरस्य प्रमाणादिव निर्मित ।
अप्रकाशो ह्यलकारो मत्स्नेहाद्धार्यतामिति ॥७॥

अन्वय—अयम, अलङ्कार, तव, शरीरस्य, प्रमाणात्, इव, निर्मित (अस्ति, ॥), अप्रकाश, (अस्ति), हि, मत्स्नेहात्, धार्यताम्, इति ॥७॥

पदार्थ—अयम्=यह अलङ्कार=जेवर, तव=तुम्हारे, शरीरस्य=शरीर , प्रमाणात्=नाप स, इव=मानों, निर्मित=बनाया गया, अप्रकाश=न दिखान यक अर्थात् गुप्त रखन योग्य, हि=अवश्य, मत्स्नेहात्=मेरे ऊपर प्रेम करने के रण, धार्यताम्=पहना जाय, इति=एसा (कहना) ॥

अनुवाद—यह आभूषण मानो तुम्हारे शरीर की नाप से ही बनाया गया है ा प्रकाश म लान योग्य नही है, मेरे प्रम के कारण इस धारण कीजिये ।

सस्कृत टीका—अयम्=दृश्यमान, अलङ्कार=आभूषणम्, तव=भवत्या न्तसनाया, शरीरस्य=गात्रस्य, प्रमाणात्=परिमाणात्, इव=यथा, निर्मित = त, (तथा) अप्रकाश=अप्रदर्शनीय, (अस्ति), हि=अवश्यम्, मत्स्नेहात्= प्रेम्ण धार्यताम्=गृह्यताम्, इति=एव (विज्ञाप्यताम्) ॥

समास एव व्याकरण-(१) अप्रकाश-अनुचित प्रकाशो यस्य स । (२)

अलङ्कार–अलम्+कृ+घञ् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत श्लोक मे शरीर के नाप से न बनने पर भी आभूषण मे श की नाप की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षालङ्कार है । (२) पथ्यावक्त्र छन्द है–" श्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम्" ॥

मदनिका–शर्विलक, अप्रकाशोऽलङ्कार । अयं च जन इति द्वयमपि न युज्य तदुपनय तावत् । पश्याम्येनमलङ्कारम् । [सव्विलअ, अप्पकासो अलङ्कारओ । च जणोत्ति दुवेवि ण जुज्जदि । ता उवणेहि दाव । पेक्खामि एद अलङ्कारअम् ।]

मदनिका–शर्विलक ! 'किसी के द्वारा अदृष्ट आभूषण' और यह 'जन' की सगति नही बैठती, तो लाओ ! इस आभूषण को देखती हूँ ।

शर्विलक–इदमलङ्करणम् । (इति साशङ्क समर्पयति ।)

शर्विलक–यह आभूषण है । (शङ्कित–सा दे देता है ।)

मदनिका–(निरूप्य ।) दृष्ट पूर्व इवायमलङ्कार । तद्भण कुतस्त एष [दिट्ठपुरुव्वो विअ अअ अलङ्कारओ ता भणेहि कुदो दे एसो ।]

मदनिका–(देखकर) यह आभूषण पहले का देखा हुआ है । तो बताओ त यह कहाँ से मिला ?

शर्विलक–मदनिके, किं तवानेन गृह्यताम् ।

शर्विलक–मदनिके ! तुम्हे इससे क्या ? ले लो !

मदनिका–(सरोषम् ।) यदि मे प्रत्यय न गच्छसि, तत्किं निमित्त मा नि णासि । [जइ मे पच्चअ ण गच्छसि, ता किं णिमित्त म णिक्किणासि ।]

मदनिका–(क्रोध के साथ) यदि मेरा विश्वास नही करते हो तो किस मुझे मुक्त कराते हो ?

शर्विलक–अयि, प्रभाते मया श्रुत श्रेष्ठिचत्वरे यथा–'सार्थवाहस्य चारुद इति ।

शर्विलक–अरे ! प्रातःकाल मैंने सेठो के चौक म सुना था कि–"सा 'चारुदत्त' का है ।"

(वसन्तसेना मदनिका च मूर्च्छा नाटयतः ।)

('वसन्तसेना' और 'मदनिका' मूर्च्छा का अभिनय करती है ।)

विवृति

(१) अप्रकाशोऽलङ्कार =तात्पर्य यह है कि वसन्तसेना वेश्या है । वेश दिखाने के लिये ही आभूषण पहनती है, और 'वसन्तसेना के शरीर की नाप पर बना है'–यह कहकर शर्विलक वसन्तसेना को पहनने के लिए ही आभूषण

ऐसी स्थिति मे वसन्तसेना से यह कहना कि इस आभूषण का प्रकाश म न
ागा, बिलकुल असगत बात है। (२) अलङ्करणम्=आभूषण। (३) दृष्टपूर्व =
पहले देखा है। पूर्वम् दृष्ट दृष्टपूर्व । यहाँ 'भूतपूर्व' की तरह 'दृष्ट' शब्द का
प्रयोग हो जाता है 'भूतपूर्वे चरट्' इस पाणिनि सूत्र के प्रमाण से। (४)
म्=विश्वास को। प्रतीयते अनेन इति प्रत्यय प्रति+इ+अच्। (५) निष्क्री-
=मूल्य देकर छुडा रहे हो। (६) मूर्च्छां नाटयत=मूर्च्छा का अभिनय करती
इससे मदनिका का वसन्तसेना के प्रति स्नेह प्रकट होता है।

शर्विलकः—मदनिके, समाश्वसिहि। किमिदानी त्व

शर्विलक—मदनिके! धैर्य रख! इस समय तुम क्यो?—

विषादस्रस्तसर्वाङ्गी सम्भ्रमभ्रान्तलोचना।
नीयमानाऽभुजिष्यात्व कम्पसे नानुकम्पसे ॥८॥

अन्वय–विषादस्रस्तसर्वाङ्गी, सम्भ्रमभ्रान्तलोचना, कम्पसे, अभुजिष्यात्वम्
मानाा, (अपि, किम्, मयि), न, अनुकम्पसे ॥८॥

पदार्थ—विषाद०=कष्ट से शिथिल समस्त अङ्गो वाली, सम्भ्रम=घबराहट
रे जिसकी आँखें घूम रही हैं, कम्पसे=काँप रही हो, अभुजिष्यात्वम्=स्वाधीनता
नीयमाना=प्राप्त कराई जाती हुई, न=नही, अनुकम्पसे=कृपा कर रही हो।

अनुवाद—विषाद से क्लान्त सम्पूर्ण अङ्गो वाली, घबराहट से चञ्चल नेत्रो
ो होकर काँप रही हो? दासीत्व से मुक्त करायी जाती हुई तुम (मुझ पर) कृपा
नहीं कर रही हो?

संस्कृत टीका— विषाद०–खेदगलितनिखिलावयवा, सम्भ्रमभ्रान्त०=भीति
ननयना, कम्पसे=वेपसे, अभुजिष्यात्वम्=अदास्यभावम्, नीयमाना=प्राप्य-
ा, न अनुकम्पसे=न दयसे?

समास एव व्याकरण—(१) विषाद०–विषादेन स्रस्तानि सर्वाणि अङ्गानि
ा सा (२) संभ्रम०–सम्भ्रमेण भ्रान्ते लोचने यस्या सा। (३) अभुजिष्यात्वम्–
जिष्याया भाव अभुजिष्यात्वम्।

विवृति

(१) प्रस्तुत श्लोक मे विभावना एव विशेषोक्ति अलङ्कार है। विशेषोक्ति का
ण "सति हेतौ फलाभावे, विशेषोक्तिस्तथा द्विधा"। (२) पथ्यावक्त्र छन्द है।

मदनिका—(समाश्वस्य।) साहसिक, न खलु त्वया मम कारणादिदमकार्यं
ता तस्मिन्गेहे कोऽपि व्यापादित परिक्षतो वा। [साहसिअ, ण क्खुतुए मम कार-
ो इम अकज्ज करन्तेण तस्सि गेहे कोवि वावादिदो परिक्खदो वा।]

मदनिका—(धैर्य धारण कर) हे साहसी! तुमने मेरे निमित्त यह अनर्थ

करते हुए उसके मकान में किसी को मारा या घायल तो नहीं किया ?

शर्विलक—मदनिके, भीते सुप्ते न शर्विलक प्रहरति । तन्मया न कश्चिद् व्यापादितो नापि परिक्षत ।

शर्विलक—मदनिके ! डरे हुए और सोये हुए पर 'शर्विलक' वार (प्रहार) करता है । अतः मैंने न किसी को मारा, न घायल ही किया ।

मदनिका—सत्यम् । [सच्चम् ।]

मदनिका—सच ?

शर्विलक—सत्यम् ।

शर्विलक—सच ।

वसन्तसेना—(संज्ञां लब्ध्वा ।) आश्चर्यम्, प्रत्युपजीवितास्मि । [अम्महे पच्चुवजीविदम्हि ।]

वसन्तसेना—(होश में आकर) आश्चर्य है ! पुनर्जीवित हो गई हूँ ।

मदनिका—प्रियम् [पिअम् ।]

मदनिका—बहुत अच्छा ।

विवृति

(१) व्यापादित—वि+आ+पद्+णिच्+क्त । मार डाला गया । परिक्षत—घायल किया गया । परि+क्षण+क्त । (३) भीते—डरे हुए पर । (४) सुप्ते—सोये हुए पर । स्वप्+क्त । (५) संज्ञाम्—चेतना को ।

शर्विलक—(सेर्ष्यम् ।) मदनिके, किं नाम प्रियमिति ।

शर्विलक—(ईर्ष्यापूर्वक) मदनिके ! क्या बहुत अच्छा' ?

त्वत्स्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यं
सद्वृत्तपूर्वपुरुषेऽपि कुले प्रसूतः ।
रक्षामि मन्मथविपन्नगुणोऽपि मानं
मित्रं च मां व्यपदिशस्यपरं च यासि ॥१॥

अन्वय—सद्वृत्तपूर्वपुरुषे कुले, प्रसूतः, अपि, (अहम्) त्वत्स्नेहबद्धहृदयः (सन्), हि, अकार्यम्, करोमि, मन्मथविपन्नगुणः, (सन्), अपि, मानम्, रक्षामि, (किन्तु, त्वम्) माम्, मित्रम्, व्यपदिशसि, च, अपरम्, च यासि ॥१॥

पदार्थ—सद्वृत्तपूर्वपुरुषे=सदाचरण से युक्त पुरखों वाले, कुले=कुल में, प्रसूतः=पैदा हुआ, अपि=भी, त्वत्स्नेहबद्धहृदयः=तुम्हारे प्रेम से बँधे हुए हृदय वाला, अकार्यम्=अनुचित कर्म, मन्मथविपन्नगुणः=काममाव के कारण जिसके गुण नष्ट हो चुके हो, मानम्=आत्मसम्मान को, रक्षामि=बचाता हूँ, व्यपदिशसि

(ाने के लिए) कहती हो ।

अनुवाद—सदाचारी पुरखों के कुल में उत्पन्न हुआ भी (मैं) तुम्हारे प्रेम के
भूत हृदय वाला होकर निश्चित ही अनुचित कार्य करता हूँ । कामदेव के प्रभाव
ारण गुणहीन होकर भी आत्मसम्मान की रक्षा करता हूँ । (फिर भी) तुम
मित्र कहती हो और दूसरे (प्रेमी) के पीछे जाती हो ।

संस्कृत टीका—सद्वृत्त०=समीचीनकर्मतत्परपूर्वजे, कुले=वंशे, प्रसूत.=
न, अपि, त्वत्स्नेहबद्धहृदयः=तवानुरागवशीकृतचेत, हि=निश्चितम्, अकार्यम्
अकृत्यम्, करोमि=विदधामि, मन्मथविपन्नगुणः=अनङ्गनष्टगुण, अपि, मानम्=
वम्, रक्षामि=न त्यजामि, माम्=शर्विलकम्, मित्रम्=प्रियम्, व्यपदिशसि=
ा व्यवहरसि, च, अपरम्=अन्यम्, च, यासि= गच्छसि ।

समास एवं व्याकरण—(१) सद्वृत्त०—सन्ति वृत्तानि येषां ते पूर्वपुरुषाः
मन् तस्मिन् । त्वत्स्नेह०—त्वत्स्नेहेन बद्ध हृदय यस्य स । मन्मथ०—मन्मथेन
न्ना. गुणा यस्य सः । (२) प्रसूत—प्र+सू+क्त । करोमि—कृ+लट् । रक्षामि—
+लट् । व्यपदिशसि—वि+अप्+दिश्+लट् । यासि—या+लट् ।

विवृति

(१) इस श्लोक मे वसन्ततिलका छन्द है । (२) शर्विलक को सदेह है कि
निका चारुदत्त से प्रेम करती है, इसीलिए वह उससे ईर्ष्यापूर्वक सलाप करता है ।
का अभिप्राय है कि यदि तुम चारुदत्त मे नही अनुरक्त हो, तो 'न कश्चिद्
पादित०'—सुनकर 'प्रिय प्रियम्' यह क्यो कहा ?

(साकूतम् ।)

(अभिप्राय पूर्वक)

> इह सर्वस्वफलिनः कुलपुत्रमहाद्रुमाः ।
> निष्फलत्वमलं यान्ति वेश्याविहगभक्षिताः ॥१०॥

अन्वय—इह, सर्वस्वफलिन, कुलपुत्रमहाद्रुमाः, वेश्याविहगभक्षिता, अलम्,
ष्फलत्वम्, यान्ति ॥१०॥

पदार्थः—इह=इस ससार मे, सर्वस्वफलिनः=सारा धन ही जिनका फल
ऐसे कुलपुत्रमहाद्रुमाः=कुलीन पुत्र रूपी बडे वृक्ष, वेश्याविहगभक्षिताः=वेश्या
ो पक्षियो के द्वारा खाये गये, अलम्=पर्याप्त, निष्फलत्वम्=फलहीनता को,
न्ति=प्राप्त होते हैं ।

अनुवाद.—यहाँ (ससार मे अपनी) समस्त सम्पत्तिरूप फल वाले कुलीन
रूपी महान् वृक्ष वेश्यारूपी पक्षियों के द्वारा खाये जाकर पूर्णतया निष्फलता

(कुलपुत्र-पक्ष मे धन—रहित, वृक्ष पक्ष मे फल–रहित) को प्राप्त हो जाते हैं।

संस्कृत टीका—इह=लोके, सर्वस्वफलिनः = समग्रसम्पत्तिरूपफलयु कुलपुत्रमहाद्रुमाः=सद्वंशोत्पन्नजनमहावृक्षा, वेश्याविहगभक्षिता.=गणिकापक्षिभ फला, अलम्=अत्यर्थम्, निष्फलत्वम्=वैयर्थ्यं, यान्ति=प्राप्नुवन्ति।

समास एवं व्याकरण—(१) सर्वस्वफलिनः-सर्वस्वमेव फलम् (कर्म० स तत् अस्ति एषाम् इति सर्वस्वफल+इनि । यहाँ कर्मधारय के बाद इनि प्रत्यय न होना चाहिये बल्कि बहुव्रीहि समास करके 'सर्वस्वफला.' प्रयोग होना चाहिए- कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकर'। किन्तु प्रशसा-अर्थ मे प्रत्यय होता है और बहुव्रीहि से प्रशसा-अर्थ की प्रतीति नही होगी, इसलिए नियम लागू नही होगा। वस्तुत ऐसा मानने पर तो नियम ही व्यर्थ हो जाये क्योकि न केवल इनि प्रत्यय बल्कि मत्वर्थीय प्रत्यय मात्र .निन्दा-प्रशसा आदि अर्थो ही होते है। फिर यह नियम कहाँ लागू होगा ? कुलपुत्रमहाद्रुमा -कुलपुत्रा महाद्रुमा । वेश्याविहगभक्षिता.—वेश्या एव विहगा तै भक्षिताः। (२) वेश्य वेश्+यत्+टाप् । यान्ति-या+लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे धन—कुलपुत्र आदि मे फल—द्रुम आदि का अभेद से आरोप करने के कारण रूपकालङ्कार है। (२) प्रयुक्त छन्द का नाम है—पथ्या वक्त्र। छन्द का लक्षण—"युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्"॥ (३) य 'यान्ति' इस उपादान से वाक्य की परिसमाप्ति हो जाने से फिर समाप्ति के कुल इत्यादि विशेषण दान के लिए ग्रहण से समाप्तपुनरात्तता दोष है।

अयं च सुरतज्वाल. कामाग्नि. प्रणयेन्धनः।
नराणा यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥११॥

अन्वयः—सुरतज्वालः, प्रणयेन्धनः, अयम्, कामाग्निः, (अस्ति), यत्र, नराणाम्, यौवनानि, धनानि, च, हूयन्ते ॥११॥

पदार्थः-सुरतज्वालः=रतिक्रीडा जिसकी लपटे हैं, प्रणयेन्धनः=प्रेम जिस ईधन है, अयम्=यह, कामाग्नि=कामवासना रूपी आग, यत्र=जिसमे, नराणाम् मनुष्यो की, यौवनानि=जवानियाँ, च=और, धनानि=सम्पत्तियाँ, हूयन्ते=ह की जाती हैं।

अनुवादः—रतिक्रीडा रूपी ज्वाला वाला (एव) प्रेम रूपी ईंधन वाला काम-वासना रूपी अग्नि है, जहाँ मनुष्यों के यौवन और धन होम किए जाते हैं।

संस्कृत टीका—सुरतज्वाल =रतिक्रीडाग्निशिखा, प्रणयेन्धनः=अनुरागका अयम्=लोकप्रसिद्ध, कामाग्नि.=मदनानलः, यत्र=मदनानले, नराणाम्=मनु

म्, यौवनानि=तारुण्यानि, धनानि=सम्पत्तयः, च हूयन्ते=भस्मीक्रियन्ते ।

समास एवं व्याकरण-(१) सुरतज्वालः-सुरतम् एव ज्वाल यस्य सः। ग०-प्रणयः एव इन्धनम् यस्य सः । कामाग्नि कामः एव अग्नि । (२) हूयन्ते-हु+ (कर्म)+लट् । यौवन-युवन्+अण् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे काम को अग्नि, प्रणय को ईन्धन और रतिक्रीड़ा को ाला कहा गया है । इसलिए साङ्गरूपक अलकार है । (२) पथ्यावक्त्र छन्द है । ३) 'मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्रीः स्थिता' । विक्रम० ॥ (४) ाष्ठम् दार्विन्धनम्' । इत्यमर । (५) पहले के श्लोक मे वेश्या.दोष का कथन है र श्लोक मे वैशिक पुरुष दोष का कथन है ।

वसन्तसेना—(सस्मितम् ।) अहो, अस्यास्थान आवेगः । अहो, से अत्थाणे वेओ ।]

वसन्तसेना—(मुस्कराकर) अरे ! इसका रोष गलत जगह पर है । (व्यर्थ क्रोध करता है) ।

शर्विलकः-सर्वथा

शर्विलक-हर प्रकार से-

अपण्डितास्ते पुरुषा मता मे ये स्त्रीषु च श्रीषु च विश्वसन्ति !
श्रियो हि कुर्वन्ति तथैव नार्यो भुजङ्गकन्यापरिसर्पणानि ॥१२॥

अन्वयः-ये, पुरुषाः, स्त्रीषु, च, श्रीषु, च, विश्वसन्ति, ते, अपण्डिताः, मे, ताः, हि, श्रियः, तथैव, नार्यः, भुजङ्गकन्यापरिसर्पणानि, कुर्वन्ति ॥१२॥

पदार्थ.-ये=जो, पुरुषाः=पुरुष, स्त्रीषु=स्त्रियो पर, च=और, श्रीषु= न पर, विश्वसन्ति=भरोसा रखते हैं, ते=वे पुरुष, अपण्डिताः=अविवेकी, मे= से, मताः=लगते हैं, हि=क्योकि, श्रियः=सम्पत्तियाँ, तथैव=उसी प्रकार, नार्यः =स्त्रियाँ, भुजङ्ग०=साँपिन के समान टेढी चाल, कुर्वन्ति=करती हैं ।

अनुवाद.—जो मनुष्य स्त्री एव सम्पत्ति पर विश्वास करते है, वे मेरे मत मे ख है । क्योकि सम्पत्ति तथा स्त्रियाँ सर्पिणी के समान कुटिल चाल चलती है ।

संस्कृत टीका-ये, पुरुषाः=जनाः, स्त्रीषु=नारीषु, च, श्रीषु च=सम्पत्तिषु , विश्वसन्ति=विश्वास कुर्वन्ति, ते=पुरुषाः, अपण्डिताः=अज्ञाः, मे=मम, मताः =अभिमताः, हि=यतः, श्रियः=सम्पदः, तथैव=तद्वदेव, नार्यः=स्त्रियः, भुजङ्ग- न्यापरिसर्पणानि=सर्पिणीकुटिलगमनानि, कुर्वन्ति=सम्पादयन्ति ।

समास एवं व्याकरण—(१) भुजङ्ग०—भुजङ्गकन्यानाम् परिसर्पणानि । (२)

परिसर्पणानि=परि+सृप्+ल्युट्+विभक्तिकार्यम् । पुरुष=पुर्+कुषन् । श्री-श्रि+क्विप् । भुजङ्ग = भुज सन् गच्छति गम्+खच्, मुम् डिच्च । कुर्वन्ति=कृ+लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म अप्रस्तुत से प्रस्तुत शर्विलक की प्रतीति होने से अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है । (२) दीपक एव उपमा के परस्पर अङ्गाङ्गिभाव के कारण सङ्कर अलङ्कार है । (३) उपजाति छन्द है । छन्द का लक्षण—(स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।।) अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता ।। (४) भुजङ्ग जाति का कुटिलगमन प्रसिद्ध है । (५) अपण्डित होने से अभिमत रूप काय का, स्त्रीश्रीवर्तृक भुजङ्गकन्यापरिसर्पणवत् कुटिल व्यवहार रूप कारण से समथन होने के कारण अर्थान्तरन्यास है । 'स्त्रीषु' यह कहकर नार्य यह कहने से 'भग्नप्रक्रमता दोष है ।

स्त्रीषु न राग कार्यो रक्त पुरुष स्त्रिय परिभवन्ति ।
रक्तैव हि रन्तव्या विरक्तभावा तु हातव्या ।।१३।।

अन्वय—स्त्रीषु राग, न कार्य, स्त्रिय, रक्तम्, पुरुषम् परिभवन्ति हि रक्ता एव, रन्तव्या विरक्तभावा, तु हातव्या ।।१३।।

पदार्थ—स्त्रीषु=स्त्रियो पर, राग=प्रेम न=नही कार्य=करना, स्त्रिय=स्त्रियाँ, रक्तम्=प्रमी, पुरुषम=मनुष्य को, परिभवन्ति=तिरस्कार करती है हि=केवल, रक्ता=प्रम करने वाली स्त्री, एव=ही, रन्तव्या=रमण करने योग्य विरक्तभावा=स्नेहशून्य भावो वाली, तु=तो, हातव्या=त्याग देन लायक (है) ।

अनुवाद—स्त्रियो पर प्रम नही करना चाहिए, स्त्रियाँ प्रेमी पुरुष का अनादर करती हैं । केवल प्रम करने वाली (स्त्री) के साथ ही रमण करना चाहिए उदासीन (प्रम न करने वाली स्त्री) को त्याग देना चाहिए ।

संस्कृत टीका—स्त्रीषु=नारीषु, राग=अनुराग, न कार्य=न विधेय स्त्रिय=नार्य रक्तम=अनुरागिणम, पुरुषम्=नरम् परिभवन्ति=तिरस्कुर्वन्ति हि=केवलम रक्ता=स्नेहपूर्णा, रन्तव्या=प्रेमिकाकार्या,विरक्तभावा=अननुरागिणी हातव्या=त्याज्या ।

समास एव व्याकरण—(१) विरक्त०—विरक्त भाव यस्या सा । (२) राग—रञ्ज्+घञ (न लोप तथा कुत्व) । (३) पद्य म अप्रस्तुत स्त्री सामान्य से प्रस्तुत स्त्री विशेष मदनिका की प्रतीति होने से अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है, कुछ टीकाकारो के अनुसार काव्यलिङ्ग अलकार है । (४) आर्या छन्द है ।

सुष्ठुखल्विदमुच्यते—
वास्तव में यह ठीक कहा जाता है—

एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-
विश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशील समन्वितेन
वेश्याः श्मशान सुमना इव वर्जनीयाः ॥१४॥

अन्वय—एताः, वित्तहेतोः, हसन्ति, च, रुदन्ति, च, पुरुषम्, विश्वासयन्ति, तु, न, विश्वसन्ति; तस्मात्, कुलशीलसमन्वितेन, नरेण, श्मशानसुमनाः, इव, वेश्याः, वर्जनीयाः ॥१४॥

पदार्थ—एताः=ये (वेश्यायें), वित्तहेतोः=धन के लिए, हसन्ति=हँसती हैं, रुदन्ति=रोती हैं, विश्वासयन्ति=विश्वास दिलाती हैं, तु=किन्तु, न=नहिं, विश्वसन्ति=विश्वास करती हैं, तस्मात्=इसलिए, कुलशीलसमन्वितेन=(श्रेष्ठ) वंश एवं स्वभाव वाले, नरेण=मनुष्य से, श्मशानसुमनाः=मरघट के फूलों की भाँति, वेश्याः =गणिकायें, वर्जनीयाः=त्याग देने योग्य हैं।

अनुवाद—ये (स्त्रियाँ) धन के लिए हँसती हैं और रोती हैं। पुरुष को विश्वास दिलाती हैं; किन्तु विश्वास नहीं करतीं। इसलिए कुलीन एवं सुशील पुरुष के द्वारा मरघट के पुष्पों के सदृश वेश्यायें त्याज्य हैं।

संस्कृत टीका—एताः=गणिकाः, वित्तहेतोः=धनग्रहणार्थम्, हसन्ति, रुदन्ति =विलपन्ति, पुरुषम्=जनम्, विश्वासयन्ति=प्रत्याययन्ति, तु=किन्तु, न विश्वसन्ति=न प्रत्ययम् गच्छन्ति, तस्मात्, कुलशीलसमन्वितेन=सद्वंशसत्स्वभावयुक्तेन, नरेण=पुरुषेण, श्मशानसुमनाः=पितृवनमालत्य., इव, वेश्याः=गणिकाः, वर्जनीयाः =त्याज्याः।

समास एवं व्याकरण—(१) वित्तहेतोः—वित्तस्य हेतोः। (२) कुलशील-समन्वितेन—कुलं च शीलञ्च, ताभ्यां समन्वितेन। (३) श्मशान०—श्मशानस्य सुमना इति। (४) हसन्ति—हस्+लट्। रुदन्ति—रुद्+लट्। विश्वासयन्ति—वि+श्वस्+णिच्+लट्। विश्वसन्ति—वि+श्वस्+लट्।

विवृति

(१) पूर्वार्द्ध में वेश्यारूप एक कर्त्ता का हसना, रोना आदि कई क्रियाओं से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलकार है। पद्य के उत्तरार्द्ध में उपमा अलकार है। वसन्ततिलका छन्द है। (२) 'सुमना मालती जातिः' इत्यमरः। (३) कुछ टीकाकारों ने 'सुमना' एक वचन मानकर और उपमेय वेश्या को बहुवचन मानकर उपमागत दोष माना है। (४) कुछ टीकाकारों ने अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार भी कहा है।

अपि च ।

और भी–

समुद्रवीचीव चलस्वभावा. सध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागा ।
स्त्रियो हृतार्था पुरुष निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत्त्यजन्ति ॥१५॥

अन्वय–समुद्र वीची, इव, चलस्वभावा, सन्ध्याभ्रलेखा, इव, मुहूर्तरागा, स्त्रिय, हृतार्था, (सत्य), निरर्थम्, पुरुष, निष्पीडितालक्तकवत्, त्यजन्ति ॥१५॥

पदार्थ—समुद्रवीची=सागर की लहर, इव=सदृश, चलस्वभावा = चञ्चल स्वभाव वाली, सध्याभ्रलेखा=सायकालीन मेघपक्ति, मुहूतरागा=क्षणिक राग (लालिमा अथवा प्रेम) वाली, स्त्रियः=वेश्यायें, हृतार्था=धन हरने वाली, निरर्थम्=धनहीन को, निष्पीडितालक्तकवत्=निचोडे गए महावर के सदृश, त्यजन्ति=छोड देती हैं ।

अनुवाद–सागर की तरगो के सदृश अस्थिर स्वभाववाली और सायकालीन मेघपक्ति के समान क्षणिक राग (लालिमा एव प्रेम) वाली वेश्याये धन का हरण करके निर्धन पुरुष को निचोडे गए महावर की भाँति छोड देती हैं ।

सस्कृत टीका–समुद्रवीची=सागरतरङ्ग इव, चलस्वभावा=अतिचपला सन्ध्याभ्रलेखा=सायकालमेघपक्ति, मुहूर्तरागा=क्षणरागा, स्त्रिय=रमण्य, हृतार्था=अपहृतधना, (सत्य), निरर्थम्=निर्धनम्, पुरुषम्=जनम्, निष्पीडितालक्तकवत्=निस्सारितलाक्षावत्, त्यजन्ति=वर्जयन्ति ।

समास एव व्याकरण—(१) समुद्रस्यवीची इव इति समुद्रवीची । (२) चल स्वभाव यासान्ता चलस्वभावा । (३) सन्ध्याया अभ्रलेखा इव इति सन्ध्याभ्रलेखा इव । (४) मुहूर्तम राग यासा ता मुहूर्तरागा । (५) निष्पीडितम् यद् अउक्तकम् तद्वत् (६) त्यजन्ति=त्यज+लट् । (७) पुरुष=पुर्+उषन् । (८) स्त्री=स्त्यै+ड्रप्+ङीप् (स्त्यायेते शुक्रशोणिते यस्या इति) ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है, तथा एक ही उपमेयभूत स्त्री जाति की वीची, अभ्रलेखा आदि अनेक उपमानो से उपमा देने के कारण मालोपमा अलकार है । 'मालोपमा यदेकस्य उपमान बहुदृश्यते' । अलक्तकवत् मे श्रौती उपमा है । श्लेष अलकार भी है । (२) यहाँ पर उपमान और उपमेय मे वचन भिन्न होने से भग्नप्रक्रम दोष है । उपजाति छन्द है ।

स्त्रियो नाम चपला

स्त्रियाँ अत्यन्त चञ्चल होती हैं ।—

अन्यं मनुष्यं हृदयेन कृत्वा अन्यं ततो दृष्टिभिराह्वयन्ति।
अन्यत्र मुञ्चन्ति मदप्रसेकमन्यं शरीरेण च कामयन्ते ॥१६॥

अन्वय—(स्त्रिय), हृदयेन, अन्यम्, मनुष्यम्, कृत्वा, ततः, अन्यम्, दृष्टिभि, आह्वयन्ति, अन्यत्र, मदप्रसेकम्, मुञ्चन्ति, शरीरेण, अन्यम्, च, कामयन्ते ॥१६॥

पदार्थ—हृदयेन=हृदय से, अन्यम्=दूसरे को, ततः=उससे, दृष्टिभि.=नेत्रों से, आह्वयन्ति=बुलाती हैं, अन्यत्र=दूसरे पर, मदप्रसेकम्=मदिरा के सिञ्चन अर्थात् हाव-भाव, मुञ्चन्ति=छोडती हैं। कामयन्ते=चाहती हैं।

अनुवाद—हृदय मे दूसरे पुरुष को रखकर (उससे) भिन्न पुरुष को नेत्रों से बुलाती हैं और अन्य पुरुष पर मदिरा का (हावभाव) सिञ्चन करती है एव शरीर से किसी दूसरे को चाहती हैं।

संस्कृत टीका—(स्त्रिय) हृदयेन=चेतसा, अन्यम्=अपरम्, मनुष्यम्=पुरुषम्, कृत्वा=कामयित्वा, ततः=तस्मात्, अन्यम्=जनम्, दृष्टिभि=चञ्चलनयनैः, आह्वयन्ति=आकारयन्ति, अन्यत्र=अन्यस्मिन्, मदप्रसेकम्=मदिराप्रक्षेपम् मुञ्चन्ति=त्यजन्ति, शरीरेण=कायेन, अन्यम्=तदतिरिक्तम्, च, कामयन्ते=वाञ्छन्ति।

समास एव व्याकरण—(१) मदस्य प्रसेकम् मदप्रसेकम्। (२) प्रसेकम्—प्र+सिच्+घञ्। (३) दृष्टि—दृष्+क्तिन्। (४) आह्वयन्ति—आ+ह्वे+णिच्+लट्। (५) मुञ्चन्ति—मुच्+लट्। (६) कामयन्ते—कम्+णिङ्+लट्।

विवृति

(१) पद्य मे स्त्री रूप कर्ता का आह्वान आदि अनेक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध होने से दीपक अलकार है। (२) श्लोक मे पूर्वार्द्ध मे 'कृत्वा अन्यम्' मे दीर्घ सन्धि न करना सन्धि विश्लेष दोष है, जो कि छन्दोभङ्ग भय से नहीं किया गया है। (३) अन्य शब्द के बार-बार प्रयोग के कारण अनवीकृतत्व दोष है। (४) 'कामयन्ते' *आत्मनेपद प्रयोग के कारण भग्नप्रक्रमता दोष है, क्योंकि आह्वयन्ति परस्मैपद है।* (५) इन्द्रवज्रा छन्द है।

सूक्तं खलु कस्यापि—

वास्तव मे किसी ने कहा है कि—

न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति
न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति।
यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो
न वेशजाता. शुचयस्तथाङ्गनाः ॥१७॥

अन्वय—पर्वताग्रे, नलिनी, न, प्ररोहति, गर्दभाः, वाजिधुरम्, न, वहन्ति प्रकीर्णाः, यवाः, शालयः, न, भवन्ति, तथा, वेशजाताः, अङ्गनाः, शुचयः, न, (भवन्ति) ॥१७॥

पदार्थ—पर्वताग्रे=पहाड की चोटी पर, नलिनी=कमलिनी, प्ररोहति=उगती है, गर्दभाः=गधे, वाजिधुरम्=अश्व के भार को नहीं ढोते हैं, प्रकीर्णाः=बोये गए, यवाः=जौ शालयः=धान, न भवन्ति=नहीं होते हैं। वेशजाताः=वेश्यालय मे पैदा हुई, अङ्गनाः=स्त्रियाँ, शुचयः=पवित्र।

अनुवाद—गिरि के शिखर पर कमलिनी नही उगती है, गधे अश्व के भार को नही ढोते हैं। बोए गए जौ धान नहीं होते हैं, और (इसी प्रकार) वेश्यालय मे उत्पन्न स्त्रियाँ पवित्र नही होती है।

संस्कृत टीका—पर्वताग्रे=शैलशृङ्गे नलिनी=कमलिनी, न प्ररोहति=न उत्पद्यते गर्दभाः=रासभाः, वाजिधुरम्=अश्वभारम्, न वहन्ति=वोढु न प्रभवन्ति, प्रकीर्णाः=प्रक्षिप्ताः, यवाः, शालयः=कलमाः, न भवन्ति=न जायन्ते, वेशे=वेश्यालये, जाताः=उत्पन्नाः अङ्गनाः=स्त्रियः, शुचयः=पवित्राः, न, (भवन्ति)।

समास एवं व्याकरण—(१) पर्वतस्य अग्रे पर्वताग्रे। (२) वाजिनाम् धुरम् वाजिधुरम्। (३) वेशेजाता वेशजाता। (४) प्रकीर्ण—प्र+कृ+क्त। (५) अङ्गना=अङ्ग+न+टाप। (६) 'वेशो वेश्याजनाश्रयः' इत्यमरः (७) प्रशस्तानि अङ्गानि सन्ति आसाम् इति।

विवृति

(१) पद्य मे दृष्टान्त अलकार है। दृष्टान्त की बहुलता के कारण मालोपमा अलकार है। (२) 'मदनिका—किं नाम प्रियम्' मे लेकर अन्त तक विधूत नामक प्रतिमुख सन्धि का अङ्ग है। (३) वंशस्थविल नामक छन्द है। सूक्तम् खलु से ज्ञात होता है कि यह किसी अन्य कवि की सूक्ति है।

आः दुरात्मन् चारुदत्तहतक, अयं न भवसि। (इति कतिचित्पदानि गच्छति।)

अरे दुष्ट चारुदत्त! अब तुम न रहोगे! (कुछ डग चलता है।)

मदनिका—(अञ्चले गृहीत्वा।) अयि असंबद्धभाषक, असंभावनीये कुप्यसि।
[अइ असबद्धभासअ, असंभावणीए कुप्पसि।]

मदनिका—(आँचल मे पकड कर) हे असगत बोलने वाले! असम्भावित पर कोप करते हो।

शर्विलक—कथमसंभावनीयं नाम।

शर्विलक—क्या 'असम्भावनीय' है?

मदनिका—एष खल्वलंकार आर्यासंबन्धी। [एसो क्खु अलंकारओ अज्जआकेरओ।]

मदनिका–वस्तुत यह आभूषण आर्या ('वसन्तसेना) का है।

शर्विलक–तत किम्।

शर्विलक–उससे क्या ?

मदनिका–स च तस्यार्यस्य हस्ते विनिक्षिप्त। [स च तस्स अज्जस्स हत्थे विणिक्खित्तो।]

मदनिका–वह उन आर्य ('चारुदत्त') के हाथ म धरोहर के रूप म रक्खा था।

शर्विलक–किमर्थम्।

शर्विलक–किसलिए ?

मदनिका–(कर्णे) एवमिव। [एव्व विअ।]

मदनिका–(कान म) इसलिए।

विवृति

(१) चारुदत्तहतक–दुष्ट चारुदत्त। (२) अय न भवसि–यह तुम नही होगे। (३) असम्बद्धभाषक–निरथक बोलने वाले। (४) असम्भावनीये–जिसकी आशा न हो। (५) विनिक्षिप्त–धराहर रखा गया। वि+नि+क्षिप्+क्त। (६) एवमिव–ऐसा। (७) सवैलक्ष्यम्–लज्जा के साथ। (८) एवमिव से ज्ञात होता है कि मदनिका शर्विलक का बतलाती है कि वसन्तसेना चारुदत्त म अनुरक्त है, इसलिये इसन अपने आभूषण वहाँ रखे थ।

शर्विलक–(सवैलक्ष्यम्।) भा कष्टम्।

शर्विलक–(लज्जापूर्वक) अरे! दुख है!

छायार्थं ग्रीष्मसतप्तो यामेवाह समाश्रित।
अजानता मया सैव पत्रै शाखा वियोजिता ॥१८॥

अन्वय–ग्रीष्मसन्तप्त अहम्, छायार्थम् याम्, एव, समाश्रित, अजानता, मया, सा, एव, शाखा, पत्रै, वियाजिता ॥१८॥

पदार्थ–ग्रीष्मसन्तप्त =गर्मी से तपा हुआ, छायार्थम्=छाह के हतु याम=जिस, समाश्रित =आश्रय बनाया, अजानता=न जानते हुए, मया=मैंन, सा एव=वही, शाखा=डाल, पत्रै =पत्ता से, वियोजिता=रहित कर दिया।

अनुवाद–गर्मी स व्याकुल मैंने छाह क हतु जिस शाखा का आश्रय लिया, अनजान मैंने उसी शाखा को पत्तों में रहित कर दिया।

सस्कृत टीका–ग्रीष्मसन्तप्त =निदाघपीडित, अहम्=शर्विलक, छायाथम्=अनातपार्थम् याम्=शाखाम्, एव, समाश्रित =समाश्रिश्रयम्, अजानता=अनभिज्ञेन, मया=शर्विलकेन, सा एव, शाखा=शाखा, पत्रै =पर्णे, वियोजिता=पृथक्कृता।

समास एव व्याकरण–(१) ग्रीष्मेण सन्तप्त ग्रीष्मसन्तप्त। (२) सम्+तप्

+क्त । न जानता इति अजानता । नञ्+ज्ञा=शतृ ।

विवृति

(१) पद्य मे व्यजना है कि जिस वसन्तसेना के द्वारा मदनिका को प्राप्त करना चाहा, उसी वसन्तसेना के आभूषण चुरा लिए । (२) पद्य मे अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है । पथ्यावक्त्र छन्द है ।

वसन्तसेना—कथमेषोऽपि सतप्यत एव । तदजानतैतेनैवमनुष्ठितम् । [कध एसो वि सतप्पदिज्जेव । ता अजाणन्तेण एदिणा एव्व अणुचिट्ठिदम् ।]

वसन्तसेना—क्या यह भी दु खी हो रहा है ? तो अनजान मे ही इसने ऐसा (चोरी) किया ।

शर्विलक—मदनिके, किमिदानी युक्तम् ।

शर्विलक—मदनिके ! क्या (करना) अब उचित है ?

मदनिका—अत्र त्वमेव पण्डित । [इत्थ तुम ज्जेव पण्डिओ ।]

मदनिका—इस (विषय) मे तुम्ही कुशल हो ।

शर्विलक—नैवम् । पश्य ।

शर्विलक—ऐसा नही । देखो—

स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिता ।
पुरुषाणा तु पाण्डित्य शास्त्रैरेवोपदिश्यते ॥१९॥

अन्वय —एता , स्त्रिय , हि, निसर्गात्, एव, पण्डिता , खलु, नाम, तु, पुरुषाणाम्, पाण्डित्यम, शास्त्रै , एव, उपदिश्यते ॥१९॥

पदार्थ —एता =ये, निसर्गात्=प्रकृति से, पण्डिता =चतुर, पाण्डित्यम्= चतुरता, उपदिश्यते=सिखाई जाती है ।

अनुवाद —ये स्त्रियाँ वस्तुत प्रकृति से ही चतुर होती हैं । पुरुषो की चातुरता (तो) शास्त्रो स सिखाई हुई होती है ।

सस्कृत टीका —एता =इमा , स्त्रिय =अङ्गना , हि=निश्चयेन, निसर्गात्= स्वभावात्, एव, पण्डिता —प्रवीणा , खलु, नाम=सम्भावनायाम्, तु=किन्तु, पुरुषाणाम्=नराणाम्, पाण्डित्यम्=नैपुण्यम्, शास्त्रै =ग्रन्थै , एव, उपदिश्यते= शिक्ष्यते ।

समास एव व्याकरण —(१) पाण्डित्यम्=पण्डित+ष्यञ् । पण्डा+इतच्= पण्डित । (२) शिष्यते अनेन शास्त्रम् । शास्+ष्ट्रन् । (३) उप+दिश्+यक्+ लट्=उपदिश्यते ।

विवृति

(१) 'विद्या तदेव गमक पाण्डित्य वैदग्ध्ययो ।' मा० । (२) 'शास्त्रेष्वकुण्ठिता

वृद्धि.।' रघु० । (३) 'उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिम् । स्वभावेनैव तच्छास्त्रं नारी वेद न संशयः ।' हितोपदेश । (४) पथ्यावक्त्र छन्द है । (५) यहां अप्रस्तुतप्रशंसा तथा नारी जाति के उत्कर्ष के अभिधान के कारण व्यतिरेक अलंकार है ।

मदनिका शर्विलक, यदि मम वचनं श्रूयते, तदा तस्यैव महानुभावस्य प्रतिनिर्यातय । [सव्विलअ, जइ मम वअणं सुणीअदि, ता तस्स ज्जेव महाणुभावस्स पडिणिज्जादेहि ।]

मदनिका–शर्विलक ! यदि मेरी बात मानो, तो उसी महानुभाव ('आर्य चारुदत्त') को लौटा दो !

शर्विलक–मदनिके, यद्यसौ राजकुले मां कथयति ।

शर्विलक–मदनिके ! यदि ये (चारुदत्त) कचहरी में (मेरे विरुद्ध) मुझे कह देते हैं ?

मदनिका–न चन्द्रादातपो भवति । [ण चन्दादो आदवो होदि ।]

मदनिका–चन्द्रमा से गर्मी नहीं होती ।

वसन्तसेना–साधु मदनिके, साधु । [साहु मदणिए, साहु ।]

वसन्तसेना–वाह ! मदनिके ! वाह !!

विवृति

(१) प्रतिनिर्यातय=लौटा दो । (२) राजकुले=न्यायालय में । (३) न चन्द्रातपो भवति=जैसे चन्द्रमा से धूप (गर्मी) नहीं होती है । (वैसे चारुदत्त से किसी को कष्ट नहीं होता है)

शर्विलक–मदनिके,

शर्विलक–मदनिके !

न खलु मम विषादः साहसेऽस्मिन्भयं वा
कथयसि हि किमर्थं तस्य साधोर्गुणांस्त्वम् ? ।
जनयति मम वेदं कुत्सितं कर्म लज्जां
नृपतिरिह शठानां मादृशां किं नु कुर्यात् ? ॥२०॥

अन्वय–अस्मिन् साहसे, मम, विषादः, वा, भयम्, न, खलु, (अस्ति), त्वम्, तस्य, साधोः, गुणान् किमर्थं, कथयसि ? हि, इदम्, कुत्सितम्, कर्म, वा, मम, लज्जाम्, जनयति, इह, नृपतिः, मादृशाम्, शठानाम्, किम्, नु कुर्यात् ? ॥२०॥

पदार्थ–विषादः=खेद, साहसे=साहसिक कार्य में, तस्य साधोः=उन सज्जन के, किमर्थम्=किसलिए, कुत्सितम्=निन्दनीय, कर्म=कार्य, मम=मुझ-शर्विलक को, जनयति=उत्पन्न कर रहा है । मादृशाम्=हम जैसे, शठानाम्=धूर्तों का, किं नु कुर्यात्=क्या करेगा ?

अनुवाद—इस साहस पूर्ण कार्य में मुझे न तो पश्चात्ताप् ही है और न डर ही है, (यह) निश्चित है, तुम उस सज्जन (चारुदत्त) के गुणों को किसलिए कह रही हो ? अवश्य ही यह निन्दनीय कार्य मुझे लज्जित कर रहा है। इसमें राजा मुझ जैसे धूर्तों का क्या करेगा ?

संस्कृत टीका—अस्मिन्=कृते कार्ये, साहसे=चौर्यकर्मणि, मम=शर्विलकस्य, विषाद=खेद, वा, भयम्=भीति, न खलु=नैव, त्वम्=मदनिका, तस्य, साधोः=सज्जनस्य चारुदत्तस्य, गुणान्=परोपकारादीन्, किमर्थम्=कस्मात् हेतोः, कथयसि=वदसि, हि=निश्चयेन, इदम्=एतत्, कुत्सितम्=निन्दितम्, कर्म=चौर्यम्, वा,=एव, मम=शर्विलकस्य, लज्जाम्=त्रपाम्, जनयति=उत्पादयति, इह=अत्र, नृपतिः=राजा, मादृशाम्=मत्सदृशानाम्, शठानाम्=धूर्तानाम, किम्, नु, कुर्यात्=किम् कर्तुम् शक्नुयात् ?

समास एवं व्याकरण—(१) विषाद–वि+सद्+घञ् । जनयति—जन्+णिच्+लट् । मादृशाम—अस्मद्+दृश्+क्विन् (मदादेश और आत्व) ।

विवृति

(१) प्रवृत्तिसारा खलुमादृशांङ्गिर '–किरात० । (२) काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । (३) मालिनी छन्द है । (४) कुछ टीकाकारों ने अर्थापत्ति अलङ्कार भी कहा है । (५) काले के अनुसार इस श्लोक का भाव है कि शर्विलक ने अच्छे उद्देश्य से इस कार्य को किया है अतः उसे लज्जित होने की आवश्यकता नहीं ।

तथापि नीति विरुद्धमेतत् । अन्य उपायश्चिन्त्यताम् ।

फिर भी यह नीति के प्रतिकूल है । कोई और उपाय सोचो ।

मदनिका–सोऽयमपर उपाय । [सो अअ अवरो उवाओ ।]

मदनिका –वह दूसरा उपाय यह है ।

वसन्तसेना–क खल्वपर उपायो भविष्यति । [को क्खु अवरो उवाओ हुविस्सदि ।]

वसन्तसेना–दूसरा उपाय क्या होगा ?

मदनिका–तस्यैवार्यस्य सबन्धी भूत्वेममलंकारकमार्याया उपनय । [तस्सज्जेव अज्जस्स केरओ भविअ एद अलंकारअ अज्जआए उवणेहि ।]

मदनिका–'उन्हीं आर्य (चारुदत्त') के कुटुम्बी होकर इस आभूषण को आर्या ('वसन्तसेना') के पास ले जाओ ।'

शर्विलक–एव कृते किं भवति ।

शर्विलक-ऐसा करने से क्या होगा ?

मदनिका–त्वं तावदचौर, सोऽप्यार्योऽनृण आर्यया स्वकोऽलङ्कार उपगतो

भवति । [तुम द्वाव अचोरो, सो वि अज्जो अरिणो, अज्जआए सकं अलङ्कारअ उवगद भोदि ।]

मदनिका तुम चोर नही रहोगे, वह 'आर्य' (चारुदत्त) भी उऋण हो जाएँगे और 'आर्या' (वसन्तसेना) के द्वारा अपना आभूषण (उनको) प्राप्त हो जाता है ।

शर्विलक.—नन्वतिसाहसमेतत् ।

शर्विलक–यह तो बहुत साहस (का कार्य) है ।

मदनिका—अयि, उपनय । अन्यथातिसाहसम् । [अइ, उवणेहि । अण्णधा अदिसाहसम् ।]

मदनिका—अरे ! ले जाओ ! अन्यथा 'अति साहस' हो जायेगा ।

वसन्तसेना—साधुमदनिके, साधु । अभुजिष्ययेव मन्त्रितम् [साहु मदणिए, साहु । अभुजिस्सए विअ मन्तिदम् ।]

वसन्तसेना–वाह ! मदनिके ! वाह ! विवाहिता (स्त्री) की भाँति ही (तुमने) सलाह दी ।

विवृति

(१) उपगतः=प्राप्त । (२) नीति विरुद्धम्=नीति के विपरीत । (३) अति-साहसम्=बड़े साहस का कार्य । (४) भुजिष्या=दासी, अभुजिष्या=जो दासी न हो अर्थात् गृहणी । भुज्+क्ष्यिन्+टाप्=भुजिष्या, न भुजिष्या अभुजिष्या ।

शर्विलक —

शर्विलक—

मयाप्ता महती बुद्धिर्भवतीमनुगच्छता ।
निशाया नष्टचन्द्रायां दुर्लभो मार्गदर्शकः ॥२१॥

अन्वय.—भवतीम्, अनुगच्छता, मया, महती, बुद्धि, आप्ता, नष्टचद्रायाम्, निशायाम्, मार्गदर्शकः, दुर्लभ. (भवति) ॥२१॥

पदार्थ.–भवतीम्=आपको, अनुगच्छता=पछियाने वाले, मया=मेरे द्वारा, महती=बड़ी, बुद्धिः=बुद्धि, आप्ता=पाई गई, नष्टचन्द्रायाम्=चन्द्रमा से रहित, निशायाम्=रात मे, मार्गदर्शकः=राह बतलाने वाला, दुर्लभः=दुर्लभ, (भवति= होता है ।)

अनुवाद—आपका अनुसरण करते हुए मैंने विशद बुद्धि प्राप्त की । चन्द्र-रहित रात्रि मे पथप्रदर्शक दुर्लभ होता है ।

संस्कृत टीका–भवतीम्=त्वाम्, अनुगच्छता=अनुसरता, मया=शर्विलकेन, महती=श्रेष्ठा, बुद्धिः=मतिः, आप्ता=प्राप्ता, नष्टचन्द्रायां=अस्तसुधाकरायाम्,

निशायाम् = रजन्याम्, मार्गदर्शक = पथप्रदर्शक, दुर्लभ = दुष्प्राप (भवति) ॥

समास एवं व्याकरण—(१) नष्टचन्द्रायाम्–नष्ट चन्द्र यस्या तथाभूताया। मार्गदर्शक–मार्गस्य दर्शक। (२) भवतीम्–भू+शतृ+ङीप्। महती–महत्+ङीप्। आप्ता–आप्+क्त+टाप्। बुद्धि–बुध्+क्तिन्। मार्ग–मार्ग्+घञ्। दर्शक–दृश्+ण्वुल्।

विवृति

(१) अँधेरी रात मे मार्ग दिखाने वाला कठिनाई मे मिलता है, उसी तरह किंकर्तव्यविमूढता की अवस्था मे सन्मार्गदर्शक व्यक्ति दुर्लभ होता है। अतएव ऐसे भयानक समय मे तुमने मुझे उचित मार्ग-प्रदर्शन कर बडी सहायता की है। (२) प्रस्तुत पद्य मे दृष्टान्त अलङ्कार है। (३) पथ्यावक्त्र छन्द है–'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रम् प्रकीर्तितम्'। (४) अर्थान्तरन्यास अलङ्कार भी है।

मदनिका—तेन हि त्वमस्मिन्कामदेवगेहे मुहूर्तक तिष्ठ, यावदार्यायै तवागमन निवेदयामि। [तेण हि तुम इमस्सि कामदेवगेहे मुहुत्तअ चिट्ठ, जाव अज्जआए तुह आगमण णिवेदेमि।]

मदनिका—इसलिए तुम इस कामदेवायतन मे थोडी देर बैठो, जब तक आर्या (वसन्तसेना) से तुम्हारे आने का समाचार बताती हूँ।

शर्विलक—एव भवतु।

शर्विलक—ऐसा ही हो।

मदनिका—(उपसृत्य।) आर्ये, एष खलु चारुदत्तस्य सकाशाद्ब्राह्मण आगत। [अज्जए, एसो क्खु चारुदत्तस्स सआसादो बह्मणो आअदो।]

मदनिका—(पास जाकर) आर्ये! (आर्य) 'चारुदत्त' के पास से यह ब्राह्मण आया है।

वसन्तसेना—चेटि, तस्य सबन्धीति कथ त्व जानासि। [हञ्जे, तस्स केरअ त्ति कध तुम जाणासि।]

वसन्तसेना—चेटी! उनका आदमी है यह तूने कैसे जाना?

मदनिका—आर्ये, आत्मसम्बन्धिनमपि न जानामि। [अज्जए, अत्तणकेरअ वि ण जाणामि।]

मदनिका—आर्ये! (क्या मैं) अपने आदमी को भी नही जानती?

वसन्तसेना—(स्वगत सशिर कम्प विहस्य।) युज्यते। (प्रकाशम्।) प्रविशतु। [जुज्जदि। पविसदु।]

वसन्तसेना—(अपने आप शिर हिलाकर, हँसकर) ठीक है। (प्रकट रूप में) आने दे।

मदनिका—यदार्याज्ञापयति । (उपगम्य ।) प्रविशतु शर्विलक । [ज अज्जआ आणवेदि । पविसदु सव्विलओ ।]

मदनिका—जो आर्या आज्ञा देती हैं । (पास जाकर) शर्विलक ! प्रवेश करो ।

शर्विलकः—(उपसृत्य सवैलक्ष्यम् ।) स्वस्ति भवत्यै ।

शर्विलक—(पास जाकर घबराहट के साथ) आपका कल्याण हो ।

वसन्तसेना—आर्य, वन्दे । उपाविशत्वार्यः । [अज्ज, वन्दामि । उवविसदु अज्जो ।]

वसन्तसेना—आर्य ! प्रणाम करती हूँ ! आप बैठिए ।

शर्विलक—सार्थवाहस्त्वा विज्ञापयति—'जर्जरत्वाद्गृहस्य दूरक्ष्यमिद भाण्डम् । तद्गृह्यताम्' । (इति मदनिकायाः समर्प्य प्रस्थितः ।)

शर्विलक—'सार्थवाह' ('आर्य चारुदत्त') आपसे कहते हैं कि—"घर के टूटे-फूटे होने से इस स्वर्ण-पात्र को सुरक्षित रखना कठिन है । अत. ले लीजिए ।" (मदनिका' को देकर चल देता है ।)

वसन्तसेना—आर्य, ममापि तावत्प्रतिसदेश तत्रार्यो नयतु । [अज्ज, मयावि दाव पडिसदेस तहिं अज्जो णेदु ।]

वसन्तसेना—आर्य ! मेरा भी जवाब वहाँ आप ले जाइये ।

शर्विलकः—(स्वगतम् ।) कस्तत्र यास्यति । (प्रकाशम् ।) कः प्रतिसदेश. ।

शर्विलक—(अपने आप) कौन वहाँ जायगा ?

वसन्तसेना—प्रतीच्छत्वार्यो मदनिकाम् । [पडिच्छदु अज्जो मदणिअम् ।]

वसन्तसेना—आप 'मदनिका' को स्वीकार करें ।

शर्विलक—भवति, न खल्ववगच्छम् ।

शर्विलक—आर्ये ! मैं समझा नहीं ।

वसन्तसेना—अहमवगच्छामि । [अह अवगच्छामि ।]

वसन्तसेना—मैं समझ रही हूँ ।

शर्विलक.—कथमिव ।

शर्विलक—किस प्रकार ?

वसन्तसेना—अहमार्यचारुदत्तेन भणिता—'य इममलकारक समर्पयिष्यति, तस्य त्वया मदनिका दातव्या । तत्स एवैता ते ददातीत्येवमार्येणावगन्तव्यम् । [अह अज्ज-चारुदत्तेण भणिदा—'जो इम अलङ्कारअं समप्पइस्सदि, तस्स तुए मदणिआ दादव्वा' । ता सो ज्जेव एद दे देदित्ति एव्व अज्जेण अवगच्छिदव्वम् ।]

वसन्तसेना—मुझसे 'आर्य चारुदत्त' ने कहा है कि—"जो इस आभूषण को समर्पित करे उसे 'मदनिका' देनी चाहिए ।" तो वे ('चारुदत्त') ही आपको 'मदनिका' दे रहे हैं, ऐसा आपको समझना चाहिए ।

विवृति

(१) कामदेवगेहे=कामदेव के मन्दिर मे अथवा कामदेव नामक भवन मे । (२) शकाशाद्=समीप से । (३) वैलक्ष्यम्=उलझन, विलक्ष्+ष्यञ् । दूरक्ष्यम्=जिसकी रक्षा कठिन हो, दुर्+रक्ष्यम् (रलोप एवं दीर्घ) ।

शर्विलक—(स्वगतम् ।) अये विज्ञातोऽहमनया । (प्रकाशम् ।) साधु आर्य-चारुदत्त, साधु ।

शर्विलक—(अपने आप) अरे ! इसने मुझे जान लिया ? (प्रकट रूप मे) धन्य ! आर्य चारुदत्त ! धन्य ! ।

गुणेष्वेव हि कर्तव्य प्रयत्न पुरुषै सदा ।
गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणै सम ॥२२॥

अन्वय.—पुरुषै, सदा, गुणेषु, एव, प्रयत्न, कर्तव्य, हि, गुणयुक्त, दरिद्र, अपि, अगुणै:, ईश्वरै, सम, न, (भवति) ॥२२॥

पदार्थ.—पुरुषै:=पुरुषो के द्वारा, सदा=हमेशा, गुणेषु=गुणो मे, एव=ही प्रयत्न.=प्रयत्न, कर्तव्य.=करना चाहिये, हि=क्योकि, गुणयुक्त=गुणवान्, दरिद्र, =निर्धन, अपि=भी, अगुणै=गुणहीन, ईश्वरै=धनवानो से, सम=समान न=नही, भवति=होता है ।

अनुवाद—मनुष्यो को सदा गुणो (के अर्जन) मे ही प्रयत्न करना चाहिये, क्योकि गुणवान् निर्धन भी गुणहीन धनिको के समान नही (बल्कि उनसे बढकर होता है)॥

सस्कृत टीका—पुरुषै=नरै सदा=सर्वदा गुणेषु=दयादाक्षिण्यादिषु, एव, प्रयत्न=उद्योग, कर्त्तव्य=विधेय, हि=यत, गुणयुक्त=गुणवान्, दरिद्र अपि—निर्धनोऽपि, अगुणै=गुणहीनै, ईश्वरै=धनसम्पन्नै, सम=तुल्य, न (भवति)॥

समास एव व्याकरण—(१) कर्तव्य—कृ+तव्यत् । प्रयत्न—प्र+यम्+नत=यत् (भावे) नङ ।(२) अगुणै—नास्ति गुणो येषा ते अगुणा (न० ब० स०), तै ।

विवृति

(१) सैकडो गुणहीन धनी भी एक दरिद्र पर गुणवान् व्यक्ति की तुलना नही कर सकते । इसका प्रमाण तुम्ही (चारुदत्त) हो । तुम्हारे ही गुणो की कृपा से मैंने मदनिका को प्राप्त किया है । अत तुम धन्य हो । (२) प्रस्तुत पद्य मे अर्थान्तर-न्यास अलङ्कार है । (३) अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है । अनुष्टुप् छन्द है—

अपि च ।

और भी—

गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो न किंचिदप्राप्यतमं गुणानाम् ।
गुण प्रकर्षादुडुपेन शम्भोरलङ्घ्यमुल्लङ्घितमुत्तमाङ्गम् ॥२३॥

अन्वय.—पुरुषेण, गुणेषु, यत्नः, कार्यः, गुणाना, किंचित्, अपि, अप्राप्यतम, न, (अस्ति); उडुपेन, गुणप्रकर्षात्, अलङ्घ्यम्, शम्भोः, उत्तमाङ्गम् लङ्घितम् ॥२३॥

पदार्थ.—पुरुषेण=मनुष्य के द्वारा, गुणेषु=गुणो मे, यत्नः=उपाय, कार्यः=करना चाहिये, किञ्चित्=कुछ, अप्राप्यतमम्=दुर्लभ, उडुपेन=चन्द्रमा के द्वारा, गुणप्रकर्षात्=गुणो की महत्ता के कारण, अलङ्घ्यम्=न लांघने योग्य, उत्तमाङ्गम्=शिर को, लङ्घितम्=लांघ लिया ।

अनुवाद:—मनुष्य के द्वारा गुणो के विषय मे प्रयास किया जाना चाहिये, गुणो से कुछ भी दुर्लभ नही है । चन्द्रमा ने गुणो की महिमा से दुष्प्राप्य शिव के शिर को प्राप्त कर लिया ।

संस्कृत टीका—पुरुषेण=मनुष्येण, गुणेषु=दयादाक्षिण्येषु, यत्न=प्रयास, कार्यः=कर्तव्यः, गुणानाम्=दयादाक्षिण्यादीनाम्, किञ्चित्, अपि, अप्राप्यतमम्=दुर्लभम्, न, उडुपेन=चन्द्रमसा, गुणप्रकर्षात्=गुणाधिक्यात्, अलङ्घ्यम=दुर्लभम्, शम्भोः=शङ्करस्य, उत्तमाङ्गम्=शिरः, लङ्घितम्=अधिगतम् ।

समास एवं व्याकरण-(१) गुण०—गुणानाम् प्रकर्षः तस्मात् । (२) उडुपेन-उडु+प+क+तृतीया । उडूनि पाति इति उडुपः तेन ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे गुणो की अधिकता के कारण चन्द्रमा के द्वारा शिव-मस्तक की प्राप्ति हुई इससे गुणशाली पुरुष की क्षमता का समर्थन होने से अर्थान्तर न्यास अलङ्कार है । (२) उपेन्द्रवज्रा छन्द है ।

वसन्तसेना—कोऽत्र प्रवहणिक । [को एत्थ पवहणिओ ।]

वसन्तसेना—यहाँ रथवाहक कौन है ?

(प्रविश्य सप्रवहणः ।)

(रथ सहित प्रवेश कर)

चेटः—आर्ये, सज्ज प्रवहणम् । [अज्जए, सज्ज पवहणम् ।]

चेट—आर्ये ! रथ तैयार है ।

वसन्तसेना—चेटि मदनिके, सुदृष्टां मा कुरु । दत्तासि । आरोह प्रवहणम् । स्मरसि माम् । [हञ्जे मदणिए, सुदिट्ठं म करेहि । दिण्णासि । आरुह पवहणम् । सुमरेसि मम् ।]

वसन्तसेना—अरी मदनिके ! मुझे अच्छी तरह देख ले । तुम (शर्विलक को) दे दी गई हो । रथ पर चढो ! मुझे स्मरण रखना !

मदनिका—(रुदती ।) परित्यक्तास्म्यार्यया । [परिच्चत्तह्मि अज्जआए ।]

(इति पादयो पतति ।)

मदनिका—(रोती हुई) आपने मुझे छोड दिया । (ऐसा कह कर पैरो पर गिर पड़ती है ।)

वसन्तसेना—साप्रत त्वमेव वन्दनीया सवृत्ता । तद्गच्छ । आरोह प्रवहणम् । स्मरसि माम् । [सपद तुम ज्जेव वन्दणीआ सवुत्ता । ता गच्छ । आरुह पवहणम् । सुमरेसि मम् ।]

वसन्तसेना—अब तो तुम्ही पूजनीय हो गई हो । अत जाओ, रथ पर सवार होओ । मुझे । याद रखना ।

विवृति

(१) प्रवहणिक=गाडीवान् । प्रोह्यते भार अनेनेति प्रवहणम्, प्रवहणम् वहतीति प्रवहणिक, प्रवहण+ठक्+इक् । (२) सुदृष्टाम्=भली प्रकार देखी हुई । सु+दृश्+टाप् । (३) त्वमेव वन्दनीया=तुम्हीं प्रणम्य हो । (४) दत्ता=दी गई । दा+क्त+टाप् । (५) वन्दनीया—वन्द्+अनीयर+टाप् । (६) सुदृष्टाम् मे यह भाव है कि मुझे अच्छी तरह से देख लो जिससे मेरी स्मृति तुम्हारे हृदय मे बस जाये और तुम मुझे विस्मृत न कर सको । इससे वसन्तसेना का मदनिका के प्रति गाढ स्नेह व्यञ्जित होता है ।

शर्विलक—स्वस्ति भवत्यै । मदनिके

शर्विलक—आपका कल्याण हो ! मदनिके ।

सुदृष्टः क्रियतामेष शिरसा वन्द्यता जन ।
यत्र ते दुर्लभ प्राप्त वधूशब्दावगुण्ठनम् ॥२४॥

अन्वय.—एष, जन., सुदृष्ट, क्रियताम्, (तथा), शिरसा, वन्द्यता, यत्र, ते, दुर्लभ, वधूशब्दावगुण्ठन, प्राप्तम् ॥२४॥

पदार्थ—एषः=यह, जनः=मनुष्य, सुदृष्टः=भली प्रकार देखा गया, क्रियताम्=किया जाय, शिरसा=शिर से, वन्द्यताम्=प्रणाम किया जाय, यत्र=जिसके कारण, ते=तुम्हे, दुर्लभम्=दुर्लभ, वधूशब्दावगुण्ठनम्='बहू' शब्द रूप घूंघट मे रहने वाली बहू (दुलहिन) प्राप्तम्=प्राप्त हुआ ।

अनुवाद:—इस जन (वसन्तसेना) का भली-भांति दर्शन कर (अवनत) मस्तक से प्रणाम करो ! जिन (की कृपा) से तुमने दुर्लभ बहू शब्द रूप घूंघट पाया है ।

सस्कृत टीका—एषः पुरोवर्ती, जनः=वसन्तसेनारूप, सुदृष्टः=आदरेणावलोकित, क्रियताम्=विधीयताम्, शिरसा=मस्तकेन, वन्द्यता=प्रणम्यताम्, यत्र=यस्मिन् जने, ते=तव, दुर्लभम्=दुष्प्रापम्, वधूशब्दावगुण्ठनम्='वधू' शब्दवाच्य-

त्वरूपावरणम्, प्राप्तम्=उपलब्धम् ।

समास एवं व्याकरण—(१) वधू०—वधू शब्द एव अवगुण्ठनम् । (२) सुदृष्टः—सु+दृश्+क्त । वधूः—उह्यते पितृगेहात् पतिगृहम् वह्+ऊधुक् । अवगुण्ठनम्—अव+गुण्ठ्+ल्युट् ।

विवृति

(१) वधू शब्द०— व्याख्याकारों ने इसके अनेक अर्थ किये हैं—(i) वधूशब्दस्य अवगुण्ठनम्, अर्थात् वधू के योग्य वेश या पर्दा । (ii) वधूशब्दश्च अवगुण्ठनं च । अर्थात् 'वधू' नाम और पर्दा (क्योंकि वधू ही परपुरुषों द्वारा न देखने योग्य होती है)। (iii) वधूशब्दरूपमवगुण्ठनमावरणम् । केनाप्यनवलोकनत्वरूपमित्यर्थ. (काले)। (दे० स० व्याख्या तथा अनुवाद) । (२) 'अवगुण्ठनसंवीता कुलजाभिसरेद्यदि-सा० द० । 'कृतशीर्षावगुण्ठनः ।' मुद्रा० ६, ३ । (३) भाव यह है कि अब तुम वसन्तसेना की कृपा से विवाहित हो जाने पर वेश्या न रह कर 'वधू' इस पवित्र नाम से विभूषित हो गई हो । (४) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध में आये हुये वाक्यार्थ के प्रति उत्तरार्द्ध के वाक्यार्थ के हेतु होने से यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । (५) प्रयुक्त छन्द का नाम है—पथ्यावक्त्र । लक्षण "युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र—प्रकीर्तितम् ।" (६) कुछ टीकाकारों ने आर्या छन्द कहा है । (७) यहाँ पर उपदेशनम् नामक नाट्यालङ्कार है—'शिक्षा स्यादुपदेशनम् ।'

(इति मदनिकया सह प्रवहणमारुह्य गन्तुं प्रवृत्तः ।)

(ऐसा कह कर 'मदनिका' के साथ रथ पर चढ कर जाने लगता है ।)

(नेपथ्ये ।)

(नेपथ्य में)

कः कोऽत्र भोः । राष्ट्रियः समाज्ञापयति—एष खल्वार्यको गोपालदारको राजा भविष्यतीति सिद्धादेशप्रत्ययपरित्रस्तेन पालकेन राज्ञा घोषादानीय घोरे बन्धनागारे बद्धः ततः स्वेषु स्वेषु स्थानेष्वप्रमत्तैर्भवद्भिर्भवितव्यम्' ।

अरे ! यहाँ कौन–कौन है ! कोतवाल साहब आज्ञा देते हैं-"यह अहीर का पुत्र 'आर्यक राजा होगा" इस सिद्धवचन (भविष्यवाणी) में विश्वास कर डरे हुए राजा 'पालक' ने उसे 'घोष' (अहीरों की बस्ती) में लाकर कठोर कारागार में बाँध कर डाल दिया है । अतः अपने-अपने स्थानों पर आप सब (पहरेदारों) को सतर्क हो जाना चाहिए ।

विवृति

(१) राष्ट्रियः=राज्याधिकारी, राजा का साला । राष्ट्रे अधिकृतः राष्ट्रियः, राष्ट्र+(इयादेश) : 'राजश्यालस्तु राष्ट्रियः', इत्यमरः । (२) गोपालदारक—

अहीर का पुत्र । (३) सिद्धादेशप्रत्ययपरित्रस्तेन—सिद्ध पुरुष की भविष्यवाणी के विश्वास से भयभीत । (४) घोषात्=अहीरो का घर, बस्ती । (५) घोर=कठोर । (६) 'घोष आभीरपल्लीस्याद् ।' इत्यमर । (७) अप्रमत्तो =सावधान । (८) बन्धनागारे=जेल मे, । (९) यहाँ पर इस गद्यांश मे चूलिका नामक अर्थोपक्षेक है । 'अन्तर्जवनिकासस्थै सूचनार्थस्य चूलिका ।'

शर्विलक.— (आकर्ण्य ।) कथ राज्ञा पालकेन प्रियसुहृदार्यको मे बद्ध । कलत्रवाश्चास्मि सवृत्त । आ., कष्टम् । अथवा

शर्विलक— (सुनकर) क्या 'राजा पालक' ने मेरा प्रिय मित्र 'आर्यक' को बाँध लिया ? (मैं) स्त्री-वाला हो गया हूँ । हाय ! कष्ट है ! अथवा—

द्वयमिदमतीव लोके प्रिय नराणा सुहृच्च वनिता च ।
सप्रति तु सुन्दरीणा शतादपि सुहृद्विशिष्ट तम ॥ २५ ॥

अन्वय– लोके, सुहृद्, वनिता च, इद, द्वय, *नराणाम्, अतीव,* प्रिय, तु, सम्प्रति, सुन्दरीणा, शतात्, अपि, सुहृद्, विशिष्टतम (अस्ति) ॥ २५ ॥

पदार्थ– लोके=ससार म, सुहृद्=मित्र, वनिता=स्त्री च=और, इदम्=यह, द्वयम्=जोडी, नराणाम्=मनुष्यो की, अतीव=बहुत, प्रियम्=प्रिय, तु=किन्तु, सम्प्रति=अब, सुन्दरीणाम्=सुन्दर स्त्रियो मे, शतात्=सौ से अपि=भी, सुहृद्=मित्र, विशिष्टतम =श्रेष्ठतम (अस्ति=है) ॥

अनुवाद– ससार म मित्र और स्त्री–ये दोनो मनुष्यो के अत्यन्त प्रिय हैं, किन्तु इस समय सैकडो सुन्दरियो स भी मित्र अधिक श्रेष्ठ है।

सस्कृत टीका– लोके=ससारे, सुहृद्=मित्रम, वनिता=स्त्री, च, इदम्=एतत्, द्वयम्=उभयम, नराणाम्=जनानाम्, अतीव=अत्यन्तम्, प्रियम्=प्रीतिकरम्, तु=किन्तु, सम्प्रति=अधुना, सुन्दरीणाम=रमणीनाम्, शतात्=शतसख्याया, अपि, सुहृद्, विशिष्टतम.=श्रेष्ठतम (अस्ति) ।

समास एव व्याकरण– (१) सुहृद्– शोभनम् हृदयम् अस्य इति । (२) सुहृद् सु+हृत्+क्विप् (हृदय का हृत् आदेश) । वनिता—वन्+क्त+टाप् । विशिष्टतम =विशिष्ट+तमप्, यहाँ विशिष्टतर अधिक उचित प्रतीत होता है ।

विवृति

(१) वनितेति वदन्तेताम् लोका सर्वे वदन्तु त । यूनां परिणतासेव तपस्येति मत मम ।' भामिनी० ॥ (२) यहाँ आश्रय नामक नाट्यालङ्कार है— 'गृहण गुणवत् कार्यं हवोराश्रयोच्यते ।' (३) आर्या छन्द है । (४) पद्य म शर्विलक की अत्यन्त उदारता का वर्णन है परन्तु मित्र का मित्र के लिए सुन्दर प्रस्तुतीकरण है । (५) प्रस्तुत पद्य म तुल्ययोगिता और व्यतिरेक अलङ्कार हैं । यहाँ पर तापन नामक प्रतिमुख

सन्धि का अङ्ग है । 'उपायदर्शनम् यत्तु तापनम् नामतद् भवेत् ।'

मवतु । अवतरामि । (इत्यवतरति ।)

अच्छा, उतरता हूँ । (उतर जाता है ।)

मदनिका– (सास्रमञ्जलिं बद्ध्वा ।) एव नेदम् । तत्पर नयतु मामार्यपुत्र समीप गुरुजनानाम् ।

[एव्व णेदम् । ता पर णेदु म अज्जउत्तो समीव गुरुअणाणम् ।]

मदनिका– (आँखो में आँसू भरकर, हाथ जोड़कर) यह ऐसा ही हो । तो आयपुत्र (पतिदेव) मुझे शीघ्र गुरुजनो के समीप पहुचा दें ।

शर्विलक – साधु प्रिये, साधु । अस्मच्चित्तसदृशमभिहितम् । (चेटमुद्दिश्य ।) भद्र, जानीषे रेभिलस्य सार्थवाहस्योदवसितम् ।

शर्विलक– वाह ! प्रिये, वाह !! हमारे मन के अनुकूल ही (तुमने) कहा । चेट को लक्ष्य कर) सोम्य ! सार्थवाह 'रेभिल' का घर जानते हो ?

चेट — अथ किम् । [अध इ ।]

चेट— और क्या ?

शर्विलक – तत्र प्रापय प्रियाम् ।

शर्विलक– वहाँ प्रियतमा ('मदनिका') को पहुँचा दो ।

चेट – यदार्य आज्ञापयति । [ज अज्जा आणवेदि ।]

चेट– जो आर्य आज्ञा देते हैं ।

मदनिका– यथार्यपुत्रो भणति, अप्रमत्तेन तावदार्यपुत्रेण भवतिव्यम् ।

[जधा अज्जउत्तो भणादि, अप्पमत्तेण दाव अज्जउत्तेण होदव्वम् ।]

(इति निष्क्रान्ता ।)

मदनिका– जैसा आर्यपुत्र कहते हैं । तब आर्यपुत्र (आप) को भी सावधान रहना चाहिए । (निकल जाती है ।)

विवृति

(१) सास्रम्– आँसुओ के सहित । (२) गुरुजनानाम्=बड़े बूढ़ो के । (३) तत्परम्=तो पहले । (४) अस्मच्चितसदृशम्=हमारे मन के अनुकूल । (५) उद्वसितम्=घर को । 'गृहम् गेहोद्वसितम् वेश्मसद्म निकेतनम् ।' (६) मदनिका का निवेदन एक गृहिणी के योग्य है । वह अब वेश्या वसन्तसेना के पास नहीं जाना चाहती ।

शर्विलक – अहमिदानी

शर्विलक– अब मैं—

ज्ञातीन्विटान् स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्

राजापमानकुपिताश्च नरेन्द्रभृत्यान् ।

उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय
यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः ॥ २६ ॥

अन्वयः– उदयनस्य, राज्ञः, यौगन्धरायणः, इव, सुहृदः, परिमोक्षणाय, ज्ञातीन्, विटान्, स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्, राजापमानकुपितान्, नरेन्द्रभृत्यान् च, उत्तेजयामि ॥२६॥

पदार्थ – उदयनस्य=उदयन नाम के, राज्ञः=राजा को, यौगन्धरायणः=यौगन्धरायण (की), इव=तरह, सुहृदः=मित्र के, परिमोक्षणाय=छुड़ाने के लिये, ज्ञातीन्=पालक के सम्बन्धियों को, विटान्=विटों को, स्वभुज०=अपनी भुजा के पराक्रम से यश या स्तुति पाने वालों को, राजा०=राजा के द्वारा किये गये अपमान से क्रुद्ध, नरेन्द्रभृत्यान्=राजा के सेवकों या राजकर्मचारियों को।

अनुवादः– उदयन नामक राजा के मित्र यौगन्धरायण की भाँति, (आर्यक) को छुड़ाने के लिए, बन्धुओं, विटों, अपने बाहुबल से यश प्राप्त करने वालों, राजा के (द्वारा किये गये) अपमान से क्रोधित हुए लोगों एवं राज-सेवकों को उत्तेजित करता हूँ।

संस्कृत टीका– उदयनस्य=उदयननाम्ना प्रसिद्धस्य, राज्ञः=वत्सराजस्येत्यर्थः, यौगन्धरायणः=एतन्नामक प्रधानामात्य, इव, सुहृदः=मित्रस्य (आर्यकस्य), परिमोक्षणाय=कारावासाद्विमोचनाय, ज्ञातीन्=बान्धवान्, विटान्=धूर्तपुरुषान्, स्वभुज०विक्रमलब्धवर्णान्=स्वबाहुपराक्रमप्राप्तयशसः, राजापमानकुपितान्=नृपतिरस्कारविक्षुभितान्, नरेन्द्रभृत्यान्=राजसेवकान्, च, उत्तेजयामि=राज्ञो विरुद्धत्वेन प्रोत्साहयामि।

समास एवं व्याकरण– (१) स्वभुज०– स्वभुजविक्रमेण लब्धः वर्णः यैस्ते तथोक्तास्तान्। राजा०– राज्ञः अपमानेन कुपितान्। नरेन्द्रभृत्यान्– नरेन्द्रस्य भृत्यान्। (२) उत्तेजयामि उत्+तिज्+णिच्+लट्। कुपितान्– कुप्+क्त। परिमोक्षणाय– परि+मोक्ष्+ल्युट्। ज्ञातीन्– ज्ञा+क्तिन्– न्+तक्+वप्।

विवृति

(१) कथासरित्सागर के अनुसार उज्जयिनीपति महाराज चन्द्रसेन ने वत्सराज उदयन को कारागार में डाल दिया था। तब उदयन के चतुर मन्त्री यौगन्धरायण ने प्रयत्न करके वत्सराज को कारागार से मुक्त कर लिया था। उदयन की कथा भासकृत प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् तथा स्वप्नवासवदत्तं में विस्तार से वर्णित है। (२) 'सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धु स्वस्वजनाः' इत्यमरः। कामन्दक नीति बतलाती है कि राजा के सम्बन्धी उसके 'सहजशत्रु' होते हैं। (३) 'वर्णो द्विजादौ शुक्लादौ' इत्यमरः। (४) प्रस्तुत पद्य में तुल्ययोगिता अलङ्कार है। (५) श्रौती उपमालङ्कार भी है। (६) वसन्ततिलका छन्द है। छन्द का लक्षण– उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ

गः ।' (७) 'कुप्यन्ति हितवादिने ।' का० । 'चुकोपतस्मै सभृशम्' । रघु० ।

अपि च ।

और भी—

प्रियसुहृदमकारणे गृहीतं
रिपुभिरसाधुभिराहितात्मशङ्कैः ।
सरभसमभिपत्य मोचयामि
स्थितमिव राहुमुखे शशाङ्कविम्बम् ॥ २७ ॥

अन्वयः– अकारणे, आहितात्मशङ्कैः, असाधुभिः, रिपुभिः, गृहीत, राहुमुखे, शशाङ्कबिम्बम्, इव, स्थित, प्रियसुहृदं, सरभसम्, अभिपत्य, मोचयामि ॥ २७ ॥

पदार्थः– अकारणे=कारण के न होने पर, आहितात्मशङ्कैः=मन मे सन्देह या भय करने वाले, असाधुभिः=दुष्ट, रिपुभिः=शत्रुओं के द्वारा, गृहीतम्=पकडे गये, राहुमुखे=राहु के मुख मे, शशाङ्कबिम्बम्=चन्द्र-मण्डल के, इव=समान, स्थितम्=वर्तमान, प्रिय सुहृदम्=प्रियमित्र को, सरभसम्=वेगपूर्वक, अभिपत्य=हमला बोलकर, मोचयामि=छुडाता हूँ ।

अनुवादः– बिना कारण अपने मन मे शङ्का करने वाले दुष्ट शत्रुओ के द्वारा पकडे हुए एव राहु के मुख म चद्रमण्डल के समान स्थित प्रियमित्र को अचानक आक्रमण कर छुड़ाता हूँ ।

संस्कृत टीका– अकारणे=कारणाभावे, आहितात्मशङ्कैः=कृतमनस्सन्देहैः असाधुभि.=असज्जनैं, रिपुभि.=पालकादिशत्रुभि, गृहीतम्=कारागारे बद्धम्, राहुमुखे=राहो. तदाख्यराक्षसस्याननें, शशाङ्कबिम्बम्=चन्द्रमण्डलम्, इव=यथा, स्थितम्=वर्तमानम्, प्रियसुहृदम्=प्रियमित्रम्, सरभसम्=सवेगम्, अभिपत्य=आक्रम्य, मोचयामि=कारागारात् मुक्त करोमि ।

समास एवं व्याकरण– (१) आहिता०– आहिता आत्मनि शङ्का यैस्तैः । शशाङ्कबिम्बम्– शशाङ्कस्य बिम्बम् । राहुमुखे=राहो. मुखे । (२) गृहीतम्–गृह्+क्त । स्थितम्–स्था+क्त । अभिपत्य–अभि+पत्+क्त्वा (ल्यप्) । मोचयामि–मुच्+णिच्+लट् ।

विवृति

(१) पद्य मे उपमालङ्कार है । (२) पुष्पिताग्रा छन्द है । (३) 'राहु के मुख मे स्थित चन्द्रबिम्ब की भाँति अरि द्वारा गृहीत मित्र को यह उपमा है । (४) 'अयुजि नयुग रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।"

(इति निष्क्रान्तः ।)

(निकल जाता है ।)

(प्रविश्य ।)

(प्रवेश कर)

चेट – आर्ये, दिष्ट्या वर्धसे । आर्य चारुदत्तस्य सकाशाद्ब्राह्मण आगत. । [अज्जए, दिट्ठिआ वड्डसि । अज्जचारुदत्तस्स सआसादो बह्मणो आसदो ।]

चेट– आर्ये ! सौभाग्य से बढ़ रही हो (अर्थात् शुभ समाचार है ।) 'आर्य चारुदत्त' के पास से ब्राह्मण आया है ।

वसन्तसेना– अहो, रमणीयताद्य दिवसस्य । तच्चेटि, सादर बन्धुलेन समं प्रवेशयैनम् । [अहो, रमणीअदा अज्ज दिवसस्स । ता हञ्जे, सादर बन्धुलेण समं पवेसेहि णम् ।

वसन्तसेना– अहा ! आज का दिन कितना मनोरम है ! तो चेटी ! आदर-पूर्वक 'बन्धुल' के साथ उसे बुला लाओ !

चेटी– यदार्याज्ञापयति । [ज अज्जआ आणवेदि ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

चेटी– जो आर्या आज्ञा देती हैं । (निकल जाती है ।)

(विदूषको बन्धुलेन सह प्रविशति ।)

('विदूषक' 'बन्धुल' के साथ प्रवेश करता है ।)

विदूषक –आश्चर्य भो, तपश्चरणक्लेशविनिर्जितेन राक्षसराजो रावण पुष्पकेण विमानेन गच्छति । अहं पुनर्ब्राह्मणोऽकृततपश्चरणक्लेशोऽपि नरनारी जनेन गच्छामि । [ही ही भो, तवच्चरणकिलेसविणिज्जिदेण रक्खसराआ रावणो पुप्फकेण विमाणेण गच्छदि । अहं उण बह्मणो अकिदतवच्चरणकिलेसो वि णरणारीजणेण गच्छामि ।]

विदूषक– अरे ! आश्चर्य है ! घोर तपस्या के कष्ट से विजित राक्षसराज 'रावण' 'पुष्पक' विमान से जाया करता था । किन्तु मैं ब्राह्मण बिना तपस्या के क्लेश के ही नर ('बन्धुल') और नारी (चेटी') (या- 'वसन्तसेना' के परिजनों) के साथ जा रहा हूँ ।

चेटी– प्रेक्षतामार्योऽस्मदीयं गेहद्वारम् । [पेक्खदु अज्जो अह्म केरकं गेहदुआरम् ।

चेटी— आर्य ! हमारे घर के दरवाजे को देखिए ।

विदूषक — अहो सलिलसिक्तमार्जितकृतहरितोपलेपनस्य विविधसुगन्धिकुसुमोपहारचित्रलिखित भूमिभागस्य गगनतलावलोकनकौतूहलदूरोन्नामितशीर्षस्य दोलायमानावलम्बितैरावणहस्तभ्रमागतमल्लिकादामगुणालङ्कृतस्य समुच्छ्रितदन्तिदन्ततोरणावभासितस्य महारत्नोपरागोपशोभिना पवनबलान्दोलनाललच्चञ्चलाग्रहस्तेन 'इत एहि' इतिव्याहरतेव मां सौभाग्यपताकानिवहेनोपशोभितस्य तोरणधरणस्तम्भवेदिकानिक्षिप्तसमुल्लसद्धरितचूतपल्लवललामस्फटिकमङ्गलकलशाभिरामोभयपार्श्वस्य महासुरवक्षःस्थलदुर्भेद्यवज्रनिरन्तर प्रतिबद्धकनककपाटस्य दुर्गतजनमनोरथायासकरस्य वसन्त-

सेनाभवनद्वारस्य सश्रीकता यत्सत्यं मध्यस्थस्यापि जनस्य बलाद्दृष्टिमाकारयति।
[(अवलोक्य सविस्मयम्।) अहो सलिलसित्तमज्जिदकिदहरिदोवलेवणस्स विविहसुअन्धिकुसुमोवहारचित्तलिहिदभूमिभाअस्स गअणतलाअलोअण—कोदूहल दूरुण्णामिदसीसस्स दोलाअमाणावलम्बिदेरावणहत्थब्भमाइदमल्लिआदामगुणालंकिदस्स समुच्छिददन्तिदन्ततोरणावभासिदस्स महारअणोवराओवसोहिणा पवणवलन्दोलणाललन्तचञ्चलग्गहत्थेण 'इदो एहि' त्ति बाहरन्तेण विअ मं साहग्गपडाअणिवहेणोवसोहिदस्स तोरणधरणत्थम्भवेदिअणिक्खित्तसमुल्लन्तहरिदचूदपल्लवललामफटिहमङ्गलकलसाभिरामोहअपासस्स महासुरवक्खत्थलदुब्भेज्जवज्जणिरन्तरपडिवद्धकणअकवाडस्स दुग्गदजणमणोरहाआसकरस्स वसन्तसेणाभवणदुआरस्स सस्सिरीअदा। जं सच्चं मज्झत्थस्स वि जणस्स बलादिट्ठिं आआरेदि।]

विदूषक— (देखकर आश्चर्य के साथ) आह! जल का छिड़काव कर, झाड़ू लगाकर हरे रंग से लीपा गया है, विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पों को सजाने से जमीन चित्रित— सी प्रतीत हो रही है, आकाश को देखने की उत्कण्ठा से मानों अपना शिर (ऊपरी भाग) ऊँचा कर रहा है, चञ्चल, लटकती हुई 'ऐरावत' हाथी के सूँड़ का भ्रम कराने वाली 'चमेली' की मालाओं से सुशोभित है, अत्युन्नत हाथी दाँतों के तोरणों से शोभित, महान् मणियों की लालिमा से सुन्दर लगने वाले, हवा के झोंको से अञ्चल के चञ्चल छोरों से 'यहाँ आइये।' इस प्रकार मुझे पुकारती हुई— सी, सौभाग्य सूचक पताका-पंक्तियों से सुशोभित, तोरण बाँधने के लिए खम्भों की चौकियों पर रक्खे, सुन्दर हरे-हरे आम के पल्लवों से सज्जित, स्फटिक–मणि–निर्मित (दरवाजे के) दोनों ओर रक्खे मङ्गल कलश से विलसित, 'हिरण्यकशिपु' की छाती के समान फाड़ने में मुश्किल, स्वर्ण जटित किवाडों वाले, निर्धन मनुष्यों के मनोरथ के लिए पीड़ादायक, 'वसन्तसेना' के महल के दरवाजे की शोभा, सचमुच निस्पृह मनुष्य की दृष्टि भी हठात् आकर्षित हो जाती है।

विवृति

(१) बन्धुलेन=कुलटा–पुत्र। 'बन्धुलस्तु असतीसुत' इत्यमर। अनायासेन बन्धुम् लातीति बन्धुल। बन्धु+ला+क। (२) विदूषक =मैत्रेय। (३) सह= साथ (४) तपश्चरणक्लेशविनिर्जितेन=तपस्या के कष्टों से प्राप्त। तपस्याया क्लेशेन विनिर्जित, तेन। (५) विमानेन=हवाई जहाज से, विशेषेण मान्ति अस्मिन्निति। अथवा विगत मानमस्यति विमान, 'व्योमयानं विमानोऽस्त्री' इत्यमर। (६) अकृततपश्चरणक्लेश =जिसने तपस्या का कष्ट नहीं उठाया है। 'न कृत तपश्चरणक्लेश येन स। (७) नरनारी—जनेन=वेश्याजनों के साथ। (८) षष्ठ्यन्त पद भवन द्वारस्य के विशेषण है और तृतीयान्त पद पताका निवहेन के विशेषण हैं। (९) सलिलसिक्तमार्जितकृतहरितोपलेपनस्य=जल छिड़क कर, झाड़ू लगाकर हरे रंग से लिपे हुए। पूर्वम् सलिलेन सिक्तम् तत मार्जितम् तत कृतं हरितेन उपलेपनम् यत्र तादृ-

यस्य । (१०) विविध सुगन्धि०=नाना प्रकार के सुगन्धित फूलो के चढाने से जिसका भूभाग चित्रित सा हो रहा है। विविधानाम् सुगन्धीनाम् कुसुमानाम् उपहारैः चित्रलिखित इव भूमिभाग यस्य तस्य। उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथो पदा।' इत्यमरः। (११) गगनतल०=आकाश को देखने के लिए उत्सुकता के कारण बहुत ऊँचाई तक सिर उठाने वाले। गगनतलस्य अवलोकनाय यत् कौतूहलम् तेन दूरम् उन्नामितम् शीर्षम् येन तस्य। (१२) दोलायमान०=जो हिलती हुई, लटकी हुई और ऐरावत हाथी की सूंड का भ्रम उत्पन्न करने वाली मल्लिका फूल की माला से सजा हुआ है। दोलायमानः अवनमितः ऐरावणहस्त भ्रमागत मल्लिकादामगुण तेन अलङ्कृतस्य। (१३) समुच्छ्रित०=बहुत ऊँचे हाथी दांत के बन तोरणो से विभूषित। समुच्छ्रितेन दन्तिदन्ततोरणेन अवभासितस्य। (१४) महारत्नो०=श्रेष्ठ रत्नो की आभा से सुन्दर लगने वाले। महारत्नानाम उपरागेण उपशोभित इति तेन (१५) पवनबल०=वायु के झोको से हिलने के कारण कम्पायमान तथा चञ्चल अग्रभाग रूपी हाथ से। पवनबलेन या आन्दोलन तया ललत् चञ्चलमग्रमेव हस्त तेन। (१६) व्याहरता=बुलाते हुए। एहि=आओ। (१७) सौभाग्यपताका०=शुभसूचकपताकाओ के समूह से। सौभाग्यपताकानाम् निवहेन। (१८) उपशोभितस्य=सुशोभित। (१९) तोरणधरण०=तोरण को धारण करने के लिए बनाये गये खम्भो की वेदिकाओ पर रक्खे हुए सुन्दर हरे आम के पल्लवो से सुशोभित तथा स्फटिक मणि के बने हुए मङ्गलघटो से अलकृत दोनो बगल वाले। (२०) महासुर०=महान् असुर हिरण्यकशिपु के वक्ष स्थल के समान फाडने मे कठिन तथा हीरा से घने रूप से जडे हुए सोने के किवाडो वाले। महासुरस्य वक्षःस्थलम् इव दुर्भेद्यम् वज्रं निरन्तरम् यथा तथा प्रतिबद्धम् कनककपाटम् यस्य तथाभूतस्य। (२१) तोरण०—तोरण धरणाय ये स्तम्भा तेषाम् वेदिका तासु निक्षिप्ता समुल्लसन्त हरिता ये चूतपल्लवा तै ललामानाम् स्फटिकानाम् निर्मिताः य मङ्गलकलशाः तै अभिरामम् उभयपार्श्वम् यस्य तथा भूतस्य। (२२) दुर्गत जन०—निर्धनमनुष्यो के मन की इच्छाओ को पीडा देने वाले। दुर्गतानाम् ये मनोरथा तेषाम् आयासकरस्य। (२३) वसन्तसेना०—वसन्तसेना के भवन के दरवाजे की। वसन्तसेनाया भवनस्य द्वारस्य। (२४) सश्रीकता—सौन्दर्य। श्रिया सहित सश्रीकम् तस्य भावः। सश्रीक+तल्+टाप्। (२५) मध्यस्थस्य—उदासीन की। (२६) आकारयति=खीचता है।

चेटी—एत्वेतु। इम प्रथम प्रकोष्ठ प्रविशत्वाय। [एदु एदु। इम पढम पओट्ठ पविसदु अज्जो।]

चेटी—आइए! आइए इस पहले खण्ड मे आर्य प्रवेश करें।

विदूषक—(प्रविश्यावलोक्य च।) आश्चर्य भो, अत्रापि प्रथम प्रकोष्ठे शशि-

शङ्खमृणालसच्छाया विनिहितचूर्णमुष्टिपाण्डुरा विविधरत्नप्रतिबद्धकाञ्चनसोपानशोभित. प्रासादपङ्क्तयोऽवलम्बितमुक्तादामभि स्फटिकवातायनमुखचन्द्रैर्निध्यायन्तीवोज्जयिनीम् । श्रोत्रिय इव सुखोपविष्टो निद्राति दौवारिकः । सदध्ना कलमोदनेन प्रलोभिता न भक्षयन्ति वायसा बलिं सुधासवर्णतया । आदिशतु भवती । [ही ही भो, इधा वि पढम पओट्ठे ससिसङ्खमुणालसच्छाहाओ विणिहिदचुण्णमुट्ठि पाण्डुराओ विविहरअणपडिबद्ध कञ्चणसोवाण सोहिदाओ पासादपन्तिओ ओलम्बिद मुत्तादामेहिं फटिहवादाअणमुहचन्देहिं णिज्झाअन्ती विअ उज्जइणिम् । सोत्तिओ विअ सुहोवविट्ठो णिद्दाअदि दोवारिओ । सदहिणा कलमोदणेण पलोहिदा ण भक्खन्ति वायसा बलिं सुधासवण्णदाए । आदिसदु भोदी ।]

विदूषक–(प्रवेश कर और देखकर) अरे ! आश्चर्य है । यहाँ पहले खण्ड में भी चन्द्रमा, शङ्ख और कमलनाल के समान स्वच्छ कान्ति वाली, भली प्रकार (शोभावर्धक) चूर्ण (पाउडर आदि) लगी हुई मुट्ठी से सफेद, अनेक प्रकार की रत्नजटित स्वर्णमयी सीढियों से सुशोभित, महलों की कतारें, लटकने वाली मोतियों की मालाओं से युक्त स्फटिक–निर्मित–झरोखों रूपी अनेक मुख-चन्द्रों से मानो 'उज्जयिनी' को ध्यान से देख रही है । वेदपाठी की भाँति सुखपूर्वक बैठा हुआ द्वारपाल ऊँघ रहा है । दहीयुक्त जड़हन (अगहनी धान) के भात से ललचाये गये कौवे बलि को चूने के समान सफेद रङ्ग का होने से, नहीं खा रहे हैं । आप निर्देश कीजिये ।

चेटी—एत्वेत्वार्य । इम द्वितीय प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्य । [एदु एदु अज्जो । इमं दुदिअं पओट्ठं पविसदु अज्जो ।]

चेटी—आर्य ! आइये, आइये ! इस दूसरे खण्ड में आर्य प्रवेश करें ।

विदूषक—(प्रविश्यावलोक्य च ।) आश्चर्यं भोः, इहापि द्वितीये प्रकोष्ठे पर्यन्तोपनीतयवसबुसकवलसुपुष्टास्तैलाभ्यक्तविषाणा बद्धा प्रवहणबलीवर्दाः । अयमन्यतरोऽवमानित इव कुलीनो दीर्घं निःश्वसिति सैरिभः । इतश्चापनीतयुद्धस्य मल्लस्येव मर्द्यते ग्रीवा मेषस्य । इत इतोऽपरेषामश्वानां केशकल्पना क्रियते । अयमपरः पाटच्चर इव दृढबद्धो मन्दुरायां शाखामृगः । (अन्यतोऽवलोक्य च) इतश्चकूरच्युततैलमिश्रं पिण्डं हस्ती प्रतिग्राह्यते मात्रपुरुषैः । आदिशतु भवती । [ही ही भो, इदो विदुदिए पओट्ठे पज्जन्तोवणीदजवसबुसकवलसुपुट्ठातेल्लब्भङ्गिदविसाणा बद्धा पवहणबइल्ला । अअं अण्णदरो अवमाणिदो विअ कुलीणो दीहं णीससदि सेरिहो । इदो इदो अवराणं अस्साणं केसकप्पणा करीअदि । अअं अवरो पाडच्चरो विअ दिढबद्धो मन्दुराए साहामिओ । इदाअ कूरच्चुअतेल्लमिस्सं पिण्डं हत्थी पडिच्छावीअदि मेत्तपुरिसेहिं । आदिसदु भोदी ।]

विदूषक-(प्रवेश कर और देखकर) अरे ! आश्चर्य ! इस दूसरे खण्ड में भी सामने पड़ी हुई घास एवं भूसा खा-खाकर मोटे-ताजे तथा तेल से चिकने सींगों वाले

रथ के बैल बंधे हैं। यह भैंसा अपमानित कुलीन (व्यक्ति) की भाँति लम्बी साँसें ले रहा है। इधर कुश्ती से हटे हुए पहलवान की भाति मेढे की गदन मली जा रही है। इधर दूसरे घोडो के बाल सँवारे जा रहे हैं। यहाँ घुडसाल म, चोर की भाँति यह बन्दर कस कर बँधा हुआ है (दूसरी ओर भी देखकर) इधर महावतो के द्वारा भात स गिरे हुए घृत—मिश्रित पिण्ड हाथी को खिलाया जा रहा है। आप आदेश् कीजिये।

चेटी—एत्वेत्वायः। इम तृतीय प्रकोष्ठ प्रविशत्वार्य । [एदु एदु अज्जो। इम तइअ पओट्ठ पविसदु अज्जो।]

चेटी—आर्य ! आइये, आइये ! इस तीसरे खण्ड मे आर्य प्रवेश कर।

विवृति

(१) *शशिशङ्खमृणालसच्छाया*=चन्द्रमा शङ्ख और कमल नाल के समान शोभा या कान्ति वाली। शशिन शङ्खस्य मृणालस्य च समाना छाया यासाम् ता। (२) विनिहितचूर्णमुष्टिपाण्डुरा—विकीर्णचूण (पिष्टान) स शुभ्रवर्ण की। विनिहितै चूणस्य मुष्टिभि पाण्डुरा। (३) विविधरत्न०=अनेक प्रकार के रत्नो से जडी हुई सोने की सीढियो से सुशोभित। विविध रत्नै प्रतिबद्धानि यानि काञ्चनानि सोपनानि तै शोभिता। (४) प्रासादपङ्क्तय =भवनो की पंक्ति। प्रासादानाम् पङ्क्तय। (५) अवलम्बितमुक्तादामाभि =लटकने वाली मोती की मालाओ से युक्त अवलम्बितानि मुक्तादामानि येषु तादृशै। (६) स्फटिकवातायनमुखचन्द्रै —स्फटिक मणि के झरोखो रूपी मुखचन्द्रा से। स्फटिकस्य वातायनानि एव मुखचन्द्रा तै। (७) निर्ध्यायन्ति—ध्यान से देख रही हैं। इव— क्रियोत्प्रेक्षा तथा उज्जयिनी की शोभातिशय की व्यजना होन के कारण वस्तुध्वनि है। (८) श्रोत्रिय =वेद पाठ करने वाला ब्राह्मण। "*जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेय संस्कारैर्द्विज उच्यते। विद्यया याति विप्रत्व त्रिभि श्रोत्रिय उच्यते॥*" 'श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते ॥' पाणिनि॥ (१०) सद ध्ना=दही के साथ। (११) कलमोदनेन—अगहनी (साठी) धान के अन्न के साथ। (१२) सुधासवर्णतया चूने के समान वण (रग) के कारण। सुधाया सवणतया। (१३) पूर्वोक्त प्रघट्टक म 'प्रासादपङ्क्तय—उज्जयिनीम् निर्ध्यायन्ति इव' इस प्रकार वाक्य का अन्वय है प्रासादपङ्क्तय कर्ता है। (१४)पर्यन्त०=पार्श्व भाग म रखी हुई घास एव भूस के कौर से परिपुष्ट। घासो यवस तृणमर्जुनम्' इत्यमर। (१५) कङ्गरी वृषम् कनीर इत्यमर। (१६) 'ग्रामस्वकरन पुमान्' इत्यमर। (१७) तैलाभ्य०=तेल स पुती हुई सीगो वाले। तैलेन अभ्यक्तानि विषाणानि यस्य। (१८) प्रवहण०=गाडी के वाहक बैल। (१९) अन्यतर=दो म स एक। (२०) अवमानित=तिरस्कृत। (२१) कुलीन=अच्छे कुल वाला। (२२) सैरिभ= भैंसा। (२३) अपनीतयुद्धस्य=लडने से विरत। अपनीतम् युद्धम् तस्य यस्य।

मल्लस्य=पहलवान के । (२५) मघस्य=मद्य की । (२६) केदारकल्पना=वाला की काँट-छाँट । (२७) पाटच्चर=चोर । पाटयन् चरतीति । पाटयत्+चर+अच् । (२८) मन्दुरायाम्=अश्वशाला म । 'वाजिशाला तु मन्दुरा' इत्यमर । (२९) शाखा-मृग=बन्दर । (३०) अनक ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल म अश्वशाला मे वानर रक्खा जाता था । शालिहोत्र म आया है—"मन्दुरान्ते तथा धार्यो रक्तवक्त्रो-महाकपि । सर्वोपद्रवनाशाय वाजीनाञ्च विवृद्धये ॥" (३१) कूरच्युत०=कौर स टपकने वाले तैल से सना हुआ । (३२) कुछ लोगो न कूर का अर्थ भात और कुछ लोगो ने कूर का अर्थ एक विशिष्ट बीज किया है – कूरात् च्युतम् यत् तैलम् तेन मिश्रम् । (३३) पिण्डम्=भोजन । (३४) मात्रपुरुषं=महावतो से ।

विदूषक—[प्रविश्यदृष्ट्वा च] आश्चर्यं भो, इहापि तृतीय प्रकोष्ठे इमानि तावत्कुलपुत्रजनोपवेशननिमित्त विरचितान्यासनानि । अर्धवाचित पाशकपीठे तिष्ठति पुस्तकम् । एतच्च स्वाधीनमणिमयसारिकासहित पाशकपीठम् । इम चापर मदनसधि-विग्रहचतुरा विविधवर्णिकाविलिप्तचित्रफलकाग्रहस्ता इतस्तत परिभ्रमन्ति गणिका वृद्धविटाश्च । आदिशतु भवती । [ही ही भो, इदा वि तइए पओट्ठे इमाइ दावकुल उत्तजणोववेसणणिमित्त विरचिदाइ आसणाइ । अद्धवाचिदो । पासअपीठे चिट्ठइ पोत्यओ । एसो अ साहीणमणिमअसारिआसहिदो पासअपीठो । इमे अ अवरे मअणसधिविग्गहचदुरा विविहवण्णिआविलित्तचित्तफलअग्गहत्था इदो तदो परिब्भमन्ति गणिआ वुड्ढविडा आदि-सदु भोदी ।]

विदूषक—(प्रवेश कर और देखकर) अरे ! आश्चर्य है । यहाँ भी तीसरे खण्ड म कुलीन लोगो (धनी युवको) के बैठने के लिए य आसन लगाये गये हैं । आधी पढी हुई पुस्तक पासा खेलने की चौकी रक्खी है और पासा खेलन की चौकी अकृत्रिम मणि निर्मित मैनाओ (मैना पक्षी के आकार की गोटियो) से युक्त है और य अन्य काम के सन्धि विग्रह (प्रेम-मिलाप और प्रेम-कलह करान) म चतुर वेश्यायें तथा बुड्ढे विट अनेक रगो से चित्रित चित्र-पटो को हाथ म लिए हुए इधर-उधर घूम रहे हैं । आप निर्देश कीजिय ।

चेटी—एत्वेत्वार्य । इम चतुर्थं प्रकोष्ठ प्रविशत्वार्य । [एदु एदु अज्जो । इम चउट्ठ पओट्ठ पविसदु अज्जो ।]

चेटी—आर्य ! आइये, आइय ! इस चौथे खण्ड म आर्य प्रवेश करें ।

विदूषक—(प्रविश्यावलोक्य च ।) आश्चर्यं भो, इहापिचतुर्थे प्रकोष्ठे युवतिकर-ताडिता जलधरा इव गम्भीर नदन्ति मृदङ्गा , क्षणीपुण्या इव गगनात्तारका निपतन्ति कांस्यताला मधुकरविरुतमिव मधुर वाद्यते वश । इयमपरेर्ष्याप्रणयकुपित कामिनी-वाङ्कारोपिता कररुहपरामर्शेन सार्यते वीणा । इमा अपरा कुसुमरसमत्ता इव मधुकर्यो-ऽतिमधुर प्रगीता गणिकादारिका नत्यन्त, नाट्य पाठ्यन्त सशृङ्गारम् । अल्पवल्गिता

गवाक्षेषु वात गृह्णन्ति सलिलगर्गर्यः । आदिशतु भवती । [ही ही भो, इदो वि चउट्ठे पओट्ठे जुवदिकरताडिदा जलधरा विअ गम्भीर णदन्ति मुदङ्गा, हीणपुण्णाओ विअ गअणादो तारआओ णिवडन्ति कसतालआ महुअरविरुअं विअ महुरं वज्जदि वंसो। इअ अवरा ईसाप्पणअकुविदकामिणी विअ अङ्कारोविदा कररुहपरामरिसेण सारिज्जदि वीणा। इमाओ अवराओ कुसुमरसमत्ताओ विअ महुअरिओ अदिमहुरं पगीदाओ गणिआदारिआओ णच्चिअन्ति, णट्टअं पठिअन्ति, ससिङ्गारओ। ओवग्गिदा गवक्खेसु वाद गेण्हन्ति सलिलगग्गरीओ। आदिसदु भोदी।]

विदूषक—(प्रवेश कर और देख कर) अजी! आश्चर्य है। यहाँ भी चौथे खण्ड मे युवतियो के हाथ से बजाये गये मृदङ्ग मेघो के समान गम्भीर शब्द कर रहे हैं। पुण्य क्षीण होने पर आकाश से टूटने वाले तारो की भांति करताल गिर रहे है। भ्रमर-गुञ्जन की भाँति बाँसुरी मीठी तान से बजाई जा रही है। दूसरी (स्त्री) की ईर्ष्या के कारण प्रेम मे कुपित कामिनी की भाँति गोद मे रक्खी वीणा नखो के स्पर्श से झङ्कृत की जा रही है। दूसरी, ये मकरन्द पान से मस्त भ्रमरियो के समान अत्यन्त मधुर गाती हुई वेश्या-पुत्रियाँ नचाई जा रही हैं, श्रृङ्गार (रस) वाले नाटक पढ़ाये जा रहे हैं। खिड़कियो मे थोडी टेढी (करके रक्खी) पानी से भरी सुराहियाँ वायु ग्रहण कर रही हैं। आप निर्देश कीजिये।

चेटी—एत्वेत्वार्य। इमं पञ्चमं प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्यः। [एदु एदु अज्जो। इमं पञ्चमं पओट्ठं पविसदु अज्जो।]

चेटी—आर्य! आइये, आइये! इस पाँचवें खण्ड मे आर्य प्रवेश करें।

विदूषक—आश्चर्यं भो, इहापि पञ्चमे प्रकोष्ठेऽयं दरिद्रजनलोभोत्पादनकर आहरत्युपचितो हिङ्गु-तैलगन्धः। विविधसुरभिधूमोद्गारैर्नित्यं सताप्यमानं निःश्वसितीव महानसं द्वारमुखैः। अधिकमुत्सुकायते मां साध्यमानबहुविधभक्ष्यभोजनगन्धः। अयमपरः पटच्चरमिव हतपशूदरपत्रं धावति रूपिदारकः। बहुविधाहारविकारमुपसाधयति सूपकारः। बध्यन्ते मोदकाः। पच्यन्तेऽपूपकाः। (आत्मगतम्) अपीदानीमिह वर्धितं भुङ्क्ष्व इति पादोदकं लप्स्ये। (अन्यतोऽवलोक्य च) इह गन्धर्वाप्सरोगणैरिव विविधालङ्कारशोभितैर्गणिकाजनैर्बन्धुलैश्च यत्सत्यं स्वर्गायितमिदं गेहम्। भो के यूयं बन्धुला नाम। (प्रविश्य दृष्ट्वा च।) [ही ही भो, इदो वि पञ्चमे पओट्ठे अअं दलिद्दजणलोहुप्पादणअरो आहरइ उवचिदो हिङ्गु-तल्लगन्धो। विविहसुरहिधूमुग्गारेहिं णिच्चं संताविज्जमाणं णीससदि विअ महाणसं दुआरमुहेहिं। अधिअं उस्सुआवदि मं साहिज्जमाणबहुविहभक्खभोअणगन्धो। अअं अवरो पडच्चरं विअ पाट्टिं धाअदि रूपिदारओ। बहुविहाहारविआरं उवसाहेदि सूवआरो। बज्झन्ति मोदआ, पच्चन्ति अपूपआ। अविदाणिं इह वड्ढिअं भुञ्जसु त्ति पादोदअं लहिस्सम्। इदो गन्धव्वच्छरगणेहिं विअ

विविहालकारसोहिदेहि गणिआजणेहि बन्धुलेहि अ ज सच्च सग्गीअदि एद गेहम् । भो, के तुह्ये बन्धुला णाम् ।]

विदूषक--(प्रवेश कर और देखकर) अजी ! आश्चर्य है । यहाँ भी पाँचवे खण्ड म यह निर्धन मनुष्यों को ललचाने वाली हींग और तेल की बढी हुई गन्ध (मुझे) आकृष्ट कर रही है । भाँति-भाँति के सुगन्धित धुएँ को प्रकट करने वाला नित्य सन्तप्त किया जाता हुआ रसोई-घर द्वार रूपी मुखों से मानो लम्बे श्वास ले रहा है । बनाये जाते हुए नाना प्रकार के भोजनों की महक मुझे अत्यधिक उत्सुक बना रही है । दूसरा यह कसाई का लडका मरे हुए पशु की अँतड़ी को, पुराने वस्त्र की भाँति, धो रहा है । रसोइया नाना प्रकार के व्यञ्जन बना रहा है । लड्डू बाँधे जा रहे हैं । मालपुए पकाये जा रहे हैं । (अपने आप) तो क्या 'अब यहाँ यथेष्ट भोजन कीजिये ।' ऐसा कह कर मुझे पैर धोने के लिए जल मिलेगा ? (दूसरी ओर देखकर) यहाँ गन्धर्वो एव अप्सराओं के झुण्डो की भाँति अनेकानेक आभूषणों से आभूषित वेश्याओं तथा बन्धुलो से सचमुच यह घर स्वर्ग हो रहा है । अजी ! तुम लोग बन्धुल नाम वाले कौन हो ?

विवृति

(१) कुलपुत्र०=कुलीनों के बैठने के लिए । कुलपुत्रजनानाम् उपवेशननिमित्तम् । (२) पाशकपीठे=पाशा खेलने की चौकी पर । (३) अर्धवाचितम्=आधी पढी गई । (४) स्वाधीन०=असली (अथवा कृत्रिम) मणि से बनी हुई मैनाओं से व्याप्त । स्वाधीन मणिमयाभिः सारिकाभिः सहितम् । (५) मदन—काम सम्बन्धी झगड़ा और मेल कराने में प्रवीण । मदनस्य सन्धि विग्रह तत्र चतुरा. । (६) विविध वर्णिका०=अनेक रगो से रगे हुए चित्रपटों को हाथों म लिये हुऐ । विविधानि वर्णिकानि विलिप्तानि यानि चित्रफलकानि अग्रहस्ते यासाम् । ता. । (७) परिभ्रमन्ति=जाते आते हैं । (८) युवतिकर०=युवतियों के हाथ से बजाये गये । नदन्ति=शब्द कर रहे हैं । (९) युवतीनाम् करैः ताडिता. इति । (१०) कांस्यताला.=करताल । (११) मधुकरविरुतम्=भ्रमरों का गुञ्जन । मधुकराणाम् विरुतम् । वाद्यते=तान छेड रही है । (१३) वध—वधी । (१४) अपरेर्ष्या=दूसरी स्त्री से ईर्ष्या के कारण मान करती रमणी की भाँति । अपरस्या. ईर्ष्या प्रणये कुपिता या कामिनी सा इव । (१५) कररुह०=अंगुलियों के द्वारा सहलाने से । कररुहाणाम् परामर्शेन । (१६) अङ्कारोपिता=गोद में रखी हुई । (१७) सार्यते=मिलाई जा रही है । (१८) कुसुमरस०=फूलों के रसों से मतवाली । कुसुमानाम् रसैः मत्ताः । (१९) प्रगीता=गाती हुई । (२०) मधुकर्य:=भ्रमरियाँ । (२१) गणिकादारिका=वेश्याओं की पुत्रियाँ । (२२) अल्पवर्णगता.=कुछ टेढी । (२३) गवाक्षेषु=झरोखों पर । (२४) दरिद्र०=निर्धन लोगों को लोभ उत्पन्न करने वाला । दरिद्रजनानाम् लोभोत्पादनकर. । (२५)

उपचित =बढी हुई। (२६) हिङ्गुतैलगन्ध =हीग और तैल की गन्ध। (२७) आहरतु=आकृष्ट कर रही है। (२८) महानसम् =रसोई घर। 'पाकस्थान महानसे' इत्यमर (२९) विविध सुरभि० =अनेक प्रकार की सुगन्ध से भरे हुए धुएँ को निकालने वाले। विविधसुरभीनाम् धूमानाम् उद्गारैं। (३१) द्वारमुखैं=द्वार रूपी मुखो से। द्वाराणि एव मुखानि तैं। (३२) निश्वसति=सास सा ले रहा है। (३३) 'इव' उत्प्रेक्षालङ्कार है। (३४) साध्यमान० =पकाये जाते हुए अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों की सुगन्ध से। साध्यमानानाम् बहुविधानम भक्ष्याणाम् भोजनाम् गन्ध। (३५) उत्कण्ठित कर रही है। (३६) पटच्चरम् =पुराना कपडा। (३७) हतपशूदरपेशि० =मारे गये पशु की अंतडी को। (३८) रूपिदारक =कसाई। (३९) धावति=धो रहा है। (४०) सूपकार =रसोइया। (४१) बहुविधा० =भाति-भांति के भोजनो के प्रकार को। बहुविधानाम् आहाराणाम् विकारम् इति। (४२) उपसाधयति=पका रहा है। (४३) वर्धितम्=यथेष्ट। (४४) पादोदकम् =पैर धोने के लिए जल। (४५) स्वर्गायते= स्वर्ग के समान हो रहा है। (४६) दारिद्राति इति दरिद्रा+श्रच् (आलोप)। उत्सुक +क्यङ् (नामधातु)+लट् =उत्सुकायते। रूप्+इनि=रूपमस्यास्तीति रूपी चासौ दारक इति। 'रूपम स्वभावे सौदर्ये नामगेरशुशब्दयो' इति मेदिनी। 'पटच्चरम् जीर्णवस्त्रम्' इत्यमर।

बन्धुला —वय खलु

बन्धुलगण—हम वास्तव मे—

परगृहललिता परान्नपुष्टा. परपुरुषैर्जनिता पराङ्गनासु।
परधननिरता गुणेष्ववाच्या गजकलभा इव, बन्धुला ललाम. ।।२८।।

अन्वय—परगृहललिता, परान्नपुष्टा, परपुरुषै, पराङ्गनासु, जनिता, परधननिरता, गुणेषु, अवाच्या, (वय) बन्धुला, गजकलभा, इव, ललाम ।।२८।।

पदार्थ :—*परगृहललिता* =दूसरे के घर मे प्रेम से रहने वाले, *परान्नपुष्टा* =दूसरो के दाने से पले हुए, *परपुरुषैं* =दूसरे मनुष्यो के द्वारा, *पराङ्गनासु*=दूसरे की स्त्रियो मे, *जनिता* =पैदा किये गये, *परधननिरता* =दूसरे के धन से आनन्द का उपभोग करने वाले, गुणेषु=गुणो मे, अवाच्या =हीन, बन्धुला =बन्धुल लोग, गजकलभा =हाथियो के बच्चो, इव=जैसे, ललाम =विहार करते हैं।

अनुवाद—पराये घर मे पालन किये गये, पराये अन्न से परिपुष्ट, पर पुरुषो के द्वारा पर स्त्रियो मे उत्पन्न किये हुए, पराये धन का उपभोग करने वाले, गुणरहित, (हम) बन्धुल गण हाथियो के बच्चो के समान विहार करते हैं।

संस्कृत टीका—परगृहललिता =अन्यगृहपालिता, परान्नपुष्टा =अन्यदीयान्नपरिपुष्टा, परपुरुषैं =अन्यजनै, पराङ्गनासु=अन्यनारीषु, जनिता =उत्पादिता,

परधननिरताः=अन्यविभवउपभोगादिसक्ताः, गुणेषु=सद्गुणेषु, अवाच्याः=अवक्तव्याः गुणशून्या इत्यर्थः, (वय) बन्धुलाः=कुलटापुत्राः, गजकलमाः=करिशावकाः, इव=यथा, ललामः=विहरामः ।

समास एवं व्याकरण–(१) परगृहललिताः–परगृहे ललिताः । पराग्रपुष्टाः–पराग्रेन पुष्टाः । पराङ्गनासु–परेषाम् अङ्गनासु । परधननिरताः–परधनेषु निरताः । (२) ललामः–'लल्' धातु चुरादिगणीय है । उसका 'ललामः' रूप नहीं होता । तब भ्वादिगणीय लड् धातु का रूप मानकर 'डलयोरभेदः' इस नियम से सिद्ध कर सकते हैं । लड्+क्विप्+अम्+अण् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में 'बन्धुल' जनों का स्वरूप बतलाया गया है । (२) परधन०-भाव यह है कि लोगों को यहाँ लाकर उनके धन से आनन्द का उपभोग करते हैं । (३) गुणेष्ववाच्या–हमारे गुणों का विचार नहीं किया जाता, यह भाव है । (४) गजकलमा.–हाथी के बच्चे । यद्यपि 'कलभः करिशावकः' इस अमरकोष के प्रामाण्य से 'कलभ' का ही अर्थ होता है–हाथी का बच्चा, फिर यहाँ 'गज' शब्द का उपादान पुनरुक्ति–दोष उत्पन्न करता है, किन्तु 'विशिष्टवाचकानां पदानाम् सति विशेषण-वाचकपद–पृथक्समवधाने विशेष्यमात्रपरत्वम्' इस नियम के अनुसार यहाँ 'कलभ' का अर्थ 'बच्चा' मात्र है–ऐसा मान लेने से पुनरुक्ति दोष नहीं लगेगा । 'स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः' (रघुवंश २) इत्यादि स्थलों में भी इसी नियम से समाधान होता है । क्योंकि वहाँ वायुपूर्ण छिद्र वाले बाँस को ही 'कीचक' कहते हैं–'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इत्यमरः । फिर 'मारुतपूर्णरन्ध्रैः' और 'कीचकैः' इन दो पदों के उपादान से पुनरुक्ति दोष उत्पन्न होता है किन्तु 'धनुर्ज्यादिषु शब्देषु' इत्यादि से साहित्यदर्पणकार के अनुसार उसका औचित्य सिद्ध होता है । (५) प्रस्तुत श्लोक में उपमालङ्कार है । (६) पुष्पिताग्रा छन्द है । छन्द का लक्षण–'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।'

विदूषक.–आदिशतु भवती । [आदिसदु भोदी ।]

विदूषक–आप (मार्ग) निर्देश कीजिये ।

चेटी–एत्वेत्वार्यः । इमं षष्ठ प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्यः । [एदु एदु अज्जो । इमं छट्ठं पओट्ठं पविसदु अज्जो ।]

चेटी–आर्य ! आइये आइये ! इस छठे खण्ड में आर्य प्रवेश करें ।

विदूषकः–(प्रविश्यावलोक्य च ।) आश्चर्यं भोः, इहापि षष्ठे प्रकोष्ठेऽमूनि तावत्सुवर्णरत्नानां कर्मतोरणानि नीलरत्नविनिक्षिप्तानीन्द्रायुधस्थानमिव दर्शयन्ति । वैदूर्यमौक्तिकप्रवालकपुष्परागेन्द्रनीलकर्केतरकपद्मरागमरकतप्रभृतीन्रत्नविशेषानन्योन्यं विचा-

रयन्ति शिल्पिन । वध्यन्ते जातरूपैर्माणिक्यानि । घट्यन्ते सुवर्णालङ्कारा । रक्तसूत्रेण ग्रथ्यन्ते मौक्तिकाभरणानि । घृष्यन्ते धीरं वैदूर्याणि । छिद्यन्ते शङ्खा । शाणघृ ष्यन्ते प्रवालका । शोष्यन्त आर्द्रकुङ्कुमप्रस्तरा । सार्यते कस्तूरिका । विशेषेण घृष्यते चन्दनरस । सयोज्यन्ते गन्धयुक्तय । दीयते गणिकाकामुकयो सकर्पूर ताम्बूलम । अवलोक्यते सकटाक्षम । प्रवर्तते हास । पीयते चानवरत ससीत्कार मदिरा । इमे चेटा, इमाश्चेटिका, इमे अपरेऽवधीरितपुत्रदारवित्ता मनुष्या आसवककरकापीतमदिरैर्गणिकाजनैर्ये मुक्तास्ते पिबन्ति । आदिशतुभवती । [ही ही भो, इदो वि छट्ठे पओट्ठे अमु दाव सुवण्णरअणाण कम्मतोरणाइ णीलरअणविणिविखत्ताइ इन्दाउहट्ठाण विअ दरिसअन्ति । वेदुरिं अमोत्ति अपवाल अपुप्फराअइन्दणीलकक्केतरअपद्मराअमरगअपहुदिआइ रअणविसेसाइ अण्णोण्णं विचारेन्ति सिप्पिणो । बज्झन्ति जादरूवेहिं माणिक्काइ । घडिज्जन्ति सुवण्णालकारा । रत्तसुत्तेण गत्थीअन्ति मोत्तिआभरणाइ । घसीअन्ति धीर वेदुरिआइ । छेदीअन्ति सङ्खआ । साणिज्जन्ति पवालआ । सुक्खविअन्ति ओल्लविदकुङ्कुमपत्थरा । सालीअदि सल्लज्जअम् । विस्साणीअदि चन्दणरसो । सजोईअन्ति गन्धजुत्तीओ । दीअदि गणिआकामुकाणा सकप्पूर ताम्बोलम् । अवलोईअदि सकडक्खअम् । पअट्टदि हासा । पिबीअदि अ अणवरअ ससिक्कार मइरा । इमे चेडा, इमा चेडिआओ इमे अवरे अवधीरिदपुत्तदारवित्ता मणुस्सा आसवकरआपीदमदिरेहिं गणिआजणेहिं जे मुक्का ते पिअन्ति । आदिसदु भोदी ।]

विदूषक—(प्रवेश कर और देखकर) अजी ! आश्चर्य है ! यहाँ भी छठे खण्ड में मरकत मणि जटित, स्वर्ण रत्नो से निर्मित नक्काशीदार तोरण इन्द्रधनुष की सी शोभा दिखा रहे हैं । शिल्पी लोग वैदूर्य, मोती, मूंगा, पुखराज, इन्द्रनील, कर्केतरक, पद्मराग, मरकत आदि विशिष्ट रत्नो का परस्पर विचार कर रहे हैं । सोने के साथ मोती बाँधे जा रहे है । सोने के आभूषण गढे जा रहे है । लाल डोरे मे मोतियो के आभूषण गूंथे जा रहे हैं । वैदूर्य धीरे-धीरे घिसे जा रहे है । शङ्खो मे छेद किये जा रहे है । मूंगे सानो से खरादे जा रहे है । गीली केसर की तहे सुखाई जा रही है । कस्तूरी एकत्रित की जा रही है (या चलाई जा रही है) । चन्दन का रस विशेष रूप से घिसा जा रहा है । (कई प्रकार के गन्ध) मिलाये जा रहे हैं । वेश्या और कामुक को कर्पूर सहित पान दिया जा रहा है । कटाक्षपूर्वक देखा जा रहा है । हँसी चल रही है । निरन्तर सी-सी करके मदिरा पी जा रही है । ये 'चेट', ये चेटिकायें, और ये दूसरे लोग, जिन्होने पुत्र, कलत्र तथा धन का तिरस्कार कर दिया है, वेश्याओं द्वारा पीकर छोडी गई प्यालो मे पडी जूठी मदिरा पी रहे है । आप (आगे) निर्देश कीजिए ।

चेटी—एत्वेत्वार्य । इम सप्तम कोष्ठ प्रविशत्वार्य: । [एदु एदु अज्जो । इम सत्तम पओट्ठं पविसदु अज्जो ।]

चेटी—आर्य ! आइय, आइये ! इस सातवें खण्ड म आर्य प्रवश करें।

विदूषक —(प्रविश्यावलोक्य च) आश्चर्य भो , इहापि सप्तमें प्रकोष्ठे सुश्लिष्टविहङ्गवाटीसुखनिषण्णान्यन्योन्यचुम्बनपराणि सुखमनुभवन्ति पारावतमिथुनानि । दधिभक्तपूरितोदरो ब्राह्मण इव सूक्तं पठति पञ्जरशुकः । इयमपरा समाननालब्धप्रसरेव गृहदासी अधिकं कुरकुरायते मदनसारिका । अनेकफलरसास्वादप्रहृष्टकण्ठा कुम्भदासीव कूजति परपुष्टा । आलम्बिता नागदन्तेषु पञ्जरपरम्परा । योध्यन्ते लावकाः । आलाप्यन्ते कपिञ्जलाः । प्रेष्यन्ते पञ्जरकपोताः । इतस्ततो विविधमणिचित्रित इवायं सहर्षं नृत्यन्रविकिरणसंतप्तं पक्षोत्क्षेपैर्विधुवतीव प्रासादं गृहमयूरः । (अन्यतोऽवलोक्य च) इतः पिण्डीकृता इव चन्द्रपादाः पदगतिं शिक्षमाणानीव कामिनीभ्यः पश्चात्परिभ्रमन्ति राजहंसमिथुनानि । एतेऽपरे वृद्धमहल्लका इव इतस्ततः संचरन्ति गृहसारसाः । आश्चर्यं भो प्रसारणं कृतं गणिकया नानापक्षिसमूहैः । सत्यं खलु नन्दनवनमिव मे गणिकागृहं प्रतिभासते आदिशतु भवती । [ही ही भो, इधो वि सत्तमे पओट्ठे सुसिलिट्ठविहङ्गवाडीसुहणिसण्णाइ अण्णोण्णचुम्बणपराइ सुहं अणुभवन्ति पारावदमिहुणाइ दहिभत्तपूरिदोदरो बह्मणो विअ सुत्तं पढदि पञ्जरसुओ इअं अवरा समाणणालद्धपसरा विअ घरदासी अधिअं कुरुकुराअदि मदणसारिआ। अणेअफलरसास्सादपहिट्ठकण्ठा कुम्भदासी विअ कूजदि परपुट्ठा । आलम्बिदा णागदन्तेसु पञ्जरपरम्पराओ। जोधीअन्ति लावआ । आलवीअन्ति कविञ्जला । पसीअन्ति पञ्जरकवोदा । इदो तदो विविहमणिचित्तलिदो विअ अअं सहरिसं णच्चन्तो रविकिरणसंतत्तं पक्खुक्खेवेहिं विधूवेदि विअ पासादं घरमोरो । इदो पिण्डीकिदा विअ चन्दपादा पदगदिं सिक्खन्ता विअ कामिणीणं पच्छादो परिब्भमन्ति राअहंसमिहुणा। एदे अवरे वुड्ढमहल्लका विअ इदो तदो संचरन्ति घरसारसा । हा हा भो, पसारणं किदं गणिआए णाणापक्खिसमूहेहिं। जं सच्चं क्खु णन्दणवणं विअ मे गणिआघरं पडिभासदि । आदिसदु भोदी ।]

विदूषक—(प्रवश कर और देख कर) अजी ! आश्चर्य है ! यहाँ भी सातवें खण्ड म सुनिर्मित पक्षी गृह म सुखपूर्वक बैठे हुए परस्पर चुम्बन करन म तत्पर [illegible] क जोड़े सुख का अनुभव कर रहे हैं। दही भात स भरे हुए पेट [illegible] ब्राह्मण की भाँति, पिंजरे म बैठा तोता सूक्ति पाठ कर रहा है। दूसरी यह आदर [illegible] प्राप्त करन वाली घर की नौकरानी के समान 'मैना' अधिक कुर कुर शब्द कर रही है। नाना प्रकार क फलो का आस्वाद लेन स मधुर कण्ठ [illegible] कोयल [illegible] क समान कूज रही है। खूंटियो पर पिंजरो की कतारें [illegible] रही हैं। [illegible] जा रहे हैं। तीतरो स बात कराई जा रही है। पिंजरे म [illegible] रहे हैं। भाँति भाँति की मणियो स चित्रित-सा यह पालतू मयूर [illegible] सूर्य की किरणो स सतप्त अट्टालिका को मानो (अपने) [illegible] कर रहा है। (दूसरी ओर देखकर) इधर इकट्ठा [illegible]

(चपल) राजहंसों के जोड़े रमणियों के पीछे (सुन्दर) गमन सीखते हुये घूम रहे है। दूसरे ये पालतू सारस घर के बड़े बूढ़ों की भाँति इधर-उधर घूम रहे हैं। अजी! आश्चर्य है! वेश्या (वसन्त सेना) ने अनेक प्रकार के पक्षियों के झुण्डों को (पालकर) फैला रखा है। सच तो यह है कि वेश्या का घर मुझे 'नन्दन वन' सा लग रहा है। आप (आगे) निर्देश कीजिये।

चेटी—एत्वेत्वार्यं। इममष्टम प्रकोष्ठ प्रविशत्वार्य। [एदु एदु अज्जो। इम अट्ठम पओट्ठ पविसदु अज्जो।]

चेटी—आर्य! आइये, आइये। इस आठवें खण्ड मे आर्य प्रवेश करें।

विदूषक—(प्रविश्यावलोक्य च।) भवति क एष पट्टप्रावारक प्रावृतोऽधिकतरमत्यद्भुतपुनरुक्तालकारालकृतोऽङ्गभङ्गै परिस्खलन्नितस्तत परिभ्रमति [भोदि, को एसो पट्टपावारअपाउदो अधिअदर अच्चब्भुदपुणरुत्तालकारालकिदो अङ्गभङ्गेहिं परिक्खलन्तो इदो तदो परिब्भमदि।]

विदूषक—(प्रवेश कर और देख कर) महोदये! यह कौन रेशमी दुपट्टे को ओढे हुये, विशेषतया आश्चर्यजनक दोहरे आभूषणो से शोभित अङ्गों को लचकाता हुआ डगमगाता हुआ इधर-उधर घूम रहा है।

चेटी—आर्य, एष आर्याया भ्राता भवति। [अज्ज, एसो अज्जआए भादा भोदि।]

चेटी—आर्य! यह आर्या (वसन्तसेना) के भाई हैं।

विवृति

(१) नीलरत्न०—मरकत मणि से जटित। नीलरत्नै विनिक्षिप्तानि। (२) सुवर्णरत्नानाम्—सोने और रत्नों के। (३) कर्मतोरणानि—विशिष्ट रचना (नक्काशी) से युक्त बाह्यद्वार। कर्मणा तोरणानि इति। (४) इन्द्रा०—इन्द्र धनुष का दृश्य। इन्द्रधनुष इव दर्शयति इति। (५) शिल्पिन—कारीगर। (६) वैदूर्यमौ०—यह पद 'रत्नविशेषान्' का विशेषण है। वैदूर्य, मोती, मूँगा, पुष्पराग, इन्द्रनील, कर्केतरक, पद्मराग तथा मरकत आदि। वैडूर्यम् च मौक्तिक च प्रवालश्च पुष्परागश्च इन्द्रनीलश्च कर्केतरक च पद्मरागश्च मरकत च तानि प्रभृति येषां ते, तान्। (७) जातरूपं—सुवर्णों से। (८) घट्यन्ते—गढ़े जा रहे हैं। (९) प्रवालका—मूँग। (१०) आर्द्र०—गीली केसरों के पत्थर। (११) सार्यते—एकत्रित की जा रही है अथवा चलाई जा रही है। (१२) गन्धयुक्तम—गन्धो का मिश्रण। (१३) अवधीरित०—पुत्र, स्त्री तथा धन का तिरस्कार करने वाले। अवधीरितानि पुत्रदारवित्तानि यैस्ते। (१४) आसव०—मद्य चखकों से मद पी चुकने वाली। आसवकरकाभि' पीता मदिरा यै तादृशैः। (१५) गणिकाजनै—वेश्याओं से। (१६) सुश्लिष्टविहङ्गवाटी०—

सुन्दर बने हुए पक्षिगृह में आनन्द के साथ बैठे हुए। सुश्लिष्टा या विहङ्गवाटी तत्र सुखेन निषण्णानि । (१७) अन्योन्य०=परस्पर चुम्बन में लगे हुए। (१८) दधि-भक्त०=दही भात से भरे हुए पेट वाला। दधिभक्तेन पूरितम् उदरम् यस्य सः। (१९) सूक्तम्=सुन्दर वचन को। (२०) सम्मानना०=आदर पाने से मुँह लगी। सम्माननया लब्धः प्रसरः यया सा। (२१) गृहदासी=घर की नौकरानी। (२२) कुरकुरायते=कुर कुर शब्द करती है। कुर कुर+क्यङ्+लट् (नामधातु)। (२३) मदनसारिका=मैना। (२४) अनेक फल रसा०=अनेक फलों के रस को चखने के कारण मधुर कण्ठ वाली। अनेकेषाम् फलनाम् रसस्य आस्वादेन प्रहृष्टः कण्ठः यस्याः सा। (२५) कुम्भदासी=कुट्टिनी। 'कुम्भः स्यात् कुम्भकर्णस्य सुते वेश्यापतौ घटे' इति विश्वः। 'कुम्भदासी कुट्टिनी' इति शब्द रत्नावली। (२६) परपुष्टा=कोयल। परैः पुष्टा इति। (२७) नागदन्तेषु=खूँटियो में। (२८) विधुवति=हवा कर रहा है। (२९) पिण्डीकृताः=इकट्ठी की गई। (३०) चन्द्रपादाः=चन्द्रमा की किरणें। (३१) पदगतिम्=पैर की चाल को। (३२) वृद्धमहल्लका=बड़े बूढ़े। (३३) नन्दनवनम्=इन्द्र का उद्यान। (३४) प्रसारणम्=विस्तार। (३५) सूक्तम्-सु+वच्+क्त। प्रहृष्ट-प्र+हृ+क्त। (३६) पट्टप्रावारक०=रेशमी दुपट्टे को ओढ़े हुए। पट्टप्रावारकेण प्रावृत इति। (३६) अत्यद्भुत०=अत्यन्त विलक्षण ढंग के आभूषणों से सजा हुआ। अत्यद्भुतैः पुनरुक्तैः अलङ्कारैः अलङ्कृतः। (३८) अङ्गानङ्गैः=अङ्गों को लचका कर। (३९) परिस्खलन्=गिरता-पड़ता हुआ।

विदूषक–कियत्तपश्चरणं कृत्वा वसन्तसेनाया नाथा भवति। अथवा।
[केत्तिअं तवच्चरणं कदुअ वसन्तसेणाए णाधा होदि। अथवा।]

विदूषक-कितनी तपस्या करके 'वसन्तसेना' का नाथ हुआ है। अथवा—

मा तावद्यद्यप्येष उज्ज्वलः
स्निग्धश्च सुगन्धश्च ।
तथापि श्मशान वीथ्यां जात इव
चम्पकवृक्षोऽनभिगमनीयो लोकस्य ॥८॥
[मा दाव जइ वि एसो उज्जलो
सिणिद्धो अ सुअन्धो अ।

पदार्थ—मा तावत्=ऐसा नही है, उज्ज्वल=गोरा, स्निग्ध=चिकना-चुपडा, सुगन्ध=सुगन्धित पदार्थों से युक्त, श्मशानवीथ्याम्=श्मशान (मरघट) की गली मे, जात=उगे हुए, चम्पकवृक्ष=चम्पा के पेड, लोकस्य=लोगो के लिए, अनभिगमनीय=त्याज्य ।

अनुवाद—ऐसा नही है यद्यपि यह गोरा चिकना और सुगन्धयुक्त है, फिर भी श्मशान की गली मे उत्पन्न चम्पक वृक्ष की भाँति लोगो के लिए त्याज्य है।

संस्कृत टीका—मा तावत्=कियत्तपश्चरण कृत्वा वसन्तसेनाया भ्राता भवति ? इति प्रशसावचन न युक्त, यद्यपि, एष=वसन्तसेनाया, उज्ज्वल=शुभ्रवर्ण, स्निग्ध=प्रसाधनद्रव्यैं चिक्कण च, सुगन्ध=शोभनगन्धयुत, च, (अस्ति), तथापि, श्मशानवीथ्याम्=श्मशानमार्गे जात=उत्पन्न, चम्पकवृक्ष=चम्पकतरु, इव=तद्वत्, लोकस्य=जनस्य, अनभिगमनीय=गन्तुम् अयोग्य त्याज्य इतियावत् (अस्ति) ॥

समास एवं व्याकरण—(१) उज्ज्वल–उद्+ज्वल्+अच् । स्निग्ध–स्निह्+क्त । जात–जन्+क्त । चम्पक–चम्प+ण्वुल् । वीथि–विथ+इन्, ङीप् वा पृषो० । (२) श्मशानस्यवीथि तस्या श्मशानवीथ्याम । (३) चम्पकस्यवृक्ष चम्पकवृक्ष । (४) न अभिगमनीय अनभिगमनीय ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म उपमालङ्कार है। (२) अनभिगमनीय.–त्याज्य । तात्पर्य यह है कि जैसे श्मशान का चम्पकपुष्प गोरा चिकना एव सुगन्धित होने पर भी त्याज्य है उसी तरह यह भी गोरा, चिकना एव सुगन्धित होने पर भी वेश्या-पुत्र होने से हेय है। (३) कुछ पुस्तको म इसे गद्याश के रूप म ही लिया गया है। यदि इसे पद्य माना जाता है तो इसके ५ चरण दिखलाई देते हैं। पञ्चम-चरण-(अणहि-गमणीओ लोअस्स) को छोड देन पर यह आर्या छन्द के रूप म शेष रह जाता है। (काले)

(अन्यतोऽवलोक्य)

भवति, एषा पुन का पुष्पप्रावारकप्रावृतोपानद्युगलनिक्षिप्ततैलचिक्कणाभ्या पादाभ्यामुच्चासन उपविष्टा तिष्ठति ।

[भोदि, एसा उण का फुल्लपावारअपाउदा उवाणहजुअलणिक्खित्ततेल्लचिक्कणहि पादहि उच्चासणे उवविट्टा चिट्ठदि ।]

(दूसरी ओर देखकर) महोदय ! अच्छा यह कौन पुष्पाङ्कितवस्त्र (बेल-बूटे वाली) ओढनी को ओढे, दोनो जूतों म तेल से चिकने पैरो को डाले हुए, ऊँचे आसन पर बैठी है !

चेटी—आर्य, एपा खल्वस्माकमार्याया माता । [अज्ज, एसा क्खु अह्माण अज्जआए अत्तिआ ।]

चेटी—आर्य ! यह हमारी आर्या (वसन्तसेना) की माता जी हैं ।

विदूषक—अहो अस्या कपर्दकडाकिन्या उदरविस्तार । तात्किमेता प्रवेश्य महादेवमिव द्वारशोभा इह गृहे निर्मिता । [अहो से कवट्ठडाइणीए पोट्टवित्थारो । ता किं एद पवेसिअ महाएवं विअ दुआरसोहा इह घरे णिम्मिदा ।]

विदूषक—ओह ! इस अपवित्र पिशाचिनी का पट कितना बड़ा है ! तो क्या महादेव जी के समान इस (विशाल मूर्ति) को यहाँ घर म प्रविष्ट करा कर दरवाजे की शोभा रची गई थी ?

चेटी—हताश, मैवमुपहासास्माक मातरम् । एषा खलु चातुर्थिकेन पीडयते । [हदास, मा एव्व उवहस अह्माण अत्तिअम् । एसा क्खु चाउत्थिएण पीडीअदि ।]

चेटी—अधमुए ! इस प्रकार हमारी माता जी की हँसी मत करो ! यह तो 'चौथिया' बुखार से पीडित है ।

विदूषक—भगवश्चातुर्थिक, एतेनोपकारेण मामपि ब्राह्मणमवलोकय । [(सपरिहासम् ।) भअव चाउत्थिअ, एदिणा उवआरेण म पि बह्मण आलोएहि ।]

विदूषक—(परिहासपूर्वक) भगवन् चौथिया बुखार ! इस उपकार (दृष्टि) से मुझ ब्राह्मण का भी देख लो !

चेटी—हताश, मरिष्यसि । [हदास, मरिस्ससि ।]

चेटी—अधमुए ! मरोगे !

विदूषक—दास्या पुत्रि, वरमीदृश शूनपीनजठरो मृत एव । (सपरिहासम् ।) [दासीए धीए, वर ईदिसो शूणपीणजठरो मुदो ज्जेव ।]

विदूषक—(परिहासपूर्वक) ऐ दासी की बेटी ! ऐसे बढ़े हुए एव मोट पेट होने से तो मर जाना ही अच्छा !

विवृति

(१) पुष्पप्रावारक०=फूल कढी हुई ओढनी को ओढे हुए । पुष्प–प्रावारकेण प्रवृत । (२) उपानद०–दोनो जूतो मे डाले गये तैल से चिकने । उपानद् युगले निक्षिप्तौ तैलचिक्कणौ ताभ्याम् । (३) पादाभ्याम्=पैरो से । (इत्थम्भूतलक्षणे स तृतीया) । (४) कपर्दकडाकिन्या=गन्दी डायन (कपर्दक=कौडी, डाकिनी =डायन) । कपर्दक के स्थान पर कही-कही करट्ट और कही अपवित्र पाठ भी हैं । (५) उदरविस्तार=पट का फैलाव । (६) महादेवमिव=शङ्कर के मन्दिर मे महादेव की विशाल मूर्ति को पहले प्रवेश करा करके फिर द्वार बनाया जाता है उसी प्रकार इसको भी घर म प्रविष्ट कराकर द्वार बनाया गया । (७) चातुर्थिकेन= चौथिया ज्वर से । चतुर्थे अहनि भव चातुर्थिक. तेन । चतुर्थ+ठञ् । (८) शूनपीन-

जठरो=जिसका पेट बढ़ा हुआ और मोटा है। शूनम् पीनम् जठरम् यस्य सः।

सीधुसुरासवमत्ता एवावदवस्था गता हि माता।
यदि म्रियतेऽत्र माता भवति शृगालसहस्रपर्याप्तिका ॥३०॥
[सीधु सुरासवमत्तिआ एआवत्थ गदा हि अत्तिआ।
जइ मरइ एत्थ अत्तिआ भोदि सिआलसहस्सपज्जत्तिआ ॥३०॥

अन्वय—सीधुसुरासवमत्ता, माता, एतावदवस्थाम्, गता, हि, यदि, अत्र, माता, म्रियते, (तु), शृगालसहस्रपर्याप्तिका, भवति ॥३०॥

पदार्थ—सीधुसुरासवमत्ता=सीधु, सुरा और आसव–इन तीनों प्रकार की मदिराओं से मतवाली, माता=जननी, एतावदवस्थाम्=इस हालत को, गता=प्राप्त हुई है, म्रियते=मर जाती है, शृगाल०=हजारों सियारों (को तृप्त करने) के लिए पर्याप्त।

अनुवाद—'सीधु, सुरा और आसव', (इन तीन प्रकार के मद्यपान) से मतवाली (वसन्तसेना की) माता इस अवस्था (अतिशय तुन्दिलता) को प्राप्त हो गई है, यदि (यह) माता यहाँ मर जाती है तो हजारों शृगालों को (तृप्ति करने के लिए) पर्याप्त होगी।

संस्कृत टीका—सीधु० = त्रिविधमदिराविशेषप्राप्तमदा, माता=(वसन्तसेनायाः) जननी, एतावदवस्थाम्=एतादृशीं दशाम्, गता=प्राप्ता, हि=निश्चयेन. अत्र—अस्मिन् काले यदि, माता=जननी, म्रियते=मृत्यु गच्छति, शृगालसहस्रपर्याप्तिका=जम्बुकसहस्रस्य तृप्तिरिति यावत्, भवति=जायते।

समास एवं व्याकरण—(१) सीधु०—सीधु सुरा आसव' तैः पूर्वोक्तत्रिविधैः मद्यैः मत्ता शृगाल०—शृगालसहस्रस्यपर्याप्तिका। (२) सीधु-सिधु+उ, पृषो०। सुरा—सु+क्रन्+टाप्। आसव—आ+सु+अण्। मत्ता-मद्+क्त+टाप्। म्रियते—मृ+लट्। गता-गम्+क्त+टाप्।

विवृति

(१) सीधु–मदिरा पके हुए गन्ने के रस से बनती है। आसव–मदिरा कच्चे गन्ने के रस से बनती है और सुरा-मदिरा चावल को पीस कर बनायी जाती है। (२) प्रस्तुत पद्य में *काव्यलिङ्ग अलङ्कार है*। (३) *आर्या छन्द है। छन्द का लक्षण* है—यस्याः प्रथमे पादे द्वादश मात्रा स्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या॥

भवति किं युष्माकं यानपात्राणि वहन्ति [भोदि, किं तुह्माणं जाणवत्ता वहन्ति।]

महोदये ! क्या आपके (वैभव विस्तार के लिए) यान (जहाज आदि)

चलते हैं ?

चेटा—आर्य नहि-नहि । [अज्ज, णहि णहि ।]

चेटी—आर्य ! नहीं, नहीं !

विदूषक—किं वात्र पृच्छयते । युष्माक खलु प्रेमनिर्मलजले मदनसमुद्रे स्तननितम्बजघनान्येव यानपात्राणि मनोहराणि । एवं वसन्तसेनाया बहुवृत्तान्तमष्टप्रकोष्ठं भवनं प्रेक्ष्य यत्सत्यं जानामि, एकस्थमिव त्रिविष्टपं दृष्टम् । प्रशंसितुं नास्ति मे वाग्विभवः । किं तावद्गणिकागृहम्, अथवा कुबेरभवनपरिच्छेद इति । कुत्र युष्माकमार्या । [किं वा एत्थ पुच्छीअदि । तुह्माण क्खु पेम्मणिम्मलजले मअणसमुद्दे त्थणणिअम्बजहणा ज्जेव जाणवत्ता मणहरणा । एव्वं वसन्तसेणाए बहुवुत्तन्तं अट्टपओट्ठं भवणं पेक्खिअ जं सच्चं जाणामि, एकत्थं विअ तिविट्ठअं दिट्टम् । पससिदुं णत्थि मे वाआविहवो । किं दाव गणिआघरो, अहवा कुबेरभवणपरिच्छेदो त्ति । कहिं तुह्माण अज्जआ ।]

विदूषक—अथवा, इसमें पूछना ही क्या है ? वास्तव में प्रेम रूपी निर्मल जल युक्त कामदेव रूपी समुद्र में तुम्हारे स्तन, नितम्ब और जघाएँ ही सुन्दर यान-पात्र (जहाज) हैं । इस प्रकार वसन्तसेना के विविध वृत्तान्तों वाले आठ खण्डों वाले महल को देखकर सचमुच मैं समझता हूँ कि त्रिभुवन (के वैभव) को एकत्रित देखा है । प्रशंसा करने के लिए मेरी वाणी में सामर्थ्य नहीं है । तो क्या (यह) वेश्या का घर है ? या 'कुबेर' के भवन का एक भाग है ? तुम्हारी 'आर्या' (वसन्तसेना) कहाँ हैं ?

चेटी—आर्य, एषा वृक्षवाटिकायां तिष्ठति । तत्प्रविशत्वार्यः । [अज्ज, एसा रुक्खवाडिआए चिट्ठदि । ता पविसदु अज्जो ।]

चेटी—आर्य ये वृक्ष-वाटिका में बैठी हैं । तो आप प्रवेश करें ।

विदूषक—आश्चर्यं भो. अहो वृक्षवाटिकायाः सश्रीकता । अच्छरीतिकुसुमप्रस्तारा रोपितानेकपादपा. निरन्तरपादपतलनिर्मिता युवतिजघनप्रमाणा पट्टदोला, सुवर्णयूथिकाशेफालिकामालतीमल्लिकानवमल्लिकाकुरवकातिमुक्तकप्रभृतिकुसुमैः स्वयं निपतितैर्यत्सत्यं लघूकरोतीव नन्दनवनस्य सश्रीकताम् । इतश्च उदयत्सूर्यसमप्रभैः कमलरक्तोत्पलैः सन्ध्यायत इव दीर्घिका । अपि च । [(प्रविश्य दृष्ट्वा च ।) ही ही भो, अहो रुक्खवाडिआए एस्सिरीअदा । अच्छरीदिकुसुमपत्थारा रोविदा अणेअपादवा, णिरन्तरपादवतलणिम्मिदा जुवदिजहणप्पमाणा पट्टदोला, सुवण्णजुधिआसेहालिआमालईमल्लिआणोमालिआकुरवआअदिमोत्तअप्पहुदिकुसुमेहिं सअं णिवडिदेहिं जं सच्चं लहुकरेदि विअ णन्दणवणस्स सस्सिरीअदम् । (अन्यतोऽवलोक्य ।) इदो अ उदअन्तसूरसमप्पहेहिं कमलरत्तोप्पलेहिं सझाअदि विअ दीहिआ । अवि अ ।]

विदूषक—(प्रवेश कर और देखकर) आश्चर्य है ! अहा ! वृक्षवाटिका की

शोभा ! अच्छे ढग से पुष्पो का विस्तार करने वाले अनेक वृक्ष लगाये गए हैं। सघन वृक्षावली के नीचे युवतियो के जघन-स्थल की नाप वाला रेशम की डोरी का झूला पड़ा हुआ है। सोनजुही, हरसिंगार, मालती, बेला, चमेली, कुरबक तथा मोगरा आदि स्वय गिरे हुए पुष्पो से सचमुच ही 'नन्दन-वन' की शोभा को तुच्छ कर रही है। (दूसरी ओर देखकर) और इधर उदय होते हुए सूर्य के समान कान्ति वाले कमलो एव लाल कमलो से बावड़ी सन्ध्या जैसी (लाल) लग रही है। और भी—

विवृति

(१) यानपात्राणि=जहाज अथवा नाव। (२) वहन्ति=चलती है। (३) प्रेमनिर्मलजले=प्रेम रूपी निर्मल जल वाले। प्रेम एव निर्मलम् जलम् यत्र। (४) मदनसमुद्रे=काम रूपी सागर मे। मदनः एव समुद्र तस्मिन्। (५) स्तनित=स्तन, चूतड और जांघें (६) 'पश्चाद नितम्ब स्त्रीकटघा क्लीबे तु जघनम् पुर' इत्यमर। (७) एकस्थम्=एकत्रित। (८) त्रिविष्टपम्=स्वर्गलोक। (९) वाग्विभव=वाणी मे सामर्थ्य। (१०) कुबेरभवनपरिच्छेद=कुबेर के महल का एक हिस्सा। कुबेर-भवनस्य परिच्छेद। (११) अच्छरीति०=जिस पर भली-भाँति फूलो का विस्तार होता है। (१२) रोपिता=लगाए गए। (१३) अच्छरीत्या कुसुमानाम् प्रस्तार येषु ते। (१४) रोपिता—रुह्+णिच्+क्त (हस्य पः) (१५) निरन्तर०=सघन वृक्षो के नीचे बने हुए। निरन्तरा ये पादपा तेषाम् तले निर्मिता। (१६) युवति०=युवतियो के चूतड की नाप वाली। युवतिजनस्य जघनम् प्रमाणम् यस्या. सा। (१७) पट्टदोला=रेशमी डोरी का झूला। (१८) सुवर्णयूथिकः०=यह नानाविध पुष्पो के नाम हैं। (१९) उद्यत्सूर्य समप्रभ.=निकलते हुए सूर्य के समान शोभा वाले। उदयन् यः सूर्य तेन सम प्रभा येषाम् ते। (२०) कमलरक्तोत्पलै=साधारण कमलो एव लाल कमलो से। (२१) दीर्घिका=बावडी। (२२) 'वेशन्तः पल्वलम् चाल्प सरो वापी तु दीर्घिका' इत्यमरः। (२३) सन्ध्यायते=सध्या के सदृश हो रही है। सध्या+क्यङ्+लट् (नामधातु)।

एषोऽशोकवृक्षो नवनिर्गमकुसुमपल्लवो भाति।
सुभट इव समरमध्ये घनलोहितपङ्कचर्चिकः॥
एसो असोअवुच्छो णवणिग्गमकुसुम पल्लवोभादि।
सुभडोव्व समरमज्झे घणलोहिदपकचच्चिक्को॥३१॥

अन्वय—नवनिर्गतकुसुमपल्लव, एष, अशोकवृक्ष, समरमध्य, घनलोहितपङ्कचर्चित, सुभट, इव, भाति॥३१॥

पदार्थ—नवनिर्गतकुसुमपल्लवः=नए निकले हुए फूलो एव पत्तो वाला

एषः=यह, अशोकवृक्षः=अशोक का पेड़, समरमध्ये=समराङ्गण में, घनलोहितपङ्कचर्चिकः=गाढ़े रक्त के कीचड़ से लथपथ, सुभटः=बहादुर, भाति=शोभायमान हो रहा है।

अनुवाद-नए निकले पुष्पों एवं पल्लवों वाला यह अशोकवृक्ष समराङ्गण में गाढ़े रक्त के पङ्क से लिप्त योद्धा के समान सुशोभित हो रहा है।

संस्कृत टीका—नवनिर्गतकुसुमपल्लव.=नूतनोत्पन्नपुष्पकिसलयः, एषः=दृश्यमानः, अशोकवृक्षः=अशोकपादपः, समरमध्ये=समराङ्गणे, घनलोहितपङ्कचर्चिकः=सान्द्ररुधिरकर्दमलेपनः, सुभटः=योद्धा, इव,=यथा, भाति=शोभते।

समास एवं व्याकरण—(१) नव०—नवनिर्गतानि कुसुमानिपल्लवादचयस्य तादृशः। घन०—घनैः लोहितपङ्कःचर्चिकः यस्य तादृशः पल्लवः—पल्+क्विप्(०)=पल्; लू+अप=लव, पल् चासौ लवश्च कर्म० स०। लोहित—रुह्+इतेन,रस्य लः पङ्क—पञ्च् (विस्तारे),, कर्माणि करणे वा घञ् कुत्वम्। चर्चिक—चर्ज+अङ्ग+टाप्=चर्चा, चर्चा+कन्+टाप्, इत्वम्। भाति—भा+लट्,।

विवृत्ति

(१) अशोक —न शोकः अस्मादिति, इस वृक्ष को अत्यन्त आनन्ददायक माना जाता है।(२)फूले हुए अशोकवृक्ष की घायल योद्धा से समानता बतलाने के कारण यहा उपमालकार है (३) प्रयुक्त छन्द का नाम है-गाथा।

भवतु। तत्कुत्र युष्माकमार्या। [भोदु। ता कहिं तुह्माणं अज्जआ।] अच्छा तो तुम्हारी 'आर्या' (वसन्तसेना) कहाँ हैं ?

चेटी—आर्य, अवनमय दृष्टिम्। पश्यार्याम्। [अज्ज, ओणामेहि दिट्ठिम् पेक्ख अज्जअम्।]

चेटी—आर्य निगाह नीची कीजिए। 'आर्या' को देखिए।

विदूषक-स्वस्ति भवत्यै। [दृष्ट्व उपसृत्य।) सोत्थि भोदीए।]

विदूषक-(देखकर समीप जा) आपका कल्याण हो!

वसन्तसेना-(संस्कृतमाश्रित्य।) अये मैत्रेयः (उत्थाय।) स्वागतम्।

इदमासनम्। अत्रोपविश्यताम्।

वसन्तसेना-(संस्कृत के माध्यम से) अरे! 'मैत्रेय' हैं? (उठकर) स्वागत है! यह आसन है। यहाँ बैठिये

विदूषकः-उपविशतु भवती। [उपविसदु भोदी]

विदूषक-आप भी बैठिये।

(उभावुपविशतः)

[दोनों बैठ जाते हैं]

वसन्तसेना-अपि कुशल सार्थवाहपुत्रस्य।,

वसन्तसेना-सार्थवाह पुत्र ('आर्य चारुदत्त') कुशल से हैं न ?

विदूषक–भवति, कुशलम् । [भोदि, कुशलम् ।]

विदूषक–भद्रे ! कुशल से हैं ।

विवृति

१. वसन्तसेना को यद्यपि स्त्री होने के कारण प्राकृत बोलनी चाहिए किन्तु योषित् सखी बालवेश्या कितवापसरसाम् तथा । वैदग्ध्यार्थम् प्रदातव्यम् संस्कृतम् चान्तरान्तरा ।" सा० द०।।

वसन्तसेना–आर्य मैत्रेय, अपीदानीं

वसन्तसेना–आय मैत्रेय ! क्या अब भी

गुणप्रवाल विनयप्रशाख विश्रम्भमूल महनीयपुष्पम् ।

त साधुवृक्ष स्वगुणै फलाढ्य सुहृद्विहङ्गा सुखमाश्रयन्ति ? ।।३२।।

अन्वय–गुणप्रवाल, विनयप्रशाख, विश्रम्भमूल, महनीयपुष्पम् । स्वगुणै, फलाढ्य, साधुवृक्ष, सुहृद्विहङ्गा , सुखम्, आश्रयन्ति ? ।।३२।।

पदार्थ–गुणप्रवालम् = जिसके गुण ही नवपल्लव हैं, विनयप्रशाखम् = नम्रता ही डालियाँ हैं, विश्रम्भमूलम् = विश्वास ही जड है, महनीयपुष्पम् = पूज्य चरित्र ही पुष्प है, स्वगुणै = अपने गुणो के द्वारा, फलाढ्यम् = फलो से सम्पन्न, साधुवृक्षम् = सज्जन रूपी पेड पर, सुहृद्विहङ्गा = मित्ररूपीपक्षी गण, सुखम् = सुखपूर्वक, आश्रयन्ति = आश्रय लेते हैं"।

अनुवाद–(उदारता आदि) गुणरूपी नवपल्लव वाले, विनम्रता रूपी शाखा वाले, विश्वास रूपी जड वाले, गौरव या पूजनीय चरित्ररूपी पुष्पवाले, ऐसे अपने गुणो के द्वारा फल सम्पन्न उस सज्जन (चारुदत्त) रूपी वृक्ष पर मित्ररूपी पक्षी गण सुखपूर्वक आश्रय लेते हैं ।

संस्कृत टीका–गुणप्रवालम् = शौर्यौदार्यादि नवकिसलयम्, विनयप्रशाखम्, = विनम्रोत्कृष्ट शाखम्, विश्रम्भमूलम् = विश्वासमूलम्, महनीयपुष्पम्, = पूजनीयचरित-कुसुमम्, स्वगुणै = स्वदयादाक्षिण्यादिगुणै, फलाढ्यम् = फलसम्पन्नम्, तम् = चारुदत्तरूपम्, साधुवृक्षम् = सज्जनपादपम् सुहृद्विहङ्गा = मित्रपक्षिण, सुखम् = सानन्दम्, आश्रयन्ति = अवलम्बन्ते किम् ?

समास एवं व्याकरण–(१) गुणप्रवालम्–गुण एव प्रवाला यस्यतम् । विनय-प्रशाखम् = विनय एव प्रशाखा यस्यतम् । विश्रम्भमूलम्–विश्रम्भ एवमूलम् यस्य तम् । महनीय०–महनीयम् पुष्पम् यस्य तम् । फलाढ्यम्–फलै, आढ्यम् । साधुवृक्षम्–साधु एव वृक्ष तम् । सुहृद्विहङ्गा–सुहृद एव विहङ्गा ।(२)गुण –गुण्+अच् । विनय–वि+नी+अच् । प्रशाखम्–प्र+शाख्+अच्+टाप् । विश्रम्भ–वि+श्रम्भ्+घञ् । मूलम्–मूल+क । फलम्–फल्+अच् आढ्य–आ+ध्यै+क । साधु–साध्+उन ।

वृक्षम्-व्रश्च्+क्स् । विहङ्गाः—विहायसा गच्छति—गम्+खच्+मुम् । आश्रयन्ति-आ+श्रि+अच्+लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में साङ्गरूपकालङ्कार है । चारुदत्त को एक वृक्ष का रूप दिया गया है । (२) महनीय-महनीयत्व (पूज्यता) अथवा महितुम् योग्यम् महनीयम् =यशः । (३) उपजाति छन्द है । छन्द का लक्षण-'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।'

विदूषकः—(स्वगतम्) सुष्ठूपलक्षित दुष्टविलासिन्या । (प्रकाशम्) अथ किम् । सुट्ठु उवलक्खिद दुट्ठविलासिणीए । [अथ इ ।]

विदूषक-(अपने आप) दुष्ट वेश्या ने ठीक पहिचाना । (प्रकट रूप में) और क्या ?

वसन्तसेना-अये, किमागमनप्रयोजनम् ।

वसन्तसेना-जी ! (आपके) आने का क्या प्रयोजन है ?

विदूषक-श्रणोतु भवती । तत्रभवाश्चारुदत्त. शीर्षेऽञ्जलिं कृत्वा भवतीं विज्ञापयति । [सुणादु भोदी । तत्तभव चारुदत्तो सीसे अञ्जलिं कदुअ मोदिविण्णवेदि ।]

विदूषक-आप सुनिये, आदरणीय 'चारुदत्त' सिर पर हाथ जोड कर आपसे निवेदन करते हैं—

वसन्तसेना—(अञ्जलिं बद्ध्वा ।) किमाज्ञापयति ।

वसन्तसेना-(हाथ जोड़कर) क्या आज्ञा देते हैं ?

विदूषकः—मया तत्सुवर्णमाण्ड विश्रम्भादात्मीयमिति कृत्वा द्यूते हारितम् । स च समिको राजवार्ताहारी न ज्ञायते कुत्र गत इति । [मए त सुवण्णमण्डअ विस्सम्भादो अत्तणकेरकेत्ति कदुअ जूदे हारिदम् । सो अ सहिओ रावअत्थहारी ण जाणीअदि कहिं गदो त्ति ।]

विदूषक—''''मैं उस स्वर्ण-पात्र को विश्वास से अपना समझ कर जुए में हार गया । और वह राजा का सदेश ले जाने वाला समिक न जाने कहाँ चला गया ?

चेटी-आर्ये, दिस्टया, वर्धसे । आर्यो द्यूतकरः सवृत्तः । [अज्जए, दिट्ठिआ वड्ढसि । अज्जो जूदिअरो सवुत्तो ।]

चेटी—आर्ये ! भाग्य से बढ रही हो । 'आर्य' (चारुदत्त) जुआरी हो गये ।

वसन्तसेना-कथम् । चौरेणापहृतमपि शौण्डीरतया द्यूते हारितमिति भणति । अतएव काम्यते । [(स्वगतम् ।) कथम् । चोरेण अवहिदं पि सोण्डीरदाए जूदे हारिदं त्ति भणादि । अदो ज्जेव कामीअदि ।]

वसन्तसेना—(अपने आप) क्या चोर के चुरा लेने पर भी उदारता के कारण 'जुए में हरा दिया' ऐसा कहते हैं ? इसीलिए (उनको) चाहती हूँ।

विदूषक—तत्तस्य कारणाद्गृह्णातु भवतीमां रत्नावलीम। [ता तस्स कारणादो गेण्हदु भोदी इमं रअणावलिम।]

विदूषक—'तो उसके कारण आप यह रत्नावली ले लें।'

वसन्तसेना—किं दर्शयामि तमलंकारम्। अथवा न तावत्। [(आत्मगतम्।) किं दसेमि तं अलंकारअम्। (विचिन्त्य।) अथवा ण दाव।]

वसन्तसेना—(अपने आप) क्या उस आभूषण को दिखा दूँ ? (सोचकर) अथवा, तब तक नहीं।

विदूषक—किं तावन्न गृह्णाति भवतीमां रत्नावलीम्। [किं दाव ण गेण्हदि भोदी एदं रअणावलिम्।]

विदूषक—तो क्या आप इस रत्नावली को नहीं लेती हैं ?

वसन्तसेना—(विहस्य सखीमुखं पश्यन्ती।) मैत्रेय, कथं न ग्रहीष्यामि रत्नावलीम्। (इति गृहीत्वा पार्श्वेस्थापयति। स्वगतम्।) कथं क्षीनकुसुमादपि सहकारपादपान्मकरन्दविन्दवो निपतन्ति। (प्रकाशम्) आर्य, विज्ञापय तं द्यूतकरं मम वचनेनार्यचारुदत्तम्—'अहमपि प्रदोषे आर्यं प्रेक्षितुमागच्छामि इति। [मित्तेअ, कध ण गेण्हिस्सं रअणावलिम्। कध क्षीण कुसुमादो वि सहआरपादवादो मअरन्दविन्दओ णिवडन्ति। अज्ज, विण्णवेहि तं जूदिअरं मम वअणेण अज्जचारुदत्तम्—'अहं पि पदोसे अज्जं पेक्खिदुं आअच्छामि' त्ति।

वसन्तसेना—(हँसकर, सखी के मुख को देखती हुई) मैत्रेय ! 'रत्नावली' क्यों न लूँगी ? (लेकर पास में रख लेती है। अपने आप) क्या मञ्जरियों से रहित आम के वृक्ष से (भी) पुष्परस की बूँदें गिरती हैं ? (प्रकट रूप में) आर्य ! उन 'जुआरी आर्य चारुदत्त' से मेरी ओर से कहना कि—'मैं भी सन्ध्याकाल आर्य को देखने आऊँगी।'

विदूषक—(स्वगतम्) किमन्यत्तत्र गत्वा ग्रहीष्यति। (प्रकाशम्) भवति, भणामि—'निवर्ततामस्माद्गणिका प्रसङ्गात्' इति। [किं अण्णं तहिं गदुअ गेण्हिस्सदि। भोदी, भणामि—(स्वगतम्।) 'णिअत्तीअदु इमादो गणिआपसङ्गादो, त्ति।] (इति निष्क्रान्तः।)

विदूषक—(अपने आप) वहाँ जाकर और क्या लेगी ? (प्रकट रूप में) महोदया ! कह दूँगा—(अपने आप) '—कि इस वेश्या की सङ्गति से छूटो।' (चला जाता है।)

वसन्तसेना—चेटि गृहाणैतमलंकारम्। चारुदत्तमभिरन्तुं गच्छाम। [हञ्जे,

गेण्ह एद अलकारअम् । चारुदत्त अहिरमिदुं गच्छह्म ।]

वसन्तसेना—चेटी ! इस आभूषण को ले लो । 'चारुदत्त' से रमण करने के लिये चलती हूँ ।

चेटि-आर्ये, पश्य पश्य । उन्नमत्यकालदुर्दिनम् । [अज्जए, पेक्ख पेक्ख । उण्णमदि अकालदुद्दिणम् ।]

चेटि—आर्ये ! देखिये, देखिये । असमय में दुर्दिन (बादल) उमड़ रहा है ।

(१) उपलक्षितम्=पहचाना गया (२) विश्रम्भात्=विश्वास के कारण। (३) राजवार्ताहारी=राजाओ का सन्देश पहुँचाने वाला । (४) शौण्डीरतया=उदारता के कारण । (५) हीनकुसुमात्=पुष्पों से रहित । (६) सहकारपादपः=आम के पेड से । (७) मकरन्दबिन्दवः=फूलो के रस की बूँदे । (८) अन्यत्=और कुछ । (९) गणिकाप्रसङ्गात्=वेश्या के ससर्ग से । (१०) अकालदुर्दिनम्=असमय का दुर्दिन । 'मेघच्छन्नेऽह्निदुर्दिनम्' इत्यमर. । (११)वर्षम्=वर्षा ।वृष+अच्
वसन्तसेना—

वसन्तसेना—

उदयन्तु नाम मेघा भवतु निशा वर्षमविरतं पततु ।
गणयामि नैव सर्वं दयिताभिमुखेन हृदयेन ॥३३॥

अन्वय:-मेघा', उदयन्तु, नाम, निशा, भवतु, अविरतम्, वर्षं, पततु, (अहं) दयिताभिमुखेन, हृदयेन, सर्वं, नैव, गणयामि ॥३३॥

पदार्थ:-मेघा =घटाएँ, उदयन्तु=घिर आये, अविरतम्=निरन्तर, वर्षम्=वर्षा, पततु=पडे, दयिताभिमुखेन=प्रियतम की ओर लगे हुये या उत्सुक ।

अनुवाद:—बादल भले ही घिर आयें, रात्रि हो जाये, निरन्तर वर्षा होती रहे, प्रियतमोन्मुख हृदय से (इन) सब (बाधाओ) को (मैं कुछ) नही गिनती ।'

संस्कृत टीका-मेघा'=जलदा., उदयन्तु=आविर्भवन्तु, नामेति स्वीकारे, निशा=रात्रि', भवतु=अस्तु, अविरतम्=निरन्तरम्, वर्षम्=वृष्टि, पततु=भवत्वित्यर्थः, दयिताभिमुखेन=प्रियतममिलनोत्सुकेन, हृदयेन=चेतसा, सर्वम्=निखिलम् (मेघादिजनित विघ्नम्), नैव गणयामि=नैव मन्ये ।

समास एवं व्याकरण-(१) उदयन्तु-उद्+इ+अच् । भवतु-भू+लोट् । पततु—पत्+लोट् । दयिता-दय्+क्त : गणयामि-गण्+लट् । वर्षम्-वृष्+अच् (प्र० नपु०) ।

विवृत्ति

(१) प्रस्तुत वर्णन अग्रिम अङ्क की अवतारणा का कार्य करता है । (२) आर्या छन्द है । लक्षण—यस्या. पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश-

द्वितीये चतुर्थके पचदश साऽऽर्या ॥' (३) यह अक मदनिका और शर्विलक की कथा की प्रधानता के कारण उन्ही दोनो के नाम पर है। (४) अकालदुर्दिनम् और उदयन्तु नाम इन पदो से पञ्चम अक की वर्षा की सूचना का सकेत मिलता है।

चेटि, हार गृहीत्वा शीघ्रमागच्छ। [हञ्जे, हार गेण्हिअ लहु आअच्छ।]

चेटी! हार लेकर शीघ्र आओ!

(इति निष्क्रान्ता सर्वे।)

(सब निकल जाते हैं।)

मदनिकाशर्विलको नाम चतुर्थोऽङ्क।

मदनिका और शर्विलक नामक चौथा अक समाप्त।

पञ्चमोऽङ्क

(तत प्रविशत्यासनस्थ सोत्कण्ठश्चारुदत्त ।)

[तदनन्तर आसन पर बैठे हुए उत्कण्ठित चारुदत्त' का प्रवेश होता है।]

चारुदत्त — (ऊर्ध्वमवलोक्य।) उन्नमत्यकालदुर्दिनम्। यदेतत

चारुदत्त—(ऊपर देखकर) असमयदुर्दिन (बादल) उमड रहा है। जो यह-

आलोकित गृहशिखण्डिभिरुत्कलापै—
हंसैर्यियासुभिरपाकृतमुन्मनस्कै ।
आकालिक सपदि दुर्दिनमन्तरीक्ष—
मुत्कण्ठितस्य हृदय च सम रुणद्धि ॥१॥

अन्वय—उत्कलापै, गृहशिखण्डिभि, आलोकित, यियासुभि, उन्मनस्कै, हसै, अपाकृतम्, आकालिकम्, दुर्दिनम्, सपदि अन्तरीक्षम्, उत्कण्ठितस्य, हृदयम्, च, समम्, रुणद्धि ॥१॥

पदार्थ —उत्कलापै =ऊपर की ओर पख किये हुये, गृहशिखण्डिभि,=घर के पालतू मोरो के द्वारा, आलोकितम्=देखा गया, यियासुभि =जाने की इच्छा वाले, उन्मनस्कै =खिन्न मन वाले, हसै =हसों के द्वारा, अपाकृतम्=तिरस्कृत किया गया, आकालिकम्=असमय मे उत्पन्न, दुर्दिनम्=बादलो से ढका दिन, सपदि=शीघ्र ही, अन्तरीक्षम्=आकाश को, उत्कण्ठितस्य=विरही के, हृदयम्=हृदय को, समम्=साथ-साथ, रुणद्धि=ढँक रहा है।

अनुवाद—ऊपर पङ्ख वाले पालतू मयूरो के द्वारा (प्रसन्नतापूर्वक) देखा गया तथा (मानसरोवर को) जाने के इच्छुक खिन्न-चित्त हसो के द्वारा तिरस्कृत किया गया कुसमय का दुर्दिन शीघ्रता से आकाश एव उत्कण्ठित (विरही) के हृदय को साथ-साथ आच्छन्न कर रहा है।

सस्कृत टीका—उत्कलापै =ऊर्ध्वमुत्थापितपुच्छै, गृहशिखण्डिभि = गृह-

पालितमयूरैः, आलोकितम्=दृष्टम्, यियासुभिः=जिगमिषुभि, उन्मनस्कै=खिन्नचित्तैः, हंसैः=मरालैः, अपाकृतम्=तिरस्कृतम, आकालिकम्=असमयोत्पन्नम्, दुर्दिनम्=मेघावरणम्, सपदि=झटिति, अन्तरीक्षम्=आकाशम्, उत्कण्ठितस्य=विरहातुरस्य, हृदयञ्च=चेतश्च, समम्=साकम्, रुणद्धि=आवृणोति ।

समास एवं व्याकरण—(१) उत्कलापैः-उद्गत कलाप येषा तैः। (२) शिखंडी-शिखंड+इनि । यियासुभि—यातुमिच्छव यियासवः या+सन्, द्वित्वादि+उ, तैः। (३) उन्मनस्कैः—उद्गतम् मन येषा ते (ब० स०) । (४) अपाकृतम्-अप+आ+कृ+क्त। आकालिकम्—अकाल+ठञ्। अन्तरीक्षम्—अन्तः स्वर्ग-पृथिव्योर्मध्ये ईक्ष्यते—इति—अन्तर्+ईक्ष+घञ्, पृषो० ह्रस्व. वा। उत्कण्ठित—उद्+कण्ठ्+क्त। (५) शिखण्डिभि —शिखण्ड अस्यास्तीति शिखण्डी ।

विवृति

दर्शन से प्रकट होना है किन्तु दाहिनी आँख के फड़कने से फिर उसमें कमी आती है 'नाद्यापि आगच्छति' से चारुदत्त का अन्वेषण और 'अज्जमित्तेअ कहिं तुम्हाण०' से वसन्तसेना का अन्वेषण तथा मिलनरूप कार्य का अन्वेषण एवं बाद में आरम्भ, यत्नादि मे प्राप्त्याशा नामक तृतीया कार्यावस्था है। 'उपायापाय शङ्काभ्याम् प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः।"—सा० द० ॥

अपि च।

और भी—

मेघो जलार्द्रमहिषोदरभृङ्गनीलो
विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीय ।
आभाति संहतबलाकगृहीतशङ्खः
खं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः ॥२॥

अन्वय—जलार्द्रमहिषोदरभृङ्गनीलः, विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः, संहतबलाकगृहीतशङ्खः, अपरः, केशवः, इव, खम्, आक्रमितुम्, प्रवृत्तः, मेघः, आभाति ॥२॥

पदार्थ—जलार्द्र०=जल में गीले भैंस के पेट एवं भ्रमर के समान नीला, (विष्णु-पक्ष मे भी यही अर्थ होगा।) विद्युत्प्रभा०=बिजली की चमक से बने हुए (मानो) पीले वस्त्र का दुपट्टा धारण करने वाला (विष्णु-पक्ष में विद्युत्प्रभा-तुल्य बने हुए पीताम्बर का उत्तरीय धारण करने वाले), संहतबलाक०=एकत्रित बक-पंक्ति रूपी शङ्ख धारण करने वाला। विष्णु पक्ष मे एकत्रित बक-पंक्ति तुल्य (श्वेत) शङ्ख धारण करने वाले), केशव=विष्णु, खम्=आकाश को, आक्रमितुम्=लाँघने के लिए, प्रवृत्त=तैयार, मेघ=बादल, आभाति=शोभित हो रहा है।

अनुवाद—जल से भीगे हुये भैंसे के उदर एवं भ्रमर के समान नीलवर्ण, बिजली की प्रभा से निर्मित पीताम्बर का दुपट्टा धारण करने वाला [विष्णु पक्ष में—विद्युत्प्रभातुल्य निर्मित पीताम्बर का दुपट्टा धारण करने वाले] एकत्रित बक-पंक्ति रूपी शङ्ख ग्रहण करने वाला [विष्णु पक्ष मे—एकत्रित बक-पंक्ति रूपी (धवल पाञ्चजन्य नामक) शंख धारण करने वाले] दूसरे विष्णु के समान आकाश को व्याप्त करने को उद्यत मेघ सुशोभित हो रहा है।

संस्कृत टीका—जलार्द्रमहिषो०—सलिलसिक्तसैरिभकुक्षिद्विरेफश्याम विद्युत्प्र-भारचितपीतपटोत्तरीय—तडित्कान्तिकृतपीताम्बोत्तरीय, संहतबलाक०—सङ्गतबक-पंक्तिधृतशंख, अपरः—द्वितीय, केशव—विष्णु, इव—यथा, खम्—आकाशम्, आक्रमितुम्—व्याप्तुम्, प्रवृत्त—उद्यत।

समास एवं व्याकरण—(१) जलार्द्र०—जलेन आर्द्रस्य महिषस्य उदरम् भृङ्गः

च तद्वशील: । विद्युत्प्रभा०—विद्युतः प्रभया रचितम् कृतम् पीताम्बरस्योत्तरीयम् येन तादृशः (विष्णु पक्षे–विद्युतः प्रभावत् रचितम् तादृशम् पीतपटोत्तरीयम् यस्य तादृशः) । संहतबलाक०—सहता बलाका एव गृहीता शङ्खो येन तादृशः (विष्णु पक्षे–सहतबलाकवत् गृहीतः शङ्खः पाञ्चजन्यो येन तादृशः) । केशव०–प्रशस्ताः केशाः सन्ति अस्येति केशवः । केश+वः । 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' इति सूत्रेण । आक्रमितुम्—आ+क्रम्+तुमुन् । प्रवृत्तः-प्र+वृत्+क्त । आभाति—आ+भा+लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे समान विशेषणो के द्वारा विष्णु के श्याम शरीर से मेघ की समता दिखलाई गई है । [क] जलार्द्र०, [ख] विद्युत्०, [ग] सहत०, ये तीनो विशेषण दोनों पक्षो मे लागू होते हैं । (२) जलार्द्र०—इस विशेषण से (महिषोदर) की घनी कालिमा सूचित की गई है । (३) सहतबलाक०–बलाकायें मेघों के साथ पक्तिवद्ध या समूह रूप में ही चलती हैं । भावमाम्य—आवद्धमालाः ·········बलाकाः (मेघ० १/१०) बलाकासमुदाय की समता विष्णु के पाञ्चजन्य नामक शख से दिखलाई गई है । (४) गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः, से- विष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाका । (मेघ०) (५) पौराणिक कथा है कि राजा बलि का निग्रह करने के लिए श्री विष्णु ने वामनावतार धारण करके बलि से तीन पग भूमि की याचना की । बलि के स्वीकार कर लेने पर भागवान ने एक पग मे पृथ्वी को, दूसरे पग मे आकाश को और तीसरे पग मे बलि के शरीर को ही आक्रान्त कर लिया । (६) 'लुलापो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः । (७) तडित्सौदामिनीविद्युच्चञ्चलाचपला अपि' इत्यमरः । (८) श्लोक के प्रथम चरण मे उपमा, दूसरे चरण मे विद्युत्प्रभा मे पीतपटोत्तरीय एव तीसरे चरण मे बलाका मे शख का अभेद रूप से आरोप करने के कारण रूपक तथा मेघ मे दूसरे केशव का संशय होने से उत्प्रेक्षालकार है । (९) इस प्रकार इन अलकारों के परस्पर सापेक्ष होने से इस श्लोक मे सङ्कर अलङ्कार है । (१०) प्रसाद गुण है । (११) वैदर्भी रीति है । (१२) वसन्ततिलका छन्द है । (१३) बलिबावन की पौराणिक कथा यहाँ सङ्केतित है ।

अपि च ।

और भी—

केशवगात्रश्यामः कुटिलबलाकावलीरचितशङ्खः ।
विद्युद्गुणकौशेयश्चक्रधर इवोन्नतो मेघः ॥३॥

अन्वय—केशवगात्रश्याम, कुटिलबलाकावलीरचितशङ्खः, विद्युद्गुणकौशेयः, मेघः, चक्रधरः, इव, उन्नतः ॥३॥

पदार्थ —केशवगात्रश्याम =विष्णु के शरीर के समान साँवला, कुटिलबलाकावलीरचितशख =जिसने बगुलों की टेढ़ी पंक्तियों के समूह से शख बनाया है। विद्युद्गुणकौशेय =जिसने बिजली की रेखा रूपी रेशमी वस्त्र (पीताम्बर) धारण कर रखा है। मेघ =बादल, चक्रधर =श्रीकृष्ण, उन्नत =उमड रहा है।

अन्वाद —विष्णु के शरीर के समान श्यामवर्ण, वक्र बकपंक्तियों के समूह द्वारा शख की रचना करने वाला तथा बिजली का रेखा रूपी पीताम्बर धारण करने वाला मेघ चक्रधारी विष्णु के समान उठ रहा है।

संस्कृत टीका – केशवगात्रश्याम.-विष्णुशरीरवन्नील, कुटिल वलाकावली०-वक्रबकपंक्तिसमूहनिर्मितशख, विद्युद्०=तडित्सूत्रचीनवस्त्रविशेष, मेघ-जलद, चक्रधर-विष्णु, इव, उन्नत-आकारो समुद्गत ।

समास एव व्याकरण—(१) केशवस्य गात्रवत श्याम । कुटिल०-कुटिला बलाकावलो तेन रचित शख यन तादृश । विद्युद्गुण०-विद्युद्गुण सा एव कौशेयम् यस्य तादृश । चक्रधर-चक्रस्य धर (षष्ठी तत्पु०) (२) धरतीति धरा-धृ+अच् । बलाका-बल+अक्+अच् 'स्त्रियाम् टाप् च'। कौशेयम्-कोशस्य विकार-ढञ्।

विवृति

(१) सेविष्यन्ते नयनसुभग खे भवन्त बलाका (मेघ० ११९) (२) निर्निमिकौशेयमुपात्तबाणमभ्यगनेपथ्य—मलचकार। (३) द्वितीय श्लोक मे उत्कर्ष ही यहाँ भङ्ग्यन्तर से कहा गया है। (४) यहाँ पर 'केशव०' इत्यादि प्रथम चरण मे, विद्युद्गुण इत्यादि द्वितीय चरण म लुप्तोपमा है, (५) मेघ की चक्रधर के साथ समानता बतलाने के कारण श्रौती उपमा अलकार है। (६) सङ्कर अलकार भी है। (७) आर्या छन्द है। लक्षण—यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि, अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पचदश साऽऽर्या। (८) बलि-बावन की पौराणिक=कथा का सकेत है। (९) कुछ टीकाकारो का कहना है कि द्वितीय श्लोक के भाव का ही इस श्लोक म वणन है अत पुनरुक्तता है।

एता निषिक्तरजतद्रवसंनिकाशा
धारा जवेन पतिता जलदोदरेभ्य ।
विद्युत्प्रदीपशिखया क्षणदृष्टनष्टा-
श्छिन्ना इवाम्बरपटस्य दशा पतन्ति ॥४॥

अन्वय —निषिक्तरजतद्रवसंनिकाशा, जल्दोदरेभ्य, जवेन, पतिता, विद्युत्प्रदीपशिखयाक्षणदृष्टनष्टा, एता, धारा, अम्बरपटस्य, छिन्ना, दशा, इव पतन्ति ॥४॥

पदार्थ–निषिक्तरजत० =पिघली हुई चाँदी के द्रव के तुल्य, जलदोदरेभ्य = मेघ के गर्भ से, जवेन=वेग से, पतिता =गिरती हुई, विद्युत्प्रदीपशिखया–विजली रूपी दीपशिखा से, क्षणदृष्टनष्टा =क्षण भर के लिए दिखलाई देकर नष्ट हो जाने वाली, एता =ये, धारा =धारायें, अम्बरपटस्य=आकाशरूपी वस्त्र के, छिन्ना = टूटे हुए दशा =छोर (के), इव=समान, पतन्ति=गिर रही हैं।

अनुवाद–पिघले हुए चाँदी के द्रव के समान, मेघ के गर्भ से वेगपूर्वक गिरती हुई विजली रूपी दीपशिखा के द्वारा क्षणभर दिखाई देकर अदृश्य हो जाने वाली ये धारायें आकाश रूपी वस्त्र के टूटे हुये छोर के समान गिर रही हैं।

संस्कृत टीका–निषिक्त० = तरलीकृतद्रवीभूतरौप्यतुल्या, जलदोदरेभ्य ॥ मेघमध्येभ्य, जवेन=वेगेन, पतिता =च्युता, विद्युत्प्रदीपशिखया=तडित्दीपाग्र-ज्योत्या, क्षणदृष्टनष्टा =क्षणावलोकिततिरोहिता, एता =दृश्यमाना, धारा = जलधारा, अम्बरपटस्य=आकाश-वस्त्रस्य, छिन्ना =त्रुटिन =दशा =प्रान्तभागा, इव=यथा, पतन्ति=क्षरन्तीत्यर्थ।

समास एवं व्याकरण–(१) निषिक्तरजत०–निषिक्ता रजतद्रवा तत्सन्निकाशा। जलदोदरेभ्य–जलदस्य उदरेभ्य। विद्युत्प्रदीपशिखया–विद्युदेव प्रदीपशिखा तया। क्षणदृष्टनष्टा–क्षणम् दृष्टा तत नष्टा। अम्बरपटस्य–अम्बरमेव पट तस्य। (२) निषिक्तम्–नि+सिच्+क्त। छिन्ना–छिद्+क्त। रजत–रन्ज्+अतच्, नलोप। प्रदीप–प्र+दीप्+णिच्+क। अम्बरम्–अम्ब+रा+क। पट–पट् वेष्टने करणे घञर्थे क.। पतन्ति–पत्+लट्।

विवृति

(१) नष्टदृष्ट के स्थान पर दृष्टनष्टा पाठ अधिक सुन्दर है। (२) दशा–छोर। भाव यह है कि ये जलधारायें नहीं हैं, प्रत्युत आकाश वस्त्र के छोर ही जीर्ण होने के कारण टूट-टूट कर गिर रहे हैं। (३) 'अम्बर व्योम्नि वाससि' इत्यमर। (४) प्रस्तुत पद्य मे उपमा, पुनरुक्तवदाभास, रूपक और उत्प्रेक्षालङ्कार हैं। (५) वसन्ततिलका छन्द है। छन्द का लक्षण–'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग।"

ससक्तैरिव चक्रवाकमिथुनैर्हंसै प्रडीनैरिव
व्याविद्धैरिव मीनचक्रमकरैर्हर्म्यैरिव प्रोच्छ्रितै।
तैस्तैराकृति विस्तरैरनुगतैर्मेघै समभ्युन्नतै
पत्रच्छेद्यमिवेह भाति गगन विश्लेषितैर्वायुना॥५॥

अन्वय–ससक्तै, चक्रवाकमिथुनै, इव, प्रडीनै, हसै, इव, व्याविद्धै, मीन-

चक्रमकरैं, इव, प्रोच्छ्रितैं, हर्म्यैं, इव, तैं, तैं, आकृतिविस्तरैं, वायुना, विश्लेषितैः, अनुगतैं, समभ्युन्नतैं, मेघैः, इह, गगन, पत्रच्छेदम्, इव, भाति ॥५॥

पदार्थ —ससक्तैं =आपस मे मिले हुये, चक्रवाकमिथुनै =चकवा—चकई के जोडो के, प्रडीनैं =उडते हुये, व्याविद्धैं =इधर-उधर फेंके गये, मीनचक्रमकरैं = मछलियो के झुण्ड तथा ग्राहो के, प्रोच्छ्रितैं =अत्यन्त ऊँचे, हर्म्यैं =महलो के, आकृति विस्तरैं =आकार से फैलने वाले, वायुना =हवा से, विश्लेषितैं =छिन्न-भिन्न, अनुगतैं =अनुगामी, अर्थात् एक दूसरे के पीछे चलने वाले, पत्रच्छेदम् =चित्र।

अनुवाद —परस्पर सटे हुए चक्रवाक युगल के समान, उडते हुए हसो के समान, (समुद्र-तरगो से इधर-उधर) फेंके हुए मत्स्य-समुदाय और मगरो के समान, अत्यन्त उच्च भवनो के समान विभिन्न विस्तृत आकारो को प्राप्त करन वाले, वायु द्वारा छिन्न-भिन्न, उमडत हुए मेघो के द्वारा यहाँ आकाश (पत्र-छेद विधि द्वारा) चित्रित-सा सुशोभित हो रहा है।

सस्कृत टीका—ससक्तैं =परस्परमिलितैं, चक्रवाकमिथुनैं =कोकयुगलैं, इव = यथा, प्रडीनैं =उड्डीनैं, हसैः =मरालैः, इव, व्याविद्धैं =प्रक्षिप्तैं भ्रान्तैं वा, मीनचक्रमकरैं =मत्स्यसमूहग्राहैः, इव, प्रोच्छ्रितैं =अत्युन्नतैं, हर्म्यैं =प्रासादैं, इव, तैं तैं =नानाविधैं, आकृतिविस्तरैं =आकारविस्तृतैं, वायुना =पवनेन, विश्लेषितैं =भेद प्रापितैं, अनुगतैं =युक्तैं, समभ्युन्नतैं =अत्युन्नतैं, मेघैं =वलाहकैं, इह =अस्मिन् स्थाने, गगनम् =व्योम, पत्रच्छेदम् =आलख्यलिखितम्, इव, भाति = राजत।

समास एव व्याकरण-(१) मीन०—मीनचक्रैं मकरैं। आकृति०—आकृतिभिः विस्तर येषा तथाभूतैं। पत्रच्छेदम्—पत्रस्य छेद तेन घटितम्। (२) ससक्तैं — सम्+सञ्ज्+क्त। प्रडीनैं —प्र+डी+क्त।

व्याविद्धैं—वि+आ+व्यध्+क्त। हर्म्यैं —हृ+यत्, मुट् च। विश्लेषितैं — वि+श्लिष्+णिच्+क्त। समभ्युन्नतैं —सम्+अभि+उद्+नम्+क्त। पत्रम्— पत्+ष्ट्रन्। छेद —छिद्+घञ्। भाति—भा+लट्।

विवृति

(१) पत्राणा छेदाऽस्मिन्नस्तीति पत्रच्छेद पत्राकाराणा लोहदार्वादिफलकाना बहुविधाकारकर्तनेन निष्पाद्यमान चित्र पत्रच्छेद्यमित्युच्यते।—श्री निवासाचार्य (२) पत्र खण्डो द्वारा चन्दन के लेपन इत्यादि से शरीर के अङ्गो (मुखादि) पर जो चित्रण किया जाता है वह पत्रच्छेद कहलाता है। (३) प्रस्तुत पद्य मे विविध आकृतियो वाले मेघो से चित्रित आकाश का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। (४) आकृति विस्तरैं अनुगतैं' का करण कारक है, *आकृतिविस्तरैं अनुगता तैं*—(*आकार के*

विस्तार से युक्त) मेघों द्वारा। (५) 'कोकश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामक' इत्यमरः। (६) 'प्रडीनोड्डीन—सडीनान्येता. खगगतिक्रिया' इत्यमर। (७) प्रस्तुतश्लोक मे उपमालङ्कार है। (८) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। छन्द का लक्षण—'सूर्याश्वैर्यदि मे सजो सततगा शार्दूलविक्रीडितम्। (९) कुछ टीकाकारो के अनुसार श्लोक म उत्प्रेक्षालङ्कार है—'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।'

एतत्तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृश मेघान्धकार नभो
हृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखी।
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वान गत. कोकिलो
हसा. सप्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्यां गताः॥६॥

अन्वय —मेघान्धकारम्, एतत्, नभ, तद्धृतराष्ट्रवक्त्रसदृश, (वर्तते) अतिदर्पितबल, शिखी, दुर्योधन, वा, हृष्ट, (सन्), गर्जति, कोकिल, अक्षद्यूतजित, युधिष्ठिर, इव, अध्वान, गत, सम्प्रति, हसा, पाण्डवा, इव, वनात्, अज्ञातचर्यां, गता ॥६॥

पदार्थ —मेघान्धकारम्=मेघो के कारण अन्धकारयुक्त, । तद्धृतराष्ट्र॰= उस धृतराष्ट्र के मुख के समान, अतिदर्पितबल =मयूर पक्ष मे—जिसका रूप अत्यन्त गर्वित है। दुर्योधन पक्ष म—जिसकी सेना अत्यन्त गर्वित है, शिखी=मोर, वा= की तरह, हृष्ट =प्रसन्न, कोकिल =कोयल, अक्षद्यूतजित =पाँसे के द्वारा जुए मे हारे हुए, अध्वानम=(युधिष्ठिर-पक्ष मे) वन-मार्ग को, (कोकिल पक्ष मे) ध्वनि—शून्यता या मौन को, वनात्=(हस-पक्ष म) जल से। (पाण्डव पक्ष मे) जङ्गल से। अज्ञातचर्याम्=अज्ञात-वास (पाण्डव पक्ष मे विराट् मे राज्य मे, हस-पक्ष म मानसरोवर मे)।

अनुवाद—बादलो से अँधेरा यह आकाश उस (प्रसिद्ध) धृतराष्ट्र के मुख के समान है, अत्यन्त अहकार युक्त रूप वाला मोर (अत्यन्त अभिमानी सेना वाले) दुर्योधन के समान गरज रहा है, कोयल पाँसे के द्वारा जुये मे हारे हुये युधिष्ठिर के समान मौन (युधिष्ठिर पक्ष म वन-मार्ग को प्राप्त) हो गई है। इस समय हस पाण्डवो के समान वन (हस-पक्ष मे जल, पाण्डव-पक्ष म वनवास) से अज्ञातवास (अर्थात् मानसरोवर) को चले गये हैं।

सस्कृत टीका—मेघान्धकारम्=बलाहकतम, एतत्=इदम्, नभ= गगनम्, तद्धृतराष्ट्र॰=प्रसिद्धधृतराष्ट्रराज्यतुल्यम्, (वर्तते), अतिदर्पितबल =अखर्वगर्वसार, शिखी=मयूर, दुर्योधन =धृतराष्ट्रसुत, वा, हृष्ट =सन्तुष्ट, (सन्), गर्जति=केका करोति, कोकिल =पिक, अक्षद्यूतजित =पाशकक्रीडनजित, युधिष्ठिर =पाण्डुसुत, इव, अध्वानम्=शब्दरहितम् निर्जनस्थानम्, गत.=प्राप्त:,

सम्प्रति=अधुना, हसा=मराला, पाण्डवा=पाण्डुपुत्रा, इव, वनात्=अरण्यात्, अज्ञातचर्याम्=अज्ञातवासम्, गता—प्राप्ता ॥

समास एव व्याकरण–(१) मेघान्धकारम्–मेघै अन्धकारम् यस्मिन् तादृशम् । तद्धृतराष्ट्र०–तस्य धृतराष्ट्रस्य वक्त्रेण सदृशम् । अति०–अतिदर्पितम् बलम् यस्य तथाविध । अक्ष०—अक्षद्यूते जित । शिखी–प्रशस्ता शिखा अस्ति अस्य इति शिखी । अध्वानम्–न ध्वानम् अध्वानम् (न० स०) शिखी–शिखा+इनि । अध्वानम्–नञ्+ध्वन्+घञ्+विभक्ति । हृष्ट–हृष्+क्त । गर्जति–गर्ज्+लट् । कोकिल–कुक्+इलच् । पाण्डव—पाण्डो अपत्यम्—पाण्डु+अण् ।

विवृति

(१) धृतराष्ट्रवक्त्र–के स्थान पर धृतराष्ट्रचक्र (=धृतराष्ट्रचक्र का राज्यचक्र) पाठ उपयुक्त है, क्योकि इस श्लोक मे वर्णित अन्य समानतायें धृतराष्ट्र के राज्य मे ही मिलती हैं, मुख मे नही। (२) नेत्रो के न होने से धृतराष्ट्र का मुख अन्धकार पूर्ण था। उसी तरह आकाश मे भी बादलो के कारण सूर्य-चन्द्रमा रूपी दोनो नेत्रों के नष्ट हो जाने से अँधेरा हो गया है। (३) 'बल गन्ध-रूपे' इति मेदिनी (४) वा–'वा स्यात् विकल्पोपमयोरेवार्थेऽपि' इति विश्व. । यह अव्यय है। (५) 'वने सलिलकानने' इत्यमर । (६) कवि–प्रसिद्धि है कि वर्षाऋतु मे हस मानसरोवर को चला जाता है। (७) अज्ञात—चर्या–(i) विराट के राज्य मे अज्ञातवास को (ii) जनसाधारण से अज्ञात मानसरोवर पर विचरण (चर्या) को।) (८) प्रस्तुत पद्य मे हस आदि की पाण्डव आदि के साथ समानता बतलाने के कारण आर्थी उपमा एव पूर्णोपमालङ्कार है। उपमालङ्कार का लक्षण–'साम्य वाच्यमवैधर्म्य वाक्यैक्ये उपमाद्वयो"। (९) शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

(विचिन्त्य)। चिरं खलु कालो मैत्रेयस्य वसन्तसेनाया सकाश गतस्य। *नाद्यापि आगच्छति।*

[सोच कर] वसन्तसेना' के पास गये हुये 'मैत्रेय' को बहुत देर हो गई। अभी तक नही आये हैं।

(प्रविश्य।)

(प्रवेश कर)

विदूषक—अहो गणिकाया लोभोऽदक्षिणता च। यतो न कथापि कृतान्या। अनेकधा स्नेहानुसार भणित्वा किमपि, एवमेव गृहीता रत्नावली। एतावत्या ऋद्धया न तयाह मणित–'आर्यमैत्रेय, विश्रम्यताम्। मल्लकेन पानीयमपि पीत्वा गम्यताम्' इति। तन्मा तावद्दास्या पुत्र्या गणिकाया मुखमपि द्रक्ष्यामि। (सनिर्वेदम्) सुष्ठु खलूच्यते–अकन्दसमुत्थिता पद्मिनी, अवञ्चको वणिक्, अचौरः सुवर्णकार, अकलहो

ग्रामसमागमः । अलुब्धा गणिकेति दुष्करमेते संभाव्यन्ते' । तत्प्रियवयस्यं गत्वास्माद् गणिकाप्रसंगान्निवर्तयामि । (परिक्रम्य दृष्ट्वा) कथं प्रियवयस्यो वृक्षवाटिकायामुपविष्टस्तिष्ठति । तद्यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) स्वस्ति भवते । वर्धतां भवान् । [अहो गणिआए लोभो अदक्खिणदा अ, जदो ण कधा वि किदा अण्णा । अण्णं कहा सिणेहाणुसारं भणिअ किं पि, एवमेव गहिदा रअणावली । एत्तिआए इद्धीए ण तए अह भणिदो—'अज्जमित्तेअ, वीसमीअदु । मल्लकेण पाणीअं पि पिविअ गच्छीअदु' त्ति । ता मा दाव दासीए धीआए गणिआए मुहं पि पेक्खिस्सम् । सुठ्ठु क्खु वुच्चदि–'अकन्दसमुत्थिता पउमिणी, अवञ्चओ वाणिओ, अचोरो, सुवण्णआरो, अकलहो गामसमागमो, अलुद्धा गणिआ त्ति दुक्करं एदे संभावीअन्ति' । ता पिअवअस्सं गदुअ इमादो गणिआपसंगादो णिवत्तावेमि । कधं पिअवअस्सो रुक्खवाडिआए उवविट्ठो चिट्ठदि । ता जाव उवसप्पामि । सोत्थि भवदे । वड्ढदु भवम् ।]

विदूषक–ओह् ! वेश्या (वसन्त सेना) का लालच और अनुदारता ? (तो देखो) क्योंकि (आभूषण लेने के सिवाय) दूसरी बात भी नहीं की ? अनेक प्रकार से प्रेमानुकूल कुछ कह कर ऐसे ही 'रत्नावली' ले ली । इतना धन होने पर भी उसने मुझसे कहा तक नहीं कि–'आर्य मैत्रेय ! आराम कीजिये । 'मल्लक' (पात्र-विशेष) से तो पानी पीकर जाइये । अतः मैं (उस) दासी की लड़की वेश्या का मुँह भी नहीं देखूँगा । (ग्लानिपूर्वक) ठीक ही कहा जाता है–'बिना जड़ के उगी हुई कमलिनी, न ठगने वाला बनिया, न चुराने वाला सुनार, विवाद-रहित ग्राम-सम्मेलन और निर्लोभी वेश्या–इनकी सम्भावना करना कठिन है ।' तो जाकर प्रिय मित्र को (इस) वेश्या के संसर्ग से अलग करता हूँ । [घूमकर और देखकर] क्या प्रिय मित्र वृक्ष-वाटिका में बैठे हुए हैं ? इसलिए उनके पास जाता हूँ । (पास जाकर) आपका कल्याण हो ! आपकी वृद्धि हो !

चारुदत्तः–(विलोक्य ।) अये, सुहृन्मे मैत्रेयः प्राप्तः । वयस्य, स्वागतम् । आस्यताम् ।

चारुदत्त–[देखकर] अरे ! मेरे मित्र 'मैत्रेय' आ गये ! मित्र स्वागत है । बैठिये ।

विदूषकः–उपविष्टोऽस्मि । [उवविट्ठो ह्मि ।]

विदूषक–बैठ गया हूँ ।

चारुदत्त–वयस्य, कथय तत्कार्यम् ।

चारुदत्त–मित्र ! उस काम को बतलाओ ।

विदूषकः–तत्खलु कार्यं विनष्टम् । [तं क्खु कज्जं विणट्ठम् ।]

विदूषक–वह काम तो बिगड़ गया ।

चारुदत्तः–किं तया न गृहीता रत्नावली ।

चारुदत्त–क्या उसने रत्नावली नहीं ली ?

विदूषक —कुतोऽस्माकमेतावद्भागधेयम् । नवनलिनकोमलमञ्जलिं मस्तके कृत्वा प्रतीष्टा । [कुदो अह्माण एत्तिअं भाअधेअम् । णवणलिणकोमलं अञ्जलिं मत्थए कदुअ पडिच्छिआ ।]

विदूषक—हम लोगो का इतना सौभाग्य कहाँ ? नये कमल के समान कोमल अञ्जलि मस्तक पर करके (उसने रत्नावली) ले ली।

चारुदत्त —तत्किं ब्रवीषि विनष्टमिति ।

चारुदत्त—तब क्यो कहते हो–कि बिगड गया।

विदूषक–भो, कथं न विनष्टम्, यदभुक्तपीतस्य चौरैरपहृतस्याल्पमूल्यस्य सुवर्णभाण्डस्य कारणाच्चतुःसमुद्रसारभूता रत्नमाला हारिता। [भो, कघं ण विणट्ठम्, जं अभुत्तपीदस्स चोरेहिं अवहिदस्स अप्पमुल्लस्स सुवण्णभण्डअस्स कारणादो चदुस्समुद्दसारभूदा रअणमाला हारिदा।]

विदूषक–अजी ! क्यो नही बिगड गया, जो बिना खाये-पिये, चोरो द्वारा चुराये गये, कम कीमत वाले स्वर्ण-पात्र के कारण चारो समुद्रो की सारभूत 'रत्नावली' खो दिया ?

विवृति

(१) अदक्षिणता=कृपणता। (२) अनेकधा=अनेक प्रकार से। (३) एवमेव=ऐसे ही। (४) ऋद्धया=सम्पत्ति स। (५) मल्लकेन=विशिष्ट पात्र से। (६) अकन्दसमुत्थिता=बिना जड के उगी हुई। (७) पद्मिनी=कमल की लता। (८) अवञ्चक =न ठगने वाला। (९) अकलह =बिना झगडा वाला। (१०) ग्रामसभागम =गँवारो का सम्मेलन। (११) अलुब्ध =निर्लोभ। (१२) प्रतीष्टा–ले ली। (१३) दुष्करम्=कठिन। (१४) भागधेयम्–भाग्य। (१५) नवनलिन कोमलम्=नये कमल के समान कोमल। (१६) अभुक्तपीतस्य=न खाये न पिये गये।

चारुदत्त —वयस्य, मा मैवम् ।

चारुदत्त—मित्र ! नही ऐसा नही,

य समालम्ब्य विश्वास न्यासोऽस्मासु तया कृत ।
तस्यैतन्महतो मूल्य प्रत्ययस्यैव दीयते ॥ ७ ॥

अन्वय–तया, य, विश्वास, समालम्ब्य, अस्मासु, न्यास, कृत, तस्य महत, प्रत्ययस्य, एव, एतत्, मूल्य, प्रदीयते ॥७॥

पदार्थ—तया=उस वसन्तसेना के द्वारा, यम्=जिस, विश्वासम्=विश्वास को, समालम्ब्य=पकड कर, अस्मासु=हम लोगो मे, न्यास =धरोहर, कृत =की गई, तस्य=उस, महत =बहुत बडे, प्रत्ययस्य=विश्वास की, एव=ही, एतत्=यह, मूल्यम्=कीमत, प्रदीयते=दी जा रही है।

अनुवाद—उसने जिस विश्वास का अवलम्बन कर हमारे पास धरोहर रखी, उस महान् विश्वास का ही यह मूल्य दिया जा रहा है।

संस्कृत टीका—तय'=वसन्तसेनया, मम्=दृढम्, विश्वासम्=प्रत्ययम्, समालम्ब्य=आश्रित्य, अस्मासु=भादृशधनरहितासु, न्यास =निक्षेप, कृत.=विहित, तस्य=पूर्वोक्तस्य, महत =प्रधान भूतस्य, प्रत्ययस्य=विश्वासस्य, एव, एतत्= रत्नावलीस्वरूपम्, मूल्यम्=अर्घ', प्रदीयते=समर्प्यते।

समास एवं व्याकरण—(१) मूल्यम्—मूल+यत्। न्यास -नि+अस्+घञ्। महत —मह+अति। प्रदीयते-प्र+दा+यक्+लट्। समालम्ब्य—सम्+आ+लम्ब्+क्त्वा→ल्यप्।

विवृत्ति

(१) प्रस्तुत पद्य म अतिशयोक्ति अलङ्कार है। महत प्रत्ययस्य-महान् विश्वास का। चूँकि निर्धन होने पर भी मुझ पर उसने विश्वास किया, अत उसका यह विश्वास-कार्य महान् है।

(२) अनुष्टुप् छन्द है। छन्द का लक्षण—"श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेय सर्वत्र लघु पचमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ॥"

विदूषक—भो वयस्य, एतदपि मे द्वितीयं सतापकारण यत्सखीजनदत्तसज्ञया पटान्तापवारित मुख कृत्वाहमुपहसित। तदह ब्राह्मणो भूत्वेदानी भवन्त शीर्षेण पतित्वा विज्ञापयामि—'निवर्त्यतामात्मास्मादबहुप्रत्यवायाद् गणिकाप्रसङ्गात्'। गणिका नाम पादुकान्तरप्रविष्टेव लेष्टुका दु खेन पुनर्निराक्रियते। अपि च भो वयस्य, गणिका हस्ती कायस्थो भिक्षुश्चाटो रासभश्च यत्रैते निवसन्ति तत्र दुष्टा अपि न जायन्ते। [भो वअस्स, एद पि मे दुदिअ सतावकारण ज सहीअणदिण्णसण्णाए पडन्तोवारिद मुह कदुअ अह उवहसिदो। ता अह वह्मणो भविअ दाणि भवन्त सीसेण पडिअ विण्णवेमि—'णिवत्तीअदु अप्पा इमादो वहुपच्चावाआदो गणिआपसङ्गादो'। गणिआ णाम पादुअन्तरप्पविट्ठा विअ लेट्ठुआ दुक्खेण उण णिराकरी अदि। अवि अ भो वअस्स, गणिआ हत्थी काअत्थओ भिक्खु चाटो रासहो अ जहिं एदे णिवसन्ति तहिं दुट्ठा वि ण जाअन्ति।]

विदूषक—हे मित्र! यह भी मेरा दूसरा सन्ताप का कारण है कि सखियो को सङ्केत कर, आचल से मुँह ढक कर मेरी हँसी की। इसलिये मैं ब्राह्मण होकर (भी आपके पैरो पर) इस समय शिर से गिर कर आपसे विनती करता हूँ कि—'आप अपने को बहुत विघ्नो वाले इस वेश्या-सङ्ग से हटा लें।' वेश्या तो जूते के भीतर घुसी हुई ककडी के समान बाद मे बडी कठिनता से निकाली जाती है। और भी, हे मित्र! वेश्या, हाथी, कायस्थ, भिक्षुक, धूर्त और गधा—जहाँ ये रहते हैं वहाँ दुष्ट भी नही जाते (सज्जनो का तो कहना ही क्या?)।

विवृति

(१) सन्तापकारणम्=दुःख का कारण । (२) सखीजन०=सखी लोगों को संकेत करने वाली । (३) पटान्त०=आँचल से ढका हुआ । (४) बहुप्रत्य०=बहुत दोषों से युक्त वेश्या के संग से । (५) लेष्टुका=ककड़ी । (६) चाट=ठग । (७) रासभ=गधा । (८) परिवादम्=निन्दा को । (९) अवस्थया=हालत से । (१०) उक्त्वा=कह कर, वच्+क्त्वा ।

चारुदत्त—वयस्य, अलमिदानीं सर्वं परिवादमुक्त्वा । अवस्थयैवास्मि नीवारित । पश्य ।

चारुदत्त—मित्र ! इस समय सब निन्दा को कहना व्यर्थ है । (मैं तो) अवस्था (दरिद्र) के द्वारा ही रोक दिया गया हूँ । देखो—

वेगं करोति तुरगस्त्वरितं प्रयातुं
प्राणव्ययान्न चरणास्तु तथा वहन्ति ।
सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चलाः स्वभावा
खिन्नास्ततो हृदयमेव पुनर्विशन्ति ॥८॥

अन्वय—तुरग, त्वरित, प्रयातु वेग, करोति, तु, प्राणव्ययात्, (तस्य), चरणा, तथा, न वहन्ति, (इत्थ), पुरुषस्य, चला, स्वभावा, सर्वत्र, यान्ति (किन्तु), तत, खिन्ना, पुन हृदयम्, एव, विशन्ति ॥८॥

पदार्थ—तुरग=अश्व, त्वरितम्=शीघ्र, प्रयातुम्=जाने के लिए, प्राणव्ययात्=शक्ति के क्षय से, न वहन्ति=नहीं ढोते है, नहीं चलते हैं, चला=चञ्चल, खिन्न=उदास होकर, हृदयमेव=हृदय में ही, विशन्ति=घुस जाते है ।

अनुवाद—अश्व शीघ्र जाने के लिये वेग (धारण) करता है, किन्तु प्राण-शक्ति का क्षय होने के कारण (उसके) पैर वैसे (वेग से) नहीं चलते हैं । मनुष्य की चञ्चल मनोवृत्तियाँ सब स्थानों पर जाती हैं, (किन्तु) वहाँ से खिन्न होकर फिर हृदय में ही प्रविष्ट हो जाती हैं ।

संस्कृत टीका—तुरग=अश्व, त्वरितम्=शीघ्रम्, प्रयातुम्=गन्तुम्, वेगम्=जवम्, करोति=विदधाति, तु=किन्तु, प्राणव्ययात्=बलक्षयात्, (तस्य) चरणा=पादा, तथा=तेन प्रकारेण, न वहन्ति=न चलन्ति, (इत्थम्) पुरुषस्य=जनस्य, चला=चञ्चला, स्वभावा=मनोवृत्तय, सर्वत्र=प्राप्याप्राप्यविषयेषु, यान्ति=गच्छन्ति, (किन्तु) तत=तस्मात्, खिन्ना=दुःखिता, पुन=मुहु, हृदयमेव=चेत एव, विशन्ति=विलीयन्ते ।

समास एवं व्याकरण-(१) तुरग.-तुरेण वेगेन गच्छति इति तुरगः । (२) तुरग-तुर+गम्+ड । त्वरितम्-(अव्य०) त्वर्+क्त+सु) । प्रयातुम्-प्र+या+तुमुन् । करोति-कृ+लट् । चरणाः-चर्+ल्युट् । वहन्ति-वह्+लट् । यान्ति-या+लट् । विशन्ति-विश्+लट् ।

विवृति

(१) 'शक्तिः पराक्रमः प्राणः' इत्यमरः । (२) दरिद्र की सारी इच्छायें धन के बिना उसके मन में ही उत्पन्न होकर विलीन हो जाती हैं । उसी प्रकार वसन्तसेना को प्राप्त करने की मेरी इच्छायें सामर्थ्याभाव से मन में ही सड़ जाती हैं । अन्यत्र भी कहा गया है-"उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः । बालवैधव्यदग्धानां कामिनीनां कुचाविव ॥" प्रस्तुत पद्य में सामान्य से विशेष चारुदत्त की प्रतीति होने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है । (४) दृष्टान्तालङ्कार भी है । लक्षण-"दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्' । (५) प्रसाद गुण है । (६) वसन्ततिलका छन्द है । लक्षण-'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।'

अपि च वयस्य,

और भी, मित्र !

यस्यार्थस्तस्य सा कान्ता धनहार्यो ह्यसौ जनः ।
(स्वगतम् ।) न गुणहार्यो ह्यसौ जनः । (प्रकाशम् ।)
वयमर्थैः परित्यक्ता ननु त्यक्तैव सा मया ॥९॥

अन्वय.-यस्य अर्थाः, (सन्ति), तस्य, सा, कान्ता, (अस्ति), हि, असौ, जनः, धनहार्यः, (अस्ति), वय, अर्थैः, परित्यक्ताः, (अतः), ननु, सा, मया, त्यक्ता एव ॥९॥

पदार्थ.-यस्य=जिसके, अर्थाः=धन, कान्ता=प्रिया, असौ=वह, जनः=व्यक्ति अर्थात् वसन्त सेना, धनहार्यः=धन के द्वारा वश में करने योग्य, परित्यक्ताः=छोड़ दिये गये (हैं), ननु=अवश्य ही, सा=वह, मया=मेरे द्वारा, त्यक्ता=छोड़ी गयी, एव=ही ।

अनुवादः-जिसकी सम्पत्ति है उसी की वह कामिनी है । क्योंकि वह व्यक्ति (वसन्तसेना) धन से वश में करने योग्य है ।

[अपने आप] नहीं, वह व्यक्ति गुणों से वश में करने योग्य है । [प्रकट रूप से] हमें धन ने त्याग दिया है । (अतएव) मेरे द्वारा तो वह (वसन्तसेना) त्याग ही दी गई है ।

संस्कृत टीका.-यस्य=जनस्य, अर्थाः=धनानि, तस्य=जनस्य अर्थवत् इत्यर्थः, =सावसन्तसेना, कान्ता=कामिनी, हि=यतः, असौ जनः=वसन्तसेना, धनहार्यः=

अर्थवशीकर्तुंयोग्य वयम्, अर्थ =धनै, परित्यक्ता = विरहिता, ननु=निश्चितमेव, सा=वसन्तसेना, मया=चारुदत्तेन, त्यक्ता एव=परित्यक्ता एव ।

समास एवं व्याकरण–(१) धनहार्यं –धनेन हार्यं (तृ० त०) । (२) कान्ता–कम्+क्त+टाप् । (३) हार्य –हृ+ण्यत् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे 'सा मया त्यक्तैव' इस वाक्यार्थ के प्रति अर्थाभाव को कारणत्वेन उपन्यस्त किया गया है । अत काव्य लिङ्ग अलकार है । लक्षण–'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वेकाव्यलिङ्गम् निगद्यते' । (२) अनुष्टुप छन्द है । (३) यहाँ अभूताहरण नामक गर्भ सन्धि का अङ्ग है—तत्र व्याजाश्रय वाक्यमभूताहरण मतम् ।' सा० द० । (४) 'वयम्' 'मया' यह वचन भेद होने से भग्नप्रक्रमता दोष है ।

विदूषक—(अधोऽवलोक्यस्वगतम्) यथैव ऊर्ध्वं प्रेक्ष्य दीर्घं निश्वसिति, तथा तकयामि मया विनिवार्यमाणस्याधिकतर वृद्धास्योत्कण्ठा । तत्सुष्ठु खल्वेवमुच्यते–'कामो वाम' इति । (प्रकाशम्)भो वयस्य, भणित च तया—भण चारुदत्तम्—'अद्य प्रदोषे मयात्रागन्तव्यम्' इति । तत्तर्कयामि रत्नावल्या अपरितुष्टापर याचितुमागमिष्यतीति । [जधा एसो उद्ध पेक्खिअ दीह णिस्ससदि, तधा तक्केमिमए विणिवारिअन्तस्स अधिअदर वड्ढिदा से उक्कण्ठा । ता सुट्‌ठुक्खु एव्व वुच्चदि–'कामो वामो' त्ति । भो वअस्स, भणिद अ ताए–भणेहि चारुदत्तम्–'अज्ज पओसे मए एत्थ आअन्तव्व' त्ति । ता तक्केमि रअणावलीए अपरितुट्ठाअवरं मग्गिदु आअमिस्सदि त्ति ।]

विदूषक—(नीचे देख कर अपने आप) जैसे यह ऊपर को देखकर लम्बी आहे भर रहे हैं, उससे अनुमान करता हूँ कि मेरे द्वारा निषेध करने पर इनकी उत्कण्ठा अधिक बढ गई है । तो वास्तव मे यह ठीक ही कहा जाता है कि—'काम वाम (उल्टा) होता है ।' (प्रकट रूप मे) हे मित्र ! और उसने कहा है–'चारुदत्त से कहना कि आज सायकाल मुझे यहाँ (चारुदत्त के घर) आना है ।' तो अनुमान करता हूँ कि 'रत्नावली' से सन्तुष्ट न होकर और (धन) माँगने आयेगी

चारुदत्त—वयस्य, आगच्छतु । परितुष्टा यास्यति ।

चारुदत्त—मित्र ! आने दो, सन्तुष्ट होकर जायेगी ।

विवृति

(१) विनिवार्यमाणास्य=रोके गये, वि+नि+वृ+णिच्+लट् (कर्म० मे) शानच् । (२) उत्कण्ठा=बेचैनी । (३) वृद्धा=बढी हुई । (४) कामो वाम = काम प्रतिकूल होता है ।

चेट—(प्रविश्य) अवेत मानवा, [अवेध माणहे ।]

चेट–[प्रवेश कर] मनुष्यो ! समझो (कि)

यथा यथा वर्षत्यभ्रखण्ड तथा नथा तिम्यति पृष्ठचर्म ।
यथा यथा लगति शीतवातस्तथा तथा वेपते मे हृदयम् ॥१०॥
[जधा जधा वश्शदि अब्भखण्डे तधा तधा तिम्मदि पुट्ठिचम्मे ।
जधा जधा लग्गदि शीक्वादे तधा तधा वेवदि मे हलक्के ॥१०॥]

अन्वय—यथा, यथा, अभ्रखण्ड, वर्षति, तथा, तथा, पृष्ठचर्म, तिम्यति, यथा, यथा, शीतवात, लगति, तथा, तथा, मे, हृदय, वेपत ॥१०॥

पदार्थ—यथा=जैसे, अभ्रखण्डम्=बादलो का टुकड़ा, वर्षति=बरस रहा है, तथा=वैसे, पृष्ठचर्म=पीठ का चमड़ा, तिम्यति=भीग रहा है, शीतवात=ठण्डी हवा, लगति=लग रही है, वेपते=कांप रहा है ।

अनुवाद—जैसे-जैसे मेघ खण्ड बरस रहा है, वैसे-वैसे पीठ की त्वचा भीग रही है । जैसे—जैसे शीतल वायु लग रही है, वैसे-वैसे मेरा हृदय कांप रहा है ।

संस्कृत टीका—यथा-यथा, अभ्रखण्डम्-मेघखण्डम्, वर्षति-जल मुञ्चति, तथा-तथा, पृष्ठचर्म पश्चाद्भाग इत्यर्थ, तिम्यति—आर्द्रतां प्राप्नोति । यथा-यथा, शीतवात—शीतल—वायु, लगति—गात्रम् स्पृशति, तथा-तथा, मे-मम्, हृदयम्—चित्तम्, वपते-कम्पते ।

समास एव व्याकरण—(१) अभ्रखण्डम्—अभ्रस्य खण्डम् । पृष्ठचर्म-पृष्ठस्य (पश्चाद्भागस्य) चर्म इति । (२) अभ्रम्—अभ्र+अच् । खण्डम्—खण्ड्+घञ् । वर्षति—वर्ष+लट् । पृष्ठम्-पृष् स्पृश् वा थक्, नि० साधु, । चर्मन्-चर्+मनिन् । वेपते-वेप्+लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म स्वभावोक्ति अलकार है । (२) उपेन्द्रवज्रा छन्द है । लक्षण—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' । (३) स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादे स्वक्रियारूप वर्णनम्' ।

(प्रहस्य ।)
(हँसकर ।)

वश वादयामि सप्तच्छिद्र सुशब्द वीणा वादयामि सप्ततन्त्री नदन्तीम् ।
गीत गायामि गर्दभस्यानुरूप को मे गाने तुम्बुरुर्नारदो वा ॥ ११॥
[वश वाए शतच्छिद शुशद्द' वीण वाए शत्ततति णदति ।
गीअ गाए गद्दहश्शाणुलूअ के मे गाणे तु वुलू णालदे वा ॥ ११ ॥]

अन्वय- सप्तछिद्र, सुशब्द, वश, वादयामि, सप्ततन्त्रीं, नदन्तीम्, वीणा, वादयामि, गदभस्य अनुरुप, गीत गायामि, मे, गाने, तुम्बुरु, वा, नारद, क ? ॥ ११ ॥

पदार्थ — सप्तछिद्रम्=सात छेदो से युक्त, सुशब्दम्=सुन्दर शब्दो से युक्त, वशम्=बासुरी को, वादयामि=बजाता हूँ, सप्ततन्त्रीम्=सात तारो (से बजने) वाली, नदन्तीम्=झकार करती हुई, अनुरूपम्=समान, गायामि=गाता हूँ, तुम्बुरु=तुम्बुरु नामक गन्धर्व, जो महान सङ्गीतकार माना जाता है। नारद =ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि नारद, जो वीणावादन मे श्रेष्ठ हैं।

अनुवाद — सात छेदो वाली तथा सुन्दर शब्द वाली बाँसुरी बजाता हूँ। सात तारो वाली झङ्कार करती हुई वीणा बजाता हूँ। गधे के समान गीत गाता हूँ। मेरे गाने पर तुम्बुरु और नारद कौन है ? (अर्थात् मेरे गाने के समक्ष वे भी तुच्छ हैं)

संस्कृत टीका— सप्तछिद्रम्—सप्तरन्ध्रम्, सुशब्दम्—शाभनशब्दयुक्तम्, वशम्—वेणुम्, वादयामि—ध्वनितम् करोमि, सप्ततन्त्रीम-सप्ततन्तुवतीम्, नदन्तीम्—रणन्तीम्, वीणाम्— विपञ्चीम् वादयामि, गर्दभस्य— खरस्य, अनुरूपम्— योग्यम्, गीतम्—गानम्, गायामि— नदामि, मे— मम, गाने— गीतारावने, तुम्बुरु—देव समाया गायक विशेष, वा— अथवा, नारद —देवर्षि, क ? कीदृग्गुण युक्त ? तुच्छ इत्यर्थ ।

समास एव व्याकरण— (१) सप्तछिद्रम्—सप्तसख्याकानि छिद्राणि यत्र तादृशम्। सप्ततन्त्रीम— सप्ततन्त्र्य यस्या तादृशीम्। अनुरूपम्— रूपस्य योग्यम्। (२) नदन्तीम्—नद्+लट्+शतृ+ङीप्। सप्तन—सप्+तनिन्। तन्त्री— तन्त्+ई, तन्त्रि+ङीप्। नारद — नरस्य धर्मो नारम्, तत् ददाति— दा+क। वीणा— वेतिवृद्धिमात्रमपगच्छति— वी+न, नि०, णत्वम्।

विवृति

(१) सुशब्दम— यह वशम का विशेषण है अथवा वादयामि का क्रिया-विशेपण है। (२) चेट के कहने का तात्पर्य यह है कि गायन— वादन मे तुम्बुरु ही लोक प्रसिद्ध हैं, किन्तु ये दोनो मेरी समता करने मे असमर्थ हैं। (३) प्रस्तुत पद्य मे उपमान तुम्बुरु आदि से उपमेय चेट की श्रेष्ठता बतलाने के कारण व्यतिरेकालकार है। (४) उपजाति छन्द है। लक्षण— 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौग। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। अनन्तरोदीरितिलक्ष्मभाजौ पादौयदीयावुपजातयस्ता ॥

आज्ञप्तोऽस्म्यार्यया वसन्तसेनया— 'कुम्भीलक, गच्छत्वम्। ममागमनमार्यचारुदत्तस्य निवेदय' इति। तद्यावदार्यचारुदत्तस्य गेह गच्छामि। (परिक्रम्यप्रविष्टकेन दृष्ट्वा) एष चारुदत्तो वृक्षवाटिकाया तिष्ठति। एषोऽपि स दुष्टबटुक तद्यावदुपसर्पामि। कथमाच्छादित द्वार वृक्षवाटिकाया। भवतु। एतस्य दुष्ट बटुकस्य सज्ञा ददामि। [आणत्तह्मि अज्जआए वशन्तशेणाए— 'कुम्भीलआ, गच्छ तुमम्। मम आगमण अज्जचारुदत्तश्श णिवेदेहि' त्ति। ता जाव अज्जचारुदत्तश्श गेह गच्छामि। एशे चालुदत्ते रुक्खवाडिआए चिट्ठदि। एशे वि शे दुट्टवडुके। ता जाव उवशप्पेमि।

कध ढक्किदे दुवाले रुक्खवाडिआए । भोदु । एदस्स दुट्टबडुकस्स सण्ण देमि ।]
(इति लोष्टगुटिका क्षिपति ।)

'आर्या वसन्तसेना' के द्वारा (मुझे) आज्ञा दी गई है कि– "कुम्भीलक ! जा मेरा आना 'आर्य चारुदत्त' से निवेदन करो।" तो जब तक 'आर्य चारुदत्त' के घर जाता हूँ। [घूमकर प्रवश द्वार से देख कर] ये चारुदत्त वृक्ष–वाटिका म बैठे हैं। यह वह 'दुष्ट ब्राह्मण' ('विदूषक') भी। तो जब तक पास चलता हूँ। क्या वृक्ष–वाटिका का द्वार बन्द है ? अच्छा, इस दुष्ट ब्राह्मण को सङ्केत करता हूँ। [कङ्कडियाँ फेंकता है।]

विदूषक –अये, क इदानीमेष प्राकारवेष्टितमिव कपित्थ मा लोष्टकैस्ताडयति। [अए, को दाणि एसो पाआरवेट्टिद विअ कइत्थ म लोट्टकेहि ताडेदि।]

विदूषक– अरे ! कौन यह चहारदीवारी से घिरे हुए 'कैथ' के समान मुझे कङ्कडियो से मार रहा है ?

चारुदत्त – आरामप्रासादवेदिकाया क्रीडद्भि पारावतै पातित भवेत्।

चारुदत्त– (कदाचित्) उपवन के भवन की चौकी पर खेलते हुए कबूतरो ने गिराया हो।

विदूषक – दास्या पुत्र दुष्टपारावत, तिष्ठ यावदेतेन दण्डकाष्ठेन सुपक्वमिव चूतफलमस्मात्प्रासादाद्भूमौ पातयिष्यामि। [दासीए पुत्त दुट्टपारावअ, चिट्ठ चिट्ठ। जाव एदिणा दण्डकट्ठेण सुपक्क विअ चूअफल इमादो पासादादो भूमीए पाडइस्सम्।]
(इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य धावति।)

विदूषक– दासी के बच्चे, दुष्ट कबूतर ! ठहर ठहर, जब तक इस लकडी के डण्डे से खूब पके हुए आम के समान, (तुझे) इस भवन से भूमि पर गिरा दूँ। [एसा कह कर लकडी का डण्डा उठाकर दौडता है।]

चारुदत्त – (यज्ञोपवीतम् आकृष्य।) वयस्य, उपविश। किमनेन। तिष्ठतु दयितासहितस्तपस्वी पारावत।

चारुदत्त - [जनेऊ को खीचकर]। मित्र ! बैठो ! इससे क्या ? प्रेमिका के साथ बचारा कबूतर बैठे।

चेट – कथ पारावत पश्यति। मा न पश्यति। भवतु। अपरया लोष्टगुटिकया पुनरपि ताडयिष्यामि। [कध पारावद पेक्खदि। म ण पेक्खदि। भोदु। अवराए लोट्टगुडिकाए पुणो वि ताडइस्सम्।] (तथा करोति।)

चेट– क्या कबूतर को देखते हो ? मुझे नही देखत ? अच्छा, दूसरी कङ्कडी से फिर मारूँगा। [वैसा करता है।]

विदूषक – (दिशोऽवलोक्य।) कथ कुम्भीलक। तद्यावदुपसर्पामि। (उपसृत्य।

द्वारमुद्घाट्य ।) अरे कुम्भीलक, प्रविश । स्वागत ते । [कध कुम्भीलओ । ता जाव उवसप्पामि । अरे कुम्भीलअ, पविश । साअद दे ।]

विदूषक-- [चारो ओर देखकर] क्या 'कुम्भीलक' है ? तो जब तक पास जाता हूँ । [पास मे जाकर, दरवाजा खोलकर] अरे कुम्भीलक ! भीतर आओ, तुम्हारा स्वागत है ।

चेट -- (प्रविश्य) आर्य, वन्दे । [अज्ज, वन्दामि ।]

चेट-- [प्रवेश कर] आर्य प्रणाम करता हूँ ।

विदूषक -- अरे, कुत्र त्वमीदृशे दुर्दिनेऽन्धकार आगत । अरे, कहिं तुम ईदिसे दुद्दिणे अन्धआरे आअदो ।]

विदूषक-- अरे ! ऐसे अन्धकारपूर्ण दुर्दिन मे तुम कहाँ आ गये ?

चेट -- अरे, एषा सा । [अले, एषा शा ।]

चेट-- अरे ! यह वह (है) ।

विदूषक -- केषा का [का एसा का ।]

विदूषक-- कौन यह कौन ?

चेट -- एषा सा । [एशा शा ।]

चेट-- यह वह (है) ।

विदूषक -- किमिदानी दास्या पुत्र, दुर्भिक्षकाले वृद्धरङ्क इवोर्ध्वक श्वासायसे-- 'एषा सा सा' इति । [कि दाणि दासीए पुत्ता, दुब्भिक्खकाले वुड्ढरङ्को विअ उद्धक सासाअसि-- एसा सा से' त्ति ।]

विदूषक-- दासी का बेटा ! इस समय क्यो, अकाल के समय बूढे गरीब के समान, लम्बी साँस ले रहा है-- 'यह वह वह ।'

चेट - अरे त्वमपीदानीमिन्द्रमहकामुक इव सुष्ठु कि काकायसे-- 'का का' इति । [अले, तुम पि दाणि इन्दमहकामुको विअ सुट्ठु कि काकाअसि--'का के' त्ति ।]

चेट-- अरे ! तुम भी इस समय इन्द्रोत्सव के इच्छुक कौवे के समान अच्छा का का (कौन कौन या काँव-काँव) क्यो कर रहे हो ?

विदूषक -- तत्कथय । [ता कहेहि ।]

विदूषक— तो कहो ।

चेट -- (स्वगतम्) भवतु । एव भणिष्यामि । अरे, प्रश्न ते दास्यामि । [भोदु । एव्व भणिश्शम् । (प्रकाशम्) अले, पण्ह दे दइश्शम् ।]

चेट-- [अपने आप] अच्छा, इस प्रकार कहूँगा । (प्रकट रूप मे) अरे ! तुमको एक प्रश्न दूँगा ।

विदूषक -- अह ते मस्तके पाद दास्यामि । [अह दे मुण्डे गोड्ड दइश्शम् ।]

विदूषक-- मै तेरे सिर पर लात दूंगा ।

चेट– अरे, जानीहि तावत्, तेन हि कस्मिन्काले चूता मुकुलिता भवन्ति । [अले, जाणाहि दाव, तेण हि कश्शि काले चूआ मोलेन्ति ।]

चेट– अरे ! समझो तो, किस समय में आम मञ्जरीयुक्त होते हैं ?

विदूषक – अरे, दास्याः पुत्र, ग्रीष्मे । [अरे दासीए पुत्ता, गिह्मे ।]

विदूषक– अरे दासी के बच्चे ! गर्मी मे ।

चेटः– (सहासम्) अरे, नहि नहि । [अले, णहि णहि ।]

चेट– [हँसी के साथ] अजी ! नही नही ।]

विदूषक.– (स्वगतम्) किमिदानीमत्र कथयिष्यामि । (विचिन्त्य) भवतु चारुदत्तं गत्वा प्रक्ष्यामि । (प्रकाशम्) अरे, मुहूर्तक तिष्ठ । (चारुदत्तमुपसृत्य) भो वयस्य, प्रक्ष्यामि तावत्, कस्मिन्काले चूता मुकुलिता भवन्ति । [किं दाणिं एत्थ कहिस्सम् । भोदु । चारुदत्तं गदुअ पुच्छिस्सम् । अरे, मुहुत्तअ चिट्ठ । भो वअस्स, पुच्छिस्स दाव, कस्सि काले,चूआ मोलेन्ति ।]

विदूषक– [अपने आप] अब यहाँ क्या कहूँगा ? [सोचकर] अच्छा, 'चारुदत्त' से जाकर पूछूगा । [प्रकट रूप मे] अरे ! क्षण भर ठहर । [चारुदत्त के पास जाकर] हे मित्र ! जरा पूछता हूँ किस समय आम में मञ्जरियाँ लगती हैं ?

चारुदत्तः– मूर्ख, वसन्ते ।

चारुदत्त– मूर्ख ! वसन्त मे ।

विदूषक.– (चेट मुपगम्य) मूर्ख, वसन्ते । [मुक्ख, वसन्ते ।]

विदूषक– [चेट के समीप जाकर] मूर्ख ! वसन्त मे ।

चेट.– द्वितीय ते प्रश्न दास्यामि । सुसमृद्धाना ग्रामाणा का रक्षा करोति । [दुदिअ दे पण्ह् दइश्शम् । शुशमिद्धाण गामाण का लक्खअ कलेदि ।]

चेट– दूसरा सवाल तुम्हें दूँगा । सम्पत्तिशाली गाँवो की रक्षा कौन करता है ?

विदूषक – अरे, रथ्या । [अरे, रच्छा ।]

विदूषक– अरे ! गली ।

चेटः–(सहासम् ।) अरे नहि नहि । [अले णहि णहि ।]

चेट–[हँसी के साथ] अरे ! नही नही ।

विदूषकः–भवतु । सशये पतितोऽस्मि । (विचिन्त्य) भवतु चारुदत्त पुनरपि प्रक्ष्यामि । [भोदु । ससए पडिदह्मि । भोदु । चारुदत्त पुणो वि पुच्छिस्सम् ।] (पुनर्निवृत्य चारुदत्त तथैवोदाहरति ।)

विदूषक–अच्छा, सन्देह मे पड़ गया हूँ । [सोचकर] अच्छा, चारुदत्त से फिर भी पूछूँगा । [फिर लौटकर चारुदत्त से उसी प्रकार कहता है ।]

चारुदत्तः–वयस्य, सेना ।

चारुदत्त–मित्र ! सेना ।

विदूषक –(चेटमुपगम्य) अरे दास्याः पुत्र, सेना । [अरे दासीए पुत्ता, सेणा।]

विदूषक–[चेट के निकट जाकर] अरे ! दासी के बच्चे ! सेना ।

चेट –अरे, द्वे अप्येकस्मिन्कृत्वा शीघ्रं भण । [अले, दुवे वि एक्कस्सिं कदुअ शिग्घं मणाहि ।]

चेट—अरे ! दोनो को एक मे मिलाकर शीघ्र कहो !

विदूषक –सेनावसन्ते । [सेणावसन्ते ।]

विदूषक–'सेनावसन्त' ।

चेट –ननु परिवर्त्य मण । [ण पलिवत्तिअ मणाहि ।]

चेट—अजी ! पलटकर बोलो ।

विदूषक –सेनावसन्ते । [(कायेन परिवृत्य ।) सेणावसन्ते ।]

विदूषक–[शरीर से उलटकर] 'सेनावसन्त'।

चेटः –अरे मूर्ख बटुक, पदे परिवर्तय । [अले मुक्ख वडुका, पदाइ पलिवत्तावेहि ।]

चेट–अरे मूर्ख ब्राह्मण के बच्चे ! पद (शब्द) मे परिवर्तन करो ।

विदूषक.—(पादौपरिवर्त्य) सेनावसन्ते । [सेणावसन्ते ।]

विदूषक–[पैरो को घुमाकर] 'सेनावसन्त' ।

विट –अरे मूर्ख, अक्षरपदे परिवर्तय । [अले मुक्ख, अक्खलपदाइ पलिवत्तावेहि।]

विट–अरे मूर्ख ! अक्षर वाले पद (शब्द) मे परिवर्तन करो ।

विदूषक —(विचिन्त्य) वसन्तसेना । [वसन्तसेणा ।]

विदूषक—[सोचकर] 'वसन्तसेना' ।

चेटः–एषा सागता । [एशा शा आअदा ।]

चेट–यह वह आयी है ।

विदूषक –तद्यावच्चारुदत्तस्य निवेदयामि । (उपसृत्य) भो चारुदत्त, धनिकस्त आगतः। [ता जाव चारुदत्तस्स णिवेदेमि । भो चारुदत्त, धणिओ दे आअदो ।]

विदूषक–तो जब तक चारुदत्त से निवेदन करता हूं । [पास जाकर] हे चारुदत्त ! तुम्हारा महाजन आया है ।

चारुदत्त —कुतोऽस्मत्कुले धनिक ।

चारुदत्त–हमारे कुल मे महाजन कहाँ से आया ?

विदूषक –यदि कुले नास्ति, तद्द्वारेऽस्ति एषा वसन्तसेनागता । [जइ कुले णत्थि, ता दुवारे अत्थि । एसा वसन्तसेणा आअदा ।]

विदूषक—यदि कुल मे नही है, तो दरवाजे पर है । *यह वसन्तसेना आई है ।*

चारुदत्त—वयस्य, किं मा प्रतारयसि ।

चारुदत्त—मित्र ! क्या मुझे ठगते हो ?

विदूषक—यदि मे वचने न प्रत्ययसे, तदिमं कुम्भीलकं पृच्छ । अरे दास्याः पुत्र कुम्भीलक, उपसर्प । [जइ मे वअणे ण पत्तिआअसि, ता एदं कुम्भीलअं पुच्छ । अरे दासीए पुत्ता कुम्भीलअ, उवसप्प ।]

विदूषक—यदि मेरी बात पर विश्वास नहीं है तो इस 'कुम्भीलक' से पूछ लो । अरे दासी के बच्चे कुम्भीलक ! पास आओ ।

चेट—(उपसृत्य) आर्य, वन्दे । [अज्ज, वन्दामि ।]

चेट—[समीप जाकर] आर्य ! प्रणाम करता हूँ ।

चारुदत्त—भद्र स्वागतम् । कथय सत्यं प्राप्ता वसन्तसेना ।

चारुदत्त—सौम्य ! स्वागत है ! कहो, सचमुच वसन्तसेना आ गई ?

चेट—एषा सागता वसन्तसेना । [एसा सा आअदा वसन्तसेणा ।]

चेट—यह वह वसन्तसेना आ गई ।

चारुदत्त—(सहर्षम् ।) भद्र, न कदाचित्प्रियवचनं निष्फलीकृतं मया । तद्गृह्यतां पारितोषिकम् । (इत्युत्तरीयं प्रयच्छति ।)

चारुदत्त—[प्रसन्नतापूर्वक] भद्र ! कभी प्रिय वचन मैंने निष्फल नहीं किया तो पुरस्कार लो !

चेट—(गृहीत्वा प्रणम्य सपरितोषम्) यावदार्यायै निवेदयामि । [अज्जआए णिवेदेमि ।] (इति निष्क्रान्तः ।)

चेट—[लेकर प्रणाम करके, सन्तोषपूर्वक] जब तक आर्या (वसन्तसेना) से निवेदन करता हूँ । [निकल जाता है ।]

विदूषक—भो, अपि जानासि, किं निमित्तमीदृशे दुर्दिन आगतेति । [भो, अवि जाणासि, किंणिमित्तं ईदिसे दुद्दिणे आअदेत्ति ।]

विदूषक—अरे ! जानते हो, किस कारण ऐसे दुर्दिन में आई है ?

चारुदत्तः—वयस्य, न सम्यगवधारयामि ।

चारुदत्त—मित्र ! ठीक-ठीक नहीं समझ पाता ।

विदूषकः—मया ज्ञातम् । अल्पमूल्या रत्नावली, बहुमूल्यं सुवर्णभाण्डमिति न परितुष्टापरं याचितुमागता । [मए जाणिदम् । अप्पमुल्ला रअणावली, बहुमुल्लं सुवण्णभडअं त्ति ण परितुट्टा अवरं मग्गिदुं आअदा ।]

विदूषक—मैं समझ गया । रत्नावली कम कीमत की है, स्वर्णपात्र अधिक कीमत का है, इसलिए सन्तुष्ट न होकर कुछ और माँगने आई है ।

चारुदत्त—(स्वगतम् ।) परितुष्टा यास्यति ।

चारुदत्त—[अपने आप] सन्तुष्ट होकर जायेगी ।

विदूषक –(चेटमुपगम्य) अरे दास्या पुत्र, सेना । [अरे दासीए पुत्ता, सेणा।]

विदूषक–[चेट के निकट जाकर] अरे ! दासी के बच्चे ! सेना ।

चेट –अरे, द्वे अप्येकस्मिन्कृत्वा शीघ्रं भण । [अले, दुवे वि एक्कस्सिं कदुअ शिग्घ भणाहि ।]

चेट—अरे ! दोनो को एक में मिलाकर शीघ्र कहो !

विदूषक –सेनावसन्ते । [सेणावसन्ते ।]

विदूषक– सेनावसन्त' ।

चेट —ननु परिवर्त्य भण । [ण पलिवत्तिअ भणाहि ।]

चेट—अजी ! पलटकर बोलो !

विदूषक –सेनावसन्ते । [(कायेन परिवृत्य ।) सेणावसन्ते ।]

विदूषक–[शरीर से उलटकर] 'सेनावसन्त'।

चेट –अरे मूर्ख बटुक, पदे परिवर्तय । [अले मुक्ख बडुका, पदाइ पलिवत्तावेहि ।]

चेट–अरे मूर्ख ब्राह्मण के बच्चे ! पद (शब्द) मे परिवर्तन करो ।

विदूषक –(पादौपरिवर्त्य) सेनावसन्ते । [सेणावसन्ते ।]

विदूषक–[पैरों को घुमाकर] सेनावसन्त' ।

विट –अरे मूर्ख, अक्षरपदे परिवर्तय । [अले मुक्ख, अक्खलपदाइ पलिवत्तावेहि।]

विट–अरे मूर्ख ! अक्षर वाले पद (शब्द) मे परिवर्तन करो ।

विदूषक –(विचिन्त्य) वसन्तसेना । [वसन्तसेणा ।]

विदूषक—[सोचकर] 'वसन्तसेना' ।

चेट –एषा सागता । [एशा शा आअदा ।]

चेट–यह वह आयी है ।

विदूषक –तद्यावच्चारुदत्तस्य निवेदयामि । (उपसृत्य) भो चारुदत्त, धनिकस्त आगत । [ता जाव चारुदत्तस्स णिवेदेमि । भो चारुदत्त, धणिओ दे आअदो ।]

विदूषक–तो जब तक चारुदत्त से निवेदन करता हूँ। [पास जाकर] हे चारुदत्त ! तुम्हारा महाजन आया है ।

चारुदत्त —कुतोऽस्मत्कुले धनिक ।

चारुदत्त–हमारे कुल मे महाजन कहाँ से आया ?

विदूषक –यदि कुले नास्ति, तद्द्वारेऽस्ति एषा वसन्तसेनागता । [जइ कुले णत्थि, ता दुवारे अत्थि । एसा वसन्तसेणा आअदा ।]

विदूषक—यदि कुल मे नही है, तो दरवाजे पर है । यह वसन्तसेना आई है ।

चारुदत्त—वयस्य, किं मां प्रतारयसि ।

चारुदत्त—मित्र ! क्या मुझे ठगते हो ?

विदूषकः—यदि मे वचने न प्रत्ययसे, तदिमं कुम्भीलकं पृच्छ । अरे दास्याः पुत्र कुम्भीलक, उपसर्प । [जइ मे वअणे ण पत्तिआअसि, ता एदं कुम्भीलअं पुच्छ । अरे दासीए पुत्ता कुम्भीलअ, उवसप्प ।]

विदूषक—यदि मेरी बात पर विश्वास नहीं है तो इस 'कुम्भीलक' से पूछ लो । अरे दासी के बच्चे कुम्भीलक ! पास आओ ।

चेट—(उपसृत्य) आर्य, वन्दे । [अज्ज, वन्दामि ।]

चेट—[समीप जाकर] आर्य ! प्रणाम करता हूँ ।

चारुदत्त—भद्र स्वागतम् । कथय सत्यं प्राप्ता वसन्तसेना ।

चारुदत्त—सौम्य ! स्वागत है ! कहो, सचमुच वसन्तसेना आ गई ?

चेट—एषा आगता वसन्तसेना । [एसा आअदा वसन्तसेणा ।]

चेट—यह वह वसन्तसेना आ गई ।

चारुदत्त—(सहर्षम् ।) भद्र, न कदाचित्प्रियवचनं निष्फलीकृतं मया । तद्गृह्यतां पारितोषिकम् । (इत्युत्तरीयं प्रयच्छति ।)

चारुदत्त—[प्रसन्नतापूर्वक] भद्र ! कभी प्रिय वचन मैंने निष्फल नहीं किया तो पुरस्कार लो !

चेट—(गृहीत्वा प्रणम्य सपरितोषम्) यावदार्यायै निवेदयामि । [अज्जआए णिवेदेमि ।] (इति निष्क्रान्तः ।)

चेट—[लेकर प्रणाम करके, सन्तोषपूर्वक] जब तक आर्या (वसन्तसेना) से निवेदन करता हूँ । [निकल जाता है ।]

विदूषक—भो, अपि जानासि, किं निमित्तमीदृशे दुर्दिन आगतेति । [भो, अवि जाणासि, किंणिमित्तं ईदिसे दुद्दिणे आअदेत्ति ।]

विदूषक—अरे ! जानते हो, किस कारण ऐसे दुर्दिन में आई है ?

चारुदत्तः—वयस्य, न सम्यगवधारयामि ।

चारुदत्त—मित्र ! ठीक-ठीक नहीं समझ पाता ।

विदूषकः—मया ज्ञातम् । अल्पमूल्या रत्नावली, बहुमूल्यं सुवर्णभाण्डमिति न परितुष्टापरं याचितुमागता । [मए जाणिदम् । अप्पमुल्ला रअणावली, बहुमुल्लं सुवण्णभंडअं त्ति ण परितुट्टा अवरं मग्गिदुं आअदा ।]

विदूषक—मैं समझ गया । रत्नावली कम कीमत की है, स्वर्णपात्र अधिक कीमत का है, इसलिए सन्तुष्ट न होकर कुछ और माँगने आई है ।

चारुदत्त—(स्वगतम् ।) परितुष्टा यास्यति ।

चारुदत्त—[अपने आप] सन्तुष्ट होकर जायेगी ।

(तत प्रविशत्युज्ज्वलाभिसारिकावेशेन वसन्तसेना, सोत्कण्ठा छत्रधारिणी, विटश्च ।)

[तदनन्तर शुक्लाभिसारिका के वेश मे उत्कण्ठित 'वसन्तसेना', छत्रधारिणी (सेविका) और विट प्रवेश करते हैं ।]

विवृति

(१) प्रविष्टकेन=प्रवेश द्वार से। (२) सञ्ज्ञाम्=सङ्केत को। (३) लोष्ट-गुटिका=ककडियाँ। (४) प्रकारवेष्टितम्=चहारदीवारी से घिरे हुए। (५) कपित्थम्=कैथा। (६) आराम०=बगीचे के महल की चौकी पर। (७) पारावतै= कबूतरो से। (८) चूतफलम्=आम का फल। (९) उद्यम्य=उठाकर, उद्+यम् +क्त्वा→ल्यप्। (१०) तपस्वी=बेचारा। (११) दयितासहित=स्त्री के साथ। (१२) दुर्दिनेअन्धकारे=अन्धकार पूर्ण बुरे दिन मे। (१३) वृद्धारङ्क=बूढा निर्धन व्यक्ति। (१४) ऊर्ध्वकम् श्वासायते=ऊपर को सांस ले रहे हो (१५) इन्द्रमहका-मुकः=इन्द्रोत्सव का इच्छुक कौवा। (१६) काकायसे=कौवे के समान हो रहा है, काक+क्यङ्+लट् (नामधातु)। काक इव आचरसि इति। (१७) मुकुलिता= बौरो से युक्त, मुकुला सञ्जाता इति, मुकुल+इतच्। (१८) सुसमृद्धानाम्=धन-धान्य से पूर्ण। (१९) रथ्या=गली, रथानाम् समूह रथ्या यह भी अर्थ होता है, रथ+यत्+टाप्। (२०) परिवर्त्य=उलट कर परि+वृत्+णिच्+क्त्वा+ ल्यप्। (२१) उदाहरति=कहता है, उद्+आ+हृ+लट्। (२२) पदे=सुबन्त रूप मे। (२३) प्रतारयसि=छल रहे हो, प्र+तृ+णिच्+लट्। (२४) अवधा-रयामि=जानता हूँ अव+धृ+णिच्+लट्। (२५) उज्ज्वला०=अभिसारिका श्वेत वेश मे। काम से पीडित जो स्त्री स्वय अपने प्रिय से मिलने जाती है अथवा अपने प्रेमी को बुलाती है वह अभिसारिका कहलाती है। वह कृष्णपक्ष मे काला वस्त्र पहनती है और शुक्ल पक्ष मे शुभ्र वस्त्र पहनती है। "अभिसारयते कान्तम् या मन्म-थवशंवदा। स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका ॥" यहाँ वसन्तसेना अभिसा-रिका है।

रतिक्षेत्रे, सलील, गच्छन्ती, एषा, अपद्मा, श्रीः, अनङ्गस्य, ललित, प्रहरण, कुलस्त्रीणा, शोकः, मदनवरवृक्षस्य, कुसुमम् (अस्ति) ॥१२॥

पदार्थ--रतिसमयलज्जाप्रणयिनी=सम्भोगकाल मे लज्जा से प्रेम करने वाली, प्रियपथिकसार्थै=प्रियपथिको या प्रेमियो के समूहो के द्वारा, अनुगत.=पीछा की गई, रङ्गे=रङ्गभूमि मे, रतिक्षेत्रे=सम्भोग के स्थान मे अर्थात् सङ्केत के स्थान मे, सलीलम=विलासिता या हावभाव के साथ, गच्छन्ती=जाती हुई, एषा=यह वसन्तसेना, अपद्मा=विना कमल वाली, श्री=लक्ष्मी, अनङ्गस्य=कामदेव का, ललितम्=सुकुमार, प्रहरणम्=अस्त्र, कुलस्त्रीणाम्=कुलीन स्त्रियों का, शोकः=दु ख, मदनवरवृक्षस्य=कामदेवरूपी उत्तम वृक्ष का, कुसुमम्=फूल ।

अनुवाद :–सम्भोगकाल मे लज्जा से प्रेम करने वाली, प्रियपथिको के समूहो से अनुगमन की जाने वाली, रङ्गभूमि की भाँति, कामक्षेत्ररूपी रगभूमि मे विलासपूर्वक गमन करती हुई यह विना कमल की लक्ष्मी है, कामदेव का सुकुमार अस्त्र है, कुलीन स्त्रियों का (साक्षात्) शोक है, कन्दर्परूपी श्रेष्ठ वृक्ष का पुष्प है ।

संस्कृत टीका—रतिसमय०=अभिसरणकालव्रीडाप्रीतिमती, प्रियपथिकसार्थैः=अभीष्टपान्थसमूहैः, अनुगतः=अनुसृतः, रङ्गे=रङ्गालये, रतिक्षेत्रे=सुरतस्थाने, सलीलम्=सविलासम्, गच्छन्ती=व्रजन्ती, एषा=इयम्, अपद्मा=कमलोत्पत्तिरहिता, श्रीः=लक्ष्मीः, अनङ्गस्य=कामदेवस्य, ललितम्=सुन्दरम्, प्रहरणम्=अस्त्रम, कुलस्त्रीणाम्=कुलाङ्गनानाम्, शोकः=सन्तापः, मदनवरवृक्षस्य=कामश्रेष्ठपादपस्य, कुसुमम्=पुष्पम् (अस्ति) ॥

समास एव व्याकरण—(१) रतिसमय०-रतिसमये लज्जायाम् प्रणयिनी । प्रियपथिक०-प्रियैः पथिकसार्थैः । अपद्मा—नास्ति पद्म यस्याः तादृशी । मदनवरवृक्षस्य--मदनः एव वरवृक्षः तस्य । (२) प्रहरणम्-प्र+हृ+ल्युट् । शोकः-शुच्+घञ् । प्रणयिनी-प्रणय+इनि । रङ्ग—रञ्ज् (भावे) घञ् । सलीलम्—सहलीलया, बहु०म० । अनु+गम्+क्त=अनुगत. । गच्छन्ती—गम्+लट्+शतृ+ङीप् ।

विवृति

(१) वेश्या निर्लज्ज होती है, किन्तु यह सलज्जा है, क्योकि यह एक ही पुरुष चारुदत्त के प्रति अनुरक्त है । इससे इसकी शालीनता ध्वनित होती है । (२) जब यह रङ्गभूमि मे विलासपूर्वक जाती है, तो इसके सैकड़ो प्रिय कामुक इसके पीछे-पीछे चलने लगते हैं । (३) मामियमभ्युपतिष्ठति देवी विनियादुपस्थिता प्रियया । विस्मृतहस्तकमलया नरेन्द्र लक्ष्म्या वसुमतीव ॥ मालविका० ॥ ये वसन्तसेना साक्षात् लक्ष्मी ही है । अन्तर केवल इतना है, कि इसकी उत्पत्ति कमल से नही हुई है और लक्ष्मी की कमलोत्पत्ति तो प्रसिद्ध ही है । (४) अनङ्गस्य ललितम् प्रहरणम्–भावसाम्य–

'उर्वशी सुकुमारम् प्रहरणम् महेन्द्रस्य ।' विक्रमा० च० । (५) प्रहरणम्—अस्त्र-भावसाम्य–'मदनस्य जैत्रमस्त्रम्' मालविका० २, ६ । (६) कुलस्त्रीणाम् शोक.—इस अति सुन्दरी को देखकर कुलपुत्र वेश्यागामी हो जाते हैं, अत उनकी वधुओं का शोकातुर होना उचित ही है । (७) कुसुमम्—क्योंकि वह तरुणों को इसी प्रकार अपनी ओर खींचती थी, जैसे पुष्प भ्रमरों को । व्याख्याकारों ने इस पद्य का अर्थ अनेक प्रकार से किया है । किन्हीं के अनुसार—'सलीलम् गच्छन्ती' यह पृथक् विशेषण है-जिसका अर्थ है—चारुदत्त के घर लीला पूर्वक जाती हुई, किन्तु क्या वर्षाकाल में लीलापूर्वक गमन सम्भव है ? अत. इस पद्य का अर्थ विवादास्पद ही है । (८) प्रस्तुत पद्य में रूपक, परिणाम तथा विरोधाभास अलकारों का सन्देह सङ्कर अलङ्कार है । (i) उपमेये उपमानारोपात् रूपकम्, (ii) कस्यचिदम् शस्त्राधिक्ये चाधिकारूढ-रूपकम्, (iii) प्रकृतकार्यसाधकत्वे परिणामालकार । (९) प्रयुक्त छन्द का नाम है–शिखरिणी । लक्षण–'रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमन सभलाग शिखरिणी' ।

वसन्तसेने, पश्य पश्य ।

वसन्तसेने ! देखो ! देखो !

गर्जन्ति शैलशिखरेषु विलम्बिबिम्बा
मेघा वियुक्तवनिताहृदयानुकाराः ।
येषा रवेण सहसोत्पतितैर्मयूरैं
खं वीज्यते मणिमयैरिव तालवृन्तैः ॥१३॥

अन्वयः—वियुक्तवनिताहृदयानुकाराः, शैलशिखरेषु, विलम्बिबिम्बाः मेघा, गर्जन्ति, येषा, रवेण, सहसा, उत्पतितैः, मयूरैं, मणिमयैं, तालवृन्तैः, खम्, वीज्यते, इव ॥१३॥

पदार्थ—वियुक्त० = वियोगिनी महिलाओं के हृदय क समान, शैलशिखरेषु = पर्वत की चोटियों पर, विलम्बिबिम्बा = लटकती हुई आकृति वाले, मेघा. = बादल, गर्जन्ति = गरज रहे हैं, येषाम् = जिनके, रवेण = गरज से, सहसा = एकाएक, उत्पतितै. = उड़े हुए, मयूरैः = मोरों के द्वारा, मणिमयैं = मणि के बने हुए, तालवृन्तैः = पङ्खों से, खम् = आकाश को, वीज्यते = हवा किया जा रहा है, इव = मानो ।

अनुवाद—विरहिणी वनिताओं के हृदय का अनुकरण करने वाले, पर्वत शिखरों पर लटकती हुई आकृति वाले मेघ गरज रहे हैं । जिनके शब्द से एकाएक उड़े हुए मयूरों के द्वारा मणिमय तालवृन्तों (ताड़ के बने पङ्खों) से मानो आकाश को पङ्खा झला जा रहा है ।

संस्कृत टीका—वियुक्तवनिता० = विरहपीडिताङ्गनाचेतोनुसारा, शैलशिखरेषु = पर्वतशृङ्गेषु, विलम्बिबिम्बा. = लम्बमानमण्डला', मेघा = वारिवाहाः, गर्जन्ति =

शब्दायन्त, यथा=मधानाम्, रवण=शब्दन, एट्टमा=झटिति, उत्पतितैं=उड्डीनैं, मयूरैं=बर्हिमि, मणिमयैं=मणिखचितैं, तालवृन्तैं=व्यजनैं, खम्=गगनम्, वीज्यते इव।

समास एव व्याकरण--वियुक्तवनिता०-वियुक्तानां वनितानाम् हृदयमनुकुर्वन्ति इति तथाविधा। शैल०-शैलाना शिखरेषु इति। विलम्बिविम्बा -विलम्बि विम्बम् यषाम तादृशा। (२) अनुकारा -अनु+कृत+अण्। वनिता-वन्+उक्त+टाप्। शैल-शिला+अण्। शिखरम्-शिखा अस्त्यस्य-अरच् आ-लोप.। बिम्बा-वि+वन्+नि० साधु। गर्जन्ति-गज्+लट्। रव -रु+अप्। ताल -तल्+अण्। वृन्तम् वृ+क्त, नि० मुम्। वीज्यत-चुरा० उभय० वीज्+लट्।

विवृति

(१) वियुक्त०—विरहिणी का हृदय अन्धकारमय होता है, क्योंकि उसम प्रसन्नता नहीं रहती। कवि सम्प्रदाय म प्रसन्नता का धवल रङ्ग माना जाता है। (२) मणिमयैं—मयूर के पङ्खों म अनेक चमकील रङ्ग होते हैं, अत उनम मणिमय व्यजनों की सम्भावना की गई है। मणीनाम् विकारैं मयटि मणिमयैं। (३) 'व्यजनम् तालवृन्तकम्' इत्यमर'। (४) प्रस्तुत पद्य म उत्प्रेक्षालकार है। (५) वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण—'उक्ता वस ततिलका तभजाजगौग।' (६) कुछ टीकाकार उपमा-लङ्कार भी कहते हैं। (७) मेघों का उदय जब मयूरों का कामवर्धक है तो मनुष्यों क लिए वह कैसे न होगा इसलिए तुम्हारे लिए भी यह उत्तम अभिसार-समय है।

अपि च।

और भी—

> पङ्कक्लिन्नमुखा पिबन्ति सलिल धाराहता दर्दुरा
> कण्ठ मुञ्चति बर्हिण समदनो नीप प्रदीपायते।
> सन्यास कुलदूषणैरिव जनैर्मेघैर्वृतश्चन्द्रमा
> विद्युन्नीचकुलोद्गतेव युवतिर्नैकत्र सतिष्ठते॥१४॥

अन्वय—धाराहता, पङ्कक्लिन्नमुखा, दर्दुरा, सलिल, पिबन्ति, समदन, बर्हिण, कण्ठ, मुञ्चति, नीप, प्रदीपायते, कुलदूषणै, जनै, सन्यास, इव, मघै, चन्द्रमा, वृत, नीचकुलोद्गता, युवति, इव, विद्युत्, एकत्र, न सन्तिष्ठत॥१४॥

पदाथ—धाराहता=धारा (बौछार) स ताडित, पङ्कक्लिन्नमुखा=कीचड स गील मुँह वाले, दर्दुरा=मेंढक, सलिलम्=पानी को, पिबन्ति=पी रह हैं, समदन= मद से युक्त अर्थात् वर्षा काल के उदय स कामातुर, बर्हिण=मोर, कण्ठम् मुञ्चति= स्वर को छोड रहा है अर्थात् मधुर शब्द कर रहा है, नीप=कदम्ब, प्रदीपायते= दीपक की तरह आचरण कर रहा है अर्थात् चमक रहा है, कुलदूषणै=कुल का

दूषित करने वाले अर्थात् पतित, सन्यासः इव=सन्यास की भाँति, वृत=आच्छादित, नीच कुलोद्गता=नीच कुल में उत्पन्न बिजली, न सन्तिष्ठते=नहीं ठहर रही है।

अनुवाद—वर्षा के जल से ताडित एवं पङ्क से लिप्त मुख वाले मेढक जल पी रहे हैं। कामातुर मयूर मधुर शब्द कर रहे हैं। कदम्ब (उज्ज्वल पुष्पों के कारण) दीपक सा प्रतीत हो रहा है मेघों के द्वारा चन्द्रमा उसी प्रकार आच्छादित कर लिया गया है, जिस प्रकार कुलदूषक (पतित) व्यक्तियों के द्वारा सन्यास (आच्छादित या कलङ्कित कर दिया जाता है)। नीच वंशोद्भव युवती के समान बिजली एक स्थान पर स्थिर नहीं रहती है।

संस्कृत टीका—धाराहृता—वृष्टिसम्पातताडिता, पङ्कक्लिन्नमुखा—कर्दमआर्द्री कृतवदना, दर्दुरा—मण्डूका, सलिलम्—जलम् पिबन्ति—आचमन्ति, समदन—कामातुर, बर्हिण.—मयूर, कण्ठम्—केकारवम्, मुञ्चति त्यजति, नीप—कदम्ब, प्रदीपायते—प्रदीपवदाचरति कुलदूषणैं=पतितैं, सन्यास=यतिधर्म इव तद्वत् मघैं=अभ्रैं, चन्दमा =शशि, वृत=आच्छादित नीचकुलोद्गता=अधमकुलोत्पन्ना, युवति=तरुणी, इव, विद्युत्=चपला, एकत्र=एकस्मिन् स्थाने, न=नहि, संतिष्ठते=स्थिरताम् गच्छति।

समास एवं व्याकरण—(१) धाराहता—धाराभि आहता, पङ्क०—पङ्केन क्लिन्नानि मुखानि येषा तादृशा, समदन मदनेन सहित, नीचकुलोद्गता—नीचे कुले उद्गता, प्रदीपायते—प्रदीप इवाचरति इति प्रदीपायते। कुल दूषयन्तीति कुलदूषणास्तै, कुलदूषणै। (२) क्लिन्न—क्लिद्+क्त। बर्हिण—बर्ह+इनच्। प्रदीपायते—प्रदीप+क्यङ् (नामधातु)+लट् (प्र० पु० ए०)। दूषणै—दुष्+णिच्+ल्यु। सन्तिष्ठते—सम्+स्था+लट् (प्र० ए०)। समवप्रविभ्य स्थ' (१ ३ २२ इति सूत्रेण आत्मनेपदम्)।

विवृति

(१) 'भेके मण्डूकवर्षाभूश्शलूरप्लवदर्दुरा' इत्यमरा। (२) 'मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्'। शिखवल शिखी केकी मेघानन्दयपि' इत्यमर। (३) 'कण्ठोगले गलध्वाने' इति कोष—पूर्वोधर। (४) 'नीप रक्तकदम्ब।' नीप दृष्ट्वा हरितकपिशम् कपरैरर्धरूढे' (मेघ० २१)। (५) वाहन शब्द से भिन्न बर्हिण् शब्द भी मयूर का वाचक है। (६) त्यक्तकुलाचारेषु सन्यासो न शोभते इति भाव—श्री निवासाचार्य। (७) प्रदीपायते में क्यङ्गतोपमा अलङ्कार है। (८) प्रस्तुत श्लोक के तृतीय एवं चतुर्थ पाद में श्रौती उपमालङ्कार है। (९) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लक्षण—'सूर्याश्वैर्यदिम सजौसततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।'

वसन्तसेना—भाव, सुष्ठु त भणितम्।

[भाव, सुट्ठु दे भणिदम्।] एषा हि

वसन्तसेना—विद्वन् ! आपने ठीक कहा है । यह तो—

मूढे ! निरन्तरपयोधरया मयैव
कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र ? ।
मां गर्जितैरपि मुहुर्विनिवारयन्ती
मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशा सपत्नी ॥ १५ ॥

अन्वयः—कुपिता, सपत्नी, इव, निशा, हे मूढे ! निरन्तरपयोधरया, मया, एव, सह, कान्तः, यदि, अभिरमते, (तदा), अत्र, तव, किम् ?, (ईदृशं.) गर्जितैः, अपि, मुहुः, विनिवारयन्ती, (मम), मार्गं, रुणद्धि ॥

पदार्थ.—कुपिता=क्रुद्ध, सपत्नी=सौत, निशा=रात, हे मूढे !=हे मूर्ख !, निरन्तरपयोधरया=घने पयोधर वाली । (रात्रि-पक्ष मे-साथ-साथ मिले हुए हैं बादल जिसमे ऐसी, वसन्तसेना पक्ष मे—परस्पर मिले हुए हैं स्तन जिसके ऐसी), कान्तः= प्रियतम (रात्रि-पक्ष मे-चन्द्रमा, वसन्तसेना पक्ष मे-चारुदत्त), अभिरमते=रमण करता है, गर्जितैः=बार-बार गरजने से, मुहुः=बारम्बार, विनिवारयन्ती=मना करती हुई, मार्गम्=रास्ता को, रुणद्धि=रोक रही हो ।

अनुवाद—कुपित हुई सौत की भाँति रात्रि 'मूर्ख ! सघन पयोधर (रात्रि-पक्ष मे–मेघ, वसन्तसेना पक्ष मे–स्तन) वाली मेरे ही साथ प्रियतम् (रात्रि-पक्ष मे–चन्द्रमा, वसन्तसेना-पक्ष मे-चारुदत्त) यदि रमण करता है तो इसमे तुम्हारा क्या (जाता है) ?' (इस प्रकार की) गर्जनाओं से भी बार-बार मना करती हुई (मेरा) रास्ता रोक रही है ॥

संस्कृत टीका—कुपिता=क्रुद्धा, सपत्नी=एक पतिका स्त्री, इव=तद्वत्, निशा=रात्रिः, मूढे='मूर्खे, निरन्तरपयोधरया=एकत्रीभूतमेघया स्तनया वा, मया= निशया, एव सह=साकम्, कान्तः=प्रियः (निशा पक्षे निशानायकः चन्द्रः), यदि= चेत्, अभिरमते=रमण करोति, (तदा), अत्र=अस्मिन् विषये, तव=वसन्तसेनायाः, किम्=का हानिः ?' (ईदृशैः) गर्जितैः, अपि, मुहुः=बारम्बारम्, विनिवारयन्ती= निषेधन्ती, (मम) मार्गम्=पन्थानम्, रुणद्धि=प्रतिबध्नाति ।

समास एवं व्याकरण :—(१) सपत्नी–समानः एकः पतिः भर्ता यस्याः सा सपत्नी (ब० स०), 'नित्य सपत्न्यादिषु' इति सूत्रेण ङीप्, नकारादेश, समानस्य सभावः अपि निपातनात् । निरन्तर०—निरन्तराः पयोधराः यस्या सा तादृश्या (सपत्नी-पक्षे- निरन्तरौ पयोधरौ यस्याः तादृश्या) । गर्जितैः–गर्जितानितैः । (२) निशा–नितरां श्यति तनूकरोति व्यापारान्–शो+क तारा० । कान्तः–कन् (म्)+क्त । अभिरमते– अभि+रम्+लट् । गर्जितैः–गर्ज्+क्त । विनिवारयन्ती—वि—नि+वृ+णिच्+ लट्+शतृ+ङीप् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे वसन्तसेना रात्रि को सपत्नी के रूप मे वर्णन करती है। निशासपत्नी—निशा एव सपत्नी अथवा कुपिता सपत्नी इव निशा। (२) 'निशाया भोगयोग्यत्वात् सपत्नीव्यपदेश। कान्तस्य चन्द्रसादृश्यमनेन व्यज्यते।'–श्रीनिवासाचार्य। (३) वसन्तसेना प्रस्तुत श्लोक सस्कृत मे कहती है। (४) निरन्तर०–इस विशेषण का रात्रि एव वसन्तसेना दोनो के साथ सम्बन्ध है। (i) साथ-साथ मिले हुए हैं मेघ जिसमे ऐसी रात्रि (ii) निरन्तर हैं स्तन जिसके (अर्थात् ऐसे पीन स्तन जो परस्पर मिले हैं) ऐसी वसन्तसेना। (५) यहाँ वसन्तसेना के कहने का तात्पर्य यह है कि–"मैं अपने प्रिय चारुदत्त से रमण करने जा रही हूँ परन्तु रात्रि सपत्नी की भाँति मुझे मना कर रही है। वह मानो कह रही है कि "अब मेरे रमण का समय है तू मत जा। यदि मुझे अपने सघन पयोधरो (कुचो) का गर्व है तो मुझे सघन पयोधरो (मेघो) का गर्व है अत तू रमणार्थ मत जा।" (६) यहाँ 'निरन्तरपयोधरया' का दो अर्थ होने के कारण श्लेषालङ्कार है। (७) निशा की सपत्नी के साथ समानता बतलाने के कारण उपमालङ्कार है। (८) उत्प्रेक्षालङ्कार भी है। (९) श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है—वसन्ततिलका। छन्द का लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।" (१०) यह पद्य मनोहर सूक्ति–रत्न है किन्तु भाव दुर्बोध है।

विट—भवत् एव तावत्। उपालभ्यता तावदियम्।

विट—अच्छा, ऐसा है, तो इसे उलाहना दो।

वसन्तसेना—भाव, किमनया स्त्रीस्वभावदुर्विदग्धयोपालब्धया। पश्यतु भाव।

वसन्तसेना—विद्वन्! स्त्री-स्वभाव के कारण हठी इसको उलाहना देने स क्या (लाभ)? आप देखें—

> मेघा वर्षन्तु गर्जन्तु मुञ्चन्त्वशनिमेव वा।
> गणयन्ति न शीतोष्ण रमणाभिमुखा स्त्रिय ॥१६॥

अन्वय—मेघा, वर्षन्तु, गर्जन्तु, वा, अशनिम्, एव, मुञ्चन्तु, (परन्तु), रमणाभिमुखा, स्त्रिय, शीतोष्ण, न, गणयन्ति ॥१६॥

पदार्थ—मेघाः=बादल, वर्षन्तु=बरसें, गर्जन्तु=गरजें, वा=अथवा, अशनिम्=वज्र को, एव=ही, मुञ्चन्तु=छोडें, रमणाभिमुखा=रमण करने के लिये प्रिय के पास जाने को उत्सुक, स्त्रिय=स्त्रियाँ, शीतोष्णम्=ठण्डक–गर्मी को, न=नहीं गणयन्ति=गिनती हैं।

अनुवाद—बादल बरसें, गरजें या वज्र ही गिरा दें, (किन्तु) रमणोन्मुख रमणियाँ सर्दी-गर्मी को (कुछ भी) नहीं गिनती हैं।

सस्कृत टीका—मेघा =जलदा, वर्षन्तु=सलिल क्षरन्तु, गर्जन्तु=नदन्तु

वा, अशिनम्=वज्रम्, एव, मुञ्चतु=ममोपरि क्षिपन्तु, रमणाभिमुखाः=रमणं प्रति गन्तुमुद्यता., स्त्रियः,=रमण्यः, शीतोष्णम्=शीतम् च उष्णम् च न गणयन्ति=न परिचिन्तयन्ति ।

समास एवं व्याकरण—(१) रमणाभिमुखाः—रमणं प्रति अभिमुखाः । शीतोष्णम्-शीतम् च उष्णम् च इति शीतोष्णम् (द्व० स०), 'विप्रतिषिद्धं चानाधिकरण वाचि' इति सूत्रेण विकल्पेन एकवद्भावः, तेन शीतोष्ण' इत्यपि प्रयोगः साधीयान् । (२) अशनिम्—अश्नुते संहति-अश्+अनि । रमणा—रमयति-रम्+णिच्+ल्युट +टाप् । अभिमुखाः—अभि+खन्+अच्, डित्धातोः पूर्वं मुट् च । वर्षन्तु-वृष्+ लोट् । गर्जन्तु-गर्ज्+लोट् । मुञ्चन्तु-मुच्+लोट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे 'वर्षन्तु' इत्यादि अनेक क्रियाओं का मेघ रूप एक कर्ता कारक होने से दीपकालङ्कार है । (२) अप्रस्तुत स्त्री सामान्य से प्रस्तुत वसन्तसेना रूप स्त्री विशेष की प्रतीति होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है । (२) अनुष्टुप् छन्द है । छन्द का लक्षण-'श्लोके षष्ठ गुरुज्ञयं सर्वत्र लघु पचमम । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययोः ॥

विट्—वसन्तसेने, पश्य पश्य । अयमपरः

विट—वसन्तसेना ! देखो ! देखो ! यह दूसरा—

पवनचपलवेगः स्थूलधाराशरौघः ।
स्तनितपटहनादः स्पष्टविद्युत्पताकः ।
हरति करसमूहं खे शशाङ्कस्य मेघो
नृप इव पुरमध्ये मन्दवीर्यस्य शत्रोः ॥१७॥

अन्वयः—पवनचपलवेगः, स्थूलधार.शरौघः, स्तनितपटहनाद., स्पष्टविद्युत्पताकः, मेघ., मन्दवीर्यस्य, शत्रोः, पुरमध्ये, नृपः, इव, खे, शशाङ्कस्य, करसमूहं हरति ॥१७॥

पदार्थ—पवन०=वायु के द्वारा चञ्चल वेगवाला [राजा-पक्ष में—वायु की भाँति चञ्चल वेग या वायुतुल्य वेग वाला], स्थूल०=मोटी धारायें ही जिसके बाण समूह हैं [राजा-पक्ष में—मोटी धाराओं के समान (तीक्ष्ण) बाण समूह वाला] स्तनित०=जिसका गर्जना ही नगाड़े का शब्द है [राजा-पक्ष मे-मेघ-गर्जन के समान (युद्ध के) नगाड़े की आवाज वाला], स्पष्टविद्युत०=स्पष्ट बिजली ही जिसकी पताका है [राजा—पक्ष—मे स्पष्ट (चमकती हुई) बिजली के समान पताका वाला] मन्दवीर्यस्य=अल्पशक्ति वाले, पुरमध्ये=नगर के बीच मे, खे=आकाश मे,

शशाङ्कस्य=चन्द्रमा के, करसमूहम्=किरणों के समूह को [राजा—पक्ष में—कर (टैक्स) के समूह को], हरति=अपहृत कर रहा है अर्थात् आच्छादित कर रहा है [राजा-पक्ष में—छीन ले रहा है] ॥

अनुवाद—वायु के कारण चञ्चल वेग वाला [नृप—पक्षमे वायु के समान चञ्चल वेग वाला], बाण-समुदाय के समान मोटी धारायें वाला नृप-पक्ष मे मोटी धाराओं के समान बाण-समुदाय वाला], गर्जन रूपी नगाडों के शब्द वाला [नृप—पक्ष मे गर्जन तुल्य नगाडों के शब्द वाला], स्पष्ट बिजली रूपी पताका वाला] नृप-पक्ष मे स्पष्ट बिजली के समान पताका वाला] मेघ क्षीण शक्ति वाले शत्रु के नगर के मध्य मे (प्रविष्ट विजयी) राजा के समान आकाश मे चन्द्रमा के किरण-समूह [नृप-पक्ष मे कर (राजस्व) समूह] का हरण कर रहा है [मेघ-पक्ष मे ढक रहा है, नृप-पक्ष मे छीन रहा है] ॥

संस्कृत टीका—पवनचपलवेगः=वायुचञ्चलगतिप्रवाह, स्थूलधारा०= दीर्घासारशरसमूह, स्तनित०=गर्जितढक्काध्वनि, स्पष्ट०=अभिव्यक्ततडिद्ध्वज,= मेघ =जलद, मन्दवीर्यस्य=क्षीणपराक्रमस्य, शत्रो =वैरिण, पुरमध्ये=राजधान्याम् नृप इव=राजा इव, खे=गगने, शशाङ्कस्य=चन्द्रस्य, करसमूहम्=किरणजालम् राजगृह्यधनम् वा, हरति=आच्छादयति अपहरति वा ॥

समास एवं व्याकरण-(१) पवन०-पवनेन चपल वेग यस्य तादृश अन्यत्र पवन इव चपलो वेगो यस्य तादृश । स्थूल०-स्थूला धारा शरौघ इव अन्यत्र स्थूल धारेव शरौघ तस्य तादृश । स्तनित०-स्तनितम् एव पटहस्य नाद यस्य तादृश अन्यत्र स्तनितमिव पटहस्य नाद, यस्य तादृश । स्पष्ट०-स्पष्टा विद्युत् एव पताका यस्य तादृश अन्यत्र स्पष्टा विद्युत इव पताका यस्य तादृश । मन्दवीर्यस्य—मन्दम् वीर्यम् यस्य स (ब० स०), तस्य । (२) चपल—चुप्+कल, उपधोकारस्या कार स्तनित-स्तन् वर्तरि क्त । पटह —पटेन हन्यते—पट+हन्+ड । नाद —नद्+घञ् । पताका - पत्+आक+टाप् । शशाङ्कस्य—शश्+अच्+अङ्क+अच् । हरति—हृ +लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म मेघ और विजयी राजा का श्लिष्ट वर्णन है । (२) प्रथम तथा द्वितीय चरण म कहे गये विशेषण तथा 'करसमूह' का नृप एव मेघ दोनों के साथ सम्बन्ध है । (३) स्थूलधारा आदि म शर आदि का आरोप करने से पूर्वार्द्ध म रूपकालङ्कार है. (४) 'करसमूहम्' म श्लेषालङ्कार है । (५) मेघ एव नृप की समानता बतलाने के कारण पूर्णोपमालङ्कार है । (६) इस प्रकार इस श्लोक म श्लेष एव रूपक से पुष्ट होकर उपमालङ्कार है । (७) श्लोक म प्रयुक्त छन्द का नाम है- मालिनी । छन्द का लक्षण —"ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकै ।"

वसन्तसेना—एव न्विदम् । तत्कथमेषाऽपर । [एव्व णेदम् । ता कध एसो अवरो ।]

वसन्तसेना—ऐसा ही है । तो क्या यह दूसरा ?—

एतैरेव यदा गजेन्द्रमलिनैराध्मातलम्बोदरै—

गर्जद्भिः सतडिद्वलाकशबलैर्मेघैः सशल्य मन ।

तत्कि प्रोषितभर्तृवध्यपटहो हा हा हताशो बक

प्रावृट् प्रावृडिति ब्रवीति शठधी क्षार क्षते प्रक्षिपन्॥१८॥

अन्वय—यदा, गजेन्द्रमलिनै, आध्मातलम्बोदरै, सतडिद्वलाकशबलै, गर्जद्भि एतै, मेघै, एव, मन, सशल्य,भवति,हा, हा, तत्, प्रोषितभर्तृवध्यपटह, हताश शठधी, बक, क्षते, क्षार, प्रक्षिपन्, इव, किं, प्रावृट, प्रावट् इति, ब्रवीति ॥१८॥

पदार्थ—गजेन्द्रमलिनै =गजराजो के समान मलिन या नील वर्ण वाले आध्मात०=जिसका उदर (मध्यभाग) फूला हुआ या शब्द करता हुआ तथा लटका हुआ है, सतडिद्वलाकशबलै—बिजली एव बगुला की पाँत से चितकबरे, गर्जद्भि =गरजते हुए, सशल्यम्=काँटे या बाण के अग्रभाग स युक्त, प्रोषित०= परदेश गये है पति जिनके ऐसी वियोगिनी स्त्रियो के लिए वध के समय बजन वाला नगाडा रूप, हताश—अभागा, शठधी =धूर्त बुद्धि वाला, बक =बगुला, क्षत= घाव पर, क्षारम्=नमक को, प्रक्षिपन्=छिडकता हुआ, प्रावृट्=वर्षा ।

अनुवाद—जब गजराजो के समान श्याम वर्ण वाले, फूले हुए तथा लटकते हुए उदर (मध्यभाग) वाले, बिजली एव बक-पक्ति के कारण चितकबरे, गर्जन करते हुए इन मघो से ही (वियोगिनियो का) मन काँटे से युक्त (वेदनापूर्ण) हो रहा है । हाय हाय ! तब परदेश गए हुए पति वाली स्त्रियो के लिए वध के समय बजने वाल नगाडे के समान अभागा धूर्तबुद्धि वाला बगुला घाव पर नमक छिडकता हुआ सा क्यो 'वर्षा वर्षा'—इस प्रकार चिल्ला रहा है ।

सस्कृत टीका—यदा=यस्मिन् काले, गजेन्द्रमलिनै =गजराजवत् कृष्णवर्णे, अध्मात०=उच्छूनाघोलम्बितान्तदेशै, सतडिद्वलाकशबलै =सविद्युद्बकपङ्क्तिभिश्चित्र- वर्णै ,गर्जद्भि= ध्वनद्भि, एतै =आकाशे वर्तमानै, मेघै =जलदै, एव, मन— (विरहिणीनाम्)चित्तम्, शल्यम्=शल्यविद्धमिव वेदनायुक्तमिति भाव , भवति=आपन्न, हा हा-खेदबोधकमव्ययमिदम्, तत्=तदा,प्रोषितभर्तृवध्यपटहः=विदेशं गता पति यत्र काले वाद्यमाना दुन्दुभि,हताश =आशाविहीन ,शठधी =दुष्टबुद्धि ,बक [illegible], क्षते=व्रणे,क्षारम्=लवणम्,प्रक्षिपन्=संयोजयम्,इव,किम्—[illegible] , प्रावृट्= वर्षा वर्षा, इति, ब्रवीति=रटति।

अतएव शबलं । सशल्यम्—शल्येन सहितम् । प्रोषित०—प्रोषिना भर्तारि यासाम् तासाम् कृते वध्यपटह । हताश —हता आशा यस्य स, शठधी —शठा धी यस्य स (ब०स०)। (२) आध्मातानि०—आ+ध्मा+क्त+प्र० बहु०। बलाक —बल+अक्+अच्, स्त्रियां टाप् च। शल्यम्—शल्+यत्। प्रोषित प्र+वस्+क्त। भर्तृ—भृ+तृच्। पटह—पट+हन्+ड। ब्रवीति ब्रू+लट्। प्रक्षिपन् प्र+क्षिप्+शतृ। गर्जद्भि—गर्ज+शतृ।

विवृति

(१) 'बलाकाबकपंक्ति स्यात्' इति कोश—पृथ्वीधर। (२) बगुलो का शब्द 'प्रावृट्-प्रावृट्' के समान प्रतीत होता है। मेघ को देख कर ही तो विरहिणियाँ जलने लगती हैं, फिर उसे 'वर्षा वर्षा' सुनाना तो जले पर नमक छिडकाना ही है। (३) क्षारक्षते—यह लोकोक्ति। है, मि०, घाव पर नमक छिडकना। (४) स्वत एव दु खहेतौ व्रणे क्षारावसेको यथा दु खान्तरमावहति तथा मेघदर्शनोद्विग्ने मनसि वकध्वनिरुद्दीपन सतापान्तरमाधत्त इति भाव—श्री निवासाचार्य। (५) "गजेन्द्र मलिनै" म उपमालकार है। (६) 'वध्यपटह मे रूपकालकार है। (७) 'क्षार क्षते प्रक्षिपन्" म निदर्शनालकार है। निदर्शना का लक्षण—"सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वापि कुत्रचित्। यत्र बिम्बानुबिम्बत्व बोधयेत् सा निदर्शना॥" (८) प्रस्तुत पद्य मे तद्गुण अलकार भी है। तद्गुण का लक्षण—"तद्गुण स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रह"। (९) इस प्रकार इस श्लोक मे इन सब अलकारो की ससृष्टि है। (१०) प्रयुक्त छन्द का नाम है—शार्दूलविक्रीडित। लक्षण—"सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम्।"

विट—वसन्तसेने, एवमेतत्। इदमपर पश्य।

विट—वसन्तसेना! यह ऐसा ही है। इस दूसरे (दृश्य) को देखो—

वलाकापाण्डुरोष्णीप विद्युदुत्क्षिप्तचामरम्।
मत्तवारणसारूप्य कर्तुकाममिवाम्बरम्॥१९॥

अन्वय—बलाकापाण्डुरोष्णीप, विद्युदुत्क्षिप्तचामरम्, अम्बरम्, मत्तवारणसारूप्य, कर्तुकामम्, इव, (प्रतिभाति)॥१९॥

पदार्थ—बलाका०=बगुलियाँ अथवा बकपंक्तियाँ ही जिसकी सफेद पगडी हैं (हाथी के पक्ष म—बगुलो की पंक्ति के समान शुभ्र जिसकी पगडी है), विद्युदुत्क्षिप्त०=बिजली ही जिसका डुलाया जाता हुआ चँवर है (हाथी के पक्ष म—बिजली के समान चँवर जिस पर डुलाया जा रहा है), अम्बरम्=आकाश, मत्तवारण०=मतवाले हाथी की समानता को, कर्तुकामम्=करने की इच्छा वाला।

अनुवाद—बक-पंक्ति रूपी श्वेत पगडी वाला (गज-पक्ष म बकपंक्ति के समान

श्वेत पगडी वाला), विजली रूपी डुलाये जाते हुये चँवर वाला (गज-पक्ष में बिजली के समान डुलाये जाते हुये चँवर वाला) आकाश मत्त हाथी की मानो समानता करने का इच्छुक हो रहा है।

संस्कृत टीका—बलाका० = बकपंक्तिधवलमस्तकावेष्टनम्, विद्युदुत्क्षिप्त० = तडिदान्दोलितप्रकीर्णकम्, अम्बरम् = गगनम्, मत्तवारणसारूप्यम् = मत्तगजसादृश्यम्, कर्तुकामम् = कर्तुमिच्छुक, इव = यथा (प्रतिभाति) ॥

समास एवं व्याकरण—(१) बलाका०—बलाका एव पाण्डुरम् उष्णीषम् यस्य तादृशम् (गजपक्षे—बलाकावत् पाण्डुरम् उष्णीषम यस्य तथा)। विद्युत्०—विद्युदेव उत्क्षिप्तम् चामरम् यस्य तादृशम् (गजपक्षे—विद्युत् एव उत्क्षिप्तम् चामरम् यस्य तथा)। मत्तवारण०—मत्तवारणस्य सारूप्यम्। कर्तुकामम्—कर्तुम्कामो यस्य तत (व० स०)। 'लुम्पेदवश्यम कृत्ये तुकाममनसोरपि' इस कारिका से 'तुम्' के मकार का लोप हो गया। (२) पाण्डुर—पाण्ड्+कु, नि० दीर्घ = पाण्डु, पाण्डु+र। उष्णीषम्—उष्णमीषते हिनस्ति—इष्+क। चामरम्—चमरी+अण्। अम्बरम्—अम्ब+रा+क। वारण—वृ+णिच्+ल्युट्। सारूप्यम्—सरूप+ष्यञ्।

विवृत्ति

(१) "उष्णीष शिरोवेष्ट किरीटयो" इत्यमर। (२) प्रस्तुत पद्य में आकाश की मतवाले हाथी से समानता दिखलाई गई है। बलाका० एवं विद्युत्० आदि विशेषणों का दोनों के साथ सम्बन्ध है। (३) "चामर तु प्रकीर्णकम्" इत्यमर। (४) "मतङ्गजो गजो नाग कुञ्जरो वारण करी" इत्यमर। (५) प्रस्तुत श्लोक के प्रथम एवं द्वितीय चरण मे निरग मालारूपकालङ्कार है। (६) तृतीय चरण के "मत्तवारणसारूप्यम्" इस अंश मे आर्थी उपमालंकार है। (७) चतुर्थ चरण के "कर्तुकाममिव" इस अंश मे गुणोत्प्रेक्षालंकार है। (८) इनकी स्थिति परस्पर सापेक्ष होने से संसृष्टि है। (९) श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—अनुष्टुप्। लक्षण—"श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेय सर्वत्र लघु पञ्चमम्, द्विचतुष्पादयो ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ॥"

वसन्तसेना—भाव, पश्य पश्य। [भाव, पक्ख पेक्ख।]

वसन्तसेना—विद्वन्! देखिये, देखिये—

एतैरार्द्रतमालपत्रमलिनैरापीतसूर्यं नभो
वल्मीकाः शरताडिता इव गजाः सीदन्ति धाराहताः।
विद्युत्काञ्चनदीपिकेव रचिता प्रासादसञ्चारिणी
ज्योत्स्ना दुर्बलभर्तृकेव वनिता प्रोत्सार्य मेघैर्हृता ॥२०॥

अन्वय—आर्द्रतमालपत्रमलिनै, एतै, (मेघैः), नभ, आपीतसूर्यं, (जातम्),

धाराहता, वल्मीका, शरताडिता, गजा, इव, सीदन्ति, विद्युत्, प्रसादसचारिणी, काचनदीपिका, इव, रचिता, दुर्बलभर्तृका, वनिता, इव, ज्योत्स्ना, मेघैः, प्रोत्सार्य, हृता ॥२०॥

पदार्थ —आर्द्र०=गीले तमाल के पत्तो की तरह काले, एतैः=इन, नभः=आकाश, आपीत सूर्यम्=ढक लिया गया है सूर्य जिसमे ऐसा, धाराहता=धाराओ से चोटिल या क्षत विक्षत, वल्मीका=विमौट, दीमक, चीटी आदि की चाली हुई मिट्टी का ढेर, शरताडिता=बाणो से मारे गये, सीदन्ति=नष्ट हो रहे हैं (हाथी के पक्ष मे—व्यथित हो रहे हैं, प्रसाद०=महलो पर घूमने वाली, काञ्चनदीपिका=सोने का दीपक, दुर्बलभर्तृका=कमजोर पति वाली, ज्योत्सना=चाँदनी, प्रोत्सार्य=जबरदस्ती छीनकर, हृता=हर ली गयी है।

अनुवाद —सजल तमाल पत्रो के समान मलिन (नील-वर्ण) इन (मेघो) ने आकाश मे सूर्य को आच्छन्न कर दिया गया है, (पानी की) धाराओ से ताडित वल्मीक (बाँबियाँ) बाणो से मारे गए हाथियो के समान विनष्ट हो रही हैं, बिजली गगनचुम्बी अट्टालिकाओ पर सञ्चरण करने वाली स्वर्णमयीदीपिका के समान बना दी गई है, निर्बल पति वाली रमणी की भाँति चाँदनी का मेघो ने बलपूर्वक अपहरण कर लिया है।

संस्कृत टीका—आर्द्र०=सजलतमालवृक्षदलश्यामवर्णैः, एतैः=दृश्यमानैः मेघैरिति शेष, नभः=गगनम्, आपीतसूर्यम=समाच्छन्नदिनकरम्, धाराहता=जलधाराताडिता, वल्मीका=कीटगणकृतमृत्तिकास्तूपाः, शरताडिता=बाणपीडिता, गजा=हस्तिन, इव, सीदन्ति=विनश्यन्ति, विद्युत्=तडित्, प्रासादसञ्चारिणी—सौधोपरि स्फुरन्ती, काञ्चनस्य—स्वर्णप्रदीपः, इव, रचिता—निर्मिता, दुर्बलभर्तृका—बलहीनपतिका, वनिता–रमणी, इव, ज्योत्स्ना—चन्द्रिका मेघैः—जलदैः, प्रोत्सार्य–हठादुत्थाय, हृता–अपहृता।

समास एव व्याकरण—(१) आर्द्र०—आर्द्राणि यानि तमालपत्राणि तद्वत् मलिना तादृशैः। आपीतसूर्यम्—आपीत सूर्य यस्मिन् तादृशम्। धाराहता–धाराभि हता। शरताडिता-शरै ताडिता। प्रसादसञ्चारिणी—प्रासादे सञ्चारिणी। काञ्चनदीपिका—काञ्चनस्य दीपिका। दुर्बलभर्तृका-दुर्बल भर्ता यस्या तादृशी। (२) आपीत–आ+पा+क्त। रचिता–रच्+क्त+टाप्। प्रोत्सार्य-प्र+उत्+सृ+ल्यप्। वल्मीक—वल्+ईक, मुट् च।

विवृति

(१) "यतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु॥ प्रालेयास्त्र कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्या प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूय।"–मेघ ३९॥ (२) 'आपीतसूर्यम,' 'नभ' का विधेयविशेषण है। (३) 'वामलूरश्च नाकुरश्च वल्मीक पुन्नपु सकम्

इत्यमर । (४) प्रस्तुत पद्य मे मेघ को डाकू के रूप मे चित्रित किया गया है। जैसे डाकू दूसरो के घर पर आक्रमण करते हैं, लोगो को मारते हैं, दीपक लेकर वस्तुओं को ढूँढते हैं और सुन्दरी स्त्रियों को भी बलपूर्वक पकड़ कर ले जाते हैं उसी प्रकार मेघो ने यहाँ लोगो के घरो पर बौछारो से आक्रमण किया,वल्मीको को विनष्ट किया बिजली रूपी दीपक से पदार्थों को देखा एव चाँदनी रूपी सुन्दरी को अपहृत कर लिया (५) प्रस्तुत श्लोक म 'वल्मीक, विद्युत् और ज्योत्स्ना की गज, काञ्चनदीपिका एव वनिया आदि के साथ समानता बतलाने के कारण उपमालङ्कार है। (६) समासोक्ति अलङ्कार की व्यञ्जना है। (७) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। छन्द का लक्षण—'सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम् ।'

विट :—वसन्तसेने, पश्य पश्य ।

विट–वसन्तसेना ! देखो ! देखो !–

एते हि विद्युद्गुणवद्धकक्षा गजा इवान्योन्यमभिद्रवन्तः ।
शक्राज्ञया वारिधरा सधारा गा रूप्यरज्ज्वेव समुद्धरन्ति ॥२१॥

अन्वय.–विद्युद्गुणवद्धकक्षाः, अन्योन्यम्, अभिद्रवन्त, गजाः, इव, सधारा, एते, वारिधरा, शक्राज्ञया, गा, रूप्यरज्ज्वा, इव, समुद्धरन्ति ॥२१॥

पदार्थः–विद्युद्०+बिजली रूपी रस्सी से बँधे हुये मध्य भाग वाले (हाथी के पक्ष मे–बिजली की भाँति रस्सी से बँधी हुई कमर वाले), अन्योन्यम्=एक दूसरे को, अभिद्रवन्त.=धक्का देते हुए, सधारा.=धाराओ वाले, वारिधरा=बादल, शक्राज्ञया=इन्द्र की आज्ञा से, गाम्=पृथ्वी को, रूप्यरज्ज्वा=चाँदी की रस्सी से, समुद्धरन्ति=ऊपर उठा रहे हैं।

अनुवाद–बिजली रूपी रस्सी से (गज पक्ष मे–बिजली के समान रस्सी से) (बँधे हुए मध्य भाग वाले, एक दूसरे को धक्का देते हुए, हाथियो के तुल्य ये (जल) धारा युक्त मेघ मानो इन्द्र की आज्ञा से पृथ्वी को (जल धारा रूपी) चाँदी की रस्सियो से ऊपर उठा रहे हैं।

संस्कृत टीका –विद्युद्गुण० = तडिद्रूपसूत्रसम्बद्धमध्यभागा, अन्योयम् = परस्परम्, अभिद्रवन्त =अभिगच्छन्तेः, गजा =करिण , इव, सधारा =जलधारायुक्ता, एते=दृश्यमाना, वारिधरा.=मेघा, शक्राज्ञया=इन्द्रादेशेन, गाम्=पृथ्वीम्, रूप्यरज्ज्वा=रजतसूत्रेण, इव, समुद्धरन्ति=उत्कर्षन्ति ॥

समास एवं व्याकरण–(१) विद्युद्०–विद्युत् एव गुण (गजपक्षे विद्युद् इव गुण) तेन वद्धा कक्षा येषाम् ते । सधारा –धाराभि सह विद्यमाना, शक्राज्ञया–शक्रस्य आज्ञया । रूप्यरज्ज्वा—रूप्यस्य रज्ज्वा । (२) गुण –गुण्+अच् । कक्षा—कष्+स । अभिद्रवन्त –अभिद्रु+अप्+ल्युट्+क्त । रूप्य–रूप+यत् । रज्ज्वा–

सृज् + उ, समुमागम धातोरसलोप आगतस्कारस्य जस्त्व दकारः, तस्यापि चुत्व जकार ।

विवृति

(१) मक्ष—(i) मध्यभाग (ii) कटिमाग । (२) प्रस्तुत पद्य मे उत्प्रेक्षा की गई है कि जैसे कोई मारी वस्तु रस्सियो से बांधकर ऊपर उठाई जाती है वैसे ही ये मेघ मानो अपनी जलधारा रूपी चाँदी की रस्सियो से जलमग्न पृथ्वी को ऊपर उठा रहे है । (३) इस श्लोक के पूर्वार्द्ध मे पूर्णोपमालङ्कार है । (४) उत्तरार्द्ध के 'गामुद्धरन्तीव' इस अश मे क्रियोत्प्रेक्षालङ्कार हैं । (५) श्लोक मे रूपकालङ्कार भी है । (६) उपजाति छन्द है । छन्द का लक्षण—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादा यदीयावुपजातयस्ताः ।"

अपि च पश्य ।

और भी देखो—

महावाताध्मातैर्महिषकुलनीलैर्जलधरै—
 श्चलैर्विद्युत्पक्षैर्जलधिभिरिवान्तः प्रचलितैः ।
इय गन्धोद्दामा नवहरितशष्पाङ्कुरवती
 धरा धारापातैर्मणिमयशरैर्भिद्यत इव ॥२२॥

अन्वय—महावाताध्मातै, महिषकुलनीलै, विद्युत्पक्षै, अन्तः प्रचलितैः, जलधिभि॰, इव, चलै, जलधरै, नवहरितशष्पाङ्कुरवती, गन्धोद्दामा, इय, धरा, धारापातैः, मणिमयशरै, भिद्यते, इव ॥२२॥

पदार्थ—महावाताध्मातै =प्रचण्ड वायु से भरे हुये, महिषकुलनीलै =भैसो के झुण्ड की भाँति नीले, विद्युत्पक्षै =बिजली रूपी पखो के द्वारा, अन्तः प्रचलितैः= आकाश मे चलायमान (समुद्र-पक्ष मे—अन्दर से क्षुब्ध), जलधिभि =समुद्र के द्वारा, चलै =चञ्चल, जलधरै.=मेघो के द्वारा, नवहरित॰=नयी हरी घासो के अङ्कुर वाली, गन्धोद्दामा=तेज महकवाली, धारापातै॰=धाराओ के गिरने से, मणिमयशरैः= मणिमय बाणो से, भिद्यते इव=भेदी सी जा रही है ।

अनुवाद—प्रबल पवन से परिपूर्ण, भैसों के झुण्ड की भाँति नीले, बिजली रूपी पखो के द्वारा अन्तरिक्ष मे घूमने वाले (समुद्र-पक्ष मे—अन्दर से विक्षुब्ध) समुद्र के समान चञ्चल मेघो के द्वारा अभिनव हरी घास के अङ्कुर वाली उत्कट (सौंधी) सुगन्धशालिनी यह धरती (वल) धारापात रूपी मणिमय बाणों से बीधी-सी जा रही है ।

संस्कृत टीका—महावाताध्मातैः=प्रचण्डवातपूरितै॰, महिष॰=सैरिभसमूहश्यामै, विद्युत्पक्षैः=तडित्पक्षै॰, अन्तः प्रचलितै.=अन्तरिक्षप्रसर्पद्भि॰, जलधिभिः=

सागरैः, इव=तद्वत्, चलैः=चञ्चलैः, जलधरैः=मेघैः, नवहरित०=नूतनपालाशबालतृणप्ररोह शालिनी, गन्धोद्दामा=नववर्षणोद्भूतगन्धोत्कृष्टप्रभावा, इयम्=दृश्यमाना, धरा=पृथ्वी, धारापातैः=वृष्टिजलासारैः, मणिमयशरैः-रत्ननिर्मितवाणैः, भिद्यते=छिद्यते, इव ॥

समास एवं व्याकरण—(१) महावात०—महावातेन आध्मातैः । महिषकुल०—महिषाणाम् कुलानि तद्वत् नीलाः तैः । विद्युत्पक्षैः-विद्युतः एव पक्षाः तैः (करणभूतैः) अथवा विद्युतः एव पक्षाः येषाम् ते (ब० स०) तैः । नवहरित०—नवानाम् हरितानाम् शष्पाणाम् ये अङ्कुराः तद्वती गन्धोद्दामा-गन्धेन उद्दामा । (२) आध्मात—आ + ध्मा (शब्दाग्निसंयोगयोः) + क्त । शष्पः—शप् + पक् । भिद्यते—भिद् + लट् ।

विवृति

(१) 'लुलापो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः । (२) विद्युत्पक्षैः-इसे जलधरैः का विशेषण भी मान सकते हैं, तब अर्थ होगा-बिजली रूपी पंखों वाले । (३) गन्धोद्दामा-(१) उत्कट गन्ध वाली (ii) मद (गर्व=गन्ध) से उत्कट । (४) 'पालाशो हरितो हरित्' इत्यमरः । (५) शष्प बालतृण घासो यवस तृणमर्जुनम्' इत्यमरः । (६) अङ्कुरोऽभि-नवोद्भिदि' इत्यमरः । (७) प्रस्तुत पद्य के 'महिषयकुलनीलैः' इस अंश मे लुप्तोपमालङ्कार है । (८) 'विद्युत्पक्षैः' मे निरङ्ग केवल रूपकालङ्कार है । (९) 'जलधिभिरिव' मे पूर्णोपमालङ्कार है । (१०) 'भिद्यत इव' मे क्रियोत्प्रेक्षालङ्कार है । (११) श्लोक के चतुर्थ चरण मे छेकानुप्रासालङ्कार है । (१२) इनकी स्थिति परस्पर सापेक्ष होने से संसृष्टि है । (१३) श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है-शिखरिणी । छन्द का लक्षण—"रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।"

वसन्तसेना—भाव, एषोऽपरः । [भाव, एसो अवरो ।]

वसन्तसेना—विद्वन् ! यह दूसरा—

एह्येहीति शिखण्डिना पटुतरं केकाभिराक्रन्दितः
प्रोड्डीयेव बलाकया सरभसं सोत्कण्ठमालिङ्गितः ।
हंसैरुज्झितपङ्कजै रतितरां सोद्वेगमुद्वीक्षितः
कुर्वन्नञ्जनमेचका इव दिशो मेघः समुत्तिष्ठति ॥२३॥

अन्वय.—शिखण्डिना, केकाभिः, एहि एहि, इति, पटुतरम्, आक्रन्दित, बलाकया, सरभस, प्रोड्डीय, सोत्कण्ठम्, आलिङ्गित, इव, उज्झितपङ्कजैः, हंसैः, अतितरा,सोद्वेगम्, उद्वीक्षितः, मेघ, दिशः, अञ्जनमेचकाः, कुर्वन्, इव, समुत्तिष्ठति ॥२३॥

पदार्थ :—शिखण्डिनाम्=मोरों को, केकाभिः=ध्वनियों के द्वारा, एहि

एहि=आओ आओ, पटुतरम्=भली-भाँति, आक्रन्दितः=बुलाया गया, बलाकया=बगुलो की पाँत के द्वारा, सरभसम्=वेगपूर्वक, प्रोड्डीय=उड़कर, सोत्कण्ठम्=उत्सुकता के साथ, उज्झितपङ्कजैः=कमलो को छोडने वाले, अतितराम्=अत्यन्त, सोद्वेगम्=घबराहटपूर्वक, उद्वीक्षित=देखा गया, अञ्जनमेचका=काजल के समान काली, समुत्तिष्ठति=उमड रहा है।

अनुवाद-मयूरो की ध्वनियो से 'आओ आओ' इस प्रकार सुस्पष्ट रूप से बुलाया गया, बक-पंक्तियो के द्वारा वेगपूर्वक उमडकर मानो उत्कण्ठा--पूर्वक आलिङ्गन किया गया, कमलो को त्याग देने वाले हंसो के द्वारा अत्यन्त उद्विग्नता से देखा गया मेघ दिशाओ को अञ्जन के समान काला करता हुआ उमड रहा है।

संस्कृत टीका—शिखण्डिनाम्=मयूराणाम्, केकाभिः=शब्दैः, एहि एहि=आगच्छ आगच्छ, इति=इत्थम्, पटुतरम्=व्यक्ततरम्, आक्रन्दित=आहूत, बलाकया=बकपङ्क्त्या, सरभसम्=सवेगम्, प्रोड्डीय=समुत्पत्य, सोत्कण्ठम्=उत्कण्ठापूर्वकम्, आलिङ्गित=आश्लिष्ट, इव=तद्वत् उज्झितपङ्कजैः=परित्यक्तकमलै, हंसैः=मरालै, अतितराम्=अत्यन्तम्, सोद्वेगम्=सोत्कण्ठम्, उद्वीक्षित=अवलोकित, मेघ=वारिवाह, दिश=आशा, अञ्जनमेचका=कज्जलकृष्णवर्णा, कुर्वन्=विदधत्, इव, समुत्तिष्ठति=समुज्जृम्भते।

समास एवं व्याकरण—(१) सोत्कण्ठम्-उत्कण्ठया सहितम् सोत्कण्ठम् (ब० स०) तत् यथा स्यात् तथा। उज्झितपङ्कजैः—उज्झितानि पङ्कजानि यैः तादृशैः। अञ्जनमेचका-अञ्जनवत् मेचका। (२) शिखण्डिन्—शिखण्डोऽस्त्यस्य इनि। उद्वीक्षित-उद्+वि+ईक्ष्+क्त। आक्रन्दित आ+क्रन्द+क्त। पटुतरम्—पटु+तर। उज्झित—उज्झ्+क्त। मेचक-मच्+वुन् (इत् च)। प्रोड्डीय-प्र+उद्+डी+क्त्वा→ल्यप्। कुर्वन्-कृ+शतृ।

विवृति

(१) 'केका वाणी मयूरस्य' इत्यमर। (२) 'उद्वेग उद्भ्रमे' इत्यमर। (३) 'कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचका' इत्यमर। (४) प्रस्तुत पद्य के 'आक्रन्दित इव' आलिङ्गित इव' में क्रियोत्प्रेक्षालङ्कार है। (५) 'अञ्जनमेचका कुर्वन् इव' मे गुणोत्प्रेक्षालङ्कार है। (६) इस श्लोक मे उपमालङ्कार भी है। (७) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। छन्द का लक्षण- सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।' (८) 'नदति स एष वधूसख शिखण्डी"। उत्तररामचरित॥ (९) "अविरतोज्झितवारिविपाण्डुभि.।"—किरात०। (१०) श्लोक मे शब्दशक्तिमूलावस्तुध्वनि है। मेघोदय से कवि ने व्यङ्ग्य रूप से संसार की सुख दु खात्मकता सूचित की है। (११) प्रसादगुण है। (१२) 'स्वागतीकृत्यकेका।'—मघ०।

विट.—एवमेतत् । तथा हि पश्य ।
विट—यह ऐसा ही है । उसी प्रकार देखो—

निष्पन्दीकृतपद्मषण्डनयनं नष्टक्षपावासरं
विद्युद्भिः क्षणनष्टदृष्टतिमिरं प्रच्छादिताशामुखम् ।
निश्चेष्टं स्वपितीव सम्प्रति पयोधारागृहान्तर्गतं
स्फीताम्भोधरधामनैकजलदच्छत्रापिधानं जगत् ॥२४॥

अन्वय —निष्पन्दीकृतपद्मषण्डनयन, नष्टक्षपावासर, विद्युद्भिः, क्षणनष्टदृष्टतिमिर, प्रच्छादिताशामुख, स्फीताम्भोधरधामनैकजलदच्छत्रापिधान, पयोधारागृहान्तर्गतं, जगत्, सम्प्रति, निश्चेष्ट, स्वपिति, इव ॥२४॥

पदार्थ —निष्पन्दी०=कमलो के समूह रूपी नेत्रों को बन्द करने वाला, नष्टक्षपा०=रात और दिन जिसमे नष्ट हो गये हैं, विद्युद्भिः=बिजलियो से, क्षणनष्ट०=क्षण भर मे नष्ट हो जाता है और फिर दिखलाई पडने लगता है अन्धकार जिसमे, प्रच्छादिताशामुखम्=ढँका है दिशा रूपी मुँह जिसका ऐसा, स्फीताम्भोधर०=विस्तीर्ण बादल के निवास-स्थान (आकाश) मे बहुत से बादल ही जिसके ढकने वाले छाते हैं ऐसा, पयोधर०=जलधारा रूपी घर मे स्थित, जगत्=ससार, सम्प्रति=इस समय, निश्चेष्टम्=निश्चलतापूर्वक, स्वपिति इव=सो सा रहा है ।

अनुवादः—निश्चल किये गये कमल-समुदाय रूपी नेत्रो वाला, विनष्ट किये गये रात-दिन वाला, बिजली के द्वारा क्षण मे विनष्ट किये गये और क्षण में दृष्टिगोचर अन्धकार वाला, दिशा रूपी मुख को ढक देने वाला, विस्तीर्ण बादलो के निवास-स्थान (आकाश) मे विविध बादल रूपी छत्र से आच्छन्न, जलधारा रूपी घर के अन्दर अवस्थित ससार इस समय मानो निश्चेष्ट होकर सो रहा है ।

सस्कृत टीका—निष्पन्दी०=निश्चलीकृतकमलसमूहनेत्रम्, नष्टक्षपा०=अदृष्टनिशादिवसम्, विद्युद्भिः=तडिद्भिः, क्षणनष्ट०=किञ्चित्कालादर्शनावलोकितान्धकारम्, प्रच्छादिताशामुखम्=व्याप्तदिङ्मण्डलम्, स्फीता०=वर्धमानमेघगेहबहुपयोदातपत्रावरणम्, पयोधारा०=जलधारागेह मध्यस्थितम्, जगत्=ससार, सम्प्रति=इदानीम्, निश्चेष्टम्=निश्चलम् यथा स्यात्तथा, स्वपिति=शेते इव ॥

समास एवं व्याकरण—(१) निष्पन्दीकृत०=निष्पन्दीकृतम् पद्मानाम् षण्डम् एव नयनम् येन तादृशम् । नष्टक्षपावासरम्=नष्टौ क्षपावासरौ यस्मिन् तादृशम् । क्षणनष्ट०—क्षणम् नष्टम् पश्चात् दृष्टम् तिमिरम् यस्मिन् तादृशम् । प्रच्छादित०=प्रच्छादितानि आशामुखानि यस्य तादृशम् । स्फीताम्भोधर०—स्फीतानाम् अम्भोधराणाम् धामनि ये नैकजलदा. त एव छत्राणि तैः अपिधानम् यस्य तत्तथोक्तम् । पयोधारा०—पयोधराः एव गृहम् तस्य अन्तर्गतम् । (२) पद्म–पद्+मन् । षण्ड–सन्+

ड, पृषो० णत्वम् । क्षपयति चेष्टाम् इति क्षपा—क्षप्+अच्+टाप् । विद्युत्—वि+द्युत्+क्विप् । जगत्=गम्+क्विप् (द्वित्व तुगागम) ।

विवृति

(१) 'अब्जादिकदम्बे षण्डमस्त्रियाम्' इत्यमर । (२) प्रस्तुत पद्य मे—जगत् जलधारारूपी भवन मे सा रहा है'—यह उत्प्रेक्षा की गई है । (३) 'पयोधारागृहान्तर्गतम्' यहाँ तक सभी विशेषण जगत के हैं । (४) पद्मषण्ड' मे नेत्रत्व का, जलद मे छत्रत्व का आरोप करने से रूपकालङ्कार है । (५) शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

वसन्तसेना—भाव, एव न्विदम् । तत्पश्य पश्य । [भाव, एव्व णेदम् । ता पेक्ख पेक्ख ।]

वसन्तसेना—यह ऐसा ही है । तो देखिये ! देखिये !

> गता नाशं तारा उपकृतमसाधाविव जने
> वियुक्ता कान्तेन स्त्रिय इव न राजन्ति ककुभः ।
> प्रकामान्तस्तप्तं त्रिदशपतिशस्त्रस्य शिखिना
> द्रवीभूतं मन्ये पतति जलरूपेण गगनम् ॥२५॥

अन्वय—असाधौ, जने, उपकृतम्, इव, तारा, नाश, गता, कान्तेन, वियुक्ता, स्त्रिय, इव, ककुभ, न, राजन्ति, त्रिदशपतिशस्त्रस्य, शिखिना, प्रकामम्, अन्तस्तप्तम्, (अतएव), द्रवीभूत, गगन, जलरूपेण, पतति, (इति अहम्), मन्ये ॥२५॥

पदार्थ—असाधौ=दुष्ट, उपकृतम्=उपकार, कान्तेन=प्रेमी के द्वारा, ककुभ=दिशायें राजन्ति=शोभित हो रही हैं, त्रिदश०=देवताओं के स्वामी (इन्द) के शस्त्र (वज्र) की, शिखिनि=आग से, प्रकामम्=अत्यन्त, अन्तस्तप्तम्=भीतर तपा हुआ, द्रवीभूतम्=पिघला हुआ, मन्ये=मानता हूँ ।

अनुवाद—दुर्जन पर किये गये उपकार की भाँति तारे नाश को प्राप्त हो गये हैं, प्रियतम से वियुक्त स्त्रियों के समान दिशायें सुशोभित नहीं हो रही हैं, इन्द्र के वज्र की अग्नि से हृदय से अतिसतप्त आकाश पिघलकर जल रूप में गिर रहा है (ऐसा मैं) मानती हूँ ।

संस्कृत टीका—असाधौ=दुष्टे, जने=व्यक्तौ, उपकृतम्=उपकार, इव, तारा=नक्षत्राणि, नाशम्=अदर्शनम्, गता=प्राप्ता, कान्तेन=प्रियेण, वियुक्ता=विरहिता, स्त्रिय=वनिता, इव, ककुभ=दिश, न राजन्ति=न शोभन्ते, त्रिदश० इन्द्रवज्रस्य, शिखिना=वह्निना, प्रकामम्=अत्यन्तम्, अन्तस्तप्तम्=अभ्यन्तरसतप्तम्, द्रवीभूतम्=काठिन्यरहितम्, गगनम्=अम्बरम्, जलरूपेण=सलिलरूपेण, पतति+स्रवति (इत्यहम्), मन्ये=सम्भावयामीत्यर्थ ।

समास एवं व्याकरण—(१) त्रिदश०—तृतीया यौवनाख्या दशा यस्य । त्रिशब्दस्यात्र त्रिभागवत् तृतीयार्थकता । यद्वा तिस्रः जन्मसत्त्वाविनाशाख्याः न तु मर्त्यानामिव वृद्धिपरिणामक्षयाख्याः, दशाः यस्य । यद्वा+त्रधिकास्त्रिरावृत्ताश्च दश (त्रयस्त्रिंशद् भेदा इत्यर्थः) यस्य । समासेऽच्, शाकपार्थिवादित्वान्मध्यलोपः । बहुवचने त्रिदशाः । त्रिदशानां पतिः तस्य शस्त्रम् (ष० त०), तस्य । (२) उपकृतम्—उप+कृ+क्त । गता—गम्+क्त । वियुक्ता-वि+युज्+क्त । ककुभः—क+स्कुन्+क्विप् । पतति—पत्+लट् । नाशम्—नश्+घञ् । मन्ये-मन्+लट् ।

विवृति

(१) 'शिखिनौ वह्निबर्हिणौ' इत्यमरः । (२) 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाहरितश्च ताः' इत्यमरः । (३) ककुभः-दिशायें, (ककुभ् मकारान्त स्त्री०) (४) 'असाधौ उपकृतम् इव'; भावसाम्य—'असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता' । (५) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध में उपमालङ्कार है । (६) उत्तरार्द्ध में उत्प्रेक्षालङ्कार है । (७) शिखरिणी छन्द है । लक्षण—"रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥"

अपि च पश्य ।

और भी; देखो—

उन्नमति नमति वर्षति गर्जति मेघः करोति तिमिरौघम् ।
प्रथमश्रीरिव पुरुषः करोति रूपाण्यनेकानि ॥२६॥

अन्वयः—प्रथमश्रीः, पुरुषः, इव, मेघः, अनेकानि, रूपाणि, करोति, (सः) कदाचित् । उन्नमति नमति, वर्षति, गर्जति, तिमिरौघं, करोति ॥२६॥

पदार्थः—प्रथमश्रीः=पहले पहल धन पाये हुये, उन्नमति=(१)उमड़ रहा है, (२) ऊँचा उठकर चलता है या अभिमान प्रकट करता है, नमति=(१)झुक रहा है, (२) तुच्छ वस्तुओं की ओर झुकता है या नम्रता से कार्य करता है । वर्षति=(१) बरस रहा है, (२) मुक्त हस्त से दान करता है, गर्जति=(१) गरज रहा है, (२)गर्व के साथ बोलता है, तिमिरौघम्=(१) अन्धकार के समूह को, (२)कलुषित कर्म-समूह को ।

अनुवादः—पहले पहल सम्पत्ति प्राप्त किये हुये पुरुष के समान मेघ अनेक रूप धारण कर रहा है—(कभी तो वह) उमड़ रहा है, (कभी) झुक रहा है, (कभी) बरस रहा है, (कभी) गरज रहा है तथा कभी अन्धकार-समूह को (उत्पन्न) कर रहा है ।

संस्कृत टीका—प्रथमश्रीः=नवसम्पत्, पुरुषः=मनुष्यः, इव, मेघः=पयोदः, अनेकानि=विविधानि, रूपाणि=आकृतीः, करोति=विदधाति, (कदाचित्) उन्नमति=उद्गच्छति, नमति=अधः आगच्छति, वर्षति=जलं मुञ्चति, गर्जति=

शब्दम् करोति, तिमिरौघम् = अन्धकारसमूहम्, करोति = विदधाति ।

समास एवं व्याकरण—(१) प्रथमश्री —प्रथमम् प्राप्ता श्रीः येन तादृशः । (२) उन्नमति—उद्+न्+लट् । अथवा प्रथमा श्रीः यस्य स. । नमति—नम्+लट् । वर्षति—वृष+लट् । गर्जति—गर्ज+लट् । तिमिर—तिम्+किरच् ।

विवृति

(१) पहले-पहले धन पाने वाला मनुष्य भी अनेक कौतुक करता है । इसी प्रकार वर्षा मे मेघ प्रथमत सम्पत्ति प्राप्त करने वाले पुरुष के समान अनेक रूप धारण करता है । (२) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध मे एक ही मेघ का उमड़ना आदि अनेक क्रियाओ से सम्बन्ध होने से क्रिया दीपिकालङ्कार है । (३) 'श्रीरिव' मे श्रौतीउपमालङ्कार है । (४) आर्या छन्द है । लक्षण—"यस्या. पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"

विटः—एवमेतत् ।

विट—यह ऐसा ही है ।

विद्युद्भिर्ज्वलतीव संविहसतीवोच्चैर्बलाकाशतै—
महेन्द्रेण विवल्गतीव धनुषा धारा शरोद्गारिणा ।
विस्पष्टाशनिनिस्वनेन रसतीवाघूर्णतीवानिले—
र्नीलैः सान्द्रमिवाहिभिर्जलधरैर्धूपायतीवाम्बरम् ॥२७॥

अन्वय—अम्बरम्, विद्युद्भिः, ज्वलति, इव, बलाकाशतैः, उच्चैः, संविहसति, इव, धाराशरोद्गारिणा, माहेन्द्रेण, धनुषा, विवल्गति, इव, विस्पष्टाशनिनिस्वनेन, रसति, इव, अनिलैः, आघूर्णति, इव, अहिभिः, इव, नीलैः, जलधरैः, सान्द्र, धूपायति, इव ॥२७॥

पदार्थ—अम्बरम् = आकाश, विद्युद्भिः = बिजलियों, ज्वलति इव = जल सा रहा है, बलाकाशतैः = बगुलो की सैकड़ो पाँतो से, संविहसति इव = हँस सा रहा है, धाराशरोद्० = धारा रूपी बाणो को उगलने या बरसाने वाले, माहेन्द्रेण = इन्द्र सम्बन्धी, विवल्गति इव = विशेष गति करता है, उछलता है या पैंतरे बदलता है, विस्पष्टा० = स्पष्ट वज्र के शब्द से, रसति इव = गरज-सा रहा है, आघूर्णति = घूम रहा है, अहिभिः = साँपो के (समान), सान्द्रम् = खूब घने रूप मे, धूपायति इव = धूपित सा हो रहा है ।

अनुवाद—आकाश बिजलियो से जल-सा रहा है, सैकड़ो बकपंक्तियो के द्वारा जोर से हँस सा रहा है, (जल) धारा रूपी बाण-वर्षा करने वाले इन्द्र धनुष से पैंतरे-से बदल रहा है, स्पष्ट वज्र के निर्घोष से गर्जन-सा कर रहा है, वायु के द्वारा

घूम-सा रहा है, सर्पों की भांति श्याम मेघा से घना धूपित-सा हो रहा है।

संस्कृत टीका—अम्बरम्=गगनम्, विद्युद्भि=तडिद्भि, ज्वलति=देदीप्यत, इव, बलाकाशतै=बकसमूहपङ्क्तिभि, उच्चै=तारम् यथा स्यात् तथा, सविहसति=सम्यक् हासम् करोति, इव, धाराधरोद०=जल धारा–रूप बाणवर्षिणा, माहेन्द्रेण=ऐन्द्रेण धनुषा=कार्मुकेण, विदलति=प्रस्फुरति, इव, विस्पष्टा०=सुव्यक्त–वज्रशब्देन, रसति=गर्जति, इव, अनिलै=पवनै, आघूर्णति=परित+अटति, इव, अहिभि=भुजगै, इव, नीलै=श्यामै, जलधरै=मेघै, सान्द्रम्=घनीभूतम्, धूपायति=आत्मान सुगन्धीकरोति इव।

समास एव व्याकरण—(१) बलाकशतै–बलाकानाम् शतै:। माहेन्द्रेण–महेन्द्रस्य इदम् माहेन्द्रम् तेन। धाराधरोद०–धारा एव धरा तान् उदगिरति इति तन। विस्पष्टा०—विस्पष्ट य स्नेह निस्वन तेन। सविहसति–सम्+वि+हस्+लट्। माहेन्द्रेण–महेन्द्र+अण्। विवल्गति–वि+वल्ग्+लट्। आघूर्णति–आ+घूर्ण+लट्। धूपायति–धूपायति–धूप्+क्यङ्+लट् (नामधातु)। वस्तुत यह प्रयोग अशुद्ध है क्योंकि क्यङ् होन पर धूपायत बनगा और णिच् हाने पर धूपयति बनेगा। धूप इव आचरति इति अथवा धूपम् करोति इति।

विवृति

(१) पद्य म मालारूपकालङ्कार है। (२) कुछ टीकाकार ने उत्प्रेक्षालङ्कार कहा है। (३) 'ज्वलति इव' 'विवल्गति इव' और 'रसति इव' म क्रियोत्प्रेक्षा है। (४) 'अहिभि इव' उपमालङ्कार है।(५)'धूपायति इव' क्रियोत्प्रेक्षालङ्कार है। (६) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लक्षण–"सूर्याश्वैर्यदि म सजो स्ततगा शार्दूलविक्रीडितम्"।

वसन्तसेना—

वसन्तसना—

जलधर ! निर्लज्जस्त्व यन्मा दयितस्य वेश्म गच्छन्तीम्।
स्तनितेन भीषयित्वा धाराहस्तै: परामृशसि॥२८॥

अन्वय–हे जलधर ! त्व, निर्लज्ज, (असि) यत्, दयितस्य, वश्म, गच्छन्ती, मा, स्तनितेन, भीषयित्वा, धाराहस्तै, परामृशसि॥२८॥

पदार्थ—हे जलधर !=हे मेघ ! निर्लज्ज=लज्जाशून्य, दयितस्य=प्रेमी के, वेश्म=घर को, स्तनितेन=गर्जन स, भीषयित्वा=डरा कर, धाराहस्तै=धारा रूपी हाथों से, परामृशसि=छू रहे हो।

अनुवाद — हे मेघ ! तुम निर्लज्ज हो, जो प्रियतम के घर जाती हुई मुझे (अपने) गर्जन स भयभीत कर धारा रूपी हाथों स छू रहे हो।

संस्कृत टीका — हे जलधर !=हे मघ !, त्वम्=भवान्, निर्लज्ज=त्रपाविहीन, यत्=यस्मात्, दयितस्य=प्रियस्य, वेश्म=भवनम्, गच्छन्तीम्=

व्रजन्तीम्, माम्=वसन्तसेनाम्, स्तनितेन=गर्जितेन, भीषयित्वा=त्रासयित्वा, धारा हस्तै=जलधाराकरै, परामृशसि=स्पृशसि।

समास एवं व्याकरण—(१) धाराहस्तै—धारा एव हस्ता तैः। (२) स्तनितम्-स्तन+कर्तरि क्त। भीषयित्वा—भी+णिच, पुक् आगम, क्त्वा→ल्यप्। परामृशसि-परा+मृश्+लट्। (३) जलधर-धरतीति धर, धृ+अच् जलस्यधर जलधरः (ष०त०)। तत्सम्बोधने।

विवृति

(१) सज्जन पुरुष कभी किसी की स्त्री को नही छूते, परन्तु तू तो मुझ डरा और छू रहा है अत वास्तव मे तू निलज्ज है। (२) 'स्तनित धनगर्जितम्' इत्यमर। (३) प्रस्तुत पद्य म मेघ म किसी कामुक के व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलाङ्कार है। लक्षण—' समासोक्ति समैयत्र, कार्यलिङ्ग विशेषणै। व्यवहारसमारोप प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुन।' (४) आर्या छन्द है।

भो शक्र,

हे मेघ!

किं ते ह्यह पूर्वरतिप्रसक्ता यत्व नदस्यम्बुदसिंहनादै ?।
न युक्तमेतत्प्रियकाङ्क्षिताया मार्गं निरोद्धु मम वर्षपातै ॥२९॥

अन्वय—अह, किं, त पूर्वरतिप्रसक्ता, (आसम्) ? यत्, त्वम, अम्बुदसिंहनादै नदसि, प्रियकाक्षिताया, मम, मार्ग, वर्षपातै, निरोद्धुम् एतत्, न युक्तम्॥२९॥

पदार्थ—पूर्वरतिप्रसक्ता=पहले प्रेम म आसक्त अम्बुदसिंहनादै=बादलों के सिंह के समान गर्जनो स, नदसि=गरज रहे हो प्रिय०=प्रिय क द्वारा चाही गई या प्रिय को चाहन वाली, वर्षपातै=वर्षा के गिराने स अर्थात् वर्षा करके, निरोद्धुम्=रोकना।

अनुवाद—मैं क्या पहले तेरे प्रेम म अनुरक्त थी ? जो तुम मेघों के सिंहनादो से गरज रहे हो ? प्रियतम के द्वारा चाही गई मेरा वृष्टिपात के द्वारा रास्ता रोकना यह उचित नहीं है।

संस्कृत टीका—अहम्=वसन्तसेना, किमिति प्रश्ने, त=तव, पूर्वरतिप्रसक्ता=प्रथमानुरागात्यासक्ता यत=यस्मात् कारणात् त्वम्=इन्द्र, अम्बुद०=जलदसिंह वद्गर्जनै, नदसि=शब्दम् करोषि, प्रियकाङ्क्षिताया=वल्लभवाञ्छिताया, मम=म, मार्गम्=पन्थानम्, वर्षपातै=धारापातै, निरोद्धुम्—अवरोद्धुम् निवारयितुमित्यर्थ, एतत्=इदम् न युक्तम्=नोचितम्।

समास एवं व्याकरण—(१)पूर्वरति०—पूर्वा रति तत्र प्रसक्ता। अम्बुद०—अम्बुदानाम् सिंहनादै। प्रियकाङ्क्षिताया=प्रियण काङ्क्षिता प्रियकाङ्क्षिता (तृ० त०) अथवा प्रिय

काङ्क्षित. यस्या. सा प्रियकाङ्क्षिता (ब० स०), तस्या । (२) प्र+सज्ज्+क्त । युक्तम्-युज्+क्त । निरोद्धुम्—नि+रुध्+तुमुन् ।

विवृति

(१) M. B. काले के अनुसार 'प्रियः काङ्क्षितो यस्या.' यह विग्रह अधिक सङ्गत है 'प्रियेण काङ्क्षिताया.' नहीं, क्योंकि वास्तविकता यही है। (२) किसी पुरुष की पूर्व प्रेमिका यदि दूसरे पुरुष पर अनुरक्त हो जाती है तो उसका गरजना ठीक है, किन्तु वसन्तसेना तो इन्द्र की प्रेमिका कभी रही नहीं, तब आज चारुदत्त के पास जाती हुई उस पर इन्द्र क्यों गरज रहा है ? (३) प्रस्तुत पद्य मे पहले आधे वाक्य के अर्थ को बाण के वाक्यार्थ के प्रति हेतु के रूप में उल्लिखित होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (४) उपजाति छन्द है। लक्षण—'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता ।'

अपि च ।

और भी—

यद्वदहल्याहेतोर्मृषा वदसि शक्र ! गौतमोऽस्मीति ।
तद्वन्ममापि दुःख निरपेक्ष ! निवार्यता जलदः ॥३०॥

अन्वय—हे शक्र ! यद्वत्, अहिल्याहेतो, गौतम, अस्मि, इति, (त्वम्) मृषा, वदसि, हे निरपेक्ष ! तद्वत्, मम, अपि दुःख (ज्ञात्वा), जलदः, निवार्यताम् ॥३०॥

शब्दार्थ—हे शक्र!=हे इन्द्र ! अहल्याहेतो.=अहल्या के निमित्त, गौतम = गौतम (अहल्या के पति का नाम), मृषा=असत्य, वदसि=कहते हो, हे निरपेक्ष= हे पराई पीडा को न जानने वाले !, तद्वत्=उसी प्रकार, निवार्यताम्=रोका जाय।

अनुवाद—हे इन्द्र ! जिस प्रकार अहल्या के निमित्त (तुमने) 'मैं गौतम हूँ' इस प्रकार मिथ्या कहा था। हे पराई पीडा को न जानने वाले (इन्द्र) ! उसी प्रकार मेरा भी दुःख जान कर मेघो को रोक लो।

संस्कृत टीका—हे शक्र !=हे इन्द्र ! यद्वत्=यथा, अहल्याहेतो=गौतमपत्नीकारणात्, 'गौतमः अस्मि', इति=इत्थम्, (त्वम्) मृषा=मिथ्या, वदसि= कथयसि, हे निरपेक्ष ! हे परपीडानभिज्ञ ! तद्वत्=तथा, ममापि=वसन्तसेनायाअपि, दुःखम्=मदनजनितक्लेशम् (ज्ञात्वा), जलद.=मेघ, निवार्यताम्=अपवार्यताम् ।

समास एव व्याकरण—(१) अहल्याहेतो—अहल्यायाः हेतो । निरपेक्ष—नि· नास्ति अपेक्षा यस्य स निरपेक्षः (प्रा० ब० स०), तत्सम्बोधने। (२) शक्रः—शक्+रक् । मृषा-मृष्+का । निवार्यताम्—नि+वृ+णिच्+यक्+लोट् ।

विवृति

(१) अहनि लीयते इति Ahalya । (२) रामायण के अनुसार अहल्या सबसे

पहली स्त्री थी जिसे ब्रह्मा ने पैदा किया—और गौतम को दे दिया, इन्द्र ने उसके पति का रूप धारण करके उसे सत्पथ से फुसलाया इस प्रकार उसे धोखा दिया। दूसरे कथानक के अनुसार वह इन्द्र को जानती थी और उसके अनुराग तथा नम्रता के वशीभूत हो वह उसकी चापलूसी का शिकार बन गई थी। इसके अतिरिक्त एक और कहानी है जिसके अनुसार इन्द्र ने चन्द्रमा की सहायता प्राप्त की। चन्द्रमा ने मुर्गे बनकर आधी रात को ही बाग दे दी। इस बाग ने गौतम को अपने प्रातःकालीन नित्यकृत्य करने के लिए जगा दिया। इन्द्र ने अन्दर प्रविष्ट होकर गौतम का स्थान ग्रहण कर 'मैं गौतम हूँ' इस प्रकार मिथ्या कह कर छल से अहल्या के साथ सम्भोग किया था। जब गौतम को अहल्या के पथभ्रष्ट होने का ज्ञान हुआ तो उसने उसे आश्रम से निर्वासित कर दिया और शाप दिया कि वह पत्थर बन जाय तथा तब तक अदृश्य अवस्था में पड़ी रहे जब तक कि दशरथ के पुत्र राम का चरण-स्पर्श न हो, जो कि अहल्या को फिर पूर्वरूप प्रदान करेगा। उसके पश्चात् राम ने उस दीनदशा से उसका उद्धार किया—और तब उसका अपने पति से पुनर्मिलन हुआ। (३) अहल्या प्रातः स्मरणीय उन पाँच सती तथा विशुद्ध चरित्र महिलाओं में एक है जिनका प्रातः-काल नाम लेना श्रेयस्कर है—'अहल्या, द्रौपदी, सीता, तारा, मन्दोदरी तथा, पञ्चकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातक नाशिनीः ॥' (४) तद्वत्—तात्पर्य यह है कि जैसे तुम अहल्या के लिए व्यथित हुए थे उसी प्रकार मैं भी चारुदत्त के लिए व्यथित हूँ। अतः बादल को रोक दो। (५) प्रस्तुत पद्य में आर्या छन्द है। लक्षण—"यस्याः पादे प्रथमे द्वादश-मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।"

गर्ज वा वर्ष वा शक्र ! मुञ्च वा शतशोऽशनिम् ।
न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति ॥३१॥

अन्वय.—हे शक्र ! गर्ज, वा, वर्ष, वा, शतशः, अशनिं, मुञ्च, (किन्तु) दयितं, प्रति, प्रस्थिता, स्त्रियः, रोद्धुं, न, शक्या, हि ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे शक्र !=हे इन्द्र ! गर्ज=गरजो, वर्ष=बरसो, शतशः=सैकड़ों बार या अनेक बार, अशनिम्=वज्र को, मुञ्च=छोड़ो, दयितं प्रति=प्रेमी के पास, प्रस्थिता=जाती हुई, रोद्धुम्=रोकने के लिए।

अनुवाद—हे इन्द्र ! गरजो या बरसो या सैकड़ों वज्र छोड़ो, (किन्तु) प्रियतम के प्रति प्रस्थान करती हुई स्त्रियाँ रोकी नहीं जा सकतीं।

संस्कृत टीका–हे शक्र !=हे इन्द्र !, गर्ज=गर्जनं कुरु, वा=अथवा, वर्ष=वर्षणं कुरु, वा, शतशः=अनन्तम्, अशनिम्=वज्रम्, मुञ्च=पातय, (किन्तु), दयितम्=स्वप्रियम्, प्रति, प्रस्थिताः=रन्तुम् गच्छन्त्यः, स्त्रियः=कामिन्यः, रोद्धुम्=निवारयितुम्, न शक्याः हि=नार्हाः ॥

समास एवं व्याकरण—(१) गतश्रम—गत+श्रम् । प्रस्थिता—प्र+स्था+क्त । रोदुम्—रुध्+तुमुन् । मुञ्च—मुच्+लोट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध में दीपकालङ्कार है । (२) उत्तरार्द्ध में अर्थान्तर-न्यास अलङ्कार है । (३) अनुष्टुप् छन्द है । लक्षण— श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः ।
अयि ! विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ॥३२॥

अन्वय—यदि, वारिधर, गर्जति, तद्, गर्जतु, नाम, (यत), पुरुषाः, निष्ठुराः, (भवन्ति, किन्तु), अयि, विद्युत ! त्वम् अपि, च, प्रमदानां, दुःखं, न, जानासि ? ॥३२॥

पदार्थ—वारिधरः=बादल, गर्जतु नाम=भले ही गरजे, निष्ठुराः=निर्दय, प्रमदानाम्=कामिनियों की, दुःखम्=पीड़ा को न जानासि=नहीं जानती हो ।

अनुवाद—यदि मेघ गरजता है तो (वह) भले ही गरजे, (क्योंकि) पुरुष निष्ठुर होते हैं । हे बिजली ! तुम भी (स्त्री होकर) कामिनियों के दुःख को नहीं जानती हो ?

संस्कृत टीका—यदि=चेत् वारिधरः=जलदः, गर्जति=गर्जनम् करोति, तत्=तर्हि गर्जतु=नदतु नामेति स्वीकारः, (यत) पुरुषाः=पुमांसः, निष्ठुराः= निर्दयाः (भवन्ति किन्तु) अयि विद्युत—हे चपले ! त्वमपि च=त्वं स्त्री भूत्वा अपि त्वं, प्रमदानाम्=वनितानाम्, दुःखम्=पीडाम् न जानासि=न वेत्सि ?

समास एवं व्याकरण—(१) वारिधर—धरतीति धरः, धृ+अच्, वारिणः धरः वारिधरः (ष० त०) । (२) प्रमदा—प्रमद्+अच्+टाप् । निष्ठुर—नि+स्था+उरच् ।

विवृति

(१) 'निष्ठुराः पुरुषाः' इस सामान्य से 'वारिधरो गर्जतु' इस विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । (२) 'वारिधर' में पुरुषोचित व्यवहार का आरोप और 'विद्युत्' में स्त्री समुचित व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलङ्कार है । (३) श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—आर्या

विट—भवति, अलमलमुपालम्भेन । उपकारिणी तवेयम् ।

विट—सुश्री ! अधिक उलाहना मत दो । यह तुम्हारा उपकार करने वाली है ।

पहली स्त्री थी जिसे ब्रह्मा ने पैदा किया—और गौतम को दे दिया, इन्द्र ने उसके पति का रूप धारण करके उसे सत्पथ से फुसलाया इस प्रकार उसे धोखा दिया। दूसरे कथानक के अनुसार वह इन्द्र को जानती थी और उसके अनुराग तथा नम्रता के वशीभूत हो वह उसकी चापलूसी का शिकार बन गई थी। इसके अतिरिक्त एक और कहानी है जिसके अनुसार इन्द्र ने चन्द्रमा की सहायता प्राप्त की। चन्द्रमा ने मुर्गे बनकर आधी रात को ही बाग दे दी। इस बाग ने गौतम को अपने प्रातःकालीन नित्यकृत्य करने के लिए जगा दिया। इन्द्र ने अन्दर प्रविष्ट होकर गौतम का स्थान ग्रहण कर मैं गौतम हूँ इस प्रकार मिथ्या कह कर छल से अहल्या के साथ संभोग किया था। जब गौतम को अहल्या के पथभ्रष्ट होने का ज्ञान हुआ तो उसने उसे आश्रम से निर्वासित कर दिया और शाप दिया कि वह पत्थर बन जाय तथा तब तक अदृश्य अवस्था मे पड़ी रहे जब तक कि दशरथ के पुत्र राम का चरण-स्पर्श न हो, जो कि अहल्या को फिर पूर्वरूप प्रदान करेगा। उसके पश्चात् राम ने उस दीनदशा से उसका उद्धार किया—और तब उसका अपने पति से पुर्नमिलन हुआ। (३) अहल्या प्रातःस्मरणीय उन पाँच सती तथा विशुद्ध चरित्र महिलाओं मे एक है जिनका प्रातःकाल नाम लेना श्रेयस्कर है—'अहल्या, द्रौपदी, सीता, तारा, मदोदरी तथा, पंचकन्या स्मरेन्नित्य महापातक नाशिनीः॥ (४) तद्वत्—तात्पर्य यह है कि जैसे तुम अहल्या के लिए व्यथित हुए थे उसी प्रकार मैं भी चारुदत्त के लिए व्यथित हूँ। अतः बादल को रोक दो। (५) प्रस्तुत पद्य मे आर्या छन्द है। लक्षण—"यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।'

गर्ज वा वर्ष वा शक्र! मुञ्च वा शतशोऽशनिम्।
न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति ॥३१॥

अन्वय.—हे शक्र! गर्ज, वा, वर्ष, वा, शतशः, अशनिं, मुञ्च, (किन्तु) दयितं, प्रति, प्रस्थिताः, स्त्रियः, रोद्धुं, न, शक्याः, हि ॥ ३१ ॥

पदार्थ.—हे शक्र!=हे इन्द्र! गर्ज=गरजो, वर्ष=बरसो, शतशः=सैकड़ों बार या अनेक बार, अशनिम्=वज्र को, मुञ्च=छोड़ो, दयितं प्रति=प्रेमी के पास, प्रस्थिताः=जाती हुई, रोद्धुम्=रोकने के लिए।

अनुवाद—हे इन्द्र! गरजो या बरसो या सैकड़ों वज्र छोड़ो, (किन्तु) प्रियतम के प्रति प्रस्थान करती हुई स्त्रियाँ रोकी नहीं जा सकती।

संस्कृत टीका—हे शक्र!=हे इन्द्र!, गर्ज=गर्जनं कुरु, वा=अथवा, वर्ष=वर्षणं कुरु, वा, शतशः=अनन्तम्, अशनिम्=वज्रम्, मुञ्च=पातय, (किन्तु), दयितम्=स्वप्रियम्, प्रति, प्रस्थिताः=गन्तुम् प्रचलिताः, स्त्रियः=कामिन्यः, रोद्धुम्=निवारयितुम्, न शक्याः हि=नार्हाः ॥

समास एव व्याकरण—(१) गतश्च –गत+श्च् । प्रस्थिता –प्र+स्था+क्त । रोदुम्—रुद्+तुमुन् । मुञ्च—मुच्+लोट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध में दीपकालङ्कार है । (२) उत्तरार्द्ध में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । (३) अनुष्टुप् छन्द है । लक्षण–"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥"

यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुरा पुरुषाः ।
अयि ! विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ॥३२॥

अन्वय—यदि, वारिधरः, गर्जति, तद्, गर्जतु, नाम, (यतः), पुरुषाः, निष्ठुराः, (भवन्ति, किन्तु), अयि, विद्युत् ! त्वम्, अपि, च, प्रमदानां, दुःखं, न, जानासि ? ॥३२॥

पदार्थ—वारिधरः=बादल, गर्जतु नाम=भले ही गरजे, निष्ठुराः=निर्दय, प्रमादानाम्=कामिनियों की, दुःखम्=पीड़ा को, न जानासि=नहीं जानती हो ।

अनुवाद—यदि मेघ गरजता है तो (वह) भले ही गरजे, (क्योंकि) पुरुष निष्ठुर होते हैं । हे बिजली ! तुम भी (स्त्री होकर) कामिनियों के दुःख को नहीं जानती हो ?

संस्कृत टीका—यदि=चेत्, वारिधरः=जलदः, गर्जति=गर्जनम् करोति, तत्=तर्हि गर्जतु=रटतु नामेति स्वीकारे, (यतः) पुरुषाः=पुमांसः, निष्ठुराः=निर्दयाः (भवन्ति किन्तु) अयि विद्युत्—हे चपले ! त्वमपि च=त्वं स्त्री भूत्वा अपीत्यर्थः, प्रमदानाम्=वनितानाम्, दुःखम्=पीडाम्, न जानासि=न वेत्सि ?

समास एवं व्याकरण—(१) वारिधरः—वरतीति धरः, धृ+अच्, वारिणः धरः वारिधरः (ष० त०) । (२) प्रमदा—प्रमद्+अच्+टाप् । निष्ठुर–नि+स्था+उरच् ।

विवृति

(१) निष्ठुरा पुरुषाः' इस सामान्य से 'वारिधरो गर्जतु' इस विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । (२) वारिधर' में पुरुषोचित व्यवहार का आरोप और 'विद्युत्' में स्त्री समुचित व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलङ्कार है । (३) श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—आर्या

विट–भवति, अलमलमुपालम्भेन । उपकारिणी तवेयम् ।

विट–सुश्री ! अधिक उलाहना मत दो । यह तुम्हारा उपकार करने वाली है ।

ऐरावतोरसि चलेव सुवर्णरज्जुः
शैलस्य मूर्ध्नि निहितेव सिता पताका ।
आखण्डलस्य भवनोदरदीपिकेय—
माख्याति ते प्रियतमस्य हि सन्निवेशम् ॥३३॥

अन्वयः—ऐरावतोरसि, चला, सुवर्णरज्जुः, इव, शैलस्य, मूर्ध्नि, निहिता, सिता, पताका, इव, आखण्डलस्य, भवनोदरदीपिका, इव, इयम्, ते, प्रियतमस्य, सन्निवेशम्, आख्याति, हि ॥३३॥

पदार्थः—ऐरावतोरसि=इन्द्र के हाथी ऐरावत की छाती पर, चला=चञ्चल, सुवर्णरज्जुः=सोने की रस्सी, शैलस्य=पर्वत की, मूर्ध्नि=चोटी पर, निहिता=रखी गई, सिता=सफेद, पताका=ध्वजा, आखण्डलस्य=इन्द्र के, भवनोदरदीपिका=घर के भीतर के दीपक, सन्निवेशम्=गृह को, आख्याति=कहता है।

अनुवाद.—ऐरावत के वक्षःस्थल पर चञ्चल सुवर्ण-रज्जु के समान, पर्वत-शिखर पर स्थापित शुभ्र पताका के समान, इन्द्र के भवन के भीतर की दीपिका के तुल्य यह (बिजली) तुम्हारे प्रियतम का निवास स्थान बता रही है।

संस्कृत टीका—ऐरावतोरसि=इन्द्रगजवक्षसि, चला=चञ्चला, सुवर्णरज्जुः=कनकदाम, इव, शैलस्य=पर्वतस्य, मूर्ध्नि=शिखरे, निहिता=स्थापिता, सिता=शुभ्रा, पताका इव=केतुरिव, आखण्डलस्य=इन्द्रस्य, भवनोदरदीपिका=गृहमध्यप्रदीपिका, इव, इयम्=विद्युत्, ते=तव, प्रियतमस्य=दयितस्य, सन्निवेशम्=भवनम्, आख्याति=प्रकथयति दर्शयति वा।

समास एवं व्याकरण—(१) ऐरावतोरसि–इरा=जलम्, इरा+मतुप्, वत्व=इरावान्=सागरः, इरावति भव. ऐरावत. इरावत्+अण्, तस्य ऐरावतस्य उरसि। आखण्डलस्य–आखण्डयति पर्वतान् इति आखण्डलः तस्य। (२) उरसि—ऋ+असुन्, उत्व रपरत्व ; मूर्ध्नि–मुह्+कनि, उपधाया दीर्घो धोऽन्तादेशो रमागमश्च। निहिता–नि+धा+क्त। पताका–पत्+आक+टाप्। दीपिका–दीप्+णिच्+ण्वुल्+टाप्, इत्वम्। आख्यातिः—आ+ख्या+क्तिन्।

विवृति

(१) कहते हैं समुद्र से जो चौदह रत्न निकले थे, उनमे से एक ऐरावत भी है। (२) प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षालङ्कार है। (३) प्रयुक्त छन्द का नाम है–वसन्ततिलका। लक्षण–'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः॥"

वसन्तसेना–भाव, एव तदेवैतद्गेहम्। [भाव, एव्व त ज्जेव एद गेहम्।]

वसन्तसेना–विद्वान्! ऐसा ही है। यह वही घर है।

विट.—सकलकलाभिज्ञाया न किंचिदिह तवोपदेष्टव्यमस्ति। तथापि स्नेहः

प्रलापयति। अत्र प्रविश्य कोपोऽत्यन्तं न कर्तव्यः ।

विट– सम्पूर्ण कलाओं में कुशल आपको यहाँ कुछ उपदेश देना नहीं है। तो भी स्नेह कहने के लिए प्रेरित कर रहा है। यहाँ (चारुदत्त के घर में) प्रवेश कर अधिक क्रोध (मान) नहीं करना चाहिये।

यदि कुप्यसि नास्ति रतिः, कोपेन विनाऽथवा कुतः कामः ? ।
कुप्य च कोपय च त्वं प्रसीद च त्वं प्रसादय च कान्तम् ।। ३४ ।।

अन्वयः— यदि, कुप्यसि, रतिः, न, अस्ति, अथवा, कोपेन, विना, कामः, कुतः ? (अतः) त्वं, कुप्य, च, कान्तम्, च, कोपय, त्वं, प्रसीद, च, (कान्तम्) च, प्रसादय ।। ३४ ।।

पदार्थः– कुप्यसि=क्रोध करती हो, रतिः=प्रेम, कामः=सम्भोग का आनन्द, कोपय=क्रोध कराओ, प्रसीद=खुश होओ।

अनुवाद– यदि कोप करती हो तो (समझो) प्रेम नहीं है, अथवा कोप के बिना रति सुख कहाँ ? (अतएव) तुम कोप करो और प्रिय को भी कुपित करो। तुम प्रसन्न हो और (प्रिय को) प्रसन्न करो ।।

संस्कृत टीका–यदि=चेत्, कुप्यसि=कोपम् करोषि, रतिः=अनुरागः, न=नहि, अस्ति=जायते, अथवा=आहोस्वित्, कोपेन=रोषेण, विना=अन्तरेण, कामः=कामक्रीडाप्रमोदः, कुतः ?, (अतः) त्वम्=भवती, कुप्य=कोपम् कुरु च, कान्तम् ?, वल्लभम्, च, कोपय=कोपयुक्तम् कुरु, त्वम्, प्रसीद=प्रसन्ना भव, च (कान्तम्), प्रसादय च=प्रसन्न कुरु च ।।

समास एवं व्याकरण– (१) रति.— रम्+क्तिन् । काम.— कम्+घञ् । कान्तम्— कन् (म्)+क्त । प्रसीद— प्र+सद्+लोट् (सीदादेश.) । प्रसादय— प्र+सद्+णिच्+लोट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में प्रयुक्त 'कोपय' शब्द का तात्पर्य यह है कि तुम प्रियतम से रतिकलह करते रहना ताकि सम्भोग का पूरा आनन्द ले सको। (२) यहाँ 'त्वं कुप्य' 'कान्तमपि कोपय' इत्यादि में कोप क्रिया का दोनों में कारण होने से अन्योन्यालङ्कार है। लक्षण– 'अन्योन्यामुभयोरेकक्रियायाः कारण मिथः ।'– सा० द० (३) शिक्षा नामक नाट्यालङ्कार है। लक्षण— 'शिक्षा स्यादुपदेशनम् ।' (४) श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है— आर्यागीति । लक्षण—"आर्या प्रथमदलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः । दलयो. कृतयति शोभां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः ।"

भवतु । एवं तावत् । भो भोः, निवेद्यतामार्यचारुदत्ताय ।

अच्छा, ऐसा ही। अरे ! अरे ! 'आर्य चारुदत्त' से निवेदन कर दो—

एषा फुल्लकदम्बनीपसुरभौ काले घनोद्भासिते
कान्तस्यालयमागता समदना हृष्टा जलार्द्रालका ।
विद्युद्वारिदगर्जितैः सचकिता त्वद्दर्शनाकाङ्क्षिणी
पादौ नूपुरलग्नकर्दमधरौ प्रक्षालयन्ती स्थिता ॥ ३५ ॥

अन्वय- फुल्लकदम्बनीपसुरभौ, घनोद्भासिते, काले, समदना, हृष्टा, जलार्द्रालका, विद्युद्वारिदगर्जितैः, सचकिता, त्वद्दर्शनाकाङ्क्षिणी, कान्तस्य, आलयम्, आगता एषा, नूपुरलग्नकर्दमधरौ, पादौ, प्रक्षालयन्ती, स्थिता ॥ ३५ ॥

पदार्थ— फुल्लकदम्ब०=विकसित कदम्बपुष्पों से युक्त कदम्बवृक्षों या विकसित कदम्बों एवं नीपों (धाराकदम्बों अथवा बन्धूकों) के कारण सुगन्धित, घनोद्भासिते=बादलों से सुशोभित, समदना=काम से पीडित, हृष्टा=प्रसन्न, जलार्द्रालिका=जिसके घुंघराले बाल पानी से भीग गये हैं, विद्युद्वारिद०=बिजली और बादलों के गरजने से, सचकिता=भयभीत, त्वद्दर्शना०=तुम्हारे दर्शन की इच्छुक, कान्तस्य=प्रिय के, आलयम्=घर को, नूपुर०=पायलों में लगे हुये कीचड को धारण करने वाले, प्रक्षालयन्ती=धोती हुई। स्थिता=खडी है।

अनुवाद— प्रफुल्लित कदम्ब तथा नीप से सुगन्धित, मेघों से सुशोभित समय में कामात, हृषित, जल से गीले कुन्तलों वाली, बिजली एवं मेघ— गर्जन से भयभीत, तुम्हारे दर्शन की अभिलाषिणी प्रिय के घर आई यह (वसन्तसेना) नूपुर में लगे हुए पंक को धारण करने वाले पैरों को धोती हुई (द्वार पर) खडी है।

संस्कृत टीका—फुल्लकदम्ब०=विकसितकदम्बनीपपुष्पसुगन्धिते, घनोद्भासिते =मेघोल्लसिते, काले=वर्षाकाले, समदना=कामविह्वला, हृष्टा=प्रसन्ना, जलार्द्रालिका=सलिलसिक्तचूर्णकुन्तला, विद्युद्वारिद=तडिद्मेघगर्जनैः, सचकिता=भयभीता, त्वद्दर्शना०=तव दर्शनाभिलाषिणी, कान्तस्य=प्रियस्य, आलयम्=गृहम्, आगता=समुपस्थिता (सती), एषा=वसन्तसेना, नूपुर०=मञ्जीरसश्लिष्टपङ्कपूर्णौ, पादौ=चरणौ प्रक्षालयन्ती=धावयन्ती, स्थिता=वर्तमानास्ति ॥

समास एवं व्याकरण- (१) फुल्ल०— फुल्लानि कदम्बानि येषु तादृशैः नीपैः अथवा कदम्बैः नीपैः सुरभिः तस्मिन्। घनोद्भासिते— घनैः उद्भासिते। समदना— मदनेन सहिता। जलार्द्रालिका— जलेन आर्द्रा अलका यस्या तादृशी। विद्युद्वारिद०— विद्युद्भिः वारिदानाम गर्जितैः च। त्वद्दर्शना०— तव दर्शनम् आकाङ्क्षते इति तथाविधा। नूपुर०— नूपुरयो लग्नं कर्दमं तम् धरति इति नूपुरलग्नकर्दमधर तौ। (२) आकाङ्क्षिणी—आ+काङ्क्ष्+णिनि कर्तरि ताच्छील्ये+ङीप्। धरौ=धृ+अच्। प्रक्षालयन्ती—प्र+क्षल्+णिच्+लट्—शतृ+ङीप्।

विवृति

(१) "कदम्ब और नीप पर्यायवाची शब्द हैं, अत यहां 'कदम्ब' शब्द इस नाम के पुष्प के लिये तथा 'नीप' शब्द इस नाम के वृक्ष के लिये आया है, यह सगत प्रतीत होता है। अथवा यहां 'नीप' शब्द 'बन्धूक' के लिए आया है।"—काले। (२) प्रस्तुत पद्य म स्वमावोक्ति अलङ्कार है। (३) श्लोक म प्रयुक्त छन्द का नाम है शार्दूलविक्रीडित। लक्षण "सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम्।" (४) 'पादाङ्गद तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुर' इत्यमर।

चारुदत्त— (आकर्ण्य।) वयस्य, ज्ञायता किमेतदिति।

चारुदत्त— [सुनकर] मित्र! मालूम करो कि— यह क्या है?'

विदूषक— यद्भवानाज्ञापयति। (वसन्तसेनामुपगम्य! सादरम्।) स्वस्ति भवत्यै। [ज मव आणवदि। सोत्थि भोदीए।]

विदूषक— जो आप आज्ञा देते हैं। [वसन्तसेना के समीप जाकर, आदर के साथ] आपका कल्याण हो!

वसन्तसेना— आर्य, वन्दे। स्वागतमार्यस्य। (विट प्रति)' भाव एषा छत्र धारिका भावस्यैव भवतु। [अज्ज, वन्दामि। साअद अज्जस्स। भाव, एसा छत्तधारिआ भावस्स ज्जेव भोदु।]

वसन्तसेना— आर्य! प्रणाम करती हूँ। आपका स्वागत है। [विट से] विद्वन्! यह छत्रधारिणी (सेविका) आपकी ही हो।

विवृति

(१) छत्रधारिका=छत्र को धारण करने वाली। (२) भावस्यैव=आप ही की।

विट— (स्वगतम्।) अनेनोपायेन निपुण प्रेषितोऽस्मि। (प्रकाशम्।) एव भवतु। भवति वसन्तसेन,

विट— [अपने आप] इस उपाय से चतुरतापूर्वक भेज दिया गया हूँ। [प्रकट रूप म] ऐसा ही हो। सुश्री वसन्तसेने!

साटोपकूटकपटानृतजन्मभूमे
शाठ्यात्मकस्य रतिकेलिकृतालयस्य।
वेश्यापणस्य सुरतोत्सवसग्रहस्य
दाक्षिण्यपण्यसुखनिष्क्रयसिद्धिरस्तु॥ ३६॥

अन्वय— साटोपकूटकपटानृतजन्मभूमे शाठ्यात्मकस्य, रतिकेलिकृतालयस्य, सुरतोत्सवसग्रहस्य, वेश्यापणस्य, दाक्षिण्यपण्यसुखनिष्क्रयसिद्धि, अस्तु॥ ३६॥

पदार्थ – साटोपकूट० = गर्व के सहित माया छल एवं झूठ के जन्म स्थान, शाठ्यात्मकस्य = धूर्तता रूप आत्मा या स्वभाव वाले, रतिकेलि० = सम्भोग कीडा ने जिसको आश्रय बनाया है, सुरतो० = रमण के सुख के सग्रह वाले, वेश्यापणस्य = वेश्या रूपी बाजार का या वेश्या– व्यवहार का, दाक्षिण्य० = उदारता से बिकने वाली वस्तु की सुख के साथ लेन-देन अथवा कीमत की सिद्धि, अस्तु = होवे।

अनुवाद – दम्भसहित माया, कपट तथा असत्य के उत्पत्ति–केन्द्र, धूर्तता के स्वरूप, रतिक्रीडा के आश्रय, सम्भोग रूप उत्सव के सचय-स्थान बने हुए वेश्या रूपी बाजार की उदारतारूपी विक्रेय वस्तु के द्वारा ही मूल्य सिद्धि होवे।

सस्कृत टीका– साटोप० = सदम्भमायाछद्मिथ्याभाषणोद्गमस्थानस्य, शाठ्यात्मकस्य = धूर्ततास्वरूपस्य, रतिकेलि० = कामक्रीडाविहिताश्रयस्य, सुरतोत्सव० = रमणानन्दसञ्चयस्य, वेश्यापणस्य = वेश्याव्यवहारस्य, दाक्षिण्य० = औदार्यक्रयसुख साफल्यसम्पत्ति, अस्तु = भवतु।

समास एवं व्याकरण– (१) साटोप०– आटोप तेन सहितम् साटोपम् कूटम् कपटम् अनृतम् एषाम् जन्मभूमे। शाठ्यात्मकस्य– शाठ्यम् आत्मा यस्य तस्य। रति केलि०– रतिकेलि तया कृतः यः आश्रय तस्य। सुरतोत्सव०– सुरतमेव उत्सव तस्य सग्रहः यस्मिन् तथा भूतस्य। (२) निष्क्रय – निस्+क्री+अच्। आटोप.– आ+ तुप्+घञ् पृषो० टत्वम्। कूट+कूट+अच्। शाठ्यम्– शठ+ष्यञ्। दाक्षिण्यम्– दक्षिण+ष्यञ्। पण्य–पण+ यत्। सिद्धि – सिध्+क्तिन्। (३) वेश्यापणस्य– वेश्यारूप आपण च (वेश्यारूपी बाजार का) (काले) अथवा वेश्याया पण• तस्य, (वेश्या से प्रेम-व्यवहार का)। दाक्षिण्य०– यह पाठान्तर है पण्यरूप सुख पण्यसुखम् दाक्षिण्येन यत्पण्यसुखम् तस्य निष्क्रय मूल्यम् तस्य सिद्धिः अथवा दाक्षिण्यम् परचित्तानुरञ्जनमेव यत्पण्यम् विक्रेयवस्तु तस्य सुखेन अनायासेन निष्क्रयसिद्धि मूल्यप्राप्ति अस्तु।

विवृत्ति

(१) प्रस्तुत पद्य मे विट आशीर्वाद देता है कि तुम दोनो आनन्द करो, किन्तु तुम्हारा प्रिय निर्धन है, अतएव लोभ न करके उदारतापूर्वक ही सम्भोग सुख प्राप्त करना। (२) वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण– "उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग ॥"

(इति निष्क्रान्तो विट ।)

[विट निकल जाता है।]

वसन्तसेना—आर्य मैत्रेय, कुत्र युष्माक द्यूतकर। [अज्ज मित्तेअ, कहिं तुह्माण जूदिअरो।]

वसन्तसेना—आर्य मैत्रेय ! आपके जुआरी (चारुदत्त) कहाँ हैं ?

विदूषक.—(स्वगतम्) आश्चर्य भोः द्यूतकर इति भणन्त्यालकृतः प्रियवयस्यः । (प्रकाशम्) भवति, एष खलु शुष्कवृक्षवाटिकायाम् । [ही ही भो, जूदिअरो त्ति भणन्तीए अलंकिदो पिअवअस्सो । भोदि, एसो क्खु सुक्खरुक्खवाडिआए ।]

विदूषक—[अपने आप] अजी! आश्चर्य है ! 'द्यूतकर' यह कहती हुई इसने प्रियमित्र को आभूषित कर दिया । [प्रकट रूप में] महोदये ! यह सूखे वृक्षों वाली फुलवाड़ी (वाटिका) मे हैं ।

वसन्तसेना—आर्य, का युष्माकं शुष्कवृक्षवाटिकोच्यते । [अज्ज, का तुह्माण सुक्खरुक्खवाडिआ वुच्चदि ।]

वसन्तसेना—आर्य ! कौन-सा आपका सूखे वृक्षो वाला उद्यान कहा जाता है ?

विदूषकः—भवति, यत्र न खाद्यते । न पीयते । [भोदि, जहिं ण खाई आदि । ण पीईअदि ।]

विदूषक—महोदये ! जहाँ न खाया जाता है न पिया जाता है ।

(वसन्तसेना स्मितं करोति ।)

['वसन्तसेना' मुस्कराती है ।]

विदूषक.—तस्मात्प्रविशतु भवती । [ता पविसदु भोदी ।]

विदूषक—तो आप प्रवेश कीजिये ।

वसन्तसेना—(जनान्तिकम्) अत्र प्रविश्य किं मया भणितव्यम् । [एत्थ, पविसिअ, किं मए भणिदव्वम् ।]

वसन्तसेना—(अलग से) यहाँ प्रवेश कर मुझे क्या कहना चाहिए ?

चेटी—द्यूतकर, अपि सुखस्ते प्रदोष इति [जूदिअर, अवि सुहो दे पदोसो त्ति ।]

चेटी—'द्यूतकर ! आपका सायङ्काल तो सुखकर है ?'

वसन्तसेना—अपि पारयिष्यामि । [अवि पारइस्सम् ।]

वसन्तसेना—(ऐसा कहने में) समर्थ भी होऊँगी ?

चेटी—अवसर एव पारयिष्यति । [अवसरोज्जेव पारइस्सदि ।]

चेटी—अवसर ही समर्थ बना देगा ।

विदूषकः—प्रविशतु भवती । [पविसदु भोदी ।]

विदूषक—आप प्रवेश कीजिए ।

वसन्तसेना—अयि द्यूतकर, अपि सुखस्ते प्रदोषः । [(प्रविश्योपसृत्य च । पुष्पैस्ताडयन्ती ।) अइ जूदिअर, अवि सुहो दे पदोसो ।]

वसन्तसेना—[प्रवेशकर और पास जाकर फूलो से मारती हुई] द्यूतकर जी । आप का सायंकाल तो सुखकर है ?

विवृति

(१) शुष्कवृक्षवाटिकायाम्=सूखे वृक्षों के बगीचे में। (२) भणितव्यम्=कहना चाहिए, भण+तव्यत्। (३) अपिपारयिष्यामि--क्या समर्थ होऊँगी। (४) सुख=सुखकारक, सुख्+अच्। सुखमस्ति अस्मिन् इति। (५) प्रदोष=सायकाल। 'प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमर।

चारुदत्त-(अवलोक्य।) अये, वसन्तसेना प्राप्ता। (सहर्षमुत्थाय।) अयि प्रिये,।

चारुदत्त-[देखकर] अरे! वसन्तसेना आ गई! [प्रसन्नता के साथ उठकर] हे प्रिये!

सदा प्रदोषो मम याति जाग्रत
सदा च मे निःश्वसतो गता निशा।
त्वया समेतस्य विशाललोचने
ममाद्य शोकान्तकरः प्रदोषकः ॥३७॥

अन्वय—सदा, जाग्रत, (एव) मम, प्रदोष याति, सदा निश्वसत। (एव) मे, निशा गता हे विशाललोचने! अद्य, त्वया, समेतस्य, मम, प्रदोषक शोकान्तकर, (भवति) ॥३७॥

पदार्थ-जाग्रत=जागते हुये, निश्वसत=आहे भरते हुए, हे विशाल लोचने=हे बडी-बडी आँखो वाली! समेतस्य=मिलने पर, प्रदोषक=सायकाल, शोकान्तकर=दुखो का समाप्त करने वाला।

अनुवाद—सदा जागते हुये मेरा प्रदोष (रात्रि का प्रथम प्रहर) बीतता है, सदा आहें भरते (ही) मेरी रात बीती है। हे विशाल नेत्रे! आज तुमसे युक्त होने पर मेरा प्रदोष शोक का अन्त करने वाला है।

संस्कृत टीका—सदा=सर्वदा, जाग्रत=अप्राप्तनिद्रस्य (एव), मम=चारुदत्तस्य, प्रदोष=रात्रे प्रथमो भाग, याति=गच्छति, सदा च, निश्वसत=तव विरहदीर्घम् श्वसत (एव), मे=मम, निशा=रात्रि, गता=याता। हे विशाललोचने!=हे दीर्घनयने!, अद्य=अस्मिन् दिने, त्वया=भवत्या, समेतस्य=सयुक्तस्य, मम, प्रदोषक=सन्ध्यासमय, शोकान्तकर=शोकविनाशक।

समास एव व्याकरण—(१) विशाललोचने--विशाले लोचने यस्या सा (ब०स०), तत्सम्बुद्धौ। शोकान्तकर-शोकस्य अन्तकर। (२) जाग्रत—जागृ+लट्-शतृ=जाग्रन् तस्य। निःश्वसत-निस्+श्वस्+लट्—शतृ=निश्वसन्, तस्य। प्रदोषक-प्रदोष एव प्रदोषक, प्रदोष+कन्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में दो बार 'सदा' शब्द का प्रयोग करने के कारण नयापन न होने का (अनवीकृतत्व) दोष है। (२) वंशस्थ छन्द है। लक्षण-'जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ' ॥

तत्स्वागतं भवत्यै। इदमासनम्। अत्रोपविश्यताम्।

तो आपका स्वागत है। यह आसन है। यहाँ बैठिये।

विदूषकः—इदमासनम् उपविशतु भवती। [इद आसणम्। उवविसदु भोदी।]

विदूषक—यह आसन है। आप बैठिये।

(वसन्तसेनासीना। ततः सर्वे उपविशन्ति।)

[वसन्तसेना अभिनयपूर्वक बैठती है। इसके बाद सभी बैठते हैं।]

चारुदत्त:-वयस्य, पश्य पश्य।

चारुदत्त-मित्र! देखो, देखो—

वर्षोदकमुद्गिरता श्रवणान्तविलम्बिना कदम्बेन।
एकः स्तनोऽभिषिक्तो नृपसुत इव यौवराजस्थः ॥३८॥

अन्वय—वर्षोदकम्, उद्गिरता, श्रवणान्तविलम्बिना, कदम्बेन, एकः, स्तनः, यौवराज्यस्थ., नृपसुत., इव, अभिषिक्तः ॥३८॥

पदार्थ.-वर्षोदकम्=वर्षा के जल को, उद्गिरता=गिराते हुए, श्रवणान्तविलम्बिना=कान के छोर पर लटकने वाले, कदम्बेन=कदम्ब के फूल के द्वारा, यौवराज्यस्थः=युवराज-पद पर बैठे हुये, नृपसुत=राजकुमार, अभिषिक्तः=अभिषेक या स्नान कराया गया।

अनुवादः—वर्षा के जल को गिराते हुये कान के छोर पर लटकते हुये कदम्ब (के फूल) ने एक स्तन को युवराज पद पर बैठे हुये राजकुमार के समान अभिषिक्त कर दिया है।

संस्कृत टीका—वर्षोदकम्=वृष्टिसलिलम्, उद्गिरता=सम्पातयता, श्रवणान्तविलम्बिना=कर्णप्रान्तदेशविलम्बमानेन, कदम्बेन=नीपपुष्पेण, एकः, स्तनः=कुच, यौवराज्यस्थः=युवराजपदे स्थित, नृपसुत.=राजपुत्रः, इव=यथा, अभिषिक्त.=अभिषेकम् प्रापितः सिञ्चितः इत्यर्थः।

समास एवं व्याकरण—(१) वर्षोदकम्-वर्षस्य उदकम्। श्रवण०-श्रवणस्य अन्ते विलम्बते तेन विलम्बिना। (२) उद्गिरता—उद्+गृ+लट्-शतृ=उद्गिरन्, तेन। यौवराज्यस्थः—युवा चासौ राजा युवराजः (कर्म०स०), युवराजस्य भावः यौवराज्यम् युवराज+ष्यञ्, यौवराज्ये तिष्ठतीति यौवराज्य+स्था+क। अभिषिक्त.-अभि+सिच्+क्त।

विवृति

(१) 'विलम्बिना कदम्बेन' मे छेकानुप्रासालङ्कार है । (२) 'नृपसुत इव' मे श्रौती उपमालङ्कार है । (३) आर्या छन्द है । लक्षण—"यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पचदश साऽऽर्या ॥" (४) माधुर्य गुण और प्रसाद गुण है । "चित्त व्याप्नोति य क्षिप्र शुष्केन्धनमिवानल । स प्रसाद ।" सा०द० ॥ (५) यहाँ भूषण नामक नाट्य लक्षण है—'गुणै सालङ्कारैर्योगस्तु भूषणम् ।" सा०द०॥

तद्वयस्य, विलन्ने वाससी वसन्तसेनाया । अन्ये प्रधानवाससी समुपनीयेतामिति ।

तो मित्र ! वसन्तसेना के दोनो वस्त्र (धोती एव ओढनी) भीग गये है ! दूसरे दो अच्छे वस्त्र ले आओ ।

विदूषक —यद्भवानाज्ञापयति । [ज भव आणवेदि ।]

विदूषक—जो आप आज्ञा करते हैं ।

चेटी–आर्य मैत्रेय, तिष्ठ त्वम् । अहमेवार्यां शुश्रूषयिष्यामि । [अज्ज मित्तेअ, चिट्ठ तुमम् । अह ज्जेव अज्जअ सुस्सूसइस्सम् ।] (तथा करोति ।)

चेटी–आर्य मैत्रेय ! तुम ठहरो । मैं ही आर्या की सेवा करूँगी । [वैसा करती है ।]

विदूषक –भो वयस्य, पृच्छामि तावत्तत्रभवती किमपि । [(अपवारितकेन ।) भो वअस्स, पुच्छामि दाव तत्यभोदिं किं पि ।]

विदूषक–[अलग हटकर] हे मित्र ! तब माननीया (वसन्तसेना) से कुछ पूछता हूँ ।

चारुदत्त –एव क्रियताम् ।

चारुदत्त–ऐसा ही करो (पूछो) ।

विदूषक –(प्रकाशम्) अथ किंनिमित्त पुनरीदृशे प्रनष्टचन्द्रालोके दुर्दिनान्धकार आगता भवती । [अध किंणिमित्त उण ईदिसे पणट्टचन्दालोए दुद्दिण अन्धआरे आअदा भोदी ।]

विदूषक–[प्रकट रूप मे] ऐसे चाँदनी से रहित अन्धकारपूर्ण दुर्दिन मे आपके आगमन का क्या कारण है ?

चेटी–आर्ये, ऋजुको ब्राह्मणः । [अज्जए, उजुओ बम्हणो ।]

चेटी–आर्ये ! (यह) ब्राह्मण सीधा है ।

विदूषक.–ननु निपुण इति भण । ण णिउणोत्ति मणाहि ।]

विदूषक–नहीं 'निपुण' ऐसा कह !

चेटी—एषा खल्वार्या एव प्रष्टुमागता—'कियत्तस्या रत्नावल्या मूल्यम्' इति। [एसा क्खु अज्जआ एव्व पुच्छिदु आअदा—'केत्तिअ ताए रअणावलीए मुल्ल त्ति ।]

चेटी—यह आर्या वास्तव मे यह पूछने आई हैं—उस रत्नावली की कितनी कीमत है ?

विदूषक.—(जनान्तिकम् ।) भो, भणित मया, यथाल्पमूल्या रत्नावली, बहुमूल्य सुवर्णभाण्डम् । न परितुष्टा । अपर याचितुमागता । [भो, भणिद मए, जधा अप्पमुल्ला रअणावली, बहुमुल्ल सुवण्णभण्डअम् । ण परितुट्ठा । अवर मग्गिदु आअदा ।]

विदूषक—[अलग से] अरे ! मैंने कह दिया कि रत्नावली कम कीमत की है, स्वर्णपात्र अधिक मूल्यवान् है । (उससे) सन्तुष्ट नही हुई, (अतः) और मांगने आई है ।

चेटी—सा खल्वार्यया आत्मीयेति भणित्वा द्यूते हारिता । स च सभिको राजवार्ताहारी न ज्ञायते कुत्र गत इति । [सा क्खु अज्जआए अत्तण केरकेत्ति भणिअ जुदे हारिदा । सो अ सहिओ राअवात्थहारी ण जाणी अदि कहिं गदो त्ति ।]

चेटी—उसे 'आर्या' ने अपनी समझकर जुए मे हरा दी और वह राजा का सन्देश वाहक द्यूताध्यक्ष पता नहीं, कहाँ गया ?

विदूषकः—भवति, मन्त्रितमेव मन्त्र्यते । [भोदि, मन्तिद ज्जेव मन्तीअदि ।]

विदूषक—श्रीमती जी ! (यह तो आप) कही हुई बात ही कहती हैं ।

चेटी—यावत्सोऽन्विष्यते तावादिदमेव गृहाण सुवर्णभाण्डम् । [जाव सो अण्णेसीअदि ताव एद ज्जेव गेण्ह सुवण्णभण्डअम् ।] (इति दर्शयति)

चेटी—जब तक वह ढूंढा जा रहा है तब तक इसी स्वर्ण-पात्र को ले लें । [दिखाती है ।]

[विदूषको विचारयति ।]

[विदूषक विचार करता है ।]

चेटी—अतिमात्रमार्यो निध्यायति । तत्कि दृष्टपूर्वं ते । [अदिमेत अज्जो णिज्झाअदि । ता कि दिट्ठपुरुव्व दे ।]

चेटी—आर्य बहुत ध्यान से देख रहे है । तो क्या आपका पहले से देखा हुआ है ?

विदूषकः—भवति, शिल्पकुशलतयाववध्नाति दृष्टिम् । [भोदि, सिप्पकुसलदाए ओबन्देदि दिट्ठिम् ।]

विदूषक—अरी ! अच्छी कारीगरी के कारण (यह पात्र मेरी) दृष्टि को आकृष्ट कर रहा है ।

चेटी—आर्य, वञ्चितोऽसि दृष्ट्या । तदेवेद सुवर्णभाण्डम् । [अज्ज, वञ्चिदोसि दिट्ठीए । त ज्जेव एद सुवण्णभण्डअम् ।]

चेटी—आर्य ! (आण्की) आँखे धोखा दे रही हैं। यह वही स्वर्ण-पात्र है।

विदूषक—(सहर्षम्) भो वयस्य, तदेवेद सुवर्णभाण्डम्, यदस्माक गृहे चौरैरपहृतम्। भो वअस्स, त ज्जेव एद सुवण्णभण्डअम्, ज अम्हाण गेहे चोरेहि अवहिदम्।]

विदूषक—[प्रसन्नता के साथ] हे मित्र ! यह वही स्वर्ण-पात्र है, जिसे हमारे घर मे चोरो ने चुराया था।

विवृति

(१) क्लिन्ने=भीगे हुए। क्लिद्+क्त। (२) प्रधान वाससी=दो मुख्य वस्त्र। (३) शुश्रूषयिष्यामि=सेवा करूँगी। श्रु+सन् (द्वित्व+णिच्+लृट्)। (४) अपवारितकेन=अलग से। (५) अपवारित और जनान्तिक पारिभाषिक शब्द हैं। "तद्भवदपवारितम्। रहस्यन्तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते। त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तिराकथाम्।" सा० द०॥ (६) प्रनष्टचन्द्रालोके=नष्ट हो गया है चन्द्रमा का प्रकाश जिसमे। (७) ऋजुक=सरल। (८) निपुण=चतुर। (९) मन्त्रितम्=कहे गये को। (१०) अतिमात्रम्=बहुत। (११) निध्यायति=ध्यान से देख रहे हैं। (१२) शिल्पकुशलतया=अच्छी कारीगरी के कारण। (१३) अवबध्नाति=आकृष्ट कर रहा है।

चारुदत्त—वयस्य,

चारुदत्त—मित्र !

योऽस्माभिश्चिन्तितो व्याज कर्तुं न्यासप्रतिक्रियाम्।

स एव प्रस्तुतोऽस्माक किंतु सत्य विडम्बना ॥३९॥

अन्वय—अस्माभि, न्यासप्रतिक्रियाम्, कर्तुं, य, व्याज, चिन्तित, स, एव, अस्माक, प्रस्तुत, (किन्तु), सत्यम, (इय) विडम्बना, (अस्ति) ॥३९॥

पदार्थ—अस्माभि=हमारे द्वारा, न्यासप्रतिक्रियाम्=धरोहर की क्षतिपूर्ति को, कर्तुम्=करने के लिए, व्याज=बहाना, चिन्तित=सोचा गया था, प्रस्तुत=उपस्थित, विडम्बना=प्रतारणा या जालसाजी।

अनुवाद—हमने धरोहर की क्षतिपूर्ति करने के लिए जो बहाना सोचा था, वही हमारे सामने उपस्थित है (किन्तु) वास्तव मे (यह) विडम्बना है।

सस्कृत टीका—अस्माभि=चारुदत्ताद्यै, न्यासप्रतिक्रियाम्=निक्षेपप्रतिशोधम्, कर्तुम्=विधातुम्, य, व्याज=छलम्, चिन्तित=विचारित स=व्याज, एव, अस्माकम्=अस्माक समक्षमित्यर्थ, प्रस्तुत=उपस्थित, (किन्तु) सत्यम्=वस्तुत, (इयम्) विडम्बना=प्रतारणा (अस्ति)॥

समास एव व्याकरण—(१) न्यासप्रतिक्रियायाम्—न्यासस्य प्रतिक्रियाम्। (२) प्रतिक्रिया—प्रति+कृ+श, इयङ्+टाप्। विडम्बना—विडम्ब+णिच्+ल्यु→

अन+टाप्। न्यास-नि+सस्+घञ्। व्याज -वि+अज्+घञ्। चिन्तित-चिन्त्+क्त। प्रस्तुतः-प्र+स्तु+क्त। सत्यम्-सन्+यत्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में चारुदत्त के कहने का तात्पर्य यह है कि यह वही सुवर्ण-भाण्ड नहीं है जो हमारे घर से चोरी गया है, किन्तु हम लोगों के आश्वासन के लिए उसने दूसरा आभूषण ला रखा है। (२) 'मनुष्य जैसा कर्म दूसरे के लिए करता है वैसा ही उसके सामने आ जाता है" इसके अनुसार हमने छल किया और हमारे सामने छल ही आ गया है किन्तु यह सब धोखा मात्र ही है। (३) 'कपटोऽस्त्री व्याजदम्भो-पधयश्छद्मकैतवे' इत्यमरः। (४) पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण-"युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम्।"

विदूषक—भो वयस्य, सत्यं शपे ब्राह्मण्येन। [भो वअस्स, सच्चं सवामि बम्हणेण।]

विदूषक—हे मित्र! ब्राह्मणत्व की शपथ खाता हूँ कि यह सत्य है।

चारुदत्त—प्रियं नः प्रियम्।

चारुदत्त—प्रिय! हमारा प्रिय!

विदूषक—(जनान्तिकम्।) भोः पृच्छामि ननु कुत इदं समासादितमिति। [भो, पुच्छामि ण कुदो एदं समासादिदं त्ति।]

विदूषक—[अलग से] अजी! पूछता हूँ कि-'यह कहाँ से मिला'

चारुदत्तः—को दोषः।

चारुदत्त—क्या बुराई है?

विदूषकः—(चेट्याः कर्णे।) एवमिव। [एव्वं विअ।]

विदूषक—[चेटी के कान में] ऐसा ही है?

चेटी—(विदूषकस्य कर्णे।) एवमिव [एव्वं विअ।]

चेटी—[विदूषक के कान में] ऐसा ही है।

चारुदत्तः—किमिदं कथ्यते। किं वयं बाह्याः।

चारुदत्त—यह क्या कह रहे हो? क्या हम बाहरी हैं?

विदूषकः—(चारुदत्तस्य कर्णे।) एवमिव। [एव्वं विअ।]

विदूषक—[चारुदत्त के कान में] ऐसा ही है।

चारुदत्तः—भद्रे, सत्यं तदेवेदं सुवर्णभाण्डम्।

चारुदत्त—कल्याणी! सचमुच यह वही स्वर्ण-पात्र है?

चेटी—आर्य, अथ किम्। [अज्ज, अध इ।]

चेटी—आर्य! और क्या?

चारुदत्तः—भद्रे, न कदाचित्प्रियनिवेदनं निष्फलीकृतं मया। तद्गृह्यतां पारि-

तोषिकमिदमङ्गुलीयकम् । (इत्यनङ्गुलीयक हस्तमवलोक्य लज्जा नाटयति ।)

चारुदत्त–कल्याणी ! मैंने कभी शुभ समाचार को निष्फल नहीं किया । तो पुरस्कार रूप मे यह अँगूठा लो । (ऐसा कहकर बिना अँगूठी के हाथ को देखकर लज्जा का अभिनय करता है ।)

वसन्तसेना–(आत्मगतम्) अत एव काम्यसे । [अदो ज्जेव कामीअसि ।]

वसन्तसेना–[अपने आप] इसीलिये (मैं इनको) चाहती हूँ ।

विवृति

(१) ब्राह्मण्येन=ब्राह्मणत्व से । ब्राह्मण+ष्यञ्, ब्राह्मस्य भाव ब्राह्मण्यम् तेन । (२) शपे=सौगन्ध खाता हूँ । (३) एवमिव=घटना बताती है । (४) प्रियनिवेदनम्=प्रिय बात कहना, (५) निष्फलीकृतम्=निष्फल किया है । (६) अनङ्गुलीयकम्=अँगूठी से रहित ।

चारुदत्तः–(जनान्तिकम् ।) भो', कष्टम् ।

चारुदत्त–[अलग से] अरे ! दुख है–

धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीवितेनादित एव तावत् ।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्कोपप्रसादा विफलीभवन्ति ॥४०॥

अन्वय–लोके, धनै , वियुक्तस्य, नरस्य, आदित , एव, जीवितेन, किं तावत्, प्रतिकारनिरर्थकत्वात्, यस्य, कोपप्रसादा , विफली भवन्ति ॥४०॥

पदार्थः–लोके=ससार मे, धनै =धनो से, वियुक्तस्य=हीन, नरस्य=मनुष्य के, आदित =जन्म से, जीवितेन=जीने से, प्रतिकार०=प्रतीकार करने या बदला चुकाने मे असमर्थ होने के कारण, कोपप्रसादा =क्रोध और प्रसन्नता, विफलीभवन्ति निष्फल होते हैं ।

अनुवाद–ससार मे निर्धन मनुष्य के जन्म से ही जीने से क्या लाभ ? प्रतीकार करने मे असमर्थ होने के कारण जिसके कोप और अनुग्रह निष्फल होते हैं ॥

सस्कृत टीका–लोके=ससारे, धनैः=अर्थैं, वियुक्तस्य=रहितस्य, नरस्य=जनस्य, आदित एव=जन्मत एव, जीवितेन=जीवनेन, किं तावत्=किं फलमित्यर्थ, प्रतीकारनिरर्थकत्वात्=प्रतिशोधासमर्थत्वात्, यस्य=धनरहितस्य जनस्य, कोपप्रसादा क्रोधानुग्रहा , विफलीभवन्ति=व्यर्था जायन्ते ॥

समास एव व्याकरण–(१) प्रतीकार निरर्थकत्वात्–प्रतीकारे निरर्थकत्वात् । कोपप्रसादा –कोपा प्रासादाश्च । (२) जीवितेन – जीव्+क्त, भावे नपुसके । विफलीभवन्ति–विफल+च्वि, ईत्व+भू+लट्–अन्ति । (३) आदित–आ+दा+कि+तसिल् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे 'आदित =ज मत एव जीवितेन' इस प्रकार का अन्वय

है किन्तु कुछ व्याख्याकारो के अनुसार 'आदित एव' का सम्बन्ध 'विफलीभवन्ति' के साथ है, अर्थात् वह अपने क्रोध और प्रसाद को प्रकट करने के लिए कुछ करने म पहले से ही असमर्थ होता है। (२) श्लोक के पूर्वार्द्ध म निर्धन सामान्य से प्रस्तुत निर्धन चारुदत्त विशेष की प्रतीति होने से अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है। (३) जीवन की व्यर्थता के प्रति क्रोध और प्रसन्नता की प्रतीकार शक्ति के हेतु रूप से कथन के कारण वाक्यार्थ हेतु काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। इस प्रकार पूर्वार्द्ध म अप्रस्तुत प्रशसा और उत्तरार्द्ध मे काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (४) वसन्ततिलका छन्द है।

अपि च।

और भी -

पक्षविकलश्च पक्षी शुष्कश्च् तरु सरश्च् जलहीनम्।
सर्पश्चोद्धृतदष्ट्रस्तुल्य लोके दरिद्रश्च ॥४१॥

अन्वय–लोके, पक्षविकल, च, शुष्क, तरु, च, जलहीन, सरः, च, उद्धृतदष्ट्र, सर्प, च, दरिद्र, च, [एतत, सर्वं] तुल्यम् ॥४१॥

पदार्थ–पक्षविकल =पखो से रहित, शुष्क =सूखा,सर =सरोवर, उद्धृत-दष्ट्र =जिसका दात उखाड लिया गया हो

अनुवाद–ससार म पङ्खविहीन पक्षी, सूखा वृक्ष, जलरहित सरोवर तथा दाँत उखाडा हुआ सर्प एव निर्धन (व्यक्ति ये सब) एक जैसे हैं।

सस्कृत टीका–लोके=ससारे, पक्षविकल =पक्षविहीन, पक्षी=खग, च, शुष्क =नीरस, तरु =वृक्ष च, जलहीनम्=सलिलशून्यम्,सर =सरसी,च,उद्धृत-दष्ट्र =निष्कासितदन्त, सर्प =उरग, दरिद्र =निर्धन च, तुल्यम्=समानम्।

समास एव व्याकरण–(१) पक्षविकल =पक्षाभ्याम् विकल। जलहीनम्-जलेन हीनम्। उद्धृतदष्ट्र =उद्धृता दष्ट्रा यस्य तथाभूत। (२) शुष्क-शुष+क्त, 'शुष क' इति सूत्रेण तस्य क। उद्धृत–उद्+हृ(धृ)+क्त। दष्ट्र –दश+ष्ट्रन्+टाप्। दरिद्र –दरिद्रा+क।

विवृति

(१) प्रस्तुत श्लोक म मालोपमालङ्कार है। (२)दरिद्र इस सामान्य कथन से विशेष चारुदत्त की प्रतीति होने से अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है। (३)इस प्रकार परस्पर इन दोनो अलकारो का सकर है। [४] आर्या छन्द है। लक्षण-"यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तया तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥"

अपि च।

और भी–

शून्यैर्गृहै खलु समा पुरुषा दरिद्रा
कूपैश्च तोयरहितैस्तरुभिश्च शीर्णै।

यद्दृष्टपूर्वजनसगमविस्मृताना—
नेव भवन्ति विफला परितोपकाला ॥४२॥

अन्वय—दरिद्रा, पुरुषा, खलु, शून्यैः, गृहैः, तोयरहितैः, कूपैः, च, शीर्णैः, तरुभि, च समा, (भवन्ति), यत् दृष्टपूर्वजनसगमविस्मृताना, (तेषा), परितोपकाला, एव, विफला, भवन्ति ॥४२॥

पदार्थ—दरिद्राः=निर्धन, पुरुषा=मनुष्य, खलु=वस्तुत, शून्यै=सूने, तोयरहितै=पानी से रहित, शीर्णै=सूखे, तरुभि=पेडो से, समा=समान, दृष्टपूर्वजनसगमविस्मृतानाम्=पहले के परिचित जनो के मिलने से, परितोपकाला=सन्तोष के समय, विफला=व्यर्थ ॥

अनुवाद—दरिद्र मनुष्य वस्तुत सूने घरो जल रहित कूओ और जर्जर वृक्षो के समान है क्योकि पूर्व परिचित जनो के मिलन से (प्रसन्नता के कारण अपनी निर्धनता को) भूल जाने वाले लोगो के सन्तोष के समय इसी प्रकार निष्फल हो जाते है।

सस्कृत टीका—दरिद्रा—निर्धना, पुरुषा=मनुष्या, खलु=निश्चयेन, शून्यै=निर्जनै, गृहै=गेहै, तोयरहितै=जलहीनै, कूपै=उदपानै, च, शीर्णै=पत्रादिरहितै, तरुभि=वृक्षै, च, समा=तुल्या भवन्तीति शेष, यत्=यस्मात्, दृष्टपूर्वजन०=पूर्वपरिचितलोकमिलनविस्मृतनिज दैन्यानाम्, (तेषाम्), परितोषकाला=सन्तोपसमया, एवम्=अनेन प्रकारेण, विफला=निष्फला, भवन्ति=जायन्ते ॥

समास एव व्याकरण—(१) दृष्टपूर्वजन०-पूर्वम् दृष्टपूर्वा (सुप्सुपा स०), तादृशा जनाः (कर्म० स०), तेषा सगम (प० त०) तेन, विस्मृता (सुप्सुपा स०), तेषाम्। (२) वि+स्मृ+क्त भावे=विस्मृतम्। तत् अस्ति एषाम् इति विस्मृता+अच्, तेषाम। शीर्ण—शृ+क्त। परितोष—परि+तुष्+घञ्। कूप—कु+पक्, दीर्घश्च।

विवृति

(१) 'शून्यगृहेषु भिक्षवादीनामिव निर्जलेषु कूपेषु तृषितानामिव शीर्णतरुषु पक्षिणामिव च नास्ति कृतार्थत्वमर्थिनामिति भाव।'—श्रीनिवासाचार्य। (२) प्रस्तुत पद्य मे मालोपमालङ्कार है। (३) अप्रस्तुत प्रशसा अलकार भी है। (४) वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः।

विदूषक—भो, अलमतिमात्र सतापितेन। (प्रकाश सपरिहासम्।) भवति, समप्यता मम स्नानशाटिका। [भो, अल अदिमेत्त सतप्पिदेण। भोदि, समप्पीअदु ममकेरिआ ण्हाणसाडिया।]

विदूषक—अजी! अधिक सन्ताप करना व्यर्थ है। [प्रकट रूप मे, हँसी के साथ] श्रीमती जी! मेरी स्नान की धोती दे दीजिए।

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्त, युक्तं नेदमनया रत्नावल्या इम जनं तूलयितुम् । [अज्ज चारुदत्त, जुत्तं णेदं इमाए रअणावलीए इमं जणं तुलइदुम् ।]

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्त ! इस रत्नावली से इस जन को (मुझे) तौलना ठीक नही ।

विवृति

(१) स्नानशाटिका—नहाने की साड़ी या धोती ।

चारुदत्तः-(सविलक्षस्मितम् ।) वसन्तसेने, पश्य पश्य ।

चारुदत्त—[लज्जापूर्वक मुस्कराकर] वसन्तसेना ! देखो ! देखो !

कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तूलयिष्यति ।
शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन्निष्प्रतापा दरिद्रता ॥४३॥

अन्वयः—कः, भूतार्थं, श्रद्धास्यति, सर्वः मा, तूलयिष्यति, हि अस्मिन्, लोके, निष्प्रतापा, दरिद्रता, शङ्कनीया, (भवति) ॥४३॥

पदार्थः—कः=कौन, भूतार्थम्=सच्ची बात की, श्रद्धास्यति=मानेगा, निष्प्रतापा=तेजहीन, शङ्कनीया=शङ्का करने योग्य या शङ्का का विषय ।

अनुवादः—कौन वास्तविकता पर विश्वास करेगा ? सब मुझे तुच्छ (अपराधी) समझेंगे । क्योंकि इस संसार मे तेज विहीन निर्धनता सन्देहास्पद होती है ।

संस्कृत टीका—कः=जनः, भूतार्थम्=सत्यम्, सुवर्णभाण्ड चोरैरपहृतमित्येवम् रूपमिति भावः, श्रद्धास्यति=विश्वसिष्यति, सर्वः=सकलः, (जनः), माम्=चारुदत्तम्, तूलयिष्यति=तूलवत् लघूकरिष्यति, हि=यतः, अस्मिन्=एतस्मिन्, लोके=संसारे, निष्प्रतापा=तेजशून्याः, दरिद्रता=निर्धनता, शङ्कनीया=शङ्कायोग्या (भवति) ॥

समास एवं व्याकरण—(१) तूलयिष्यति–तूलवत् करिष्यति इति । निष्प्रतापा-निर्गतः प्रतापो यस्याः सा (प्रा० ब० स०) । (२) तूलयिष्यति–तूल+णिच् (नाम धातु)+लृट् ।

विवृति

(१) 'तूलयिष्यति' के स्थान पर 'तुलयिष्यति' यह पाठ भी मिलता है । (२) 'दरिद्रता शङ्का के योग्य होती है' इस सामान्य वचन से 'अतः सभी मुझे तुच्छ समझेंगे' इस विशेष बात का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । (३) प्रस्तुत पद्य में अनुष्टुप् छन्द है । लक्षण–'श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।"

विदूषकः—चेटि, किं भवत्या इहैव सुप्तव्यम् । [हञ्जे, किं भोदीए इधज्जेव सुविदव्वम् ।]

विदूषक - हञ्जे । क्या आपको यही सोना है ।

चेटी–(विहस्य) आर्य मैत्रेय, अतिमात्रमिदानीमृजुमात्मानं दर्शयसि । [अज्ज मित्तेअ आदिमेत्तं दाणिं उजुअं अत्ताणअं दसेसि ।]

चेटी–[हँस कर] आर्य मैत्रेय ! इस समय अपने को अत्यन्त सीधा प्रदर्शित कर रहे हो ।

विदूषक –भो वयस्य, एष खल्वपसारयन्निव सुखोपविष्टं जनं पुनरपि विस्तारिवारि धाराभिः प्रविष्टः पर्जन्यः । [भो वअस्य, एसो क्खु ओसारअन्तो विअ सुहोवविट्ट जणं पुणोवि वित्थारिवारिधाराहिं पविट्टो पज्जण्णो ।]

विदूषक–हे मित्र ! यह मेघ आनन्द से बैठे हुये लोगों को हटाता हुआ सा मोटी जलधाराओं से (युक्त होकर) फिर आ गया ।

विवृति

(१) सुप्तव्यम्=सोया जायेगा । (२) सुखोपविष्टम्=आनन्द से बैठे हुए (३) जनम्=व्यक्ति को । (४) अपसारयन्=हटाता हुआ, अप+सृ+णिच्+लट् [शतृ] । (५) पर्जन्य =बादल । (६) विस्तारिवारिधाराभि =फैलने वाले पानी की धाराओं से । (७) प्रविष्टः=आ गया, प्र+विश्+क्त ।

चारुदत्त –सम्यगाह भवान् ।

चारुदत्त—आपने ठीक कहा–

> अमूर्हि भित्वा जलदान्तराणि पङ्कान्तराणीव मृणालसूच्यः ।
> पतन्ति चन्द्रव्यसनाद्विमुक्ता दिवोऽश्रुधारा इव वारिधाराः ॥४४॥

अन्वय —हि, अमू, वारिधारा, मृणालसूच्य, पङ्कान्तराणि, इव, जलदान्तराणि, भित्वा, चन्द्रव्यसनात्, विमुक्ता, दिवः, अश्रुधारा, इव, पतन्ति ॥४४॥

पदार्थ—वारिधारा =जल की धारायें, मृणालसूच्य =कमललता की जड़ के अङ्कुर, पङ्कान्तराणि=कीचड़ के भीतरी भाग को, जलदान्तराणि=बादलों के गर्भों या पेटों को, भित्वा=चीर कर, चन्द्रव्यसनात्=चन्द्रमा के (आच्छादन रूप) संकट या विपत्ति से, विमुक्ता =छोड़ी गई या बहाई गयी, दिव =आकाश की, अश्रुधारा =आँसुओं की धाराओं (के), इव=समान, पतन्ति=गिर रही हैं ।

अनुवाद—निश्चय ही ये जल धारायें कीचड़ के भीतरी भाग को भेदकर निकले हुए मृणाल के अङ्कुर के समान मेघों के पेट को विदीर्णकर [प्रिय] चन्द्रमा के आच्छादन रूप और पक्षान्तर में नायिका के पति के मर जाने रूप संकट के कारण निकली हुई आकाश [पक्षान्तर में नायिका] की अश्रु धाराओं के समान गिर रही है ॥

संस्कृत टीका—हि=निश्चयेन, अमू =पुरो दृश्यमाना, वारिधारा =जल-

धाराः, मृणालसूच्यः=कमलनालाङ्कुराः, पक्षान्तराणि=कर्दमस्यान्तराणीव, जलदान्तराणि=मेघमध्यमागान्, भित्वा=विदारणं कृत्वा, चन्द्रव्यसनात्=चन्द्रापत्तेः स्वामिनः विपत्तेश्च,विमुक्ताः=पतिताः दिवः=गगनस्य, अश्रुधाराः=नेत्राम्बुधाराः, इव=तद्वत्, पतन्ति=स्रवन्ति ।।

समास एवं व्याकरण—(१) मृणालसूच्य :—मृणालस्य सूच्यः । पङ्कान्तराणि-पङ्कस्य अन्तराणि । जलदान्तराणि—जलदस्य अन्तराणि चन्द्रव्यसनात्-चन्द्रस्य व्यसनात् । मृणालः—मृण्+कालन् । पकः—पंच् विस्तारे कर्मणि करणे वा घञ्, कुत्वम् भित्वा—भिद्+क्त्वा । व्यसनात्—वि+अस्+ल्युट् । विमुक्ताः—वि+मुच+क्त ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य के 'पङ्कान्तराणीव' इस अंश मे श्रौती उपमालङ्कार है । (२) 'दिवोऽश्रुधारा इव' मे जात्युत्प्रेक्षालङ्कार है । (३) चन्द्रमा मे नायक के कार्य एवं द्यौ मे नायिका के कार्य का आरोप करने के कारण समासोक्ति अलंकार है ।(४) श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है...उपजाति । लक्षण—"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।।"

अपि च ।

और भी—

धाराभिरार्यजनचित्तसुनिर्मलाभि—

श्चण्डाभिरर्जुनशरप्रतिकर्कशाभिः ।

मेघाः स्रवन्ति बलदेवपटप्रकाशाः

शक्रस्य मौक्तिकनिधानमिवोद्गिरन्तः ।।४५।।

अन्वय—बलदेवपटप्रकाशाः, मेघाः, आर्यजनचित्तसुनिर्मलाभिः, अर्जुनशरप्रतिकर्कशाभिः, चण्डाभिः, धाराभिः, शक्रस्य, मौक्तिकनिधानम्, उद्गिरन्तः, इव, स्रवन्ति ।।४५।।

पदार्थः-बलदेव०=बलदेव जी के वस्त्रो के समान कान्ति वाले अर्थात् नीले, आर्यजन०=आर्यों या सज्जनो के चित्त के समान विमल, अर्जुन०=अर्जुन के तीरों के तुल्य कठोर, चण्डाभिः=तीखी, धाराभिः=धाराओ के द्वारा, शक्रस्य=इन्द्र के, मौक्तिकनिधानम्=मोतियो के कोष या खजाने को, उद्गिरन्तः=उगलते या बिखेरते हुए, स्रवन्ति=झर रहे हैं ।

अनुवाद—बलराम के वस्त्र के समान कान्ति वाले मेघ सज्जनों के चित्त के तुल्य विमल, अर्जुन के बाणों के सदृश कठोर एवं तीक्ष्ण धाराओं से मानों इन्द्र के मुक्ता कोष को बिखराते हुए झर रहे हैं ।

संस्कृत टीका-बलदेवपटप्रकाशाः=बलरामवस्त्रवन्नीलाः, मेघाः=जलदाः

आर्यजन० = साधुजनान्त करणविमलाभिः, अर्जुनशर० = पार्थबाणसदृशकठिनाभिः, चण्डाभि = तीक्ष्णाभिः, धाराभि = वृष्टिभि, शक्रस्य = इन्द्रस्य, मौक्तिकनिधानम्, = मुक्तानिधिम्, उद्गिरन्त = नि सारयन्त, इव, स्रवन्ति = वर्षन्ति ।

समास एव व्याकरण—(१) बलदेव०-बलदेवस्य पटवत् प्रकाश येषाम् तादृशा । आर्यजन० = आर्यजनस्य चित्तवत् सुनिर्मला तादृशीभि । अर्जुनशर० = अर्जुनस्य शरवत् प्रतिकर्कशाभि । मौक्तिक०-मौक्तिकानाम् निधानम् ।(२) उद्गिरन्त - उद् + गी + लट् (शतृ) । स्रवन्ति-स्रु + लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत श्लोक मे मालोपमालङ्कार है, उत्प्रेक्षालङ्कार, लुप्तोपमालङ्कार हैं (२) वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण-"उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौग ।" (३) मेघा स्रवन्ति इस बात की समाप्ति होने पर भी चतुर्थ चरण के उपादान होने के कारण समाप्तपुनरात्तता दोष है ।

प्रिये, पश्य पश्य ।

प्रिये ! देखो ! देखो !

एतै पिष्टतमालवर्णकनिभैरालिप्तमम्भोधरै
सासक्तैरुपवीजित सुरभिभि शीतै प्रदोषानिलै. ।
एषाम्भोदसमागमप्रणयिनी स्वच्छन्दमभ्यागता
रक्ता कान्तमिवाम्बर प्रियतया विद्युत्समालिङ्गति ।।४६।।

अन्वय—अम्भोदसमागमप्रणयिनी, स्वच्छन्दम, आगता, रक्ता, प्रियतमा, इव, एषा विद्युत्, पिष्टतमालवर्णकनिभै, एतै, अम्भोधरै, आलिप्तम्, ससक्तै, सुरभिभि, शीतै, प्रदोषानिलै, उपवीजितम्, च कान्तम्, इव, अम्बरम्, समालिङ्गति ।।४६।।

पदार्थ—अम्भोद० = मेघो के समागम की इच्छुक अथवा मेघोदय के कारण प्रियतम की इच्छा वाली, स्वच्छन्दम = अपनी इच्छानुसार, आगता = आई हुई, रक्ता = रक्त वर्ण वाली अथवा अनुरागवाली, प्रियतमा = प्रेयसी, इव = जैसी, एषा = यह, विद्युत = बिजली, पिष्टतमाल० = पिसे हुए तमाल के रग के सदृश, एतै = इन, अम्भोधरै = मेघो से, आलिप्तम् = लेपन किये हुये, ससक्तै = सदा बहने वाली, सुरभिभि = सुगन्धियो से, शीतै = शीतल, प्रदोषानिलै = सायङ्कालीन पवन से, उपवीजितम् = पखा डुलाई गई, च = और, कान्तमिव = प्रेमी की भाति, अम्बरम् = आकाश को समालिङ्गति = अपने अङ्गो से लिपटा रही है ।

अनुवाद—मेघ के समागम से प्रेम करने वाली (प्रियतमा-पक्ष मे बादल के उमडने से उत्कण्ठित), स्वेच्छा से आई हुई, रक्तवर्ण वाली (प्रियतमा-पक्ष मे अनुरक्त) प्रियतमा के सदृश यह बिजली पिसे हुए तमाल के लेप के समान इन मेघो से अनु-

लिप्त (आच्छन्न) कान्त-पक्ष मे कस्तूरी आदि अंगरागो से आलिप्त) घनीभूत, सुगन्धित एव शीतल सायकालिक समीरण से पंखा झले जाते हुए प्रियतम सदृश आकाश का आलिङ्गन कर रही है।

संस्कृत टीका—अम्भोद०=मेघोदयस्नेहशालिनी, स्वच्छन्दम्=स्वेच्छया, आगता=प्राप्ता उदिता वा, रक्ता=अनुरागिणी रक्तवर्णा वा, प्रियतमा=प्रेयसी, इव=यथा, एषा=इयम्, विद्युत्=तडित्, पिष्टतमाल०=पाषाणमर्दिततमालपत्र-विलेपनसदृशैः,एतैः=एभिः अम्भोधरैः=जलदैः,आलिप्तम=अनुलिप्तम्,सघनैः=घनीभूतैः, सुरभिभिः=सुगन्धिभिः, शीतैः=शीतलैः, प्रदोषानिलैः=सायन्तनपवनैः, उपवीजितम्=विहितव्यजनम्, च, कान्तम्=प्रणयिनम्, इव=यथा, अम्बरम्=गगनम्, समालिङ्गति=आश्लिष्यति व्याप्नोति वा ॥

समास एवं व्याकरण—(१) अम्भोद०=अम्भोदेन सह समागम. तस्मिन् प्रणयिनी (नायिका पक्षे—अम्भोदस्य समागमात् प्रणयिनी)। पिष्टतमाल०-पिष्टम् यत् तमालवर्णकम् तन्निभैः (२) अम्भोधरैः-धरन्तीति धराः, धृ+अच्, अम्भसः धराः अम्भोधराः (ष० त०), तैः

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में विद्युत मे नायिका के व्यापारो का आरोप किया गया तथा उसके आकाश (नायक) का आलिङ्गन करने का वर्णन किया गया है।'आलिप्त एव 'उपवीजित' शब्दो से ज्ञात होता है कि नायक (आकाश) काम ज्वर से पीडित है। (२) जिस प्रकार कोई कामिनी सङ्गम की इच्छा से सुगन्धित एवं सुसज्जित प्रियतम का आलिङ्गन करती है वैसे ही बिजली भी प्रियतम—आकाश का आलिङ्गन कर रही है। इसी प्रकार वसन्तसेना भी आलिङ्गन करे, यह ध्वनित होता है। (३) 'वर्णक स्याद्विलेपनम्' इत्यमर.। (४) प्रस्तुत श्लोक में उपमालङ्कार है। (५) आकाश मे नायक के व्यापार का तथा बिजली मे नायिका के व्यापार का आरोप करने के कारण समासोक्ति अलङ्कार है। (६) श्लोक के प्रथम चरण में लुप्तोपमालङ्कार है। (७) 'कान्तमिव' मे श्रौती उपमालकार है। (८) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लक्षण-"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।"

(वसन्तसेना शृंगार भाव नाटयन्ती चारुदत्तमालिङ्गति।)

[वसन्तसेना शृंगार भाव का अभिनय करती हुई चारुदत्त का आलिङ्गन करती है।]

चारुदत्तः—(स्पर्शं नाटयन्प्रत्यालिङ्ग्य।)

चारुदत्त–[स्पर्श का अभिनय करते हुए बदले में आलिङ्गन करके।]

भो मेघ! गम्भीरतरं नद त्वं तव प्रसादात्स्मरपीडितं मे।
सस्पर्शरोमाञ्चितजातरागं कदम्बपुष्पत्वमुपैति गात्रम् ॥४७

अन्वयः—भो मेघ ! त्वं गम्भीरतरम्, नद, तव, प्रसादात्, स्मरपीडितम्, म, गात्रम्, स्पर्शरोमाञ्चितजातरागम्, (सत्), कदम्बपुष्पत्वम्, उपैति ॥४७॥

पदार्थ—भो मेघ !=ऐ बादल !, त्वम्=तू, गम्भीरतरम्=और अधिक गम्भीरतापूर्वक, नद=गरज, तव=तेरी, प्रसादात्=कृपा से, स्मरपीडितम्=कामदेव के द्वारा सताया गया, मे=मेरा, गात्रम्=शरीर, स्पर्शरोमाञ्चित०=स्पर्श से (अर्थात् वसन्त सेना के आलिङ्गन से) रोमाञ्चित और उत्पन्न राग या वासना वाला, कदम्बपुष्पत्वम्=कदम्ब के फूल की तुलना को, उपैति=प्राप्त हो रहा है।

अनुवाद—हे मेघ ! तुम और अधिक गम्भीर गर्जन करो, तुम्हारी कृपा से काम पीडित मेरा शरीर (वसन्त सेना के) स्पर्श से रोमाञ्चित एवं उत्पन्न आसक्ति वाला (होकर) कदम्ब पुष्प की समानता को प्राप्त हो रहा है।

संस्कृत टीका—हे मेघ ! हे पयोद ! त्वम्=भवान्, गम्भीरतरम्=घोरतरम्, नद=गर्ज, तव=ते, प्रसादात्=अनुग्रहात्, स्मरपीडितम्=कामसन्तप्तम्, मे=मम, गात्रम्=शरीरम्, स्पर्शरोमाञ्चित०=वसन्तसेनाश्लेषपुलकितोत्पन्नानुरागम्, (सत्), कदम्बपुष्पत्वम्=नीपकुसुमत्वम्, उपैति=प्राप्नोति ॥

समास एवं व्याकरण—(१) स्मरपीडितम्=स्मरेण पीडितम्। स्पर्श०=सरपर्शेण रोमाञ्चितम् तस्मात् जात अनुराग यस्मिन् तथा भूतम्। कदम्बपुष्पत्वम्-कदम्बस्य पुष्पत्वम्। (२) रोमाञ्चित-रोमाञ्च+इतच्। उपैति-उप+इ+लट्। पीडित-पीड्+क्त।

विवृति

(१) यहाँ कदम्ब पुष्प के रूप से बिम्बानुबिम्ब दर्शन के कारण निदर्शनालङ्कार है। (२) वह सादृश्य आक्षेप के कारण असम्भवद्वस्तु सम्बन्धरूप है।

'सम्भवन्वस्तुसम्बन्ध. असम्भवन्वापि कुत्रचित्। बिम्बानुबिम्बत्वम् बोधयेत् सा निदर्शना।" सा० द० ॥ (३) उपजाति छन्द है।

विदूषक—दास्याः पुत्र दुर्दिन, अनार्यं इदानीमसि त्वम्, यदत्रभवती विद्युता भीषयसि। [दासीए पुत्त दुद्दिण, अणज्जो दाणिं सि तुमम्, ज अत्तभोदिं विज्जुआए भाआवेसि।]

विदूषक—दासी के पुत्र दुर्दिन ! तुम अशिष्ट हो, जो इस समय माननीया (वसन्त सेना) को बिजली से डरा रहे हो।

चारुदत्त—वयस्य, नार्हस्युपालब्धुम्।

चारुदत्त-मित्र ! (दुर्दिन को) उलाहना देना उचित नहीं।

वर्षशतमस्तु दुर्दिनमविरतधारं शतह्रदा स्फुरतु।

अस्मद्विधदुर्लभया यदहं प्रियया परिष्वक्तः ॥४८॥

अन्वय-अविरतधार, दुर्दिन, वर्षशतम्, अस्तु, शतह्रदा, स्फुरतु, यत्, अहम्,

अस्मद्विधदुर्लभया, प्रियया, परिष्वक्तः ॥४८॥

पदार्थ—अविरतधारम्=जिसमे निरन्तर जल की धारायें हो, दुर्दिनम्=बदली, वर्षशतम्=सौ वर्ष, शतह्रदा=विद्युत्, स्फरतु=चमके, अस्मद्विध०=हम जैसे गरीबो के लिये दुर्लभ, परिष्वक्तः=आलिङ्गनबद्ध ।

अनुवाद—निरन्तर धाराओ से युक्त दुर्दिन सौ वर्ष तक रहे । विद्युत् चमकती रहे क्योकि मैं, हमारे जैसे (अकिञ्चन्) के लिए दुर्लभ प्रियतमा के द्वारा आलिङ्गित हुआ हूँ ॥

संस्कृत टीका—अविरतधारम्=अविच्छिन्नवर्षम्, दुर्दिनम्=मेघाच्छन्नमहः, वर्षशतम्=बहुकालम्, अस्तु=भवतु, शतह्रदा=तडित्, स्फरतु=स्फुरणम् करोति, यत्=यस्मात्, अहम्=चारुदत्त, अस्मद्विध०=अस्मादृशदुष्प्रापया, प्रियया=वसन्तसेनया, परिष्वक्त=आलिङ्गित ।

समास एवं व्याकरण—(१) अविरतधारम्—अविरता धारा. यस्मिन् तादृशम् । वर्षशतम=वर्षाणाम् शतम् । अस्मद्विध०=अस्मद्विधानाम् दुर्लभया । (२) अस्तु-अस्+लोट् । स्फुरतु-स्फुर्+लोट् । परिष्वक्त—परि+ष्वञ्ज्+क्त । (३) शतह्रदा-शतम् ह्रादा यस्या सा ।

विवृति

(१) आर्या छन्द है । लक्षण—"यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तया तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"

अपि च । वयस्य,

और भी, मित्र ।

धन्यानि तेषा खलु जीवितानि ये कामिनीना गृहमागतानाम् ।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति ॥४९॥

अन्वय—तेषा, जीवितानि, खलु, धन्यानि, ये, गृहम्, आगताना, कामिनीनां, मेघोदकशीतलानि, गात्राणि, गात्रेषु, परिष्वजन्ति ॥४९॥

पदार्थ—जीवितानि=जीवन, खलु=निश्चय ही, धन्यानि=कृतार्थ, आगतानाम्=आई हुई, कामिनीनाम्=कामपीडिताओं के मेघोदकशीतलानि=बादल के जल से शीतल, गात्राणि=अङ्गों को, परिष्वजन्ति=आलिङ्गनबद्ध करते हैं ।

अनुवाद—उनके जीवन निश्चय ही सफल हैं जो घर में आई हुई रमणियों के बादल के जल से शीतल अङ्गों मे (भर कर) आलिंगन करते हैं ।

संस्कृत टीका—तेषाम्=जनानाम्, जीवितानि=जीवनानि, खलु=निश्चयेन, धन्यानि=सफलानि, कृतार्थानि वा, ये=जना, गृहम्=भवनम्, आगतानाम्=प्राप्तानाम्, कामिनीनाम्=कामार्तानाम्, मेघोदकशीतलानि=वारिदवारिशीतानि, गात्राणि=

अगानि, गात्रेषु = अंगेषु, परिष्वजन्ति = गाढमाश्लिष्यन्ति ।

समास एवं व्याकरण—(१) मेघोदक०—मेघोदकेन शीतलानि इति । (२) परिष्वजन्ति–'ष्वञ्ज्' धातु आत्मनेपदी है किन्तु यहाँ पर परस्मैपद में प्रयोग हुआ है। सम्भवतः 'अनुदात्तेत्त्वलक्षणम् आत्मनेपदम् अनित्यम्' परिभाषा के कारण ऐसा हुआ है । परि+ष्वञ्ज्+लट् । जीवितानि–जीव+क्त । कामिनी–काम+इनि+ङीप् । भूयान् कामः यस्याः सा कामिनी तासाम् ।

विवृति

(१) श्लोक में अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार है । (२) इन्द्रवज्रा छन्द है । लक्षण—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग ।"

प्रिये वसन्तसेने,

प्रिय वसन्तसेना !

स्तम्भेषु प्रचलितवेदिसचयान्तं
शीर्णत्वात्कथमपि धार्यते वितानम् ।
एषा च स्फुटितसुधाद्रवानुलेपा–
त्संक्लिन्ना सलिलभरेण चित्रभित्तिः ॥५०॥

अन्वयः–प्रचलितवेदिसञ्चयान्तं, वितानम्, शीर्णत्वात्, स्तम्भेषु, कथमपि, धार्यते । एषा चित्रभित्तिः, च, स्फुटितसुधाद्रवानुलेपात्, सलिलभरेण, संक्लिन्ना, (जाता) ॥५०॥

पदार्थः–प्रचलित० = वेदिका के समूह में जिसका छोर हिल रहा है, वितानम् = चँदोवा, शीर्णत्वात् = अत्यन्त जीर्ण होने से, स्तम्भेषु = खम्भों पर, कथमपि = किसी प्रकार से धार्यते = धारण किया जाता है, चित्रभित्ति = चित्रों से युक्त दीवाल, स्फुटित० = गले हुये चूने की पुताई के घुल जाने से, सलिलभरेण = जल के वेग से, संक्लिन्ना = भीगी हुई ॥

अनुवाद—वेदी के समूह में हिलते हुए छोर वाला चँदोवा जर्जर हो जाने के कारण खम्भों पर किसी प्रकार धारण किया जा रहा है । और यह चित्रित दीवाल चूने की पुताई के गल जाने से जल के वेग के कारण पूर्णतया भीगी हो गयी है ।

संस्कृत टीका – प्रचलित० = कम्पितवेदिसमूहप्रान्तभागम्, वितानम् = चन्द्रातप, शीर्णत्वात् = जीर्णत्वात्, स्तम्भेषु = स्थूणासु, कथमपि = कठिनतया, धार्यते = स्थाप्यते । एषा = इयम्, चित्रभित्ति = चित्रकुड्यम्, च, स्फुटित० = गलितसुधाचूर्णविलेपनात्, सलिलभरेण — जलवेगेन, संक्लिन्ना = आर्द्रा, (जाता) ॥

समास एवं व्याकरण—(१) प्रचलित०–प्रचलित. वेदिसचये अन्त. यस्य तथाभूतम् । स्फुटित०–स्फुटित. य. सुधाद्रवः तस्य अनुलेपात् । सलिलभरेण–

सलिलस्य भरेण । (२) क्षीर्णत्वात्—क्षृ+क्त+त्व । सक्लिन्ना-सम्+क्लिद्+क्त+टाप् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे प्रहर्षिणी छन्द है । लक्षण—"याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम् ।"

(उर्ध्वमवलोक्य ।) अये इन्द्रधनुः । प्रिये, पश्य पश्य ।

[ऊपर की ओर देखकर] अरे ! इन्द्रधनुष ! प्रिये ! देखो ! देखो !

विद्यु ज्जिह्वनेदं महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन ।
जलधरविवृद्धहनुना विजृम्भितमिवान्तरिक्षेण ॥५१॥

अन्वय—विद्युज्जिह्वेन, महेन्द्रचापोच्छ्रयायतभुजेन, जलधर विवृद्धहनुना, अन्तरिक्षेण, विजृम्भितम्, इव ॥५१॥

पदार्थ—विद्युज्जिह्वेन=बिजली ही जिसकी जीभ है, महेन्द्र०=इन्द्रधनुष रूपी ऊपर उठी हुई एव लम्बी बाहु वाले, जलधर०=मेघ रूपी बढ़ी हुई ठुड्डी है जिसकी, अन्तरिक्षेण=आकाश के द्वारा, विजृम्भितम्=मानो जम्भाई ली गयी ।

अनुवाद-तडित् रूपी जिह्वा वाले, इन्द्रधनुष रूपी उन्नत एव विशाल बाहु वाले तथा मेघ रूपी बढ़ी हुई ठोढी वाले आकाश ने मानो जमुहाई ली है । ·

संस्कृत टीका—विद्युज्जिह्वेन=तडिद्रसनेन, महेन्द्र०=इन्द्रकोदण्डोन्नतविशालभुजेन, जलधर०=मेघलम्बितचिबुकेन, अन्तरिक्षेण=आकाशेन, विजृम्भितम्=मुखव्यादानम्, इव (कृतम्) ॥

समास एवं व्याकरण—(१) विद्युज्जिह्वेन विद्युद् एव जिह्वा यस्य तादृशेन । महेन्द्र०—महेन्द्रचापम् एव उच्छ्रितो आयतो च भुजो यस्य तादृशेन । जलधर०—जलधरः एव विवृद्धा हनुः यस्य तादृशेन ।

विवृति

(१) रूपक और उत्प्रेक्षालङ्कार है । (२) 'विद्युत्' आदि मे जिह्वा आदि का आरोप होने से रूपकालङ्कार है । (३) आर्या छन्द है । (४) "गतानाशम् तारा० ।" ५/२५ ॥ और "पतन्ति चन्द्रव्यसनात् ।" ५/४४ ॥ मे ताराओं एव चन्द्र का वर्णन कर ५/५१ ॥ मे इन्द्रधनुष का वर्णन असङ्गत प्रतीत होता है क्योंकि इन्द्रधनुष दिन मे ही दिखलाई देता है । (५) कुछ टीकाकारों के मत मे समासोक्ति अलङ्कार भी है ॥

तदेहि । अभ्यन्तरमेव प्रविशाव. (इत्युत्थाय परिक्रामति ।)

अत. आओ ! अन्दर ही प्रवेश करें ! [उठकर घूमता है ।]

तालीषु तार विटपेषु मन्द्र शिलासु रुक्ष सलिलेषु चण्डम् ।
संगीतवीणा इव ताड्यमानास्तालानुसारेण पतन्ति धारा· ॥५२॥

अन्वय –धारा , तालीषु, तार विटपेषु, मन्द्र, शिलासु, रुक्ष, सलिलेषु, चण्डम्, ताड्यमाना , संगीतवीणाः, इव, तालानुसारेण, पतन्ति ॥५२॥

पदार्थ –धारा =जल की धारायें, तालीषु=ताल के पत्तो पर अथवा वनो पर, तारम्=ऊँचे स्वर से, विटपेषु=वृक्षो की डालियो पर, मन्द्रम्=गम्भीर, शिलासु=चट्टानो पर, रुक्षम=कर्कश, ताड्यमाना =बजायी जाती हुयी, चण्डम्=तीक्ष्ण, तालानुसारेण=उच्चमन्दकठोरादिस्वरो के अनुसार, पतन्ति=गिर रही हैं ।

अनुवाद —जलधारायें ताल के पत्तो पर उच्चता से, वृक्षो की शाखाओ पर गम्भीरता से चट्टानो पर कर्कशता से और जल मे तीक्ष्णता से आहत होती हुई सङ्गीत की वीणा के सदृश तालस्वरानुसार गिर रही हैं ।।

संस्कृत टीका– धारा =जलधारा , तालीषु=तालपत्रेषु, तारम्=उच्चैः, विटपेषु=वृक्षशाखासु मन्द्रम्=गम्भीरम शिलासु=पाषाणेषु, रुक्षम्=अतिकठिनम्, सलिलेषु=वारिषु, चण्डम्=तीव्रम्, ताड्यमाना =वाद्यमाना , सङ्गीतवीणा =सङ्गीततन्त्र्य·, इव, तालानसारेण=तालानुकूलेन, पतन्ति=क्षरन्ति ॥

समास एव व्याकरण—(१) सङ्गीतवीणा –सङ्गीतस्य वीणाः । तालानुसारेण- तालस्य अनसारेण । (२) ताड्यमाना –तड्+णिच्+शानच+टाप् । धारा –धृ+णिच्+अच्+टाप् । पतन्ति–पत्+लट् ।

(१) प्रस्तुत पद्य म उपमालङ्कार है । (२) उपजाति छन्द है । (३) जिस प्रकार वीणा उच्च, मन्द, तीक्ष्णादि स्वरो से बजाई जाती है उसी प्रकार जलधारायें विभिन्न स्थानो म तालस्वरानुसार गिर रही हैं । (४) इस अङ्क का विस्तृत दुर्दिन वर्णन कवि ने विशेष सतर्कता के साथ नही किया है । स्थान, समय आदि का विचार उसे नहीं रहा है । कवि ने सभी प्रकार के दुर्दिनो का वर्णन प्रस्तुत किया है ।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे ।)

[सब निकल जाते हैं ।]

दुर्दिनो नाम पञ्चमोऽङ्कः ।

दुर्दिन नामक पञ्चम अङ्क समाप्त ।

षष्ठोऽङ्कः ।

छठा अङ्क ।

(ततः प्रविशति चेटी ।)

[तत्पश्चात् चेटी प्रवेश करती है ।]

चेटी— कथमद्याप्यार्या न विबुध्यते । भवतु । प्रविश्य प्रतिबोधयिष्यामि [कध अज्ज वि अज्जआ ण विबुज्झदि । भोदु । पविसिअ पडिबोधइस्सम् ।] (इति नाट्येन परिक्रामति ।)

चेटी— क्या अब भी आर्या (वसन्तसेना) नहीं जाग रही हैं ? अच्छा, प्रवेश करके जगा दूँगी । [अभिनयपूर्वक घूमती है] ।

(तत प्रविशत्याच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना ।)

[तत्पश्चात् ढके हुये शरीर वाली सोई हुई वसन्तसेना प्रवेश करती है ।]

चेटी— उत्तिष्ठत्तूत्तिष्ठत्वार्या । प्रभात सवृत्तम् । (निरूप्य ।) [उत्येदु उत्येदु अज्जआ । पभाद सवुत्तम् ।]

चेटी— [देख कर] आर्ये ! उठिये ! उठिये ! प्रात काल हो गया ।

वसन्तसेना— कथ रात्रिरेव प्रभात सवृत्तम् । (प्रतिबुद्ध्य ।) [कध रत्ति ज्जेव पभाद सवुत्तम् ।]

वसन्तसेना— [जागकर] क्या रात ही प्रात हो गयी ?

चेटी— अस्माकमेतत्प्रभातम् । आर्याया पुना रात्रिरेव । [अम्हाण एसो पभादो । अज्जआए उण रत्ति ज्जेव ।]

चेटी— हमारा तो यह प्रात काल है । किन्तु आर्या (आप) की रात्रि ही है

वसन्तसेना— चेटि, कुतः पुनर्युष्माक द्यूतकर । [हञ्जे, कहिं उण तुम्हाण जूदिअरो ।]

वसन्तसेना— चेटी ! कहाँ हैं तुम्हारे द्यूतकर (आर्यचारुदत्त) ?

चेटी— आर्ये,वर्धमानक समादिश्य पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान गत आर्यचारुदत्त ।

[अज्जए, वड्ढमाणअ समादिसिअ पुप्फकरण्डअ जिण्णुज्जाण गदो अज्ज-चारुदत्तो ।]

चेटी— आर्ये ! वर्धमानक को आदेश देकर आर्य चारुदत्त पुष्पकरण्डक (नामक) पुरातन उपवन में गये हैं ।

वसन्तसेना— किं समादिश्य । [किं समादिसिअ ।]

वसन्तसेना— क्या आदेश देकर ?

चेटी— योजय रात्रौ प्रवहणम्, वसन्तसेना गच्छत्विति । [जोएहि रत्तीए पवहणम्, वसन्तसेना गच्छदुत्ति ।]

चेटी— रात्रि मे बैल गाड़ी ठीक कर लो (जिससे) वसन्तसेना चली जाय।

वसन्तसेना— चेटि, कुत्र मया गन्तव्यम्। [हञ्जे कहिं मए गन्तव्वम्।]

वसन्तसेना— चेटी ! मुझे कहा जाना है ?

चेटी— आर्ये, यत्र चारुदत्त। [अज्जए, जहिं चारुदत्तो।]

चेटी— आर्ये ! जहा चारुदत्त है ?

वसन्तसेना— चेटि, सुष्ठु न निध्यातो रात्रौ। तदद्य प्रत्यक्षं प्रेक्षिष्ये। चेटि, किं प्रविष्टाहमिहाभ्यन्तरचतुःशालकम्। (चेटी परिष्वज्य।) [हञ्जे, सुट्ठु ण णिज्झाइदो रत्तीए। ता अज्ज पच्चक्खं पेक्खिस्सम्। हञ्जे, किं पविट्ठा अहं इह अब्भन्तरचदुस्सालअम्।]

वसन्तसेना— [चेटी का आलिङ्गन करके] चेटी ! रात्रि मे (उन्हे) भली भाँति नही देखा था ? अत आज प्रत्यक्ष देखूँगी। चेटी ! क्या मैं यहाँ भीतरी चतुःशाला (या अन्तःपुर) मे प्रविष्ट हो गई हूँ।

चेटी— न केवलमभ्यन्तरचतुःशालकम्। सर्वजनस्यापि हृदयं प्रविष्टा। [ण केवलं अब्भन्तरचदुस्सालअम्। सव्वजणस्स बिहिअअं पविट्ठा।]

चेटी— न केवल भीतरी चतुःशाला मे ही (किन्तु) सभी लोगो के हृदय मे भी प्रविष्ट हो गई हो।

वसन्तसेना— अपि सतप्यते चारुदत्तस्य परिजन। [अवि सतप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो।]

वसन्तसेना— क्या चारुदत्त का परिवार (हमारे आगमन से) दुःखी है ?

चेटी— सतप्स्यति। [सतप्पिस्सदि।]

चेटी— दुःखी होगा।

वसन्तसेना— कदा। [कदा।]

वसन्तसेना— कब ?

चेटी— यदार्या गमिष्यति। [जदो अज्जआ गमिस्सदि।]

चेटी— जब आर्या चली जायेंगी।

वसन्तसेना— तदा मया प्रथमं सतप्तव्यम्। चेटि, गृहाणैमा रत्नावलीम्। मम भगिन्या आर्याधूतायै गत्वा समर्पय। वक्तव्यं च— अहं श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी, तदा युष्माकमपि। तदेषा तवैव कण्ठाभरणं भवतु रत्नावली'। [तदो मए पढमं सतप्पिदव्वम्। (सानुनयम्।) हञ्जे, गण्ह एदं रअणावलिम्। मम बहिणीआए अज्जाधूदाए गदुअ समप्पेहि। भणिदव्वं च— 'अहं सिरिचारुदत्तस्स गुणणिज्जिदा दासी, तदा तुम्हाणं पि। ता एसा तुह ज्जेव कण्ठाहरणं होदु रअणावली।]

वसन्तसेना— तब (चारुदत्त के परिवार से पृथक् होने पर) मुझे पहले सतप्त

होना है (विनय सहित) चेटि ! इस रत्नावली को ले जो, जाकर मेरी बहिन आर्या धूता को समर्पित कर दो और कहना— "मैं श्री चारुदत्त के गुणों से वशीभूत दासी हूँ, तब आपकी भी (दासी हूँ) । अतः यह रत्नावली आपके ही कण्ठ का आभूषण होवे ।"

चेटी— आर्ये, कुपिष्यति चारुदत्त आर्यायै तावत् । [अज्जए, कुपिस्सदि चारुदत्तो अज्जाए दाव ।]

चेटी— आर्ये ! तब चारुदत्त आर्या पर कुपित होंगे ।

विवृति

(१) चेटी– चारुदत्त की सेविका । (२) विबुध्यते=जाग रही है । (३) प्रतिबोधयिष्यामि=जगाऊँगी । (४) पुष्पकरण्डकम्=उद्यान का नाम, जिसका अर्थ होता है पुष्पों की डलिया । करण्ड: यस्मिन् तत् करण्डकम्, पुष्पाणाम् करण्डकम्, इति । (५) रात्रिरेव प्रभातम् संवृत्तम्=रात ही प्रभात हो गयी । अर्थात् रात्रि को ही प्रभात कहा जाता है क्या ? (६) अस्माकम् एवत्=हमारा तो यह प्रभात है । (७) परिष्वज्य=आलिङ्गन करके । (८) निध्यातः=देखे गये । (९) संतप्तव्यम्=दुखी होना । (१०) अपि संतप्यते=क्या खिन्न है ? (११) गुणनिर्जिता= गुणों से वश मे की गई । (१२) कण्ठाभरणम्=गले का आभूषण । (१३) कुपिष्यति=अप्रसन्न होंगे । (१४) परि+ष्वञ्ज्+क्त्वा→ल्यप्=परिष्वज्य । निध्यातः— नि+ध्यै+क्त । संतप्तव्यम्=सम्+तप्+तव्यत् । निर्जिता— निर्+जि+क्त+टाप् । गुणैः निर्जिता इति गुणनिर्जिता ।

वसन्तसेना— गच्छ । न कुपिष्यति । [गच्छ । ण कुपिस्सदि ।]

वसन्तसेना— जाओ । नहीं कुपित होंगे ।

चेटी– (गृहीत्वा ।) यदाज्ञापयति । आर्ये, भणत्यार्या धूता–आर्यपुत्रेण युष्माकं प्रसादीकृता । न युक्तं ममैतां ग्रहीतुम् । आर्यपुत्र एव ममाभरणविशेष इति जानातु भवती । [जं अज्जा आणवेदि । (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य ।) अज्जए, भणादि अज्जा धूदा— 'अज्जउत्तेण तुम्हाणं पसादीकिदा । ण जुत्तं मम एदं गेण्हिदुम् । अज्जउत्तो ज्जेव मम आहरणविसेसो त्ति जाणादु भोदी' ।]

चेटी— [लेकर] जो आज्ञा करती हैं । (बाहर निकल कर पुनः प्रविष्ट होती है) आर्ये ! आर्याधूता कहती हैं— "आर्यपुत्र ने आपको (यह रत्नावली) प्रसन्न होकर प्रदान की है, (अतः) मेरा इसे लेना उचित नहीं है । आर्यपुत्र ही मेरे विशेष आभूषण हैं, यह आप जान लें ।"

(ततः प्रविशति दारकं गृहीत्वा रदनिका ।)

[तदनन्तर बालक को लेकर रदनिका प्रवेश करती है ।]

रदनिका— एहि वत्स, शकटिकया क्रीडाव । [एहि वच्छ, सअडिआए कीलम्ह।]

रदनिका— आओ बेटे ! (हम दोनों) गाडी से खेलते हैं।

दारक :— रदनिके, किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया। तामेव सौवर्णशकटिकां देहि। [(सकरुणम्।) रदणिए, किं मम एदाए मट्टिआसअडिआए। तज्जेव सोवण्णसअडिअं देहि।]

दारक :— [करुणा सहित] रदनिके ! मुझे इस मिट्टी की गाडी से क्या (करना)? वही सोने की गाडी दो।

रदनिका— जात, कुतोऽस्माकं सुवर्णव्यवहारः। तातस्य पुनरपि ऋद्ध्या सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि। तद्यावद्विनोदयाम्येनम्। आर्याया वसन्तसेनायाः समीपमुपसर्पिष्यामि। आर्ये, प्रणमामि। [(सनिर्वेदं निःश्वस्य।) जाद, कुदो अम्हाणं सुवण्णववहारो। तादस्स पुणोवि रिद्धीए सुवण्णसअडिआए कीलिस्ससि। ता जाव विणोदेमि णम्। अज्जआ वसन्तसेणाए समीवं उवसप्पिस्सम् (उपसृत्य) अज्जए, पणमामि।]

रदनिका— [दुःखपूर्वक लम्बी साँस लेकर] पुत्र ! हमारे यहाँ सोने का व्यवहार कहाँ? (अपने) पिता जी के पुनः समृद्धि से (युक्त होने पर) सोने की गाडी से खेलना। तो जब तक इसको बहलाती हूँ। आर्या वसन्तसेना के पास चलूँगी ! आर्ये ! प्रणाम करती हूँ।

वसन्तसेना— रदनिके, स्वागतं ते। कस्य पुनरयं दारकः। अनलङ्कृतशरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति मम हृदयम्। [रदणिए, साअदं दे। कस्स उण अअं दारओ। अणलंकिदसरीरो वि चन्दमुहो आणन्देदि मम हिअअम्।]

वसन्तसेना— रदनिके ! तुम्हारा स्वागत है। यह बालक किसका है? आभूषणहीन शरीर होने पर भी चाँद-सा मुखड़ा (यह) मेरे हृदय को आनन्दित कर रहा है।

रदनिका— एष खल्वार्यचारुदत्तस्य पुत्रो रोहसेनो नाम। [एसो क्खु अज्जचारुदत्तस्स पुत्तो रोहसेणो णाम।]

रदनिका— यह आर्य चारुदत्त का पुत्र रोहसेन है।

वसन्तसेना— एहि मे पुत्रक, आलिङ्ग। अनुकृतमनेन पितू रूपम्। (बाहू प्रसार्य।) एहि मे पुत्तअ, आलिङ्ग। इत्यङ्के उपवेश्य। अणुकिदं अणेण पिदुणो रूवम्।]

वसन्तसेना— [बाहों को फैला कर] आओ मेरे बेटे ! आलिङ्गन करो। [गोदी में बैठाकर] इसने पिता के रूप का अनुकरण किया है।

रदनिका— न केवलं रूपम्, शीलमपि तर्कयामि। एतेनार्यचारुदत्त आत्मानं विनोदयति। [ण केवलं रूवम्, सीलं पि तक्केमि। एदिणा अज्जचारुदत्तो अत्ताणअं विणोदेदि।]

रदनिका– न केवल रूप ही, स्वभाव भी– (ऐसा मैं) अनुमान करती हूँ। इसम आर्य चारुदत्त अपना विनोद करते हैं।

वसन्तसेना– अथ किंनिमित्तमेष रोदिति। [अध किंणिमित्त एसो रोअदि।]

वसन्तसेना– फिर किसलिये यह रो रहा है ?

रदनिका–एतेन प्रतिवेशिकगृहपतिदारकस्य सुवर्णशकटिकया क्रीडितम। तेन च सा नीता। तत पुनस्ता याचतो मयेय मृत्तिकाशकटिका कृत्वा दत्ता। ततो भणति– 'रदनिके, किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया। तामव सौवर्णशकटिका देहि' इति। [एदिणा पडिवेसिअगहवइदारअकेरिआए सुवण्णसअडिआए कीलिदम्। तेण अ सा णीदा। तदो उण त मग्गन्तस्स मए इअ मट्टिआसअडिया कदुअ दिण्णा। तदो भणादि– 'रदणिए, किं मम एदाए मट्टिआसअडिआए। त ज्जेव सावण्णसअडिअ देहि' त्ति।]

रदनिका– इसने पडोसी गृह-स्वामी के बालक का सोन की गाडी स खेला है और वह उसन ले ली। तब पुन उस (सोन की गाडी) का मांगन पर मैंन यह मिट्टी की गाडी बनाकर दे दी। तभी से यह कह रहा है– 'रदनिके ! मुझे इस मिट्टी की गाडी स क्या ? वही सोन की गाडी दो।'

विवृति

(१) प्रसादीकृता– प्रसन्नतापूर्वक दिया गया। प्रसाद+च्वि+कृ+क्त+टाप्। (२) आभरणविशेष — उत्तम आभूषण, 'भर्त्ता हि परम नार्या भूषणम् भूषणैर्विना'। भारतीय स्त्री का आदर्श व्यक्त हुआ है। (३) दारकम्=बालक को (४) शकटिकया=खेलन की गाडी स। (५) सनिर्वेदम्=दु ख क साथ। (६) सुवर्णव्यवहार=सोना कहाँ ? (७) ऋद्ध्या=धन स। (८) अनलङ्कृतशरीर =आभूषण स रहित शरीर वाला। (९) अनुकृतम्०=नकल किया गया। (१०) प्रतिवेशिकगृहपतिदारकस्य=पडोसी गृह-स्वामी के बच्च को। प्रतिवेश (पडोस) अस्यास्तीति प्रतिवेशी स एव प्रतिवेशिक. प्रतिवेशिक गृहपति, तस्य दारक, प्रति+वश+इनि+कन्+ (११; याचत – माँगते हुए। सम्बन्ध मात्र की विवक्षा म षष्ठी है, नहीं तर दत्त क योग म चतुर्थी होनी चाहिए।

वसन्तसेना– हा धिक् हा धिक्। अयमपि नाम परसम्पत्त्या सतप्यत। भगवन्कृतान्त ,पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुसदृशै क्रीडसि त्व पुरुषभागधेयै। जात मा रुदिहि। सौवर्णशकटिया क्रीडिष्यसि। [हद्धी हद्धी। अअ पि णाम परसम्पत्तीए सतप्पदि। भअव कअन्त पोक्खरवत्तपडिद जलविन्दुसरिसेहि कीलसि तुम पुरिसभाअधएहि। (इति सास्रा।) जाद, मा रोद। सुवण्णसअडिआए कीलिस्ससि।]

वसन्तसेना—हाय धिक्कार है ! हाय धिक्कार है ! यह भी पराई सम्पत्ति से दुःखी होता है । भगवान् दैव ! कमल पत्र पर गिरे हुए जल बिन्दु के समान (अस्थिर) मनुष्य के भाग्यों से तुम खिलवाड कर रहे हो ! [अश्रु सहित] बेटा ! मत रोओ। सोने की गाडी से खेलोगे ।

दारक –रदनिके, कैषा । [रदणिए, का एसा ।]

बालक–रदनिके ! यह कौन है ?

वसन्तसेना–पितुस्ते गुणनिर्जिता दासी । [पिदुणो दे गुणणिज्जिदा दासी ।]

वसन्तसेना–तुम्हारे पिता के गुणो से वशीभूत दासी ।

रदनिका–जात, आर्या ते जननी भवति । [जाद, अज्जआ दे जणणी भोदि ।]

रदनिका–बेटे ! आर्या तुम्हारी माता होती है ।

दारक –रदनिके, अलीक त्व भणसि । यद्यस्माकमार्या जननी, तत्किमर्थमलंकृता । [रदणिए, अलिअतुम भणासि । जइ अम्हाण अज्जआ जणणी ता कीस अलंकिदा ।]

बालक रदनिके ! तुम असत्य कहती हो । यदि आर्या हमारी माता है तो आभूषण युक्त किस लिये हैं ?

वसन्तसेना–जात, मुग्धेन मुखेनातिकरुणं मन्त्रयसि । एषेदानीं ते जननी संवृत्ता । तदगृहाणैतमलकारम् सौवर्णशकटिका कारय । [जाद, मुद्धेण मुहेण अदिकरुण मन्तेसि । (नाट्येनाभरणान्यवतीर्य रुदति ।) एसा दाणि दे जणणी सवुत्ता । ता गेण्ह एद अलकारअम् । सोवण्णसअडिअ घडावेहि ।]

वसन्तसेना–पुत्र ! भोले-भाले मुँह से अत्यन्त करुणापूर्वक बोल रहे हो। [अभिनयपूर्वक आभूषणो को उतार कर रोती हुई] यह अब (मैं) तुम्हारी माता हो गई । अतः इस आभूषण को लो । सोने की गाडी बनवा लेना ।

दारक. —अपेहि । न ग्रहिष्यामि । रोदिषि त्वम् । [अवेहि । ण गेण्हिस्सम् । रोदसि तुमम् ।]

बालक–हटो । नहीं लूगा । तुम रो रही हो ।

वसन्तसेना—जात न रोदिष्यामि । गच्छ । क्रीड । जात, कारय सौवर्णशकटिकाम् । [(अश्रूणि प्रमृज्य ।) जाद, ण रोदिस्सम् । गच्छ । कील । (अलकारैर्मृच्छकटिक पूरयित्वा ।) जाद, कारेहि सोवण्णसअडिअम् ।]

वसन्तसेना—[आँसू पोछकर] बेटे ! नहीं रोऊँगी । जाओ । खेलो । [आभूषणो से मिट्टी की गाडी को भरकर] बेटे ! सोने की गाडी बनवा ला ।

(इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका ।)

[बालक को लेकर रदनिका निकल जाती है ।]

(प्रविश्य प्रवहणाधिरुढः ।)

[गाडी पर बैठा हुआ प्रवेश कर]

चेटी—रदनिके रदनिके, निवेदयार्यायै वसन्तसेनायै–'अपवारित पक्ष द्वारके सज्ज प्रवहण तिष्ठति।' [लदणिए लदणिए, णिवेदेहि अज्जआए वशन्तशेणाए—'ओहालिअ पक्खदुआलए शज्ज पवहण चिट्ठदि।']

चेटी—रदनिके ! रदनिके ! आर्या वसन्तसेना से निवेदन करो–'बगल के द्वार पर बन्द सुसज्जित गाड़ी खड़ी है।'

(प्रविश्य।)

[प्रवेश कर]

रदनिका—आर्ये एग वर्धमानको विज्ञापयति–'पक्षद्वारे सज्ज प्रवहणन्' इति। [अज्जए, एसो वड्ढमाणओ विण्णवेदि-'पक्खदुआरए सज्ज पवहण' त्ति।]

रदनिका—आर्ये ! यह वर्धमानक निवेदन करता है–'बगल के द्वार पर गाड़ी तैयार है।

वसन्तसेना—चेटी, तिष्ठतु मुहूर्तकम्। यावदहमात्मान प्रसाधयामि। [हञ्जे, चिट्ठदु मुहुत्तअम्। जाव अह अत्ताणअ पसाधेमि।]

वसन्तसेना—चेटी ! क्षण भर ठहरो। जब तक मैं अपना शृङ्गार कर लेती हूँ।

रदनिका—वर्धमानक, तिष्ठ मुहूर्तकम्। यावदार्यात्नान प्रसाधयति। [(निष्क्रम्य।) वड्ढमाणआ, चिट्ठ मुहुत्तअम्। जाव अज्जआ अत्ताणअ पसाधेदि।]

रदनिका—[बाहर निकल कर] वर्धमानक ! क्षण-भर ठहरो। जब तक आर्या अपने को सुसज्जित करती हैं।

विवृत्ति

(१) कृतान्त=हे दैव ! (२) पुष्करपत्र०=कमल के पत्ते पर गिरी हुई जल की बूंदों के सदृश। पुष्करपत्रे पतिता ये जल बिन्दवः तत्सदृशैः। (३) पुरुषभागधेयैः=पुरुषों के भाग्यों से। (४) जननी=माता। (५) अलीकम्=असत्य। (६) अलङ्कृता=आभूषणों से सजी हुई। (७) मुग्धेन=भोले-भाले। (८) अपेहि=दूर हटो। (९) अतिकरुणम=अत्यन्त करुणा जनक। (१०) मन्त्रयसि=बोल रहे हो। (११) प्रमृज्य=पोंछकर। (१२) मृच्छकटिकम् पूरयित्वा=मिट्टी की गाड़ी को भरकर। (१३) प्रवहणाधिरूढः=गाड़ी पर बैठा हुआ। (१४) अपवारितम्=वस्त्रों से अच्छी तरह ढकी हुई। अप+वृ+णिच्+क्त। (१५) पक्षद्वार के बगल के द्वार पर, सज्जम्=तैयार। (१६)प्रवहणम्=गाडी। (१७) प्रसाधियामि=सजा रही हूँ।

चेट :—ही ही भो, मयापि यानास्तरणं विस्मृतम्। तद्यावद्गृहीत्वागच्छामि। एते नासिकारज्जुकटुका बलीवर्दौ। भवतु। प्रवहणेनैव गतागतिं करिष्यामि। [ही ही भो, मए वि जाणत्थलके विसुमलिदे। ता जाव गेण्हिअ आअच्छामि। एदे णश्शालज्जुकडुआ बइल्ला। भोदु। पवहणेण ज्जेव गदागदिं कलिश्शम्।] (इति निष्क्रान्तश्चेटः।)

चेट—अजी आश्चर्य है! मैं भी गाड़ी का बिछावन (गद्दी) भूल आया। तो जब तक लेकर आता हूँ। ये दोनों बैल नाक की रस्सी (नाथ) के कारण तीखे (तेज) हैं। अच्छा, गाड़ी से ही आवागमन करूँगा। [चेट बाहर निकल जाता है]।

वसन्तसेना—चेटी, उपनय मे प्रसाधनम्। आत्मानं प्रसाधयिष्यामि। [हञ्जे, उवणेहि मे पसाहणम्। अत्ताणअं पसाधइस्सम्।] (इति प्रसाधयन्ती स्थिता।)

वसन्तसेना—चेटी! मेरी शृङ्गार-सामग्री ले आओ। अपने को सजा लूँ। [शृंगार करती हुई स्थित होती है।]

(प्रविश्य प्रवहणाधिरूढ़ः।)

[गाडी पर चढ़ा हुआ प्रवेश कर]

स्थावरकश्चेट :—आज्ञप्तोऽस्मि राजश्यालक संस्थानेन—'स्थावरक, प्रवहणं गृहीत्वा पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं त्वरितमागच्छ' इति। भवतु। तत्रैव गच्छामि। वहत बलीवर्दौ, वहतम्। (परिक्रम्यावलोक्य च।) कथं ग्रामशकटैं रुद्धो मार्गः। किमिदानीमत्र करिष्यामि। (साटोपम्।) अरे रे, अपसरत अपसरत। (आकर्ण्य) किं भणथ—'एतत्कस्य प्रवहणम्' इति। एतद्राजश्यालकसंस्थानस्य प्रवहणमिति। तच्छीघ्रमपसरत। (अवलोक्य।) कथम्, एषोऽपर गमिकमिव मां प्रेक्ष्य सहसैव द्यूतपलायित इव द्यूतकरोऽप्रवार्यात्मानमन्यतोऽपक्रान्तः। तत्कः पुनरेष अथवा किं ममैतेन। त्वरितं गमिष्यामि। अरे रे ग्राम्या, अपसरत अपसरत। किं भणथ—'मुहूर्तकं तिष्ठ। चक्रपरिवृत्तिं देहि' इति। अरे रे राजश्यालक-संस्थानस्याहं शूरश्चक्रपरिवृत्तिं दास्यामि। अथवा एष एकाकी तपस्वी। तदेव करोमि। एतत्प्रवहणमार्यचारुदत्तस्य वृक्षवाटिकायाः पक्षद्वारके स्थापयामि। (इति प्रवहणं संस्थाप्य।) एषोऽस्म्यागतः। (इति निष्क्रान्तः।) [आण्णत्तह्मि लाअशालअशठाणेण—'थावलआ, पवहणं गेण्हिअ पुप्फकलण्डअं जिण्णुज्जाणं तुलिदं आअच्छेहि' त्ति। भोदु। तहिं ज्जेव गच्छामि। वहध बइल्ला, वहध। कधं गामशअडेहिं लुद्धे मग्गे। किं दाणिं एत्थ कलइश्शम्। अले ले, ओशलध ओशलध। किं भणाध—'एशे कश्शकेलके पवहणे' त्ति। एशे लाअशालअशठाणकेलके पवहणे त्ति। ता शिग्घं ओशलध। कधम्, एशे अवले शहिअं विअ मं पेक्खिअ शहशा ज्जेव जूदपलाइदे विअ जूदिअले आहालिअ अत्ताणअं अण्णदो अवक्कन्ते। ता को उण एशे। अधवा किं मम एदिणा। तुलिदं गमिश्शम्। अले ले गाम-

लुआ, आशलघ ओशलघ । किं भणाध—'मुहुत्तअं चिट्ठ । चक्कपलिवट्टिं देहि' त्ति । अले ले, लाअशालअशठाणकेलके हगे शूले चक्कपलिवट्टिं दइश्शम् अधवा एशे एआई तावश्शी । ता एव्वं कलेमि । एदं पवहणं अज्जचारुदत्तश्श रुक्खवाडिआए पक्खदुआलए थावेमि । एशे ह्मि आअदे ।

स्थावरक चेट—राजा के साले सस्थानक ने मुझे आज्ञा दी है (कि)—'स्थावरक ! गाडी लेकर पुष्पकरण्डक (नामक) पुराने बगीचे में शीघ्र आओ।' अच्छा, वहीं जाता हूँ। चलो बैलो ! चलो। [घूमकर और देखकर] क्या गाँव की गाड़ियों से मार्ग अवरुद्ध है ? अब यहाँ क्या करूँ ? [गर्वपूर्वक] अरे रे (लोगो) ! हटो ! हटो ! [सुनकर] क्या कहते हो (कि)—'यह किसकी गाडी है ?' यह राजा के साले सस्थानक की गाडी है। अतः शीघ्र हटो। [देखकर] क्यों यह दूसरा (व्यक्ति) द्यूताध्यक्ष की भाँति मुझे देखकर अकस्मात् जुए से भागे हुए जुआरी की तरह अपने को छिपा कर दूसरी ओर भाग गया ? तो फिर यह है कौन ? अथवा मुझे इससे क्या ? शीघ्र (मैं) जाऊँगा। अरे रे ग्रामीणो ! हटो ! हटो ! क्या कहते हो (क)—'क्षण-भर ठहरो। पहिये को घुमा दो।' अरे रे ! राजा के साले सस्थानक का वीर (सेवक) मैं पहिये को घुमाऊँगा ? अथवा यह बेचारा अकेला है। तो ऐसा करता हूँ। इस (अपनी) गाडी को आर्य चारुदत्त की वृक्षवाटिका के बगल के द्वार पर खडी कर देता हूँ। [गाडी को खडी करके] यह मैं आया। [निकल जाता है] ।

चेटी—आर्ये, नेमिशब्द इव श्रूयते । तदागतं प्रवहणम् । [अज्जए, णमिसद्दो विअ सुणीअदि । ता आअदो पवहणो ।]

चेटी—आर्ये ! चक्रपरिधि का शब्द-सा सुनाई दे रहा है, अतः (प्रतीत होता है कि) गाडी आ गई।

वसन्तसेना—चेटि गच्छ । त्वरयति मे हृदयम् । तदादिश पक्षद्वारम् । [हञ्जे, गच्छ । तुवरदि मे हिअअम् । ता आदसहि पक्खदुआलअम् ।]

वसन्तसेना—चेटी ! चलो। मेरा हृदय उतावला हो रहा है। इसलिए पक्षद्वार (का मार्ग) बताओ।

(८) अपक्रान्त = भाग गया, अप + क्रम + क्त (कर्तरि) । (९) चक्रपरिवृत्तिम् = पहिये मे परिवर्तन । 'चक्रम् रथाङ्गम्' इत्यमर । (१०) तपस्वी = बेचारा । (११) नमिशब्द = गाडी के चक्के के छोर का शब्द अथवा धुरी का शब्द ।

चेटी-एत्वेत्वार्या । [एदु एदु अज्जआ ।]

चेटी—आर्ये ! आइये, आइये ।

वसन्तसेना-(परिक्रम्य ।) चेटि, विश्राम्य त्वम् । [हञ्जे वीसम तुमम् ।]

वसन्तसेना-[घूमकर] चेटी ! तुम विश्राम करो ।

चेटी—यदार्याज्ञापयति । (इति निष्क्रान्ता ।) [ज अज्जआ आणवेदि ।]

चेटी—जो आर्या आज्ञा करती हैं । [निकल जाती है]

वसन्तसेना—(दक्षिणाक्षिस्पन्द सूचयित्वा प्रवहणमधिरुह्य च ।) किं न्विद स्फुरति दक्षिण लोचनम् । अथवा चारुदत्तस्यैव दर्शनमनिमित्त प्रमार्जयिष्यति । [किं ण्णेद फुरदि दाहिण लोअणम् । अथवा चारुदत्तस्स ज्जेव दसण अणिमित्त पमज्जइस्सदि ।]

वसन्तसेना-[दाहिने नेत्र का फडकना सूचित करके और गाडी पर चढ कर] यह दाहिनी आँख क्यो फडक रही है ? अथवा चारुदत्त का दर्शन ही अपशकुन का शमन कर देगा ।

(प्रविश्य ।)

[प्रवेश कर]

स्थावरकश्चेट — अपसारिता मया शकटा । तद्यावद्गच्छामि । (इति नाट्येनाधिरुह्य चालयित्वा । स्वगतम् ।) भारवत्प्रवहणम् । अथवा चक्रपरिवर्तनेन परिश्रान्तस्य भारवत्प्रवहण प्रतिभासते । भवतु । गमिष्यामि । यात गावौ, यातम् । [ओशालिदा मए शअडा । ता जाव गच्छामि । भालिके पवहणे । अधवा चक्कपलिवाट्टआए पलिश्शन्तश्श भालिके पवहणे पडिभादेदि । भादु । गमिश्शम् । जाध गोणा, जाध ।]

स्थावरक चेट—मैंने गाड़ियों को हटा दिया । अत अब जाता हूँ । [अभिनय पूर्वक चढकर चलाकर, मन मे] गाडी बोझिल (प्रतीत होती) है । अथवा पहिया घुमाने से थके हुए (मुझ) को गाडी बोझिल (प्रतीत हो रही है ।) अच्छा । चलूँ । चलो बैलो, चलो ।

(नेपथ्ये ।)

[नपथ्य मे]

अर रे दौवारिका, अप्रमत्ता स्वेषु स्वेषु गुल्मस्थानेषु भवत । एषोऽद्य गोपालदारका गुप्ति भङ्क्त्वा गुप्तिपालक व्यापाद्य बन्धन भित्वा परिभ्रष्टोऽपक्रामति । तद्गृह्णीत गृह्णीत [अरे र दोवारिआ, अप्पमत्ता सएसु सएसु गुम्मट्ठाणेसु होध । एसो अज्ज

गोवालदारओ गुत्तिअं भञ्जिअ गुत्तिवालअं वावादिअ बन्धण भेदिअ परिब्भट्ठो अवक्कमदि । ता गेण्हध गेण्हध ।]

अरे रे द्वारपालो ! अपने-अपने रक्षण-स्थानों (चौकियों) पर सावधान हो जाओ ! यह गोप-बालक आज कारागार को तोड़कर कारागार के रक्षक को मार कर बन्धन काट कर छूटा हुआ भागा जा रहा है । अत. पकड़ो ! पकड़ो !

(प्रविश्यापटीक्षेपेण सभ्रान्त एकचरण लग्ननिगडोऽवगुण्ठित आर्यक परिक्रामति ।)

[बिना पर्दा हटाये ही प्रवेश कर घबड़ाया हुआ एक पैर म पड़ी हुई बेड़ी वाला वस्त्रावृत मुख वाला आर्यक घूमता है]

चेट–(स्वगतम् ।) महानगर्यां सभ्रम उत्पन्न । तत्त्वरित गमिष्यामि । (इति निष्क्रान्त ।) [महन्ते णअलीए शम्मे उप्पण्णे । ता तुलिद तुलिद गमिश्शम् ।]

चेट—[अपने आप] नगरी म महान् घबराहट उत्पन्न हो गई है । इसलिये जल्दी-जल्दी जाऊँगा । [निकल जाता है ।]

विवृति

(१) दक्षिणाक्षिस्पन्दम्=दाहिनी आँख का फड़कना । स्त्रियो का बायाँ नेत्र पुरुषो का दायाँ नेत्र फड़कते हुये शुभ माने जाते हैं । (२) अनिमित्तम्=अशुभ । (३) प्रमार्जयिष्यति=दूर कर देना । (४) भारवत्=बोझिल, भार+मतुप् । (५) अप्रमत्ता =सावधान । (६) गुल्मस्थानेषु=चौकियो पर । (७) 'गुल्म सेना घट्ट भिदो. सैन्यरक्षण रुग् भिदो ।' इति मेदिनी । 'द्वयोस्त्रयाणाम् पञ्चानाम् मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्" इति मनु । (९) गुप्तिम्=कारागार को । (१०) गुप्तिपालकम= जेलर को । (११) व्यापाद्य=मारकर वि+आ+पद+णिच्+क्त्वा→ल्यप् । (१२) परिभ्रष्ट =छूटा हुआ । (१३) अपक्रामति=भाग रहा है । (१४) अपटी-क्षेपेण=बिना पर्दा गिरे ही—'पटी क्षेपो न कर्तव्य आतराजप्रवेशने ॥ सा० द० ॥ (१५) सम्भ्रान्त =घबड़ाया हुआ । (१६) एकचरणलग्ननिगड =जिसके एक पैर म बेड़ी पड़ी । (१७) अवगुण्ठित =वस्त्र से जिनका मुँह ढका है । (१८) सम्भ्रम = कोलाहल । (२०) त्वरितम्=शीघ्र ।

आर्यक —

आर्यक—

हित्वाऽहं नरपतिबन्धनापदेश—

व्यापत्तिव्यसनमहार्णव महान्तम् ।

पादाग्रस्थितनिगडैक पाशकर्षी

प्रभ्रष्टो गज इव बन्धनाद्भ्रमामि ॥१॥

अन्वय—महान्तम् नरपतिबन्धनापदेशव्यापत्तिव्यसनमहार्णव, हित्वा, पादाग्रस्थितनिगडैक पाशकर्षी, अह, बन्धनात्, प्रभ्रष्टः, गजः, इव, भ्रमामि ॥१॥

पदार्थ—महान्तम्=बहुत बडे, नरपति०=राजा की कैद के बहाने से होने वाली बहुत बडी आपत्ति रूप सकट के समुद्र को, हित्वा=छोड कर अर्थात् पार करके, पादाग्रस्थित०=पैर के अगले हिस्से में लगी बेडी रूप एक शृंखला-पाश को खींचने वाला, अहम्=मैं बन्धनात्=बन्धन से, प्रभ्रष्टः=छूटे हुए, गजः इव=हाथी के समान, भ्रमामि=घूम रहा हूँ।

अनुवाद—महान् राज-बन्धन (कैद) के व्याज से होने वाले विनाश रूप सङ्कट के महासागर को पार कर पैर के अग्र भाग में स्थित एक शृङ्खला पाश को खींचने वाला मैं बन्धन से मुक्त हाथी के समान विचरण कर रहा हूँ।

संस्कृत टीका—महान्तम्=दुस्तरमित्यर्थ, नरपति०=पालककारागृहव्याजमहाविपत्तिकष्टमहासमुद्रम्, हित्वा - तीर्त्वा, पादाग्रस्थित०- चरणाग्रस्थितबन्धनरज्ज्वाकर्षणकारी सन्, अहम्=आर्यक बन्धनात्=शृङ्खलायाः, प्रभ्रष्ट=च्युत, गज =हस्ती इव, भ्रमामि=भ्रमण करोमि ॥

समास एव व्याकरण—(१) नरपति–नरपते बन्धनम् अपदेश यस्य स चासौ व्यापत्ति सैव व्यसनम् तदेव महार्णव तम् अथवा नरपतिना बन्धनम् अपदेशः यस्या सा नरपतिबन्धनापदेशा या व्यापत्ति तत्सम्बद्धम् व्यसनम् एव महार्णव तम्। पादाग्र०-पादाग्रे स्थितम् निगडम् (एव) एकम् पाशम् कर्षति इति तच्छील अथवा पादाग्रे (पादस्य अग्रम या अग्रश्चासौ पादश्च) स्थित निगडस्य एक पाश तम् कर्षतीति। (२) हित्वा-हा+क्त्वा। बन्धनात्-बन्ध्+ल्युट्। प्रभ्रष्ट-प्र+भ्रश्+क्त। भ्रमामि—भ्रम+लट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध मे प्रकृत 'नरपतिबन्धनम्' का प्रतिषेध कर महार्णवत्व की स्थापना से अपह्नुति अलङ्कार है। लक्षण-"प्रकृत प्रतिष्याथ स्थापन स्यादपह्नुति।" सा० द०। (२) 'प्रभ्रष्टो गज इव' मे श्रौती उपमालङ्कार है। (३) श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है—प्रहर्षिणी। लक्षण—"म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयति प्रहर्षिणीयम्॥" (४) भावसाम्य-'अरुन्धतीम् पुरस्कृत्य जामातुराश्रमम् गता।' (५) भावसाम्य--'त्वाम् कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्।' शाकु०। (६) 'घटयभुजबन्धनम्'। गीत०॥ (७) 'विनग्रघाशामुजबन्धनम्।' कुमार०॥

भो, अह खलु सिद्धादेशजनितपरित्रासेन राज्ञा पालकेन घोषादानीय विशसने गूढागारे बन्धनेन बद्ध। तस्माच्च प्रियसुहृच्छर्विलकप्रसादेन बन्धनात्परिभ्रष्टोऽस्मि। (अश्रूणि विमृज्य।)

अरे! सिद्ध पुरुष की भविष्यवाणी से त्रस्त राजा पालक के द्वारा मुझे अहीरों

को वस्ती से मँगवाकर गुप्त दण्डस्थान में बेड़ियों से बाँध दिया था। प्रिय मित्र शर्विलक की कृपा से उस बन्धन से मुक्त हो गया हूँ। [आँसू बहाकर]

विवृति

(१) सिद्धादेश०=महात्मा की भविष्यवाणी से भयभीत। सिद्धस्य आदेशेन जनितः परित्रासः यस्य तादृशेन। (२) घोषात्=अहीरों के गाँव से। (३) पालकेन–पालक नामक राजा। (४) आनीय=लाकर। (५) 'घोषः आभीर पल्ली स्यात्' इत्यमरः। (६) विशसने=मार देने वाले। वि+शस्+ल्युट् (कर्तरि)। (७) टीकाकार 'चर्मणि द्वीपिनम् हन्ति' की भाँति यहाँ निमित्त में सप्तमी मानते हैं। यद्यपि यह चिन्तनीय है। (८) 'निर्वापणम् विशसनम् मारणम् प्रतिघातनम्' इत्यमरः।

भाग्यानि मे यदि तदा मम कोऽपराधो
यद्वन्यनाग इव संयमितोऽस्मि तेन।
दैवी च सिद्धिरपि लङ्घयितुं न शक्या,
गम्यो नृपो बलवता सह को विरोधः? ॥२॥

अन्वय.–यदि, मे, भाग्यानि, तदा, मम, कः, अपराधः, यत्, तेन, वन्यनागः, इव, संयमितः, अस्मि; दैवी, सिद्धिः, अपि, च, लङ्घयितुं, न, शक्या, (तथापि); नृपः, गम्यः, बलवता, सह, कः, विरोधः? ॥ २ ॥

पदार्थः–यदि=यदि, मे=मेरे, भाग्यानि=भाग्य, तदा=तब, मम=मेरा, कः=कौन, अपराधः=दोष? यत्=जिससे, तेन=उस (राजा) के द्वारा, वन्यनागः=जङ्गली हाथी, इव=जैसा, संयमित.=बन्धन में डाल दिया गया, अस्मि=हूँ, दैवी=भाग्यवश होने वाली, सिद्धिः=राज्य की प्राप्ति, अपि=भी, लङ्घयितुम्=टाली जाने के लिए, न=नहीं, शक्या=योग्य है, नृपः=राजा, गम्यः=सेवा करने के योग्य, बलवता=बलवान के साथ, कः=कौन, विरोध? ॥

अनुवादः—यदि मेरे (अच्छे) भाग्य ही हैं तो (इसमें) मेरा क्या दोष है, जिससे उस (राजा पालक) ने जंगली हाथी के समान बन्धन में डाल दिया था? भाग्य की सिद्धि का भी तो उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता, (फिर भी) राजा (सबके लिए) सेव्य है, (क्योंकि) बलशाली के साथ क्या विरोध? (अर्थात् बलशाली के साथ विरोध का परिणाम अच्छा नहीं होता।

संस्कृत टीका—यदि=चेत्, मे=मम, भाग्यानि=अवश्यम्भाविराजत्वसूचकादृष्टानि (वर्तन्ते), तदा=तर्हि, मम=आर्यकस्य, कः=कीदृशः, अपराधः=दोषः? (अर्थात् न कोऽपि मम दोष इत्यर्थः), यत्=यस्मात्, तेन=राज्ञा पालकेन, वन्यनागः=अरण्यगजः, इव=यथा, संयमितः=निगडितः, अस्मि=विद्ये, दैवी सिद्धिः=

भाग्योपहितसिद्धि अपि, च, लङ्घयितुम् = निवारयितुम्, न शक्या = न योग्या, (तथापि) नृप = राजा, गम्य = आश्रयणीय भवतीति शेष, बलवता = बलशालिना, सह = साकम्, कः = कीदृश, विरोध = विवाद निर्बलस्येति शेष ॥

समास एवं व्याकरण–(१) गम्य–गम् + यत् । (२) वने भव. वन्य, स चासौ नाग इति । (३) अपराध–अप + राध् + घञ् । भाग्य–भज् + ण्यत् । समर्पित.–सम् + यम + णिच् + क्त । अस्मि–अस् + लट् । सिद्धि –सिध् + क्तिन् । लङ्घयितुम्–लङ्घ् + णिच् + तुमुन । शक्या–शक् + यत् । बलवता–बल + मतुप् । विरोध –वि + रुध् + घञ् ।

विवृति

(१) 'अवश्यभाविभावाना प्रतीकारो भवेद्यदि । तदा शोकैर्न युज्येरन् नलरामयुधिष्ठिरा ' इत्यभियुक्तोक्तेः । (२) 'विधाता की लिखी हुई बाते झूठी नही होती।' का तात्पर्य यह है कि भाग्य मे यदि राज्य होगा तो वह अवश्य मिलेगा । किन्तु इस समय बलशाली राजा से विरोध करके कष्ट उठाना उचित नही है । उससे मेल कर लेना चाहिये । (३) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध के 'वन्यनाग इव' इस अश मे श्रौती उपमालङ्कार है । (४) उत्तरार्द्ध मे सामान्य रूप से बलशाली के साथ विरोध के अभाव कथन से 'गम्यो नृप' इस विशेष का समर्थन करने से अर्थान्तरन्यासालङ्कार है। (५) श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है—वसन्ततिलका । लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग ।" (६) भाव साम्य–'स्त्रियाश्चरित्रम् पुरुषस्य भाग्य दैवो न जानाति कुतो मनुष्य ।' (७) क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महताम् नोपकरणो ।' सुभाषित । (८) 'जगत्प्रकाश तदशेषमिज्यया भवद् गुरुर्लङ्घयितुम् ममोद्यत ।' रघु० ॥ (९) 'शक्यो वारयितुम् जलेन हुतभुक् ।' भर्तृहरि ।

तत्कुत्र गच्छामि मन्दभाग्य । (विलोक्य ।) इद कस्यापि साधोरनावृत पक्षद्वार गेहम् ।

तो मैं अभागा कहाँ जाऊँ ? [देखकर] यह किसी सज्जन का खुले हुए पक्षद्वार वाला घर है ।

इद गृह भिन्नमदत्तदण्डो विशीर्णसन्धिश्च महाकपाट ।
ध्रुव कुटुम्बी व्यसनाभिभूता दशा प्रपन्नो मम तुल्यभाग्यः ॥३॥

अन्वय —इद, गृह, भिन्नम्, अदत्तदण्ड , विशीर्णसन्धि, महाकपाट', च, (अस्ति, यत , आयते), मम, तुल्यभाग्य , कुटुम्बी, ध्रुव, व्यसनाभिभूता, दशां, प्रपन्न. (अस्ति) ॥ ३ ॥

पदार्थः-इदम् = यह, गृहम् = घर, भिन्नम् = टूटा-फूटा, अदत्तदण्ड' = जिसमें डण्डा (अर्गला, ब्योडा) न लगा हो, विशीर्णसन्धि. = फटे हुए जोड़ स्थान वाला

महाकपाट=विशाल किवाड़, तुल्यभाग्य=जैसा भाग्यवाला, कुटुम्बी=घर का मालिक, ध्रुवम्=निश्चय ही, व्यसनाभिभूताम्=दुःखों से भरी हुई, दशाम्=हालत को, प्रपन्न=प्राप्त हुआ।

अनुवाद—यह घर टूटा हुआ है, बिना डण्डे (बेड़ा ब्योंड़ा, अर्गला, भीतर की सिकड़ी) लगायी हुई, फटे हुए जोड़-स्थान वाली, विशाल किवाड़ है। मेरे सदृश भाग्य वाला गृहपति अवश्य ही सङ्कटाक्रान्त अवस्था को प्राप्त हो गया है।

संस्कृत टीका—इदम्=पुरोवर्ति, गृहम्=गेहम्, भिन्नम्=शिथिलत्वात् जर्जरितम्, अदत्तदण्ड=असलग्नार्गल, विशीर्णसन्धि=भज्यमानबन्धस्थानम्, महाकपाट=विशालकवाट, च (अस्ति), मम=मे, तुल्यभाग्य=हतभाग्यसदृशम्, कुटुम्बी=गृहस्वामी, ध्रुवम्=निश्चितम्, व्यसनाभिभूताम्=विपदाक्रान्ताम्, दशाम्=अवस्थाम्, प्रपन्न=प्राप्त (अस्ति)॥

समास एवं व्याकरण—(१) अदत्तदण्ड—न दत्तः दण्ड यस्मिन् तादृश। विशीर्णसन्धि—विशीर्णः सन्धि यस्य तादृश। तुल्यभाग्यः—तुल्यम् भाग्यम् यस्य तादृश। व्यसनाभिभूताम्—व्यसनेन अभिभूताम्। (२) भिन्नम्—भिद्+क्त, तस्य न। विशीर्ण—वि+शॄ+क्त। प्रपन्न—प्र+पद्+क्त।

विवृति

(१) 'अदत्तदण्ड' और 'विशीर्णसन्धि' ये दोनो 'महाकपाट' के विशेषण हैं। (२) गृह की जीर्णादि कारणों से गृहपति की दारिद्र्यावस्था प्राप्ति रूप साध्य का ज्ञान होने से अनुमान नामक अङ्ग है। (३) उपेन्द्रवज्रा छन्द है। लक्षण—"उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।" (४) उपमा और उत्प्रेक्षालङ्कार हैं।

तदत्र तावत्प्रविश्य तिष्ठामि।

तो तब तक इसमें घुसकर अवस्थित होता हूँ।

(नेपथ्ये।)

[नेपथ्य में]

यात गावौ, यातम्। [जाध गोणा, जाध।]

चलो बैलो! चलो।

आर्यक—(आकर्ण्य।) अये, प्रवहणमित एवाभिवर्तते।

आर्यक—[सुनकर] अरे, गाड़ी इधर ही आ रही है।

भवेद्गोष्ठीयानं न च विषमशीलैरधिगतं
वधूसंयानं वा तदभिगमनोपस्थितमिदम्।
बहिर्नेतव्यं वा प्रवरजनयोग्यं विधिवशा—
द्विविक्तत्वाच्छून्यं मम खलु भवेद्दैवविहितम्॥४॥

अन्वय—इदम्, विषमशीलैः, अधिगत, गोष्ठीयान, न, च, भवेत्, वा, वधूस-यान, (न, भवेत्), (यत्) तदभिगमनोपस्थितम् (अस्ति), वा, मम, विधिवशात्, शून्य, बहि, नेतव्य, प्रवरजनयोग्य, (न भवेत्), विविक्तत्वात्, खलु, (मम), दैव-विहितम्, भवेत् ॥ ४ ॥

पदार्थ—विषमशीलैः=विपरीत स्वभाव वाले अर्थात् दुश्चरित्र लोगों के द्वारा, अधिगतम्=अधिष्ठित अर्थात् चढी गई, गोष्ठीयानम्=उत्सव या सभा में जाने वाली सवारी, वधूसयानम्=दुलहिन की सवारी, तदभिगमनोपस्थितम्=उसे ले जाने के लिये आयी हुई, विधिवशात्=भाग्य के कारण, प्रवरजनयोग्यम्=सत्पुरुषों या बड़े लोगों के (चढ़ने) योग्य, विविक्तत्वात्=निर्जन होने के कारण, दैवविहितम्=भाग्य के द्वारा भेजी गयी।

अनुवाद—यह दुश्चरित्र मनुष्यों से अधिष्ठित गोष्ठी में जाने वाली गाड़ी न हो अथवा (यह किसी) वधू की सवारी न हो जो उसे ले जाने के लिए उपस्थित हो अथवा मेरे भाग्यवश सूनी बाहर ले जाने वाली, श्रेष्ठ पुरुषों के (चढ़ने) योग्य न हो। (अथवा) निर्जन होने से अवश्य ही (मेरे) भाग्य द्वारा उपस्थित हुई है।

संस्कृत टीका—इदम्=गोशकटम्, विषमशीलैः=विसदृशचरितैः, अधिगतम्=अधिष्ठितम्, गोष्ठीयानम्=अथवा विद्वत् परिषद्यानम् गणिकासमाजयानम्, न, च, भवेत्=स्यात्, वा=अथवा, वधूसयानम्=नवोढाप्रवहणम्, तदभिगमनोपस्थितम्=वधूगमनप्रस्तुतम् वा=अथवा मम=आर्यकस्य, विधिवशात्=भाग्यवशात्, शून्यम्=जनरहितम्, बहि=बाह्यप्रदेशे, नेतव्यम्=नेतुम् योग्यम्, प्रवरजन योग्यम्=श्रेष्ठ-जनाधिरोहणयोग्यम् विविक्तत्वात्=निर्जनत्वात, खलु=निश्चितम्, दैवविहितम्=दैवप्रापितम्, भवेत्=स्यात् ॥

समास एवं व्याकरण—(१) विषमशीलैः—विषमाणि शीलानि येषाम् ते (ब० स०), तैः। गोष्ठीयानम्—गोष्ठ्या यानम्। वधूसयानम्—वध्वा सयानम्। तदभिगमनोपस्थितम्—तस्या अभिगमनाय उपस्थितम्। प्रवरजनयोग्यम्—प्रवरजना-नाम् योग्यम्। दैवविहितम्—दैवेन विहितम्। (२) अधिगतम्—अधि+गम्+क्त। गोष्ठी—गोष्ठ+ङीप्। यानम्—या+ल्युट्। भवेत्—भू+विधिलिङ्। नेतव्यम्—नी+तव्य। योग्यम्—युज्+यत्। विहितम्—वि+धा+क्त। विविक्त—वि+विच्+क्त।

विवृति

(१) गोष्ठीयानम्—गोष्ठी अर्थात् मनोरञ्जन के लिए एकत्रित लघु समुदाय की सवारी। "समज्या परिषद्गोष्ठी सभासमिति संसदः" इत्यमरः। (२) विविक्तौ पूतविजनौ" इत्यमरः। (३) "रूप वास्य वितर्कवत्" साहित्य दर्पण के इस लक्षण से

रूप नाम गर्भसन्धि का अङ्ग है। (४) प्रस्तुत श्लोक में सन्देहालङ्कार है। लक्षण—"सन्देह प्रकृतेऽन्यस्य संशय. प्रतिभोत्थित.॥" (५) शिखरिणी छन्द है। लक्षण—"रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला ग शिखरिणी॥" (६) 'गोष्ठी सत्कविभिः समम्'—भर्तृहरि। (७) 'तेनैव सह सर्वदा गोष्ठीमनुभवति।' पञ्चतन्त्र। (८) 'समुद्रयान-कुशला'–मनु०। (९) 'शून्या जगाम भवनाभिमुखी कथञ्चित्।' कुमार०॥

(तत प्रवहणेन सह प्रविश्य)

[तदनन्तर गाड़ी सहित प्रवेश कर]

वर्धमानकश्चेट —आश्चर्यम्। आनीत मया यानास्तरणम्। रदनिके, निवेद-यार्यायै वसन्तसेनायै—'अवस्थित सज्ज प्रवहणमधिरुह्य पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान गच्छ-त्वार्या'। [हीमाणहे। आणीदे मए जाणत्थलके। लदणिए, णिवेदेहि अज्जआए वसन्तसेणाए—'अवत्थिदे सज्जे पवहणे अहिलुहिअ पुप्फकलण्डअ जिण्णुज्जाण गच्छदु अज्जआ'।]

वर्धमानक चेट—आश्चर्य! मैं गाड़ी का बिछावन ले आया हूँ। रदनिके! आर्या वसन्तसेना से निवेदन करो—'सुसज्जित खड़ी हुई गाड़ी पर चढ़कर आर्या पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में जायें।'

आर्यक—(आकर्ण्य।) गणिकाप्रवहणमिदम्। बहिर्यानं च। भवतु। अधिरो-हामि। (इति स्वैरमुपसर्पति।)

आर्यक-[सुनकर] यह वेश्या की गाड़ी है और बाहर जाने वाली है। अच्छा, चढ़ता हूँ। [धीरे से पास आ जाता है]

चेट—(श्रुत्वा।) कथ नूपुरशब्द.। तदागता खल्वार्या। आर्ये, इमौ नासिका-रज्जुकटुकौ बलीवर्दौ। तत्पृष्ठत एवारोहत्वार्या। [कथ णेउलशद्दे। ता आअदा क्खु अज्जआ। अज्जए, इमे णस्साकडुआ वइल्ला। ता पिट्ठदो ज्जेव आलुहदु अज्जआ।]

चेट—[सुनकर] क्या नूपुर की ध्वनि है? तो आर्या आ ही गई है। आर्ये! ये दोनों बैल नाथ के कारण तीखे (या बिदकने वाले) हैं। अत आर्या पीछे से ही चढ़ जायें।

(आर्यकस्तथा करोति।)

[आर्यक वैसा करता है]

चेट—पादोत्कालचालितानां नूपुराणां विश्रान्त. शब्द। भारक्रान्त च प्रव-हणम्। तथा तर्कयामि साम्प्रतमार्ययारूढया भवितव्यम्। तद्गच्छामि। यात गावौ, यातम्। (इति परिक्रामति।) [पादुप्फालचालिदाण णेउलाण वीसन्तो शद्दो। भलक्कन्ते अ पवहणे। तथा तक्केमि शपद अज्जआए आलूढाए होदव्वम्। ता गच्छामि। जाध गोणा जाध।]

चेट—पैर उठाने से चलायमान नूपुरों का शब्द शान्त हो गया है। और गाड़ी

भारयुक्त है। अतः अनमान करता हूँ कि अब आर्या चढ गई होगी, तो जाता हूँ। चलो! बैलो, चलो! [घूमता है]

(प्रविश्य ।)

[प्रवेश कर]

विवृति

(१) अवस्थितम्=खडी। (२) सज्जम=सजीहुई। (३) आकर्ण्य=सुनकर। (४) गणिका प्रवहणम्=वेश्या की गाडी। (५) बहिर्यानम्=बाहर जाने वाली। (६) गणिकाया प्रवहणम् इति। वहिर्यानम्=अस्यास्तीति। (८) नूपुरशब्द=नूपुर की ध्वनि। (९) चेट वेडी की ध्वनि को नूपुर की ध्वनि समझ रहा है। (१०) पृष्ठत=पीछे से। (११) पादोत्फालचालितानाम्=पैरो को उठाने से गिरने वाले। पादयो उत्फालेन चालितानाम् इति। (१२) विश्रान्त=शान्त, बन्द। (१३) माराक्रान्तम्=बोझिल। (१४) शाकटो भार आचित' इत्यमर।

वीरक—अरे रे, अरे जय-जयमान-चन्दनक-मगल-पुष्पभद्रप्रमुखा,

[अरे रे, अर जअ जअमाण चन्दणअ मगल पुल्लमद्दप्पमुहा]

वीरक अरे रे, अरे! जय, जयमान, चन्दनक, मगल और पुष्पभद्र आदि प्रधान (रक्षको)!

कि स्थ निश्चब्धा य स गोपालदारको बद्ध ।
भित्वा सम व्रजति नरपतिहृदय च बन्धन चापि ॥५॥
[कि अच्छध वीसद्धा जो सो गोवालदारओ बद्धो ।
भेत्तूण सम वच्चइ णरवइहिअअ अ बधण चावि ॥५॥]

अन्वय—विश्रब्धा कि स्थ, य गोपालदारक, रुद्ध, स, नरपतिहृदय, च, बन्धनम्, अपि, सम, भित्वा, व्रजति ॥५॥

पदार्थ—विश्रब्धा=निश्चिन्त, विश्वस्त, किम्=क्या, स्थ=हो? य=जो, गोपालदारक=अहीर का लडका, रुद्ध=बन्दी था, स=वह, नरपति हृदयम्=राजा के हृदय को, च=और, बन्धनम्=बन्धन का, अपि=भी, समम्=एक साथ, भित्वा=(१) तोडकर, (२) (हृदय) को विदीर्ण करके। व्रजति=जा रहा है।

अनुवाद—विश्वस्त होकर (निश्चल) क्यो (खडे) हो? जो गोपाल पुत्र बन्दी किया गया था, वह राजा के हृदय एव बन्धन का भी एक साथ ही तोडकर (भागा) जा रहा है।

सस्कृत टीका—विश्रब्धा=विश्वस्ता, किम्=कथम, स्थ=तिष्ठथ, य, गोपालदारक=गोपालपुत्र, रुद्ध=बद्ध, स=गोपालदारक, नरपति हृदयम्=नृपतिचित्त, च=पुन, बन्धनम् अपि=शृखलाम् अपि, समम्=सहैव, भित्वा=सवि-

दायें, व्रजति = गच्छति ॥

समास एवं व्याकरण-(१) नरपतिहृदयम्-नरपतेः हृदयम् । (२) विश्रब्धाः-वि+श्रम्भ्+क्त । भित्वा-भिद्+क्त्वा । रुद्धः-रुध्+क्त । बन्धनम्-बन्ध+ल्युट् । व्रजति-व्रज+लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे बन्धन भेदन रूप कारण के, नरपति हृदय भेदन रूप कार्य के, अर्थात् कारण और कार्य के पौर्वापर्य विपर्यय के कारण, एक साथ कथन होने से अतिशयोक्ति अलकार है । (२) सहोक्ति अलकार भी है ।

(३) प्रस्तुत श्लोक मे आर्या छन्द है । लक्षण-"यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

अरे, पुरस्तात्प्रतोलीद्वारे तिष्ठ त्वम्, त्वमपि पश्चिमे, त्वमपि दक्षिणे, त्वमप्युत्तरे । योऽप्येष प्राकारखण्ड., एनमधिरुह्य चन्दनेन समं गत्वावलोकयामि । एहि चन्दनक, एहि । इतस्तावत् । [अले पुरत्थिमे पदोलीदुआरे चिट्ठ तुमम् । तुम पि पच्छिमे, तुम पि दक्खिणे, तुम पि उत्तरे । जो वि एसो पाआरखन्डो, एद अहिरुहिअ चन्दणेण सम गदुअ अवलोएमि । एहि चन्दणअ, एहि । इदो दाव ।]

अरे ! तुम पूर्व दिशा में गली के मुहाने पर खड़े हो जाओ, तुम भी पश्चिम मे, तुम भी दक्षिण मे, तुम भी उत्तर मे । जो यह चहारदीवारी का हिस्सा है इस पर चढकर मै चन्दनक के साथ जाकर (चारो ओर)देखता हूँ । आओ चन्दनक ! आओ । इधर तो आओ ।

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः ।)

[घबड़ाया हुआ प्रवेश कर]

विवृति

(१) पुरस्तात् = पूर्व दिशा मे अथवा पूर्व की ओर । (२) प्रतोलीद्वारे = गली के मुख पर । 'रथ्या प्रतोली विशिखा' इत्यमरः । (३) प्राकारखण्डः = चहारदीवारी का खण्ड अथवा भाग (हिस्सा) ।'

चन्दनकः-अरे रे वीरक-विशल्य-भीमागद-दण्डकाल-दण्डशूर प्रमुखाः, [अरे रे वीरअ विसल्ल-भीमगअ-दण्डकालअ-दण्डसूरप्पमुहा,]

चन्दनक—अरे रे वीरक, विशल्य, भीमागद, दण्डकाल, दण्डशूर आदि (वीरो)!

आगच्छत विश्वस्तास्त्वरितं यतध्वं लघु कुरुत ।
लक्ष्मीर्येन न राज्ञः प्रभवति गोत्रान्तरम् गन्तुम् ॥६॥
[आअच्छध वीसत्था तुरिअ जत्तेह लहु करेज्जाह ।

लच्छी जेण ण ग्णोपहवइ गोत्तंतरं गन्तुं ॥६॥]

अन्वय—हे विश्वस्ता । आगच्छथ, त्वरितं, यतध्वं, लघु, कुरुत, येन, राज्ञः लक्ष्मी, गोत्रान्तर, गन्तुम्, न, प्रभवति ॥६॥

पदार्थ—हे विश्वस्ताः ! =हे विश्वासपात्रो ! आगच्छथ=आओ, त्वरितं= जल्द, यतध्वम्=कोशिश करो, लघु=शीघ्रता, कुरुत=करो, येन=जिससे, राज्ञ= राजा की, लक्ष्मी =राज्य-लक्ष्मी, गोत्रान्तरम्=दूसरे कुल को, गन्तुम्=जाने में, न=नहीं, प्रभवति=समर्थ हो ।

अनुवाद—हे विश्वासपात्रो ! आओ, शीघ्र (आर्यक को पकड़ने का) प्रयत्न करो, शीघ्रता करो । जिससे राजा (पालक) की लक्ष्मी दूसरे गोत्र (वंश) में जाने को समर्थ न हो ॥

संस्कृत टीका—हे विश्वस्ता=हे विश्वासपात्राणि ! आगच्छथ=आयात, त्वरितम्=शीघ्रम्, यतध्वम्=यत्न कुरुत, लघु=क्षिप्रम्, कुरुत=विधत्त, येन=उपायेन, राज्ञ=पालकस्य, लक्ष्मी =राज्यश्री, गोत्रान्तरम=अन्यत् कुलम्, गन्तुम्=यातुम्, न प्रभवति=न समर्था भवति ॥

समास एवं व्याकरण—(१) गोत्रान्तरम्—अन्यत् गोत्रम् गोत्रान्तरम् (मयूर व्यंसकादित्वात् समासः) । (२) विश्वस्ता=वि+श्वस्+क्त । आगच्छथ—आ+गम्+लोट् । यतध्वम्—यत्+लोट् । कुरुत—कृ+लोट् । गन्तु-गम्+तुमुन् । प्रभवति-प्र+भू+लट् ।

विवृति

(१) श्री भट्टाचार्य के अनुसार श्लोक में आर्या छन्द है । (२) पृथ्वीधर के अनुसार श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—गाथा । लक्षण—"विषमाक्षरपादस्वात् पादौ रसमञ्जसं दर्शयत् । यच्छन्दसि नोक्तमत्र गाथेति तत् सूरिभि कथितम् ॥"

अपि च । [अवि अ ।]

और भी—

उद्यानेषु सभासु च मार्गे नगर्यामापणे घोषे ।
तं तमन्वेषयत त्वरितं शङ्का वा जायते यत्र ॥७॥
[उज्जाणेसु सहासु अ मग्गे णअरीअ आवणे घोसे ।
तं तं जोहह तुरिअं सङ्का वा जाअए जत्थ ॥७॥]

अन्वय—उद्यानेषु, सभासु, च, मार्गे, नगर्याम्, आपणे, घोषे, वा, यत्र, शङ्का, जायते, तं, तं, त्वरितम्, अन्वेषयत ॥७॥

पदार्थ—उद्यानेषु=बगीचों में, सभासु—सभाओं में, च=भी, मार्गे=रास्ते

मे, नगर्याम्=नगरी मे, आपणे=बाजार मे, घोषे=अहीरों की बस्ती मे, वा=अथवा यत्र=जहाँ, शङ्का=सन्देह, जायत=पैदा हो, तम्=उसको, तम्=उसको अर्थात उस स्थान को, त्वरितम्=शीघ्र, अन्वेषयत=खोजो ।

अनुवाद—उपवनो में, समाओ में, मार्ग में, नगरो मे, बाजार में, अहीरो की वस्ती में या जहां भी सन्देह हो, उस-उस स्थान को तुरन्त ढूँढो ॥

संस्कृत टीका—उद्यानेषु=उपवनेषु, सभासु=शालासु, च, मार्गे=पथि, नगर्याम्=पुरि, आपणे= वस्तुक्रयविक्रयस्थाने, घोषे=आभीरपल्ल्याम्, वा=अथवा, यत्र=यस्मिन् स्थाने, शङ्का=सन्देहः, जायते=उत्पद्यते, तम् तम्=तम् स्थानमित्यर्थ, त्वरितम्=शीघ्रम्, अन्वेषयत=गवेषयत ।

समास एवं व्याकरण—जायते-जन्+लट् । अन्वेषयत-अनु+इष्+णिच्+लोट् । शङ्का—शङ्क+अ+टाप् ।

विवृत्ति

(१) "वास कुटी द्वयोः शाला सभा" इत्यमर. । (२) समज्या परिषद् गोष्ठी सभा समिति ससद" इत्यमरः । (३)"घोषः आभीरपल्ली स्यात्' इत्यमर । (४) श्री भट्टाचार्य के अनुसार प्रस्तुत श्लोक में 'आर्या' छन्द है। (५) 'पृथ्वीधर' के अनुसार श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है 'गाथा'।

रे रे वीरक ! किं किं दर्शयसि भणसि तावद्विश्रब्धम् ।
भित्त्वा च बन्धनक कः स गोपालदारक हरति ॥८॥
[रे रे वीरअ ! किं किं दरिसेसि भणादि दाव वीसद्ध ।
भेत्तण अ वधणअ को सो गोवालदारअ हरइ ॥८॥]

अन्वय — रे रे ! किं, किं, दर्शयसि, विश्रब्ध, किं, भणसि, तावत्, बन्धनकम्, भित्वा, स, क, (य), गोपालदारकम्, हरति ॥८॥

पदार्थ — रे रे वीरक ! =अरे वीरक ! किं किं = क्या क्या, दर्शयसि= दिखला रहे हो, विश्रब्धम्=विश्वासपूर्वक, किं भणसि=क्या कह रहे हो ? तावत्= (यह समूह के अर्थ मे प्रयुक्त है,), बन्धनकम्=बन्धन को, भित्वा=तोडकर, स = वह, कः=कौन (है), (य.=जो), गोपालदारकम्=अहीर के लड़के को, हरति= चुरा रहा है अर्थात् कारागार से निकाल कर लिए जा रहा है ।

अनुवाद— अरे वीरक ! क्या क्या दिखा रह हो, क्या विश्वस्त होकर कह रहे हो ? बन्धन को तोडकर वह कौन (है जो) गोपाल पुत्र [आर्यक] को छुडाये लिये जा रहा है ?

संस्कृत टीका.— रे रे वीरक ! किं किं दर्शयसि=निदिशसि दृश्यं:, विश्रब्धम्=विश्वस्तम्, किम् भणसि=कथयसि, तावदिति वाक्यस्य, बन्धनकम

भृङ्खलाम्, भित्वा=भङ्क्त्वा, स क = स क. पुरुष, गोपालदारकम्=गोपबालकम्, हरति=चोरयति ॥

समास एवं व्याकरण—(१) गोपालदारकम—गोपालस्य दारकम् । दर्शयसि—दृश्+णिच्+लट् । विश्रब्ध—वि+श्रम्भ्+क्त । भणसि—भण्+लट् । भित्वा—भिद्+क्त्वा । हरति—हृ+लट् ।

विवृति

(१) 'विश्रब्धम्' शब्द 'भणसि' क्रिया का विशेषण है । (२) प्रस्तुत श्लोक में आर्यक का चिह्न न दिखलाने पर भी वक्ता की अत्यन्त व्याकुलता के कारण न्यूनपदता गुण है—"उक्तावानन्दमग्नादे. स्यान्न्यूनपदतागुण.।" (३) श्लोक में आर्या छन्द का एक भेद गीति छन्द है । लक्षण—"आर्या प्रथमार्द्धसम यस्या परार्द्धमपीरिता गीति'।"

(युग्मकम्)

कस्याष्टमो दिनकरः कस्य चतुर्थश्च वर्तते चन्द्रः ।
षष्ठश्च भार्गवग्रहो भूमिसुतः पञ्चमः कस्य ॥९॥
भण कस्य जन्मषष्ठो जीवो नवमस्तथैव सूरसुतः ।
जीवति चन्दनके कः स गोपालदारक हरति ॥१०॥
[कस्सट्ठमो दिणअरो कस्स चउत्थो अ वट्टए चन्दो ।
छट्ठो अ भग्गवग्गहो भूमिसुओ पञ्चमो कस्स ॥९॥]
[भण कस्स जम्मछट्ठो जीवो णवमो तहेअ सूरसुओ ।
जीअन्ते चदणए को सो गोवालदारअं हरइ ॥१०॥]

अन्वयः—कस्य, अष्टम, दिनकरः, कस्य, चन्द्र, चतुर्थः, च, वर्तते, कस्य, भार्गवग्रह, षष्ठ, च, भूमिसुत, पञ्चम., (वर्तते)? ॥९॥ भण—कस्य, जीव, जन्म-षष्ठ., तथैव, सूरसुत, नवम ? चन्दनके, जीवति, स, क, गोपालदारकम्, हरति ॥१०॥

पदार्थ—दिनकर.=सूर्य, भार्गवग्रहः=शुक्र, भूमिसुत=मगल, जीव.=बृहस्पति, सूरसुतः=शनि ।

अनुवादः—किसके आठवें स्थान पर सूर्य है ? चन्द्रमा किसके चतुर्थ स्थान पर, शुक्र किसके छठे स्थान पर और मगल किसके पञ्चम स्थान पर है ? ॥९॥ बताओ—बृहस्पति किसकी जन्मराशि के छठे स्थान पर एव शनि नवम स्थान पर है ? चन्दनक के जीवित रहते वह कौन (है जो) गोपाल-पुत्र का अपहरण कर रहा है । (अर्थात्—कारागार से छुड़ाये ले जा रहा है) ॥१०॥

संस्कृत टीका— कस्य=जनस्य, अष्टमः= (जन्मराशेः) अष्टम स्थानस्थितः दिनकरः=सूर्यः,कस्य चन्द्रः=चन्द्रमा,चतुर्थः=चतुर्थराशिस्थ.,च,वर्तते=विद्यते ? कस्य भार्गवग्रहः=शुक्रः, षष्ठः=षष्ठस्थानस्थितः, च=पुनः, भूमिसुतः=मङ्गलः,पञ्चमः= पञ्चमराशिस्थः (वर्तते) ॥९॥ भण–वद, कस्य, जीवः=वृहस्पतिः, जन्मषष्ठः= जन्मराशेः षष्ठस्थानस्थित , तथैव, सूरसुतः=शनिः, नवम्.=नवमस्थानस्थितः ? चन्दनके=मयि, जीवति=वर्तमाने, सः कः (अस्ति यः), गोपालदारकम्=गोपबालकम्, हरति=बलात् नयति ॥१०॥

समास एवं व्याकरण– (१) चतुर्थः– चतुर+डट् (युक् च) । वर्तते– वृत्+लट् । षष्ठः–षष्+डट् (युक् च) । पञ्चम. पञ्चन्+मट् । भण–भण्+लोट् । जीवः– जीव्+क । जीवति–जीव+लट् । हरति–हृ+लट । नवमः– नवन्+डट् (मट्) ।

विवृति

(१) वराह मिहिर की वृहत्संहिता अ० १०४ के अनुसार जन्म से आठवीं राशि पर स्थित सूर्य का फल मृत्यु बतलाई गयी है–

हुतवहभयमारश्चन्द्रजः सौख्यमुग्र
धनहरणमथार्कि भार्गवश्चार्थलाभम् ।
मरणमथ पतङ्गः स्थाननाशं सुरेज्यः
सृजति निधनसंस्थो नेत्ररोगञ्च चन्द्रः ॥

जन्म से चौथे चन्द्र का फल है–पेट का रोग

सूक्ष्मां शास्त्रविबोधिकामपि धियं मूढां करोत्यङ्गिरा,
घोरां दु.खपरम्परां दिनकरः कुक्ष्यामयं चन्द्रमाः
सौम्यो रोगविनाशमिच्छति नृणां रोगक्षयं भार्गवो,
भौमः शत्रुभयं चतुर्थभवने सौरिश्च वित्तक्षयम् ॥

जन्म से छठे स्थान पर स्थित शुक्र का फल है–मृत्यु और स्त्री केसाथ वैर एवं वृहस्पति का फल है–शत्रुवृद्धि तथा मानसिक दु.ख ।

स्थिताः षष्ठे राशौ दिनकरमहीजार्कतनयाः
बुधश्चन्द्रश्चैवं प्रचुरधनधान्यानि ददति ।
समृद्धिं शत्रूणां मनसि च विषादं सुरगुरुः
भृगुर्नाशं कुर्याद् युवतिकृतवैरञ्च परमम् ॥

जन्म से पाँचवें मङ्गल का फल है उद्वेग

दौर्भाग्य शशलाञ्छन: क्षितिसुतश्चोद्विग्नता चेतसः ॥

जन्म से नवम शनैश्चर का फल है धननाश

धर्मस्थाने दिनकरसुतो नाशमर्थस्य कुर्यात् ॥

(पृथ्वीधर की टीका से)

(२) ग्रहों का फलसूचक चित्र प्रस्तुत है—

संख्या	ग्रहा	स्थानम्	फलम्
१—	सूर्यः	अष्टम	मृत्यु ।
२—	चन्द्र	चतुर्थ	कुक्षि रोगः ।
३—	शुक्र	षष्ठ	मरणम् ।
४—	भौम	पञ्चम	उद्वेग ।
५—	बृहस्पति	षष्ठ	शत्रुवृद्धिः, मनसो दुःखञ्च ।
६—	शनैश्चर	नवम	धननाशः ।

(३) भाव यह है कि जिस प्रकार जन्मकुण्डली मे भिन्न—भिन्न स्थानो में स्थित ये ग्रह अनिष्टकारक होते हैं, उसी प्रकार आर्यक को छुड़ाने वाले का अनिष्ट (मृत्यु) निश्चित है। (४) प्रस्तुत युग्मक के प्रथम पद्य मे आर्या छन्द और द्वितीय पद्य में गीति छन्द है। (५) प्रस्तुत युग्मक कवि के 'ज्योतिष–शास्त्र–विषयक पाण्डित्य' का प्रदर्शन करने के लिए पर्याप्त है।

वीरक —भट चन्दनक, [भट्ट चन्दणआ,]

वीरक—वीर चन्दनक !

अपहरति कोऽपि त्वरित चन्दनक शपे तव हृदयेन।

यथार्धोदितदिनकरे गोपालदारकः स्फुटितः ॥११॥

[अवहरइ कोवि तुरिअ चदणअ सवामि तुज्ज हिअएण।

जइ अद्धुद्ददिणअरे गोवालअदारओ सुडिदो ॥११॥]

अन्वय — हे चन्दनक ! तव हृदयेन, शपे, कोऽपि, त्वरित (आर्यकम्) अपहरति, यथा, अर्धोदितदिनकरे, गोपालदारक, स्फुटित ॥११॥

पदार्थ —हे चन्दनक ! तव=तुम्हारे, हृदयेन=हृदय से, शपे=सौगन्ध खाता हूँ, कोऽपि=कोई, त्वरितम्=जल्दी से, अपहरति=छुड़ाये लिये जा रहा है, यथा=जिस प्रकार, अर्धोदितदिनकरे=सूर्य के आधा उदित होने पर, गोपालदारक—गोपाल का पुत्र, स्फुटित=छुड़ाया गया या बन्धन काट कर भगाया गया।

अनुवाद—हे चन्दनक ! मैं तुम्हारे हृदय की सौगन्ध खाता हूँ (कि) 'किसी ने शीघ्रता से (आर्य का) अपहरण किया है, क्योंकि सूर्य के आधा उदित होने पर गोपाल—पुत्र भाग निकला था' ॥

संस्कृत टीका—हे चन्दनक ! तव=ते, हृदयेन=चित्तेन हृदय स्पृष्ट्वेत्यर्थ, शपे=शपथ करोमि, कोऽपि=अज्ञातनामा जन, त्वरितम=शीघ्रम्, अपहरति=चोरयति, यथा, अर्धोदितदिनकरे=सूर्योदय वेलायाम्, गोपालदारक=आभीरपुत्र आर्यक इत्यर्थ, खुटित:=पलायित छिन्नबन्धो वा जात ॥

समास एव व्याकरण—(१)शपे—शप्+लट् । अपहरति—अप+हृ+लट् ।

विवृति

(१) भाव यह है कि 'गोपाल—पुत्र' को किसी ने आधे सूर्य के निकलने पर पकड़ा है । रात्रि में नही, क्योंकि हम अपन स्थान पर सतर्क थे परन्तु प्रात ज्यो ही हम विश्राम करने गये त्यो ही इसी बीच मे किसी ने 'आर्यक' का अपहरण कर लिया । (२) प्रस्तुत श्लोक म आर्या छन्द है । लक्षण—'यस्या पादे प्रथमे द्वादश-मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥'

चेट— यात गावौ, यातम् । [जाध गोणा, जाध ।]

चेट— चलो बैलो ! चलो ।

चन्दनक — अरे रे, पश्य पश्य । (दृष्ट्वा ।) [अरे रे, पेक्ख पेक्ख ।]

चन्दनक- [देख कर] अरे, देखो देखो—

अपवारित प्रवहण व्रजति मध्येन राजमार्गस्य
एतत्तावद्विचारय कस्य कुत्र प्रेपित प्रवहणमिति ॥ १२ ॥
[ओहारिओ पवहणो वच्चइ मज्झेण राअमग्गस्स ।
एद दाव विआरह कस्स कहिं पवरिओ पवहणो त्ति ॥ १२ ॥]

अन्वय.—राजमार्गस्य, मध्येन, अपवारित, प्रवहण, व्रजति, एतत्, तावत् विचारय, कस्य, प्रवहण, कुत्र, प्रेषितम्, इति ॥ १२ ॥]

पदार्थ.— राजमार्गस्य=सड़क के, मध्येन=बीच से, अपवारितम्=ढकी हुई, प्रवहणम्=गाड़ी, विचारय=विचार करो, प्रेषितम्=भेजी गई ।

अनुवाद — राजमार्ग के बीच से ढकी हुई गाड़ी जा रही है । यह तो विचार (पूछताछ) करो कि किसकी गाड़ी कहाँ भेजी गई है ?

संस्कृत टीका— राजमार्गस्य=राजकीयपथस्य, मध्येन=मध्यभागम्, अपवारितम्=आच्छादितम्, प्रवहणम्=शकटम् व्रजति=याति, एतत्=इदम्, तावत्=साकल्येन, विचारय=जानीहि, कस्य, प्रवहणम्=रथ, कुत्र=क्व, प्रेषितम्=व्रजितम् निर्दिष्टम्, इति ॥

समास एवं व्याकरण– (१) अपवारितम्– अप+वृ+णिच्+क्त । प्रवहणम्– प्र+वह+ल्युट् । प्रेषितम्— प्र+इष्+क्त ।

विवृति

(१) भाव यह है कि गोपालपुत्र आर्यक का अन्वेषण करो । (२) प्रस्तुत श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है— गाथा ॥ (३) कुछ टीकाकारो के अनुसार गीति छन्द है ।

वीरक.— (अवलोक्य ।) अरे प्रवहणवाहक, मा तावदेतत्प्रवहण वाहय । कस्यैतत्प्रवहणम् । को वा इहारूढ कुत्र वा व्रजति । [अरे पवहणवाहआ, मा दाव एवं पवहण वाहेहि । कस्सकेरक एदं पवहणम् । को वा इध आरूढो । कहिं वावज्जइ ।]

वीरक— [देख कर] अरे गाडीवान ! तब तक इस गाडी को मत हाँको । यह किसकी गाडी है ? कौन इस पर चढा है ? अथवा कहाँ जा रहा है ?

चेट.— एतत्खलु वा प्रवहणमार्य चारुदत्तस्य । इहार्या वसन्तसेनारूढा । पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान क्रीडितु चारुदत्तस्य नीयते । [एशे क्खु पवहणे अज्जचालुदत्ताह केलके । इध अज्जआ वशन्तशेणा आलूढा पुप्फकरण्डअ जिण्णुज्जाण कीलिदु चालुदत्तश्श णीअदि ।]

चेट— यह गाडी तो आर्य चारुदत्त की है । इसमे आर्या वसन्तसेना बैठी हैं । पुष्पकरण्डक नामक जीर्णोद्यान मे चारुदत्त के साथ क्रीडा करने के लिए ले जाई जा रही है ।

वीरक — (चन्दनमुपसृत्य ।) एप प्रवहणवाहको भणति— 'आर्य चारुदत्तस्य प्रवहण वसन्तसेनारूढा ' पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान नीयते' इति । [एसो पवहणवाहओ भणादि— 'अज्जचारुदत्तस्य पवहण वशन्तशेणा आलूढा । पुप्फकरण्डअ जिण्णुज्जाण णीअदि' त्ति ।]

वीरक— [चन्दनक के पास जाकर] यह गाडीवान कहता है (कि)— 'आर्य चारुदत्त की गाडी पर बसन्तसेना चढ़ी हुई है । पुष्पकरण्डक नामक जीर्णोद्यान मे ले जायी जा रही है ।'

चन्दनक — तदगच्छतु । [ता गच्छदु ।]

चन्दनक— तो जाने दो ।

वीरक — अनवलोकित एव । [अणवलोइदो ज्जेव ।]

वीरक— बिना देखे ही ?

चन्दनक — अथ किम् । [अप इ ।]

चन्दनक— और क्या ?

वीरक — कस्य प्रत्ययेन । [कस्स पच्चएण ।]

वीरक— किसके विश्वास से ?

चन्दनक — आर्यचारुदत्तस्य [अज्ज चारुदत्तस्स]

चन्दनक— आर्य चारुदत्त के ।

वीरक— क आर्यचारुदत्त, का वा वसन्तसेना, येनानवलोकित व्रजति । [को अज्जचारुदत्तो, का वा वसन्तसेणा जेण अणवलोइद वज्जइ ।]

वीरक— आर्यचारुदत्त कौन है एव वसन्तसेना कौन है जिससे बिना देखे ही (यह गाडी) चली जाय ?

चन्दनक —अरे आर्यचारुदत्त न जानासि, न वा वसन्तसेनाम् । यद्यार्यचारुदत्त वसन्तसेना वा न जानासि, तदा गगने ज्योत्स्नासहित चन्द्रमपि त्व न जानासि । [अरे, अज्जचारुदत्त णजाणासि, ण वा वसन्तसेणिअम । जइ अज्जचारुदत्त वसन्तसेणिअ वा ण जाणासि, ता गअणे जाण्हासहिद चन्द पि तुम ण जाणादि ।]

चन्दनक— अरे ! आर्य चारुदत्त को नही जानते हो अथवा वसन्तसेना को ? यदि आर्य चारुदत्त एवम् वसन्तसेना को नही जानते हो तो आकाश म चांदनी सहित चन्द्रमा को भी तुम नही जानते हो।

विवृति

(१) वाह्यत=चलाओ । (२) इह=इसमे । (३) आरूढा=चढी हुई । (४) क्रीडितुम्=रमणकरने के लिए । (५) उपसृत्य=निकट जाकर । उप+सृ+क्त्वा (ल्यप्) । (६) अनवलोकित =बिना देखा । (७) प्रत्ययेन=विश्वास से । (८) ज्योत्स्नासहितम्=चादनी युक्त । ज्योत्स्नाभि सहितम् इति । (९) यहाँ निदर्शना अलकार है ।

कस्त गुणारविन्द शीलमृगाङ्कम् जनो न जानाति ।
आपन्न दु खमोक्ष चतु सागरसार रत्नम् ॥ १३ ॥
[को त गुणारविद सीलमिअक जणो ण जाणादि ।
आवण्णदुक्खमोक्ख चउसाअरसारअ रअण ॥ १३ ॥]

अन्वय.— गुणारविन्दम्, शीलमृगाङ्कम्, आपन्नदु खमोक्षम्, चतु सागरसारम्, रत्नम्, तम्, क, जन, न, जानाति ॥ १३ ॥

पदार्थ — गुणारविन्दम्=गुणो में कमल के समान, शीलमृगाङ्कम्=स्वभाव म चन्द्रमा के तुल्य, आपन्नदु खमोक्षम्=आर्तो की पीडा का हरण करने वाले या जहाँ दु खियों के दु ख समाप्त हो जाते है, चतु सागरसारम=चारो समुद्रो के साररूप, रत्नम्=रत्न, तम्=उसको, क =कौन, जन =आदमी, न=नहीं, जानाति= जानता है ।

अनुवाद — गुणों में कमल (के समान मनोहर), स्वभाव में चन्द्रमा (के समान प्रिय), आपत्तिग्रस्त जनों के दुःखों को दूर करने वाले, चारों समुद्रों के सारभूत रत्न उस (आर्य चारुदत्त) को कौन मनुष्य नहीं जानता ?

संस्कृत टीका— गुणारविन्दम्=दयाशौर्यादिकमलम्, शीलमृगाङ्कम्=चन्द्रतुल्यनिर्मलस्वभावम्, आपन्नदुःखमोक्षम्=आर्तजनक्लेशमोचनम्, चतुःसागरसारम्=चतुःसमुद्रसारभूतम्, रत्नम्=मणिस्वरूपमित्यर्थः, तम्=चारुदत्तम्, कः, जनः=लोकः, न जानाति=न वेत्ति ।।

समास एवं व्याकरण— (१) गुणारविन्दम्—गुणेषु अरविन्दम् तत्सदृशम् । अथवा गुणैः अरविन्दम् तत्सदृशम् । शीलमृगाङ्कम्— शीले मृगाङ्कः तत्समानम् । अथवा शीलेन मृगाङ्क इव तम् । आपन्नदुःखमोक्षम्— आपन्नानाम् दुःखस्य मोक्षः येन तादृशम् अथवा आपन्नानाम् दुःखस्य मोक्षः यस्य तम् । चतुःसागरसारम्— चतुर्णाम् सागराणाम् सारम् । (२) आपन्न— आ+पद्+क्त । जानाति— ज्ञा+लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत श्लोक 'अरविन्दमिव' 'मृगाङ्कमिव' में लुप्तोपमालङ्कार है । (२) 'चतुःसागर ... रत्नम्' में निरङ्ग केवलरूपकालङ्कार है । (३) श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है— आर्या ।

द्वावेव पूजनीयाविह नगर्यां तिलकभूतौ च ।
आर्या वसन्तसेना धर्मनिधिश्चारुदत्तश्च ।। १४ ।।
[दो ज्जेव पूअणीआ इह णअरीए तिलअ भूदा अ ।
अज्ज वसतसेणा धम्मणिही चारुदत्तो अ ।। १४ ।।]

अन्वयः— इह, नगर्याम्, द्वौ, एव, पूजनीयौ, तिलकभूतौ, च, आर्या, वसन्तसेना, धर्मनिधिः, चारुदत्तः, च ।। १४ ।।

पदार्थ — इह=इस, नगर्याम्=नगरी में, द्वौ=दो, एव=ही, पूजनीयौ=पूजनीय, तिलकभूतौ=तिलक के समान या सिरमौर रूप, धर्मनिधिः=धर्म की निधि (खजाना) ।।

अनुवाद— इस नगरी (उज्जयिनी) में दो ही पूज्य एवं अलङ्कारतुल्य हैं आर्या वसन्तसेना और धर्म के आकार चारुदत्त ।

संस्कृत टीका— इह=अत्र, नगर्याम्=उज्जयिन्याम्, द्वौ एव=उभौ एव, पूजनीयौ=पूजायोग्यौ, तिलकभूतौ=अलङ्कारभूतौ, च, आर्या=माननीया, वसन्तसेना, धर्मनिधिः=धर्मस्य आकरः, चारुदत्तः, च ।।

समास एवं व्याकरण- (१) धर्मस्य निधिः । (२) पूजनीयौ=पूज+अनीय । भूत—भू+क्त । निधि— नि+धा+कि ।

विवृति

(१) 'तिलकभूतौ' में 'भूत' शब्द का अर्थ सदृश होता है—'भूत प्राण्यतीते समे त्रिपु' इत्यमरः। (२) एक ही पूजन क्रिया में दोनों के कर्म के रूप में विवक्षित होने से तुल्ययोगितालङ्कार है। (३) श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है–आर्या। लक्षण–"यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥"

वीरकः—अरे चन्दनक, [अरे चन्दनआ,]

वीरक—अरे चन्दनक !

जानामि चारुदत्तं वसन्तसेनां च सुष्ठु जानामि।
प्राप्ते च राजकार्ये पितरमप्यहं न जानामि॥१५॥

[जाणामि चारुदत्तं वसंतसेणं अ सुट्ठु जाणामि।
पत्ते अ राअकज्जे पिदरं पि अहं ण जाणामि॥१५॥]

अन्वय :—चारुदत्तम्, जानामि, वसन्त सेनाम्, च, सुष्ठु, जानामि, च, राजकार्ये, प्राप्ते, अहम्, पितरम्, अपि, न, जानामि॥१५॥

पदार्थ :—चारुदत्तम्=चारुदत्त को, जानामि=जानता हूँ, वसन्तसेनाम्=वसन्तसेना को, सुष्ठु=भलीभाँति, राजकार्ये=राज-सम्बन्धी या राजकीय कार्य के, प्राप्ते=आ पड़ने पर।

अनुवाद :–चारुदत्त को जानता हूँ और वसन्तसेना को भी भली-भाँति जानता हूँ (किन्तु) राजकीय कार्य आ पड़ने पर मैं (अपने) पिता को भी नहीं जानता हूँ।

संस्कृत टीका —चारुदत्तम् जानामि=वेद्मि, वसन्तसेनाम्=सुन्दरी वेश्या वसन्तसेनाञ्च, सुष्ठु=सम्यग् रूपेण, जानामि=वेद्मि, राजकार्ये=राज्यसम्बन्धिनि प्रयोजने, प्राप्ते=समुपस्थिते, अहम्=वीरकः, पितरम्=स्वजनकम्, अपि, न जानामि=न वेद्मि।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि अपराध होने पर स्वकीय और परकीय की गणना नहीं होती है। (२) इस श्लोक में अप्राकरणिक अर्थ पिता रूप से प्राकरणिक चारुदत्तादि के रूप का ज्ञान होने से अर्थापत्ति अलङ्कार है। (३) प्रस्तुत श्लोक में आर्या छन्द है। (४) वीरक का यह कथन वास्तव में एक आदर्श सैनिक

के ही योग्य हैं। राजकार्य मे कैसा मित्र और कैसा शत्रु? इस प्रकार के कार्य मे तो अपने पिता मे भी समान व्यवहार करना चाहिए। वीरक के ये शब्द उसके चरित्र को उज्ज्वल बना रहे हैं।

आर्यक --(स्वगतम्।) अयं मे पूर्ववैरी। अयं मे पूर्वबन्धुः। यतः।

आर्यक--(अपने आप) यह मेरा पूर्व (जन्म का) शत्रु है। यह मेरा पूर्व (जन्म का) बन्धु है। क्योंकि--

एककार्यनियोगेऽपि नानयोस्तुल्यशीलता।
विवाहे च चितायां च यथा हुतभुजोर्द्वयोः ॥१६॥

अन्वय --एककार्यनियोगे, अपि, अनयोः, तुल्यशीलता, न, यथा, विवाहे, च, चितायाम्, च, द्वयोः हुतभुजोः ॥१६॥

पदार्थ --एककार्यनियोगे=एक कार्य (१-रक्षा-कार्य, २-दहन-कार्य) में नियुक्त होने पर, तुल्यशीलता=स्वभाव में समानता, चितायाम्=चिता में, हुतभुजो=अग्नियों में।

अनुवाद --एक कार्य में नियुक्त होने पर भी इन दोनों का स्वभाव समान नहीं है, जिस प्रकार विवाह और चिता के, दोनों अग्नियों में (समानता नहीं होती है)।

संस्कृत टीका -- एककार्यनियोगे=मम बन्धनरूपे कर्मणि, नियोगेऽपि= वृत्तिशीलेऽपि, अनयोः=चन्दनकवीरकयोः, तुल्यशीलता=सदृशस्वभावः, न=नहि, यथा=येन प्रकारेण, विवाहे च=परिणये च, चितायाञ्च=शवदहनकाष्ठपुञ्जे च, द्वयोः=द्वयोः स्थानयोः स्थितयोः, हुतभुजोः=पावकयोः ॥

समास एवं व्याकरण --(१) तुल्यशीलता--तुल्यम् शीलम् ययोः तौ तुल्यशीलौ (ब० स०), तयोः भावः तुल्यशीलता। हुतभुजोः--हुतम् भुनक्ति इति हुतभुक् तयोः। एककार्यनियोगेऽपि--एकस्मिन् कार्ये नियोगेऽपि। (२) तुल्यशीलता--तुल्य+ शील+तल+टाप् (आ)। हुतभुजोः--हुत+भुज+क्विप्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में उपमालङ्कार है। (२) पथ्यावक्त्र छन्द है।

लक्षण-- युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।'

चन्दनक -- त्वं तन्त्रिलः सेनापती राज्ञः प्रत्ययितः। एतौ धारितौ मया बलीवर्दौ। अवलोकय। [तुमं तन्तिलो सेणावई रण्णो पच्चइदो। एदे धारिदा मए बइल्ला। अवलोएहि।]

चन्दनक--तुम राज्य की चिन्ता करने वाले सेनापति राजा के विश्वासभाजन

हो । ये दोनो बैल मैंने पकड लिए हैं । देख लो ।

वीरक--त्वमपि राज्ञ प्रत्ययितो बलपतिं । तस्मात्त्वमेवावलोकय । [तुम पि रण्णो पच्चइदो बलवई । ता तुम ज्जेव अवलोएहि ।]

वीरक—तुम भी राजा के विश्वासपात्र सेनापति हो । इसलिये तुम्ही देख लो।

चन्दनक—मयावलोकितं त्वयावलोकितं भवति । [मए अवलोइद तुए अवलोइद मोदि ।]

चन्दनक—मेरा देखा हुआ तुम्हारा देखा हुआ हो जायेगा ।

वीरक—यत्त्वालोकितं तद्राज्ञा पालकेनावलोकितम् । [ज तुए अवलोइद त रण्णा पालएण अवलोइदम् ।]

वीरक—जो तुमने देख लिया सो राजा पालक ने देख लिया ।

चन्दनक—अरे, उन्नामयधुरम् । [अरे उण्णामेहिधुरम् ।]

चन्दनक—अरे, जुआ उठाओ ।

(चेटस्तथा करोति ।)

[चेट वैसा ही करता है ।]

विवृति

(१) तन्त्रिल =राज्यचिन्तापरायण या शासन कार्य का विशेष ध्यान रखने वाला । तन्त्र प्रधाने सिद्धान्त सूत्रवाये परिच्छदे' इत्यमर । प्रशस्त तन्त्रम् अस्यास्तीति तन्त्र+इलच । (२) प्रत्ययित =विश्वासपात्र । (३) धारितौ=पकडे गये या रोके गय । (४) बलपति =सेनापति । (५) धुरम्=जुआ को । उन्नामय=उठाओ ।

आर्यक —(स्वगतम् ।) अपि रक्षिणो मामवलोकन्ति । अशस्त्रश्चास्मि मन्दभाग्य । अथवा ।

आर्यक—(अपने आप) क्या रक्षक मुझे देख रहे हैं ? और मैं अभागा शस्त्रहीन हूँ ।

अथवा—

भीमस्यानुकरिष्यामि बाहु शस्त्र भविष्यति ।
वर व्यायच्छतो मृत्युर्न गृहीतस्य बन्धने ॥१७॥

अन्वय —(अहम्), भीमस्य, अनुकरिष्यामि, (मे) बाहु, शस्त्रम् भविष्यति, व्यायच्छत (मम), मृत्यु, वरम्, बन्धने, गृहीतस्य न ॥१७॥

पदार्थ —भीमस्य=भीम की, अनुकरिष्यामि=नकल करूँगा, बाहु =भुजा, शस्त्रम्=शस्त्र, हथियार, व्यायच्छत =युद्ध करते हुए, बन्धने=कारागार में, गृहीतस्य=बन्द किये गये का ।

अनुवाद —(मैं) भीम का अनुकरण करूँगा, (मेरी) भुजा (ही) शस्त्र होगी। युद्ध करते हुए (जन की) मृत्यु अच्छी, कारागार मे पडे हुए की नही।

संस्कृत टीका – भीमस्य=वृकोदरस्य, अनुकरिष्यामि=अनुकरण करिष्यामि, बाहू=भुज, शस्त्रम्=प्रहरणम् भविष्यति, व्यायच्छत=युद्धम कुर्वत, (मम) मृत्यु=मरणम्, वरम्=श्रेष्ठम्, बन्धने=कारागारे, गृहीतस्य=बद्धस्य मृत्युन वरमिति भाव ॥

समास एव व्याकरण —(१) व्यायच्छत —वि+आ+यम्+लट+शतृ=व्यायच्छत्+षष्ठी एक० । (२) अनुकरिष्यामि—अनु+कृ+लृट । भविष्यति—भू+लृट् । बन्धने—बन्ध+ल्युट् । गृहीतस्य—ग्रह्+क्त ।

विवृति

(१) भीमस्य – भीम अपनी भुजाओ से ही अस्त्र का कार्य लेता था। 'सहज मे प्रहरण भुजौ (भास, पञ्चरात्र २/५५)। (२) भीमस्य मे षष्ठी शेषे इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति है जिस प्रकार कुमार सम्भव म—'तदाऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठ पर्यस्तरुच स्मितस्य । (३) व्यायच्छत का पृथ्वीधर के अनुसार अर्थ है—परस्परमव कुर्वत । (४) प्रस्तुत श्लोक म प्रयुक्त छन्द का नाम है—पथ्यावक्त्र ।

अथवा साहस्य तावदनवसर ।

अथवा साहस का (यह) अवसर नही है।

(चन्दनको नाट्येन प्रवहणमारुह्यावलोकयति ।)

[चन्दनक अभिनयपूर्वक गाडी पर चढकर देखता है]

आर्यक —शरणागतोऽस्मि ।

आर्यक—शरण मे आया हूँ।

चन्दनक —(सस्कृतमाश्रित्य ।) अभय शरणागतस्य ।

चन्दनक—[सस्कृत का आश्रय लेकर] शरण मे आये हुए को अभय है।

आर्यक —

आर्यक—

त्यजति किल त जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च ।
भवति च सदोपहास्यो य. खलु शरणागत त्यजति ॥१८॥

अन्वय —य, शरणागतम्, त्यजति, तम्, जयश्री, खलु, त्यजति, मित्राणि, बन्धुवर्ग च, किल, जहति, (स) सदा, उपहास्य च, भवति ॥१८॥

पदार्थ —शरणागतम्=शरण म आए हुए को, त्यजति=छोड देता है. जयश्री=विजयलक्ष्मी, बन्धुवर्ग=भाई-बन्धुओं का समूह, जहति—छोड देता है

उपहास्य =उपहास या हँसी मजाक का पात्र ।

अनुवाद--जो शरणागत का परित्याग कर देता है, उसे विजय लक्ष्मी निश्चय ही त्याग देती है। मित्र एवं बन्धुगण भी त्याग देते हैं तथा (वह) सदा उपहसनीय होता है।

संस्कृत टीका--य =जनः, शरणागतम्=आश्रयप्राप्तजनम्, त्यजति=जहाति, तम्=जनम्, जयश्री =विजयलक्ष्मी, खलु =निश्चयेन, त्यजति=जहाति, मित्राणि= सुहृद, बन्धुवर्गश्च=सम्बन्धिगणश्च, किल=अवश्यम् जहति=त्यजन्ति, (स) सदा=सर्वदा, उपहास्य =उपहसनीय, च=अपि भवति=जायते ।

समास एवं व्याकरण--(१) शरणागतम्-शरणो आगतम् । (२) उपहास्य - उप+हस्+ण्यत् । शरण--शॄ+ल्युट् । आगतम्--आ+गम्+क्त । त्यजति--त्यज +लट् । जहति--हा+लट् ।

विवृति

(१) 'जयश्री' कर्तृक त्याग आदि का शरणागत त्याग की अनर्थमूलकता का कथन रूप कार्य क प्रति कारण रूप से उपन्यस्त होने से समुच्चयालङ्कार है। (२) प्रस्तुत श्लोक म आर्या छन्द है। लक्षण--'यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥' (४) 'सतप्तानाम् त्वमसि शरणम्०।' मेघदूत ।

चन्दनक --कथमार्यको गोपालदारक श्येनवित्रासित इव पत्ररथ शाकुनिकस्य हस्ते निपतित । (विचिन्त्य) । एषोऽनपराध शरणागत आर्यचारुदत्तस्य प्रवहणमारूढा, प्राणप्रदस्य मे आर्यशर्विलकस्य मित्रम् । अन्यतो राजनियोग । नत्किमिदानीमत्र युक्तमनुष्ठातुम् । अथवा यद्भवतु तद्भवतु । प्रथममेवाभय दत्तम् । [कध अज्जओ गोवालदारओ सेणवित्तासिदो विअ पत्तरहो सउणिअस्स हत्थे णिवडिदो । एसो अणवराधो सरणाअदो अज्जचारुदत्तस्स पवहण आरूढो, पाणप्पदस्स मे अज्जसव्विलअस्स मित्तम् । अण्णदो राअणिओओ । ता किं दाणिं एत्थ जुत्त अणुचिट्ठिदुम । अधवा ज भोदु त भोदु । पढम ज्जेव अभअ दिण्णम ।]

चन्दनक--कैसे गोप-बालक आयक बाज से भयभीत पक्षी के समान शिकारी क हाथ म फँस आ पडा ? [विचार कर] (एक ओर) यह निर्दोष, शरणागत, आर्य चारुदत्त की गाडी पर आरूढ और मेरे प्राणदाता आर्य शर्विलक का मित्र है। दूसरी ओर राजाज्ञा है। तो अब यहाँ क्या करना उचित है अथवा जो हो, सो हो, पहले ही (मैंने) अभय दे दिया है।

विवृति

(१) श्येनवित्रासित =बाज से भयभीत । (२) पत्ररथ =पक्षी, पत्रमेव रथो

यस्य स (ब० स०) । (३) शाकुनिकस्य=बहेलिया से । शकुन+ठक्-इक । 'जीवान्तक शाकुनिको द्वौ वागुरिकजालिकौ' इत्यमर । (४) हस्ते=हाथ में । (५) निपतित=आ पड़ा ? (६) अनपराध=निर्दोष । (७) प्राणापदस्य=जीवनदाता । (८) राजनियोग=राजा की आज्ञा । (९) अनुष्ठातुम्=करने के लिए, अनु+स्था+तुमुन् । (१०) युक्तम्=उचित ।

भीताभयप्रदानं ददतः परोपकाररसिकस्य ।
यदि भवति भवतु नाशस्तथापि खलु लोके गुण एव ॥१९॥
[भीदाभअप्पदाण दत्तस्स परोवआररसिअस्स ।
जइ होइ होउ णासो तहवि ह लोए गुणो ज्जेव ॥१९॥]

अन्वय—भीताभयप्रदानम्, ददतः, परोपकाररसिकस्य, (जनस्य) यदि, नाशः, भवति, भवतु, तथापि, लोके, गुणः, एव, (भवति) ॥१९॥

पदार्थ—भीताभयप्रदानम्=डरे हुये को अभय देना, ददतः=देते हुये, परोपकाररसिकस्य=परोपकार के प्रेमी, नाशः=मृत्यु, गुणः=प्रशंसा ।

अनुवाद—भयभीत को अभयदान देने वाले परोपकाररत (व्यक्ति) का यदि विनाश हो जाता है तो हो जाय तो भी संसार में (उसका) गुण ही (गाया जाता) है ।

संस्कृत टीका—भीताभयप्रदानम्=भयाक्रान्ताभयदानम्, ददतः=अर्पयतः, परोपकाररसिकस्य=परहिताकाङ्क्षिणः, यदि=चेत्, नाशः=मृत्युः, भवति=जायते, भवतु=जायताम्, तथापि=एवमपि, लोके=जगति, गुणः एव=प्रशंसैव (भवति)॥

समास एवं व्याकरण—(१) भीताभयप्रदानम्—भीतेभ्यः अभयस्य प्रदानम् । परोपकाररसिकस्य—परेषाम् उपकारे रसिकस्य । (२) ददतः—दा+लट्+शतृ । भीत—भी+क्त । प्रदानम्—प्र+दा+ल्युट् । नाशः नश्+घञ् । भवति—भू+लट् । भवतु—भू+लोट् ।

विवृति

(१) 'भीताभयप्रदानं ददतः' को 'तण्डुलपाकं पचति' की तरह समझ कर 'ददतः' का अर्थ 'करने वाले' यह अर्थ समझना चाहिये । (२) श्लोक में आर्या छन्द है ।

(समयमवतीर्य ।) दृष्ट आर्य—(इत्यर्धोक्ते ।) न, आर्या वसन्तसेना । तदेषा भणति,—'युक्तं नेदम्, सदृशं नेदम्, यदहमार्यचारुदत्तमभिसर्तुं गच्छन्ती राजमार्गे परिभूता ।' [दिट्ठा अज्जा—। ण, अज्जआ वसन्तसेणा । तदो एसा भणादि—जुत्तं णेदम्, सरिसं णेदम्, जं अहं अज्जचारुदत्तं अहिसारिदुं गच्छन्ती राअमग्गे परिभूदा ।'

[भय के साथ उतर कर] देख लिया आर्य ···[यह आधा कहने पर] नहीं, आर्या वसन्तसेना। तो यह कहती है—'यह उचित नहीं है, यह योग्य नहीं है—'जो मैं आर्य चारुदत्त से अभिसार करने के लिए जाती हुई सड़क पर अपमानित की गई।

वीरक.—चन्दनक, अत्र मे संशय समुत्पन्न। [चन्दणआ, एत्थ मह संसओ समुप्पण्णो।]

वीरक—चन्ददक! यहाँ मुझे सन्देह उत्पन्न हो गया है।

चन्दनक—कथं ते संशय। [कधं दे संसओ।]

चन्दनक—क्यों तुम्हें सन्देह (उत्पन्न हो गया है)?

विवृति

(१) सभयम्=यहाँ पर 'भ्रंश' नामक नाट्यलक्षण है क्योंकि आर्या कहना चाहिये भय के कारण आर्य कहा गया है। (२) युक्तम्=उचित, युज्+क्त। (३) परिभूता=अपमानित हुई, परि+भू+क्त। (४) संशय=सन्देह, सम्+शी+अच्।

वीरक—

वीरक—

सम्भ्रमघर्घरकण्ठस्त्वमपि जातोऽसि यत्त्वया भणितम्।
दृष्टो मया खल्वार्यः पुनरप्यार्या वसन्तसेनेति॥
[सभमघग्घरकण्ठो तुम पि जादो सि ज तुए भणिद।
दिट्ठो भए खु अज्जो पुणो वि अज्जा वसन्तसेणेत्ति॥२०॥

अन्वय—त्वम् अपि सम्भ्रमघर्घरकण्ठ, जात, असि, यत्, त्वया, (पूर्वम्) भणितम्, मया, खलु, आर्य, दृष्ट, पुनरपि, आर्या, वसन्तसेना इति॥२०॥

पदार्थ—सम्भ्रमघर्घरकण्ठ=घबराहट के कारण घर्घराहटपूर्ण कण्ठ वाले या भरायी हुई आवाज वाले, भणितम्=कहा गया, दृष्ट=देखा गया।

अनुवाद—तुम भी घबराहट के कारण घर्घर ध्वनि से युक्त कण्ठ वाले हो गये हो क्योंकि तुमने (पहले) कहा (कि) मैंने आर्य को देखा (तथा बाद में) आर्या वसन्तसेना (देख ली) ऐसा कहा॥

संस्कृत टीका—त्वम्=चन्दनक, अपि सम्भ्रमघर्घरकण्ठ=उद्वेगेन घर्घरस्वर, जात=सम्पन्न, असि=वर्तसे, यत्=यस्मात्, त्वया=चन्दनकेन, भणितम्=कथितम्, मया, खलु=अवश्यम्, आर्य=पुरुष विशेष, दृष्ट=अवलोकित, पुनरपि=भूयोऽपि, आर्या=मान्या, वसन्तसेना, इति=इत्थम्॥

समास एवं व्याकरण—(१) सम्भ्रम०–सम्भ्रमेण घर्घर कण्ठ यस्य तादृश । (२) जात —जन् + क्त । असि—अस् + लट् । भणितम —भण् + क्त । दृष्ट—दृश् + क्त ।

विवृति

(१) वीरक के कथन का तात्पर्य यह है कि इन दोनो परस्पर-विरोधी वाक्यो का तथा तेरी आकृति से मुझे सन्देह हो गया है । (२) प्रस्तुत पद्य मे गीति छन्द है । लक्षण—'आर्याप्रथमार्द्धसम यस्या॰ अपरार्द्धमाह ता गीतिम् ॥'

अत्र मेऽप्रत्यय । [एत्थ मे अप्पच्चओ ।]

यही पर मुझे विश्वास नही है ।

चन्दनक —अरे, कोऽप्रत्ययस्तव । वय दाक्षिणात्या अव्यक्तभाषिण । खष खत्ति-कड कडठ्ठोबिल कर्णाट कर्ण प्रावरण द्राविड-चोल-चीन-बर्बर-खेर खान मुख-मधुघातप्रभृतीना म्लेच्छजातीनामनकदेश भाषाभिज्ञा यथेष्ट मन्त्रयाम, दृष्टो दृष्टा वा, आर्य आर्या वा । [अरे, को अपच्चओ तुह । वअ दक्खिणत्ता अवत्तभासिणो । खस-खत्ति खडो खडट्टोविलअ-कण्णाट कण्ण-प्पावरणअ दविड चोल-चीण बर्बर-खेर-खान-मुख मधुगादपहुदाण मिलिच्छजादीण अणअ देसभासाभिण्णा जहेट्ठ मन्तआम, दिट्ठो दिट्ठा वा अज्जो अज्जआ वा ।]

चन्दनक—अरे ! तुम्हे क्या विश्वास नही है । हम दक्षिण के निवासी अस्पष्ट बोलने वाले होते है । खष, खत्ति कड, कड्ट्टोबिल, कर्णाट, कर्णप्रावरण, द्राविड, चोल, चीन, बबर, खेर, खान, मुख, मधुघात आदि म्लेच्छ जातियो की अनेक देशो की भाषा के ज्ञाता (हम) यथेच्छ भाषण करते हैं—देख लिया या देख ली, आर्य या आर्या ।

वीरक —नन्वहमपि प्रलोक यामि । राजाज्ञैषा । अह राज्ञ प्रत्ययित । [ण अहं पि पलोएमि । राअण्णा एसा । अहं रण्णो पच्चइदो ।]

वीरक—तो मैं भी देखता हूँ । यह राजा की आज्ञा है । मैं राजा का विश्वास पात्र हूँ ।

चन्दनक —तत्किमहमप्रत्ययित सवृत्त । [ता किं अह अप्पच्चइदो सवुत्तो ।]

चन्दनक—तो क्या मैं अविश्वसनीय हो गया ?

वीरक —ननु स्वामिनियोग । [ण सामिणिओओ ।]

वीरक—तो भी स्वामी की आज्ञा है ।

त्व प्रलोकयसि । कस्त्वम् । [अज्जगोवाल दारओ अज्जचारुदत्तस्स पवहण अहिरुहिअ अवक्कमदि त्ति जइ कहिज्जदि, तदो अज्जचारुदत्तो रण्णा सासिज्जइ । ता को एत्थ उवाओ । कण्णाटकलहप्पओअ करेमि । अरे वीरअ, मए चन्दणकेण पलोइद पुणो वि तुम पलोएसि । का तुमम् ।]

चन्दनक— (अपने आप) 'आर्य गोपाल–पुत्र आर्य चारुदत्त की गाडी पर चढ कर भाग रहा है' यदि यह कह दिया जाता है तो आर्य चारुदत्त राजा द्वारा दण्डित होते हैं । तो इसमे क्या उपाय है ? विचार कर कर्णाटक देश का झगडा (बनावटी कलह) प्रारम्भ करता हूँ । [प्रकट रूप मे] अरे वीरक ! मुझ चन्दनक द्वारा देखे गये को तुम पुन देख रहे हो ? कौन हो (तुम दुबारा देखने वाले ?)

वीरक — अरे, त्वमपि कः । [अरे, तुम पि को ।]

वीरक—अरे ! तुम्हीं कौन हो ?

चन्दनक —पूज्यमानो मान्यमानस्त्वमात्मनो जातिं न स्मरसि ।

[पूइज्जन्तो माणिज्जन्तो तुम अप्पणो जादि ण सुमरेसि ।]

चन्दनक—पूजनीय और सम्माननीय तुम अपनी जाति का स्मरण नही करते ।

वीरक — (सक्रोधम् ।) अरे, का मम जाति । [अरे, का मह जादी ।]

वीरक—[क्रोध के साथ] अरे ! कौन मेरी जाति है ?

चन्दनक.— को भणतु । [को भणउ ।]

चन्दनक— कौन कहे ?

वीरक —भणतु । [भणउ ।]

वीरक— कहो ।

विवृति

(१) अप्रत्ययः=अविश्वास, 'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञान विश्वासहेतुषु' इत्यमर । न प्रत्यय. अप्रत्यय । (२) दाक्षिणात्या =दक्षिण के निवासी, दक्षिणा+त्यक् । (३) अव्यक्त भाषिण =स्पष्टवक्ता, अव्यक्तम् भाषितुम् शीलमेषाम् इति अव्यक्तभाषिण । अव्यक्त+भाष्+ णिनि (कर्त्ता मे) (४) म्लेच्छ जातीनाम्=असस्कृत भाषा बोलने वाली जाति । (५) यथेष्टम्=जैसा चाहते हैं वैसा (६) मन्त्रयाम = बोलते हैं, मन्त्+लट् । (७) प्रत्ययित =विश्वासपात्र । (८) संवृत्त =हो गया । (९) स्वामिनियोगः=स्वामी का आदेश । (१०) शासते=दण्डित किये जाते हैं । (११) कर्णाटकलहप्रयोगम्=कर्णाटक प्रदेश का झगडा अर्थात् बनावटी लडाई (१२) जातिम्=जाति को, 'जाति सामान्यजन्मनो , इत्यमर ।

चन्दनक — अथवा • भणामि । [अहवा ण भणामि ।]

चन्दनक — अथवा नही कहता ।

जानन्नपि खलु जाति तव च न भणामि शीलविभवेन ।
तिष्ठतु ममैव मनसि किं च कपित्थेन भग्नेन ॥२१॥
[जाणतो वि हु जादिं तुज्झ अ ण भणामि सीलविहवेण ।
चिट्ठउ महच्चिअ मणे किं च कइत्थेण भग्गेण ॥२१॥]

अन्वय — तव, जातिम्, खलु, जानन्, अपि, शीलविभवेन, न, भणामि,(सा) मम्, एव, मनसि, तिष्ठतु, कपित्थेन, भग्नेन, च, किम् ॥२१॥

पदार्थ —जातिम्=जाति को, जानन्=जानते हुए, शीलविभवेन= शीलसम्पन्नता या शील-संकोच के कारण, भणामि= कहता हूँ, कपित्थेन=कैथ, भग्नेन= ताडने से, किम्=क्या लाभ ?

अनुवाद — तेरी जाति निश्चित रूप से जानते हुये भी शील–सम्पन्नता (या सङ्कोच) के कारण नही कह रहा हूँ। (तुम्हारी जाति का नाम) मेरे ही मन मे रहे, कठबेल फोडने से क्या लाभ ।

संस्कृत टीका—तव=ते, जातिम्=गोत्रम् खलु=निश्चयेन, जानन् अपि= विदन् अपि, शीलविभवेन=आत्मन साधुस्वभावसम्पत्या,न= नहि,भणामि=वदामि, (सा जाति) मम= चन्दनकस्य, एव मनसि=चेतसि, तिष्ठतु=आस्ताम्, कपित्थेन= दधित्थेन, भग्नेन=स्फुटितेन, च, किम्=क लाभः ?

समास एवं व्याकरण—(१)शीलविभवेन–शीलस्य विभवेन । (२) जातिम्= जन्+क्तिन् । जानन्–ज्ञा+शतृ । भणामि—भण्+लट् तिष्ठतु+स्था+लोट् । भग्नेन- भञ्ज+क्त ।

विवृति

(१) 'जाति सामान्यजन्मनो' इत्यमर । (२) 'जातिश्छन्दसि सामान्ये मालत्या गोत्रजन्मनो' इति विश्व । (३) 'कपित्थे स्युर्दधित्थग्राहिमन्मथा । तस्मिन्दधिफल पुष्प फलदन्तशठावपि'इत्यमर (४) कपित्थेन भग्नेन किम्- कठबेल के फोडने से भीतर से तुच्छ गूदा निकलता है उसी प्रकार तुम भी सेनापतित्व के चाकचिक्य से युक्त होने पर भी (तुम्हारी) तुच्छ जाति के प्रकट हो जाने से तुम तिरस्कार भाजन बन जाओगे। (५) प्रस्तुत पद्य म दृष्टान्तालङ्कार है। लक्षण— "दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुन प्रतिबिम्बनात् ।" (६) श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है—आर्या । लक्षण– "यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"

वीरक —ननु भणतु भणतु । [ण भणउ भणउ ।]
वीरक—नही, कहो, कहो ।

(चन्दनक. संज्ञा ददाति ।)

[चन्दनक (उस्तरा पैमाने का) सङ्केत देता है]

वीरक —अरे, किं न्विदम् । (अरे, किं णेदम् ।)

वीरक—अरे ! यह क्या है ?

चन्दनक —

चन्दनक—

शीर्ण शिलातलहस्त पुरुषाणा कूर्चग्रन्थिमस्थापन ।
कर्तरी व्यापृत हस्तस्त्वमपि सेनापतिर्जात ॥२२॥

[सिण्णसिलाअलहत्थो पुरिमाण कुच्चगठिसठवणो ।
कत्तरिवावुदहत्थो तुम पि सेणावई जादो ॥२२॥

अन्वय —शीर्णशिलातलहस्त , पुरुषाणाम्, कूर्चग्रन्थिमस्थापन , कर्तरीव्यापृत-हस्त त्वम्, अपि, सेनापति , जात- ॥२२॥

पदार्थ —शीर्णशिलातलहस्त =टूटे पत्थर के टुकडे का हाथ से रखने वाला या मग्न शिलातल पर हाथ रखने वाला, पुरुषाणाम् =पुरुषा की, कूर्चग्रन्थिसस्थापन = दाढी की गाँठ छीलने वाला या एकत्रित की हुई दाढी रखने वाला, कर्तरीव्यापृतहस्त =कैंची (चलाने) म व्यस्त हाथ वाला या कैंची से सटे हुये हाथ वाला, जात =हो गये हो ।

अनुवाद —टूटे पत्थर का टुकडा (उस्तरा पैमाने के लिये) हाथ म रखने वाला पुरुषो की दाढी काटने वाला तथा कैंची (चलाने) म व्यस्त हाथ वाला तू (नाई) भी सेनापति हो गया ॥

सस्कृत टीका— शीर्णशिलातलहस्तं = भग्नप्रस्तरखण्डकर, पुरुषाणाम् = नृणाम्, कूर्चग्रन्थिसस्थापन =श्मश्रुगुच्छसहर्ता, कर्तरी व्यापृतहस्त =क्षुरसमासक्तकर त्वमपि=त्व नापित. भूत्वा अपि इत्यर्थ सेनापति =बलाध्यक्ष , जात = सवृत ।

समास एव व्याकरण—(१) शीर्णशिलातलहस्त – शीर्णम् शिलातलम् हस्ते यस्य तादृश । कूर्चग्रन्थिसस्थापन – कूर्चानाम् ग्रन्थे सस्थापनम् येन तादृश अथवा कूर्चग्रन्थिम् सम्यक् स्थापयति इति सः तादृश । कर्तरीव्यापृतहस्त – कर्तर्या व्यापृत हस्त यस्य तादृश अथवा कर्तरीव्यापृत हस्त यस्य तथाभूत । (२) सस्थापन – सम्+स्था+णिच्, पुक्+युच् । शीर्ण —शृ+क्त । सस्थापन – सम्+स्था+णिच् +ल्युट्=(पुक्) । व्यापृत—वि+आपृ+क्त ।

टिप्पणी

(१) कूर्चमस्त्री भ्रुवोर्मध्ये कठिनश्मश्रुकैतवे' इति मेदिनी । (२) प्रस्तुत पद्य म प्रयुक्त विशेषणो से नाई की जाति प्रकट की गई है । (३)'गहण' नामक नाट्य लक्षण है । 'दूषणोद्घोषणायान्तु भर्त्सना गर्हणन्तु तत्' ।सा० द०। (४)आर्या छन्द है ।

लक्षण—"यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तया तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।"

वीरक—अरे चन्दनक त्वमपि मान्यमान, आत्मनो जाति न स्मरसि ।[अरे चन्दणआ, तुम पि माणिज्जन्ता अप्पणो केरिक जादिं ण सुमरसि ।]

वीरक—अरे चन्दनक ! तुमभी (अपने को बड़ा) मानते हुए अपनी जाति का स्मरण नहीं करते हो ?

चन्दनक—अरे, का मम चन्दनकस्य चन्द्रविशुद्धस्य जाति । [अरे, का मह चन्दणअस्स चन्द विसुद्धस्स जादी ।]

चन्दनक--अरे ! चन्द्रमा के समान शुभ्र मुझ चन्दनक की क्या जाति ?

वीरक—को भणतु । (को भणउ ।)

वीरक—कौन कहे ?

चन्दनक—भणतु, भणतु । [भणउ, भणउ ।]

चन्दनक--कहो कहो ।

(वीरको नाट्यन संज्ञा ददाति ।)

(वीरक अभिनय पूर्वक सङ्केत देता है)

चन्दनक — अरे, किं न्विदम् । (अरे, किं णेदम ।)

चन्दनक—अरे ! यह क्या है ?

विवृति

(१) मन्यमान —मानते हुए । (२) चन्द्रविशुद्धस्य=चन्द्रमा के समान निर्मल चन्द्र इव विशुद्ध तस्य । (३) सज्ञाम्=सङ्केत ।

वीरक—अरे, श्रणु श्रणु । [अरे, सुणाहि सुणाहि ।]

वीरक—अरे ! सुनो, सुनो—

जातिस्तव विशुद्धा माता भेरी पितापि ते पटह् ।
दुर्मुख ! करटकभ्राता त्वमपि सेनापतिर्जात ॥२३॥
[जादी तुज्झ विसुद्धा मादा भेरी पिदा वि दे पडहो ।
दुम्मुह ! करडअभादा तुम पि सेणावई जादो ॥२३॥]

अन्वय—तव, जाति , विशुद्धा, भेरी, ते, माता, पिता, अपि, पटह, हे दुर्मुख । करटकभ्राता, त्वम्, अपि, सेनापति, जात ॥ २३॥

पदार्थ—विशुद्धा = बडी पवित्र है, भेरी = दुन्दुभि, पटह् =तासा, हे दुर्मुख ! =हे कटु बोलने वाले, करटकभ्राता=करटक (चमडे से मढे हुए वाद्य विशेष) के भाई ।

अनुवाद—तुम्हारी जाति (सचमुच) विशुद्ध है, दुन्दुभि तुम्हारी माता,

पिता भी ढोल है, हे कटुभाषी ! करटक के भाई तुम (चमार होकर) भी सेनापति हो गये।

संस्कृत टीका—तव=ते, जातिः=गोत्रम्, विशुद्धा=सर्वथाशुद्धा, भेरी=वाद्यविशेष, ते=तव, माता=जननी, पिता=जनक, अपि, पटह:=ढक्का (ढोल), हे दुर्मुख ! हे कटुवादिन्, करटकभ्राता=वाद्यविशेषसहोदर, त्वम् अपि=भवान् अपि, सेनापति=बलाधिपतिः, जात=सवृत ।

समास एव व्याकरण-(१) करटकभ्राता-करटक तस्य भ्राता। (२) जाति—जन्+क्तिन्। (३) विशुद्धा-वि+शुध्+क्त+टाप्। जात-जन्+क्त।

विवृति

(१) प्रस्तुत कथन व्यग्यपूर्ण है। भाव यह है कि सर्वदा चमड़े से ही स्नेह करता है। तेरी सूरत से भी घृणा होने लगती है, जरा अपना मुख शीशे म तो देख ! मुझे बड़ा आश्चर्य है कि तुझ जैसा 'चर्मकार' भी सेनापति हो गया ! (२) प्रस्तुत पद्य मे प्रयुक्त विशेषणो के द्वारा वीरक ने चन्दनक की चर्मकार जाति प्रकट की है। (३) श्लोक म प्रयुक्त छन्द का नाम है—गाथा

चन्दनक—(सक्रोधम् ।) अह चन्दनकश्चर्मकार, तत्प्रलोकय प्रवहणम्। [अह चन्दणओ, चम्मारओ, ता पलोएहि पवहणम् ।]

चन्दनक-[क्रोधपूर्वक] मैं चन्दनक चमार हूँ तो देख ले गाडी को।

वीरक—अरे प्रवहणवाहक, परिवर्तय प्रवहणम्। प्रलोकयिष्यामि। [अरे, पवहणवाहआ, पडिवत्तावेहि पवहणम्। पलोइस्सम्।]

वीरक-अरे गाडीवान ! गाडी को घुमाओ, (मैं) देखूँगा।

(चेटस्तथा करोति। वीरक प्रवहणमारोढुमिच्छति। चन्दनक सहसा केशेपु गृहीत्वा पातयति, पादेन ताडयति च ।)

[चेट वैसा करता है, वीरक गाडी पर चढना चाहता है, चन्दनक अचानक बाल पकडकर गिरा देता है और पैर से पीटता है।]

वीरक—(सक्रोधमुत्थाय ।) अरे, अहत्वया विश्वस्तो राजाज्ञप्ति कुर्वन्सहसा केशेपु गृहीत्वा पादेन ताडित। तच्छृणु रे, अधिकरणमध्ये यदि ते चतुरङ्ग न कल्पयामि, तदा न भवामि वीरक। [अरे, अह तुए वसत्थो राआण्णत्ति करेन्तो सहसा केसेसु गण्हिअ पादेन ताडिदो। ता सुणु रे, अहिअरणमज्झे जइ दे चउरङ्ग ण कप्पावमि, तदो ण होमि वीरओ।]

वीरक-[क्रोधपूर्वक उठकर] अरे ! राजा की आज्ञा का पालन करते हुए मुझ विश्वसनीय (कर्मचारी) को तुमने एकाएक बाल पकडकर पैर से पीटा है। तो सुन रे ! न्यायालय मे यदि तुझे चतुरङ्ग दण्ड न दिलवाऊँ तो मैं वीरक नही।

चन्दनक—अरे, राजकुलमधिकरण वा व्रज। किं त्वया शुनकसदृशेन। [अरे,

राअउल अहिअरण वा वच्च । किं तुए सुणअसरिसेण ।]

चन्दनक—अरे राजदरबार मे या न्यायालय मे जा । कुत्ते के समान तुझसे क्या ?

वीरक—तथा । (इति निष्क्रान्तः ।)

वीरक—अच्छा । [बाहर निकल जाता है]

चन्दनक—(दिशोऽवलोक्य ।) गच्छ रे प्रवहणवाहक, गच्छ । यदि कोऽपि पृच्छति तदा भण—'चन्दनक वीरकाभ्यामवलोकितं प्रवहणं व्रजति' । आर्ये वसन्तसेने, इदं चाभिज्ञानं ते ददामि । (इति खड्गं प्रयच्छति ।) [गच्छ रे पवहणवाहआ गच्छ । जइ को वि पुच्छेदि तदो भणेसि—'चन्दणअवीरएहिं अवलोइदं पवहणं वच्चइ । अज्जे वसन्तसेणे, इमं च अहिण्णाणं दे देमि ।]

चन्दनक—[चारो ओर देखकर] जाओ रे गाडीवान ! जाओ ! यदि कोई पूछे तो कह देना (कि)—'चन्दनक और वीरक द्वारा देखी गयी गाडी जा रही है।' आर्या वसन्तसेना ! यह निशानी तुम्हे देता हूँ । [तलवार दे देता है]

(१) सक्रोधम्=क्रोधपूर्वक । (२) परिवर्तय=घुमाओ । (३) राजाज्ञप्तिम्=राजा के आदेश को । (४) कुर्वन्=करते हुए । (५) केशेषु गृहीत्वा=बालों को पकड़कर । (६) अधिकरणमध्ये=न्यायालय मे । (७) चतुरङ्ग=चौरङ्ग-दण्ड । (i) मस्तकमुण्डन (ii) बेंत से मारना । (iii) धन लेना । (iv) बहिष्कार । (८) कुछ टीकाकारों ने चतुरङ्ग का अर्थ दो हाथ दो पैर किया है । (९) कल्पयामि=कर दूँगा । (१०) शुनकशब्दसेन-कुत्ते जैसा । (११) अभिज्ञानम्-पहिचान का चिह्न ।

आर्यक—(खड्गं गृहीत्वा सहर्षमात्मगतम् ।)

आर्यक—[तलवार लेकर, प्रसन्नतापूर्वक अपने आप]

अये शस्त्रं मया प्राप्तं स्पन्दते दक्षिणो भुजः ।
अनुकूलं च सकलं हन्त संरक्षितो ह्यहम् ॥२४॥

अन्वय—अये, मया, शस्त्रम्, प्राप्तम्, दक्षिण, भुजः, स्पन्दते, सकलम्, अनुकूलम्, हन्त ! अहम्, हि, संरक्षितः ॥२४॥

पदार्थ—स्पन्दते भुजः=बाँह फड़क रही है हन्त=यहाँ हर्षसूचक अव्यय है।

अनुवाद—अहो मैंने शस्त्र प्राप्त कर लिया, (मेरी) दाहिनी भुजा फड़क रही है । (अतः) सब कुछ अनुकूल है, वाह ! मैं बाल-बाल बच गया ।

संस्कृत टीका—अये -हर्षे सूचकमव्ययमिदमत्र, मया=आर्यकेण, शस्त्रम्=आयुधम्, प्राप्तम्—उपलब्धम्, दक्षिणः—वामेतर, भुजः=बाहुः, स्पन्दते=स्फुरति, सकलम् -निखिलम्, अनुकूलम्,=अभिमतम् मत्कार्यसिद्धिप्रदः, हन्त—इति हर्षे, अहम्=आर्यकः हि निश्चयेन, संरक्षितः=सम्यक् रक्षितः ।

समास एव व्याकरण-(१) प्राप्ताम्-प्र+आप्+क्त । स्पन्दते-स्पन्द्+लट् । सरक्षित-सम्+रक्ष्+क्त ।

विवृति

(१) पुरुष की दाहिनी भुजा का फड़कना शुभसूचक है । (२) 'हन्त हर्षे-ऽनुकम्पायाम्' इत्यमर । (३) भावी कल्याण के प्रति अनेक कारणो का कथन करने से समुच्चय अलङ्कार है । (४) कुछ टीकाकारो के अनुसार समाधिनामक अलङ्कार है । लक्षण-"समाधिः सुकरे कार्ये दैवाद्वस्त्वन्तरागमात् ।" (५) श्लोक म प्रयुक्त छन्द का नाम है—पथ्यावक्त्र । लक्षण- 'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।'

चन्दनक —आर्ये, [अज्जए,]

चन्दनक—आर्ये

अत्र मया विज्ञप्ता प्रत्ययिता चन्दनमपि स्मरसि ।
न भणाम्येष लुब्ध स्नेहस्य रसेन ब्रूम ॥२५॥
[एत्थ मए विण्णविदा पच्चइदा चदण पि सुमरेसि
ण भणामि एस लुद्धो णेहस्स रसेण बोल्लामो ॥२५॥]

अन्वय — अत्र, मया, विज्ञप्ता, प्रत्ययिता, (त्वम्), चन्दनम, अपि, स्मरसि, एष, लुब्ध सन्, न, भणामि, (किन्तु) स्नेहस्य, रसेन, ब्रूम ॥२५॥

पदार्थ —अत्र=इस विपत्ति के समय म, विज्ञप्ता=निवेदित या सूचित या परिचित, प्रत्ययिता=जिस मैने रक्षा का विश्वास दिलाया है अथवा जिसके विषय मे सिद्ध का वचन सत्य हो गया है, लुब्ध=लोभ से ग्रस्त, स्नेहस्य रसन=स्नेह के रस या भाव क कारण ।

अनुवाद — यहाँ मेरे द्वारा निवेदित (आप) विश्वस्त होकर चन्दनक का भी स्मरण रखना । मै यह लोभवश नही कहता, अपितु स्नेह-भाव के कारण कर रहा हूँ ।

संस्कृत टीका—अत्र=अस्मिन् विपत्तिकाले, मया=चन्दनकेन, विज्ञप्ता=सूचिता, परिचिता वा, प्रत्ययिता=सञ्जातप्रत्यया, (त्वम्) चन्दनम्=माम्, अपि, स्मरसि=स्मरिष्यसि, एष=अहम् लुब्ध=धनादिलोभ युक्त, (सन्) न भणामि=न कथयामि, (किन्तु) स्नेहस्य=प्रेम्ण, रसेन=भावेन, ब्रूम=कथयाम ।

समास एव व्याकरण-(१) प्रत्ययिता—प्रत्यय सञ्जात अस्या इति । (२) विज्ञप्ता—वि+ज्ञप्+क्त+टाप् । प्रत्ययिता—प्रत्यय+इतच्+टाप् । लुब्ध=लुभ्+क्त ।

विवृति

(१) स्नेहस्य रसेन—तात्पर्य यह है कि राजा होने पर आपस मुझे बड़ा पद

पाना है, इस लोभ से मैं नहीं कह रहा हूँ। मैं केवल प्रेमवश ऐसा कह रहा हूं। (२) प्रस्तुत पद्य मे प्रयुक्त छन्द का नाम है–गाथा।

आर्यक —

आर्यक—

चन्दनश्चन्द्रशीलाढयो दैवादद्य सुहृन्मम ।
चन्दन भोः स्मरिष्यामि सिद्धादेशस्तथा यदि ॥२६॥

अन्वय—चन्द्रशीलाढय चन्दन, दैवात्, अद्य, मम, सुहृत्, (जात), भो (मित्र!), यदि, सिद्धादेश, तथा (तदा), चन्दनम्, स्मरिष्यामि ॥२६॥

पदार्थ—चन्द्रशीलाढ्य = चन्द्रमा के समान (आह्लादक) स्वभाव से समृद्ध या युक्त, चन्दन = चन्दनक, दैवात् = सयोग या भाग्य से, सुहृत् = मित्र, सिद्धादेश = सिद्ध की भविष्यवाणी, स्मरिष्यामि = याद करूँगा। अर्थात् यदि मै राजा हो गया तो तुम्हारा अधिक ध्यान रखूंगा।

अनुवादः—चन्द्रमा के समान (शीतल) स्वभाव वाला चन्दनक सौभाग्यवश आज मेरा मित्र है। हे (मित्र), यदि सिद्ध की वाणी वैसी (सत्य) हुई तो चन्दनक का स्मरण रक्खूंगा।

संस्कृत टीकाः—चन्द्रशीलाढयः = हिमांशुवत् शीतलस्वभावयुक्तः, चन्दन = चन्दनक, दैवात् = सौभाग्यात्, अद्य = अस्मिन् दिने, मम = आर्यकस्य, सुहृत् = मित्रम्, (जात) भोः = हे (मित्र), यदि = चेत्, सिद्धादेश = सिद्धकथनम्, तथा = सत्यम्, (तदा) चन्दनम् = त्वामित्यर्थ, स्मरिष्यामि = स्मरणम् करिष्यामि।

समास एवं व्याकरण–(१) सिद्ध–सिध् + क्त। आदेश—आ + दिश् + घञ्। स्मरिष्यामि–स्मृ + लृट्। आढच—आ + ध्यै + क।

विवृति

(१) 'शील' स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमर। (२) प्रस्तुत पद्य म उपमालङ्कार है। (३) पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण–'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम्।'

चन्दनक —

चन्दनक–

अभय तव ददातु हरो विष्णुर्ब्रह्मा रविश्च चन्द्रश्च ।
हत्वा शत्रुपक्ष शुम्भनिशुम्भौ यथा देवी ॥२७॥
[अभअ तुह देट हरो विण्हू वम्हा रवो अ चदो अ ।
हत्तूण सत्तुवक्ख सु भणिसु भे जधा देवी ॥२७॥]

अन्वय–यहर, विष्णु, ब्रह्मा, रवि, चन्द्र च, तव अभयम्, ददातु, शत्रुपक्षम्, हत्वा, (तथैव, यशो लभस्व), यथा, शुम्भनिशुम्भौ (हत्वा), देवी (प्राप्तवती) ॥२७॥

पदार्थ.—हर=शङ्कर, विष्णु=हरि, ब्रह्मा=सृष्टिकर्ता, शत्रुपक्षम्=शत्रु के दल को, शुम्भनिशुम्भौ=शुम्भ एव निशुम्भ को।

अनुवाद–शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य और चन्द्रमा तुम्हें अभय प्रदान करें। शत्रु-पक्ष को मारकर उसी प्रकार (यश प्राप्त करो) जिस प्रकार शुम्भ-निशुम्भ को मारकर दुर्गादेवी ने (प्राप्त किया था)॥

संस्कृत टीका—हर=शङ्कर, विष्णु=हरि:, ब्रह्मा=पद्मयोनि, रवि= दिनकर, चन्द्र=निशाकरश्च, तव=आर्यस्य, अभयम्=अभीतिम्, ददातु= प्रयच्छतु, शत्रुपक्षम्=रिपुकुलम्, हत्वा=विनाश्य (तथैव यशो लभस्व), यथा=येन प्रकारेण, शुम्भनिशुम्भौ=शुम्भनिशुम्भाख्यदैत्यौ, (हत्वा) देवी=चण्डिका (अलभत)॥

समास एवं व्याकरण–(१) शुम्भ–शुम्भ्+अच्। निशुम्भ–नि+शुम्भ्+ घञ्। ददातु–दा+लोट। हत्वा–हन्+क्त्वा।

विवृति

(१) निष्क्रमत —निकलते हुए । (२) प्रियवयस्य –प्रियमित्र । (३) पृष्ठ एव–पीछे ही । (४) अनुलग्न —लगा हुआ । (५) प्रधान दण्डधारक —प्रधान रक्षाधिकारी । (६) राज प्रत्ययकार —राजा का विश्वास पात्र । राज प्रत्यय, तम् करोति इति । राजप्रत्यय+कृ+अण् । (७) विरोधित —विरुद्ध कर लिया । वि+रुध्+णिच्+क्त ।

सप्तमोऽङ्कः

(तत प्रविशति चारुदत्तो विदूषकश्च ।)

(इसके पश्चात् चारुदत्त और विदूषक प्रवेश करते हैं ।)

विदूषक —भो पश्य पश्य पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यानस्य सश्रीकताम् । [भो, पेक्ख, पेक्ख पुप्फकरण्डअजिण्णुज्जाणस्स सस्सिरीअदाम् ।]

विदूषक–अहा देखिए, देखिए पुष्पकरण्डक प्राचीन उपवन की सुन्दरता ।

चारुदत्त —वयस्य, एवमेतत् । तथाहि ।

चारुदत्त—मित्र, ऐसा ही है । क्योंकि–

वणिज इव भान्ति तरव पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि ।
शुल्कमिव साधयन्तो मधुकरपुरुषा प्रविचरन्ति ॥१॥

अन्वय –तरवः वणिज इव भान्ति, कुसुमानि पण्यानि इव स्थितानि, मधुकर पुरुषा शुल्कम् साधयन्त इव विचरन्ति ।

पदार्थः–तरव =वृक्ष, वणिज =बनियों, भान्ति=शोभित हो रहे हैं, कुसुमानि=फूल, पण्यानि=बेची जाने वाली वस्तु, साधयन्त =लेते हुए, मधुकर पुरुषा =पुरुषों की भाँति भ्रमर, विचरन्ति=भ्रमण करते हैं ।

अनुवाद –वृक्ष वैश्यों की भाँति शोभित हो रहे हैं, पुष्प विक्रेय वस्तु तुल्य स्थित हैं, मनुष्यों की भाँति भ्रमर कर लेते हुए इधर उधर भ्रमण कर रहे हैं।

संस्कृत टीका–तरव =पादपा , वणिज =विक्रेतार , इव भान्ति=विराजन्ते, कुसुमानि=प्रसूनानि, पण्यानि इव=विक्रयवस्तूनि इव, स्थितानि=वर्तन्ते, मधुकर पुरुषा =भ्रमरशुल्कग्राहिण , (राज पुरुषा) शुल्कम्=करम्, साधयन्त =गृह्णन्त , इव प्रविचरन्ति=इतस्तत भ्रमन्ति ।

समास एवं व्याकरण–मधुकर पुरुषा इव इति । भान्ति–भा+लट् । स्थितानि–स्था+क्त । साधयन्त –साध् +णिच्+लट्+शतृ । प्रविचरन्ति–प्र+वि+चर्+लट् ।

विवृति

(१, प्रस्तुत पद्य म चार उपमायें हैं । (२) आर्या छन्द है । (३) 'घट्टादिदेय शुल्काऽस्त्री' इत्यमर ।

विदूषक – भो , इदमसस्काररमणीय शिलातलमुपविशतु भवान् । [भो, इम असक्काररमणीअ सिलाअल उवविसदु भवम ।]

विदूषक–मित्र ! बिना सस्कार के भी सुन्दर इस शिला खण्ड पर आप बैठ जाइये ।

चारुदत्त – (उपविश्य ।) वयस्य, चिरयति वर्धमानक ।

चारुदत्त–(बैठकर) मित्र ! वर्धमानक देर कर रहा है ।

विदूषक —भणितो मया वर्धमानक –'वस तसेना गृहीत्वा लघु लघ्वागच्छ' इति । [भणिदो मए वड्ढमाणअ–'वसन्तसेणिअ गेण्हिअ लहु लहु आअच्छ' त्ति ।]

विदूषक–मैने वर्धमानक से कहा था—'वसन्तसेना को लकर शीघ्र से शीघ्र लौटो ।'

विवृत्ति

(१) असस्काररमणीयम्–बिना घाये झाडे भी सुन्दर । सस्कारेण रमणीयम् सस्काररमणीयम्, न सस्कार रमणीयमिति । (२) चिरयति–देर कर रहा है। (३) लघु-शीघ्र ।

चारुदत्त –तत्किं चिरयति ।

चारुदत्त–तब क्यो विलम्ब करता है ।

किं यात्यस्य पुर शनै प्रवहण तस्यान्तर मार्गते
भग्नेऽक्षे परिवर्तन प्रकुरुते छिन्नोऽथ वा प्रग्रह ।
वर्त्मान्तोज्झितदारुवारितगतिर्मार्गान्तर याचते
स्वैर प्रेरितगोयुग किमथवा स्वच्छन्दमागच्छति ॥२॥

अन्वय —किम, अस्य, पुर , प्रवहणम्, शनै , याति, तस्य, अन्तरम्, मार्गते ? अक्षे, भग्ने, परिवर्तनम्, कुरुते ? अथवा, प्रग्रह , छिन्न ? (अथवा) 'वर्त्मान्ताज्झित दारुवारितगति (सन्), मार्गान्तरम्, याचते ? अथवा, स्वैरम्, प्रेरितगोयुग , स्वच्छन्दम् आगच्छति, किम् ? ॥२॥

शब्दार्थ —किम्=क्या, पुर =आगे, प्रवहणम्=गाडी, शनै =धीरे, अन्तरम्=अवकाश को, मार्गते=ढूंढ रहा है, अक्षे=धुरा के, भग्ने=टूट जाने पर, प्रग्रह =रस्सी, छिन्न =टूट गयी, वर्त्मान्तोज्झितदारुवारितगति =मार्ग के मध्य म छोड़े गये काठ से जिसकी गति रुक गई है, मार्गान्तरम्=दूसरे रास्ते को, याचते= ढूंढ रहा है, स्वैरम्=धीरे धीरे, प्रेरितगोयुग =बैलो को हांकने वाला, स्वच्छ दम्= मनमाने, आगच्छति=आ रहा है ।

अनुवाद—क्या इसके आगे (को.) वाहन धीरे-धीरे जा रहा है ? (और वह)

उसके आगे निकलने का स्थान अन्वेषित कर रहा है ? (अथवा) धुरी के टूट जाने से उसे बदल रहा है ? अथवा रस्सी टूट गयी है ? अथवा मार्ग में काट कर डाली गई लकड़ी से मार्ग अवरुद्ध हो जाने के कारण दूसरे मार्ग का अन्वेषण कर रहा है ? अथवा धीरे-धीरे बैलों को हाँकता हुआ (वह) स्वेच्छा से आ रहा है क्या ?

संस्कृत टीका—किम्, अस्य =वर्धमानकस्य, पुरः=अग्रे, प्रवहणम्=अपरम् शकटम्, शनैः=मन्दम् मन्दम् याति=गच्छति तस्य=अग्रेगच्छत प्रवहणस्य, अन्तरम्=निःसरणावकाशम्, मार्गति=अवलोकयति, अन्विष्यति, अक्षे=चक्रसयोजके, भग्ने=त्रुटिते, परिवर्तनम्=अन्यचक्रधारक नियोजनम्, कुरुते =विधत्ते, अथवा= वा, प्रग्रह = रज्जु, छिन्न =भग्न, अथवा=वा, वर्त्मान्तोज्झितदारुवारितगति = मार्गमध्यभागे परित्यक्तै काष्ठविशालैः अवरुद्धगमन सन्, मार्गान्तरम्=अपरम् पन्थानम्, याचते=अन्विष्यति, अथवा, स्वैरम्=शनैः शनैः, प्रेरितगोयुग =सञ्चालितवृषभद्वयम्, स्वच्छन्दम्=स्वेच्छापूर्वकम, आगच्छति=आयाति, किम् ।

समास व्याकरण—(१) वर्त्म०-वर्त्मन अन्ते उज्झितम् यत् दारु तेन वारिता गति यस्य तादृश. । (२) प्रेरित०-प्रेरितम् गोयुगम् यन तादृश । (३) भग्ने - भञ्ज+क्त । छिन्न -छिद्+क्त । याति-या+लट् । मार्गते-मार्ग+लट् । परिवर्तनम्-परि+वृत्+ल्युट् । प्रग्रह -प्र+ग्रह्+अप् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे कर्मान्तोज्झित पाठ भेद भी प्राप्त होता है । (२) श्लोक मे सन्देह नामक अलङ्कार है । (३) शार्दूलविक्रीडित छन्द है । लक्षण है-'सूर्याश्वैर्य दि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम् ।'

(प्रविश्य गुप्तार्यकप्रवहणस्थ ।)

(छिपे हुए आर्यक की गाड़ी पर बैठे हुए प्रवेश करके ।)

चेट—यात गावौ, यातम् । [जाध गोणा, जाध ।]

चेट—चलो बैलो चलो ।

आर्यक —(स्वगतम् ।)

आर्यक—(मन में)

नरपति पुरुषाणा दर्शनाद्भीतभीतः
सनिगडचरणत्वात्सावशेषापसारः ।
अविदितमधिरूढो यामि साधोस्तु याने
परभृत इव नीडे रक्षितो वायसीभिः ॥३॥

अन्वय —नरपतिपुरुषाणाम्, दर्शनात्, भीतभीत., सनिगडचरणत्वात्, साव-

शेष पसार, (अहम्) वायसीभि., नीडे, रक्षितः, परभृतः, इव, साधो . याने, अविदितम्, (तु), अधिरूढः, (सन्), यामि ॥३॥

शब्दार्थ–नरपतिपुरुषाणाम् = राज पुरुषों के, दर्शनात् = देखने से, भीतभीतः = डरा हुआ, सनिगडचरणत्वात् = बेड़ी युक्त पैर होने के कारण, सावशेषापसार = पूर्णरूप से भाग निकलने में असमर्थ, वायसीभिः = कौओं की स्त्रियों से, नीडे = घोंसले में, रक्षितः = पाले गए, परभृत = कोयल, साधोः = सज्जन के, याने = वाहन पर, अविदितम् = छिपे रूप से, अधिरूढः = चढ़ा हुआ, यामि = जा रहा हूँ।

अनुवाद–राजपुरुषों के देखने से अत्यन्त डरा हुआ, एवं बेड़ियों से पैर जकड़े रहने के कारण पूर्णतया भागने में असमर्थ, (मैं) मादा कौवों द्वारा घोंसले में पाले गये कोयल के सदृश सज्जन (चारुदत्त) के वाहन पर गुप्त रूप से चढ़ कर जा रहा हूँ।

संस्कृत टीका–नरपति पुरुषाणाम् = राजरक्षिणाम्, दर्शनात् = दृष्टिगोचरत्वात्, भीतभीतः = अतित्रस्त., सनिगडचरणत्वात् = सशृंखलपादत्वात्, सावशेषापसारः = अल्पावशिष्टगमन शक्तिः, वायसीभि. = काकीभि., नीडे = कुलाये, रक्षित. = पालितः, परभृत. = कोकिलशावकः, इव, साधो = सज्जनस्य, याने = शकटे, अविदितम् = अज्ञातम् यथा स्यात् तथा, अधिरूढ. = अधिष्ठित., यामि—व्रजामि।

समास व्याकरण—नरपति० नरपतेः पुरुषाणाम् इति। सनिगड०–निगडेन सहितः सनिगड. चरणः यस्य तस्य भावः तत्त्वम् तस्मात्। सावशेष०–सावशेष. अपसारः यस्य स. तथोक्त.। परभृतः—परेण भृत. इति। भीतभीत–अतिशयने द्विउक्तिः। भी + क्त। अविदितम्–नञ् + विद् + क्त। क्रिया विशेषण है। अपसार – अप + सृ + घञ्। परभृत्–पर् + भृ + क्विप्। अधिरूढः–अधि + रुह् + क्त।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में श्रौती उपमा अलंकार है। (२) मालिनी वृत्त है। 'नन मयय युतेयम् मालिनी भोगिलोकैः।' (३) कुलायो नीडमस्त्रियाम् इत्यमरः।

अहो, नगरारमुदूरमपक्रान्तोऽस्मि। तत्किमस्मात्प्रवहणादवतीर्य वृक्षवाटिकागहनं प्रविशामि। उताहो प्रवहणस्वामिनं पश्यामि। अथ वा कृतं वृक्षवाटिकागहनेन। अभ्युपपन्नवत्सलः खलु तत्रभवानार्यचारुदत्तः श्रूयते। तत्प्रत्यक्षीकृत्य गच्छामि।

अहो, नगर से बहुत दूर निकल आया हूँ, तो क्या इस गाड़ी से उतर कर वृक्षों के बगीचे की गुफा में घुस जाऊँ? अथवा वाहन के स्वामी का दर्शन करूँ? अथवा उद्यान के घने स्थान में नहीं जाऊँगा। सुना जाता है कि माननीय चारुदत्त शरणागत पर दया करने वाले हैं इसलिए (उनके) दर्शन करके जाऊँगा।

विवृति

(१) सुदूरम्—बहुत दूर। (२) अपक्रान्त –निकल आया। अप+क्रम्+क्त। (३) वृक्ष०-पेड़ों के बगीचे की गुफा मे।(४) उताहो–अथवा। (५) प्रवहणस्वामिनम्–गाड़ी के मालिक को। (६) कृतम्–व्यर्थ। (७) अभ्यु०–शरणागत पर दया करने वाले। (८) प्रत्यक्षीकृत्य—दर्शन करके। (९) वृक्ष वाटिका शब्द में वृक्ष शब्द अनावश्यक है।

स तावदस्माद्व्यसनार्णवोत्थित निरीक्ष्य साधुः समुपैति निर्वृतिम्।
शरीरमेतद्गतमीदृशीं दशा धृत मया तस्य महात्मनो गुणैः ॥४॥

अन्वय—तावत्, सः, साधु, अस्मात् व्यसनार्णवोत्थितम्, (माम्), निरीक्ष्य, निर्वृतिम्, समुपैति, ईदृशीम्, दशाम्, गतम्, एतत्, शरीरम्, मया, तस्य, महात्मनः, गुणैः, धृतम् ॥४॥

शब्दार्थ – व्यसनार्णवोत्थितम्=विपत्ति रूपी सागर से उबरे हुए, निरीक्ष्य=देखकर, निर्वृतिम्=सुख को, समुपैति=प्राप्त होंगे, ईदृशीम्=ऐसी, धृतम्=धारण किया गया।

अनुवाद—वे सज्जन इस विपत्ति सागर से उत्तीर्ण हुआ (मुझे) देखकर आनन्द को प्राप्त होंगे। ऐसी अवस्था को प्राप्त हुआ यह शरीर मैंने उस महात्मा के गुणों से ही धारण किया है।

संस्कृत टीका—तावत्, सः=चारुदत्ताख्यः, साधु =सज्जन, अस्मात्, व्यसनार्णवोत्थितम्=विपत्ति समुद्रोत्तीर्णम्, निरीक्ष्य=विलोक्य, निर्वृतिम्=आनन्दम्, समुपैति=समवाप्स्यति, ईदृशीम्=अनुभूयमानाम्, दशाम्=अवस्थाम्, गतम्=प्राप्तम, एतत्,=इदम्, शरीरम्=देह, मया=आर्यकेण, तस्य=प्रसिद्धस्य, महात्मनः=सज्जनस्य, गुणै =परोपकारादिभि, धृतम्=त्रातम्।

समास एवं व्याकरण—व्यसना०–व्यसनम् अर्णवः इव, तस्मात् उत्थितम् इति। उत्थितम् =उद्+स्था+क्त। निरीक्ष्य–निर्+ईक्ष्+क्त्वा (ल्यप्)। निर्वृतिम्=निर्+वृ+क्तिन्। समुपैति–सम्+उप्+इ+लट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में 'माम्' को न कहने से न्यूनपदता दोष की शंका की जाती है। (२) अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। (३) वंशस्थ छन्द है। जतौ तु वंशस्थमुदीरितम् जरौ।

चेट—इदं तदुद्यानम्। यावदुपसर्पामि। (उपसृत्य।) आर्यमैत्रेय। [इमं उज्जाणम्। जाव उवसप्पामि। अज्जमित्तेअ।]

चेट—यह वह उपवन है । वही चलता हूँ । (समीप जाकर) आर्य मैत्रेय !

विदूषकः—भो., प्रियं ते निवेदयामि । वर्धमानको मन्त्रयति । आगतया वसन्तसेनया भवितव्यम् । [भो, पिअ दे णिवेदेमि । वड्ढमाणओ मन्तेदि । आगदाए वसन्तसेणाए होदव्वम् ।]

विदूषक—मित्र, मैं तुमको शुभ समाचार सुनाता हूँ । वर्धमानक पुकार रहा है । वसन्तसेना आ गई होगी ।

चारुदत्तः—प्रिय नः प्रियम् ।

चारुदत्त—प्रिय है, हमारा प्रिय है ।

विदूषक.—दास्याः पुत्र, किं चिरायितोऽसि । [दासीए पुत्ता, किं चिरइदोसि ।]

विदूषक—दासी के बेटे ! (तुमने) देर क्यों लगाई ?

चेटः—आर्यमैत्रेय, मा कुप्य । यानास्तरण विस्मृतमिति कृत्वा गतागतिं कुर्वश्चिरायितोऽस्मि । [अज्जमित्तेअ, मा कुप्प । जाणत्थलके विशुमलिदे त्ति कदुअ गदागदिं कलेन्ते चिलइदेह्मि ।].

चेट—आर्य मैत्रेय ! क्रोध मत करिये । गाड़ी का आच्छादन वस्त्र भूल गया था इसलिए पुनः आवागमन करते हुए देर हो गई ।

चारुदत्त.—वर्धमानक, परिवर्तय प्रवहणम् । सखे मैत्रेय, अवतारय वसन्तसेनाम् ।

चारुदत्तः—वर्धमानक ! गाड़ी को घुमाओ । मित्र मैत्रेय ! वसन्तसेना को उतारो ।

विदूषक.—किं निगडेन, बद्धावस्याः पादौ, येन स्वय नावतरति । (उत्थाय प्रवहणमुद्घाट्य ।) भोः, न वसन्तसेना, वसन्तसेनः खल्वेषः । [किं णिअडेण बद्धा । से गोड्डा, जेण सअ ण ओदरेदि । भो, ण वसन्तसेणा, वसन्तसेणो क्खु एसो ।]

विदूषक—क्या बेड़ी से बँधे हुए हैं इनके पैर ? जिमसे स्वय नही उतरती हैं । (उठकर, गाड़ी को उघाडकर) अरे वसन्तसेना नही, यह तो वसन्तसेन है ।

चारुदत्तः—वयस्य, अल परिहासेन । न कालमपेक्षते स्नेहः । अथ वा स्वमेवावतारयामि । (इत्युत्तिष्ठति ।)

चारुदत्त—मित्र ! परिहास रहने दो । अनुराग समय (विलम्ब) नहीं चाहता अथवा मैं स्वय उतारता हूँ । (यह कहकर उठता है) ।

आर्यकः—(दृष्ट्वा ।) अये अयमेव प्रवहणस्वामी । न केवल श्रुतिरमणीय दृष्टिरमणीयोऽपि । हन्त, रक्षितोऽस्मि ।

आर्यक—(देखकर) अरे ! यही गाड़ी के स्वामी हैं । केवल सुनने ही मे मनोरम नही हैं देखने मे भी सुन्दर हैं । अहा ! मैं सुरक्षित हूँ ।

विवृति

(१) प्रियम्–शुभ समाचार। (२) मन्त्रयति बोल रहा है। (३) दास्या–दासी के। (४) चिरायित–देर किया। चिरम् करोतिःइस अर्थ मे चिर्+क्यङ् (नाम धातु)+क्त। (५) कुप्य क्रोध करो। (६) इतिकृत्वा—इसलिए। (७) यानास्तरणम—गाडी का आच्छादन। (८) गतागतम्–जाना आना। (९) परिवर्तय घुमाओ। (१०) निगडेन—बेडी से। (११) नापेक्षते–नही चाहता। (१२) श्रुति रमणीय—सुनने मे सुन्दर (१३) रक्षित—बच गया।

चारदत्त — (प्रवहणमधिरुह्य दृष्ट्वा च।) अये, तत्कोऽयम्।

चारुदत्त—(गाडी पर चढकर और देखकर) अरे! तब यह कौन है?

करिकरसमबाहु सिंहपीनोन्नतास
पृथुतरसमवक्षास्ताम्रलोलायताक्ष।
कथमिदमसमान प्राप्त एवविधो यो
वहति निगडमेक पादलग्न महात्मा ॥५॥

अन्वय—करिकरसमबाहु, सिंहपीनोन्नतास, पृथुतरसमवक्षा, ताम्रलोलायताक्ष, य, एव विध, महात्मा, (अस्ति स) कथम्, इदम्, असमानम्, (बन्धनम्) प्राप्त, (सन्) पादलग्नम् एकम्, निगडम्, वहति ॥५॥

शब्दार्थ—करिकरसमबाहु =जिसकी भुजायें हाथी की सूड के समान हैं। सिंहपीनोन्नतास =सिंह के कन्धे के समान मोटे और ऊँचे कन्धो वाला। पृथुतरसम वक्षा =ऊँची एव समतल छाती वाला। ताम्रलोलायताक्ष =ताँबे के रग की चञ्चल तथा बडी बडी आँखो वाला। एव विधा=इस प्रकार। महात्मा=महापुरुष। असमानम्=अयोग्य। पादलग्नम्=पैर मे लगी हुई। निगडम्=बेडी। वहति= धारण करता है।

अनुवाद – हाथी की सूड के समान भुजा वाला, सिंह के सदृश मासल एव ऊँचे कन्धे वाला, विशाल तथा समतल वक्षस्थल वाला एव ताँबे के रग के चञ्चल तथा विशाल नेत्रो वाला—जो इस प्रकार महापुरुष है (वह) कैसे इस अनुचित अवस्था को प्राप्त कर पैर म लगी हुई एक बडी को धारण कर रहा है?

संस्कृत टीका—करिकरसमबाहु =गजशुण्डादण्डतुल्यभुज, सिंहपीनोन्नतास = मृगराजप्रपुष्टोच्छ्रित स्कन्ध, पृथुतरसमवक्षा =विशालसम्योरस्थल, ताम्रलोलायताक्ष =रक्तचपलनयन, य, एव विध =एव प्रकार, महात्मा=महापुरुष, कथम्= केन प्रकारेण, इदम्=एतत्, असमानम्=अयोग्यम्, प्राप्त =उपगत, पादलग्नम्= चरण सयुक्तम्, एकम्, निगडम्=शृखलम्, वहति=धारयति।

समास एव व्याकरण—करिकर०—करिण करण समौ बाहू यस्य स। सिंह०—

सिंहस्य इव पीनौ उन्नतौ असौ यस्यः सः । पृथु०—पृथुतरम् समम् वक्षः यस्य सः । ताम्र०—ताम्रे लोले आयते अक्षिणी यस्य स. । पादलग्नम्—पादे लग्नम् इति । प्राप्त—प्र+आप्+क्त । लग्नम्—लग्+क्त । वहति=वह्+लट् । .

विवृति

(१) इस पद्य मे उपमा अलंकार है । (२) मालिनी छन्द है । (३) प्रथम चरण मे दो लुप्तोपमा हैं । (४) 'लता विटपे एकावली लग्ना ।' मालती० । (५) विशेषणों से ज्ञात होता है कि आर्यक महापुरुषों के लक्षणो से युक्त था ।

तत. को भवान् ।

तब आप कौन हैं ?

आर्यकः—शरणागतो गोपालप्रकृतिरार्यकोऽस्मि ।

आर्यक—शरण मे आया हुआ गोप-बालक आर्यक हूँ ।

चारुदत्त.—किं घोषादानीय योऽसौ राज्ञा पालकेन बद्धः ।

चारुदत्त—क्या वही जिसे अहीरो के ग्राम से लाकर राजा पालक ने बन्धन मे डाला था ?

आर्यक —अथ किम् ।

आर्यक—और क्या ?

विवृति

(१) शरणागतः=शरण मे आया, शरणो आगतः इति । (२) गोपालप्रकृतिः अहीर-बालक 'गोपालस्य प्रकृति. अथवा गोपाल. प्रकृतिः यस्य स.'।

चारुदत्त.—

चारुदत्त—

विधिनैवोपनीतस्त्वं चक्षुर्विषयमागतः ।
अपि प्राणानहं जह्यां न तु त्वां शरणागतम् ॥६॥

अन्वय—विधिना, एव, उपनीत, त्वम्, मम), चक्षुर्विषयम्, आगतः, (असि)। अहम्, प्राणान्, अपि, जह्याम्, तु, शरणागतम्, त्वाम्, न ॥६॥

पदार्थः—विधिना=भाग्य से, एव=ही, उपनीत=लाये गये, चक्षुर्विषयम्=नेत्रो के दृश्य का, आगत=प्राप्त, प्राणान्=प्राणो को, जह्याम्=छोड़ दूँ, शरणागतम्=शरण मे आये हुए ।

अनुवाद—भाग्य के द्वारा ही लाये गये (मेरे) नयनों के विषय हुए हो । (चाहे) मैं, प्राणो का भी छोड़ दूँ, किन्तु शरण में आए हुए तुमको नही (छोड़ूँगा) ॥

संस्कृत टीका—विधिना=भाग्येन, एव, उपनीत=उपस्थापित, त्वम्=आर्यक., (मम), चक्षुर्विषयम्=नेत्रगोचरम्, आगतः=प्राप्तः, अहम्=चारुदत्त,

प्राणान्=जीवितम्, अपि, जह्याम्=त्यजेयम्, तु=किन्तु, शरणागतम्=शरणोपस्थितम्, त्वाम्=आर्यकम् न ॥

समास एवं व्याकरण- [१] चक्षुर्विषयम्— चक्षुषो विषयम् इति। शरणागतम्=शरणो आगतम् इति। [२] विधि- वि+धा+कि। उपनीत उप+नी+क्त। आगतः— आ+गम्+क्त। जह्याम् – हा+लिङ्।

विवृति

[१] पथ्यावक्त्र छन्द है। [२] व्यवसाय नामक विमर्श सन्धि का अङ्ग है। लक्षण— 'व्यवसायस्तु विरोध प्रतिज्ञाहेतु सम्भव।' सा० द० ॥

(आर्यको हर्षं नाटयति।)

[आर्यक प्रसन्नता का अभिनय करता है]

चारुदत्त — वर्धमानक, चरणान्निगडमपनय।

चारुदत्त— वधमानक ! पैर से बेडी खोल दो।

चेट — यदार्य आज्ञापयति। (तथा कृत्वा।) आर्य, अपनीतानि निगडानि।

[ज अज्जो आणवेदि। अज्ज, अवणीदाइ णिगलाइ।]

चेट— जो आर्य आज्ञा दें। [वैसा करके] आर्य ! बेड़ियाँ निकाल दी।

आर्यक – स्नेहमयान्यन्यानि दृढतराणि दत्तानि।

आर्यक- (किन्तु) दूसरी अधिक दृढ स्नेह की बेड़ियाँ दे दी।

विदूषक – सगच्छस्व निगडानि। एषोऽपि मुक्त.। साप्रत वय व्रजिष्यामः

[सगच्छेहि णिअडाइ। एसो वि मुक्को। सपद अह्मे वच्चिस्सामो।]

विदूषक— बेडियो को साथ ले लो। यह भी छूट गया। अब हम लोग चलेंगे।

चारुदत्त – धिक्शान्तम्।

चारुदत्त— धिक्, चुप रहो।

आर्यक – सखे चारुदत्त, अहमपि प्रणयेनेद प्रवहणमारूढ। तत्क्षन्तव्यम्।

आर्यक— मित्र चारुदत्त ! मैं भी प्रेम (या विश्वास) के कारण इस गाड़ी पर चढ़ गया था। सो क्षमा कर देना।

चारुदत्त – अलङ्कृतोऽस्मि स्वय ग्राहप्रणयेन भवता।

चारुदत्त— स्वय ग्रहण करने के स्नेह से (या ग्रहण करने के स्नेह वाले) आपके द्वारा मैं अलङ्कृत हो गया हूँ।

आर्यक — अभ्यनुज्ञातो भवता गन्तुमिच्छामि।

आर्यक— आपसे आज्ञा पाकर (मैं) जाना चाहता हूँ।

चारुदत्त — गम्यताम्।

चारुदत्त— जाइये।

आर्यक — भवतु अवतरामि ।

आर्यक— अच्छा उतरता हूँ ।

चारुदत्त — सखे, नावतरितव्यम् । प्रत्यग्रापनीतसयमनस्य भवतोऽलघुसंचारा गतिः । सुलभ पुरुष सचारेऽस्मिन्प्रदेशे प्रवहण विश्वासमुत्पादयति । तत् प्रवहणेनैव गम्यताम् ।

चारुदत्त— मित्र ! उतरना नही चाहिए । सद्यः बेड़ी से मुक्त किये गये आपकी चाल मन्द चरण— क्षेप वाली है । अनायास (राज) पुरुषो के गमनागमन से युक्त इस प्रदेश मे गाड़ी विश्वास उत्पन्न करती है । इसलिए गाड़ी से ही जाइये ।

विवृति

(१) अपनय=निकाल दो । (२) अपनीतानि=निकाल दी गई । (३) स्नेहमयानि=प्रेम से निर्मित । (४) दृढतराणि=अधिक शबल । (५) दत्तानि= पहना दी गई । (६) सगच्छस्व=धारण करो । (७) मुक्तः=छूट गया । (८) धिक् शान्तम्=चुप रहो । (९) स्वयग्राहप्रणयेन=स्वय ग्रहण करने के स्नेह से । (१०) अभ्यनुज्ञात.=आज्ञा पाया हुआ । (११) प्रत्यग्रापनीतसयमनस्य=तुरन्त हटाई गई बेड़ी वाला । (१२) लघुसचारा=जिसमे शीघ्रता से नही चला जा सकता है । (१३) सुलभपुरुषसचारे=जहाँ पर राज—पुरुषो का आवागमनहोता है ।

आर्यकः— यथाह भवान् ।

आर्यक— जैसा आप कहें ।

चारुदत्तः—

क्षेमेण व्रज बान्धवान्

आर्यक.—

ननु मया लब्धो भवान् बान्धवः

चारुदत्तः—

स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरेषु भवता

आर्यकः—

स्वात्मापि विस्मर्यते ? ।

चारुदत्तः—

त्वा रक्षन्तु पथि प्रयान्तममराः

आर्यकः—

सरक्षितोऽह त्वया

चारुदत्तः—

स्वैर्भाग्यैः परिरक्षितोऽसि

आर्यक —

ननु हे तत्रापि हेतुर्भवान् ॥ ७ ॥

अन्वय — क्षेमेण बान्धवान्, व्रज । ननु मया, भवान्, बान्धव, लब्ध भवता कथान्तरेषु स्मर्तव्य, अस्मि । स्वात्मा, अपि, विस्मर्यते ? । पथि, प्रयान्तम् त्वाम्, अमरा, रक्षन्तु । अहम् त्वया, संरक्षित । स्वैः, भाग्यैः, असि । ननु हे, तत्र, अपि, भवान्, हेतुः ॥ ७ ॥

पदार्थ — क्षेमेण = कुशलता के साथ, बान्धवान् = बन्धुओं या सगे सम्बन्धियों के पास, व्रज = जाओ, कथान्तरेषु = प्रसङ्गवश चलने वाली बातचीत में, स्मर्तव्य = याद किये जाने के योग्य, स्वात्मा = अपनी आत्मा, विस्मर्यते ? = क्या भुलाया जाता है ? पथि = रास्ते में, प्रयान्तम् = जाते हुये, अमरा = देवता लोग, रक्षन्तु = बचावें, अहम् = मैं (आर्यक), त्वया = तुम्हारे द्वारा, संरक्षित = बचाया गया (हूँ) स्वैः = अपने, भाग्यैः = भाग्यों के द्वारा, परिरक्षित = बचाये गये, ननु = निश्चय ही, हे = हे श्रद्धेय महानुभाव । भवान् = आप, हेतु = कारण (है) ॥

अनुवाद —

चारुदत्त — सकुशल बन्धु-बान्धवों के पास जाइये ।

आर्यक — निश्चय ही मैंने आपको (ही) बन्धु पा लिया ।

चारुदत्त — आप (कभी कभी) बात चीत में मेरा स्मरण करते रहना ।

आर्यक — क्या अपनी आत्मा भी भुलाई जाती है ?

चारुदत्त — मार्ग में जाते हुए तुम्हारी रक्षा देवगण करें ।

आर्यक — मैं आपके द्वारा संरक्षित हो गया हूँ

चारुदत्त — अपने भाग्य द्वारा रक्षित हुए हो ।

आर्यक — हे (भगवान् !) उसमें भी आप ही कारण हैं ॥

संस्कृत टीका — क्षेमेण = सकुशलम् बान्धवान् = स्वजनान्, व्रज = गच्छ, ननु = निश्चयेन मया = आर्यकेण, भवान् = चारुदत्त, बान्धव = बन्धु, लब्ध = प्राप्त भवता = त्वया, कथान्तरेषु = सामयिकवार्तासु, स्मर्तव्य = स्मरणीय, अस्मि = वर्ते, स्वात्मा अपि = स्वकीय आत्मा अपि, विस्मर्यते ? = विस्मरणीय भवति किम् ? पथि = मार्गे, प्रयान्तम् = गच्छन्तम्, त्वाम् = आर्यकम् अमरा = देवा, रक्षन्तु = रक्षाम् कुर्वन्तु अहम् = आर्यक, त्वया = चारुदत्तेन, संरक्षित = परित्रात, स्वैः = स्वकीयैः, भाग्यैः = भागधेयैः, परिरक्षित = सुरक्षित, असि = विद्यसे, ननु = निश्चयेन, हे = इति सम्बोधने, तत्रापि = भाग्यविहितरक्षणेऽपि, भवान् = त्वम्, हेतु = कारणम् ।

समास एवं व्याकरण — (१) व्रज — व्रज् + लोट् । लब्ध — लभ् + क्त । बान्धव — बन्धु + अण् । स्मर्तव्य — स्मृ + तव्यत् । अस्मि — अस् + लट् । रक्षन्तु —

या+लोट् । परिरक्षित— परि+रक्ष्+क्त । अस्ति— अस्+लट् ।

विवृति

(१) भाव यह है कि यदि आपकी गाडी मुझे न मिली होती तो मेरी रक्षा कहाँ से हो सकती थी, इसलिए भाग्य द्वारा की गई मेरी रक्षा में भी आप ही कारण हैं। (२) प्रस्तुत पद्य में विमर्श सन्धि है। साहित्य दर्पण के अनुसार सामान्य लक्षण— 'सन्धिरेकान्वये सति'। 'सन्धयो नाट्यमातर' इस नियम से नाटक में ५ सन्धियाँ निर्धारित होती हैं जैसे— मुखसन्धि, प्रतिमुखसन्धि, गर्भसन्धि, विमर्शसन्धि और उपसंहार सन्धि। विमर्शसन्धि का लक्षण— 'यत्र मुख्यफलोपाय, उद्भिन्नो गर्भतोऽधिक । शापाद्यै सान्तरायश्च, स विमर्श इति स्मृति ।" (३) प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लक्षण— "सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम् ।"

चारुदत्त — यद्युद्यते पालके महती रक्षा न वर्तते, तच्छीघ्रमपक्रामतु भवान् ।

चारुदत्त— क्योंकि पालक द्वारा (पकड़ने के लिए) उद्यत रहने पर (आपकी) सुरक्षा नहीं है, अत आप शीघ्र चले जाइए।

आर्यक— एव पुनर्दर्शनाय । (इति निष्क्रान्त ।)

आर्यक— अच्छा, फिर दर्शन के लिए (आशा करता हुआ जाता हूँ) [निकल जाता है]

चारुदत्त —

चारुदत्त— कृत्वैव मनुजपतेर्महद्व्यलीक

स्थातु हि क्षणमपि न प्रशस्तमस्मिन् ।

मैत्रेय ! क्षिप निगड पुराणकूपे

पश्येयु क्षितिपतयो हि चारदृष्ट्या ॥ ८ ॥

अन्वय — एव, मनुजपते , महत्, व्यलीकम्, कृत्वा, अस्मिन्, (उद्याने), क्षणम्, अपि, स्थातुम्, न प्रशस्तम्, हि, मैत्रेय । निगडम्, पुराणकूपे, क्षिप, हि, क्षितिपतय , चारदृष्ट्या, पश्येयु ॥ ८ ॥

पदार्थ — मनुजपते =राजा की, व्यलीकम्=पीडा या अपराध को, स्थातुम्= रुकना, प्रशस्तम्=उचित, निगडम्=बेडी को, पुराणकूपे=पुराने कुयें म, क्षिप=फेंक दो, क्षितिपयः=राजा लोग, चारदृष्ट्या=दूत रूपी नेत्र से, पश्येयु =देखेंगे ।

अनुवाद — इस प्रकार नृपति (पालक) का महान् अनिष्ट करके यहाँ क्षण भर भी ठहरना उचित नहीं, अतएव हे मैत्रेय ! बेडी को पुराने कुये मे फेंक दो, क्योंकि राजागण दूत-रूपी दृष्टि से देख लेते हैं।

संस्कृत टीका– एवम्=इत्थम्, मनुजपते=नृपते पालकस्य, महत्=अधिकम् व्यलीकम्=पीडाम्, कृत्वा=विधाय, अस्मिन् एतस्मिन् उद्याने इति शेष, क्षणमपि=किञ्चित्कालमपि, स्थातुम्=वर्तितुम्, न प्रशस्तम्=न समीचीनम्, हि=इति पादपूरणे, मैत्रेय, निगडम्=शृङ्खलम्, पुराणकूपे=प्राचीनोदपाने, क्षिप=पातय, हि=यत, क्षितिपतय=भूपतय, चारदृष्ट्या=गूढपुरुषनेत्रेण, पश्येयु=अवलोकयेयु ॥

समास एव व्याकरण– (१) चारदृष्ट्या – चर एव चार चर+अण् स्वार्थे चार एव दृष्टि (मयूरव्यसकादित्वात् रूपकरूपसमास), तया। (२) व्यलीकम् वि+अल्+कीवन्। प्रशस्तम्– प्र+शस्+क्त।

विवृति

(१) 'पीडार्थेऽपि व्यलीक स्यात्' इत्यमरः। (२) व्यलीकमप्रियम् कार्यवैलक्ष्येष्वपि पीडने' इति विश्व। (३) 'पु स्येवान्धु प्रहि कूप उदपान तु पु सि वा' इत्यमर। (४) 'यथार्हवर्ण प्रणिधिरपसर्पश्चर स्पश। चारश्च गूढपुरुषश्च आप्त प्रत्ययितस्त्रिषु' इत्यमर। (५) 'राजानश्चारचक्षुष' इति नीति। (६) यहाँ चारदृष्टिकरणक क्षितिपति कर्तृक दर्शनरूप कारण होने से पुराणकूपाधिकरणनिगडकर्मक क्षेपण रूप कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यासालङ्कार है। (७) अप्रस्तुत क्षितिपति सामान्य से प्रस्तुत पालक रूप क्षितिपति विशेष की प्रतीति होने से अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है। (८) 'चारदृष्ट्या' मे रूपकालङ्कार है। (९) इन सभी अलङ्कारो का परस्पर अङ्गाङ्गिभाव स सकर है। (१०) प्रहर्षिणी छन्द है। लक्षण "=याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम्।"

(वामाक्षिस्पन्दन सूचयित्वा।) सखे मैत्रेय, वसन्तसेना दर्शनोत्सुकोऽय जन। पश्य।

[बायीं आँख का फडकना सूचित करके] मित्र मैत्रेय। यह जन (मैं) वसन्तसेना को देखने के लिये उत्कण्ठित है। देखो—

अपश्यतोऽद्य ता कान्ता वाम स्फुरति लोचनम्।
अपकारणपरित्रस्त हृदय व्यथते मम ॥ ९॥

अन्वय – अद्य, ताम्, कान्ताम्, अपश्यत, मम, वामम्, लोचनम्, स्फुरति, अकारणपरित्रस्तम् मम्, हृदय, व्यथत ॥ ९ ॥

पदार्थ – अद्य=आज, ताम्=उस, कान्ताम्=प्रियतमा को, वामम्=बायीं लोचनम्=आँख, स्फुरति=फडक रही है, अकारणपरित्रस्तम्=बिना कारण के ही घबराया हुआ, व्यथते=पीडित हो रहा है।

अनुवाद– आज उस प्रियतमा को न देखते हुए मेरी बायीं आँख फडक रही है। अकारण ही भयभीत मेरा हृदय व्यथित हो रहा है।

संस्कृत टीका– अद्य=अस्मिन् दिने, ताम्=प्रसिद्धाम्, कान्ताम्=प्रियाम्, अपश्यतः=अनवलोकयतः, मम=चारुदत्तस्य, वामम्=दक्षिणेतरम्, लोचनम्=नेत्रम् स्फुरति=स्पन्दते, अकारण परित्रस्तम्=निष्कारणभयनीतम्, मम, हृदयम्=चेतः, व्यथते=पीडितम् भवति ।

समास एवं व्याकरण– (१) अकारणपरित्रस्तम्=अकारणम् परित्रस्तम् इति । (२) स्फुरति– स्फुर्+लट् । व्यथते— व्यथ्+लट् ।

विवृति

(१) 'वामाक्षिस्पन्दनमर्थनाश बन्धुवियोगं वा' इस गर्गवचन से पुरुष की बायीं आंख का फड़कना धननाश या बन्धुवियोग का सूचक माना गया है । यहाँ वसन्तसेना रूप बन्धु का वियोग ही प्रकट होता है । भट्टाचार्यः । [२] प्रस्तुत पद्य में कारण के अभाव में भी परत्रास और व्यथारूप कार्य की उत्पत्ति होने से विभावना अलङ्कार है । लक्षण— "विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिः ।"

तदेहि । गच्छावः । [परिक्रम्य ।] कथमभिमुखमनाभ्युदयिक श्रमणकदर्शनम् । [विचार्य ।] प्रविशत्वयमनेन पथा । वयमप्यनेनैव पथा गच्छामः । [इति निष्क्रान्तः ।]

तो आओ, जाते हैं । [घूमकर] कैसे सामने ही अमङ्गलकारी बौद्धभिक्षु का दर्शन हो गया ? [विचार कर] यह इस मार्ग से प्रवेश करें । हम भी इस [दूसरे] मार्ग से जाते हैं । [निकल जाता है]

विवृति

[१] अनाभ्युदयिकम्=अमङ्गलकारी, अभ्युदयम् अर्हतीति आभ्युदयिकम् न आभ्युदयिकम् अनाभ्युदयिकम्, अभ्युदय+ठञ् । [२] श्रमणक दर्शनम्=बौद्धसन्यासी का दर्शन, श्रमणकस्य दर्शनम् । श्रमण का दर्शन अशुभ माना जाता है । 'अकेशं दुर्भगम् नग्नम् अनपत्य च पापिनम् । पश्यन्न शुभमाप्नोति यात्रायाम् प्रातरेव वा ।' —स्मृतिः ।

इत्यार्यकापहरणं नाम सप्तमोऽङ्कः ।

आर्यक– अपहरण नामक सप्तम अङ्क समाप्त ।

अष्टमोऽङ्क ।

(तत प्रविशत्यार्द्रचीवरहस्तो भिक्षु ।)

[तदनन्तर गीला वस्त्र हाथ में लिये हुये भिक्षु प्रवेश करता है ।]

भिक्षु—अज्ञा, कुरुत धर्मसञ्चयम् । [अज्ञा, कलेध धम्मशचयम् ।]

भिक्षु—अरे अज्ञानियो ! धर्म का उपार्जन करो !

सयच्छत निजोदर नित्य जाग्रत ध्यानपटहेन ।
विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसचित धर्मम् ॥१॥

[शजम्मध णिअपोट णिच्च जग्गेध झाणपडहेण ।
विशमा इ दिअचोला हलति चिलशचिद धम्म ॥१॥]

अन्वय—निजोदरम् सयच्छत ध्यानपटहेन, नित्यम्, जाग्रत, विषमा, इन्द्रियचौरा, चिरसञ्चितम् धर्मम् हरन्ति ॥१॥

पदार्थ—निजोदरम=अपने पेट को, सयच्छत=सयम या नियन्त्रण मे रखो अर्थात् कम खाओ, ध्यानपटहेन=ध्यानरूपी नगाडे से जाग्रत=जागते रहो, विषमा=बलशाली या भयङ्कर, इन्द्रियचौरा=इन्द्रिय रूपी चोर, चिरसञ्चितम=बहुत दिनो मे एकत्रित या अर्जित किए गये, धर्मम्=धर्म को, हरन्ति=छीन लेते हैं ।

अनुवाद—अपने उदर को सयमित करो, ध्यान रूपी नगाडे से सदा जागते रहो, (क्योकि) इन्द्रियरूपी भयङ्कर चोर बहुत दिनो से उपार्जित धर्म का अपहरण कर लेते हैं ।

सस्कृत टीका-निजोदरम=स्वजठरम् सयच्छत=सयत कुरुत, ध्यानपटहेन=परमतत्त्वचिन्तनप्रवाहरूपढक्कया, नित्यम्=सदा, जाग्रत=सावधाना भवत, विषमा=भयङ्करा, इन्द्रियचौरा=चक्षुरादिरूपचौरा, चिरसञ्चितम्=बहुकालेनोपार्जितम् धर्मम्=सुकृतम, हरन्ति=मुष्णन्ति ।

समास एव व्याकरण—निजोदरम्-निजम् उदरम् । ध्यानपटहेन-ध्यानम् एव पटह् तेन । इन्द्रियचौरा-इन्द्रियाणि एव चौरा । स च्छत-सम्+दाण्+लोट् । जाग्रत-जागृ+लाट् सञ्चितम्-सम्+चि+क्त । हरन्ति-हृ+लट् ।

विवृति

(१) उपमय ध्यान, इन्द्रिय एव धर्म म उपमान पटह, चोर तथा धन का आरोप करन स यहा रूपकालकार है । (२) जागरण के प्रति इन्द्रियचोर कर्तृक धर्मात्मक धनहरण का कारण होन म काव्यलिङ्ग अलकार है । (३) इन अलङ्कारो का परस्पर अङ्गाङ्गिभाव स सङ्कर है । (४) सब ओर स प्रथम इन्द्रिय निग्रह करना साधक का कार्य है 'इन्द्रियाणा हि चरता, यन्मनोऽनुविधीयते । तदस्य हरति प्रज्ञा,

वायुर्नाविमिवाम्भसि ।' (४) प्रस्तुत पद्य में आर्या छन्द है। लक्षण-'यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"

अपि च। अनित्यतां प्रेक्ष्य केवलं तावद्धर्माणां शरणमस्मि। [अवि अ। अणिच्चदाए पक्खिअ णवलं दाव धम्माणं शलणह्मि।]

और भी। अनित्यता को देखकर मैं केवल धर्म की शरण में आ गया हूँ।

पञ्चजना येन मारिताः स्त्रियं मारयित्वा ग्रामो रक्षितः।
अबलश्च चाण्डालो मारितोऽवश्यमपि स नरः स्वर्गं गाहते ॥२॥
[पञ्चजण जेण मालिदा इत्थिअं मालिअ गाम लक्खिदे।
अबले अ चंडाले मालिदे अवस वि शे णल शग्ग गाहदि ॥२॥]

अन्वय—येन, पञ्चजनाः, मारिताः, स्त्रियम्, मारयित्वा, ग्रामः, रक्षितः, अबलः, चाण्डालः, च, मारितः, सः, नरः, अवश्यम् स्वर्गम् गाहते ॥२॥

पदार्थ—पञ्चजनाः=पाँच व्यक्ति अर्थात् पाँच इन्द्रियाँ, मारिताः=मार दिया अर्थात् वश में कर लिया, स्त्रियम्=अविद्या को, मारयित्वा=मार कर, ग्रामः= शरीर या आत्मा, अबलः=निर्बल, चाण्डालः=अहङ्कार, मारितः=मारा गया, गाहते=अवगाहित करता है।

अनुवाद-जिसने पाँच जनों (इन्द्रियों) को मार दिया, (अविद्या रूपी) स्त्री को मार कर (शरीर रूपी) ग्राम की रक्षा कर ली और दुर्बल चाण्डाल (अहङ्कार) को भी विनष्ट कर दिया वह मनुष्य अवश्य ही स्वर्ग प्राप्त करता है।

संस्कृत टीका-येन=जनेन, पञ्चजनाः=पञ्चेन्द्रियाणि, मारिताः=वशीकृताः, स्त्रियम्=अविद्यामित्यर्थः, मारयित्वा=नाशयित्वा, ग्रामः शरीरम् आत्मा वा, रक्षितः=परित्रातः, अबलः=निर्बलः, चाण्डालः=अहङ्कार इत्यर्थः, च, मारितः—हतः, स नरः=स पुरुषः, अवश्यम्=निश्चितम्, स्वर्गम्=सुरलोकम्, गाहते=गच्छति।

समास एवं व्याकरण—(१) मारिताः-मृ+णिच्+क्त। मारयित्वा-मृ+णिच्+क्त्वा। गाहते-गाह्+लट्।

विवृति

(१) भाव यह है कि स्वर्ग प्राप्ति के लिए इन्द्रिय आदि को सावधानी से वश में करना आवश्यक है। (२) 'स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालयाः। सुरलोको द्योदिवौ द्वे स्त्रियां क्लीबे त्रिविष्टपम्' इत्यमरः। (३) अविद्या' के स्थान पर स्त्रियम् पाठान्तर है उसका तात्पर्य भी 'अविद्या' ही है। (४) ग्राम-चेतनाविशिष्ट शरीर। (५) अबल श्च' के स्थान पर 'अबलश्च' पाठ उचित है। (६) प्रस्तुत पद्य

मे इन्द्रियादि को 'पञ्चजन' आदि से भिन्न होने पर भी अभेदेन वर्णित किया गया है। अतएव अतिशयोक्ति अलङ्कार है। (७) वैतालीय छन्द है। लक्षण-"षड्विषमे-ऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तरा। न समाऽत्र पराश्रिता कला वैतालीये-ऽन्ते रलौ गुरुः॥" (८) कुछ टीकाकारो के अनुसार कथितपदत्व दोष सम्भव है।

शिरो मुण्डितं तुण्डं मुण्डितं चित्तं न मुण्डितं किमर्थं मुण्डितम्?।
यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम्॥३॥
[शिलं मुंडिदे तुंडं मुंडिदे चित्तं ण मुंडिदं कीश मुंडिदे।
जाह उण अ चित्तं मुंडिदे शाहु शुट्ठु शिलं ताह मुंडिदे॥३॥]

अन्वय-शिर, मुण्डितम्, तुण्डम्, मुण्डितम्, (किन्तु, यदि) चित्तम्, न मुण्डि-तम्, (तदा) किमर्थम्, मुण्डितम्? पुन, यस्य, च, चित्तम्, साधु, मुण्डितम, तस्य, शिर, सुष्ठु, मुण्डितम्॥३॥

पदार्थ—शिर=शिर, मुण्डितम्=मुंडा हुआ (है), तुण्डम्=मुंह, चित्तम्=चित्त, किमर्थम्=किसलिए, साधु=अच्छी प्रकार से, सुष्ठु=भली-भाँति।

अनुवाद—शिर मुंडाया, मुंह मुंडा लिया, (किन्तु यदि) चित्त नहीं मुंडाया (पवित्र नहीं किया) यह मुंडाना किस काम का है? फिर जिनका चित्त भली प्रकार मुंड गया है (पवित्र हो गया है) उसका शिर भली-भाँति मुंड गया है।

संस्कृत टीका—शिरः=मस्तकम्, मुण्डितम्=केशरहितकृतम्, तुण्डम्=मुखम्, मुण्डितम्=श्मश्रुहीन कृतम्, (किन्तु, यदि) चित्तम्=चेत, न मुण्डितम्=न संयतीकृतम्, (तदा) किमर्थम्=कस्मै प्रयोजनाय, मुण्डितम्=केशकर्तनेनमवलो-मलीकृतम्? पुन=किन्तु, यस्य=जनस्य, च, चित्तम्=अन्त करणम्, साधु=सम्यक्, मुण्डितम्=विमलीकृतम्, तस्य=जनस्य, शिर=मस्तकम्, सुष्ठु=सम्यक्, मुण्डितम्।

समास एवं व्याकरण—(१) मुण्डितम्—मुण्ड्+क्त।

विवृति

(१) 'वक्त्रास्ये वदन तुण्डमानन लपन मुखम्' इत्यमर। (२) मुख का मुण्डन या तात्पर्य है श्मश्रु-च्छेदन से। क्योंकि मनु ने कहा है-'कृतकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्। विचरन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्'॥ किन्तु चित्त शुद्धि के बिना यह सर्वतोभद्र कराना या सन्यास लेना व्यर्थ है–'चित्तशुद्धि विना सर्वा हस्तिस्नानमिव क्रिया' इत्यभियुक्तोक्ति। (३) प्रस्तुत पद्य में चित्तमुण्डन ही शिरो-मुण्डन है' इस प्रकार भेद में भी अभेद का अभिधान होने से अतिशयोक्ति अलङ्कार है। (४) वैतालीय छन्द है। लक्षण—"षड्विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो

निरन्तराः । न समाऽत्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः ॥"

गृहीतकषायोदकमेतच्चीवरम्, यावदेतद्राष्ट्रियश्यालकस्योद्याने प्रविश्य पुष्करिण्यां प्रक्षाल्य लघु लघ्वपक्रमिष्यामि । (परिक्रम्य तथा करोति ।) [गिह्दिकशाओदए एशे चीवले जाव एद लट्टिअशालकाहकेलके उज्जाणे पविशिअ पोक्खलिणीए पक्खालिअ लहु लहु अवक्कमिश्शम् ।]

यह वस्त्र गेरवे रंग से युक्त जल को ग्रहण कर चुका है, तो इसको राजा के साले के उद्यान में प्रवेश कर बावड़ी में धोकर शीघ्र से शीघ्र भाग जाऊँगा । [घूमकर वैसा ही करता है]

(नेपथ्ये ।)

[नेपथ्य में]

शकार :—तिष्ठ रे दुष्ट श्रमणक, तिष्ठ । [चिट्ठ ले दुट्ठश्शमणका, चिट्ठ ।]

शकार—ठहर रे दुष्ट सन्यासी ! ठहर !

भिक्षु :—(दृष्ट्वा सभयम् ।) आश्चर्यम् । एष स राजश्यालसंस्थानक आगतः । एकेन भिक्षुणापराधे कृतेऽन्यमपि यत्र तत्र भिक्षुं पश्यति, तत्र तत्र गामिव नासिकां विद्ध्वापवाहयति । तत्कुत्राशरणः शरणं गमिष्यामि । अथवा भट्टारक एव बुद्धो मे शरणम् । [ही अविद माणहे । एशे शे लाअशालशंठाणे आअदे । एक्केन भिक्खुणा अवलाहे किदे अण्ण पि जहिं जहिं भिक्खुं पेक्खदि, तहिं तहिं गोण विअ णाश विन्धिअ ओवाहेदि । ता कहिं अशलणे शलणं गमिश्शम् । अथवा भट्टालके ज्जेव बुद्धे मे शलणे ।]

भिक्षु—[देखकर भय के साथ] आश्चर्य है, यह वह राजा का साला संस्थापक आ गया । एक भिक्षुक के अपराध करने पर दूसरे भी भिक्षुक को जहाँ-जहाँ देखता है, वहाँ-वहाँ गौ के समान नासिका को छेद कर बाहर भगा देता है । तो असहाय मैं किसकी शरण में जाऊँ ? अथवा प्रभु बुद्ध ही मेरे रक्षक हैं ।

(प्रविश्य सखड्गेन विटेन सह ।)

[तलवार लिए हुए विट के साथ प्रवेश कर]

शकार :—तिष्ठ रे दुष्टश्रमणक, तिष्ठ । आपानकमध्यप्रविष्टस्येव रक्तमूलकस्य शीर्षं ते भङ्क्ष्यामि । (इति ताडयति ।) [चिट्ठ ले दुट्ठश्शमणका, चिट्ठ । आवाणअमज्झपविट्ठश्श विअ लत्तमूलअश्श शीशं दे भाडइश्शम् ।]

शकार—ठहर रे दुष्ट श्रमण ! ठहर ! मदिरालय में आयी हुई लाल मूली के तुल्य तेरे सिर को तोड़ूँगा । [यह कहकर पीटता है ।]

विवृति

(१) गृहीतकषायोदकम्—जितने गेरुवा रंग घोले गए सलिल को सोखा

है। (२) चीवरम्—कौपीन। (३) गृहीतम् कषायोदकम् येन तत्। 'सन्यासिवस्त्र कौपीनम् इति कथ्यते।' (४) राष्ट्रियश्यालकस्य—राजा के साले के (सस्थानक के)। 'राजश्यालस्तुराष्ट्रिय' इत्यमर। राष्ट्रिय शब्द राजा के साले का वाचक है। फिर भी, श्यालक का अधिक प्रयोग किया गया है। (५) लघु लघु—शीघ्रता से शीघ्रता से। (६) अपक्रमिष्यामि—भाग जाऊँगा। अप+क्रम्+लृट्। (७) नासाम्—नाक को। (८) विद्ध्वा-छेदकर। (९) अपवाहयति-बाहर निकाल देता है। (१०) अशरण—अनाथ। 'शरणगृहरक्षित्रो।' इत्यमर। (११) भट्टारक—स्वामी।' (१२) आपानकमध्यप्रविष्टस्य—मदिरा पान करने वालो के मध्य म आई हुई। आपीयते मद्यम् अस्मिन् इति आपानम्। आपानमेव आपानकम्, आ+पा+ल्युट्, स्वार्थे कन् आपान + कन्। 'आपानम् पान गोष्ठिका।' इत्यमर। रक्तमूलकस्य—लाल मूली के। (१३) शीर्षम्—सिर को।

विट—काणलीमात, न युक्त निर्वेदधृतकषाय भिक्षु ताडयितुम। तत्किमनेन। इद तावत्सुखोपगम्युद्यान पश्यतु भवान्।

विट पुश्चली के पुत्र! वैराग्य के कारण गेरुआ वस्त्र पहनने वाले भिक्षुक को मारना उचित नही है। तब इससे क्या लाभ? आप आनन्दपूर्वक सेवन करने योग्य उपवन को देखें।

— अशरणशरणप्रमोदभूतैर्वनतरुभि क्रियमाणचारुकर्म।
हृदयमिव दुरात्मनामगुप्त नवमिव राज्यमनिर्जितोपभोग्यम् ॥४॥

अन्वय —अशरणशरणप्रमोदभूतै, वनतरुभि, क्रियमाणचारुकर्म, दुरात्मनाम हृदयम्, इव, अगुप्तम् नवम् राज्यम्, इव, अनिर्जितोपभोग्यम्, (उद्यानम्, भवान् पश्यतु ॥४॥

पदार्थ —अशरणशरण०=बिना घर वालो के लिए आश्रय तथा आनन्दस्वरूप, वनतरुभि=वन वृक्षों के द्वारा, क्रियमाणचारुकर्म=जिसम सुन्दर काम किया जा रहा है। अर्थात् आश्रय छाया एव फल फूल दिये जा रहे हैं। दुरात्मनाम्=दुष्टों के, अगुप्तम्=असयत नवम्=नय, राज्यमिव=राज्य की भाँति, अनिर्जितोपभोग्यम्=भली भाँति वश म न किये गये और सबके उपभोग के योग्य।

अनुवाद —आश्रय विहीनो के लिए आश्रयस्वरूप तथा आनन्दस्वरूप वन-वृक्षों द्वारा जहाँ मनोहर कार्य किया जा रहा है, जो दुष्ट जनों के हृदय के सम अनियन्त्रित है तथा नवीन राज्य के समान भली-भाँति अविहृत न किया गया एव सबके उपभोग के योग्य है (उस उद्यान को देखें) ॥

संस्कृत टीका—अशरणशरण० -गृहविहीनगृहीभूतानन्दरूपैरिति, वनतरुभि= अरण्य वृक्षै, क्रियमाणचारुकर्म=विधीयमानसुन्दरकर्म दुरात्मनाम्=दुष्टानाम्, हृदय

मिव=चित्तमिव, अगुप्तम्=अनियन्त्रितम्, नवम्=नूतनम् राज्यमिव, साम्राज्यमिव अनिर्जितापभाग्यम्=स्वच्छयासम्भाग्यहम्, (उद्यानम्, भवान्, पश्यतु) ॥

समास एवं व्याकरण—(१) अशरणशरण०—अशरणानाम् शरणानि प्रमोदन्त एभिरिति प्रमोदा तद्भूता ते च त इति तथोक्तास्तै (विशेषण विशेष्यणति समास) । क्रियमाणचारुकम—क्रियमाणम् चारुकम यत्र तादृशम् । अनिर्जितोपभोग्यम् अनिर्जितानि उपभोग्यानि यस्मिन् तत् तथोक्तम् । (२) अगुप्तम्—न गुप्तम्, नञ्+गुप्+क्त ।

विवृति

(१) शरण गृह रक्षित्रो' इत्यमर । (२) अशरणशरण०' यह वनतरुनि का विशेषण है। (३) अगुप्तम्—(i) सबके लिए खुला हुआ (उद्यान), (ii) असयत (हृदय)। (४) अनिर्जितोपभोग्यम्—(i) राज्य पक्ष म—विजेता के द्वारा अधिकृत न किया गया तथा सबके उपभोग के योग्य अर्थात् राजभक्ति की भावना उत्पन्न करने के लिए प्रजा के उपभागार्थं छोडा गया—अनिर्जित च तदुपभोग्य च। (ii) बिना किसी बाधा के उपभोग करने योग्य—अनिर्जित बाधारहितम् यथा स्यात्तथा उपभोग्यम् । (५) प्रस्तुत श्लोक म उपमालङ्कार है। (६) पुष्पिताग्रा छन्द है। लक्षण—'अयुजि न युगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।'

भिक्षु —स्वागतम् । प्रसीदतूपासक । [साअदम् । पसीददु उवासके।]

भिक्षु—स्वागत है। उपासक प्रसन्न हो।

शकार —भाव, पश्य पश्य । आक्रोशति माम् । [भावे, पेक्ख पेक्ख । आक्कोशदि मम् ।]

शकार—विद्वान् ! देखो, देखो ! मुझे अपशब्द कह रहा है।

विट —किं ब्रवीति ।

विट—क्या कह रहा है ?

शकार —उपासक इति मा भणति किमहं नापित । उवाशके त्ति म भणादि । किं हग्गे णाविदे।]

शकार—मुझे उपासक कह रहा है क्या मैं नापित हूँ ?

विट —बुद्धोपासक इति भवन्त स्तौति ।

विट—'बुद्ध का उपासक' यह कह कर आपकी प्रशसा कर रहा है।

शकार —स्तुनु श्रमणक, स्तुनु । [थुण शमणका थुण ।]

शकार—स्तुति करो श्रमण, स्तुति करो ।

भिक्षु —त्व धन्य त्व पुण्य । [तुम धण्णे, तुम पुण्ण ।]

भिक्षु—तुम धन्य हो, तुम पुण्यवान् हो ।

शकार—भाव, धन्यः पुण्य इति मा भणति। किमहं चार्वाकः कोष्ठकः कुम्भकारो वा। [भावे धण्णे पुण्णे त्ति म भणादि। किं हग्गे चालावके कोश्टके कोम्भकाले वा।]

शकार—विद्वान्। 'मुझे धन्य पुण्य कह रहा है। क्या मैं चार्वाक, भण्डार का घर, अथवा कुम्हार हूँ।'

विट—काणेलीमात, ननु 'धन्यस्त्वम्, पुण्यस्त्वम्' इति भवन्तं स्तौति।'

विट—पुंश्चली के पुत्र! 'आप धन्य है, आप पवित्र हैं यह कहकर आपकी प्रशंसा कर रहा है।

शकार—भाव, तत्किमर्थमेष इहागत। [भावे, ता कीश एशे इध आगदे।]

शकार—विद्वान्! तो यह किसलिए यहाँ आया?

भिक्षु—इदं चीवरं प्रक्षालयितुम्। [इदं चीवलं पक्खालिदुम्।]

भिक्षु—इस वस्त्र को धोने के लिए।

शकार—अरे दुष्टश्रमणक, एतन्मम भगिनीपतिना सर्वोद्यानानां प्रवरं पुष्पकरण्डोद्यानं दत्तम्, यत्र तावच्छुनकाः शृगालाः पानीयं पिबन्ति। अहमपि प्रवरपुरुषो मनुष्यको न स्नामि। तत्र त्वं पुष्करिण्यां पुराणकुलित्थयूषसवर्णानि-युग्रगन्धीनि चीवराणि प्रक्षालयसि। तत्त्वामेकं प्रहारिकं करोमि। [अले दुट्टशमणका, एशे मम बहिणीवदिणा शव्वुज्जाणाण पवले पुप्फकलण्डुज्जाणे दिण्णे, जहिं दाव शुणहका शिआला पाणिअं पिअन्ति। हग्गे वि पवलपुलिशे मणुश्शके ण ण्हाआमि। तहिं तुमं पुक्खलिणीए पुलाणकुलुत्थजूशशवण्णाइं उग्गगन्धिआइं चीवलाइं पक्खालेशि। ता तुमं एकक पहालिअं कलेमि।]

शकार—अरे दुष्ट श्रमण! मेरे बहनोई ने सब उद्यानों में उत्तम यह 'पुष्प काण्ड' नामक उद्यान मुझे दिया है, जहाँ कुत्ते और सियार जल पीते हैं। श्रेष्ठ पुरुष मनुष्य मैं भी जिसमें स्नान नहीं करता हूँ। तू उस पोखरी में पुरानी कुल्थी के काढ़े के तुल्य रंगवाले तथा तीक्ष्ण गन्ध वाले वस्त्रों को धो रहे हो? अतः मैं तुम्हें एक ही प्रहार में मार डालता हूँ।

विट—काणेलीमात, तथा तर्कयामि यथानेनाचिरप्रव्रजितेन भवितव्यम्।

विट—पुंश्चली के पुत्र! मैं ऐसा अनुमान करता हूँ कि यह अभी जल्दी ही सन्यासी हुआ है।

शकार—कथं भावो जानाति। [कधं भावे जाणादि।]

शकार—कैसे आप जानते हैं।

विवृति

(१) उपासक=बुद्ध का पूजक। (२) प्रसीदतु=प्रसन्न हो। (३)

आक्रोशति=गाली दे रहा है। (४) उपासक:—'स्यास्नुः इति उपासकः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार उपासक का एक अर्थ नापित भी हो सकता है। (५) स्तुनु=स्तुति करो। (६) धन्यः=प्रशंसनीय। (७) पुण्यः=पवित्र। (८) शलावकः=चार्वाक। (९) कोष्ठकम्=भण्डार का घर। (१०) कुम्भकार=कुम्हार। (११) भाव=श्रीमान्। (१२) चीवरम्=भिक्षु का वस्त्र। (१३) प्रक्षालयितुम्=धोने के लिए। (१४) भगिनीपतिना=बहनोई के द्वारा। (१५) पवरम्=श्रेष्ठ। (१६) शुनकाः=कुत्ते। (१७) शृगालाः=सियार। (१८) पानीयम्=जल। (१९) स्नामि=स्नान करता हूँ। (२०) पुराण=पुरानी कुल्थी के काढ़े जैसे रंगवाले। (२१) उग्रगन्धीन=तीक्ष्ण गन्ध वाले। (२२) एक प्रहारिकम्=एक घूँसे से। (२३) अचिरप्रव्रजितेन=शीघ्र ही सन्यासी हुआ। (२४) स्तुनु=यह प्रयोग असाधु है, 'स्तुहि' रूप बनता है। (२५) चीवरम्-चि+ष्वरच् (दीर्घ) (२६) एक प्रहारिकम्-एक प्रहारः अस्ति अस्य, एक प्रहार+ठन्। (२७) कोष्ठकः अस्ति अस्य इति कोष्ठकः।

विटः—किमत्र ज्ञेयम्। पश्य।

विट—इसमें जानना क्या है? देखो—

अद्याप्यस्य तथैव केशविरहाद्गौरी ललाटच्छविः

कालस्याल्पतया च चीवरकृतः स्कन्धे न जातः किणः।

नाभ्यस्ता च कषायवस्त्ररचना दूरं निगूढान्तरं

वस्त्रान्तं च पटोच्छ्रयात्प्रशिथिलं स्कन्धे न संतिष्ठते॥५॥

अन्वयः—अद्य, अपि, केशविरहात्, अस्य, ललाटच्छविः, तथैव, गौरी, कालस्य, अल्पतया, स्कन्धे, चीवरकृतः, किणः, च, न जातः, कषायवस्त्ररचना, च, न, अभ्यस्ता, दूरम्, निगूढान्तरम्, पटोच्छ्रयात्, प्रशिथिलम्, वस्त्रान्तम्, च स्कन्धे, न, संतिष्ठते॥५॥

पदार्थ:—केशविरहात्=बालों के न होने से, ललाटच्छविः=मस्तक की कान्ति, गौरी=गोरी, कालस्य=समय के, अल्पतया=कम होने के कारण, स्कन्धे=कन्धे पर, चीवरकृतः=संन्यासी के कपड़ों के द्वारा किया गया, किणः=घट्टा, कषायवस्त्ररचना=गेरुआ वस्त्र रंगना या पहनना, निगूढान्तरम्=(शरीर के) मध्य भाग को आच्छादित करने वाला, पटोच्छ्रयात्=वस्त्र की लम्बाई या विशालता के कारण, प्रशिथिलम्=ढीला-ढाला, वस्त्रान्तम्=वस्त्र का छोर, संतिष्ठते=ठहरता है।

अनुवाद:—आज भी केशों के अभाव से इसके ललाट की कान्ति वैसे ही गोरी है। थोड़ा ही समय होने से कन्धे पर वस्त्र का चिह्न (घट्टा) भी नहीं पड़ा है। (और) गेरुए वस्त्र रंगने (या पहनने) का भी (पूर्ण) अभ्यास नहीं हुआ है और दूर

तक शरीर के मध्य भाग को ढकने वाला एवं वस्त्र की विशालता के कारण शिथिल (उसके) वस्त्र का छोर कन्धे पर नहीं ठहर रहा है।

संस्कृत टीका–अद्यापि=अधुनापि, केशविरहात्=केशाभावात्, अस्य=भिक्षुकस्य, ललाटच्छवि=भालकान्ति, तथैव=तादृशी एव, गौरी=गौरवर्णा, कालस्य=सन्यासग्रहणसमयस्य, अल्पतया=अल्पतया, स्कन्धे=अंसे चीवरकृत=वस्त्रविहित, किण:=घर्षणज व्रणचिह्न, च, न ..तः=नोत्पन्न, कषायवस्त्ररचना=गैरिकवस्त्ररञ्जननिपुणता, च, न अभ्यस्ता=न शीलिता, दूरम्=अत्यधिकम्, निगूढान्तरम=शरीरमध्यभाग अत्यन्ताच्छादितं, पटोच्छ्रयात्=प्रावरणवसनदैर्घ्यात्, प्रशिथिलम=अतिशिथिलम्, वस्त्रान्तम्=वस्त्राञ्चल:, स्कन्धे=स्कन्धप्रदेशे, न न सन्तिष्ठते=न स्थिरत्वमाप्नोति ॥

समास एव व्याकरण–(१) ललाटच्छवि:=ललाटस्य छवि । चीवरकृत-चीवरेणकृत (तृ० त०) । कषायवस्त्ररचना-कषायवस्त्रस्य रचना । निगूढान्तरम्-निगूढम् अन्तरम् येन तादृश । पटोच्छ्रयात्-पटस्य उच्छ्रयात् । वस्त्रान्तम्-वस्त्रस्य अन्त । (२) चीवरम्-चि+ष्वरच्, निपातनात् दीर्घ, चीव्+अरच् वा । अभ्यस्ता-अभि+अस्+क्त । सन्तिष्ठते-सम्+स्था+लट् 'समवप्रविभ्य स्थ:' से आत्मनेपद ।

विवृति

(१) केशविरहात्–यद्यपि केश नहीं हैं तथापि धूप से इसके ललाट का वर्ण काला नहीं पड़ा, इससे प्रतीत होता है कि यह कुछ समय पूर्व ही भिक्षुक बना है। (२) निगूढान्तरम्–भाव यह है कि बौद्ध सन्यासी शरीर पर वस्त्र इस प्रकार रखते हैं कि शरीर का मध्य भाग कुछ खुला रहता है, किन्तु इसका मध्य भाग बिल्कुल ढका हुआ है। इससे भी यह नया सन्यासी मालूम पड़ता है। (३) पटोच्छ्रयात्–अभी भिक्षुक ने चीवर को भली-भाँति धारण करना नहीं सीखा है, अतः कन्धे पर अधिक वस्त्राञ्चल है जो शिथिल है और ठहरता नहीं। (४) वस्त्रान्तम्–'अन्त' शब्द पुल्लिङ्ग है। अतएव यहाँ 'वस्त्रान्तश्च' पाठ उचित होगा। (५) 'चिकुर कुन्तलो बाल कच: केश शिरोरुह' इत्यमर । (६) प्रस्तुत श्लोक में प्रव्रज्या के अचिरत्व प्रतिपादन के प्रति अनेक कारणों के होने से समुच्चयालङ्कार है। (७) ललाट, गैरुवस्त्रादि द्वारा चिरप्रव्रजित रूप साध्य का ज्ञान होने से अनुमानालङ्कार है। (८) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लक्षण–'सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम्' ॥

भिक्षु–उपासक, एवम् । अचिर प्रव्रजितोऽहम् । [उवासक, एव्वम् । अइरपव्वजिदे हग्म ।]

भिक्षु–उपासक ! ऐसा ही है। मैं अभी शीघ्र ही सन्यासी हुआ हूँ।

शकारः—तत्किमर्थं ! त्वं जातमात्र एव न प्रव्रजितः । (इति ताडयति ।) [ता कीशं तुमं जातमेत्तक ज्जेव ण पव्वजिदे ।]

शकार—तो तुम जन्म लेते ही सन्यासी क्यों नहीं हुए । [यह कहकर मारता है]

भिक्षुः—नमो बुद्धाय । [णमो बुद्धस्स ।]

भिक्षु—बुद्ध को नमस्कार है ।

विटः—किमनेन ताडितेन तपस्विना । मुच्यताम् । गच्छतु ।

विट—इस अकिञ्चन को मारने से क्या लाभ ? छोड़ दो । चला जाये ।

शकारः—अरे, तिष्ठ तावत्, यावत्संप्रधारयामि । [अले, चिट्ठ दावं जाव सपधालेमि ।]

शकार—अरे ! तब तक ठहर, जब तक मैं विचार करता हूँ ।

विटः—केन सार्धम् ।

विट—किसके साथ ?

शकारः—आत्मनो हृदयेन । [अत्तणो हडक्केण ।]

शकार—अपने हृदय के साथ ।

विटः—हन्त, न गतः ।

विट—हाय ! गया नहीं ।

शकारः—पुत्रक हृदय, भट्टारक पुत्रक, एव श्रमणकोऽपि नाम किं गच्छतु, किं तिष्ठतु । (स्वगतम् ।) नापि गच्छतु, नापि तिष्ठतु । (प्रकाशम् ।) भाव, संप्रधारितं मया हृदयेन सह । एतन्मम हृदयं भणति । [पुत्तका हडक्का, भट्टके पुत्तके, एशे शमणके अवि णाम किं गच्छदु, किं चिश्टदु । णावि गच्छदु, णावि चिश्टदु । भावे, शंपधालिदं मए हडक्केण शह । एशे मह हडक्के भणादि ।]

शकार—बेटा हृदय ! राजा हृदय ! क्या यह बौद्ध सन्यासी चला जाये अथवा ठहरे । [अपने आप] न जाये और न ठहरे । [प्रकट] विद्वान ! मैंने हृदय के साथ विचार कर लिया । यह मेरा हृदय कहता है ।

विटः—किं ब्रवीति ।

विट—क्या कहता है ?

शकारः—मापि गच्छतु, मापि तिष्ठतु । माप्युच्छ्वसितु, मापि निःश्वसितु । इहैव झटिति पतित्वा म्रियताम् । [मावि गच्छदु, मावि चिश्टदु । मावि ऊशशदु मावि णीशशदु । इधज्जेव झत्ति पडिअ मलेदु ।]

शकार—न तो जाये । न ठहरे न साँस ले । यहीं शीघ्रता से गिरकर मर जाये ।

भिक्षु—नमो बुद्धाय । शरणागतोऽस्मि । [णमो बुद्धस्स । शलणागदम्हि ।]

भिक्षु—बुद्ध को नमस्कार है । शरण मे आया हूँ ।

विट—गच्छतु ।

विट—जाये ।

शकार—ननु समयेन । [ण शमएण ।]

शकार—एक शर्त पर ।

विट—कीदृश समय ।

विट—कैसी शर्त ?

शकार.—तथा कर्दम प्रक्षिपतु, यथा पानीय पङ्काविलं न भवति । अथवा पानीय पुञ्जीकृत्य कर्दमे क्षिपतु । [तधा कद्दम फलदु, जधा पाणिअ पङ्काइल ण होदि । अधवा पाणिअ पुञ्जीकदुअ कद्दमे फेलदु ।]

शकार—(वह) कीचड इस प्रकार फेंके कि जल गदला न होवे अथवा जल को इकट्ठा करके कीचड मे फेंक दे ।

विवृति

(१) जातमात्र एव=उत्पन्न होते ही । (२) सप्रधारयामि=विचार करता हूँ । (३) समयेन=शर्त के साथ । (४) उच्छ्वसितु=साँस ले । (५) निश्वसितु=साँस छोडे । (६) कर्दमम्=कीचड । (७) पङ्काविलम्=गदला । (८) पानीयम्=जल । (९) पुञ्जीकृत्य=एकत्रित करके । (१०) 'समया शपथाचार ।ल सिद्धान्त सविद । इत्यमर । (११) 'पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ ।' इत्यमर ।

विट—अहो मूर्खता ।

विट—विस्मयकारिणी मूर्खता है ।

विपर्यस्तमनश्चेष्टै शिलाशकलवर्ष्मभि. ।
मासवृक्षैरिय मूर्खैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा ।।६।।

अन्वय विपर्यस्तमनश्चेष्टै, शिलाशकलवर्ष्मभिः, मासवृक्षै, मूर्खैं, इयम्, सुन्धरा, माराक्रान्ता, (वर्तते) ।। ६ ।।

पदार्थ—विपर्यस्तमनश्चेष्टै=विपरीत मन और क्रिया वाले अर्थात् जिनके चार और कार्य म समानता न हो, शिलाशकलवर्ष्मभि=पत्थर के टुकडे के समान रीर वाले, मासवृक्षै=मास के वृक्षो (के समान) मूर्खै=मूर्खों के द्वारा, वसुन्धरा=थ्वी, माराक्रान्ता=मार से दबी हुई, बोझिल ।

अनुवाद—विपरीत मन तथा चेष्टा वाले, पाषाण-खण्ड के समान शरीर वाले ांस-वृक्षो जैसे मूर्खों स यह पृथ्वी भारवती हो रही है ।

संस्कृत टीका—विपर्यस्तमनश्चेष्टैः=विरुद्धमनोवृत्तिविशिष्टैः, शिलाशकलवर्ष्मभिः=प्रस्तरखण्डसदृशदेहैः, मांसवृक्षैः=मांसमय फलोत्पादकतरुभिः, मूर्खैः=विचारशून्यैः (शकारसदृशैः जनैः), इयम्=दृश्यमाना, वसुन्धरा=पृथ्वी, भाराक्रान्ता=भारवती (वर्तते) ॥

समास एवं व्याकरण—(१) विपर्यस्तमनश्चेष्टैः—विपर्यस्ते मनः चेष्टा च येषां तादृशैः। शिलाशकलवर्ष्मभिः—शिलाशकलवत् वर्ष्म येषां तादृशैः। मांसवृक्षैः=मांसस्य वृक्षैः।

विवृति

(१) 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः (२) 'पिशितं तरसं मांसं पललं क्रव्यमाऽऽमिषम्' इत्यमरः। (३) प्रस्तुत पद्य के द्वितीय चरण में लुप्तोपमालङ्कार है। (४) तृतीय चरण में निरङ्ग केवल रूपकालङ्कार है। (५) अप्रस्तुत मूर्ख सामान्य से प्रस्तुत मूर्ख विशेष शकार की प्रतीत होने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है। (६) इन सबका परस्पर अङ्गाङ्गिभाव होने से संकर है। (७) अपवाद नामक विमर्श सन्धि का अंग है। लक्षण-'दोष प्रख्यापवादः स्यात्।' (८) पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण-"युजोश्चतुर्थतोजेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।"

(३) प्रस्तुत पद्य में श्रौती उपमालङ्कार है। (४) लतावृक्षों का लिङ्ग साम्य से नायिका नायक व्यवहार का आरोप होने से समासोक्ति अलङ्कार है। (५) इन दोनों का परस्पर अङ्गाङ्गिभाव होने से संकर है। (६) वंशस्थ छन्द है। लक्षण-"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ॥"

(भिक्षुर्नाट्येनाक्रोशति।)

(संन्यासी अभिनय के द्वारा कोसता है।)

शकारः—किं भणति ? [किं भणादि ?]

शकार—क्या कहता है ?

विटः—स्तौति भवन्तम्।

विट—आपकी प्रशंसा करता है।

शकारः—स्तुनु स्तुनु। पुनरपि स्तुनु। [थुणु थुणु। पुणो वि थुणु।]

शकार—प्रशंसा करो। और भी प्रशंसा करो।

(तथा कृत्वा निष्क्रान्तो भिक्षुः।)

(वैसे करके निकल जाता है।)

विवृति

(१) नाट्य-नट+ष्यञ्। (२) आक्रोशति-आ+क्रुश्+लट्। (३) भणति-

भण्+लट् । (४) स्तौति–स्तु+लट् । (५) स्तुनु—स्तु+लोट् । (६) निष्क्रान्ताः–निस्+क्रम्+क्त ।

विट—*काणेलीमात, पश्योद्यानस्य शोभाम् ।*

विट–

अमी हि वृक्षाः फलपुष्पशोभिता·
कठोरनिष्पन्दलतोपवेष्टिताः ।
नृपाज्ञया रक्षिजनेन पालिता
नरा सदारा इव यान्ति निर्वृतिम् ॥७॥

अन्वय—फलपुष्पशोभिता, कठोरनिष्पन्दलतोपवेष्टिता, अमी, वृक्षा, नृपाज्ञया, रक्षिजनेन, पालिता सदारा, नरा, इव, निर्वृतिम् यान्ति ॥ ७ ॥

पदार्थ—फलपुष्पशोभिता =फलो एव फूलो से सुशोभित, कठोरनिष्पन्द०= (जिनका) निश्चल (होकर) लताओ ने गाढ आलिङ्गन किया है अर्थात् निश्चल लताओ से अच्छी तरह लपेटे हुए, नृपाज्ञया=राजा की आज्ञा से, रक्षिजनेन=सिपाहियो के द्वारा, पालिता =रखवाली किये गये, सदारा =सपत्नीक, निर्वृतिम्=सुख को, यान्ति=जा रहे हैं, प्राप्त कर रहे हैं।

अनुवाद–फलो एव पुष्पो से सुशोभित, निश्चल लताओ से भली-भाँति आलिङ्गित ये वृक्ष राजा की आज्ञा से रक्षको द्वारा रक्षित सपत्नीक पुरुषो की भाँति सुख प्राप्त कर रहे है।

संस्कृत टीका–फलपुष्पशोभिता =फलपुष्पभूषिताः, कठोरनिष्पन्द०=निश्चललतालिङ्गिता, अमी=एते, वृक्षा =पादपा, नृपाज्ञया=राजाज्ञया, रक्षिजनेन= रक्षकलोकेन, पालिताः=रक्षिता, सदारा =सस्त्रीका, नरा =मनुष्या, इव, निर्वृतिम्=सुखम्, यान्ति=प्राप्नुवन्ति ।

समास एव व्याकरण—१ फलपुष्पशोभिताः–फलै पुष्पै च शोभिता। कठोरनिष्पन्द०–कठोर यथा स्यात् तथा निष्पन्दाभि लताभि उपवेष्टिता । नृपाज्ञया- नृपस्य आज्ञया। २ शोभिता–शुभ्+क्त। ३ पालिता—पाल्+क्त। ४ निर्वृतिम्- निर्+वृ+क्तिन् । ५ यान्ति–या+लट् ।

विवृति

१–भाव यह है कि जिस प्रकार अच्छे राज्य मे मनुष्य अपने परिवार के साथ आनन्दित रहते हैं उसी प्रकार ये वृक्ष भी लता-वधुओं से आलिङ्गित होकर सुख का अनुभव कर रहे है। २— वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमर । ३–इस श्लोक मे उपमा एव समासोक्ति अलकार हैं तथा वंशस्थ छन्द है।

शकारः—सुष्ठु भावो भणति । [सुश्टु भावे भणादि ।]

शकार—

बहुकुसुमविचित्रता च भूमिः कुसुमभरेण विनामिताश्च वृक्षाः ।
द्रुमशिखरलतावलम्बमानाः पनसफलानीव वानराः ललन्ति ॥

[बहुकुशुमविचित्तिदा अ भूमी
कुशुमभलेण विणामिदा अ लुक्खा ।
दुमशिहललदाअलंबमाणा
पणशफला विअ वाणला ललति ॥८॥]

अन्वयः—भूमिः, च, बहुकुसुमविचित्रता, (अस्ति), वृक्षाः, च, कुसुमभरेण, विनामिताः, (सन्ति), द्रुमशिखरलतावलम्बमानाः, वानराः, पनसफलानि, इव, ललन्ति ॥८॥

पदार्थः—भूमिः=पृथिवी, बहुकुसुमविचित्रता—अनेक फूलों से रङ्ग विरङ्गी, कुसुमभरेण=फूलों के बोझ से, विनामिताः=झुकाये गये, द्रुमशिखर०=वृक्षों के ऊपर की डालियों पर लटकते हुए, वानरा.=बन्दर, पनसफलानि=कटहल के फल, ललन्ति=सुशोभित हो रहे हैं ।

अनुवाद—भूमि अनेक रंग के पुष्पों से चित्रित है तथा वृक्ष पुष्पों के बोझ से झुक गये हैं । वृक्षों के अग्रभाग वाली शाखाओं पर लटके हुये वानर कटहल के फल के समान सुशोभित हो रहे हैं ।

संस्कृत टीका—भूमिः=पृथ्वी, च, बहुकुसुमविचित्रता=नानाविधपुष्पशवली-कृताः, वृक्षाः=पादपाः, च, कुसुमभरेण=पुष्पभारेण; विनामिताः=नम्रीकृताः, द्रुमशिखर०=वृक्षाग्रलग्नलता अधोलम्बिता सती स्थिता, वानराः=कपयः, पनसफलानि=कण्टकिफलानि (कटहल-इति भाषायाम्) इव=यथा, ललन्ति=शोभन्ते ॥

समास एवं व्याकरण—(१) बहुकुसुमविचित्रता—बहुभिः कुसुमैः विचित्रता । कुसुमभरेण—कुसुमानाम् भरेण । द्रुमशिखर०—द्रुमाणाम् शिखरलताभ्यः अवलम्बमानाः अथवा द्रुमाणाम् शिखरलतासु अवलम्बमानाः । पनसफलानि—पनसस्य फलानि । (२) विनामिताः वि+नम्+णिच्+क्त । लम्बमानाः—लम्ब्+शानच् (लट्, मुक्) । ललन्ति—लल्+लट् ।

विवृति

(१) 'पनसः कण्टकिफलः' इत्यमरः । (२) 'पनसफलानीव' में श्रौती उपमालङ्कार है । (३) प्रस्तुत श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है—पुष्पिताग्रा । लक्षण—'अयुजिनयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।'

विट —काणेलीमात , इद शिलातलमध्यास्यताम् ।

विट—पुश्चली के पुत्र, इस पाषाण पट पर बैठ जाओ ।

शकार —एषोऽस्म्यासित । (इति विटेन सहोपविशति ।) भाव, अद्यापि ता वसन्तसेना स्मरामि । दुर्जनवचनमिव हृदयान्नापसरति । [एशे ह्मि आशिदे । भावे, अज्जवि त वशन्तशेणिअ शुमलामि । दुज्जणवअण विअ हडक्कादो ण ओशलदि ।]

शकार—यह बैठ गया । (यह कहकर विट के साथ बैठ जाता है ।) विद्वन्, आज भी मैं उस वसन्तसेना का स्मरण करता हूँ । कठोर वचन की भाँति वह मेरे हृदय से नही निकल रही है ।

विवृति

(१) शिलातलम्—पत्थर की पटिया पर । (२) अध्यास्यताम्—बैठ जाओ । अधि+आस्+लोट् (कर्म वाच्य) । (३) दुजनवचनमिव–दुष्ट के वचनो की भाँति । (४) अपसरति—निकल रही है । अप+सृ+लट् ।

विट —(स्वगतम् ।) तथा निरस्तोऽपि स्मरति ताम् । अथवा ।

विट—[अपने आप] उस प्रकार तिरस्कृत होकर भी उसका स्मरण करता है । अथवा—

स्त्रीभिर्विमानितानां कापुरुषाणां विवर्धते मदन ।
सत्पुरुषस्य स एव तु भवति मृदुर्नैव वा भवति ॥९॥

अन्वय—स्त्रीभि , विमानितानाम्, कापुरुषाणाम्, मदन , विवर्धते, तु, सत्पुरुषस्य स , एव, मृदु भवति, वा न, एव, भवति ॥९॥

पदार्थ—स्त्रीभि =स्त्रियो द्वारा, विमानितानाम्=अपमानित, कापुरुषाणाम्=नीच मनुष्यों का, मदन =काम, विवर्धते=अधिक बढ़ जाता है, सत्पुरुषस्य=सज्जन मनुष्यो का ।

अनुवाद—स्त्रियो द्वारा तिरस्कृत अधम मनुष्यो का काम (कामवासना) अधिक बढ जाता है, किन्तु सज्जनो का काम तो (स्त्रियो से अपमानित होने पर) कम हो जाता है अथवा होता ही नही ।

संस्कृत टीका- स्त्रीभि =वनिताभि , विमानितानाम्=तिरस्कृतानाम्, कापुरुषाणाम्—अधीरजनानाम्, मदन =काम , विवर्धते=वृद्धि गच्छति, तु=किन्तु, सत्पुरुषस्य=सज्जनस्य, स =मदन , एव, मृदु =स्वल्प , भवति=जायते, वा=अथवा, नैव भवति=नैव उत्पद्यते ।

समास एव व्याकरण—(१) कापुरुषाणाम्–कुत्सित पुरुष कापुरुषा तेषाम् इति । (२) विमानितानाम्-वि+मन+णिच्+क्त+षष्ठी बहु० ॥ विवर्धते-वि+वृध+लट् । भू+लट् ।

विवृति

१. प्रस्तुत पद्य मे अप्रस्तुत पुरुष—सामान्य से प्रस्तुत का पुरुष विशेष शकार की प्रतीत होने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है। २. आर्या छन्द है। लक्षण—' यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।"

शकार.—भाव, कापि वेला स्थावरक चेटस्य भणितस्य 'प्रवहण गृहीत्वा लघु लघ्वागच्छ' इति । अद्यापि नागच्छतीति चिरमस्मि बुभुक्षितः। मध्याह्ने न शक्यते पादाभ्या गन्तुम् । तत्पश्य पश्य। [भावे, का वि वेला थावलक चेडरश भणिदश्श 'पवहण गेण्हिअ लहु लहु आअच्छे' त्ति। अज्ज वि ण आअच्छदि त्ति चिलम्हि बुभुक्खिदे । मज्झण्हे ण शक्कीअदि पादेहिं गन्तुम् । ता पेक्ख पेक्ख ।]

शकार—माननीय ! स्थावरक नाम वाले भृत्य के द्वारा यह कहे हुए कितना समय हो गया कि 'गाडी लेकर शीघ्रातिशीघ्र आओ।' [वह] अभी भी नही आ रहा है। [मैं] बहुत देर से भूखा हू। दोपहर मे पैदल नही जाया जा सकता। तो देखिए, देखिए—

विवृति

[१] भणितस्य—कहे हुए। भण्+क्त। [२] प्रवहणम्—गाडी। 'कर्णीरथः प्रवहणम्' इत्यमर.। [३] गृहीत्वा—ग्रह +क्त्वा। [४] आगच्छ—आ+गम्+लोट्। [५] बुभुक्षित—भूखा। भोक्तुम् इच्छा बुभुक्षा। भुज्+सन्+अ+टाप्। बुभुक्षा सञ्जाता अस्य इति बुभुक्षित। बुभुक्षा+इतच्।

नभोमध्यगतः सूर्यो दु.प्रेक्ष्यः कुपितवानरसदृशः ।
भूमिर्दृढसतप्ता हतपुत्रशतेव गान्धारी ॥
[णहमज्झगदे शूले दुप्पेक्खे कुविदवाणलशलिच्छे ।
भूमीदृढशतत्ता हदपुत्तशदेव गधाली ॥१०॥]

अन्वय—नभोमध्यगत', सूर्य', कुपितवानरसदृश, दुप्रेक्ष्य., (अस्ति), हतपुत्रशता, गान्धारी, इव, भूमि, दृढसन्तप्ता, (जाता) ॥१०॥

पदार्थ :—नभोमध्यगत.=आकाश के बीच मे स्थित, सूर्य =सूर्य, कुपितवानर-सदृश =क्रुद्ध हुए वानर के (मुख के) समान (लाल), दुप्रेक्ष्य =मुश्किल से देखे जाने के योग्य, हतपुत्रशता—जिसके सौ पुत्र मार दिये गये हैं ऐसी, गान्धारी=दुर्योधन आदि कौरवो की माता, दृढसन्तप्ता=बहुत अधिक सतप्त (पृथ्वी) के पक्ष मे तपी हुई, गान्धारी के पक्ष मे—दुःखी।

अनुवाद :—आकाश के मध्य मे गया हुआ सूर्य क्रुद्ध वानर के (मुख के) समान कठिनाई से देखने योग्य है। मारे गये सौ पुत्रो वाली गान्धारी के सदृश (यह) पृथ्वी अत्यन्त सन्तप्त (पृथ्वी-पक्ष मे—तपी हुई, गान्धारी—पक्ष मे—दुःखी) है।

संस्कृत टीका :-नभोमध्यगत =गगनमध्यमारूढ, सूर्य =रवि, कुपितवानर-सदृश =क्रुद्धकपिसदृश, दुष्प्रेक्ष्य =दुःखेन प्रेक्षितु शक्य (अस्ति), हतपुत्रशता= मृतशतसंख्याकतनया, गान्धारी इव=धृतराष्ट्रपत्नीव, भूमि =पृथ्वी, दृढसतप्ता= अति सतप्ता (एकत्र प्रखरतरदिनकरकर सम्पर्केणा-यत्र पुत्रमरणोत्थमहाशोकेनेति शेष)।

समास एव व्याकरण -(१) नभोमध्यगत -नभस मध्य गत । कुपितवानर सदृश -कुपितेन वानरेण सदृश । हतपुत्रशता-हतम पुत्राणाम शतम् यस्या सा। दृढ-सन्तप्ता-दृढम् यथा स्यात् तथा सन्तप्ता । (२) सदृश समान दर्शनमस्य इति सदृश समान+दृश्+क्स, क्विन, कञ् वा, समानस्य सादेश । गान्धारी—गन्धाराणा जन पदानाम् राजा गान्धार, तस्य अपत्य स्त्री गान्धारी। गान्धार+अण्+ङीप्। सन्तप्ता-सम्+तप+क्त+टाप् ।

विवृति

(१) 'समस्तुल्य सदृक्ष सदृश सदृक। साधारण समानश्च०' इत्यमर । (२) उपमालङ्कार इस पद्य मे है। (३) पूर्वार्द्ध मे आर्थी उपमा है (४) उत्तरार्द्ध मे श्रौती उपमा और पूर्णोपमा है। (५) उत्कृष्ट सूर्य से अपकृष्ट वानर की उपमा अनौचित्य दोष नही है क्योकि यह शकार का वचन है। (६) आर्या छन्द है।

विट-एवमेतत् ।

विट-

छायासु प्रतिमुक्तशष्पकवल निद्रायते गोकुल

तृष्णार्तैश्च निपीयते वनमृगैरुष्ण पय सारसम् ।

सतापादतिशङ्कितैर्न नगरीमार्गो नरै सेव्यते

तप्ता भूमिमपास्य च प्रवहण मन्ये क्वचित्सस्थितम् ॥११

अन्वय -प्रतिमुक्तशष्पकवलम गोकुलम, छायासु निद्रायत, तृष्णार्तै, वनमृगै, च, उष्णम्, सारसम्, पय, निपीयते, सतापात्, अतिशङ्कितै नरै नगरीमार्ग, न सेव्यते, (अत, अह) मन्य, (यत्) तप्ताम् भूमिम् अपास्य, प्रवहणम्, क्वचित्, सस्थितम् (अस्ति) ॥११॥

पदार्थ -प्रतिमुक्त०=जिमने कोमल घासो का ग्रास लेना छोड दिया है। गोकुलम्=गायो का समूह, छायासु=छाया मे, निद्रायत=सो रहा है, तृष्णार्त = प्यास से पीडित, वनमृगै=अरण्य पशुओ से, उष्णम्=गर्म, सारसम्=सरोवर का, पय -जल, निपीयते=पिया जा रहा है। सतापात्=गर्मी से, अतिशङ्कितै =अत्यन्त भयभीत, नरै =मनुष्यो से, नगरीमार्ग =नगर का पथ, न सेव्यते=सेवन नहीं किया

रा रहा है, मन्ये=समझता हूँ, तप्ताम्=तपी हुई, भूमिम्=भूमि को, अपास्य=छोड़कर, प्रवहणम्=गाड़ी, क्वचित्=कहीं, सस्थितम्=ठहरा है।

अनुवाद :—कोमल घासो का चरना छोडकर गायो का समूह छाया मे नीद ले रहा है, प्यास से आकुल वन्य पशुओ के द्वारा गर्म सरोवरो का जल पिया जा रहा है। गर्मी से अत्यन्त डरे हुए मनुष्यो द्वारा नगर मार्ग नही सेवन किया जा रहा है, मानता हूँ कि सतप्त पृथ्वी को छोडकर गाड़ी कही ठहर गयी है।

संस्कृत टीका—प्रतिमुक्त०=परित्यक्तबालतृणग्रासम्, गोकुलम्=धेनुसमूह', छायासु=अनातपेषु, निद्रायते=निद्रा प्राप्नोति, तृष्णार्तैः=पिपासाकुलैः, वनमृगैः=वनवासिपशुभि, च, उष्णम्=रविकरतापाभितप्तम्, सारसम्=सरोवरोद्भवम्, पय=जलम्, निपीयते=नितरा पीयते, सतापात्=आतपात्,=अतिशङ्कितैः=अत्यन्त भीतैः, नरः=मनुष्यैः, नगरीमार्गः=उज्जयिन्याः पन्था', न सेव्यते=न गम्यते, (अतोऽहम्) मन्ये=स्वीकरोमि, (यत्), तप्ताम्=उष्णाम्, भूमिम्=पृथ्वीम्, अपास्य=परित्यज्य, प्रवहणम्=शकटम्, क्वचित्=कुत्रचित्, सस्थितम्=स्थितमस्ति ॥

समास एवं व्याकरण—(१) प्रतिमुक्तशष्पकवलम्=प्रतिमुक्ताः शष्पाणाम् कवला. येन तत्। गोकुलम्-गवा कुलम्। सारसम्-सरसः इदम् सारसम्। (२) सारसम्-सरस्+अण्। (३) निद्रायते-निद्रा से नामधातु क्यङ् लट्। (४) निपीयते—नि+पा+यक्+लट्। (५) संतापः-सम्+तप+घञ्। (६) सेव्यते—सेव+यक् (भाव-कर्म का प्रत्यय)+लट्। (७) सस्थितम्-सम्+स्था+क्त।

विवृति

(१) 'शष्प बालतृण घासो यवसम्' इत्यमरः। (२) 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्ब-मनातप.' इत्यमरः। (३) प्रस्तुत पद्य मे ताप के अतिशय रूप कार्य के प्रति अनेक कारणो के उपन्यास से समुच्चयालङ्कार है। (४) उसके लिये किये गये गाडी का कहीं अवस्थान रूप साध्य का ताप की अधिकता से लिङ्ग के अनुमान से अनुमानालङ्कार है। (५) कुछ टीकाकारों के अनुसार स्वाभावोक्ति अलङ्कार है। (६) श्लोक के प्रथम् पाद के कर्ता मे और अन्यत्र कर्म मे प्रत्यय होने से भग्न प्रक्रमता दोष है। (७) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लक्षण—"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडतम।"

शकार.—भाव, [भावे,]।

शकार—श्रीमन्!

शिरसि मम निलीनो भाव ! सूर्यस्य पादः
शकुनिखगविहङ्गा वृक्षशाखासु लीनाः।

नरपुरुषमनुष्या उष्णदीर्घं श्वसन्तो
गृहशरणनिषण्णा आतप निर्वहन्ति ॥११॥
[शिलयि मम णिलीणे भाव शुज्जश्श पादे
शउणिखगविहगा लुक्खशाहाशु लीणा।
णलपुलिशमणुश्शा उण्हदीह शशता
घलशलणणिशण्णा आदव णिव्वहति ॥१२॥]

अन्वय—हे भाव ! सूर्यस्य, पाद, मम, शिरसि, निलीन (अस्ति), शकुनिखगविहङ्गा, वृक्षशाखासु, लीना, (सन्ति), नरपुरुषमनुष्या, उष्णदीर्घम्, श्वसन्तः, गृहशरणनिषण्णा, आतपम्, निर्वहन्ति ॥१२॥

पदार्थ—पाद = किरण, निलीन = छिप रही है अथवा पड रही है, शकुनिखगविहङ्गा = पक्षी (खग, विहग), वृक्षशाखासु = पेड की डालो पर, लीना = छिपे हुए, नरपुरुषमनुष्या = मनुष्य (नर, पुरुष), उष्णदीर्घम् = गर्म तथा लम्बी (जैसे ही तैसे), श्वसन्त = साँस लेते हुए, गृहशरणनिषण्णा = घर (शरण) मे बैठ हुए आतपम् = गर्मी को, निर्वहन्ति = बिता रहे हैं।

अनुवाद—विद्वान् ! सूर्य की किरण मेरे मस्तक पर पड रही है, पक्षी (खग, विहङ्ग) वृक्ष की शाखाओ म छिप गये हैं, मनुष्य (नर, पुरुष) गर्म तथा लम्बी साँस लेते हुए घर (शरण) म बैठकर आतप (के समय) को व्यतीत कर रहे हैं।

संस्कृत टीका—हे भाव ! = हे विद्वन् ! सूर्यस्य = रवे, पाद = किरण, मम = शकारस्य, शिरसि = मस्तके, निलीनः = नितरा पतित, शकुनिखगविहङ्गा = पक्षिण (शकारोक्तिरस्तीति पुनरुक्तिदोष क्षन्तव्य), वृक्षशाखासु = पादपलतासु निलीन = पतित, नरपुरुषमनुष्या = मानवा, उष्णदीर्घम् = सतप्तविस्तृतम् श्वसन्तः = श्वास गृह्णन्त, गृहशरणनिषण्णा = गृहोपविष्टा, आतपम् = घमकालमित्यर्थ, निर्वहन्ति = यापयन्ति ॥

समास एव व्याकरण–(१) वृक्षशाखासु–वृक्षस्य शाखासु। उष्णदीर्घम्–उष्णम् च तत् दीर्घम् यथा स्यात् तथा । गृहशरणनिषण्णा – गृहशरणेषु निषण्णा। (२) निलीन – नि + ली + क्त । (३) श्वसन्त – श्वस् + (शतृ) शतृ । (४) निषण्णा – नि + षद + क्त । (५) निर्वहन्ति – निर् + वह + लट् ।

विवृति

(१) 'पादा रश्म्यङ्घ्रि तुर्यांशा' इत्यमर. । (२) सम शाखालते' इत्यमर । (३) प्रस्तुत पद्य में 'शकुनिखगविहङ्गा', 'नरपुरुषमनुष्या.' एवं 'गृहशरणनिषण्णा' म एक पर्याय क अनक शब्दो का प्रयाग मूर्ख शकार की उक्ति होन के कारण

समझना चाहिए । (३) मालिनी छन्द है। लक्षण-'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

भाव, अद्यापि स चेटो नागच्छति । आत्मनो विनोदननिमित्तं किमपि गास्यामि। (इति गायति ।) भाव भाव, श्रुतं त्वया यन्मया गीतम्। [भावे, अज्ज वि शे चेडे णाअच्छदि । अत्तणो विणोदणणिमित्तं किं पि गाइश्शम् । भावे, भावे शुदं तुए ज मए गाइदम् ।]

श्रीमन् ! अब भी वह चेट नहीं आ रहा है। मैं मनोरंजन के लिए कुछ गाऊँगा । (यह कहकर गाता है) विद्वन् ! तुमने सुना, जो मैंने गाया ?

विटः—किमुच्यते । गन्धर्वो भवान् ।

विट—क्या कहना ? आप तो गन्धर्व हैं ।

विवृति

(१) गन्धर्वः—स्वर्ग के गायक । देवों की एक जाति है । संगीत इनकी वृत्ति है। लोक में उच्चकोटि के गायक की उपमा गन्धर्व से दी जाती है।

शकारः—कथं गन्धर्वो न भवामि । [कधं गन्धव्वे ण भविश्शम् ।]

शकार—क्यों न गन्धर्व होऊँ ?

हिङ्गूज्ज्वला जीरकभद्रमुस्ता वचाया ग्रन्थिः सगुडा च शुराठी ।
एषा मया सेविता गन्धयुक्तिः कथं नाहं मधुरस्वर इति ॥१३॥
[हिंगुज्जले जीलकभद्दमुस्ते वचाह गंठी शगुडा अ शुंठी ।
एशे मए शेविद गंधजुत्ती कधं ण हुग्गे मधुलश्शले त्ति ॥१३॥]

अन्वयः—हिङ्गूज्ज्वला, जीरकभद्रमुस्ता, वचायाः, ग्रंथिः, सगुडा, शुराठी, च, एषा, गन्धयुक्तिः, मया, सेविता, (तर्हि), अहम्, कथम्, मधुरस्वरः, न, (भवेयम्) इति ॥१३॥

पदार्थः—हिङ्गूज्ज्वला=हींग के कारण सफेद, जीरकभद्रमुस्ता=जीरे सहित नागरमोथा, वचायाः=वच की, ग्रन्थिः=गाँठ, सगुडा=गुड़ से मिलायी हुई, शुण्ठी= सोंठ, एषा=यह, गन्धयुक्तिः=गन्धों का योग अर्थात् उक्त सुगन्धित पदार्थों का योग, सेविता=सेवन की गयी है, मधुरस्वरः=मीठास्वर वाला ।

अनुवाद—हींग से सफेद (या ˜क), जीरे सहित नागरमोथा, बच की गाँठ और गुड़ सहित सोंठ इस सुगन्धित योग मिश्रण का मैंने सेवन किया है, तो मैं क्यों न मधुर स्वर वाला होऊँ ?

संस्कृत टीका—हिङ्गूज्ज्वला=प्रभूतहिङ्गुसहिता, जीरकभद्रमुस्ता=जीरकयुक्ता भद्रमुस्ता (नागरमोथा), वचायाः=उग्रगन्धायाः, ग्रन्थिः=काण्डः, सगुडा= गुडमिश्रिता, शुण्ठी=लोके सोठ इति ख्यातः शुष्कार्द्रकः, च, एषा=बहुद्रव्यसम्मिश्रण-

रूपा, गन्धयुक्ति =गन्धवत्पदार्थयोग , मया=शकारेण, सेविता=भुक्ता, (तर्हि), अहम्=सुस्वरार्जनकृतयत्न शकार इत्यर्थ , कथम्=कस्मात् कारणात्, मधुरस्वर= प्रियकण्ठध्वनि , न=नहि, (भवेयम्) इति ॥

समास एव व्याकरण—(१) हिङ्गूज्ज्वला=हिङ्गुभि उज्ज्वला वा। (२) सगुडा–गुडेन सहिता। मधुरस्वर –मधुर स्वर यस्य तादृश । (३) सेविता–सेव्+क्त+टाप्।

विवृति

१ 'सहस्रवेधि जतुक बाह्लीक हिङ्गु रामठम्' ,इत्यमर । २. जीरको जरणो जाजी' इत्यमर । ३ 'स्याद्भद्रमुस्तको गुन्द्रा' इति चामर । ४ वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका' इत्यमर । ५ 'गन्धयुक्ति' कहने से शकार का भाव यह है कि 'गन्ध' का सेवन करने से 'गन्धर्व' बन जाना ही चाहिए। ६ प्रस्तुत पद्य मे उपजाति छन्द है। लक्षण– "स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । उपेन्द्र वज्रा जतजास्ततो गौ। अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता ॥"

भाव, पुनरपि तावद्गास्यामि। [तथा करोति।] भाव भाव, श्रुत त्वया यन्मया गीतम्। [भावे, पुणो वि दाव गाइश्शम्। भावे भावे, शुद तुए ज मए गाइदम्।]

श्रीमन् ! तो मै फिर भी गाऊँगा। (गाकर) श्रीमन् ! श्रीमन् ! आपने सुना, जो मैंने गाया ?

विट.— किमुच्यते। गन्धर्वो भवान्।

विट— क्या कहना ! आप गन्धर्व हैं।

शकार– कथ गन्धर्वो न भवामि। [कध गन्धव्वे ण भवामि।]

शकार— क्यो न गन्धर्व होऊ ?

हिङ्गूज्ज्वल दत्तमरीचचूर्णं व्याघारित तैलघृतेन मिश्रम्।
भुक्त मया पारभृतीयमास कथ नाह मधुरस्वर इति ॥ १४ ॥
[हिंगुज्जले दिण्णमलीचचुण्णे वग्घालिदे तेल्लघिएण मिश्शे।
भुत्ते मए पालहुदीअमशे कध ण हग्गे मधुलश्शलेत्ति ॥१४॥]

अन्वय – हिङ्गूज्ज्वलम्, दत्तमरीचचूर्णम्, तैलघृतेन, मिश्रम्, व्याघारितम्, पारभृतीयमासम्, मया, भुक्तम्, अहम्, कथम्, न, मधुरस्वर , (भवेयम्), इति ॥१४॥

पदार्थ – हिङ्गूज्ज्वलम्=हीग से सफद दत्तमरीचचूर्णम्=काली मिर्च के चूर्ण स मिला हुआ, तैलघृतेन=तेल एव घी से, मिश्रम्=मिला हुआ, व्याघारितम्= छौंका या बघारा हुआ, पारभृतीयमांसम्=कोयल का मास, मया—मेरे द्वारा, भुक्तम् =खाया गया है, अहम्=मैं, कथम्=कैसे, न=नहीं, मधुरस्वर=मीठा स्वर वाला,

अनुवादः- हींग से सफेद, (काली) मिर्च के चूर्ण से युक्त, तेल एव घी से मिश्रित और बघारा हुआ कोकिल का मांस मैंने खाया है, तो मैं मधुर स्वर वाला क्यों न होऊँ ?

संस्कृत टीका- हिङ्गूज्ज्वलम्=प्रभूतहिङ्गुसुरभीकृतम्, दत्तमरीचचूर्णम्= तैलघृतेन=तैलयुक्तघृतेन, मिश्रम्=मिश्रितम्, व्याघारितम्=अभिघारितम्, पारभृतीयमांसम्=कोकिलमांसम्, मया=शकारेण, भुक्तम्=खादितम्, अहम्=शकार', कथम्=कस्मात्, न, मधुरस्वर=मधुरवचनम्

समास एवं व्याकरण- (१) हिङ्गूज्ज्वलम्-हिङ्गुभिः उज्ज्वलम् । दत्तमरीचचूर्णम्=दत्तम् मरीचानाम् चूर्णम् यस्मिन् तत् । तैलेनघृतम्-तैलसहितेन घृतेन तैलघृतेन अथवा तैलञ्च घृतञ्च तयो. समाहार. तेन तैलघृतेन । व्याघारितम्-विशेषेण आघारितम् । पारभृतीयमांसम्=परभृतः एव पारभृतः तस्येदं पारभृतीयम् मांसम् (कर्म० स०) ।

मधुरस्वरः:- मधुरः स्वरः यस्य तादृशः । (२) पारभृतीयम- परभृत+अण् +छ-ईय ।

विवृति

(१) 'मरिच कोलकं कृष्णमूषण धर्मपत्तनम्' इत्यमरः । (२) 'वनप्रियः परभृतः कोकिलः पिक इत्यपि' इत्यमरः । (३) प्रस्तुत पद्य मे उपजाति छन्द है ।

भाव, अद्यापि चेटो नागच्छति । [भावे, अज्जवि चेडे णा अच्छदि ।]

श्रीमन् ! अब भी चेट नही आ रहा है ।

विट.- स्वस्थो भवतु भवान् । सम्प्रत्येवागमिष्यति ।

विट— आप घबडाएँ नहीं अभी आ जायगा ।

[ततः प्रविशति प्रवहणाधिरूढा वसन्तसेना चेटश्च ।]

[तब गाडी पर बैठी हुई वसन्तसेना और चेट प्रवेश करते हैं ।]

चेट.- भीत. खल्वहम् । माध्याह्निक सूर्यः । नेदानीं कुपितो राजश्यालसस्थानको भविष्यति । तत्त्वरित वहामि । यात गावौ, यातम् । [भीदे क्खु हग्गे । मज्झण्हिके शुज्जे । मा दाणिं कुविदे लाअशालशठाणे हुविश्शदि । ता तुलिद वहामि । जाघ गोणा, जाघ ।]

इस समय राजा का साला सस्थानक क्रुद्ध न हो जाय । इसलिये शीघ्रता से गाड़ी चलाता हूँ । चलो बैलो, चलो ।

वसन्तसेना- हा धिक् हा धिक् । न खलु वर्धमानकस्याय स्वरसयोग' । किन्विदम् । किं नु खल्वार्यचारुदत्तेन वाहनपरिश्रम परिहरतान्यो मनुष्योऽन्यत्प्रवहण प्रेषित भविष्यति । स्फुरति दक्षिणं लोचनम् । वेपते मे हृदयम् । शून्या दिश । सर्वमेव

विसष्ठुलं पश्यामि। [हद्धी हद्धी। ण क्खु वड्ढमाणअस्स अअं सरसजोओ। किं णेदम्। किं णु क्खु अज्जचारुदत्तेण वाहणपडिस्सम परिहरन्तेण अण्णो मणुस्सो अण्ण पवहण पेसिद भविस्सदि। फुरदि दाहिण लोअणम्। वेवदि मे हिअअम्। सुण्णाओ दिसाओ। सव्व ज्जेव विसंठुल पेक्खामि।]

वसन्तसेना– हाय धिक्कार है, हाय ' .कार है। निश्चय ही यह वर्धमानक का स्वर नहीं है। यह क्या है? क्या वाहन की थकावट को बचाते हुए आर्य चारुदत्त ने दूसरा गाडीवान और दूसरी गाडी भेज दी होगी? दाहिना नेत्र फड़क रहा है, हृदय काँप रहा है। दिशाएँ सूनी लग रही हैं। सब कुछ विपरीत सा देख रही हूँ।

शकार.– (नेमिघोषमाकर्ण्य।) भाव भाव, आगतं प्रवहणम्। [भावे भावे, आगदे पवहणे।]

शकार– (गाडी का शब्द सुनकर) विद्वन्! विद्वन्! गाडी आ गई।

विटः- कथ जानासि।

विट– कैसे जानते हो?

शकारः– किं न पश्यति भावः। वृद्धशूकर इव घुरघुरायमाण लक्ष्यते।

[किं ण पेक्खदि भावे। बुड्ढशूअले विअ घुलघुलाअमाणे लक्खी अदि।]

शकार–क्या आप नहीं देख रहे हैं? वृद्ध शूकर की भाति घुर घुर शब्द करती (गाड़ी) ज्ञात हो रही है।

विट– (दृष्ट्वा।) साधु लक्षितम्। अयमागतः।

विट– [देखकर] ठीक जाना। यह आ गया।

शकार– पुत्रक स्थावरक चेट, आगतोऽसि। [पुत्तका थावलका चेडा, आगदे धि।]

शकार– बेटा स्थावरक चेट ! आ गए हो?

चेटः– अथ किम्। [अध इ।]

चेट– और क्या?

शकार–प्रवहणमप्यागतम्। [पवहणे वि आगदे।]

शकार– गाड़ी भी आ गई?

चेट– अथ किम्। [अध इ।]

चेट– और क्या?

शकार– गावावप्यागतौ। [गोणा वि आगदे।]

शकार– दोनों बैल भी आगए?

चेट.– अथ किम्। [अध इ।]

चेट– और क्या?

शकारः– त्वमप्यागत.। [तुम पि आगदे।]

शकार– तुम भी आगए ?

चेटः– [सहासम् ।] भट्टारक, अहमप्यागतः । [भट्टके, अहं पि आगदे ।]

चेट– [हंसी के साथ] स्वामी ! मैं भी आ गया ।

शकारः– तत्प्रवेशय प्रवहणम् । [ता पवेशेहि पवहणम् ।]

शकार– तो गाडी को भीतर ले आओ ।

चेटः– कतरेण मार्गेण । [कदलेण मग्गेण ।]

चेट– किस मार्ग से ?

शकारः–एतेनैव प्राकारखण्डेन । [एदेणज्जेव पगालखण्डेण]

शकार– इसी चहार दीवारी के खण्डित भाग से ।

चेटः– भट्टारक, वृषभौ म्रियेते । प्रवहणमपि भज्यते । अहमपि चेटो म्रिये । [भट्टके, गोणा मलेन्ति । पवहणे वि भज्जेदि । हग्गे वि चेडे मलामि ।]

चेट.– स्वामी ! दोनो बैल मर जायेंगे । गाडी भी टूट जायेगी । मैं सेवक भी मर जाऊंगा ।

शकारः—अरे, राजश्यालकोऽहम् । वृषभौ मृतौ, अपरौ क्रेष्यामि । प्रवहण भग्नम्, अपर कारयिष्यामि । त्व मृतः अन्यः प्रवहणवाहको भविष्यति । [अले, लाअशालके हग्गे गोणा मले, अवले कोणिश्शम् । पवहणे भग्गे, अवल घडाइश्शम् । तुमं मले, अण्णे पवहणवाहके हुविश्शदि ।]

शकार—अरे ! मैं राजश्यालक हूँ । बैल मर गये तो दूसरे खरीद लूंगा । गाड़ी टूट गई तो दूसरी खरीद लूंगा । तुम मर गये तो दूसरा गाड़ीवान हो जायेगा ।

चेट.—सर्वमुपपन्नं भविष्यति । अहमात्मीयो न भविष्यामि । [शव्व उववण्ण हुविश्शदि । हग्गे अत्तण केलके ण हुविश्शम् ।]

चेट—सब कुछ हो जायेगा, मैं अपने आप (स्वय) न रहूँगा ।

शकारः—अरे,'सर्वमपि नश्यतु । प्राकारखण्डेन प्रवेशय प्रवहणम् । [अले, शव्व पि णश्शदु । पगालखण्डेण पवेशेहि पवहणम् ।]

शकार–अरे ! सब कुछ नष्ट हो जाय, चहारदीवारी के टूटे भाग से गाड़ी को भीतर लाओ ।

चेटः—विभज्जरे प्रवहण, सम स्वामिना विभज्ज । अन्यत्प्रवहण भवतु । भट्टारक गत्वा निवेदयामि । (प्रविश्य ।) कथ न भग्नम् । भट्टारक, एतदुपस्थित प्रवहणम् । [विभज्ज ले पवहण, शम शामिणा विभज्ज । अण्णे पवहणे भोदु । भट्टके गदुअ णिवेदेमि । कधं ण भग्गे । भट्टके, एशे उवत्थिदे पवहणे ।]

चेट—टूट जा रे गाड़ी ! स्वामी के साथ टूट जा । दूसरी गाड़ी हो जाय । स्वामी के पास जाकर निवेदन करता हूं । [प्रवेश करके] क्यों नहीं टूटी ? स्वामी ! यह गाड़ी उपस्थित है ।

शकार—न छिन्नौ वृषभौ । न मृता रज्जव । त्वमपि न मृत । [ण छिण्णा गोणा । ण मला लज्ज । तुम पि ण मले ।]

शकार—बैल नही टूटे ? रस्सियाँ नहीं मरी ? तुम भी नहीं मरे ?

चेट—अथकिम् । [अध इ ।]

चेट—और क्या ?

शकार—भाव आगच्छ । प्रवहण पश्याव । भाव, त्वमपि मम गुरु परमगुरु । प्रेक्ष्यसे सादरकोऽभ्यन्तरक इति पुरस्करणीय इति त्व तावत्प्रवहणमग्रतोऽधिरोह । [भाव, आअच्छ । पवहण पेक्खामो । भावे, तुम पि मे गुलु पलमगुलु । पेक्खीअसि शादलके अब्भन्तलकेत्ति पुलक्कलणणीएत्ति तुम दाव पवहण अग्गदो अहिलुह ।]

शकार—विद्वान् ! आओ, गाडी को देखें । विद्वान् ! तुम भी मेरे गुरु हो परम गुरु हो । तुम आदरणीय अन्तरङ्ग तथा आगे करने के योग्य (पूज्य) के रूप में देखे जाते हो, इसलिए तुम पहले गाडी पर चढो ।

विट—एव भवतु । (इत्यारोहति ।)

विट—ऐसा ही हो । [यह कहकर चढ़ता है] ।

शकार—अथवा तिष्ठ त्वम् । तव पितृसबन्धि प्रवहणम्, येन त्वमग्रतोऽधिरोहसि । अह प्रवहणस्वामी । अग्रत प्रवहणमधिरोहामि । [अथवा चिट्ठ तुमम् । तुह बप्पकेलके पवहण, जेण तुम अग्गदो अहिलुहधि । हग्गे पवहणशामी । अग्गदो पवहण अहिलुहामि ।]

शकार—अथवा तुम रुक जाओ । तुम्हारे पिता की गाडी है, जो तुम पहले चढ़ते हो ? मैं गाड़ी का स्वामी हूँ, (अत) पहले मैं गाड़ी पर चढ़ता हूँ ।

विट—भवानेव ब्रवीति ।

विट—आपने ही ऐसा कहा था ।

शकार—यद्यप्यहमेव भणामि, तथापि तवैष आचार 'अधिरोह भट्टारक' इति भणितुम् । [जइ वि हग्गे एव्व भणामि, तथा वि तुह एशे आदले अहिलुह भट्टालके त्ति भणिदुम् ।]

शकार—यद्यपि मैंने ऐसा कहा, तथापि स्वामी चढ़िये' यह कहना तुम्हारा शिष्टाचार था ।

विट—आरोहतु भवान् ।

विट—आप चढ़िये ।

शकार—एष साम्प्रतमधिरोहामि । पुत्रक स्थावरक चेट, परिवर्तय प्रवहणम् । [एशे शपद अहिलुहामि । पुत्तका थावलका चेडा पलिवत्तावहि पवहणम् ।]

शकार—अच्छा, अब यह मैं चढ़ता हूँ । बेटे ! स्थावरक चेट ! गाड़ी को घुमाओ ।

चेटः-(परावर्त्य ।) अधिरोहतु भट्टारकः । [अहिलुहदु भट्टालके ।]

चेट—[घुमाकर] स्वामी चढ़ें ।

शकारः—(अधिरुह्यावलोक्य च शङ्कां नाटयित्वा त्वरितमवतीर्य विट कण्ठे ऽवलम्ब्य ।) भाव भाव, मृतोऽसि मृतोऽसि । प्रवहणाधिरूढा राक्षसी चौरो वा प्रतिवसति । तद्यदि राक्षसी, तदोभावपि मुषितौ । अथ चौरः तदोभावपि खादितौ । [भावे भावे, मलेध्शि मलेशि । पवहणाधिरूढा लक्खशी चोले वा पडिवशदि । ताजइ लक्खशी, तदो उभे वि मूशे । अध चोले, तदो उभे वि खज्जे ।]

शकार—[चढ़कर और देखकर, शङ्का का अभिनय करके, शीघ्र उतरकर विट के गले लगकर] विद्वान् विद्वान् ! मर गये हो, मर गये हो । गाड़ी पर चढ़ी हुई राक्षसी है अथवा चोर निवास करता है । तब यदि राक्षसी है तो (हम) दोनों ही लुट गये, यदि चोर हैं तो दोनों ही खा लिये गए ।

विटः—न भेतव्यम् । कुतोऽत्र वृषभयाने राक्षस्याः संचारः । मा नाम ते मध्याह्नार्कतापच्छिन्नदृष्टेः स्थावरकस्य सकञ्चुकां छायां दृष्ट्वा भ्रान्ति रुत्पन्ना ।

विट—डरना नहीं चाहिए । यहाँ बैलगाड़ी में राक्षसी का आगमन कहाँ से (हो सकता है) ? ऐसा न हो कि दोपहर के सूर्य के ताप से चकाचौंध दृष्टि वाले तुम्हें, स्थावरक की कञ्चुक सहित छाया को देखकर, भ्रम उत्पन्न हो गया हो ।

शकारः—पुत्रक स्थावरक चेट, जीवसि । [पुत्तका थावलआ चेडा, जावेशि ।]

शकार—पुत्र स्थावरक चेट ! (क्या तुम) जीवित हो ?

चेटः—अथ किम् [अध इं ।]

चेट—और क्या ?

शकारः—भाव, प्रवहणाधिरूढा स्त्री प्रतिवसति । तदवलोकय । [भावे, पवहणाधिलूढा इत्थिआ पडिवशदि । ता अवलोएहि ।]

शकार—विद्वान् ! गाड़ी पर चढ़ कर स्त्री बैठी है । देखो तो ।

विवृति

(१) स्वस्थः-शान्त । (२) भीतः—डरा हुआ । (३) माध्याह्निकः-दोपहर का । अह्नः मध्यम इति मध्याह्नः । 'सर्वोऽप्येक देशोऽह्ना समस्यते । संख्या विसाय इति ज्ञापकात् ।' सिद्धान्त कौमुदी । मध्याह्नम् उपगतः इति माध्याह्निकः । मध्याह्न+ ठञ् (इक्) । टच् तथा अह्नादेश । मध्यम् अहः मध्याह्नः । (४) वाहनपरिश्रमम्= बैलों के परिश्रम को । वाहनयोः परिश्रमम् । (५) परिहरता=बचाते हुए । परि+ हृ+शतृ । (६) विसंष्ठुलम्=विपरीत । स्फुरति=फड़क रहा है । (७) वेपते= काँप रहा है । (८) नेमिघोषम्=गाड़ी के पहिये के किनारे के शब्द को । 'चक्राधारः प्रधिर्नेमिः' इत्यमरः । (९) घुरघुरायमाणम्=घुर घुर शब्द करता हुआ । 'घुर घुर' इत्य व्यक्त शब्दं करोति इति-घुरघुर+क्यप् (नामधातु)+शानच् । 'वाक्यपः' का

वैकल्पिक रूप । (१०) कतरेण=किस । (११) प्राकारखण्डेन=चहारदीवारी के टूटे हुए भाग से । (१२) लक्षितम्=देखा । (१३) उपपन्नम्=प्राप्त । उप+पद्+क्त। (१४) आत्मीय.=अपना । आत्मन्+छ (इय) । 'आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धि स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च ।' इत्यमर । (१५) विमञ्ज=छिन्न भिन्न होजा । (१६) सादरक= आदरपूर्वक । (१७) अभ्यन्तरक –हृदय की बात जानने वाला । (१८) पुरस्करणीय =आगे करने योग्य । पुरस्+कृ+अनीय । (१९) अग्रत =आगे । (२०) आचार =कर्तव्य । (२१) परावर्त्य=घुमाकर । (२२) अवलम्ब्य=लिपटकर। (२३) उभौ=दोनो । (२४) मुषितौ=ठगे गए । (२५) खादितौ=खाये गए। (२६) सचार =यात्रा । (२७) मध्याह्नार्कतापच्छिन्नदृष्टे =दोपहर के सूर्य की उष्णता से चकाचौंध नेत्र वाले । (२८)सकञ्चुकाम्=कुर्तावाली । (२९) छायाम्= प्रतिबिम्ब । (३०) प्रवहणान्त =गाडी के भीतर । (३१) सम्+चर्+घञ्= सञ्चार (३२) भ्रम+क्तिन्=भ्रान्ति । (३३) 'छाया सूर्यप्रिया कान्ति प्रतिबिम्बमनातपः । इत्यमर ।

विट – कथ स्त्री ।

विट– क्या स्त्री ?

अवनतशिरस. प्रयाम शीघ्र पथि वृषभा इव वर्षताडिताक्षः ।
मम हि सदसि गौरवप्रियस्य कुलजनदर्शनकातर हि चक्षु ॥ १५ ॥

अन्वय — (तदा), पथि, वर्षताडिताक्षा, वृषभाः, इव, अवनतशिरस, (वयम्) शीघ्रम्, प्रयाम, हि, सदसि, गौरवप्रियस्य, मम, चक्षुः, कुलजनदर्शनकातरम् हि ॥ १५ ॥

पदार्थ – पथि=रास्ते मे, वर्षताडिताक्षा =वर्षा से ताडित आंखो वाली, वृषभा =बैलो (के), अवनत शिरस =सिर नीचा किये हुए, प्रयाम=भाग चलें, सदसि=समाज मे, गौरवप्रियस्य=जिसे प्रतिष्ठा प्रिय हो, प्रतिष्ठा चाहने वाले, कुलजनदर्शनकातरम्=कुलीन स्त्रियो को देखने मे डरपोक ।

अनुवाद —(तब तो) मार्ग मे वर्षा (की धारा) से आहत नेत्रा वाले बैलों के समान मस्तक नीचा किये हुए मैं शीघ्र चलता हूँ, क्योकि समाज मे प्रतिष्ठा प्रिय मेरी दृष्टि कुलीन स्त्रियों को देखने मे भीरु है ।

संस्कृत टीका–पथि=मार्गे, वर्षताडिताक्षा =वर्षणबिन्दुनिरुद्धनयना, वृषभा = बलीवर्दा, इव=यथा, अवनतशिरसः=अधोमुखा, (वयम्) शीघ्रम्=झटिति, प्रयाम=दूरतो गच्छाम, हि=यत, सदसि=सभायाम्, गौरवप्रियस्य=लब्धप्रतिष्ठस्य, मम=विटस्य, चक्षुः=नेत्रम्, कुलजनदर्शनकातरम्=कुलवधूदर्शविमुखम् ।

समास और व्याकरण—(१) वर्षताडिताक्षा.— वर्षेण ताडितानि अक्षीणि

येषा तथोक्ता. । अवनतशिरस.— अवनतानि शिरासि येषाम् तथाभूता. । गौरवप्रियस्य गौरवम् प्रियम् यस्य तादृशस्य । कुलजनदर्शनकातरम्-कुलजनस्य दर्शने कातरम् ।

विवृति

(१) वर्षा की बौछारो से ताडित नेत्रो वाले बैल सिर नीचा करके चलते हैं। उसी प्रकार एक शिष्ट पुरुष परनारियो की ओर घूर कर नही देखता अपितु सिर झुकाकर चलता है, विद भी समाज मे गौरव चाहता है, अत उसका यह स्वभाव है। (२) यहाँ प्रसङ्ग के अनुसार 'कुलजन' का तात्पर्य कुलीन स्त्रियो से है। (३) यहाँ नेत्र कातर रूप कारण से अवनत शिर प्रयाण रूप कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तर-न्यास अलकार है। 'वृषभा इव' मे श्रौती है। (४) पुष्पिताग्रा छन्द है।

वसन्तसेना :— (सविस्मयात्मगतम् ।) कथ मम नयनयोरायासकर एव राजश्याल: । तत्सशयितास्मि मन्दभाग्या । एतदिदानी मम मन्दभागिन्या ऊषरक्षेत्र-पतित इव बीजमुष्टिर्निष्फलमिहागमन सवृत्तम् । तत्किमत्र करिष्यामि । [कर्ध मम णअणाण आआसअरो ज्जेव राअसालओ । ता ससइदम्हि मन्दभाआ । एसो दाणि मम मन्दभाइणीए ऊसरक्खेत्तपदो विअ बीअमुट्ठी णिप्फलो इध आगमणो सवुत्तो । ता किं एत्थ करइस्सम् ।]

[आश्चर्य के साथ अपने आप] क्या मेरे नेत्रो को कष्ट देने वाला यह यही राजा का साला है ? तो मैं अभागिन सशय में पड़ गई हूँ। यह अब मुझ अभागिन का यहा आना ऊसर भूमि मे पड़ी हुई बीज की मुट्ठी के समान निष्फल हो गया। तो यहाँ क्या करूँ ?

शकार.— कातर: खल्वेष वृद्धचेट: प्रवहण नायतीकरोति । चेट आलोकय प्रवहणम् । [कादले क्खु एशे वुड्ढचेडे पवहण णाअदीकलेदि । चेडे, आलोएहि पवहणम् ।]

शकार—भयभीत यह बूढा चेट गाडी को नहीं देखता है। विद्वान् ! तुम गाडी को देखो।

विवृति

१ आयासकर — कष्ट देने वाला । २ सशयिता=सन्देह वाली । ३. मन्द भाग्या=अभागिन । ४. ऊपरक्षेत्रपतित =ऊपर खेत मे पड़ी हुई । ५ बीजपुष्टि= बीज की मुट्ठी । ६ सवृत्तम्=हो गया है । ७. कातरः=भयभीत । ८ अक्षिभ्याम्= नेत्रो से । ९. भक्ष्यते=खाया जाता है । । १० प्रेक्ष्यते=देखा जाता है । ११. अनुसरति=पीछा कर रही है । १२. 'स्यादूष क्षारमृत्तिका' इत्यमरः ।

विट.— (वसन्तसेना दृष्ट्वा । सविषादमात्मगतम् ।) कथमये, मृगी व्याघ्रमनुसरति । भो , कष्टम् ।

विट— [वसन्त सेना को देखकर, दु खपूर्वक अपने आप] अरे ! कैसे यह हरिणी व्याघ्र का अनुसरण कर रही है ! अरे ! खेद है—

शरच्चन्द्रप्रतीकाश पुलिनान्तरशायिनम् ।
हसी हस परित्यज्य वायस समुपस्थिता ॥ १६ ॥

अन्वयः— हसी शरच्चन्द्र प्रतीकाशम्, पुलिनान्तरशायिनम्, हसम्, परित्यज्य, वायसम्, समुपस्थिता ॥ १६ ॥

पदार्थ— हसी=हंस की स्त्री, शरच्चन्द्रप्रतीकाशम्=शरद ऋतु के चन्द्रमा के सदृश, पुलिनान्तरशायिनम्=नदी के किनारे वाली भूमि मे सोये हुए, हसम्=हस को, परित्यज्य=छोडकर, वायसम्=कौवे के पास, समुपस्थिता=आ गई ।

अनुवाद— हसी शरदकालीन चन्द्रमा के समान (श्वेत) बालुका तट पर सोये हुए हस को त्याग कर काक के समीप आ गई ॥

संस्कृत टीका—हसी=मराली, शरच्चन्द्र०=शारदशशिसन्निभम्, पुलिनान्तरशायिनम्=तोयोत्थितस्वच्छमृदुसैकतभूमिमध्यवासिनम्, हसम्=मरालम्, परित्यज्य= विसृज्य, वायसम्=काकम्, समुपस्थिता=सगता ।

समास और व्याकरण— (१) शरच्चन्द्रप्रतीकाशम्— शरदः चन्द्रः तस्य प्रतीकाशम् । पुलिनान्तरशायिनम्–पुलिनस्य अन्तरे शेते इति तम् । (२) परित्यज्य- परि+त्यज्+क्त्वा → (ल्यप्) । (३) समुपस्थिता–सम्+उप स्था+ क्त+टाप् ।

विवृत्ति

(१) 'निभसङ्काश—नीकाश प्रतीकाशोपमादयः' इत्यमरः । (२) 'तोयोत्थितम् तत्पुलिनम्' इत्यमरः । (३) भाव यह है कि वसन्तसेना निर्मल यश वाले तथा निरापद स्थान पर स्थित चारुदत्त को छोडकर शकार के पास आ पहुँची है । (४) 'पुलिन' का प्रतीयमान अर्थ है— निर्दोष एव पवित्र जीवन । (५) प्रस्तुत पद्य मे अप्रस्तुत हसी, हस और काक का वर्णन करके प्रस्तुत वसन्त सेना चारुदत्त और शकार का वर्णन

किया गया है, अतः अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है। (६) 'शरच्चन्द्रप्रतीकाशम्' इस अंश में लुप्तोपमालङ्कार होने से दोनों अलङ्कारों का सङ्कर है। [७] अभिप्रायाख्य नामक नाट्यलक्षण है— 'अभिप्रायस्तु सादृश्याददभुतार्थस्य कल्पना' सा० द० ॥ [८] पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण—'युजोश्चतुर्थतोजेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ॥'

[जनान्तिकम् ।] वसन्तसेने, न युक्तमिदम्, नापि सदृशमिदम् ।

[हाथ की ओट में] वसन्तसेने ! यह उचित नहीं, यह अनुरूप भी नहीं ।

पूर्वं मानादवज्ञाय द्रव्यार्थे जननीवशात् ॥

वसन्तसेना— न। [ण।] (इति शिरश्चालयति।)

विटः—

अशौण्डीर्यस्वभावेन वेशभावेन मन्यते ॥ १७ ॥

अन्वय :— पूर्वम्, मानात्, अवज्ञाय, [सम्प्रति], जननीवशात्, द्रव्यार्थे, [आगता, असि, अथवा] अशौण्डीर्यस्वभावेन, वेशभावेन, [आगता, असि, इति] मन्यते ॥ १७ ॥

पदार्थ— पूर्वम्=पहले, [जब कि दस हजार सोने की मोहरों के साथ गाड़ी आयी थी], मानात्=गर्व के कारण, अवज्ञाय=दुत्कार कर, जननीवशात्=माता के कारण अर्थात् माता के कहने से, द्रव्यार्थे=धन के लिए, अशौण्डीर्यस्वभावेन=स्वाभिमान से रहित स्वभाव वाले, वेशभावेन=वेश्यापन के कारण, मन्यते=माना जा रहा है।

अनुवाद:— पहले गर्व से [शकार का] अनादर करके [अब] माता के कहने से द्रव्य के लिए [आई हो] –

वसन्तसेना—नहीं। [यह कह कर सिर हिलाती है]

विट— [तब] अनुदार स्वभाव वाले वेश्यापन के कारण [आई हो], ऐसा मानता हूँ।

संस्कृत टीका—पूर्वम्=पुरा, मानात्=गर्वात् [शकारम्] अवज्ञाय=अनादृत्य, [सम्प्रति] जननीवशात्=मातुराज्ञावशात्, द्रव्यार्थे=धनार्थम्, [आगता, असि, अथवा] अशौण्डीर्यस्वभावेन=अनौदार्यस्वभावेन, वेशभावेन=वेश्यात्वेन, [आगता असीति) मन्यते=स्वीक्रियते, अस्माभिः इति शेषः ॥

समास एवं व्याकरण (१) अशौण्डीर्यस्वभावेन=अशौण्डीर्यम् स्वभावः यस्य तादृशेन। (२) द्रव्यार्थे—निमित्त में सप्तमी है। (३) अवज्ञाय—अव+ज्ञा+क्त्वा (ल्यप्)। (४) मन्यते—मन्+यक्+लट्। (५) मानात्—मन्+घञ्।

विवृति

(१) भाव यह है कि विट समझता है कि न चाहती हुई भी वसन्तसेना

माता के आदेश से धन के लिए शकार के समीप आई है । किन्तु जब वह इस बात पर सिर हिला देती तो विट कहता है— अशौण्डीर्य० — अर्थात् मैं समझता हूँ कि वेश्या के जीवन में गौरव का ध्यान नहीं रक्खा जाता, अतः तुम आ गई हो। २. 'अशौण्डीर्य०' यह वेशभावेन का विशेषण है । ३. कतिपय व्याख्याकारों के अनुसार मन्यते का अर्थ है– 'शकार का सम्मान किया जा रहा है ।' ४. प्रस्तुत पद्य में वक्ता का वसन्तसेना के अपमान जनित विषाद से अत्यन्त व्याकुलता के कारण 'त्वया' यह प्रधान भूत कर्तृ पद का परित्याग कर, कहा हुआ होने पर भी उसकी उक्ति में होने से न्यूनपदता दोष शङ्का के योग्य नहीं है– 'उत्कावानन्दमग्नादे' । सा० द० ॥ के अनुसार, विषाद का भी सग्रह से, उनका गुणत्व स्वीकार किया जाता है ।
५ पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण— 'युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।'
ननूक्तमेव मया भवती प्रति—'सममुपचर भद्रे सुप्रिय चाप्रिय च ।'
किन्तु मैंने आपसे पहले ही कहा था—'भद्रे! प्रिय अथवा अप्रिय दोनों की समान रूप से सेवा करो ।'

वसन्तसेना– प्रवहण विपर्यसेनागता । शरणागतास्मि । [पवहणविपज्जासेण आगदा । सरणागदम्हि ।]

वसन्तसेना— गाड़ी के बदलने से आ गई हूँ । शरणागत हूँ ।

विट— न भेतव्य न भेतव्यम् । भवतु । एनं वञ्चयामि । (शकारमुपगम्य ।) काणेलीमात सत्य राक्षस्येवात्र प्रतिवसति ।

विट— मत डरो, मत डरो । अच्छा इसको ठगता हूँ । [शकार के समीप जाकर] पुंश्चली-पुत्र! सचमुच राक्षसी ही यहाँ निवास करती है ।

शकार– भाव भाव, यदि राक्षसी प्रतिवसति, तत्कथ न त्वा मुष्णाति । अथ चोरः, तदा किं त्व न भक्षितः । [भावे भावे, जइ लक्खशीवशदि, ता कीश ण तुमं मूशेदि । अधचोले, ता किं तुम ण भक्खिदे ।]

शकार– विद्वान् विद्वान् ! यदि राक्षसी निवास करती है, तो तुम्हें क्यों नहीं चुराया ? और यदि चोर है तो तुम्हें क्यो नहीं खाया ?

विट– किमनेन निरूपितेन । यदि पुनरुद्यानपरम्परया पद्भ्यामेवनगरीमुज्जयिनीं प्रविशाव., तदा को दोषः स्यात् ।

विट— इस विचार से क्या लाभ ? यदि उपवन की कतार से होकर पैदल ही उज्जयिनी नगरी में प्रवेश करें तो क्या दोष है ?

शकार– एव कृते किं भवति । [एव किदे किं भोदि ।]

शकार– ऐसा करने से क्या होगा ?

विट– एव कृते व्यायाम. सेवितो घुर्याणां च परिश्रमः परिहृतो भवति ।

विट– ऐसा करने से व्यायाम हो जायेगा और बैलों का परिश्रम बच जायेगा।

शकार– एवं भवतु। स्थावरक चेट, नय प्रवहणम्। अथवा तिष्ठ तिष्ठ। देवतानां ब्राह्मणानां चाग्रतश्चरणेन गच्छामि। नहि नहि। प्रवहणमधिरुह्य गच्छामि, येन दूरतो मां प्रेक्ष्य भणिष्यन्ति–'एष स राष्ट्रीयश्यालो भट्टारको गच्छति'। [एवं भोदु। थावलआचेडा, णेहि पवहणम्। अथवा चिश्ट चिश्ट। देवदाणं बम्हणाण च अग्गदो चलणेण गच्छामि। णहि णहि। पवहाणं अहिलुहिअ गच्छामि, जेण दूलदो मं पेक्खिअ भणिश्शन्ति– 'एशे शे लश्टिअशाले भश्टालके गच्छदि'।]

शकार ऐसा ही हो। स्थावरक चेट[1] गाड़ी लाओ। अथवा ठहर, ठहर। देवताओं तथा ब्राह्मणों के आगे पैदल चलता हूँ। नहीं नहीं, नहीं नहीं, गाड़ी पर चढ़ कर चलता हूँ, जिससे दूर से (ही) मुझे देखकर लोग कहेंगे–'यह वह हमारा स्वामी का साला जा रहा है।'

विट–(स्वगतम्।) दुष्करं विषमौषधीकर्तुम्। भवतु। एवं तावत्। (प्रकाशम्) काणेलीमातः, एषा वसन्तसेना भवन्तमभिसारयितुमागता।

विट– अपने आप विष की औषध बनाना कठिन है। अच्छा तो इस प्रकार [प्रकट रूपमें] पुश्चली-पुत्र! यह वसन्त सेना आपसे अभिसार करने आयी है।

वसन्तसेना– शान्तं पापम्। शान्तं पापम्। [सन्तं पावम् सन्तं पावम्।]

वसन्तसेना– पाप शान्त हो, पाप शान्त हो।

शकार– सहर्षम् भाव भाव, मां प्रवरपुरुषं मनुष्यं वासुदेवकम्। [भावे भावे, मं पवलपुलिशं मणुश्शं वाशुदेवकम्।

शकार– [हर्ष के साथ] विद्वान् विद्वान्! मुझ श्रेष्ठ पुरुष मनुष्य वासुदेव से।

विट– अथ किम्।

विट– और क्या?

शकार– तेन ह्यपूर्वा श्रीः समासादिता। तस्मिन्काले मया रोषिता, साम्प्रतं पादयोः पतित्वा प्रसादयामि। [तेण हि अपुव्वा शिली शमाशादिदा। तश्शिं काले मए लोकाविदा, शंपदं पादेशु पडिअ पशादेमि।]

शकार– तब तो अपूर्व लक्ष्मी प्राप्त की है। उस समय मैंने (उसे) कुपित कर दिया था, अब पैरों पर गिरकर प्रसन्न करूँगा।

विट– साध्वमिहितम्।

विट– ठीक कहा।

विवृति

१ प्रवहणविपर्यासेन–गाड़ी के बदल जाने से। प्रवहणस्य विपर्यासेन इति। 'स्याद्व्यत्यासो विपर्यासो व्यत्ययश्च विपर्यये' इत्यमरः।

२ वञ्चयामि–ठगता हूँ । ३ निरूपितेन–विचार करने से । ४ उद्यानपरम्परया–बगीचे की पंक्ति से । ५ पद्भ्याम्–पैदल । ६ धुर्याणाम्–बैलों का । धुर वहन्ति इति धुर्या । 'धूर्वहे धुर्यधौरे धुरीणा' इत्यमर । धुर+यत् । ढक् वा । ७ परिहृत–छोड़ा हुआ । परि+हृ+क्त । ८ राष्ट्रियश्याल राजा का साला । राष्ट्र+घ (इय) = राष्ट्रिय तस्य श्याल । ९ औषधीकर्तुम्–दवा बनाना । १० प्रवरपुरुषम्–श्रेष्ठ पुरुष । ११ वासुदेवकम्–श्री कृष्ण तुल्य । वासुदेव इव इति वासुदेवक । वासुदेव+कन् । १२ रोषिता–रुष्ट की गई थी । १३ प्रसादयामि–मनाता हूँ । १४ विज्ञप्तिम्–विनती को । १५ अभिहितम्–कहा गया ।

शकार – एष पादयो पतामि । (इति वसन्तसेनामुपसृत्य ।) मात, अम्बिके, शृणु मम विज्ञप्तिम् । [एशे पादेशु पडेमि । अत्तिके, अम्बिके शुणु मम विण्णत्तिम ।]

शकार—यह मैं तुम्हारे पैरों पर गिरता हूँ । [यह कहकर वसन्तसेना के समीप जाकर] माता अम्बिका मेरा निवेदन सुनो ।

एष पतामि चरणयोर्विशालनेत्रे ! हस्ताञ्जलिं दशनखे तव शुद्धदन्ति !
यत्तव मयापकृत मदनातुरेण तत्क्षामितासि वरगात्रि ! तवास्मि दास ॥१८॥
एशे पडामि चलणेशु विशालणेत्ते !
हस्तंजलिं दशणहे तव शुद्धदति !
ज त मए अवकिद मदणातुलेण
त खम्मिदाशि वलगत्ति ! तव म्हि दाशे ॥१८॥

अन्वय– हे विशालनेत्रे ! एष, अहम्, चरणयो, पतामि, हे शुद्धदन्ति ! तव (चरणयो,) दशनखे, हस्ताञ्जलिम् (करोमि), हे वरगात्रि ! मदनातुरेण, मया, यत्, तव, अपकृतम् तत क्षामिता, असि, (अहम्) तव दास, अस्मि ॥१८॥

पदार्थ— हे विशालनेत्रे=हे बड़ी आँखों वाली ! हे शुद्धदन्ति ! =हे उज्ज्वल दाँतों वाली, दश नखे=दशनखों पर हस्ताञ्जलिम्=हाथों की अजलि को, हे वरगात्रि ! हे सलोन शरीर वाली !, मदनातुरेण=कामदेव से पीडित, मया=मेरे द्वारा, अपकृतम्=बुरा किया गया है, क्षामिता=क्षमा करायी गयी, दास=दास, अस्मि=हूँ ॥

अनुवाद— हे विशाल नेत्रों वाली ! यह मैं चरणों पर गिरता हूँ । हे निर्मल दाँतों वाली ! तुम्हारे चरणों के दश नखों पर (अपनी) हस्ताञ्जलि रखता हूँ । हे उत्तम अंगों वाली ! काम पीडित मैंने जो तुम्हारा अहित किया है, उससे क्षमा कराता हूँ । मैं तुम्हारा सेवक हूँ ।

संस्कृत टीका— हे विशाल नेत्रे ! हे विशाल लोचने ! एष =अयम्, (शकारोऽहम्) चरणयो =पादयो , पतामि=पतितो भवामि, हे शुद्धदन्ति ! =हे

शुभ्रदशने ! तव=ते, (चरणयोः) दशाखे=दशनखरे, हस्ताञ्जलिम्=करसम्पुटम् करोमीति शेषः, हे वरगात्रि! =हे सुकोमलाङ्गि! मदनातुरेण=कामपीडितेन, मया शकारेण इत्यर्थः; यत्, तव=भवत्याः, अपकृतम्=अपकारः कृतः, तत् क्षामिता=मर्षिता, असि, तव, दासः=सेवकः, अस्मि=भवामि ॥

समास एवं व्याकरण—(१) विशाल नेत्रे !—विशाले नेत्रे यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ । शुद्धदन्ति—शुद्धाः दन्ताः यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ । दशनखे—दशनखाः यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ । (२) क्षामिता—क्षम+णिच्+क्त । पतामि—पत्+लट् । अपकृतम्—अप+कृ+क्त । असि—अस्+लट् । । अस्मि—अस्+लट् । (३) वरगात्रि—वराणि गात्राणि यस्याः, तत्सम्बोधने ।

विवृति

(१) शुद्धदन्ति—दन्तादेशः भाव पक्ष में यह रूप बनेगा । (२) 'दशनखे' में यहाँ पर पाक्षिक ङीप् का अभाव है । (३) यहाँ पर 'अङ्गगात्र०' वार्तिक से ङीप् है । (४) वसन्ततिलका छन्द है । 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।'

वसन्तसेना—(सक्रोधम् ।) अपेहि । अनार्यं मन्त्रयसि । (इति पादेन ताडयति ।) अवेहि । अणज्ज मन्तेसि ।

वसन्तसेना—[क्रोध सहित] दूर हटो, अनार्य बात कहते हो । [यह कह कर पैरों से मारती है]

शकारः—(सक्रोधम् ।)

शकार—[क्रोध सहित]

यच्चुम्बितमम्बिकामातृकाभिर्गतं न देवानामपि यत्प्रणामम् ।
तत्पातितं पादतलेन मुण्डं वने शृगालेन यथा मृताङ्गम् ॥१९॥
[जं चुंबिदे अंबिकमादुकेहिं गदे ण देवाण वि जे पणामं ।
शे पाडिदे पादतलेण मुंडे वणे शिआलेण जधा मुदंगे ॥१९॥]

अन्वयः—यत्, अम्बिकामातृकाभिः, चुम्बितम्, यत्, देवानाम्, अपि, प्रणामम्, न, गतम्, तत्, मुण्डम्, (त्वया), पादतलेन, (तथैव), पातितम्, यथा, वने शृगालेन, मृताङ्गम् ॥१९॥

पदार्थ :—यत्=जो, अम्बिकामातृकाभिः=माताओं के द्वारा, चुम्बितम्=चूमा गया, देवानाम्=देवताओं के, प्रणामम्=प्रणाम को, मुण्डम्=मस्तक, पादतलेन=पैर के तलवे से, पातितम्=गिरा दिया गया, शृगालेन=सियार के द्वारा, मृताङ्गम्=मरा शरीर ।

अनुवाद :—जिसका अम्बा आदि माताओं ने चुम्बन किया है । जो देवताओं के

समक्ष भी नही झुका है उस (मेरे) मस्तक को (तुमने) चरण तल से (उसी प्रकार) गिरा दिया जैसे अरण्य मे सियार मृतक शरीर को (गिराता है)॥

संस्कृत टीका—यत्=(मुण्डम्), अम्बिकामातृकामि=जननीभि, चुम्बितम्=अचुम्बि, यत्, देवानामपि=देवतानामपि, प्रणामम्=नतभावम्, न गतम्=न प्राप्तम्, तत् मुण्डम्=तत् मस्तकम्, त्वया पादतलेन=चरणेन, (तथैव) पातितम्=दलितम्, यथा वने=अरण्ये, शृगालेन=जम्बुकेन मृताङ्गम्=मृतशरीरम् ॥

समास एव व्याकरण—[१] पादतलेन=पादस्य तलेन । मृताङ्गम्=मृतस्य अङ्गम् । [२] मातृका—मातृ+क+टाप् । चुम्बितम—चुम्ब+क्त । प्रणामम्—प्र+नम्+घञ् । पातितम्=पत्+णिच्+क्त ।

विवृति

[१] अम्बिका और मातृका शब्द समानार्थक होने से पुनरुक्त है किन्तु शकारोक्ति होने स क्षम्य है । [२] 'शृगालवञ्चक क्रोष्टुफेरुफेरव जम्बुका' इत्यमर । [३] उपमालङ्कार है । [४] उपजाति छन्द है ।

अरे स्थावरक चेट, कुत्र त्वयैषा समासादिता । [अले थावलआ चेडा, कहिं तुए एशा शमाशादिदा ।]

अरे स्थावरक चेट ! तुमने इसे कहाँ प्राप्त किया ?

चेट '—भट्टक, ग्रामशकटै रुद्धो राजमार्ग । तदा चारुदत्तस्य वृक्षवाटिकाया प्रवहण स्थापयित्वा तत्रावतीर्य यावच्चक्रपरिवृत्ति करोमि, तावदषा प्रवहणविपर्यासेनहारूढेति तर्कयामि । [भट्टके, गामशअलेहिं लुद्धे लाअमग्गे । तदा चालुदत्तस्स लुक्खवाडिआए पवहण थाविअ तहिं ओदलिअ जाव चक्कपलिवट्टिं कलेमि, ताव एशा पावहणविपज्जासेण इह आलूढे त्ति तक्केमि ।]

चेट—स्वामी ! ग्राम की गाड़ियो से राजमार्ग रुक गया । तब चारुदत्त की वृक्षवाटिका म गाडी को खड़ा करके, वहाँ उतर कर जब तक पहिये को परिवर्तित किया, तब तक यह गाडी के बदलने म (इस पर) चढ़ गई—ऐसा अनुमान करता हूँ ।

शकार—कथ प्रवहणविपर्यासेनागता । न मामभिसारयितुम् । तदवतरावतर मदीयात्प्रवहणात् । त्व त दरिद्र सार्थवाहपुत्रमभिसारयसि । मदीयौ गावौ वाहयसि । तदवतरावतर गर्भदासि, अवतरावतर । [कथ पवहणविपज्जासेण आगदा । ण म अहिशालिदुम् । ता ओदल ओदल ममकेलकादो पवहणादो । तुम त दलिद्दशत्थवाहपुत्त अहिशालेशि । ममकेलकाइ गोणाइ वाहेशि । ता ओदल ओदल गब्भदाशि ओदल ओदल ।]

शकार—क्या ? गाड़ी की भूल से आ गई है मुझसे अभिसरण के लिए नहीं ! तो उतर उतर मेरी गाड़ी से । तू उस दरिद्र व्यापारी के पुत्र [चारुदत्त] के प्रति

अभिसरण कर रही है और मेरे बैलों से [अपना भार] वहन कराती है। तो उतर-उतर जन्म की दासी! उतर उतर।

वसन्तसेना–तमार्यचारुदत्तमभिसारयसीति यत्सत्यम्, अलकृतास्म्यमुना वचनेन। साप्रत यदुभवति तद्भवति। [त अज्जचारुदत्त अहिसारेसि त्ति ज सच्चम्, अलकिदम्हि इमिणा वअणेण। सपद ज भोदु त भोदु।]

वसन्तसेना–उस आर्य चारुदत्त के प्रति अभिसरण करती है—सचमुच ही इस कथन से मैं अङ्कृत हो गई हूँ। अब जो हो, सो हो।

विवृति

१ समासादिता–पाई गई। २ तर्कयामि–अनुमान करता हूँ। ३. चक्रपरिवृत्तिम्–पहिए को घुमाना। ४ अभिसारयितुम्–अभिसार करने के लिए। ५ गर्भदासि–जन्म से दासी। ६. अवतर–उतरो।

एताभ्या ते दशनखोत्पलमण्डलाभ्या,
हस्ताभ्या चाटुशतताडनलम्पटाभ्याम्।
कर्षामि ते वरतनु निजयानका-
त्केशेपु वालिदयितामिव यथा जटायु ॥२०

[एदेहि दे दशणहुप्पलमडलेहिं,
हत्थेहि चाडुशदताडणलपडेहिं।
कट्टामि दे वलतणु णिअजाणकादो केशेशु,
वालिदइअ वि जहा जडाऊ ॥२०॥]

अन्वय—नखनखोत्पलमण्डलाभ्याम्, चाटुशतताडनलम्पटाभ्याम्, एताभ्याम्, हस्ताभ्याम्, केशेषु, [गृहीत्वा], ते वरतनुम्, निजयानकात, [तथैव], कर्षामि, यथा, जटायुः वालिदयिताम्, [अकर्षत्] ॥२०॥

पदार्थ—दशनखोत्पल०=दशनख रूपी कमल समूह से युक्त, चाटुशत०=सैकड़ा चाटुकारिता की बातो के तुल्य पीटने के लोभी, एताभ्याम=इन दोनों, हस्ताभ्याम्=हाथों से, वरतनुम्=श्रेष्ठ शरीर को, निजयानकात्=अपनी गाडी से खींचता हूँ, वालिदयिताम्=बालि की पत्नी [तारा] को ॥

अनुवाद—दशनख रूपी कमल समूह वाले एव मधुर वचनो के सदृश ताडन म लालुप इन दोना हाथों से केशा क पकड कर तुम्हारे श्रेष्ठ शरीर को अपनी गाडी से उसी प्रकार खींचता हूँ जिस प्रकार जटायु ने बालि की पत्नी को खींचा था।

संस्कृत टीका—दशनखोत्पल०—दशसंख्याकनखकमलसमूहाभ्याम्, चाटुशत०=प्रियवचनशतमदृशप्रहाराभिलाषिभ्याम्, एताभ्याम्=पुर. वर्तमानाभ्याम्, हस्ताभ्याम्=कराभ्याम्, केशेषु—शिरोरुहेषु, [गृहीत्वा] ते=तव, वरतनुम्=श्रेष्ठ शरीरम्, निजयानकात्=स्वकीयप्रवहणात् कर्षामि=आकृष्य पातयामि, यथा, जटायु=गृध्रराज', वालिदयिताम्=बालिपत्नीम् ताराम् इति।

समास एव व्याकरण—[१] दशनखोत्पल०–दशनखा एव उत्पलानाम्

मण्डलम् ययो ताभ्याम् । चाटुशत०–चाटुशतानि इव ताडनानि, तेषु लम्पटाभ्याम् । निजयानकात् निजात् यानकात् इति । [२] वर्षामि–वृष्+लट् ।

विवृति

[१] इव और यथा, 'ते ते' यह पुनरुक्ति है इसलिए उपमा की चारुता नही है। [२] जटायुः बालिदयिताम् इव यह अनुचित उपमा है। [३] शकारोक्ति होने से सभी दोष क्षम्य हैं। [४] वसन्त तिलका छन्द है। लक्षण—"उक्ता वसन्त-तिलका तमजा जगौ ग ।"

आग्राह्या मूर्धजेष्वेताः स्त्रियो गुणसमन्विताः ।
न लता पल्लवच्छेदमर्हन्त्युपवनोद्भवाः ॥ २१ ॥

अन्वय—गुणसमन्विता, एता, स्त्रिय, मूर्धजेषु, अग्राह्या., उपवनोद्भवाः, लता, पल्लवच्छेदम्, न, अर्हन्ति ॥ २१ ॥

पदार्थ—गुणसमन्विता.=गुणो से सम्पन्न, मूर्धजेषु=केशो मे, अग्राह्या = पकड़ने योग्य नही, उपवनोद्भवा = उद्यान मे उत्पन्न होने वाली, पल्लवच्छेदम् = किसलय तोडने के, न अर्हन्ति= योग्य नही होती।

अनुवाद—गुणो से युक्त इन कामिनियो के केश नही पकडने चाहिए (क्योकि) उद्यान मे उत्पन्न होने वाली लतायें किसलय तोडने के योग्य नहीं होती।

संस्कृत टीका—गुणसमन्वित =गुणयुक्ताः, एताः= इमा· स्त्रिय = रमण्य. मूर्धजेषु=केशेषु, अग्राह्या =आकृष्य न पीडनीया, उपवनोद्भवा =उद्यानोत्पन्न. लता =वल्ल्य·, पल्लवच्छेदम्= किसलय भङ्गम्, न अर्हन्ति=योग्याः न भवन्ति ।

समास एवं व्याकरण—(१) गुणसमन्विता =गुणौ समन्विताः। उपवनोद्भवा.- उपवनम् उद्भव यासाम् ताः। पल्लवच्छेदम्= पल्लवानाम् छेदम् । (२) समन्विता - सम्+अनु+इ+क्त+टाप् ।अर्हन्ति—अर्ह्+लट् ।

विवृति

(१) पथ्यावक्त्र छन्द है। (२) दृष्टान्तालङ्कार है। (३)'न ग्राह्या.' इसके स्थान पर 'अग्राह्या' प्रयोग से विधेयाविमर्श दोष है। (४) 'न ग्राह्या' यह कहने के लिए 'अग्राह्या' यह कहने से विधेया विमर्श दोष है।

तदुत्तिष्ठ त्वं । अहमेनामवतारयामि । वसन्तसेने ! अवतीर्यताम् । इसलिए तुम उठो। मैं इसको उतारता हूं। वसन्तसेना ! उतरिए।

[वसन्तसेनाऽवतीर्य्य एकान्ते स्थिता]

(वसन्त सेना उतरकर एकान्त मे खडी हो जाती है।)

शकार—(स्वगतम्) यः स मम वचनावमानेन तदा रोषाग्नि. सन्धुक्षितः, अद्य एतस्याः पादप्रहारेणानेन प्रज्वलित, तत् साम्प्रत मारयाम्येनाम्। भवतु एव तावत् ।

(प्रकाशम् ।) भाव ! भाव ! [जे घे मम वअणावमाणेण सदा लोशग्गी शधुक्खिदे, अज्ज एदाए पादप्पहालेण अणेण पज्जलिदे, त सम्पद. मालेमि ण । भोदु एव्व दाव । भावे भावे !]

शकार—(अपने आप) जो क्रोध रूपी अग्नि मेरे वचन के तिरस्कार से पहिले लगी थी, आज इसके (वसन्त सेना के) पैर के प्रहार से प्रज्वलित हो उठी है । तो अब इसे मारता हू । अच्छा, इस प्रकार । (प्रकट) विद्वन् ! विद्वन् !

विवृत्ति

(१) वचनावमानेन—वचन के तिरस्कार से । वचनस्य अवमानेन । (२) रोषाग्नि.—क्रोधरूपी आग । (३) सन्धुक्षित.—सुलगी थी । (४) पादप्रहारेण—पैर की मार से । (५) प्रज्वलितः—भभककर जल उठी । प्र+ज्वल्+क्त ।

यदिच्छसि लम्बदशाविशाल प्रावारक सूत्रशतैर्हि युक्तम् ।
मास च खादितु तथा तुष्टि कर्तुं चुहु चुहु चुक्कु चुहु चुहु इति ॥

जदिच्छशे लम्बदशा—विशाल
पावालअं सुत्तशदेहि जुत्तम् ।
मंश च खादुं, तह तुट्टि कादुं,
चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू ति ॥ २२ ॥

अन्वय.—यदि, सूत्रशतैः, युक्तम् लम्बदशाविशालम्, प्रावारकम्, तथा, 'चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू' इति, (ध्वनिम् कुर्वन्) मासम्, खादितुम्, तुष्टिम च कर्तुम् इच्छसि ॥

पदार्थ:—सूत्रशतैः=सैकडो सूतो से, लम्बदशाविशालम्=लम्बी किनारी से विशाल, प्रावारकम्=दुपट्टा को, 'चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू' इति=मास चबाने के समय की ध्वनियाँ, खादितुम्=खाने के लिए, तुष्टिम्=तृप्ति को, इच्छसि=चाहते हो ।

अनुवाद.—यदि तुम सैकडो धागो से निर्मित एव लम्बी किनारी वाले विशाल दुपट्टे को, तथा 'चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू' इस प्रकार से मास को खाना एवम् तृप्ति करना चाहते हो ।

संस्कृत टीका—यदि=चेत्, सूत्रशतैः=तन्तुसमूहैः, युक्तम्=समन्वितम् लम्बदशाविशालम्=दीर्घवस्त्रान्तविस्तृतम्, प्रावारकम्=उत्तरीयम्, तथा, चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू, इति इत्यम्, मासम्=इशितम्, खादितुम्=भोक्तुम्, तुष्टिम्=तृप्तिम्, च, कर्तुम् विधातुम्, इच्छसि=वाञ्छसि ॥

समास एवं व्याकरण—(१) सूत्रशतैः= सूत्राणाम् शतैः । लम्बदशा लम्बाभिः

दशामि विशालम् इति । (२) खादितुम् खाद्+तुमुन् । तुष्टिम्=तुष्+क्तिन् । कर्तुम्-कृ+तुमुन् । इच्छसि-इष्+लट् ।

विवृति

(१) 'द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा । संव्यानमुत्तरीयञ्च' इत्यमर । (२) 'पिशितं तरसं मांसं पललं क्रव्यमाऽऽमिषम् ' इत्यमर । (३) उपजाति छन्द है । लक्षण-"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौपादौ यदीयावुपजातयस्ता ।"

विट — तत किम् ।

विट—तो क्या ?

शकार —मम प्रियं कुरु । [मम पिअं कलेहि ।]

शकार—मेरा प्रिय (कार्य) करो ।

विट—बाढं करोमि वर्जयित्वा त्वकार्यम ।

विट—अवश्य करूँगा किन्तु अकार्य को छोडकर ।

शकार--भाव अकार्यस्य गन्धोऽपि नास्ति । राक्षसी कापि नास्ति ।

[भावे, अकज्जाह गन्धे वि णत्थि । लक्खशी कावि णत्थि ।]

शकार—विद्वान् ! अकार्य की गन्ध भी नही है । राक्षसी भी कोई नही है ।

विट — उच्यतां तर्हि

विट— तो कहिये ।

शकार —मारय वसन्तसेनाम् । [मालेहि वसन्तशेणिअम् ।]

शकार -वसन्तसेना को मारो ।

विवृति

(१) बाढम्=हा । (२) अकार्यम्—अनुचित कर्म को । (३) वर्जयित्वा=छोडकर । (४) पिधाय=ढककर ।

विट — (कर्णौ पिधाय ।)

विट — [कानो को बन्द करके]

> बाला स्त्रियं च नगरस्य विभूषणं च
> वेश्यामवेशसदृशप्रणयोपचाराम् ।
> एनामनागसमहं यदि घातयामि
> केनोडुपेन परलोकनदी तरिष्ये ? ॥२३॥

अन्वय --यदि, अहम्, नगरस्य, विभूषणम्, अवेशसदृशप्रणयोपचाराम्, वेश्याम्, बालाम्, अनागसम्, एनाम्, स्त्रियम्, घातयामि, (तर्हि), केन, उडुपेन, परलोकनदीम्, तरिष्ये ? ॥२३॥

पदार्थ :—अवेशसदृश० = वेश्याओं के अयोग्य अर्थात् कुलीन स्त्री के योग्य प्रेम और सद्व्यवहार या प्रेमव्यवहार करने वाली, वेश्याम् = वेश्या, बालाम् = तरुणी, अनागसम् = निरपराध, एताम् = इस, स्त्रियम् = अबला को, घातयामि = मारता हूँ, उडुपेन = नौका से, परलोकनदीम् = परलोक की नदी (वैतरणी) को, तरिष्ये = पार करूँगा ? ॥

अनुवाद :—यदि मैं (उज्जैन) नगर की ललाम भूत, वेश्याओं के विरुद्ध गाढ प्रेम एवं सद्व्यवहार करने वाली, वेश्या, बाला और निरपराध इस अबला को मारता हूँ तो किस नौका से परलोक की नदी (वैतरणी) को पार करूँगा ?

संस्कृत टीका यदि = चेत्, अहम्, = विट', नगरस्य = उज्जयिन्याः विभूषणम = अलङ्कारभूताम्, अवेशसदृशप्रणयोपचाराम् = वेश्याजनानुपयुक्त प्रणयव्यवहारवतीम्, वेश्याम् = गणिकाम्, बालाम् = नवयुवतीम्, अनागसम् = निरपराधाम्, एताम् = वसन्तसेनाम, स्त्रियम् = अबलाजातिमिति भाव', घातयामि = मारयामि (तर्हि) केन, उडुपेन = प्लवेन, परलोकनदीम् = वैतरणीम् तरिष्ये = अतिक्रमिष्यामि ?

समास एवं व्याकरण–(१) अवेशसदृश०—अवेशसदृश प्रणयः उपचारश्चयस्याः तादृशीम् अथवा अवेशसदृशः प्रणयस्य उपचारः यस्याः ताम् । अनागसम् = न विद्यते आगः अपराधः यस्याः सा अनागा. (न० ब० स०), ताम् । (२) तरिष्ये—तृ + लट (उ० पु० ए०) तृ धातु परस्मैपदी है; अतएव 'तरिष्यामि' रूप होना चाहिए ।

विवृति

(१) 'आगोऽपराधे पापे स्यादिति' मेदिनी। (२) 'उडुपं तु प्लवः कोलः' इत्यमरः। (३) प्रस्तुत पद्य में विशेषण वाचक पदों के साभिप्राय होने से परिकरालङ्कार है। लक्षण—'उक्तिविशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मत.' = सा० द० ॥ (४) नगर विभूषण मे निरङ्गरूपकालङ्कार होने से दोनों अलङ्कारों का सङ्कर है। (५) वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥" (६) 'तरिष्ये' आत्मनेपदी है, अत व्याकरणविरुद्ध होने से च्युतसंस्कृति दोष है। (७) परलोकनदी पुराणों मे वैतरणी नदी का विस्तृत उल्लेख है।

शकार :—अहं त उडुप दास्यामि। अन्यच्च विविक्ते उद्यान इह मारयन्त कस्त्वा प्रेक्षिष्यते। (अहं ते मेडक दइस्सम्। अण्ण च विविक्ते उज्जाणे इध मालन्त को तुम पेक्खिस्सदि।)

शकार—मैं तुम्हें नौका दूँगा। और दूसरी बात यह है कि इस निर्जन उपवन मे मारते हुये तुम्हें कौन देखेगा।

विट :—

विट—

पश्यन्ति मा दश दिशो वनदेवताश्च
चन्द्रश्च दीप्त किरणश्च दिवाकरोऽयम् ।
धर्मानिलौ च गगन च तथान्तरात्मा
भूमिस्तथा सुकृतदुष्कृत साक्षिभूता ॥२४॥

अन्वय —सुकृतदुष्कृतसाक्षिभूता, दश, दिश, वनदेवता, च चन्द्र, च, दीप्तकिरण, अयम्, दिवाकर, च, धर्मानिलौ, च, गगनम् च तथा, अन्तरात्मा, तथा भूमि माम्, पश्यन्ति ।।२४।।

पदार्थ :—सुकृतदुष्कृत० =पुण्य और पाप की साक्षी, वनदेवता =वन की देवताएँ, दीप्तकिरण =चमकती हुई किरणो वाला, धर्मानिलौ=धर्म और हवा, अन्तरात्मा =सबके भीतर वर्तमान ईश्वर ।

अनुवाद —पुण्य और पाप की साक्षी दशो दिशायें, वनदेवता, चन्द्रमा, पूर्ण-प्रकाशित किरणो वाला यह सूर्य, धर्म, वायु, आकाश तथा अन्तरात्मा और भूमि मुझे देखती है ।

संस्कृत टीका—सुकृतदुष्कृत० =पुण्यपापयो =साक्षात् दृष्टार, दश =दशसंख्याका, दिश =आशा, वनदेवता =वनदेव्यश्च, चन्द्र च =इन्दु च, दीप्तकिरण =प्रकाशितांशु० अयम् =परिदृश्यमान, दिवाकर च =सूर्यश्च, धर्मानिलौ च—धर्म अनिल वायु च, तथा अन्तरात्मा =जीवात्मा, तथा, भूमि =पृथिवी, माम् =विटम्, पश्यन्ति =अवलोकयन्ति ॥

समास एव व्याकरण— सुकृतदुष्कृत०—सुकृति दुष्कृति तया साक्षिभूता । दीप्तकिरणा – दीप्ता किरणा यस्य तादृश । धर्मानिलौ–धमश्च अनिलश्चेति । (२) साक्षिभूता – साक्षात्+इनि 'साक्षाद्द्रष्टरि सज्ञायाम्' इति सूत्रेण =साक्षिन्, स्त्री० साक्षिणी । साक्षिणी भूता- तुल्या इति साक्षिभूता । (३) पश्यन्तिदृश्+लट् (दृश् को पश्य आदेश) ।

विवृति

(१) 'प्रस्तुत पद्य से मिलता जुलता श्लोक आह्निकतत्व मे इस प्रकार आया है। "आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदय यमश्च । अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धमश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥"

(२) भावसाम्य–'द्यौर्भूमिरापो हृदय चन्द्रार्काग्नियमानिला । रात्रि सध्य च धर्मश्च वृतज्ञा सवदेहिनाम् ॥" मनुस्मृति ॥ (३) 'किरणोस्त्रमयूखांशु०' इत्यमर (४) दिशस्तु ककुभ काष्ठा आशाश्च हरितश्च ता' इत्यमर । (५) श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है—वसन्ततिलका । लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ

ग: ।" (६) यहाँ अप्रस्तुत दिक् आदिकों का 'पश्यन्ती' इस एक क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

शकार.—तेन हि पटान्तापवारिता कृत्वा मारय । [तेण हि पडन्तोवालिद कदुअ मालेहि ।]

शकार—तो वस्त्राञ्चल से ढक कर मार दो।

विटः—मूर्ख अपध्वस्तोऽसि ।

विट—मूर्ख ! महापतित हो गए हो।

शकार—अधर्मभीरुरेष वृद्धकोल. । भवतु स्थावरकं चेटमनुनयामि । पुत्रक स्थावरक चेट, सुवर्णकटकानि दास्यामि । [अधम्मभीलू एशे वुड्ढकोले । भोदु । थावलअं चेड अणुणेमि । पुत्तका थावलका चेडा, शोवण्णखडुआइ दइश्शम् ।]

शकार—यह बूढा शूकर अधर्मशील है । अच्छा, स्थावरक सेवक को मनाता हूँ। बेटा स्थावरक चेट ! सोने के कडे दूँगा।

चेट —अहमपि परिधास्यामि । [अह पि पहिलिश्शम् ।]

चेट—मैं भी पहनूँगा।

शकार —सौवर्णं ते पीठक कारयिष्यामि । [शोवण्ण दे पीढके कालइश्शम् ।]

शकार—मैं तुम्हे सोने की चौकी बनवा दूँगा।

चेट —अहमप्युपवेक्ष्यामि । [अह पि उवविशिश्शम् ।]

चेट—मैं भी (उस पर) बैठूँगा।

शकार—सर्वं ते उच्छिष्ट दास्यामि । [शव्व दे उच्छिस्टअ दइश्शम् ।]

शकार—तुम्हे सारा उच्छिष्ट दूँगा।

चेट —अहमपि खादिष्यामि । [अह पि खाइश्शम् ।]

चेट—मैं भी खाऊँगा।

शकार—सर्वचेटाना महत्तरक कारयिष्यामि । [शव्वचेडाण महत्तलक कलइश्शम् ।]

शकार—सभी चेटों मे प्रधान बनवा दूँगा।

चेट —भट्टक भविष्यामि । [भट्टके, हुविश्शम् ।]

चेट—स्वामी ? बन जाऊँगा।

शकार.—तन्मन्यस्व मम वचनम् । [ता मण्णेहि मम वअणम् ।]

शकार—तो मेरा कहना मानो।

चेट —भट्टक, सर्वं करोमि वर्जयित्वाकार्यम् । भट्टके, शव्व कलेमि वज्जिअ अकज्जम् ।]

चेट—स्वामी ! अकार्य को छोडकर सब कुछ करूँगा।

शकार.—अकार्यस्य गन्धोऽपि नास्ति । [अकज्जाहगन्धे वि णत्थि ।]

शकार—अकार्य की गन्ध भी नहीं है।

चेटः—भणतु भट्टक । [भणादु भट्टके ।]

चेट–स्वामी कहे ।

शकारः–एना वसन्तसेना । मारय [एण वशन्तशेणिअ मालेहि ।]

शकार–इस वसन्तसेना को मार दो ।

चेट —प्रसीदतु भट्टक. । इय मयानार्येणार्या प्रवहणपरिवर्तनेनानीता । [पशी-दटु भट्टके । इअ मए अणज्जेण अज्जा पवहणपलिवत्तणेण आणीदा ।]

चेट–स्वामी, प्रसन्न हो । यह आर्या मुझ अनार्य के द्वारा गाड़ी की भूल से यहाँ ले आई गई ।

शकार —अरे चेट, तवापि न प्रभवामि । [अले चेडा, तवावि ण पहुवामि ।]

शकार–अरे चेट ! क्या तुझ पर मेरा प्रभुत्व नहीं है ?

चेट –प्रभवति भट्टक शरीरस्य, न चारित्रस्य । तत्प्रसीदतु प्रसीदतु भट्टकः । बिभेमि खल्वहम् । [पहुवदी भट्टके शलीलाह, ण चालित्ताह, । ता पशीदटु पशीदटु भट्टके । भाआमि क्खु अहम् ।]

चेट—स्वामी का प्रभुत्व शरीर पर है, चरित्र पर नहीं । तो स्वामी प्रसन्न हों, प्रसन्न हो । निश्चय ही मैं डरता हूँ ।

शकारः—त्व मम चेटो भूत्वा कस्माद्बिभेषि । [तुम मम चेडे भविअ कश्श भाआशि ।]

शकार—तू मेरा सेवक होकर किससे डरता है ?

चेट –भट्टक, परलोकात् । [भट्टके, पललोअश्श ।]

चेट–स्वामी । परलोक से ।

शकार.—क स परलोक । [के शे पललोए ।]

शकार—कौन है ? वह परलोक ।

चेट –भट्टक, सुकृतदुष्कृतस्य परिणाम । [भट्टके, शुकिददुक्किदश्श पलि-णामे ।]

चेट–स्वामी ! पुण्य और पाप का फल ।

शकार —कीदृश सुकृतस्य परिणाम । [केलिशे शुकिदश्श पलिणामे ।]

शकार–पुण्य का फल कैसा होता है ?

चेटः—यादृशो भट्टको बहुसुवर्णमण्डित. । [जादिशे भट्टके, बहुशुवण्ण-मण्डिदे ।]

चेट—जैसे स्वामी बहुत सुवर्ण से आभूषित हैं ।

शकार.–दुष्कृतस्य कीदृशः । [दुक्किदश्श केलिशे ।]

शकार—पाप का (फल) कैसा होता है ?

चेट—यादृशोऽहं परपिण्डभक्षको भूतः। तदकार्यं न करिष्यामि। [जादिशे हग्गे पलपिण्डभक्खके भूदे। ता अकज्ज ण कलइश्शम्।]

चेट—जैसा मैं दूसरे का अन्न खाने वाला हुआ, अत. अकार्य नहीं करूँगा।

शकारः—अरे, न मारयिष्यसि। [अले ण मालिश्शशि।] (इति बहुविधं ताडयति।)

शकार—अरे ! नहीं मारेगा ? [यह कह अनेक प्रकार से पीटता है।]

चेट—ताडयतु भट्टक, मारयतु भट्टक, अकार्यं न करिष्यामि। [पिट्टुयदु भट्टके, मालेदु भट्टके, अकज्ज ण कलइश्शम्।]

चेट—(चाहे) स्वामी पीट दें, (चाहे) स्वामी मार दें, अकार्य नहीं करूँगा।

विवृति

१ पटान्तापवारिताम्—वस्त्र के आँचल से ढकी हुई। २ अपध्वस्त—पतित। ३. अप+ध्वन्स+क्त। ४ अधर्मभीरु—पाप से डरने वाला। ५ वृद्धकोल—बूढ़ा सुअर। 'वराह शूकरो घृष्टि कोलः' इत्यमर। ६ सुवर्णकटकानि—सोने के कणों को। 'आवापक. पारिहार्य. कटको वलयोऽस्त्रियाम्' इत्यमर। ७. परिधास्यामि—पहनूँगा। ८ पीठकम्—चौकी। ९ उपवेक्ष्यामि—बैठूँगा। १०. उच्छिष्टम्—जूठा। ११ महत्तरकम्—प्रमुख। महत्+तरप्+क। १२. अनार्येण—असभ्य। १३. प्रभवामि—स्वामी हूँ। १४ भट्टक—स्वामी। १५. चारित्र्यस्य—चरित्र के। चर्+इत्र= चरित्र। चरित्रमेव चारित्र्यम्। तस्य। चरित्र+ष्यञ्। १६. सुकृत-दुष्कृतस्य—पुण्य पाप का। १७. परिणाम—फल। १८. परपिण्डभक्षकः—दूसरे का कौर खाने वाला।

येनास्मि गर्भदासो विनिर्मितो भागधेयदोषैः।
अधिक च न क्रीणिष्यामि तेनाकार्यं परिहरामि॥२५॥
[जेण म्हि गब्भदाशे विणिम्मिदे भाअधेअदोशेहिं।
अहिअ च ण कीणिश्शं तेण अकज्ज पलिहलामि॥]

अन्वय—येन, भागधेयदोषैः, गर्भदास, विनिर्मित, अस्मि, तेन, अधिकम्, न, क्रीणिष्यामि, अकार्यम्, च, परिहरामि॥२५॥

पदार्थ—भागधेयदोषैः=भाग्य के दोष के कारण, गर्भदास=जन्म से ही दास, विनिर्मिता=बनाया गया, क्रीणिष्यामि=खरीदूँगा, अकार्यम्=अनुचित कार्य को, परिहरामि=बचाऊँगा, न करूँगा।

अनुवाद.—जिसलिए भाग्य (पूर्वजन्मार्जित कर्म) के दोष से मैं जन्म से ही दास बनाया गया हूँ। इसलिए उसे (पाप के फल को) अधिक नहीं अर्जित करूँगा तथा अकार्य का त्याग करूँगा।

संस्कृत टीका—येन=येन कारणेन, भागधेयदोषैः=भाग्यदोषैः गर्भदासः=गर्भात्प्रभृत्येव दासः, विनिर्मितः=कृतः, अस्मि=भवामि, तेन=तस्मात् कारणात्, अधिकम्=एतस्मादतिरिक्तम्, न क्रीणिष्यामि=न अर्जयिष्यामि, अकार्यम्=अनुचित कर्म, च, परिहरामि=त्यजामि ।।

समास एवं व्याकरण—(१) भागधेयदोषैः—भागधेयानाम् दोषैः । (२) विनिर्मिता—वि+निर्+मा+क्त । (३) क्रीणिष्यामि—क्रीण्+लृट । (४) परिहरामि—परि+हृ+लट् ।

विवृति

१ येन—कर्मणा प्रारब्धेन(काले)। परन्तु यहाँ येन और तेन(क्योंकि इसलिये) के सम्बन्ध से तथा 'भागधेयदोषैः' शब्द के ग्रहण से भी येन का अर्थ 'क्योंकि ही उचित प्रतीत होता है । २ 'पूर्वजन्मार्जित कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ।' ३. श्लोक में आर्या छन्द है । लक्षण— 'यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।"

वसन्तसेना—भाव, शरणागतास्मि । [भाव, शरणागदम्हि ।]

वसन्तसेना—भाव ! मैं शरणागत हूँ ।

विट—काणेलीमातः, मर्षय मर्षय । साधु स्थावरक, साधु ।

विट—पुंश्चली-पुत्र ! क्षमा करो, क्षमा करो । वाह स्थावरक ! वाह ।

अप्येष नाम परिभूतदशो दरिद्रः
प्रेष्यः परत्र फलमिच्छति नास्य भर्ता ।
तस्मादमी कथमिवाद्य न यान्ति नाशं
ये वर्धयन्त्यसदृशं सदृशं त्यजन्ति ।।२६।।

अन्वय—परिभूतदशः, दरिद्रः, प्रेष्यः, अपि, एषः, परत्र, फलम्, नाम, इच्छति (किन्तु), अस्य, भर्ता, न, (इच्छति), तस्मात्, ये असदृशम्, वर्धयन्ति, सदृशम् त्यजन्ति, अमी, अद्य, कथमिव, नाशम्, न, यान्ति ।।२६।।

पदार्थ—परिभूतदशः=अपमानित या दयनीय दशा वाला प्रेष्यः=नौकर, परत्र=परलोक मे, फलम्=फल को, भर्ता=स्वामी, असदृशम्=अनुचित को वर्धयन्ति=बढ़ाते है, सदृशम्=उचित को, त्यजन्ति=छोड़ देते हैं, न यान्ति=नहीं जाते, नहीं प्राप्त होते ।।

अनुवाद—अपमानित अवस्था वाला दरिद्र दास भी यह (विट) परलोक के फल की इच्छा करता है, (किन्तु) इसका स्वामी शकार नहीं । तब जो (शकार जैसे) अनुचित कर्म की वृद्धि करते हैं तथा उचित कर्म का त्याग करते हैं वे आज ही क्यों नहीं नाश को प्राप्त हो जाते ?

संस्कृत टीका—परिभूतदशः=दुरवस्थ, दरिद्र=निर्धनः, प्रेष्यः=भृत्यः, अपि, एषः=स्थावरक, परत्र=परलोके, फलम् सद्गतिम्, नाम=इति सम्भावनायाम्, इच्छति=वाञ्छति, (किन्तु) अस्य=चेटस्य, भर्ता=स्वामी (शकारः), न, (इच्छति) तस्मात्=तत, ये=शकारसदृशाः जनाः, अनदृशम्=अकार्यम्=अयोग्य जनमिति वा, वर्धयन्ति=वृद्धिं नयन्ति, सदृशम्=उचित कर्म योग्य पुरुष वा, त्यजन्ति=परिहरन्ति, अमी=एते, अद्य=सम्प्रत्येव, कथमिव=किमर्थमित्यर्थः, नाशम्=मृत्युम्, न यान्ति न गच्छन्ति ? ॥

समास एवं व्याकरण—१. परिभूतदश—परिभूता दशा यस्य तादृश । २. प्रेष्य–प्र+इष्+ण्यत्, वृद्धि. ३. भर्ता—भृ+तृच्+विभक्ति । ४. इच्छति–इष्+लट् । ५. वर्धयन्ति—वृध्+णिच्+लट् ।

[[

१. 'भृत्ये दासेयदासेरदासगोप्यकचेटकाः । नियोज्यकिंकरप्रैष्यभुजिष्यपरिचारकाः' इत्यमरः । २. भाव यह है कि सेवक होकर भी स्थावरक पाप से डरता है, किन्तु उसका स्वामी शकार पाप से नहीं डरता है, अतएव शकार तुल्य लोगों का काल-कवलित हो जाना ही अच्छा है । ३. प्रस्तुत पद्य में विशेषोक्ति अलङ्कार है । लक्षण-'सति हेतौ फलाभावो विशेषोक्तिः' रिति ॥ सा० द० ॥ ४. कुछ टीकाकारों के अनुसार अप्रस्तुत प्रशंसा एवं परिसंख्या अलङ्कार है । ५. वसन्ततिलका छन्द है । लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।"

अपि च ।

और भी—

रन्ध्रानुसारी विषमः कृतान्तो यदस्य दास्यं तव चेश्वरत्वम् ।
श्रियं त्वदीयां यदयं न भुङ्क्ते यदेतदाज्ञां न भवान्करोति ॥२७॥

अन्वय—कृतान्त, रन्ध्रानुसारी, विषम, (अस्ति), यत्, (तेन), अस्य, दास्यम्, तव, च, ईश्वरत्वम्, (कृतम्) । यत्, अयम्, त्वदीयाम्, श्रियम्, न, भुङ्क्ते, यत् भवान्, एतदाज्ञाम् न, करोति ॥२७॥

पदार्थ—कृतान्त=दैव, रन्ध्रानुसारी=छिद्र अथवा दोष देखने वाला, विषम=कठिन, विपरीत अथवा पक्षपात करने वाला, दास्यम्=दासपन, ईश्वरत्वम्=मालिकपन, त्वदीयाम्=तुम्हारी, श्रियम्=धनसम्पत्ति का, भुङ्क्ते=खा रहा है, भवान्=आप एतदाज्ञाम्=इसकी आज्ञा को ।

अनुवाद—दैव छिद्रान्वेषी तथा विपरीत कार्य करने वाला है जो इस (धार्मिक भाव वाले चेट) को दासता तथा तुम्हें प्रभुता दी है तथा जो यह तुम्हारी सम्पत्ति का उपभोग नहीं करता है एवं आप इसकी आज्ञा (का पालन)

नहीं करते ॥

संस्कृत टीका-कृतान्त =दैवम्, रन्ध्रानुसारी=छिद्रान्वेषी विषम =प्रतिकूल, (अस्ति), यत्=यतः, (तेन) अस्य=चेटस्य, दास्यम्=दासता, तव=शकारस्य, च, ईश्वरत्वम्=प्रभुत्वम्, (कृतम्), यत्=यस्मात्, अयम्=चेटः, त्वदीयाम्=शकारसम्बन्धिनीम्, श्रियम्=सम्पत्तिम्, न भुङ्क्ते=न सेवते, यत्=यस्मात्, भवान्=शकार, एतदाज्ञाम्=स्थावरकस्य आदेशम्, न करोति=न विदधाति ।

समास एवं व्याकरण-१. रन्ध्रानुसारी—रन्ध्रम् अनुसरतीति तच्छील । २. दास्य-दासस्य भाव । दास+ष्यञ् । ३ त्वदीयाम्—युष्मद्+छ (ईय) । ४. भुङ्क्ते—भुज्+लट् ।

विवृति

१. प्रस्तुत पद्य मे दैव के दो साभिप्राय विशेषण दिये गये है-(i) रन्ध्रानुसारी-भाव यह है कि यह स्थावरक पवित्र विचार रखता है, इसने अधिकांश पुण्य किये होंगे तथा पाप अल्पमात्रा मे ही, किन्तु दैव छिद्रान्वेषी है अत उसने इसके पापों के अनुसार इसे दास बना दिया। (ii) विषम—दैव कर्म का फल देने मे विषम भी है, क्योंकि उसने शकार जैसे पापी को स्वल्प से पुण्य के फल से ही स्वामी बना दिया। २. 'कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु' इत्यमरः ३ प्रस्तुत पद्य मे 'कृतान्तस्य रन्ध्रानुसारित्व' रूप एक कार्य के प्रति स्थावरक की दासता आदि अनेक कारणों के उपन्यास से समुच्चयालङ्कार है। ४ श्लोक मे पादत्रयगत वाक्यार्थ के प्रति प्रथम-पादगत वाक्यार्थ का कारण होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। ५ उपजाति छन्द है। लक्षण—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता ॥" ६ कुछ लोग विभावना अलंकार की भी कल्पना करते हैं जो कि अनुचित है। इसी प्रकार कुछ लोग विशेषोक्ति अलंकार की कल्पना करते हैं वह भी रुचिकर नहीं।

शकार -(स्वगतम्।) अधर्मभीरुको वृद्धशृगाल परलोकभीरुरेष गर्भदास.। अहं राष्ट्रियश्याल कस्माद्बिभेमि वरपुरुषमनुष्य.। (प्रकाशम्।) अरे गर्भदास चेट, गच्छ त्वम्। अपवारके प्रविश्य विश्रान्त एकान्ते तिष्ठ। [अधम्मभिलुए वुड्ढखोडे। पललोअभिलू एशे गब्भदाशे। हगे लट्टिअशाले कश्श भाआमि वलपुलिशमणुश्शे अले गब्भदाशे चेडे, गच्छ तुमम्। ओवलके पविशिअ वीशन्ते एअन्ते चिश्ट।

शकार—[अपने आप] पाप से डरने वाला बूढा सियार है। वह जन्मजात दास परलोक से डरने वाला है। (किन्तु) मैं श्रेष्ठ पुरुष, मनुष्य राजा का साला किससे डरूँ ? अरे जन्म का दास चेट ! तू जा। गुप्त स्थान मे प्रवेश कर विश्राम

करते हुए एकान्त में ठहर।

चेट—यद्भट्टक आज्ञापयति। (वसन्तसेनामुपसृत्य।)आर्ये एतावान्मे विभव। (इति निष्क्रान्त।) [ज भट्टके आणवेदि। अज्जए, एत्तिके म विहवे।]

चेट—जो स्वामी की आज्ञा। वसन्तसेना के समीप जाकर] आर्ये! मेरा इतना ही सामर्थ्य है। [यह कह कर निकल जाता है]

शकार (परिकर बध्नन्।) तिष्ठ वसन्तसेने, तिष्ठ। मारयिष्यामि। [चिश्ट वसन्तशेणिए, चिश्ट। मालइश्शम्।]

शकार—[कमर कसता हुआ] ठहर, वसन्तसेना! ठहर, मैं मारूंगा।

विट—आ, ममाग्रतो व्यापादयिष्यसि। (इति गले गृह्णाति।)

विट—अरे! मेरे सामने मारोगे? [यह कहकर गला पकड़ लेता है]

विवृति

१ अधर्मभीरुक—पाप से डरने वाला। २ परलोकभीरु—परलोक से डरने वाला। ३. अपवारके—घर में ४. विभव—सामर्थ्य। ५ परिकरम्=कमर का। 'भवेत् परिकरो व्राते पर्यङ्कपरिवारयो। प्रगाढगात्रिकाबन्धे विवेकारम्भयोरपि' इति विश्व। ६ व्यापादयिष्यसि—मारोगे।

शकार—(भूमौ पतति।) भावो भट्टक मारयति। (इति मोहं नाटयति। चेतना लब्ध्वा।) [भाव भट्टक मालेदि।]

शकार—[भूमि पर गिर पड़ता है] विद्वान्! स्वामी को मारते हैं। [मूर्च्छा का अभिनय करता है, चेतना प्राप्त करके]

> सर्वकाल मया पुष्टो मांसेन च घृतेन च।
> अद्य कार्ये समुत्पन्ने जातो मे वैरिक कथम्? ॥२८॥
> [शव्वकाल मए पुश्टे मशेण अ घिएण अ।
> अज्ज कज्जे शमुप्पण्णे जादे मे वेलिए कध॥२८॥]

अन्वय—सर्वकालम्, मया, मांसेन, च, घृतेन, च, पुष्ट, [त्वम्], अद्य, कार्ये, समुत्पन्ने मे वैरिक कथम्, जात? ॥ २८॥

पदार्थ—सर्वकालम्=सदा, मया=मेरे द्वारा, मांसेन=मांस से, घृतेन=घी, च, पुष्ट=मजबूत किये गये, समुत्पन्ने=आ पड़ने पर, वैरिक=शत्रु, कथम्=कैसे, जात=हो गया।

अनुवाद—सदा मेरे द्वारा मांस तथा घी से पुष्ट किये गये [आप] आज कार्य उपस्थित होने पर मेरे शत्रु कैसे हो गये?

संस्कृत टीका- सर्वकालम्=सर्वदा, मया,=शकारेण, मांसेन=पिशितेन, च, घृतेन=सर्पिषा च, पुष्ट.—शक्तिसम्पन्न कृत', [त्वम्], अद्य=सम्प्रति, कार्ये=प्रयोजने, समुत्पन्ने=सम्प्राप्ते, मे=मम, वैरिक.=शत्रुः, कथम्=कस्मात्, जात ?=भूत. ? ॥

समास एवं व्याकरण- [१] वैरिकः— वैरी एव वैरिक वैरिन्+क स्वार्थे अथवा कुत्सितः वैरी इति 'कुत्सिते' इति सूत्रेण कन् । अथवा अज्ञातो वैरी इत्यर्थे 'अज्ञाते' इति सूत्रेण क. । [२] पुष्ट — पुष्+क्त । [३] जातः— जन+क्त । [४] समुत्पन्ने— सम्+उत्+पद्+क्त ।

विवृति

[१] 'भवेत् परिकरो व्राते पर्यङ्कपरिवारयो । प्रगाढगात्रिका बन्धे विवेकारम्भयोरपि' इति विश्वः । [२] प्रस्तुत पद्य मे पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण— "युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।"

[विचिन्त्य ।] भवतु लब्धो मयोपायः । दत्ता वृद्धशृगालेन शिरश्चालन सज्ञा । तदेत प्रेष्य वसन्तसेना मारयिष्यामि । एव तावत । [प्रकाशम् ।] भाव, यत्त्व मया भणित, तत्कथमहमेव वृहत्तरै. मल्लकप्रमाणै कुलैर्जातोऽकार्य करोमि । एवमेतदङ्गीकारयितुं मया भणितम् । [मोदु । लद्धे मए उवाए । दिण्णा वुड्ढखोडेण शिलश्चालणशण्णा । ता एद पेशिअ वसन्तशेणिअ मालइश्शम् । एव्व दाव । भावे, ज तम मए भणिदे, त कघ हग्गे एव्वं वड्ढकेहि मल्लकप्पमाणेहिं कुलेहिं जादे अकज्ज कलेमि । एव्व एद अङ्गीकलावेदु मए भणिदम् ।]

[मोचकर] अच्छा मैंने उपाय, पा लिया । बूढे सियार ने सिर हिलाकर [वसन्तसेना को] सकेत दिया है । तो इस [ि ट] को भेजकर वसन्तसेना को मारूँगा । तो इसी प्रकार [प्रकट रूप मे] विद्वान् ! मैंने जो तुमसे कहा है, सो कैसे मैं ऐसे मल्लक (प्याले) के समान विशाल कुल मे उत्पन्न होकर अकार्य करूँगा ? यह तो स्वीकार कराने के लिये मैंने ऐसा कह दिया ।

विवृति

१ शिरश्चालनसज्ञा–सिर हिलाकर सकेत । २. दत्त – दिया गया ३. प्रेष्य–भेजकर ४ मल्लकप्रमाणै – प्याले जैसे । ५ अगीकारयितुम्— स्वीकार करवाने के लिए । ६ भणितम् — कहा गया । भण+क्त ।

विट —

विट—

किं कुलेनोपदिष्टेन, शीलमेवात्र कारणम् ।
भवन्ति सुतरा स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः ॥ २९ ॥

अन्वयः- कुलेन, उपदिष्टेन, किम् ? [यतः], अत्र, शीलम्, एव, कारणम्, सुक्षेत्रे, कण्टकिद्रुमाः, सुतराम्, स्फीताः, भवन्ति ॥ २९ ॥

पदार्थः- कुलेन=वंश, उदिष्टेन=कहने से, किम्=क्या ? शीलम्=स्वभाव, सुक्षेत्रे=अच्छे खेत मे, कण्टकिद्रुमाः=काँटेदार पौधे, सुतराम्=बहुत अधिक, स्फीता=समृद्ध, बढ़ने वाले, भवन्ति=होते हैं।

अनुवाद – कुल के कथन से क्या [लाभ]? क्योंकि इस [अनुचित कार्य] मे स्वभाव ही कारण है। अच्छे खेत मे भी काँटेदार वृक्ष बहुत अधिक समृद्ध [पैदा] हो जाते हैं।

संस्कृत टीका- कुलेन=वंशेन, उपदिष्टेन=कथितेन, किम् ?=को लाभः ? [यतः], अत्र=अकार्यकरणे, शीलम्=स्वभावः, एव, कारणम्=हेतुः, सुक्षेत्रे=उत्कृष्टभूमौ, कण्टकिद्रुमाः=कण्टकवन्तवृक्षाः, सुतराम्=अत्यन्तम्, स्फीताः=वर्द्धिता, भवन्ति=जायन्ते ॥

समास एवं व्याकरण- [१] कण्टकिद्रुमाः— कण्टकिनः द्रुमाः । [२] उपदिष्टेन— उप+दिश+क्त । [३] स्फीताः— स्फाय्+क्त [स्फी आदेश]

विवृति

[१] प्रस्तुत पद्य मे सामान्य 'कण्टकिद्रुमाः' से प्रस्तुत शकार विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। [२] पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण— "युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।"

शकारः- भाव एषा, तवाग्रतो लज्जते न मामङ्गीकरोति । तद्गच्छ । स्थावरक चेटो मया ताडितो गतोऽपि । एष प्रपलाय्य गच्छति । तस्मात्त गृहीत्वागच्छतु भावः । [भावे, एशा तव अग्गदो लज्जाआदि, ण म अङ्गीकलेदि । ता गच्छ । थावलअचेडे मए पिट्टिदे गदे वि । एशे पलाइअ । गच्छति । ता त गेण्हिअ आअच्छदु भावे]

शकार– विद्वान् ! यह तुम्हारे सामने लजाती है, मुझे स्वीकार नही करती। अतः तुम जाओ। मेरे द्वारा पीटा गया स्थावरक चेट गया भी (देखो) यह भाग कर जाता है, इसलिये आप उसे लेकर आइये।

विटः- [स्वगतम् ।]
विट– [अपने आप]

अस्मत्समक्षं हि वसन्तसेना शौण्डीर्यभावान्न भजेत मूर्खम् ।
तस्मात्करोम्येष विविक्तमस्य विविक्तविश्रम्भरसो हि कामः ॥ ३० ॥

अन्वयः वसन्तसेना, शौण्डीर्यभावात्, अस्मत्समक्षम्, मूर्खम्, न, भजेत, तस्मात्, एषः, [अहम्], अस्याः, विविक्तम्, करोमि, हि, कामः, विविक्तविश्रम्भरसः, [भवति] ॥ ३० ॥

पदार्थ – शौण्डीर्यभावात् = उदात्तता [उच्च गुणों] अथवा स्वाभिमान के कारण, आत्मसमक्षम् = हमारे सामने, न भजेत् = न अङ्गीकार करे, विविक्तम् = एकान्त को, विविक्तविश्रम्भरस = निर्जन एवं विश्वस्त स्थान में आनन्ददायक।

अनुवाद – वसन्तसेना उदात्त गुणों के कारण हमारे सामने इस मूर्ख को अङ्गीकार न करे अत यह मैं इसको एकान्त कर देता हूँ क्योंकि काम निर्जन एवं विश्वस्त स्थान में आनन्ददायक होता है।

संस्कृत टीका– वसन्तसेना = पुरःस्थिता एषा चारुदत्तानुरागिणी वेश्या, शौण्डीर्यभावात् = उदात्तभावात्, अस्मत्समक्षम् = ममाग्रे, मूर्खम् = मूढम्, न भजेत् = नाङ्गीकुर्यात्, तस्मात् = तस्मात् कारणात्, एष = अहम्, अस्या = वसन्तसेनायाः, विविक्तम = विजनम्, करोमि = विदधामि, हि = यत, कामः = मदन, विविक्तविश्रम्भरस = निर्जन विश्वासास्वाद, भवति।

समास एवं व्याकरण– १. अस्मत्समक्षम् – अस्माकम् समक्षम्। २ विविक्त विश्रम्भरस — विविक्त अथवा विविक्ते विश्रम्भ तेन रसः यस्मिन् सः। विविक्तम्— वि + विच् + क्त। ३. भजेत् — भज् + लिङ्। ४ करोमि — कृ + लट्।

विवृति

१. भाव यह है कि प्रेम का आस्वादन एकान्त में ही किया जाता है। २. प्रस्तुत पद्य में, सामान्य, काम के एकान्त रसत्व से, विशेष, वसन्तसेनागत काम के उद्बोधन का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। ३. उपजाति छन्द है। लक्षण— "स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग.। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततोगौ। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता॥"

(प्रकाशम्।) एवं भवतु गच्छामि।

[प्रकट रूप में] ऐसा ही हो, जाता हूँ।

वसन्तसेना—(पटान्ते गृहीत्वा।) ननु भणामि शरणागतास्मि [ण भणामि शरणा गदम्हि।]

वसन्तसेना—[वस्त्र का छोर पकडकर] मैं कहती हूँ कि मैं शरणागत हूँ।

विट —वसन्तसेने, न भेतव्य न भेतव्यम। काणेलीमात, वसन्तसेना तव हस्ते न्यास।

विट—वसन्तसेना! डरो नहीं, डरो नहीं। पुंश्चली पुत्र! वसन्तसेना तुम्हारे हाथ में धरोहर है।

शकार —एवम्। मम हस्ते एषा न्यासेन तिष्ठतु। [एव्वम्। मम हस्ते एशा णाशेण चिश्टदु।]

शकार—हाँ, मेरे हाथ में यह धरोहर रूप से रहे।

विटः–सत्यम् ।

विट–सचमुच ?

शकारः–सत्यम् । [शच्चम् ।]

शकार–सचमुच ।

विटः—(किंचिद्गत्वा ।) अथवा मयि गते नृशंसो हन्यादेनाम् । तदपवारित शरीरः पश्यामि तावदस्य चिकीर्षितम् । (इत्येकान्ते स्थितः ।)

विट—[कुछ दूर जाकर] अथवा मेरे चले जाने पर यह क्रूर इस (वसन्तसेना) को कदाचित् मार न दे। अतः शरीर को छिपाकर इसकी करतूत को देखता हूँ। [एकान्त में ठहर जाता है]

शकारः—भवतु । मारयिष्यामि । अथवा कपटकापटिक एष ब्राह्मणो वृद्धशृगालः कदाचिदपवारितशरीरो गत्वा शृगालो भूत्वा कपट करोति। तदेतस्य वञ्चनानिमित्तमेव तावत्करिष्यामि। (कुसुमावचय कुर्वन्नात्मान मण्डयति ।) बाले बाले वसन्तसेने, एहि । [भोदु । मालइश्शम् । अथवा कवडकावडिके एशे बह्मणे वुड्ढखोड्डे कदावि ओवालिदशलीले गदिअ शिआले भविअ हुलुमुलि कलेदि । ता एतदश्श वञ्चणाणिमित्त एव्व दाव कलइश्शम् । बाशू बाशू वशन्तशेणिए, एहि ।]

शकार–अच्छा, मारूँगा। अथवा धूर्तों में अग्रणी यह ब्राह्मण बूढ़ा सियार कहीं अपने आपको छिपाकर (यहाँ से) जाकर सियार सा बनकर कपट करता हो। अत. इसकी प्रतारणा के निमित्त तब तक ऐसा करूँगा। [फूल चुनता हुआ अपने आपको सजाता है] बाला, बाला वसन्तसेना ! आओ।

विटः—अये, कामी सवृत्तः । हन्त, निर्वृतोऽस्मि । गच्छामि । (इति-निष्क्रान्तः ।)

विट–अरे ! कामी बन गया । अहा ! मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। जाता हूँ। [यह कहकर निकल जाता है ।]

विवृति

१. पटान्ते—आँचल में । २. न्यासः—धरोहर । 'पुमानुपनिधिर्न्यासः' इत्यमरः । ३. नृशसः—निर्दय । 'नृशसो घातुकः क्रूरः' इत्यमरः । नृन् शसति इति नृशस. । नृ+शस्+अण । ४. अपवारितशरीर.—शरीर को छिपाने वाला । अपवारितम् शरीरम् येन यस्य वा असौ। ५. चिकीर्षितम्—करने की इच्छा को। ६. कपटकापटिक.—धूर्तशिरोमनि । ७. वञ्चनानिमित्तम्—ठगने के लिये । ८. सवृत्त.—हो गया । ९. निर्वृतः–निश्चिन्त ।

सुवर्णकं ददामि प्रियं वदामि पतामि शीर्षेण सवेष्टनेन।
तथापि मां नेच्छसि शुद्धदन्ति ! किं सेवकाः कष्टमया मनुष्याः ॥३१॥
[शुवण्णअं देमि पिअं वदेमि पडेमि शिशेण शवेश्टणेण।
तधा वि मं णेच्छशि शुद्धदन्ति ! किं शेवअ कश्टमआ मणुश्शा ॥३१॥]

अन्वय — (अहम्, तुभ्यम्), सुवर्णकम्, ददामि, प्रियम्, वदामि, सवेष्टनेन, शीर्षेण, पतामि, तथापि, हे शुद्धदन्ति । माम्, सेवकम्, किम्, न, इच्छसि ? (सत्यम्) मनुष्या कष्टमया, (भवन्ति) ॥३१॥

पदार्थ —सुवर्णकम्=सोना, ददामि=देता हूँ, प्रियम्=मीठी बात, वदामि= कहता हूँ, सवेष्टनेन=पगडी सहित, शीर्षेण=शिर से, पतामि=गिरता हूँ, हे शुद्ध-दन्ति !=हे चमकीले दाँतो वाली ; कष्टमया=कष्टो से पूर्ण अथवा निर्दय ॥

अनुवाद—मै तुम्हे सुवर्ण देता हूँ, प्रिय वचन कहता हूँ, पगडी सहित सिर से (तुम्हारे पैरो पर) गिरता हूँ, तथापि हे उज्ज्वल दाँतो वाली ! मुझ सेवक को क्यो नही चाहती हो ? [सच है] मनुष्य बडे निर्दय होते है ।

संस्कृत टीका—[अहम्, तुभ्यम्] सुवर्णकम्=कनकम्, ददामि=समर्पयामि, प्रियम्=चाटुवचनम्, वदामि=ब्रवीमि, सवेष्टनेन=उष्णीषयुक्तेन, शीर्षेण=शिरसा, पतामि=प्रणमामि, तथापि=चरणप्रणिपातेऽपि कृते, हे शुद्धदन्ति=हे शुभ्रदशने ! माम्=कामुकम्, सेवकम्=दासम्, किम्=कथम्, नेच्छसि=न वाञ्छसि ? (सत्यम्) मनुष्याः=मानवाः, कष्टमयाः=क्लेशमयाः, निर्दयाः इति भाव अथवा कृच्छ्रेणानुनेया (भवन्ति) ।

समास एवं व्याकरण—१. ददामि–दा+लट् । २. प्रियम्–प्री+क । ३. वदामि–वद्+लट् । ४. वेष्टनेन–वेष्ट+ल्युट् । ५. सेवकम्–सेव्+ण्वुल । ६. इच्छसि–इष्+लट् ।

विवृति

१. कष्टमया –कष्टो से पूर्ण, 'किं ते वयं काष्ठमया मनुष्या'—यह पाठान्तर है, इसका अर्थ है—'क्या हम काष्ठनिर्मित मनुष्य हैं ? (जो इस प्रकार उपेक्षा करती हो) ।" २. 'सुवर्णबिस्तौ हेम्नोऽक्षे' इत्यमर । ३. उपजाति है ।

वसन्तसेना—कोऽत्र सदेह । (अवनतमुखी 'खलचरित' इत्यादिश्लोकद्वयं पठति । [को एत्थ सदेहो ।]

वसन्तसेना—इसमे क्या संदेह ? [नीचे की ओर मुख करके 'खलचरित' इत्यादि दो श्लोक पढती है]

खलचरित निकृष्ट ! जातदोषः
कथमिह मां परिलोभसे धनेन ? ।
सुचरितचरितं विशुद्धदेहं
न हि कमलं मधुपाः परित्यजन्ति ॥३२॥

अन्वय–हे खलचरित ! निकृष्ट ! (त्वम्), जातदोष, (सन्), इह, माम्, धनेन, कथम्, परिलोभयसे ? मधुपाः, सुचरितचरितम्, विशुद्धदेहम्, कमलम्, हि, न, परित्यजन्ति ॥३२॥

पदार्थः—हे खलचरित ! =हे दुष्ट चरितवाले ! निकृष्ट !=नीच !, जातदोषः=दोष अथवा पाप से युक्त, परिलोभयसे=लुभा रहे हो ? मधुपाः=भ्रमर अथवा भ्रमरियाँ, सुचरितचरितम्=सुन्दरशील वाले (कमल-पक्ष में) सुगन्ध, मकरन्द आदि के द्वारा आनन्द देने वाले; (पुरुष-पक्ष में) सुन्दर आचरण से युक्त जीवन वाले, विशुद्धदेहम्=(कमल-पक्ष में) सुन्दर अथवा भव्य आकृति वाले, (पुरुष-पक्ष में) निर्मल अथवा भव्य शरीर वाले, परित्यजन्ति=छोडते हैं ।

अनुवाद—हे दुष्ट चरित्र वाले ! अधम ! (तुम) पाप से युक्त होकर यहाँ मुझे धन से क्यों लुभा रहे हो ? भ्रमर सुन्दर स्वभाव वाले एवं निर्मल आकृति वाले कमल को निश्चित ही नही छोड़ते ।

संस्कृत टीका–हे खलचरित !=हे दुष्टचरित्र !, निकृष्ट !=अधम !, (त्वम्) जातदोषः=समुत्पन्नदोषः, (सन्) इह=अत्र, माम्=वसन्तसेनाम्, धनेन=अर्थेन, कथम्=किमर्थम्, परिलोभयसे ?=प्रलोभयसि ?, मधुपा=भ्रमरा, सुचरितचरितम्=शोभनस्वभावम्, विशुद्धदेहम्=विमलशरीरम्, कमलम्=पद्मम्, हि=निश्चयेन, न परित्यजन्ति=न जहति ।

समास एव व्याकरण–खलचरित!–खलस्य चरितम् । जातदोषः–जाताः दोषाः यस्य सः । सुचरितचरितम्—सुचरितम् चरितम् यस्य तादृशम् । विशुद्धदेहम्–विशुद्धः देहः यस्य तादृशम् । निकृष्टः—नि+कृष्+क्त ।

विवृति

(१) भाव यह है कि मैं भी शुद्ध चरित्र वाले आर्य चारुदत्त को छोड़कर आप पर अनुरक्त नहीं हो सकती हूँ । (२) जातदोषः—दोषयुक्त अथवा जाते जनने दोषः अपवाद. यस्य सः जारज इत्यर्थः (J. V.) किन्तु यह क्लिष्टकल्पना है । (३) प्रस्तुत पद्य में अप्रस्तुत मधुप अकर्तृक कमल का अपरित्याग रूप सम से प्रस्तुत वसन्तसेना अकर्तृक चारुदत्त के अपरित्याग सम की प्रतीति होने से अप्रस्तुतप्रशसा अलकार है । (४) कुछ टीकाकारो के अनुसार परिकर एव ससृष्टि अलकार भी हैं ।

(५) पुष्पिताग्रा छन्द है । लक्षण-"अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥"

यत्नेन सेवितव्य पुरुप कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि।
शोभा हि पणस्त्रीणा सदृशजनसमाश्रय. काम. ॥३३॥

अन्वय —कुलशीलवान्, पुरुष , दरिद्र , अपि, यत्नेन, सेवितव्य , हि, सदृशजनसमाश्रय., काम , पणस्त्रीणाम्, शोभा, (अस्ति) ॥३३॥

पदार्थ —कुलशीलवान् =सुन्दर कुल एव स्वभाववाला, दरिद्र=निर्धन सेवितव्य =सेवा किये जाने के योग्य, सदृशजनसमाश्रय. समान गुण वाले अथवा अपने योग्य पुरुष के साथ किया गया (समागम), काम =प्रेम व्यवहार, पणस्त्रीणाम्= वेश्याओ की, शोभा=सुषमा ।

अनुवाद—कुलीन एव सदाचारी पुरुष दरिद्र होने पर भी यत्नपूर्वक सेवा करने योग्य है, क्योकि अनुरूप व्यक्ति पर आश्रित काम वेश्याओ की शोभा है ।

सस्कृत टीका—कुलशीलवान्=कुलशीलसमन्वित:, पुरुष =नर, दरिद्र अपि=निर्धनोऽपि, यत्नेन=प्रयत्नेन, सेवितव्य =सेवनार्ह , अस्ति, हि=यत , सदृशजनसमाश्रय =अनुरूपकान्तविषयक , काम =कन्दर्प , पणस्त्रीणाम्=वारविलासिनीनाम, शोभा=आभूषणम् (अस्ति) ॥

समास एव व्याकरण—(१) सदृशजनसमाश्रय —सदृशजन. समाश्रय यस्य तादृश । पणस्त्रीणाम्—पणेन लभ्या स्त्रिय पणस्त्रिय (मध्य० स०), तासाम् । (२) सेवितव्य —सेव्+तव्य+सु । (३) काम —कम्+घञ् । शोभा-शुभ्+अ+ टाप् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे प्रस्तुत पुरुष एव पणस्त्री सामान्य से प्रस्तुत पुरुषपणस्त्री विशेष चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रतीत होने से अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है। (२) पणस्त्री शोभावर्धक रूप कारण से कुलशीलवान् पुरुष के सेवन रूप कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । (३) काम शोभा म कारण एव कार्य का अभेद रूप से कथन होने से हेतु अलङ्कार है । लक्षण—'अभेदेनाभिधाहेतुर्हेतोर्हेतुमता सहे' ति दर्पण । (४) इन सबका परस्पर अङ्गाङ्गि भाव होने से सङ्करालङ्कार है । (५) आर्या छन्द है । लक्षण—"यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"

अपि च । सहकारपादप सेवित्वा न पलाशपादपमङ्गी करिष्यामि । [अवि । सहआर पादव सेविअ ण पलासपादव अङ्गीकरिस्सम् ।]

और भी, आम्रवृक्ष का सेवन करके पलाश वृक्ष को स्वीकार नही करूँगी ।

शकार:—दास्या , पुत्रि, दरिद्रचारुदत्तक सहकारपादप कृत अह पुन पलाशो

भणितः, किंशुकोऽपि न कृत । एव, त्वं मह्यं गाली ददत्यद्यापि तमेव चारुदत्तक स्मरसि । [दाशीए धीए,-दलिद्दचालुदत्तके शहआलपादवे कडे, हगे उण पलाशे भणिदे, किंशुके वि ण कडे । एव्वं तुम मे गालिं दन्ती अज्जवि त ज्जेव चालुदत्तकं शुमलेशि ।]

शकार – दासी की बेटी ! दरिद्र चारुदत्त को आम्रवृक्ष बना दिया और मुझे पलाश कहा, 'किंशुक' भी नही बनाया । इस प्रकार तू मुझे गाली देती हुई अब भी उसी चारुदत्त का स्मरण कर रही है ?

वसन्तसेना—हृदयगत एव किमिति न स्मर्यते । [हिअअगदो ज्जेव किं त्ति न सुमरीअदि ।]

वसन्तसेना—हृदय मे ही स्थित वे क्यो न स्मरण किये जायें ?

शकार--अद्यापि ते हृदयगत त्वा च सममेव मोटयामि । तद्दरिद्रसार्थवाहक-मनुष्यकामुकिनि, तिष्ठ तिष्ठ । [अज्ज वि दे हिअअगद तुम च शम ज्जेव मोडेमि । ता दलिद्दशत्थवाहअमणुश्शकामुकिणि, चिश्ट चिश्ट ।]

शकार--आज ही तुम्हारे हृदय में स्थित (चारुदत्त) को और एक साथ ही मरोड़ डालता हूँ । तो दरिद्र सार्थवाह मनुष्य (चारुदत्त) को चाहने वाली ! ठहर ठहर ।

वसन्तसेना – भण भण पुनरपि भण श्लाघनीयान्येतान्यक्षराणि । [भण भण पुणो वि भण सलाहणिआइ एदाइ अक्खराइ ।]

वसन्तसेना—कहो कहो, फिर भी कहो । ये अक्षर (चारुदत्तकामुकिनि) प्रशस-नीय हैं ।

शकार.—परित्रायता दास्या. पुत्रो दरिद्र चारुदत्तकस्त्वाम् । [पलित्ताअदु दाशीए पुत्ते दलिद्दचालुदत्तके तुमम् ।]

शकार—दासी का बेटा दरिद्र चारुदत्त तुझे बचा ले ।

वसन्तसेना—परित्रायते यदि मा प्रेक्षते । [परित्ताअदि जदि म पेक्खदि ।]

वसन्तसेना—यदि (वे) देखते तो (अवश्य) बचाते ।

विवृति

(१) सहकारपादपम्—आम के पेड़ो को । (२) सेवित्वा—सेवन करके । (३) पलाशोभणित —पलाश कहा है । (पलाश=किंशुक वृक्ष, मास खाने वाला) वसन्तसेना ने सुगन्ध हीन किंशुक के फूल के अर्थ म प्रयोग किया है किन्तु शकार मास भक्षी अर्थ मे प्रयुक्त समझता है । (४) मोटियामि=मरोड़ता हूँ । (५) दरिद्र सार्थवाहकमनुष्यकामुकिनि=निर्धनवैश्यमनुष्यकी इच्छुक ।

शकार :—

शकार—

किं स शक्रो वालि पुत्रो महेन्द्रो रम्भापुत्रः कालनेमिः सुवन्धुः ।
रुद्रो राजा दोणपुत्रो जटायुश्चाणक्यो वा धुन्धुमारस्त्रिशङ्कुः ॥३४॥
[किं शे शक्के वालिपुत्ते महिंदे लभापुत्ते कालणेमी शुबन्धू ।
लुद्दे लाआ दोणपुत्ते जडाऊ चाणक्के वा धुं धुमाले तिशंकू ॥३४॥]

अन्वय—स, किम्, शक्र, बालिपुत्र, महेन्द्रः ? रम्भापुत्रः, कालनेमिः, सुबन्धुः ? राजा, रुद्र ? द्रोणपुत्र, जटायु ? चाणक्य. ? धुन्धुमारः, वा, त्रिशङ्कुः, (अस्ति) ? ॥३४॥

पदार्थ—बालिपुत्र महेन्द्र =बालि का पुत्र इन्द्र, रम्भापुत्रः कालनेमि. =रम्भा का पुत्र कालनेमि ।

अनुवाद—वह (चारुदत्त) क्या इन्द्र है ? बालि का पुत्र महेन्द्र है ? रम्भा का पुत्र कालनेमि है ? सुबन्धु है ? राजा रुद्र है ? द्रोण का पुत्र जटायु है ? चाणक्य है ? धुन्धुमार है अथवा त्रिशङ्कु है ?

संस्कृत टीका—स =चारुदत्तः, किम् शक्रः=किम् इन्द्रः ? बालिपुत्र.= बालिसुत, महेन्द्रः=देवेन्द्रः ?, रम्भापुत्रः=रम्भातनय, कालनेमि =रावणमातुल', सुबन्धु =राजविशेष, राक्षसविशेष' वा ? राजा=नृप, रुद्र =शिव. ? द्रोणपुत्रः= द्रोणसुत, जटायु.=गृध्रराज ? चाणक्य =कौटिल्य', धुन्धुमारः=असुरविशेष', वा= अथवा, त्रिशङ्कु.=इक्ष्वाकुवंश्य राजविशेष (अस्ति) ॥

समास एव व्याकरण—(१) रम्भापुत्रः—रम्भायाः पुत्रः । द्रोणपुत्रः— द्रोणस्य पुत्र ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे पुनरुक्ति तथा इतिहास विरुद्ध बातें शकारोक्ति होने से क्षम्य हैं । (२) कालनेमि—रम्भा का पुत्र नही, वह एक असुर था, जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत् में किया गया है । (३) सुबन्धु—बृहत्कथा मे इसका उल्लेख है, यहा 'वासवदत्ता' का लेखक सुबन्धु नही क्योकि वह शूद्रक से अर्वाचीन है । द्रोणपुत्रः जटायु यह भी इतिहास के विरुद्ध है । (५) धुन्धुमार —अयोध्या नगरी का एक राजा, सम्भवत. उसका वास्तविक नाम 'कुवलयाश्व' था । (६) त्रिशङ्कु—सूर्यवंश का एक राजा, जो साहित्य मे बहुत प्रसिद्ध है । (७) प्रस्तुत श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है— शालिनी । लक्षण—"मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ॥" (८) पृथ्वीधर के अनुसार शक्वरी विशेष छन्द है । (९) धुन्धुमार और त्रिशङ्कु पुराणों मे प्रसिद्ध है ।

अथवा, एतेऽपि त्वा न रक्षन्ति । [अथवा, एदे विदेण लक्खन्ति ।]

अथवा ये भी तुम्हारी रक्षा नही करते ।

चाणक्येन यथा सीता मारिता भारते युगे ।
एवं त्वां मोटयिष्यामि जटायुरिव द्रौपदीम् ॥ ३५ ॥
[चाणक्केण जधा शीदा मालिदा भालदे जुए ।
एव्व दे मोडइश्शामि जडाऊ विअ दोव्वदिम् ॥३५॥]

अन्वय—यथा, भारते युगे, चाणक्येन, सीता, मारिता, जटायुः, द्रौपदीम् इव, एवम्, त्वाम्, मोटयिष्यामि ॥३५॥

पदार्थ—यथा=जैसे, भारते युगे=महाभारत–काल में, चाणक्येन=चाणक्य के द्वारा, मारिता=मारी गयी थी, मोटयिष्यामि=मारूँगा ।

अनुवाद—जैसे द्वापर के अन्तिम काल में चाणक्य ने सीता को मारा था, जटायु ने द्रौपदी को (मारा था) उसी प्रकार मैं तुम्हें मारूँगा ॥

संस्कृत टीका—यथा=येन प्रकारेण, भारते=द्वापरान्ते, युगे=काले, चाणक्येन=कौटिल्येन, सीता=जानकी, मारिता=हता, जटायु=गृध्रराज, द्रौपदीम्=पाञ्चालीमिव, एवम्=तथेत्यर्थं, त्वाम्=वसन्तसेनाम्, मोटयिष्यामि=चूर्णयिष्यामि ॥

समास एवं व्याकरण—(१) युगे—युज्+घञ् (गुणाभाव) । (२) मृ+णिच्+क्त+टाप् । (३) मोटयिष्यामि—मोट+णिच्+लृट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत श्लोक में भी इतिहास विरुद्ध वर्णन हैं, सीता भारत युग में नहीं थी, उसे चाणक्य ने नहीं मारा । इसी प्रकार जटायु एवं द्रौपदी का भी काल-भेद है । (२) प्रस्तुत पद्य में हतोपमा अलङ्कार है । (३) पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण—'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ॥'

(इति ताडयितुमुद्यत ।)
[यह कहकर मारने को उद्यत होता है]

वसन्तसेना—हा मातः कुत्रासि । आर्यचारुदत्त, एष जनोऽसम्पूर्णमनोरथ एव विपद्यते । तदूर्ध्वमाक्रन्दयिष्यामि । अथवा वसन्तसेनोर्ध्वमाक्रन्दतीति लज्जनीय खल्वेतत् नमः आर्यचारुदत्ताय । [*हा अत्ते, कहिं सि । हा अज्ज चारुदत्त, एसो जणो असपुण्ण* मणोरधो ज्जेव विवज्जदि । ता उद्ध अक्कन्दइस्सम् । अथवा वसन्तसेणा उद्धं अक्कन्दति त्ति लज्जणीअं क्खु एदम् । णमो अज्जचारुदत्तस्स ।]

वसन्तसेना—हाय माँ ! कहाँ हो ? हाय आर्य चारुदत्त ! मैं बिना मनोरथ पूर्ण हुए ही मरी जा रही हूँ । अतः ऊँचे स्वर से रोऊँगी । अथवा वसन्तसेना ऊँचे स्वर से रो रही है—यह निश्चय ही लज्जास्पद है । आर्य चारुदत्त को नमस्कार है ।

शकार—अद्यापि गर्भदासी तस्यैव पापस्य नाम गृह्णाति । (इति कण्ठे

पीडयन् ।) स्मर गर्भदासि, स्मर। [अज्जवि गब्भदाशी तश्श ज्जेव पावस्स णाम गेण्हदि । शुमल गब्भदाशि, शुमल ।]

शकार— अब भी (यह) जन्म की दासी पापी का नाम ले रही है ? [यह कह कर गला दबाता हुआ] स्मरण कर जन्म की दासी ! स्मरण कर।

वसन्तसेना—नम आर्यचारुदत्ताय । [णमो अज्जचारुदत्तस्स]

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्त को नमस्कार है।

शकार —म्रियताम् गर्भदासि, म्रियताम् । (नाट्येन कण्ठे निपीडयन्मारयति ।) [मल गब्भदाशि, मल ।]

शकार—मर जन्म की दासी ! मर। [अभिनयपूर्वक गला दबाता हुआ मारता है]

(वसन्तसेना मूर्च्छिता निश्चेष्टा पतति ।)

[वसन्तसेना मूर्च्छित तथा निश्चेष्ट होकर गिरती है]

विवृत्ति

(१) असम्पूर्णमनोरथ —जिसका मनोरथ पूरा नहीं हुआ। (२) ऊर्ध्वम्—जोर से। (३) आक्रन्दयिष्यामि–चिल्लाऊँगी। (४) निपीडयन्—दबाते हुए। (५) निश्चेष्टा स्थिर।

शकार -(सहर्षम् ।)

शकार–[हर्षपूर्वक]

एता दोषकरण्डिकामविनयस्यावासभूता खला
रक्ता तस्य किलागतस्य रमणे कालागतामागताम् ।
किमेष समुदाहरामि निजक बाह्वोः शूरत्व
नि श्वासापि म्रियतेऽम्बा सुमृता सीता यथा भारते ।।३६।।

[एद दोशकलडिअ [अविणअश्शावासभूद खल
लत्त तश्श किलागदश्श लमणे कालागद आअद ।
किं एशे शमुदाहलामि णिअअ बाहूण शूलत्तण
णीशाशे वि मलेइ अ व शुमला शीदा जधा भालदे ।। ३६ ।]

अन्वय —दोषकरण्डिकाम्, अविनयस्य, आवासभूताम्, खलाम् रक्ताम्, आगतस्य, तस्य, रमणे, आगताम्, किल, कालागताम्, एताम्, (हत्वा), एष, (अहम्), निजकम्, बाह्वो, शूरत्वम्, किम्, उदाहरामि ? नि श्वासा, अपि, अम्बा, (तथैव), म्रियते, यथा, भारते, सीता, सुमृता ।। ३६ ।।

पदार्थ —दोषकरण्डिकाम् =दोषो की पिटारी, अविनयस्य=उदण्डता का,

आवासभूताम्=निवास रूप; खलाम्=दुष्ट,रक्ताम्=(चारुदत्त) से प्रेम करने वाली, आगतस्य=आये हुये, कालागताम्=मृत्यु को प्राप्त, उदाहरामि=वर्णन करूँ, निःश्वासा=श्वांस रहित, म्रियते=मर रही है, सुमृता=भली भाँति मर गयी थी ॥

अनुवादः—दोषों की पिटारी, अविनय का निवास स्थान, दुष्टा, अनुरागयुक्ता आये हुये उस (चारुदत्त) से रमण के लिए आयी हुई काल (मृत्यु) को प्राप्त इस (वसन्तसेना) को मारकर मैं अपनी भुजाओं की वीरता का क्या वर्णन करूँ ? श्वास-रहित होने पर भी माता (वसन्तसेना) उसी प्रकार मर रही है जिस प्रकार भारत युग में सीता भली भाँति मर गई ॥

संस्कृत टीका— दोषकरण्डिकाम्=दोषपेटिकाम्, अविनयस्य=औद्धत्यस्य, आवास भूताम्=निवासस्थानम्, खलाम्=दुष्टाम्, रक्ताम्=अनुरागयुक्ताम्, आगतस्य=पूर्वसङ्केतनोपस्थितस्य, तस्य=चारुदत्तस्य, रमणे=सम्भोगे, आगताम्=प्राप्ताम्, किल=निश्चितम्, कालागताम्=कालप्राप्ताम्, एताम्=वसन्तसेनाम्, (हत्वा) एषः= वीरकर्मणि संलग्नः (अहम्) निजकम्=स्वकीयम्, बाह्वोः=भुजयोः,शूरत्वम्=वीरत्वम्,किमुदाहरामि=किं वर्णयामि ? निःश्वासा=श्वासरहिता अपि,आम्बा=माता,वसन्तसेना इत्यर्थः,(तथैव) म्रियते=पञ्चत्वम् प्राप्नोति,यथा=येन प्रकारेण,भारते=भारते युगे, सीता=जानकी, सुमृता=सुष्ठुमृता ॥

समास एवं व्याकरण— १ दोषकरण्डिकाम् दोषाणाम् करण्डिकानाम् । २ रक्ताम् रञ्ज्+क्त+टाप् । ३ आगतस्य—आ+गम्=क्त । ४ उदाहरामि—उत्+आ+हृ+लट् ५ सुमृता—सु+मृ+क्त+टाप् । ६ रमणे—'निमित्तात् कर्मयोगे' सप्तमी ।

विवृति

१ प्रस्तुत पद्य में शकार के भावानुसार वसन्तसेना का चित्र चित्रित किया गया है। २ 'रमणे' में 'निमित्तात्कर्मयोगे' से सप्तमी विभक्ति है। ३ यहाँ भी शकार ने मूर्खतापूर्ण बातें कही हैं। ४ हतोपमा अलङ्कार है। ५ शार्दूल विक्रीडित छन्द है। लक्षण—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्' ॥

इच्छन्तं मां नेच्छतीति गणिका रोषेण मया मारिता
शून्ये पुष्पकरण्डक इति सहसा पाशेनोत्रासिता ।
स वा वञ्चितो भ्राता मम पिता मातेव सा द्रौपदी
योऽसौ पश्यति नेदृशं व्यवसितं पुत्रस्य शूरत्वम् ॥३७॥

[इच्छतं मम णेच्छति त्ति गणिआ लोशेण मे मालिदा
शुण्णे पुप्फकलडके त्ति शहशा पाशेण उत्ताशिदा ।

शेवावचिदभादुके मम पिदा मादेव शा दोप्पदी
जे शे पेक्खदि णेदिश क्वशिद पुत्ताह् शूलत्तण ॥ ३७ ॥]

अन्वय.—इच्छन्तम् माम्, गणिका, न इच्छति, इति, रोषेण, मया, शून्ये, पुष्प करण्डके, सहसा पाशेन, उत्त्रासिता, मारिता, च, स, मम,भ्राता, वा, पिता, वञ्चित, द्रौपदी, इव, सा, माता च, (वञ्चिता) ,य असौ, पुत्रस्य,ईदृशम्, शूरत्वम्, व्यवसितम च, न, पश्यति ॥ ३७ ॥

पदार्थ —इच्छन्तम् =चाहने वाले, गणिका=वेश्या, पुष्पकरण्डके=पुष्प-करण्डक नामक उद्यान मे, पाशन= (बाहु) पाश से, उत्त्रासिता=भयभीत की गई, मारिता=मारी गयी, वञ्चित =ठगा गया अर्थात् मेरी वीरता देखने से रह गया, व्यवसितम् =चेष्टा, प्रयत्न ॥

अनुवाद —चाहने वाले मुझे वेश्या (वसन्तसेना) नही चाहती, इस कारण क्रोध से मैंने शून्य पुष्पकरण्डक नामक उपवन मे सहसा उसे (बाहु) पाश से भयभीत किया और मार डाला। वह मेरा भाई अथवा पिता एव द्रौपदी के समान माता वञ्चित रह गई। जिसने (अपने) पुत्र की ऐसी वीरता और चेष्टा नही देखी ॥

संस्कृत टीका—इच्छन्तम् =अभिलषन्तम्, माम् =शकारम्, गणिका= वेश्या (वसन्तसेना), न इच्छति= न वाञ्छति, इति=अस्मात् कारणात्,रोषेण= कोपेन, मया=शकारेण, शून्ये=निर्जने, पुष्पकरण्डके=पुष्पकरण्डकनामके उद्याने, सहसा=झटिति, पाशेन=बाहुपाशेन, उत्त्रासिता=त्रासम् प्रापिता, मारिता=हता, च, स, मम=म, भ्राता=सहोदर, वा, पिता=जनक, वञ्चित =प्रतारित, द्रौपदीव==द्रुपदपुत्रीव, सा, माता=जननी, च य असौ पुत्रस्य=सुतस्य मम शकारस्येत्यर्थः, ईदृशम् =अश्रुतपूर्वम्, शूरत्वम् =वीरत्वम्,व्यवसितम् =उद्योगञ्च, न पश्यति=नावलोकयति ॥

समास एव व्याकरण—(१)गणिका-गण अस्ति अस्या गणिका, गणयतीति वा। (२) व्यवसितम्—वि+अव+सो+क्त। (३) इच्छन्तम्—इष्+शतृ (लट्)। (४) उत्त्रासिता—उत्+त्रस्+णिच्+क्त+टाप्। (५) वञ्चित—वञ्च+क्त। (६) पश्यति-दृश्+लट् (पश्यादेश)।

टिप्पणी

(१) प्रस्तुत पद्य मे शकार ने द्रौपदी की समानता करते हुए उसका 'बहु-जन-प्रसङ्ग' सिद्ध कर दिया है क्योकि द्रौपदी के पाँच पति थे इसी प्रकार मेरी माता भी बहुतो की उपभोग्या है। (२) शकार की शूरता देखकर उसके माता पिता और भाई आदि प्रसन्न होते हैं। मूर्ख शकार वसन्तसेना का मारना अपनी वीरता समझ

रहा है। अतः यदि उसके माता-पिता आदि ने उसकी इस शूरता को नहीं देखा तो वे अपने पुत्र की सेवा से वञ्चित रह गये। (३) 'वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवा' इत्यमरः। (४) प्रस्तुत श्लोक मे शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लक्षण-"सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगा. शार्दूलविक्रीडितम्।"

भवतु। साम्प्रत वृद्धशृगाल आगमिष्यतीति। ततोऽपसृत्य तिष्ठामि। (तथा करोति।) [भोदु। सपद वुड्ढखोडे आगमिस्सदि त्ति। ता ओशलिअ चिश्टामि।]

अच्छा, अब बूढा सियार आ जायेगा। अत हट कर खडा होता हूँ। [वैसा करता है।]

(प्रविश्य चेटेन सह।)

[चेट के साथ प्रवेश करके]

विट—अनुनीतो मया स्थावरकश्चेटः। तद्यावत्काणेलीमातर पश्यामि। (परिक्रम्यावलोक्य च।) अये, मार्गे एव पादपो निपतितः। अनेन च पतता स्त्री व्यापादिता। भो. पाप, किमिदमकार्यमनुष्ठित त्वया। तवापि पापिनः पतनात्स्त्रीवधदर्शनेनातीव पातिता वयम्। अनिमित्तमेतत्, यत्सत्य वसन्तसेना प्रति शङ्कित मे मनः। सर्वथा देवता स्वस्ति करिष्यन्ति। (शकारमुपसृत्य।) काणेलीमात, एव मयानुनीत. स्थावरकश्चेटः।

विट—मैंने स्थावरक चेट को मना लिया है। तो अब पुंश्चली-पुत्र (शकार) को देखता हूँ। [घूमकर और देखकर] ओह! मार्ग मे ही वृक्ष गिर पडा है और गिरते हुए इसने एक स्त्री को मार डाला है। अरे पापी! तूने यह क्या अकार्य कर डाला। तुझ पापी के गिरने के कारण (होने वाले) स्त्री-वध के दर्शन से हम भी पतित कर दिये गये। यह अपशकुन है, सचमुच वसन्तसेना के प्रति मन शकाकुल हो उठा है। सर्वथा देवता कल्याण करेंगे। [शकार के समीप जाकर] पुंश्चलीपुत्र! इस प्रकार मैंने स्थावरक चेट को मना लिया

शकार—भाव, स्वगत ते। पुत्रक स्थावरक चेट, तवापि स्वागतम्। [भावे, आअद दे। पुत्तका थावलका चेडा, तवावि शाअदम्।]

शकार—विद्वान्! तुम्हारा स्वागत है। बेटा स्थावरक चेट! तुम्हारा भी स्वागत है।

चेट—अथ किम्। [अध इ।]

चेट—और क्या?

विट—मदीय न्यासमुपनय।

विट—मेरी धरोहर लाओ।

शकार—कीदृशो न्यासः। [कीदिशे णाशे।]

शकार—कैसी धरोहर ?

विटः—वसन्तसेना ।

विट—वसन्तसेना ।

शकारः—गता । [गडा]

शकार—गई ।

विट—क्व ।

विट—कहाँ ?

शकार—भावस्यैव पृष्ठतः । [भावश्य ज्जेव पिश्टदो ।]

शकार—आप ही के पीछे ।

विटः—(सवितर्कम् ।) न गता खलु सा तया दिशा ।

विट—[सोच-विचार के साथ] वह उस दिशा से तो नहीं गई ।

शकार—त्वं कतमया दिशा गतः । [तुम कदमाए दिशाए गडे ।]

शकार—तुम किस दिशा से गये थे ?

विटः—पूर्वया दिशा ।

विट—पूर्व दिशा से ।

शकारः—सापि दक्षिणया गता [शा वि दक्खिणाए गडा ।]

शकार—वह भी दक्षिण दिशा से गई ।

विटः—अहं दक्षिणया ।

विट—मैं दक्षिण दिशा से (गया था ।)

शकारः—साप्युत्तरया । [शा वि उत्तलाए ।]

शकार—वह उत्तर दिशा से (गई) ।

विटः—अत्याकुलं कथयसि । न शुद्ध्यति मेऽन्तरात्मा । तत्कथय सत्यम् ।

विट—बहुत घबराहट से कह रहे हो मेरा हृदय सशय रहित नहीं हो रहा है । तो सच कहो ।

शकार—शपे भावस्य शीर्षमात्मीयाभ्यां पादाभ्याम् । ततः संस्थापय हृदयम् । एषा मया मारिता । [शवामि भावश्श शीशं अत्तणकेलकेहिं पादेहिं । ता शठावेहि हिअअम् । एशा मए मालिदा ।]

शकार—मैं अपने पैरों से आपके सिर का शपथ खाता हूँ । तो हृदय को स्थिर करो । इसको मैंने मार दिया ।

विटः—(सविषादम् ।) सत्यं त्वया व्यापादिता ।

विट—[विषाद सहित] सचमुच तुमने मार दिया ?

शकारः—यदि मम वचने न प्रत्ययसे, तत्पश्य प्रथमं राष्ट्रियश्यालसंस्थानस्य

शूरत्वम् । (इति दर्शयति) [जइ मम वअणे न पत्तिआअशि, ता पेक्ख पढमं लट्टिअशालशंठाणाह शूलत्तणम् ।]

शकार—यदि मेरी बात मे विश्वास नहीं करते हो तो पहले राजश्यालक संस्थानक की शूरता देखो (दिखलाता है ।)

विटः—हा, हतोऽस्मि मन्दभाग्यः । (इति मूर्च्छितः पतति ।)

विट—हाय, मैं अभागा मारा गया । [मूर्च्छित होकर गिरता है]

शकारः-ही ही । उपरतो भावः । [ही ही । उवलदे भावे ।]

शकार—अहो ! विद्वान् मर गया ।

चेटः—समाश्वसितु समाश्वसितु भावः । अविचारितं प्रवहणमानयतैव मया प्रथमं मारिता । [शमश्शशदु शमश्शशदु भावे । अविचालिअ पवहण आणन्तेण ज्जेव मए पढमं मालिदा ।]

चेट—विद्वान् आश्वस्त हों, आश्वस्त हो, बिना विचारे गाड़ी को लाते हुए मैंने ही उसे पहले मार दिया था ।

विवृति

(१) अनुनीतः—मान लिया । (२) काणेलीमातरम्—पुंश्चली पुत्र को । (३) व्यापादिता—मार डाली गई । (४) पतता-गिरते हुए । (५) अनुष्ठितम्—किया गया । पातिताः—पतित बनाए गए । (६) अनिमित्तम्—अपशकुन । (७) स्वस्ति-मङ्गल । (८) उपसृत्य-समीप जाकर । (९) सवितर्कम्—सोचविचार के साथ । (१०) आकुलम्—घबराहट के साथ । (११) शुद्ध्यति—शुद्ध हो रहा है । (१२) अन्तरात्मा—अन्तःकरण । (१३) सस्थापय-स्थिर करो । (१४) प्रत्ययसे—विश्वास करते हो । (१५) उपरतः—मर गया ।

विट- (समाश्वस्य सकरुणम् ।) हा वसन्तसेने,

विट- (आश्वस्त होकर, करुणा के साथ) हाय वसन्तसेना !

दाक्षिण्योदक वाहिनी विगलिता याता स्वदेशं रति—
हा हालकृत भूषणे सुवदनेक्रीडारसोद्भासिनि !
हा सौजन्यनदि प्रहासपुलिने हा मादृशामाश्रये !
हा हा नश्यति मन्मथस्य विपणिः सौभाग्य पण्याकरः ।। ३८ ।।

अन्वयः—दाक्षिण्योदकवाहिनी, विगलिता, रतिः स्वदेशम्, याता; हा ! हा ! अलङ्कृतभूषणे ! सुवदने !क्रीडारसोद्भासिनि! हा प्रहासपुलिने ! सौजन्यनदि! हा! मादृशाम्, आश्रये हा ! हा ! मन्मथस्य, विपणिः, सौभाग्यपण्याकरः, नश्यतिः ।।३८।।

पदार्थः— दाक्षिण्योदकवाहिनी = उदारता रूपी जल की नदी, विगलिता =

सौंदर्य-कथा से दरिद्र ही हा गया है । (७) प्रस्तुत पद्य के प्रथम चरण में परम्परित रूपकालङ्कार है । (८) तृतीय चरण में एकदेशविवर्तिरूपकालङ्कार है । (९) चतुर्थ चरण में एकदेशविवर्तिरूपकालङ्कार है । (१०) शार्दूलविक्रीडित छन्द है । लक्षण- "सूर्याश्वैर्यदि म. सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम् ॥" (११) नागरम्य—"आभरण स्याभरण प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेष ।"—विक्रमोर्वशीय, अङ्क २ ॥ "द्वयमयपर्वः पाण्डुक्षामैरलङ्कृतमण्डना ।"—मालतीमाधव ।

(सास्रम् ।) कष्ट भो, कष्टम् ।

(नेत्रों में आँसू भर कर) अरे ! कष्ट है कष्ट ।

किं नु नाम भवेत्कार्यमिद येन त्वया कृतम् ।

अपापा पापकल्पेन नगर श्रीर्निपातिता ॥ ३९ ॥

अन्वय.— किम्, नु नाम, कार्यम्, भवेत्; येन, त्वया, इदम्, कृतम्, पापकल्पेन, (त्वया), अपापा, नगर श्रीः, निपातिता ॥ ३९ ॥

पदार्थ— किम् = कौन, नु = प्रश्नवाचक, नाम = सम्भावना के अर्थ में, कार्यम् = काम, भवेत् = होगा । पाप कल्पेन = पाप के तुल्य, अपापा = पाप से रहित नगर श्री. = नगर की शोभा, निपातिता = मारदिया ।

अनुवाद— कौन सा प्रयोजन होगा ? जिसके कारण तुमने यह (पाप) किया है । पाप तुल्य तुमने निष्पाप नगर लक्ष्मी को मार दिया है ।

संस्कृत टीका— किम् = कीदृशम्, नु = प्रश्ने, नाम = सम्भावनायाम्, कार्यम् = प्रयोजनम्, भवेत् = स्यात्, येन = कारणेन, त्वया = शकारेण, इदम् = कार्यम्, कृतम् = विहितम्, पाप कल्पेन = पापतुल्येन, अपापा = पापरहिता:, नगरश्री. = नगर शोभा, निपातिता = मारिता ।

समास एव व्याकरण—(१) नगरश्री —नगरस्य श्रीः इति । (२) पापकल्पेन —पापाद् ईषदून. इति पापकल्पः तेन । पाप + कल्पम् । (३) अपापा—नास्ति पापम् यस्या. सा । (४) निपातिता—नि + पत् + णिच् + क्त ।

विवृति

(१) पापकल्पेन में आर्थी उपमा है और नगर श्री. में रूपक अलङ्कार है । (२) पथ्यावक्त्र छन्द है । [स्वगतम्] अये ! कदाचिदय पाप इदमकार्यं मयि संक्रामयेत् । भवतु, इतो गच्छामि । (इति परिक्रामति)

(अपने आप) अरे ! शायद यह पापी इस पाप को मेरे ही ऊपर न आरोपित करदे? अच्छा यहाँ से जाता हूँ (यह कहकर घूमता है) ।

(शकार उपगम्य धारयति)

नष्ट अथवा लुप्त हो गई, रति =(कामदेव की स्त्री) रति, अलङ्कृतभूषणे=आभूषणों को सुशोभित करने वाली, सुवदने=सुन्दर मुँहवाली, क्रीडारसोद्भासिनी=(विविध काम) क्रीडा के रस से सुशोभित होने वाली, प्रहासपुलिने=उत्कृष्ट हास अथवा हास-परिहास रूपी रेतीले किनारों वाली, सौजन्यनदि=सुजनता की नदी, विपणि =दुकान अथवा बाजार, सौभाग्यपण्याकर =सौभाग्य रूपी-विक्रेय वस्तुओं की खान, नश्यति=नष्ट हो गयी ॥

अनुवाद— उदारता रूपी जल की नदी नष्ट हो गयी, रति अपने देश (स्वर्ग) को चली गई। हा! आभूषणों को अलकृत करने वाली! सुमुखि! (रति) क्रीडा के आनन्द को उद्भावित करने वाली! हा! उत्तम हास रूपी बालुकामय तटों वाली! सुजनता की नदी! हा! मेरे जैसों को आश्रय देने वाली! हाय! कामदेव की हाट! सौभाग्यरूपविक्रेय द्रव्य की निधि नष्ट हो गई।

संस्कृत टीका—दाक्षिण्योदकवाहिनी=औदार्यजल प्रवाहिणी, विगलिता=विनष्टा, रति =स्मरपत्नी, स्वदेशम् =स्वानिवासस्थानम्, स्वर्गमिति यावत्, याता =गता, हा! हा!-इतिखेदसूचकमव्ययं सर्वत्रबोध्यम्, अलकृतभूषणे! =अलकरालकारस्वरूपे। सुवदने=सुमुखि!, क्रीडारसोद्भासिनि! =लीलारसोद्भाविनि! हा प्रहासपुलिने! = हास्यसैकते! सौजन्यनदि सुजनतातरगिणि! हा! मादृशाम् = विदानाम्, आश्रये! =आश्रयदायिनि!" हा! हा! मन्मथस्य=कन्दर्पस्य, विपणि =पण्यवीथिका, सौभाग्यरूपविक्रेयद्रव्यखनि, नश्यति=नष्ट।

समास एवं व्याकरण-(१) दाक्षिण्योदकवाहिनी—दाक्षिण्यम् एव उदकम्, तस्य वाहिनी। अलकृतभूषण—अलकृतानि भूषणानि यया तत्सम्बुद्धौ। क्रीडारसोद्भासिनि—क्रीडाया रसेन उद्भासते इति तत्सम्बुद्धौ। प्रहासपुलिने—प्रहास एव पुलिनम् यस्यास्तत्सम्बुद्धौ। सौजन्यनदि—सौजन्यस्य नदि। सौभाग्यपण्याकर—सौभाग्यम् एव पण्यम् तस्य आकर। (२) विगलिता—वि+गल+क्त+टाप्। (३) रति—रम्+क्तिन। (४) याता—या+क्त+टाप्। (५) अलङ्कृत—अलम्+कृ+क्त। (६) नश्यति—नश्+लट्।

विवृति

(१) स्रवन्त्यामपि वाहिनी इत्यमर। (२)'तो यारिथतम् तु तत्पुलिनम्' इत्यमर। (३) विपणि पण्यवीथिका' इत्यमरः। (४) यहाँ विट की भावना के अनुसार वसन्तसेना का चित्र चित्रित किया गया है। (५) विपणि और पण्याकर शब्दों का गौण अर्थ मे प्रयोग किया गया है—यहाँ प्रेम का भण्डार झण्डार तथा सौभाग्य का भण्डार यही अर्थ सगत प्रतीत होता है, 'जहाँ प्रेम बिकता है 'सौभाग्य बिकता है' — यह अथ नहीं। (६) वसन्तसेना के मर जाने पर ससार

सौदर्य—नगरी से दरिद्र ही हो गया है। (७) प्रस्तुत पद्य के प्रथम चरण में परम्परित रूपकालङ्कार है। (८) तृतीय चरण में एकदेशविवर्तिरूपकालङ्कार है। (९) चतुर्थ चरण में एकदेशविवर्तिरूपकालङ्कार है। (१०) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लक्षण- 'सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥"(११) भाव न म्य—' आभरण स्याभरण प्रसाधनविधे प्रसादनविशेष ।"—विक्रमोर्वशीय, अङ्क २ ॥ 'दयमवयवैः पाण्डुक्षामैरलङ्कृतमण्डना ।'—मालतीमाधव ।

(सास्रम् ।) कष्टं भो कष्टम् ।

(नेत्रों में आँसू भर कर) अरे ! कष्ट है कष्ट ।

किं नु नाम भवेत्कार्यमिदं येन त्वया कृतम् ।

अपापा पापकल्पेन नगरश्रीर्निपातिता ॥ ३९ ॥

अन्वय — किम्, नु नाम, कार्यम्, भवेत्, यन, त्वया, इदम, कृतम्, पाप-कल्पन, (त्वया), अपापा, नगर श्री, निपातिता ॥ ३९ ॥

पदार्थ— किम्=कौन, नु=प्रश्नवाचक, नाम=सम्भावना के अर्थ में, कार्यम्=काम, भवेत्=होगा। पाप कल्पेन=पाप के तुल्य अपापा=पाप से रहित नगर श्री =नगर की शोभा, निपातिता=मारदिया ।

अनुवाद— कौन सा प्रयोजन होगा ? जिसके कारण तुमने यह (पाप) किया है। पाप तुल्य तुमने निष्पाप नगर लक्ष्मी को मार दिया है।

संस्कृत टीका— किम् = कीदृशम्, नु=प्रश्न, नाम=सम्भावनायाम्, कार्यम्=प्रयोजनम्, भवेत्=स्यात्, येन=कारणेन त्वया=शकारेण, इदम्= कार्यम्, कृतम्=विहितम्, पाप कल्पेन=पापतुल्येन, अपापा=पापरहिता, नगरश्री =नगर शोभा, निपातिता=मारिता ।

समास एवं व्याकरण—(१) नगरश्री —नगरस्य श्री इति। (२) पाप-कल्पेन—पापाद् ईषदून इति पापकल्प तेन। पाप+कल्पम्। (३) अपापा—नास्ति पापम् यस्या सा। (४) निपातिता–नि+पत्+णिच्+क्त ।

विवृति

(१) पापकल्पेन में आर्थी उपमा है और नगर श्री में रूपक अलङ्कार है। (२) पथ्यावक्त्र छन्द है। [स्वगतम्] अये ! कदाचिदयं पाप इदमपि मयि सङ्क्रामयेत्। भवतु, इतो गच्छामि। (इति परिक्रामति)

(अपने आप) अरे ! शायद यह पापी इस पाप को मेरे ही ऊपर न आरोपित करदे? अच्छा यहाँ से जाता हूँ (यह कहकर घूमता है)।

(शकार उपगम्य धारयति)

(शकार समीप में जाकर पकड़ता है) ।

विट —पाप! मा मा स्प्राक्षी । अलं त्वया, गच्छाम्यहम्।

विट—पापी ! मत छुओ । रहने दो । मैं जाता हूँ ।

शकार—अरे ! वसन्तसेना स्वयमेव मारयित्वा मां दूषयित्वा कुत्र पलायसे ? साम्प्रतमीदृशोऽहमनाथ प्राप्तः । (अले! वशंतशेणिअं शअं ज्जेव मालिअ मदूशिअकहिं पलाअशि? शंपद ईदिशे हग्गे अणाधे पाविदे ।

शकार— अरे! वसन्तसेना को स्वयं ही मारकर, मुझ पापी ठहराकर कहाँ भाग रहे हो? अब मैं ऐसा अनाथ हो गया हूँ ।

विट — अपध्वस्तोऽसि ।

विट - तुम पतित हो ।

विवृति

(१) सङ्क्रामयेत—थोप दे । इतः —यहाँ से । स्प्राक्षी —छुओ । दूषयित्वा—दोषी ठहराकर । अपध्वस्त —पतित ।

शकार.—

शकार—

अर्थं शतं ददामि सुवर्णकं ते कार्षापणं ददामि सवोडिकं ते
एष दोषस्थानं पराक्रमो मे सामान्यको भवतु मनुष्याणाम् ॥४०॥

[अत्थं शदं देमि शुवण्णअं दे
कहावणं देमि शवोडिअं दे ।
एशे दुश्शाण फलक्कमे मे
शामाण्णए भोदु मणुश्शआण ॥४०॥]

अन्वय — (अहम्) ते, शतम् सुवर्णकम्, अर्थम् ददामि, ते, सवोडिकम्, कार्षापणम्, ददामि दोषस्थानम् मे, एष पराक्रम, मनुष्याणाम्, सामान्यकः, भवतु ॥ ४० ॥

पदार्थ शतम् =सौ सुवर्णकम् =स्वर्णमुद्रा, सवोडिकम् =वोडि=२० कौड़ी सहित, कार्षापणम् =राजमुद्रा विशेष, एक कार्षापण (तत्कालीन) सोने का सिक्का, दोषस्थानम् =अपराध का कारण, सामान्यकः =साधारण बात अर्थात् मेरा ये दोष किसी सामान्य मनुष्य पर लगा दो ।

अनुवाद— मैं तुम्हें सौ स्वर्णमुद्रा की धनराशि दूँगा, तुम्हे बीस कौड़िया सहित एक कार्षापण दूँगा । दोष का स्थान मेरा ये पराक्रम (वसन्तसेना का वध) सामान्य बात हो जाये । (अर्थात् यह दोष सर्वसाधारण में से किसी पर लागू हो जाये, मुझ पर नहीं) ।

संस्कृत टीका – (अहम्) ते=तुभ्यम्, शतम्=शतसंख्याकम्, सुवर्णकम्=स्वर्णमुद्राराशिमित्यर्थः, अर्थम् = धनम्, ददामि = प्रयच्छामि, ते=तुभ्यम्, सबोडिकम्=बाडिनामकमुद्रासहितम्, कार्षापणम् = एतन्नाम्नीम् राजमुद्राम् ददामि=दास्यामि, दोषस्थानम्=अपराधकारणम्, मे=मम, एषः=सम्प्रत्येव विहित, पराक्रम =वीरता, सामान्यक =साधारण, भवतु=अस्तु ।

समास एवं व्याकरण–(१) बोडिना सहेति सबोडिकम् अथवा बोडिकाभि सहितम् । कार्षापणम्–कार्षस्य कार्षेण वा आपण, कर्षस्य अयम्–कार्ष । दोषस्य स्थानम् दोषस्थानम्, (२) कार्षापणम्—कर्ष+अण्=कार्ष, आ+पण्+घञ्=आपण ।

विवृति

(१) "अर्थ रैविभव अपि" इत्यमर । (२) "कार्षापणम कार्षिक स्यात्" इत्यमर । (३) "कार्षापणोऽस्त्री कार्षिके पण षोडषकेऽपि च' इति मेदिनी । (४) "वोडि विंशति कपर्दको गौडे प्रसिद्ध, इति पृथ्वीधर '। (५) कालभेद से भिन्न-भिन्न मूल्य एव धातु का सिक्का, मनु के अनुसार ताम्र मुद्रा—कार्षापणस्तु विज्ञेय-स्ता म्रिकार्षिण पण" मनु० ८/१३६ । अमरकोष के अनुसार एक चाँदी का सिक्का । पृथ्वीधर के अनुसार एक रुपए के मूल्य का सिक्का । वैसे साधारणतया चवन्नी को भी कार्षापण कहा जाता है । (६) सबोडिकम्—पृथ्वीधर के अनुसार वोडि एक सिक्का था, जिसका मूल्य बीस कौडी के बराबर होता था । (७) इसके स्थान पर कई पाठान्तर मिलते है, जैसे-सवेशिकम् (वेश सहित) सहोपणम् तथा सकोटिक (कोटि सहित) । (८) प्रस्तुत श्लोक मे उपजाति छन्द है—लक्षण–

"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौग ।
उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ॥
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता ॥'

विट —धिक्, तवैवास्तु ।

विट—धिक्कार है, (यह धन) तुम्हारे ही पास रहे ।

चेट —शान्त पापम्, [शान्त पावम् ।]

चेट-पाप शान्त हो ।

विटः–(शकारो हसति ।)

विट–[शकार हँसता है ।]

अप्रीतिर्भवतु विमुच्यता हि हासो
धिक्प्रीतिं परिभवकारिकामनार्याम् ।

मा भूच्च त्वयि मम सगत कदाचि—
दाच्छिन्न धनुरिव निर्गुण त्यजामि ॥४१॥

अन्वय—हास , विमुच्यताम्, अप्रीति', भवतु, हि, परिभवकारिकाम्, अनार्याम्, प्रीतिम्, धिक्, त्वयि, मम, सङ्गतम्, कदाचित्, मा, भूत, च, आच्छिन्नम्, निर्गुणम धनु , इव,(त्वाम्) त्यजामि ॥४१॥

पदार्थ—हास =हँसी, विमुच्यताम्=छोडो, अप्रीति.—प्रेम का अभाव अथवा शत्रुता, परिभवकारिकाम्=अनादर कराने वाली, अनार्याम्=निकृष्ट, सङ्गतम्=मेल या साथ, आच्छिन्नम्=टके हुए, निर्गुणम्=गुण रहित, धनुष पक्ष मे-डोरी से रहित, और शकार पक्ष मे-दया आदि गुणो से रहित, त्यजामि=छोड रहा हूँ ।

अनुवाद—हँसी छोडो, तुमने मेरी प्रीति न हो, क्योकि अनादर कराने वाली निकृष्ट प्रीति को धिक्कार है, तुम से मेरा साथ कभी न हो, फिर टूटे हुए तथा डोरी (प्रत्यञ्चा रहित) धनुष के समान तुमको मैं त्यागता हूँ ।

संस्कृत टीका—हास =हास्यम्, विमुच्यताम्=त्यज्यताम्, अप्रीति =अमैत्री, भवतु=अस्तु (त्वया सहेति शेष) । हि=निश्चयेन, परिभवकारिकाम्=अनादर कारिणीम्, अनार्याम =निकृष्टाम्, प्रीतिम्=मैत्रीम्, धिक्=धिक्कारोऽस्त्विति भाव', त्वयि=शकारे, मम=विटस्य, सङ्गतम्=मेलनम्, कदाचित्=कस्मिन्नपि काले मा भूत=न भवतु च=पुन , आच्छिन्नम्, भग्नम्, निर्गुणम्=मौर्वीरहितम् धनुम्=शरासनम, इव=यथा, (त्वाम्) त्यजामि=जहामि ।

समास एव व्याकरण—(१) परिभवकारिकाम्-परिभवस्यकारिकाम् । (२) सङ्गतम्-सम्+गम्+क्त । आच्छिन्नम्-आ+छिद्+क्त । (३) विमुच्यताम्-वि+मुच्+यक्+लोट् । (४) प्रीतिम्—प्री+क्तिन् । (५) त्यजामि—त्यज्+लट् ।

विवृति

(१) 'अनादर परिभव परीभावस्तिरस्क्रिया' इत्यमर । (२) 'मौर्वी ज्या सिञ्जिनीगुण', इत्यमर । (३) 'धनुश्चापौ धन्वशरासन कोदण्ड कार्मुकम्' इत्यमर'' । (४) प्रस्तुत पद्य मे पूर्णोपमालङ्कार है । (५) श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है प्रहर्षिणी । लक्षण—"त्र्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम ।"

शकार भाव, प्रसीद प्रसीद । एहि । नलिन्या प्रविश्य क्रीडाव । [भावे, पसीद पसीद । एहि । णलिणीए पविशिअ कीलेह्म ।]

शकार—विद्वान ! प्रसन्न हो जाओ । प्रसन्न हो जाओ । सरोवर मे प्रविष्ट होकर क्रीडा करे ।

विट -

विट—

अपिततमपि तावत्सेवमानं भवन्तं
पतितमिव जनोऽयं मन्यते मामनार्यम् ।
कथमहमनुयाया त्वां हतस्त्रीकमेनं
पुनरपि नगरस्त्रीशङ्कितार्द्धाक्षिदृष्टम् ॥४२॥

अन्वय—भवन्तम्, सेवमानम् अपतितम्, अपि, माम्, अयम्, जन, पतितम्, इव, अनार्यम् मन्यते, (किन्तु, सम्प्रति) हतस्त्रीकम्, (अत), नगरस्त्रीशङ्कितार्द्धाक्षिदृष्टम्, एनम्, त्वाम, पुनरपि, कथम्, अनुयायाम् ॥४२॥

पदार्थ—भवन्तम् = आपको सेवमानम्, अपतितम् = पाप रहित, हतस्त्रीकम = स्त्री का मारने वाले, नगरस्त्री० = नगर की स्त्रियों के द्वारा शङ्कापूर्वक अथवा शङ्कापूर्ण अधखुली आँखों से देखे गए, अनुयायाम् = अनुसृत कर सकता हूँ ।

अनुवाद— आपकी सेवा करते हुए पाप रहित भी मुझे लोग पतित के समान नीच समझते हैं। (अब) स्त्री के हत्यारे (अतएव) नगर-नारियों के द्वारा सशङ्कित अधखुली आँखों से देखे गए तुम्हारा अनुसरण पुनः मैं कैसे करूँ ।

संस्कृत टीका—भवन्तम् = शकारम्, सेवमानम् = भजमानम्, अपतितमपि = निष्पापमपि, माम = विटम, अयम् जन. = साधारणलोक इत्येतति यावत्, पतितमिव = पापिनमिव, अनार्यम् = अधमम्, मन्यते = स्वीकरोति, हतस्त्रीकम् = स्त्रीघातिनम्, (अत) नगरस्त्रीशङ्किता० = नगरावलासदिग्धावसकुचित लोचन-दृष्टम्, एनम = पुरोवर्तमानम्, त्वाम् = स्त्रीघातकम् शकारम्, पुनरपि = मुहुरपि, कथम् = केन प्रकारेण, अनुसरेयम् ? न कथमपि अनुगच्छेयमित्यर्थः ।

समास एवं व्याकरण-(१) हतस्त्रीकम्-हता स्त्री येन तादृशम् । नगरस्त्री०- नगरस्यस्त्रीभि नगरस्त्रीभि, शङ्कितं. अर्धाक्षिभि दृष्टम् । अथवा नगरस्य स्त्रीभि शङ्कितम् यथा तथा अर्धाक्षिभि दृष्ट, तम् ।

विवृति

(१) नगरस्त्री०—तात्पर्य यह है कि नगर की नारियाँ अब तुम्हें शङ्का से देखेंगी, कि कहीं तुम उनके साथ भी ऐसा ही दुर्व्यवहार न कर डालो। (२) प्रस्तुत पद्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (३) श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—मालिनी। लक्षण—"ननमयययुतेयम् मालिनी भोगिलोकै ।"

(सकरुणम् ।) वसन्तसेन,
[करुणापूर्वक] वसन्तसेना !

अन्यस्यामपि जातौ मा वेश्या भूस्त्वं हि सुन्दरि !
चारित्र्यगुणसपन्ने जायेथा विमले कूले ॥४३॥

अन्वय--हे सुन्दरि ! त्वम् अन्यस्याम्, जातौ, अपि, वेश्या, मा भू. ! हे चारित्र्यगुणसम्पन्ने ! (त्वम्) विमले कुले, जायेथा ॥४३॥

पदार्थ--हे सुन्दरि ! =हे सुन्दर शरीर वाली ! अन्यस्याम्=दूसरे, जातौ=जन्म मे, मा भू=न हो हे चारित्र्यगुणसम्पन्ने !=हे चरित्रगुण से युक्त (वसन्तसेना ?) विमले=पवित्र, जायेथा =जन्म लो।

अनुवाद--हे सुन्दरी ! तुम दूसरे जन्म मे भी वेश्या न होना। हे चरित्रगुण से युक्त। (किसी) निर्मल कुल मे जन्म लेना ॥

सस्कृत टीका हे सुन्दरि=हे सुगात्रे ! त्वम्=स्पृहणीय गुणसम्पन्ना वसन्तसेना, अन्यस्याम्=अपरस्याम्, जातौ=जन्मनि, अपि, वेश्या=गणिका, मा भू.=न भव। हे चारित्र्यगुणसम्पन्ने ! =सच्चरित्रगुणयुक्ते !, (त्वम्) विमले=निर्मले, कुले=वशे, जायेथा =उत्पद्येथा ॥

समास एव व्याकरण--(१) चारित्र्यगुणसम्पन्ने--चारित्र्यमेव गुण तेन सम्पन्ना तत्सम्बुद्धौ अथवा चारित्र्यम् गुणा तै सम्पन्ना अथवा 'चारित्र्यगुणसम्पन्ने' इति 'कुले' इत्यस्य विशेषणम्।

विवृति

(१) भाव यह है कि तुम किसी भी जन्म मे वेश्या न होना, क्योकि वेश्या होने के कारण ही तो आज तुम्हे प्राण गँवाने पडे । (२) प्रस्तुत पद्य मे पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण-"युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ॥"

शकार --मदीये पुष्पकरण्डकजीर्णोद्याने वसन्तसेना मारयित्वा कुत्र पलायसे एहि। मम आवुत्तस्याग्रतो व्यवहार देहि। (इति धारयति।) [ममकेलके पुष्पकलण्डकजिण्णुज्जाणे वशन्तशेणिअ मालिअ कहिं पलाअशि एहि। मम आवुत्तरश अग्गदो ववहाल देहि।]

शकार-- मेरे 'पुष्पकरण्डक' नामक पुराने उद्यान मे वसन्तसेना को मारकर कहाँ भागते हो ? आओ मेरे बहनोई (राजा) के सामने सफाई (व्यवहार) दो। [यह कहकर पकड लेना है।]

विट --आः, तिष्ठ जाल्म। (इति खड्गमाकर्षति।)

विट--अरे ! पामर ! ठहर। [यह कहकर तलवार खीचता है]

शकार --(सभयमपसृत्य।) किं रे, भीतोऽसि तद्गच्छ। [किं ले, भीदेशि। ता गच्छ।]

शकार--[भयपूर्वक हटकर] अरे क्या डर गया ? तो जा।

विट --(स्वगतम्।) न युक्तमवस्थातुम्। भवतु। यत्रार्यशर्विलकचन्दनक-

प्रभृतय सन्ति, तत्र गच्छामि ।) इति निष्क्रान्त ।)

विट–[अपने आप] (यहाँ) ठहरना उचित नही है। अच्छा, जहाँ आर्य शर्विलक, चन्दन आदि हैं, वहाँ जाता हूँ [यह कहकर निकल जाता है]

शकार —निधन गच्छ । अरे स्थावरक पुत्रक, कीदृश मया कृतम् । [णिधण गच्छ । अरे थावलका पुत्तका, कीलिशे मए कडे ।]

शकार—मर जा ! अरे बेटा स्थावरक ! मैंने कैसा कार्य किया ?

चेट —भट्टक, महदकार्यं कृतम् । [भट्टके, महन्त अकज्जे कडे ।]

चेट—स्वामी ! महान् कुकर्म किया ।

शकार – अरे चेट, किं भणस्यकार्यं कृतमिति । भवतु । एव तावत् । (नानाभरणान्यवतार्य) गृहाणेममलकारम् । मया तावद्दत्तम् । यावत्या वलायामलकरोमि तावती । वेला मम । अन्यदा तव । [अले चेडे, किं भणाशि अकज्जे कडेत्ति । भोदु । एव्व दाव । गण्ह एद अलकालअम् । मए ताव दिण्णे जेत्तिके वेले अलकलेमि तत्तिक वेल मम । अण्ण तव ।]

शकार– अरे चेट ! क्या कहते हो कि कुकर्म किया ? अच्छा, ऐसा हो । [विविध आभूषणो का उतार कर] यह आभूषण लो । मैंने दे दिया । जितने समय मैं पहनूँ उतने समय मेरा और अन्य समय तुम्हारा ।

चेट – भट्टक एवैते शोभन्त किं ममैतै. । [भट्टक ज्जेव एदे शोहन्ति । किं मम एदेहिं ।]

चेट– स्वामी को ही य (आभूषण) शोभा देते हैं । मुझे इनसे क्या प्रयोजन ?

शकार – तद्गच्छ। एतौ वृषभौ गृहीत्वा मदीयाया प्रासादबालाग्रप्रतोलिकाया तिष्ठ । यावदहमागच्छामि । [ता गच्छ । एदाइ गोणाइ गण्हिअ ममकेलकाए पाशादबालग्गपदोलिकाए चिट्ठ । जाव हग्गे आअच्छामि ।]

शकार– तो जाओ । इन बैलों को लेकर मेरी नवनिर्मित अट्टालिका के ऊपरी हिस्से मे ठहरो । जब तक मैं आता हूँ ।

चेट – यद्भट्टक आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्त ।) [ज भट्ट क आणवेदि ।]

चेट– जो स्वामी की आज्ञा । [यह कह कर निकल जाता है]

शकार– आत्मपरित्राणे भावो गतोऽदर्शनम् । चेटमपि प्रासादबालाग्रप्रतोलिकाया निगडपूरित कृत्वा स्थापयिष्यामि । एव मन्त्रः रक्षितो भवति । तद्गच्छामि । अथवा पश्यामि तावदेनाम् । किमषा मृता, अथवा पुनरपि मारयिष्यामि । (अवलोक्य) कथ सुमृता । भवतु । एतेन प्रावारकेण प्रच्छादयाम्येनाम् । अथवा नामाङ्कित एष । तत्कोऽप्यार्यपुरुष प्रत्यभिज्ञास्यति । भवतु । एतेन वातालापुञ्जितेन शुष्कपर्णपुटेन प्रच्छादयामि । (तथा कृत्वा विचिन्त्य ।) भवतु एव तावत् । साम्प्रतमधिकरण गत्वा

व्यवहारं लेखयामि, यथार्थस्य कारणात्सार्थवाहकचारुदत्तकेन मदीयं पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यानं प्रवेश्य वसन्तसेना व्यापादितेति [अत्तपलित्ताणे भावे गदे अदशणम् । चेड वि पाशादबालग्गपदोलिकाए णिगल पूलिद कदुअ थावइश्शम् । एव्व मन्ते लक्खिदे भोदि । ता गच्छामि । अधवा पेक्खामि दाव एदम् । किं एशा भला आदु पुणो वि मालइश्शम् । कध शुमला । भोदु । एदिणा पावालएण पच्छादेमि णम् । अधवा णामङ्किदे एशे । ता के वि अज्जपुलिशे पच्चहिजाणेदि । भोदु । एदिणा वादाली पुञ्जिदेण शुक्खपण्णपुडेण पच्छादेमि । भोदु । एव्व दाव । सपद अधिअलणं गच्छिअ ववहाल लिहावेमि, जहा अत्थश्श कालणादो शत्थवाहचालुदत्ताकेण ममकेलकं पुप्फकलण्डकं जिण्णुज्जाणं पवेशिअ वशन्तशेणिआ वावादिदे त्ति ।

शकार– आत्मरक्षा के निमित्त विद्वान् (विट) विलुप्त हो गया । चेट को भी नवनिर्मित अट्टालिका के ऊपरी हिस्से में बेडी से आबद्ध करके रख दूँगा । इस प्रकार रहस्य सुरक्षित रहेगा । तो जाता हूँ । अथवा तब तक इसको देखता हूँ— क्या यह मर गई ? अथवा पुनः मारूँ । (देखकर) क्या भली-भाँति मर गई ? अच्छा इस दुपट्टे से इसको ढक देता हूँ । अथवा यह (दुपट्टा) नामाङ्कित है, अतः कोई शिष्ट व्यक्ति पहचान लेगा । अच्छा, बवण्डर से इकट्ठे किये गये इन सूखे पत्तों की राशि से ढक देता हूँ । (वैसा करके, सोचकर) अच्छा, तो ऐसा (करता हूँ) । इस समय न्यायालय में जाकर 'व्यवहार' (अभियोग) लिखाता हूँ कि धन के निमित्त सार्थवाह चारुदत्त ने मेरे पुष्पकरण्डक नामक पुराने उद्यान में ले जाकर वसन्तसेना को मार दिया ।

विवृत्ति

(१) आवुत्तस्य–बहनोई के । (२) व्यवहारम्– मफाई । 'विनानार्थेऽवसन्देहे हरण हार उच्यते । नानासन्देहहरणात् व्यवहार इतिस्मृत ॥' इति कात्यायन. । 'परस्पर मनुष्याणां स्वार्थविप्रतिपत्तिषु । वाक्यान्न्यायाद्व्यवस्थानं व्यवहार उदाहृतः ॥' इति मिताक्षरा । (३) जाल्म=नीच । 'विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्च पृथक् जनः । निहीनोऽपसदो जाल्म क्षुल्लकश्चेतरश्च सः' इत्यमरः । (५) निधनम्=मृत्यु को । (६) प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायाम्– प्रासादस्य बालायाम् अग्रप्रतोलिकायाम् इति । भवन की नई अटारी वाली गली में । (७) यहाँ सम्फेट नामक विमर्श सन्धि अङ्ग है । 'सम्फेटो, रोषभाषणाम् ।' (८) 'भगिनीपतिरावुत्त' इत्यमरः । (९) आत्मपरित्राणे=अपने रक्षण में । यहाँ चतुर्थी के अर्थ में सप्तमी है । (१०) निगडपूरितम्=हथकड़ी से बँधा हुआ । (११) मन्त्रः=रहस्य । (१२) 'अन्दूः स्त्रियाम् स्यात् निगडे प्रभेदे भूषणस्य' इति मेदिनी । (१३) 'वेदभेदे गुह्यवादे मन्त्र' इत्यमरः । (१४) प्रावारकेण=दुपट्टे से (१५) रक्षित=छिपा हुआ । (१६) प्रच्छादयामि=

ढक देता हूँ। (१७) नामाङ्कितः=नाम लिखा हुआ। १८ आर्यपुरुषः=शिष्ट। (१९) प्रत्यभिज्ञास्यति=पहचान लेगा। (२०) वातालीपुञ्जितेन=वायु के झोके से एकत्रित। वातालि·, तया पुञ्जितम् तेन। (२१) शुष्क पर्णपुटेन=सूखे पत्तों की राशि से। (२२) अधिकरणम्=न्यायालय को। (२३) व्यवहारम्=अभियोग को। (२४) व्यापादितः=मारी गई।

चारुदत्तविनाशाय करोमि कपटं नवम्।
नगर्यां विशुद्धायां पशुघातमिव दारुणम् ॥ ४४ ॥
[चालुदत्तविणाशाय कलेमि कवड णव।
णअलीए विशुद्धाए पशुघाद व्व दालुण ॥ ४४ ॥]

अन्वय.— (अस्याम्) विशुद्धायाम्, नगर्याम्, दारुणम्, पशुघातम्, इव, चारुदत्तविनाशाय, नवम्, कपटम्, करोमि ॥ ४४ ॥

पदार्थ.— विशुद्धायाम्=पवित्र, नगर्याम्=नगरी में, दारुणम्=भयङ्कर, पशुघातम्=पशु के वध, चारुदत्तविनाशाय=चारुदत्त के विनाश के लिये, नवम्=नये, कपटम्=छल को, करोमि=करता हूँ।

अनुवादः— (इस) पवित्र नगरी में भयङ्कर पशुवध के समान चारुदत्त के विनाश के लिये मैं एक नया कपट करता हूँ॥

संस्कृत टीका— (अस्याम्) विशुद्धायाम्=पवित्रायाम्, नगर्याम्=उज्जयिन्याम्, दारुणम्=भयङ्करम्, पशुघातम्=पशुवधमिव, चारुदत्तविनाशाय=चारुदत्तस्य नाशाय, नवम्=नवीनम्, कपटम्=छलम्, करोमि=विदधामि ॥

समास एवं व्याकरण— १ चारुदत्तविनाशाय— चारुदत्तस्य विनाशाय। २. विनाशाय— वि+नश्+घञ्। विशुद्धायाम्— वि+शुध्+क्त+टाप्। घातम्— हन्+णिच्+घञ्। करोमि— कृ+लट्।

विवृति

१. 'विशुद्धायाम्' साभिप्राय विशेषण है, ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय उज्जयिनी नगरी में पशुवध पर प्रतिबन्ध था। २. प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण— "युजोश्चतुर्थतोजेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ॥"

भवतु। गच्छामि। (इति निष्क्रम्य दृष्ट्वा सभयम्।) अविद मादि के। येन येन गच्छामि मार्गेण, तेनैव दुष्टश्रमणको गृहीतकषायोदक चीवरं गृहीत्वा गच्छति। एष मया नासा छित्वा वाहितः कृतवैरः कदापि मा प्रेक्ष्यैतेन मारितेति प्रकाशयिष्यति। तत्कथं गच्छामि। (अवलोक्य।) भवतु। एतमर्धपतित प्राकारखण्डमुल्लङ्घ्य गच्छामि। भोदु। गच्छामि। अविद मादि के। जेण जेण गच्छामि मग्गेण, तेण ज्जेव एशे दुट्टशमणके गहिदकशाओदक चीवल गेण्हिअ आअच्छदि। एशे मए णाशं छिंदिअ

वाहिदे किदवेले कदावि म पेक्खिअ एदेण मालिदे त्ति पआसइस्सादि। ता कध गच्छामि। भोदु। एद अद्धपडिद पाआलखण्ड उल्लंघिअ गच्छामि।

अच्छा, जाता हूँ। (निकलकर, देखकर भयपूर्वक) ओह ! जिस जिस मार्ग से जाता हूँ उसी से यह दुष्ट भिक्षु गेरुए रग के रगे वस्त्र लेकर आ जाता है। मेरे द्वारा नाक छेद कर निकाला गया यह (मेरे साथ) शत्रुता करके, कदाचित्, मुझे देखकर 'इसने मारी है" यह प्रकट कर देगा। तो कैसे जाऊँ ? (देख कर) अच्छा, इस आधे गिरे हुए चहार दीवारी के खण्ड को लाँघकर जाता हूँ।

विवृति

(१) अविद मादिके=ओह ! (२) गृहीत कषायोदकम्=गृहीतम् कषायोदकम् येन तत्। गेरुए रग मे रगे हुए। (३) चीवरम्=वस्त्र को। (४) नासाम्=नाक को। (५) छित्वा=छेद कर (६) वाहितः=निकाल दिया। (७) कृतवैर = जिसने वैर किया है।

एषोऽस्मि त्वरितत्वरितो लङ्कानगर्यां गगने गच्छन्।
भूम्या पाताले हनूमच्छिखर इव महेन्द्र ॥४५॥
[एशेम्हि तुलिदतुलिदे लकाणअलीए गअणे गच्छते।
भूमिए पाआले हणूमशिहले विअ महेदे ॥ ४५ ॥]

अन्वय — एष (अहम), आकाशे, भूम्याम्, हनूमच्छिखरे, लङ्कानगर्याम्, गच्छन्, महेन्द्र इव त्वरित त्वरित (गच्छामि) ॥४५॥

पदार्थ — भूम्याम=भूमि मे, हनुमच्छिखरे=हनूमान की चोटी पर, लङ्कानगर्याम्=लङ्का मे, गच्छन्=चलता हुआ, महेन्द्र इव=महेन्द्र पर्वत की भांति त्वरितत्वरित =बडी शीघ्रता से ॥

अनुवाद — मैं आकाश पृथ्वी, पाताल और हनूमान जी (वस्तुत महेन्द्र-पर्वत) के शिखर से लका नगरी का जाते हुये महेन्द्र (वस्तुत हनूमान) के समान शीघ्रातिशीघ्र जा रहा हूँ।

सस्कृत टीका-एष =गमने त्वरान्वित अह शकार, आकाशे=गगने, भूम्याम्=पृथिव्याम्, पाताले=रसातले, हनूमच्छिखरे=हनूमच्छृङ्गे, लकानगर्याम्=लका पुर्याम्=गच्छन्—व्रजन्, महेन्द्र=महेन्द्रपर्वत, इव=यथा, त्वरितत्वरित = अतित्वरायुक्त सन् (गच्छामि) ॥

समास एव व्याकरण— १ हनूमच्छिखरे–हनूमत शिखरे इति। २ गच्छन्–गम्+शतृ (लट्)।

विवृति

प्रस्तुत पद्य मे शकार ने अपनी मूर्खता से उलटी बात कही है। उसे महेन्द्र

पर्वत की चोटी, यह कहना चाहिये था। आगे भी 'महेन्द्र इव' के स्थान पर 'हनूमान इव' कहना चाहिये था। २. वस्तुतः श्लोक का भाव यह है कि जिस प्रकार हनूमान जी महेन्द्र पर्वत की चोटी पर पैर रखकर आकाश में जाते हुये लंका में पहुंच गये थे उसी प्रकार मैं भी प्राकार खण्ड पर पैर रखकर चला आऊँगा। इस अर्थ को शकार ने अपनी काव्यमयी भाषा में कैसा विचित्र रूप दे दिया है? ३. प्रस्तुत श्लोक में आर्या छन्द है। लक्षण—"यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥" ४ पृथ्वीधर के अनुसार गाथा छन्द है। ५. महेन्द्र—सात कुल पर्वतों में से एक पर्वत का नाम है— "महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च परियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥"

(इति निष्क्रान्तः)

[यह कहकर निकल जाता है]

(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

[बिना पर्दा उठाये प्रवेश करके]

संवाहको भिक्षुः—प्रक्षालितमेतन्मया चीवरखण्डम्। किं नु खलु शाखाया शुष्कं करिष्यामि। इह वानरा विलुम्पन्ति। किं नु खलु भूम्याम्। धूलीदोषो भवति। तत्कुत्र प्रसार्य शुष्कं करिष्यामि। (दृष्ट्वा।) भवतु इह वातालीपुञ्जिते शुष्कपत्रसंचये प्रसारयिष्यामि। (तथा कृत्वा।) नमो बुद्धाय (इत्युपविशति।) भवतु धर्माक्षराण्युदाहरामि। ('पञ्चजण जेण मालिदा' (८/२) इत्यादि पूर्वोक्त पठति।) अथवाल ममैतेन स्वर्गेण। यावत्तस्या वसन्तसेनाया बुद्धोपासिकाया प्रत्युपकार न करोमि, यथादशाना सुवर्णकाना कृतेन द्यूतकराभ्या निष्क्रीतः, तत प्रभृति तया क्रीतमिवात्मानमवगच्छामि। (दृष्ट्वा।) किं नु खलु पर्णोदरे समुच्छ्वसिति। अथवा। [पक्खालिदे एदे मए चीवलखण्डे। किं णु क्खु शाहाए शुक्खावइश्शम्। इध वाणला विलुप्पन्ति। किं णु क्खु भूमीए। धूलीदोशे होदि। ता कहिं पशालिअ शुक्खावइश्शम्। भोदु। इध वादालीपुञ्जिदे शुक्खवत्तसचए पशालइश्शम्। णमो बुद्धश्श। भोदु। धम्मक्खलाइ उदाहलामि अधवा अल मम एदेण शग्गेण। जाव ताए वसन्तशेणिआए बुद्धोवाशिआए पच्चुवकाल ण कलेमि, *जाए दशाण शुवण्णकाण किदे जूदिअलेहिं णिक्कीदे, तदो पहुदि ताए कीद* विअ अत्ताणअं अवगच्छामि। किं णु क्खु पण्णोदले शमुश्शशदि। अधवा।]

संवाहक भिक्षु—यह वस्त्रखण्ड मैंने धो दिया। क्या इसे वृक्ष की शाखा पर सुखा लूं? यहाँ वानर नष्ट कर देंगे। तो क्या भूमि पर (सुखा लूँ)? धूल लग *जायगी। तब कहाँ फैलाकर सुखाऊँ? [देखकर), अच्छा, यहाँ वायु के झोंके से* एकत्रित सूखे पत्तों की राशि पर फैलाऊँ? [वैसा करके] बुद्ध को नमस्कार। [बैठ जाता है] अच्छा, धार्मिक शब्दों का उच्चारण करता हूँ। [पञ्चजनाः येन मारिताः' (८/२) इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक पढ़ता है] अथवा इस स्वर्ग से मेरा क्या (लाभ है)

जब तक उस युद्ध की उपासिका वसन्तसेना का प्रत्युपकार न करूँ, जिसने दस सुवर्ण (मुद्रा) के द्वारा (बदले) उन दोनो द्यूतकरों से छुडाया। तब से लेकर मैं अपने को उसके द्वारा खरीदा गया सा समझता हूँ। [देखकर] पत्तो के भीतर कौन साँस-सी ले रहा है। अथवा—

विवृति

१ अपटीक्षेपेण=विना पर्दा उठाए ही २ प्रक्षालितम्=धो लिया ३. विलुम्पन्ति=फाड देंगे। ४ पर्णोदर=पत्तो के भीतर।

वातातपेन तप्तानि चीवरतोयेन स्तिमितानि पत्राणि।
एतानि विस्तीर्णपत्राणि मन्ये पत्राणीव स्फुरन्ति ॥४६॥
[वादादवेण तत्ता चीवलतोएण तिम्मिदा पत्ता।
एदे विथिण्णपत्ता मण्णे पत्ता विअ फुलति ॥ ४६ ॥]

अन्वयः—वातातपेन, तप्तानि, एतानि पत्राणि, चीवरतोयेन, स्तिमितानि, (सन्ति), विस्तीर्णपत्राणि, पत्राणि, इव, स्फुरन्ति, (इति, अहम्), मन्ये ॥

पदार्थ—वातातपेन=वायु युक्त धाम से, तप्तानि=तपे हुए, एतानि=ये, पत्राणि=पत्ते, चीवरतोयेन=कपडे के जल से, स्तिमितानि=कुछ गीला, विस्तीर्णपत्राणि=फैले हुए पख वाले, पत्राणि=पक्षियो के, स्फुरन्ति=हिल रहे हैं, मन्ये=सोचता हूँ।

अनुवाद—बात सहित आतप से सन्तप्त ये पत्ते वस्त्र के जल से आर्द्र होकर फैले हुये पखो वाले पक्षियो के समान हिल रहे हैं।

संस्कृत टीका—वातातपेन वायुघर्मेण, तप्तानि=शुष्कता गतानि, एतानि=दृश्यमानानि, पत्राणि=पर्णानि, चीवरतोयेन=वस्त्रखण्डजलेन, स्तिमितानि=आर्द्रीकृतानि, विस्तीर्णपत्राणि=प्रसारितपर्णानि, पत्राणि=खगा, इव, स्फुरन्ति=फुरफुरायन्ते, (इति, अहम्) मन्ये=स्वीकरोमि।

समास एवं व्याकरण—(१) वातातपेन—वातेन सहित आतप तेन। चीवरतोयेन—चीवरस्य तोयेन। विस्तीर्णपत्राणि—विस्तीर्णानि पत्राणि येषाम् तानि। (२) स्तिमितानि=स्तिम् (आर्द्री भावे) +क्त। मन्ये=मन्+लट्। स्फुरन्ति—स्फुर्+लट्।

विवृति

(१) पत्र' 'पक्ष' को कहते हैं यहाँ लक्षणा से 'पक्षी' अर्थ है। अथवा पत्र वाहन को कहते है और विष्णु आदि के वाहन गरुड आदि पक्षी माने जाते हैं। (२) 'पत्र स्याद्वाहने पर्णे पक्षे च शरपक्षिणाम्' इति विश्व। (३) प्रस्तुत पद्य मे श्रौतोपमालङ्कार है। (४) आर्या छन्द है।

(वसन्तसेना संज्ञा लब्ध्वा हस्तं दर्शयति ।)

[वसन्तसेना चेतना प्राप्त करके हाथ दिखलाती है]

भिक्षु.—हा हा, शुद्धालङ्कारभूषित स्त्रीहस्तो निष्क्रामति । कथम् । द्वितीयोऽपि हस्त । (बहुविध निर्वर्ण्य ।) प्रत्यभिजानामीवैतं हस्तम् । अथवा, किं विचारेण । सत्यं स एव हस्तो येन मेऽभयं दत्तम् । भवतु । पश्यामि । (नाट्येनोद्घाट्य दृष्ट्वा प्रत्यभिज्ञाय च)सैव बुद्धोपासिका । [हा हा, शुद्धालङ्कारभूशिदे इत्थिआहत्थे णिक्कमदि । कधम् । दुदिए वि हत्थे । पच्चभिआणामि विअ एद हत्थम् । अथवा, किं विचालेन । शच्चं शे ज्जेव हत्थे जेण मे अभअं दिण्णम् । भोदु । पेक्खिस्शम् । शा ज्जेव बुद्धोवाशिआ ।]

भिक्षु—हाय, हाय ! शुद्ध आभूषणों से शोभित स्त्री का हाथ निकल रहा है । क्या दूसरा भी हाथ ? [अनेक प्रकार से देखकर] इस हाथ को पहचानता सा हूँ । अथवा विचार से क्या लाभ ? सचमुच वही हाथ है, जिसने मुझे अभय दिया था । अच्छा, देखता हूँ । [अभिनयपूर्वक उघाडकर देखकर और पहचान कर] वही बुद्ध की उपासिका वसन्तसेना है ।

(वसन्तसेना पानीयमाकाङ्क्षति)

[वसन्तसेना जल चाहती है]

भिक्षु—कथम् उदकं याचते । दूरे च दीर्घिका । किमिदानीमत्र करिष्यामि । भवतु एतच्चीवरमस्या उपरि गालयिष्यामि । (तथा करोति ।) [कधम् । उदअं मग्गेदि दूले च दिग्घिआ । किं दाणिं एत्थ कलइश्शम् । भोदु । एदं चीवलं शे उवलिं गालइश्शम् ।]

भिक्षु—क्या जल माँगती है ? बावली दूर है । अब यहाँ क्या करूँ ? अच्छा यह वस्त्र इसके ऊपर निचोडता हूँ । [वैसा करता है]

(वसन्तसेना संज्ञां लब्ध्वोत्तिष्ठ । भिक्षु पटान्तेन वीजयति ।)

[वसन्तसेना चेतना पाकर उठती है, भिक्षु वस्त्र के आँचल से वायु करता है]

वसन्तसेना—आर्य, कस्त्वम् [अज्ज, को तुमम् ।]

वसन्तसेना—आर्य ! तुम कौन हो ?

भिक्षु—किं मां न स्मरति बुद्धोपासिका दशसुवर्णं निष्क्रीतम् । [किं मं ण सुमरेदि बुद्धोवाशिआ दशशुवण्णणिक्कीदम् ।]

भिक्षु—क्या, बुद्ध की उपासिका दश सुवर्णों द्वारा खरीदे गये मुझको स्मरण नहीं कर रही है ?

वसन्तसेना—स्मरामि । न पुनर्यथार्यो भणति । वरमहमुपरतैव । [सुमरामि । ण उण जधा अज्जा भणादि । वरं अहं उवरदा ज्जेव ।]

वसन्तसेना—स्मरण करती हूँ । किन्तु उस प्रकार नहीं जिस प्रकार आप कह रहे हैं । इससे तो मेरा मर जाना ही अच्छा था ।

भिक्षु—बुद्धोपासिके, किं न्विदम् । [बुद्धोवाशिए, किं ण्णेदन् ।]

भिक्षु—बद्ध की उपासिका ! यह क्या (हुआ) ?

बसन्तसेना— (सनिर्वेदम् ।) यत्सदृश वेशभावस्य । [ज सरिस वेसभावस्स ।]

वसन्तसेना— [दुख के साथ] जो वेश्या के योग्य है ।

भिक्षु—उत्तिष्ठतूत्तिष्ठतु बुद्धोपासिकैता पादपसमीपजाता लतामवलम्ब्य । (इति लता नामयति) [उठटेदु उठटेदु बुद्धोवाशिया एद पादवसमीवजाद लद ओलम्बिय]

भिक्षु—बुद्ध की उपासिका वृक्ष के पास की लता का सहारा लेकर उठ जायँ उठ जायँ । [यह कह कर लता को झुकाता है]

(बसन्तसेना गृहीत्वो त्तिष्ठति ।)

[वसन्तसेना पकड कर उठती है]

भिक्षु—एतस्मिन्विहारे मम धर्मभगिनी तिष्ठति । तत्र समाश्वस्तमना भूत्वोपासिका गेह गमिष्यति । तच्छनैं शनैर्गच्छतु बुद्धोपासिका ।(इति परिक्रामति । दृष्ट्वा) अपसरत आर्या, अपसरत । एषा तरुणी स्त्री, एष भिक्षुरिति शुद्धो ममैप धर्म । [एदश्शि विहाले मम धम्मबहिणिआ चिट्ठदि । तहिं शमश्शशिदमआ भविअ उवाशिआ गेह गमिश्शदि । ता शेण शेण गच्छदु बुद्धोवाशिआ । ओशलध अज्जा, ओशलध । एषा तलुणी इत्थिआ, एशो भिक्खु ति शुद्धे मम एशे धम्मे ।]

भिक्षु इस विहार बौद्धमठ मे मेरी धर्म-बहन रहती है । वहाँ स्वस्थचित्त होकर उपासिका घर आयेंगी । अत बद्धोपासिका धीरे-धीरे चलें । [यह कहकर घूमता है देख कर] आर्यजनो, हटो हटो । यह युवती स्त्री है और यह मैं भिक्षु हूँ । अत यहमेरा पवित्र धर्म है ।

विवृति

(१) शुद्धालङ्कारभूषित =निर्मल आभूषणो से सजा हुआ । शुद्धा अलङ्कारा तै भूषित । (२) स्त्रीहस्ता =नारी का हाथ । (३)निष्क्रामति=निकल रहा है । (४) प्रत्यभिजानामि=पहचानता हूँ । (५) पानीयम्=जल । (६)उदकम्=जल । (७) दीर्घिका=बावडी । (८) गालयिष्यामि=निचोड़ूँगा । (९) पटान्तेन=आँचल से । (१०) बीजयति=हवा करता है (११)दशसुवर्णनिष्क्रीतम्=सोने की दश मोहरो से खरीदे गये । (१२) आर्य =आप । (१३)भणति=कहते हो । (१४)उपरत =मरी । (१५) वेश्यभावस्य=वेश्यापन के ।(१६)अवलम्ब्य=पकड कर । (१७) विहारे=बौद्ध मठ मे । (१८) धर्मभगिनी= धर्मत भगिनी इति । धर्म की बहन । (१९) एप =यह ।

हस्तसंयतो मुखसयत इन्द्रियसयत: स खलु मनुष्य ।
किं करोति राजकुल दस्य परलोको हस्ते निश्चल ॥४७॥
[हत्थशजदो मुहशजदो इ दियशजदो शे खु माणुशे।
किं कलेदि लाअउले तश्श पललोओ हत्थे णिच्चले ॥ ४७ ॥]

अन्वय –स, खलु, मनुष्य, (य), हस्तसयत, मुखसयत, इन्द्रियसयतः, (अस्ति), राजकुलम् तस्य किं करोति ? परलोक (तस्य) हस्ते निश्चल (अस्ति) ॥ ४७ ॥

पदार्थ.–खलु=वस्तुत, हस्तसयत =हाथ से सयत, मुखसयत =मुँह से सयत, इन्द्रियसयत =इन्द्रियो से सयत ॥

अनुवाद–वही वस्तुत मनुष्य है जो हाथो से सयमी है मुख से सयम रखता है और इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखता है। शासक वर्ग उसका क्या कर सकता है ? परलोक तो उसके हाथ मे स्थिर है।

संस्कृत टीका- स, खलु=निश्चयेन, मनुष्य=मानव, य हस्तसयत = परधनादिस्पर्शरहित, मुखसयत = सयतमुख, इन्द्रियसयत =सयतेन्द्रिय, (अस्ति) राजकुलम्=शासकसमूह, तस्य=सयमिनो मनुष्यस्य, किम् करोति=किम् विदधाति, परलोक.=स्वर्गादि, (तस्य) हस्ते=करे, निश्चल =ध्रुव (विद्यत) ॥

समास एव व्याकरण--(१) हस्तसयतः–हस्ते हस्तेन वा सयत । मुखसयतः– मुखेन सयत, इन्द्रियसयत.- इन्द्रियै सयत । (२) सयत – सम् + यम् + क्त ॥ करोति--कृ + लट् ।

विवृति

(१) भाव यह है कि जो मनुष्य इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखता है, उसे मरने पर उत्तम लोक की प्राप्ति होती है और उस पर न्यायालय म कोई अभियोग नहीं चल सकता है।

(२) 'स खलु मानुषः' इस कथन स 'न पुनरन्य' इस अन्य का व्यपोहन होने से आर्थी परिसख्या अलङ्कार है। (३) अर्थापत्ति अलङ्कार भी है।(४) गीति एव उपगीति से मिश्रित छन्द है ॥

[इति निष्क्रान्ता]
(सब निकल जाते हैं)

इति वसन्तसेनामोटनो नामाष्टमोऽङ्क
वसन्तसेना मर्दन नामक आठवाँ अङ्क समाप्त।

विवृति

वसन्तसेनामोटन –इसम वसन्तसेना का गलाघोटना दिखाया गया है।
वसन्तसेनाया मोटनम् यस्मिन स (ब० स०)। यह अङ्क का विशेषण है।।

नवमोऽङ्कः

नवम अङ्क ।

(ततः प्रविशति शोधनकः ।)

[तदनन्तर शोधनक प्रवेश करता है ।]

शोधनकः—आज्ञप्तोऽस्म्यधिकरणभोजकैः – अरे शोधनक, व्यवहारमण्डपं गत्वासनानि सज्जीकुरु' इति । तद्यावदधिकरणमण्डपं सज्जितुं गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च ।) एषोऽधिकरणमण्डपः । एष प्रविशामि । (प्रविश्य समार्ज्यासनमाधाय ।) विविक्तं कारितो मयाधिकरणमण्डपः । विरचितानि मयासनानि । तद्यावदधिकरणिकानां पुनर्निवेदयामि । (परिक्रम्यावलोक्य च ।) कथम्, एष राष्ट्रियश्यालो दुष्टदुर्जनमनुष्य इत एवागच्छति । तद्दृष्टिपथं परिहृत्य गमिष्यामि । (इत्येकान्ते स्थितः ।) [आणत्तह्मि अधिअरणभोइएहिं—'अरे सोहणआ, ववहारमण्डवं गदुअ आसणाइं सज्जीकरेहिं' त्ति । ता जाव अधिअरणमण्डवं सज्जिदुं गच्छामि । एद अधिअरणमण्डवम् । एष पविसामि । विवित्त कारिद मए अधिअरणमण्डवम् । विरइदा मए आसणा । ता जाव अधिअरणिआण उण णिवेदेमि । कधम्, एसो रट्ठिअस्सालो दुट्ठदुज्जणमणुस्सो इदो एव्व आअच्छदि । ता दिट्ठिपधं परिहरिअ गमिस्सम् ।]

शोधनक—न्यायालय के अधिकारियों ने मुझे आज्ञा दी है–'अरे शोधनक ! न्याय-मण्डप में जाकर आसनों को व्यवस्थित करो' । अतः तब तक न्याय-मण्डप को व्यवस्थित करने के लिए जाता हूँ । [घूमकर और देखकर] यह न्याय-मण्डप है । यह मैं प्रविष्ट होता हूँ । [प्रवेश करके, सफाई करके तथा आसन रखकर] मैंने न्याय-मण्डप को स्वच्छ करा दिया है । आसन लगा दिए हैं । तो फिर अब न्यायाधीशों से निवेदन करता हूँ । [घूमकर और देखकर] क्या यह राजा का साला दुष्ट दुर्जन मनुष्य (शकार) इधर ही आ रहा है ? तो इसकी दृष्टि के मार्ग से बचकर जाऊँगा ।

[यह कह कर एकान्त में खड़ा हो जाता है]

विवृति

(१) शोधनक–न्यायालय की सफाई करने वाला । शोधयति इति शोधनकः । शुध्+णिच्+ल्यु(अन)+कन् । (२) अधिकरणभोजकैः—न्यायालय के अधिका-

रियो से । अधिक्रियते अस्मिन् इति अधिकरणम् । अधि+कृ+ल्युट् । (३) व्यवहार-मण्डपम्–न्यायालय का । (४) विविक्त – स्वच्छ । (५) अधिकरणिकानाम्–न्यायाधीशो के । (६) राष्ट्रियश्याल –राजा का साला । (७) परिहृत्य–बचाकर । (८) दृष्टिपथम् = नेत्रो को ।

(तत प्रविशत्युज्ज्वलवेषधारी शकार)

[तदनन्तर शुभ्र वेश धारण किय हुये शकार प्रविष्ट होता है]

शकार –

शकार–

स्नातोऽहं सलिलजलै पानीयैरुद्यान उपवनकानने निषण्ण ।

नारीभि सह युवतीभि. स्त्रीभिर्गन्धर्व इव सुहितैरङ्गकै ॥१॥

[ण्हादेह शलिलजलेहिं पाणिएहिं

उज्जाणे उववणकाणणे णिशण्णे ।

णालीहिं शह जुवदीहिं इत्तिआहि

गधव्वेहिं शुविहिदएहिं अगकेहि॥ १ ॥]

अन्वय —अहम्, सलिलजलै, पानीयै, स्नात, नारीभि, युवतीभि, सह, उद्याने, उपवनकानने, निषण्ण, सुहितै, अङ्गकै, गन्धर्व, इव, (प्रतीत, भवामि) ॥१॥

पदार्थ —सलिलजलै = जल (सलिल) से, पानीयै = पानी से, स्नात = नहाया है, नारीभि = स्त्रियो के, उपवनकानने = वाटिका (बगीचे) मे, निषण्ण = बैठा हुआ, सुहितै = सजे हुए, अङ्गकै = अङ्गो से, गन्धर्व = गन्धर्व ।

अनुवाद-मैं जल (सलिल पानीय) से नहाया हुआ, नारियो (युवतियो) के साथ (उपवन, कानन) मे बैठा हुआ सजे हुए अङ्गो से गन्धर्व के समान लगता हूँ।

सस्कृत टीका—अहम् = शकार, सलिलजलै = अद्भि अम्भोभि, पानीयै = जलै, स्नात = कृतस्नान नारीभि = स्त्रीभि, युवतीभि = तरुणीभि, सह = साकम्, उद्याने = उपवने, उपवनकानने = गृहवाटिकायामित्यर्थ, निषण्ण = उपविष्ट, सुहितै = सुविहितै, अङ्गकै = अवयवै, गन्धर्व = गानविद्यापरायण देवयोनिविशेष, इव = तद्वत, प्रतीत भवामीति शेष ।

समास एव व्याकरण–सलिलजलै –सलिलै जलै । (२) निषण्ण –नि+सद+क्त। (३) स्नात –स्ना+क्त। (४) युवती–युवति भी होता है। युवन्+ङीप्। (५) नारी-नर+ङीप् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म जल, उपवन आदि शब्दा के पुनरुक्त होने पर भी शकारोक्ति होने से क्षम्य है। (२) प्रहर्षिणी छन्द है। लक्षण—"म्नौज्रौगस्त्रिदशयति प्रहर्षिणीयम ।" (३) तुलना– सुरयुवतिसम्भव किल मुनेरपत्यम् ।' शाकु० ।

क्षणेन ग्रन्थि क्षणजूलिका मे क्षणेन वाला क्षणकुन्तला वा।
क्षणेन मुक्ता क्षणमूर्ध्वचूडाश्चित्रो विचित्रोऽहं राजश्याल. ॥२॥
[खणेण गठी खणजूलके मे खणेण बाला खणकुन्तले वा।
खणेण मुक्के खण उद्धचूडे चित्ते विचित्ते हगे लाअशाले ॥ २ ॥]

अन्वय–मे (केशेषु) क्षणेन, ग्रन्थि, क्षणजूलिका, (भवति), क्षणेन, (ते) बाला, वा, क्षणकुन्तला, क्षणेन, मुक्ताः, क्षणम्, ऊर्ध्वचूडा (भवन्ति), (सत्यम्) अहम्, चित्र विचित्र राजश्याल, (अस्मि) ॥२॥

पदार्थ–क्षणेन=एक क्षण म, ग्रन्थि=गाँठ, क्षणजूलिका=एक क्षण मे जूडा, बाला=मामूली बाल, क्षणकुन्तला=क्षणभर म घुंघराले बाल, मुक्ता= बिखेरे गये, उर्ध्वचूडा=ऊपर की ओर जूडा, चित्र=विलक्षण, विचित्र=अद्‌भुत, राजश्याल=राजा का साला।

अनुवाद—मरे (केश) क्षणभर मे गाँठ बनते हैं तो क्षणभर मे जूडा बन जाते हैं। क्षण भर मे (वे) सामान्य बाल और क्षण मे घुंघराले बाल हो जाते हैं। (पुन) क्षण भर को खुले हुए तथा क्षण मे ऊपर को शिखायुक्त हो जाते हैं। (इस प्रकार) मैं चित्र विचित्र राजा का साला हूँ।

संस्कृत टीका—मे=शकारस्य, (केशेषु) क्षणेन=क्षणकालम्, ग्रन्थि=कचान्त बन्धनम्, क्षणजूलिका=जूटिका ('जूडा' इति प्रसिद्ध), भवतीति शेष। क्षणेन, (ते), बाला=केशा, वा=अथवा, क्षणकुन्तला=क्षणे वक्रकेश, क्षणेन, मुक्ता= बन्धन-हीना, क्षणम, उर्ध्वचूडा=उर्ध्वशिखा, (भवन्ति), (सत्यम्) अहम्= शकार चित्र=अद्‌भुत, विचित्र=बहुरूपक, राजश्याल=पालकपत्नी भ्राता, (अस्मि)॥

समास एव व्याकरण–(१) क्षणजूलिका–क्षणेन जूलिका। क्षणकुन्तला– क्षणेन कुन्तला। उर्ध्वचूडा–उर्ध्वम् चूडा येषाम तथाभूता। राजश्याल–राज्ञ श्याल। (२) ग्रन्थि–ग्रन्थ+इन्। मुक्ता–मुच्+क्त+प्रथमाबहु०। (३) चित्र– चित्+क्रन् अथवा चि+ष्ट्रन।

विवृति

(१) चित्र, विचित्र, यह पुनरुक्त है। शकारोक्ति होने से क्षम्य है। (२) 'चिकुर कुन्तलो वाल' इत्यमर। (३) ऐसा ज्ञात होता है कि शकार नगे सिर ही न्यायालय मे जा रहा था और स्वेच्छा से केशो को विविध रूप मे कर लेता था। (४) प्रस्तुत पद्य मे उपजाति छन्द है। लक्षण—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ॥ अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजात यस्ता॥" (५) पृथ्वीधर के अनुसार उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

अपि च । विषग्रन्थिगर्भप्रविष्टेनेव कीटकेनान्तर मार्गमाणेन प्राप्त मया महदन्तरम् तत्कस्यद कृपणचेष्टित पातयिष्यामि। (स्मृत्वा ।) आ, स्मृत मया । दरिद्र-चारुदत्तस्येद कृपणचेष्टित पातयिष्यामि । अन्यच्च । दरिद्र खलु स । तस्य सर्व सभाव्यते । भवतु । अधिकरण मण्डप गत्वाग्रता व्यवहार लेखयिष्यामि, यथा चारुदत्तेन वसन्तसेना मोटयित्वा मारिता । तद्यावदधिकरणमण्डपमेव गच्छामि । (परिक्रम्याव-लोक्य च ।) एष सोऽधिकरणमण्डप । अत्र प्रविशामि । (प्रविश्यावलोक्य च ।) कथम्, आसनानि दत्तानि तिष्ठन्ति । यावदागच्छन्त्यधिकरणभोजका , तावदेतास्मिन्दूर्वाचत्वरेमुहूर्तमुपविश्य प्रतिपालयिष्यामि । (तथा स्थित ।) [अवि अ । विशगण्ठिगब्भ पविश्टेण विअ कीडएण अन्तल मग्गमाणेण पाविद मए महदन्तलम् । ताकश्श एद किविण-चेश्टिअ पाडइश्शम । आ, शुमलिद मए । दलिद्दचालुदत्तश्श एद किविणचश्टिअ पाडइश्शम् । अण्ण च । दलिद्दे क्खु शे । तश्श शव्व शभावीअदि । भोदु । अधि-अलणमण्डवम् । एत्थ पविशामि । ज्जेव्व गच्छामि । एश त अधिअलण मण्डवम् कधम्, आशणाइ दिण्णाइ चिश्टन्ति । जाव आअश्शन्ति अधिअलभोइआ, दाव एदश्शि दुव्वचत्त लेमुहुत्तअ उवविशिअ पडि-वालइश्शम् ।

और भी । विषग्रन्थि के अन्दर प्रविष्ट कीट के समान छिद्र (मार्ग) खोजते हुए मैंने महान् छिद्र (उपाय) प्राप्त कर लिया है तो इस कुकृत्य को किस पर आरो-पित करूँ ? (स्मरण करके) हाँ, स्मरण हो गया । दरिद्र चारुदत्त पर इस कुकृत्य को आरोपित करूँगा । दूसरी बात यह कि वह दरिद्र है, अत उसमे सब सम्भव माना जा सकता है । अच्छा, न्याय भवन मे पहले ही जाकर अभियोग लिखवाऊँगा कि चारुदत्त ने वसन्तसेना को मरोड कर मार दिया । अत तब तक न्याय भवन मे ही जाता हूँ । (घूमकर और देखकर) यह वह न्याय भवन है । यहाँ प्रविष्ट होता हूँ (प्रवेश कर और देखकर) क्या आसन लगा दिये गये हैं ? जब तक न्यायलय के अधि-कारी आते हैं तब तक इस दूर्वामय प्राङ्गण मे क्षण भर बैठकर प्रतीक्षा करूँगा । (उसी प्रकार बैठता है) ।

शोधनक – (अन्यत परिक्रम्य पुरो दृष्ट्वा ।) एतेऽधिकरणिका आगच्छन्ति । तद्यावदुपसर्पामि । (इत्युपसर्पति ।) [एदे अधिअरणिआ आअच्छन्ति । ता जाव उवसप्पामि ।]

शोधनक– (दूसरी ओर घूमकर, आगे देखकर) ये न्यायालय के अधिकारी आ रहे हैं । तो (इनके) निकट जाता हूँ [समीप जाता है]

(तत प्रविशति श्रेष्ठिकायस्थादि परिवृतोऽधिकरणिक ।)

[तदनन्तर सेठ तथा कायस्थ आदि से घिरा हुआ न्यायाधीश प्रवेश करता है]

अधिकरणिक – भो भो श्रेष्ठिकायस्थौ ।

अधिकरणिक– हे हे सेठ और कायस्थ !

श्रेष्ठिकायस्थौ– आज्ञापयत्वार्य । [आणवेदु अज्जो ।]

सेठ और कायस्थ– आर्य आज्ञा दें ।

विवृति

१ विषग्रन्थिगर्भप्रविष्टेन– विष की गाठ के अन्दर घुसे हुए । विषस्य ग्रन्थेः गर्भे प्रविष्टेन । 'विषं तु गरले तोये' इति विश्व । २ कीटकेन– कीड़े के सदृश । ३ अन्तरम्– मार्ग को । ४. मार्गमाणेन– ढूँढते हुए । ५ अन्तरम्=उपाय । ६. कृपणचेष्टितम्– दुष्कर्म को । ७ पातयिष्यामि– थोप दूगा । ८ आम्=हाँ । ९. सम्भाव्यते=सम्भव माना जा सकता है । १० मोटयित्वा– मरोडकर । ११. अधिकरणमण्डपम– न्यायालय भवन को । १२. दूर्वाचत्वरे– दूब वाले चबूतरे अथवा आसन पर । १३ प्रतिपालयिष्यामि– प्रतीक्षा करूँगा । १४. अधिकरणिक – न्यायाधीश । १५. श्रेष्ठि कायस्थादिपरिवृत – सेठ और कायस्थ आदि से घिरा हुआ ।

अधिकरणिक – अहो, व्यवहारपराधीनतया दुष्कर खलु परचित्तग्रहणमधिकरणिकै ।

अधिकरणिक– अहो ! न्याय-पराधीन होने के कारण न्यायाधीशो के लिये दूसरे के चित्त को जानना कठिन है ।

छन्न कार्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृत
स्वान्दोषान् कथयन्ति नाधिकरणे रागाभिभूताः स्वयम् ।
तै पक्षापरपक्ष वर्धितबलैर्दोषैर्नृप स्पृश्यते
सक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः ।। ३ ।।

अन्वय – पुरुषा , न्यायेन, दूरीकृतम, कार्यम, छन्नम्, (कृत्वा), उपक्षिपन्ति, रागाभिभूताः, (ते), अधिकरणे, स्वयम्, स्वान्, दोषान्, न, कथयन्ति, (अत), पक्षापरपक्षवर्धितबलैः तै , दोषै , नृप , स्पृश्यते , सक्षेपात्, द्रष्टुः, अपवाद , एव, सुलभ , गुण , (तु), दूरतः, (एव) ।। ३ ।।

पदार्थ— न्यायेन=न्याय से, दूरीकृतम्=रहित, छन्नम्=ढका अथवा छिपा हुआ, उपक्षिपन्ति=उपस्थित करते है, रागाभिभूता =राग (मोह अथवा आसक्ति के वशीभूत, अधिकरणे=न्यायालय मे, स्वान्=अपने, दोषान्=दोषो को, पक्षापरपक्षवर्धितबलै =वादी और प्रतिवादी से बढाये गये बल वाले, द्रष्टुः=न्यायाधीश को, अपवाद.=अपयश, दोष ।

अनुवादः— लोग (वादी तथा प्रतिवादी) न्याय से रहित कार्य को छिपा कर उपस्थित करते हैं, राग (मोह अथवा दुराग्रह) से आक्रान्त (वे लोग) न्यायालय मे स्वय अपने दोषो को नही कहते है, (अत) वादी और प्रतिवादी के द्वारा बढाये गये

बल वाले उन दोषों से राजा सम्बद्ध होता है संक्षेप में न्यायाधीश को अपयश ही सुलभ होता है, यश तो दूर ही रहता है।

संस्कृत टीका- पुरुषा =जना, न्यायेन=नीत्या, दूरीकृतम्=रहितम्, कार्यम्=कृत्यम, छन्नम्=असत्य सत्येनावृत सत्यमसत्येनाच्छादितम्, (कृत्वा) उपक्षिपन्ति=उपस्थापयन्ति, रागाभिभूता =रागोपहितचित्ता, (ते) अधिकरणे=न्यायालय, स्वयम्=आत्मना, स्वान्=स्वकीयान, दोपान=अपराधान्, न कथयन्ति=न वदन्ति, (अत) पक्षापरपक्षवर्धितबलै =वादिप्रतिवादिपक्षापवादजननसामर्थ्यै, तै =अवास्तविकनिर्णयसम्बन्धेनादृगतै, दार्षै =दुरितै, नृप =भूप, स्पृश्यते=सम्बध्यते, संक्षेपात्=सारत', द्रष्टु =न्यायाधीशस्य, अपवाद =अपयश, एव, सुलभ =सुखलभ्य, गुण =कीर्ति, (तु) दूरत एव=दुर्लभ एव ॥

समास एव व्याकरण- १ रागाभिभूता - रागेण अभिभूता । पक्षापरपक्ष०- पक्ष अपरपक्ष ताभ्याम् वर्धितम् बलम् यषाम् तादृशै । २ छन्नम्- छद्+क्त । ३ दूरीकृतम्- दूर+च्वि+कृ+क्त । ४ उपक्षिपन्ति- उप+क्षिप्+लट् । ५ स्पृश्यते- स्पृश्+यक्+लट् । ६ द्रष्टु - दृश+तृच् । ७ अपवाद - अप+वद्+घञ् ।

विवृति

१ 'अदण्डयान् दण्डयन् राजा दण्ड्याश्चैवाप्यदण्डयन् । अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति ॥'- मनु । २ प्रस्तुत पद्य में उत्तरार्द्ध वाक्य के प्रति पूर्वार्द्ध वाक्य के हेतु होने के कारण काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। ३ शार्दूलविक्रीडित छन्द है । लक्षण- 'सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम् ॥"

अपि च ।

और भी—

छन्न दोषमुदाहरन्ति कुपिता न्यायेन दूरीकृता
स्वान्दोपान् कथयन्ति नाधिकरणे सन्तोऽपि नष्टा ध्रुवम् ।
ये पक्षापरपक्षदोपसहिता पापानि संकुर्वते
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरत ॥ ४ ॥

अन्वय —कुपिता', (अत), न्यायेन, दूरीकृता, (ये, पुरुषा), अधिकरणे, छन्नम् दोषम्, उदाहरन्ति, (तथा), स्वान्, दोपान्, न, कथयन्ति, (एभि, सह, ते) सन्त, अपि, ध्रुवम्, नष्टा, (भवन्ति), ये पक्षापरपक्षदोपसहिता, पापानि, सकुर्वते, संक्षेपात्, द्रष्टु, अपवाद, एव, सुलभ, गुण, (तु), दूरत एव ॥ ४ ॥

पदार्थ —कुपिता =क्रुद्ध, दूरीकृता =हीन, उदाहरन्ति=कहते हैं, पक्षापरपक्षदोपसहिता =वादी एव प्रतिवादी के दोषो में भागीदार होकर, पापानि=पाप,

सकुर्वते=करते हैं, द्रष्टु =न्यायाधीश को ॥

अनुवाद —क्रुद्ध (अतएव) न्याय से हीन मनुष्य न्यायालय मे (दूसरे के) छिपे हुए दोष को उपस्थित करते है और अपने दोषो को नही कहते हैं। (ऐसे लोगो के साथ वे) सज्जन पुरुष भी निश्चित ही नष्ट हो जाते है, जो उभयपक्षीय दोष से युक्त हो पाप करते हैं। सक्षेप म न्यायाधीश को अपयश ही सुलभ है, यश तो दूर रहा।

संस्कृत टीका—कुपिता =क्रुद्धा, न्यायेन=नीत्या, दूरीकृता = रहिता, अधिकरणे=न्यायालये, छन्नम्=गुप्तमित्यर्थ, दोषम्=अपराधम्, उदाहरन्ति= उपस्थापयन्ति, स्वान्=निजान् दोषान्=अपराधान, न कथयन्ति=न प्रकाशयन्ति, सन्त अपि=सज्जना अपि, ध्रुवम्=अवश्यम् नष्टा =पतिता, ये=सन्त, पक्षापरपक्ष०=दुरभिसन्ध्यादियुक्ता, पापानि=अनुचितकार्याणि, सकुर्वते=कुर्वन्ति, सक्षेपात्=सारत, द्रष्टु = न्यायदर्शिन, अपवाद =अपयश एव, सुलभ =अनायासलभ्य, गुण =यशस्तु दूरत एव=दुर्लभ एव ॥

समास एव व्याकरण—(१) पक्षापरपक्ष०–पक्षाणाम् अपरपक्षाणाम् दोषेण सहिता। (२) सकुर्वते–यहाँ भूषण अर्थ का अभाव होने के कारण 'सम्परिभ्या करोतौ भूषणे' सूत्र से सुट् का आगम नही हुआ। (३) कुपिता—कुप+क्त। (४) दूरीकृता —दूर+च्वि+कृ+क्त। छन्नम्—छद्+क्त। (५) उदाहरन्ति—उत+आ हृ+लट्।

विवृति

(१) भाव यह है कि न्यायालय मे वादी एव प्रतिवादी कुपित होकर एक–दूसरे के दोष को बताते हैं अपने दोषो को छिपाते है। ऐसे व्यक्ति निश्चय ही सन्मार्ग से भ्रष्ट हो जाते है, किन्तु न्यायाधीश भी ऐसे व्यक्तियो के विवाद मे समुचित निर्णय देने मे असमर्थ होने के कारण पापभागी होते हैं, फलत न्यायाधीशो के लिए निन्दा सुलभ है और प्रशंसा सुदुलभ हैं। (२) प्रस्तुत पद्य मे काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (३) शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

यत । अधिकरणिक खलु

क्योकि, न्यायाधीश तो—

शास्त्रज्ञ कपटानुसारकुशली वक्ता न च क्रोधन–
स्तुल्यो मित्रपरस्वकेषु चरित दृष्ट्वैव दत्तोत्तर ।
क्लीबान्पालयिता शठान्व्यथयिता धर्म्यो न लोभान्वितो
द्वार्भावे परतत्त्वबद्ध हृदयोराज्ञश्च कोपापह ॥ ५ ॥

अन्वय —शास्त्रज्ञ, कपटानुसारकुशल, वक्ता, न, च, क्रोधन, मित्रपरस्वकेषु, तुल्य, चरितम्, दृष्ट्वा, एव, दत्तोत्तर क्लीबान्, पालयिता, शठान्, व्यथयिता, धर्म्य

न, लोभान्वित , द्वार्मवि, परतत्त्वबद्धहृदय , च, राज्ञ , कोपापह , (भवेत्) ॥ ५ ॥

पदार्थ —शास्त्रज्ञ =शास्त्रो को जानने वाला, कपटानुसार कुशल =छल-कपट को समझने म निपुण, वक्ता=बोलने मे चतुर, न च क्रोधन =क्रोध न करने वाला, मित्रपरस्वकपु=मित्र, शत्रु एव अपने लोगो मे, दत्तोत्तर =उत्तर देने वाला, क्लीवान्=दुर्बलो का, पालयिता=रक्षक, शठान्=दुष्टा को, व्यथयिता=दण्ड देन वाला, धर्म्य =धर्म से युक्त, न लोभान्वित =निर्लोभी, द्वार्मवि=उपाय रहने पर, तत्त्वबद्धहृदय =दूसरे की वास्तविकता अथवा परम तथ्य को जानने म दत्तचित्त, कोपापह =क्रोध को नष्ट करन वाला ॥

अनुवाद —शास्त्रज्ञ, (वादी और प्रतिवादी के) कपट को समझने म दक्ष, वक्ता, क्रोधरहित, मित्र, शत्रु और अपने लोगो मे समान (दृष्टि रखन वाला), व्यवहार को देखकर ही उत्तर देने वाला, दुर्बलो का रक्षक, धूर्तो का दण्ड देने वाला, धार्मिक, लोभरहित, उपाय रहते दूसरो की यथार्थ बात को जानन मे दत्तचित्त एव राजा के कोप को नष्ट करने वाला होना चाहिये ॥

सस्कृत टीका—शास्त्रज्ञ =शास्त्रवेत्ता, कपटानुसारकुशल = (वादिप्रतिवादिनो) कपटज्ञानशाली, वक्ता=वाक्पटु न, च, क्रोधन =क्रोधी, मित्रपरस्वकेपु=मित्रात्मीयशत्रुपु, तुल्य =समान , चरितम् = (वादिप्रतिवादिनो) व्यवहारम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, एव,दत्तोत्तर =समुचितोत्तरप्रदाता क्लीबान्=दुर्बलान्,पालयिता =रक्षक , शठान्=दुष्टान् व्यथयिता=दण्डयिता, धर्म्य =धर्मयुक्त ,न लोभान्वित = न लोभयुक्त , द्वार्मवि=उपाये सतीत्यर्थ , परतत्वबद्धहृदय =वादिप्रतिवादियाथार्थ्यसुबद्धितमति च=तथा, राज्ञ =नृपस्य, कोपापह =क्रोधापसारक (भवेत्) ॥

समास एव व्याकरण—(१) कपटानुसारकुशल —कपटस्य अनुसारे कुशल । मित्रपरस्वकेपु–मित्रम् पर स्वक तेपु । दत्तोत्तर —दत्तम् उत्तरम् येन तादृश । परतत्त्वबद्धहृदय —परस्य तत्वे बद्धम् हृदयम् येन स (तादृश) कोपापह —कोपम् अपहन्ति इति तथोक्त । द्वार्मवि— द्वार भाव द्वार्माव (प० त०), तस्मिन् । (२) शास्त्रज्ञ—शास्त्राणि जानाति इति शास्त्र+ज्ञा+क 'आतोऽनुपसर्गे क' सूत्रेण । क्रोधन –कुध्+युक् 'क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च' इति सूत्रण । पालयिता—पाल+णिच्+तृन् । इसके योग म 'क्लीबान्' म 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' सूत्र से पष्ठी का निषेध हो गया है । धर्म्यो —धर्म+यत्‌कोपापह —कोप+अप+हन्+ड 'अपे क्लेशतमसो' इति सूत्रेण । (३) वक्ता—वच्+तृच् । (४) चरितम्–चर्+क्त । दृष्ट्वा–दृश्+क्त्वा । (५) व्यथयिता–व्यथ्+णिच्+तृन ।

विवृति

(१)'कहटोऽन्त्रोव्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे इत्यमर । (२)'प्रवीणो 'निपुणाभिज्ञाविज्ञनिष्णातशिक्षिता । वैज्ञानिक कृतमुख कृती कुशल इत्यपि ।' इत्यमर ।

(३) 'वक्ता तु पण्डितेऽपि स्याद्वाग्मिन्यप्यभिधेयवत्' इति 'विश्व (४) क्लीवे विक्रमहीनेऽपि' इति हलायुध । 'क्लीब नपुसके षण्ढे वाच्यलिङ्गमविक्रमे' इत्यमर । (५) 'द्वारम् निर्गमेऽभ्युपाये' इति हैम ।'उपाये निर्गमे द्वारम्' इति वा त्रिकाण्डशेष । (६) द्वार् और द्वार शब्द समानार्थक हैं। (७) प्रस्तुत श्लोक मे शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

श्रेष्ठिकायस्थौ – आर्यस्यापि नाम गुणे दोष इत्युच्यते। यद्येवम्, तदा चन्द्रालोकेऽप्यन्धकार इत्युच्यते। [अज्जस्स वि णाम गुणे दोसो त्ति वुच्चदि। जइ एव्वम्, ता चन्दालोए वि अन्धआरो त्ति वुच्चदि।]

सेठ और कायस्थ—क्या आपके गुण मे भी दोष है, ऐसा कहा जा सकता है ? यदि ऐसा है तो चन्द्रिका मे भी 'अन्धकार' कहा जा सकता है।

अधिकरणिक –भद्र शोधनक, अधिकरणमण्डपस्य मार्गमादेशय।

अधिकरणिक—सौम्य शोधनक ! न्याय-भवन का मार्ग बतलाओ।

शोधनक –एत्वेत्वधिकरणभोजक, एतु। [एदु एदु अधिअरणभोइओ एदु।]

शोधनक—आइए, आइए न्यायाधीश महोदय ! आइए।

(इति परिक्रामन्ति।)

[यह कह कर सब घूम जाते है]

शोधनक –अयमधिकरणमण्डप, तत्प्रविशन्त्वधिकरणभोजकाः। [एद अधिअरणमण्डवम्। ता पविसन्तु अधिअरणभोइआ।]

शोधनक–यह न्याय-भवन है अत न्यायाधीश महोदय प्रवेश करें।

(सर्वे च प्रविशन्ति।)

[सभी प्रवेश करते है]

अधिकरणिक -भद्र शोधनक, बहिर्निष्क्रम्य ज्ञायताम्–'क क कार्यार्थी, इति।

अधिकरणिक—सौम्य शोधनक ! बाहर निकलकर ज्ञात कीजिये 'कौन-कौन अभियोग प्रस्तुत करने का इच्छुक है।'

शोधनक—यदार्य आज्ञापयति। (इति निष्क्रम्य।) आर्या, अधिकरणिका भणन्ति–'क क इह कार्यार्थी' इति। [ज अज्जो आणवेदि। अज्जा, अधिअरणिआ भणन्ति–'को को इध कज्जत्थी' त्ति।]

शोधनक–जो आर्य की आज्ञा। [बाहर जाकर] सज्जनो ! न्यायाधीश कहते हैं–'यहाँ कौन-कौन अभियोग प्रस्तुत करने का इच्छुक है।

शकार—(सहर्षम्।) उपस्थिता अधिकरणिका.। (साटोप परिक्रम्य।) अह वरपुरुषो मनुष्यो वासुदेवो राष्ट्रियश्यालो राजश्याल कार्यार्थी। [उवत्थिए भधिअलणिअ। हगे वलपुलिशे मणुश्शे वाशुदेवे लश्टिअशाले लाअशाले कज्जत्थी।]

शकार—[हर्षपूर्वक] न्यायाधीश उपस्थित हैं [गर्वपूर्वक घूमकर मैं श्रेष्ठ पुरुष, मनुष्य, वासुदेव, राजा का साला राजश्याल अभियोग प्रस्तुत करने का इच्छुक हूँ।

शोधनक (ससम्भ्रमम्।) हन्त, प्रथममेव राष्ट्रियश्याल कार्यार्थी। भवतु। आर्य, मुहूर्तंतिष्ठ। तावदाधिकरणिकाना निवेदयामि। (उपगम्य।) आर्या, एष खलु राष्ट्रियश्याल कार्यार्थी व्यवहारमुपस्थित। [हीमादिके, पढम ज्जेव रट्टिअसालो कज्जत्थी। मोदु। अज्ज, मुहुत्त चिट्ठ दाव अधिअरणिआण णिवेदेमि। अज्जा, एसो क्खु रट्टिअसालो कज्जत्थी ववहार उवत्थिदो।]

शोधनक—[घबराहट के साथ] खेद है कि सर्वप्रथम राजा का साला (शकार) ही कार्यार्थी है। अच्छा, आर्य! क्षण भर ठहरिये। तब तक न्यायाधिकारियो से निवेदन करता हूँ। [समीप जाकर] आर्यों! यह राजा का साल कार्यार्थी होकर न्याय कराने के लिए उपस्थित है।

अधिकरणिक—कथम्। प्रथममव राष्ट्रियश्याल कार्यार्थी यथा सूर्यादय उपरागो महापुरुषनिपातमव कथयति। शोधनक, व्याकुलेनाद्य व्यवहारेण भवितव्यम्। भद्र, निष्क्रम्याच्यताम्— गच्छाद्य। न दृश्यते तव व्यवहार' इति।

न्यायाधीश— क्यो? पहले ही राजा का साला कार्यार्थी है। जैसे सूर्योदय-काल म (लगने वाला) ग्रहण (किसी) महापुरुष की मृत्यु को सूचित करता है। शोधनक! आज का न्याय विचार क्षोभ स युक्त होगा। सौम्य! बाहर जाकर कहो— कहो—'जाओ, आज तुम्हारा विवाद नही विचारा जायगा।

शोधनक —यदार्य आज्ञापयतीति। (निष्क्रम्य शकारमुपगम्य।)आर्य, अधिकर-णिका भणन्ति—'अद्य गच्छ। न दृश्यते तव व्यवहार.'। [ज अज्जो आणवदि त्ति। अज्ज, अधिअरणिआ मणन्ति—'अज्ज, गच्छ। ण दीशदि तव ववहारो।']

शोधनक-जो आर्य की आज्ञा। [निकलकर शकार के समीप जाकर] आर्य! न्यायाधिकारी कहते हैं—'आज जाओ। विवाद नही विचारा जायगा।

शकार —(सक्रोधम्।) आ, किं न दृश्यते मम व्यवहार. यदि न दृश्यते, तदावुत्त राजान पालक भगिनीपति विज्ञाप्य भगिनी मातर च विज्ञाप्यैतमधिकरणिक दूरीकृत्यात्रान्यमधिकरणिक स्थापयिष्यामि।' (इति गन्तुमिच्छति।) [आ, किं ण दीशदि मम ववहाले। जइ ण दीशदि, तदो आवुत्त लाआण पालअ वहिणीवदि विण्णविअ वहिणि अत्तिक च विण्णविअ एद अधिअलणिअ दूले फलिअ एत्थ अण्ण अधिअलणिअ ठावइश्शम्।]

शकार—[क्रोधपूर्वक] आह! क्या नही मेरा विवाद विचारा जायगा? यदि नहीं विचारा जाता तो मैं (अपने) बहनोई बहन के पति राजा पालक से कहकर बहन तथा माता से कहकर इस न्यायाधीश को हटाकर दूसरे न्यायाधीश को नियुक्त करा दूँगा। [यह कह कर जाना चाहता है]

शोधनक—आर्य राष्ट्रियश्याल, मुहूर्तं तिष्ठ। तावदधिकरणिकानां निवेदयामि। (अधिकरणिकमुपगम्य।) एष राष्ट्रियश्याल कुपितो भणति। (इति तदुक्त भणति) [अज्ज रट्ठिअशालअ, मुहुत्तअ चिट्ठ। दाव अधिअरणिआण णिवेदेमि। एसो रट्ठिअशालो कुविदो भणादि।]

शोधनक—आर्य राजश्यालक! क्षण भर ठहरो। तब तक मैं न्यायाधीशों से निवेदन कर दूँ। [न्यायाधीश के समीप जाकर] यह राजा का साला क्रुद्ध होकर कहता है। [उसके कथन को कह डालता है]

अधिकरणिक—सर्वमस्य मूर्खस्य सभाव्यते। भद्र उच्यताम्—'आगच्छ, दृश्यते तव व्यवहार।'

न्यायाधीश—इस मूर्ख से सब सभावना की जा सकती है। सौम्य! कहिये—'आओ तुम्हारा विवाद देखा (सुना) जाएगा।'

शोधनक—(शकारमुपगम्य।) आर्य, अधिकरणिका भणन्ति—'आगच्छ। दृश्यते तव व्यवहार।' तत्प्रविशत्वार्यः। [अज्ज, अधिरणिआ णन्ति—'आअच्छ। सीसदि तव ववहारो। ता पविसदु अज्जो।]

शोधनक—[शकार के समीप जाकर] आर्य। न्यायाधीश कहते हैं—'आओ, तुम्हारा विवाद देखा जाएगा। अत आर्य प्रवेश करें।

शकार—प्रथम भणन्ति न दृश्यते, साप्रत दृश्यत इति। तन्नाम भीतभीता अधिकरणभोजका यद्यदह भणिष्यामि तत्तत्प्रत्याययिष्यामि। भवतु। प्रविशामि। (प्रविश्योपसृत्य।) सुसुखमस्माकम्, युष्माकमपि सुख ददामि न ददामि च। [पढम भणन्ति ण दीशदि, सपद दीशदि त्ति। ता णाम भीदभीदा अधिअलणभोइआ। जेत्तिअ हग्गे भणिश्शं तेत्तिअ पत्तिआवइश्शम्। भोदु। पविशामि। शुशुह अह्माणम्, तुह्माण पि शुह देमि ण देमि अ।]

शकार—पहले कहते हैं—'नही देखा जाएगा अब (कहते हैं) 'देखा जाएगा।' तो निश्चय ही न्यायाधीश भयभीत हो गये हैं, जो-जो मैं कहूँगा वह-वह विश्वास करा लूँगा। अच्छा, प्रवेश करता हूँ। [प्रविष्ट होकर तथा समीप जाकर] हमारा भली-भाँति कुशल है, तुम्हे भी सुख देता हूँ और नहीं देता हूँ।

अधिकरणिक—(स्वगतम्।) अहो, स्थिरसंस्कारता व्यवहारार्थिनः। (प्रकाशम्।) उपविश्यताम्।

न्यायाधीश—[अपने आप] अहो! (इस) कार्यार्थी के संस्कारों की दृढता। [प्रकट] बैठ जाइए।

शकार:—आ, आत्मीयैषा भूमि। तद्यत्र मह्य रोचते तत्रोपविशामि। (श्रेष्ठिन प्रति।) एष उपविशामि। (शोधनक प्रति।) नन्वत्रोपविशामि। (इत्यधिकरणिकमस्तके हस्त दत्वा।) एष उपविशामि। (इति भूमावुपविशति।) [आ,

मत्तणकेलका ये भूमी । ता जहिं मे रोअदि तहिं उवविशामि । एष उवविशामि । ण एस उवविशामि । एस उवविशामि ।]

शकार—हाँ, यह अपनी भूमि है। तो जहाँ मुझे अच्छा लगता है, वहाँ बैठता हूँ। [सेठ से] यह मैं बैठता हूँ। [शोधनक से] अच्छा, यहाँ बैठता हूँ। [न्यायाधीश के मस्तक पर हाथ रखकर] यह मैं बैठता हूँ। [यह कहकर भूमि पर बैठता है]

अधिकरणिकः—भवान्कार्यार्थी।

न्यायाधीश—आप कार्यार्थी हैं।

शकारः—अथ किम्। [अध इ।]

शकार—और क्या?

अधिकरणिक.—तत्कार्यं कथय।

न्यायाधीश—तो कार्य बताओ।

विवृति

१. चन्द्रालोके—चांदनी मे २. कार्यार्थी—अभियोग लगाने वाला। ३ साटोपम्—अभिमानपूर्वक। ४. वरपुरुष.—श्रेष्ठव्यक्ति। ६ व्यवहारम्—मुकदमा (अभियोग)। ६. उपराग.—ग्रहण। ७ वि + अव+हृ+घञ्=व्यवहारम्—यहाँ व्यवहारे पाठ अधिक समीचीन है। 'निमित्तात्कर्मयोगे' सप्तमी। ८. उप+रञ्ज्+घञ्। उपरज्यते अनेन इति उपरागः। 'उपरागो ग्रह.' इत्यमर.। ९. महापुरुषनिपातम्—महान् व्यक्ति की मृत्यु। ज्योतिष के अनुसार सूर्योदय काल का ग्रहण अपशकुन सूचक है—'प्रातर्ग्रहः सूचयतेविनाशं रवेर्वरेण्यस्य जनस्य सद्य.।' १०. व्यवहार.—मुकदमा। आवुत्तम्—जीजा को। ११. विज्ञाप्य—सूचित करके। १२. स्थापयिष्यामि—नियुक्त करा दूंगा। १३. नाम—सचमुच.। १४. स्थिरवस्तुसारता—निर्भीकता। १५. मल्लकप्रमाणस्य—कुल्हड़ जैसा। शकार की मूर्खतापूर्ण उक्ति। १६. 'आलोको दर्शनोद्योतो' इत्यमरः। १७. 'उपरागो ग्रहो राहुग्रस्ते त्विन्दौ च पूष्णि च।' इत्यमरः। १८. 'आवुत्तो भगिनीपतिः' इत्यमरः।

शकार.—कर्णे कार्यं कथयिष्यामि। एवं बृहति मल्लकप्रमाणस्य कुलेऽहं जातः। [कण्णे कज्ज कधइश्शम्। एव्व वड्डके मल्लकप्पमाणाह कुडे हग्गे जादे।]

शकार—कान में कार्य कहूँगा। ऐसे बड़े मल्लक जैसे कुल में मैं उत्पन्न हुआ हूँ।

राजश्वशुरो मम पिता राजा तातस्य भवति जामाता।
लोऽह्यमं राजस्य ममापि भगिनीपतो राजा ॥६॥

[लाअशशुले मम पिदा लाआ तादश्श होइ जामादा ।
लाअशि आले हग्गे ममावि बहिणीवदी लाआ ॥६॥]

अन्वय — मम, पिता, राजश्वसुर राजा, तातस्य, जामाता, भवति, अहम्, राजश्याल, राजा, अपि, मम, भगिनीपति, अस्ति ॥६॥

पदार्थ — राजश्वसुर = राजा (पालक) के श्वसुर, राजा = राज्य करने वाला व्यक्ति, जामाता = दामाद, भगिनीपति = जीजा ॥

अनुवाद — मेरे पिता राजा के श्वसुर हैं। राजा (मेरे) पिता के जमाता (दामाद) हैं। मैं राजा का साला हूँ। राजा भी मेरी बहन के पति हैं।

संस्कृत टीका — मम = शकारस्य, पिता = जनक, राजश्वसुरः = पालकस्त्री पिता, राजा = पालक तातस्य = (मम) पितु, जामाता = दुहितु पति, भवति = अस्ति, अहम् = अभियोग गृहीत्वा स्वयमुपस्थित, राजश्याल = राष्ट्रियश्यालक, राजा अपि = भूप अपि, मम = शकारस्य, भगिनीपति = आवुत्त (अस्ति) ॥

समास एवं व्याकरण — १ राजश्वसुर — राज्ञ श्वसुर । राजश्याल — राज्ञ श्याल । भगिनीपति — भगिन्या पति २ भवति — भू + लट् । ३ अस्ति — अस् + लट् ।

विवृति

१ 'जामाता दुहितु पति' इत्यमर । २ राजा के साथ विभिन्न प्रकार से सम्बन्ध वर्णन करके शकार न्यायाधीश पर प्रभाव डालना चाहता है। ३. प्रस्तुत पद्य में आर्या छन्द है। लक्षण—'यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"

अधिकरणिक — सर्वं ज्ञायते ।

न्यायाधीश — सब जानते हैं।

किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम् ।
भवन्ति नितरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः ॥७॥

[नोट— यही श्लोक अङ्क ८, श्लोक २९ में है। अतः अन्वय, व्याख्या और विवृति वहीं देखिये।]

तदुच्यतां कार्यम् ।

अतः कार्य बतलाइये ।

शकार — एवं भणामि, अपराद्धस्यापि न मे किमपि करिष्यति, ततस्तेन भगिनीपतिना परितुष्टेन मे क्रीडितुं रक्षितुं सर्वोद्यानानां प्रवरं पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं दत्तम्। तत्र च प्रेक्षितुमनुदिवसं शुष्कं कारयितुं शोधयितुं पुष्टं कारयितुं लून कारयितुं गच्छामि। दैवयोगेन पश्यामि, न पश्यामि वा, स्त्री शरीरं निपतितम्।

[एव्व भणामि, अवलद्धाह वि ण अ मे किं पि कलइस्सदि, तदो तण वहिणीवदिणा परितुश्टेण मे कीलिदु लक्खिदु शव्वुज्जाणाण पवले पुप्फकलण्डकजिण्णुज्जाणे दिण्णे। तहिं च पेक्खिदु अणुदिअह शोशावेदु शोधावेदु पोत्थावदु लुणावेदु गच्छामि । देव्वजोएण पेक्खामि, ण पेक्खामि, वा, इत्थिआशलील णिवडिदम् ।]

शकार-अच्छा कहता हूँ, अपराधी होते हुए भी मेरा कोई कुछ नही करेगा, तो उन बहन के पति ने प्रसन्न होकर मुझे क्रीडा करने एव रक्षा करने के लिये सब उद्यानों में श्रेष्ठ 'पुष्पकरण्डक' नामक जीर्णोद्यान दिया है। और वहाँ मैं प्रतिदिन देखभाल करने, (आर्द्र प्रदेशों का) शुष्क कराने, सफाई कराने पुष्ट कराने, तथा (आवश्यकतानुसार) कटवाने के लिए जाता हूँ। सयोग – वश देखता हूँ अथवा नही देखता हूँ कि एक स्त्री का शरीर पडा हुआ है।

अधिकरणिक.–अथ ज्ञायते का स्त्री विपन्नेति।

न्यायाधीश–क्या जानते हैं कि कौन स्त्री मरी है ?

शकार—अहो अधिकरणभाजका, किमिति न जानामि। ता तादृशी नगरमण्डन काञ्चनशतभूषणा केनापि कुपुत्रेणार्थकल्यवर्तस्य कारणाच्छून्य पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण वसन्तसेना मारिता। न मया। (इत्यर्धोक्ते मुखमावृणोति।) [हहो अधिअलणभोइआ, किंत्ति ण जाणामि। त तादिशि णअलमण्डण क्कचणशदभूशणिअ केण वि कुपुत्तेण अत्थकल्लवत्तस्स कालणादो शुण्ण पुप्फकलण्डकजिण्णुज्जाण पवेशिअ बाहुपाशबल्क्कालेण वशन्तशेणिआ मालिदा । ण मए।]

शकार-अहो! न्यायाधीश महोदय! नगर की शोभा, सैकडो स्वर्णभूषणों से विभूषित वैसी उस (स्त्री) का क्यों नही जानता हूँ? किसी कुपुत्र ने कलेवे जैसे तुच्छ धन के निमित्त, निर्जन पुष्पकरण्डक नामक पुराने उद्यान में प्रवेश कर भुज पाश से बलपूर्वक (दबाकर) वसन्तसेना को मार दिया, मैंने नहीं। [इस प्रकार आधा कह कर मुख ढक लेता है]

अधिकरणिक—अहो नगररक्षिणा प्रमाद। भो श्रेष्ठिकायस्थौ, न मयेति व्यवहारपद प्रथममभिलिख्यताम्।

न्यायाधीश—अरे! नगररक्षको की असावधानता। हे सेठ और कायस्थ! मैंने नहीं' यह अभियोग शब्द प्रथमत लिख लीजिये।

कायस्थ—यदार्य आज्ञापयति। (तथा कृत्वा।) आर्य, लिखितम्। [ज अज्जो आणवेदि। अज्ज, लिहिदम्।]

कायस्थ-आर्य की जो आज्ञा। [वैसा करके] आर्य! लिख लिया।

शकार-(स्वगतम्।) आश्चर्यम्। त्वरा कुर्वाणेनेव

मयात्मैव निर्नाशित । भवतु । एव तावत् । (प्रकाशम् ।) अहो अधिकरणभोजका, ननु भणामि, मयैव दृष्टा । किं कोलाहल कुरुत । [हीमादिके । उत्तलान्तेण विअ पाअशपिण्डालकेण अज्ज मए अत्ता एव्व णिण्णाशिदो भोदु । एव्व दाव । अहो अधिअलणभोईआ, ण भणामि, मए ज्जेव दिट्टा । किं कोलाहल कलेध ।] (इति पादेन लिखित प्रोञ्छति ।)

शकार–[अपने आप] आश्चर्य है, (गर्म-गर्म खाने के लिए) उतावले खीर खाने वाले (भिक्षुक) की भाँति मैंने आज अपने आपको ही नष्ट कर लिया । अच्छा, ऐसा कहूँ । [प्रकट] अहो, न्यायाधीशगण । कहता हूँ, मैंने ही देखा । क्यों कोलाहल करते हो ? [यह कह लिखे हुये को पैर से पोंछ देता है ।

अधिकरणिक—कथ त्वया ज्ञात यथा खल्वर्थनिमित्त बाहुपाशेन व्यापादिता ।

न्यायाधीश–कैसे तुमने जाना कि धन के कारण भुजपाश से(दबाकर)मारी गई ?

शकार–हहो, नून वर्त्तिशून्यया मोघस्थानया ग्रीवालिकया नि सुवर्णकैराभरणस्थानैस्तर्कयामि । [हहो णूण वट्टिशुणाए मोघट्ठाणाए गीवालिआए णिशुवण्णकेहिं आहलणट्ठाणेहिं तक्केमि ।

शकार–जी, निश्चित ही सूनी रिक्त स्थान वाली ग्रीवा एव आभूषणों के स्थानों (अङ्गों के सुवर्णों (स्वर्णाभूषणों) से रहित होने से ऐसा अनुमान करता हूँ ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—युज्यत इव । [जुज्जदि विअ ।]

सेठ और कायस्थ—ठीक सा लगता है ।

सठ और कायस्थ—ठीक-सा लगता है ।

शकार – (स्वगतम्) दिष्ट्या प्रत्युज्जीवितोऽस्मि । अविद मादि के । [दिट्टिआ पच्चुज्जीविदह्मि । अविद मादिके ।]

शकार– [अपने आप] सौभाग्य से पुन जीवित हो गया हूँ । हर्ष की बात है।

श्रेष्ठिकायस्थौ– भो, कमेष व्यवहारोऽवलम्बते । (भो, क एसो ववहारो अवलम्बदि ।)

सेठ और कायस्थ– श्रीमान् ! यह व्यवहार (मुकदमा) किस पर आश्रित है ?

अधिकरणिक – इह हि द्विविधो व्यवहार ।

न्यायाधीश– यह दो प्रकार का व्यवहार है ।

श्रेष्ठिकायस्थौ– कीदृश । (केरिसो ।)

सेठ और कायस्थ– कैसा ?

अधिकरणिक – वाक्यानुसारेण अर्थानुसारेण च यस्तावद्वाक्यानुसारेण, स प्रत्यर्थिप्रार्थिभ्य: । यस्त्वर्थानुसारेण स चाधिकरणिक बुद्धिनिष्पाद्य ।

न्यायाधीश– वाक्य (वादी-प्रतिवादी के बयान) के अनुसार और अर्थ (वास्त-

विक तथ्य) के अनुसार। जो वाक्य के अनुसार है, वह तो वादी तथा प्रतिवादी से (सम्बन्ध रखता है) एव जो अर्थ के अनुसार होता है, वह न्यायाधीश की बुद्धि से निर्णय करने योग्य होता है।

श्रेष्ठिकायस्थौ– तद्वसन्तसेनामातरमवलम्बते व्यवहार । [ता वसन्तसेणामादर अवलम्बदि ववहारो।]

सेठ और कायस्थ– तो वसन्तसेना की माता पर यह व्यवहार आश्रित है।

अधिकरणिक – एवमिदम् । भद्र शोधनक, वसन्तसेनामातरमनुद्वेजयन्नाह्वय।

न्यायाधीश– यह ऐसा ही है। सौम्य शोधनक ! वसन्तसेना की माता को उद्विग्न न करते हुए बुला लाओ।

शोधनक – तथा। (इति निष्क्रम्य गणिकामात्रा सह प्रविश्य।)

एत्वेत्वार्या। (तथा एदु एदु अज्जा।)

शोधनक– अच्छा। (निकल कर वेश्या वसन्तसेना की माता के साथ प्रवेश करके) आइये, आइये आर्या।

वृद्धा– गता मे दारिका मित्रगृहमात्मनो यौवनमनुभवितुम् । एप पुनर्दीर्घायुर्भणति– 'आगच्छ। अधिकरणिक आह्वयति। तन्मोहपरवश मिवात्मानमवगच्छामि। हृदय मे प्रकम्पते आर्य, आदिश मह्यमधिकरणमण्डपस्य मार्गम् । (गदा मे दारिआ मित्तघरअ अत्तणो जोव्वण अनुभविदुम्। एमो उण दीहाऊ भणादि 'आअच्छ। अधिअरणिओ सद्दावेदि। ता मोहपरवस विअ अत्ताणअ अवगच्छामि। हिअअ मे थरथरेदि। अज्ज, आदेसेहि मे अधिअरण मण्डवस्स मग्गम्।)

वृद्धा– मेरी पुत्री मित्र (चारुदत्त) के घर अपने यौवन (के सुख) का अनुभव करने के लिए गई और यह चिरजीव कहता है— आओ, न्यायाधीश बुलाते हैं। अत मैं अपने आप को मोह के अधीन (किंकर्तव्यविमूढ) सी समझती हूँ। मेरा हृदय काँप रहा है। आर्य ! मुझे न्यायालय का मार्ग बतलाइय।

शोधनक – एत्वत्वार्या। (एदु एदु अज्जा।)

शोधनक– आइय, आइये आर्या।

उभौ परिक्रामतः।

(दोनों घूमते हैं)

शोधनक – एषोऽधिकरणमण्डप । अत्र प्रविशत्वार्या। (एद अधिअरणमण्डवम् एत्थ पविसदु अज्जा।)

शोधनक– यह न्यायालय है। इसम आप प्रवेश करें।

इत्युभौ प्रविशत ।

(दोनों प्रवेश करते हैं)

वृद्धा— (उपसृत्य ।) सुखं युष्माकं भवतु भावमिश्राणाम् । (सुह तुम्हाण भोदु भावमिस्साणम् ।)

वृद्धा— (समीप जाकर) आप विद्वद्वरों का कल्याण हो ।

अधिकरणिक – भद्रे स्वागतम । आस्यताम् ।

न्यायाधीश– भद्रे ! स्वागत है, बैठिये ।

वृद्धा— तथा । [तधा ।] (इत्युपविष्टा ।)

वृद्धा— अच्छा । (बैठती है)

शकार – (साक्षेपम् ।) आगतासि वृद्धकुट्टनि, आगतासि । (आगदाशि वुड्ढकुट्टणि, आगदाशि ।)

शकार– (आक्षेपपूर्वक) आ गई हो बुड्ढी कुटनी ! आ गई हो ।

विवृति

१ अपराद्धस्य=अपराधी । २. परितुष्टेन=प्रसन्न । ३ जीर्णोद्यानम–पुराना उपवन । ४. अनुदिवसम्=प्रतिदिन । ५ निपतितम्=पड़ा हुआ । ६ विपन्ना=मृत । ७ नगर मण्डनम्=नगर की शोभा । ८ काञ्चनशतभूषणाम्=सोने के सैकड़ों गहनों वाली । ९ अर्थकल्यवर्तस्य=कलेवा जैसे क्षुद्र धन के । १०. बाहुपाशबलात्कारेण= भुजबन्धन मे दबा कर । ११ आवृणोति=ढकेलता है । १२. अप+राध्+क्त= अपराद्धस्य । परि+तुष्+क्त =परितुष्टेन । वि+पद्+क्त+टाप्=विपन्ना । १३. नगर रक्षिणाम्=नगर की रखवाली करने वालों की । १४. प्रमाद =असावधानी १५. 'प्रमादोऽनवधानता ।' इत्यमर । १६ त्वराम्=जल्दी । १७. पायसपिण्डारकेणेव=खीर पीने वाले के तुल्य । १८ निर्नाशित =नष्ट किया गया । १९. परिशून्यया=सूनी । २० पायसस्य पिण्ड तस्य आरक, तेन पायस पिण्डारकेण । २१ मोषस्थानया=रिक्त स्थान वाली । २२. ग्रीवालिकया=गले की सूतावली (हार) से । २३ निःसुवर्णकं=सोने से शून्य । २४. आभारणस्थानै =आभूषण पहिनने के स्थानों से । २५ तर्कयामि=अनुमान करता हू । २६. दिष्ट्या=भाग्य से ।२७ प्रत्युज्जीवित.=पुन जीवित ।२८. दिश्+क्विप्=दिक् । दिक्+स्त्याम्+क्विप् । पत्व, सलोप, ष्टुत्व=दिष्ट्या । 'दिष्ट्या समुपजोष चेत्यानन्दे' इत्यमर । २९ अवलम्बत=आश्रित करता हूँ । ३०. द्विविध =दो प्रकार का । ३१ अर्थिप्रत्यर्थिभ्य =वादी प्रतिवादी से । ३२ अधिकरणिक बुद्धिनिष्पाद्य =न्यायाधीश की अपनी प्रतिभा से निर्णय करने योग्य । ३३. अनुद्वेजयन्=व्याकुल न करते हुए । ३४. दारिका= पुत्री । ३५ आत्मनः=अपनी । ३६ यौवनम्=जवानी । ३७. अनुभवितुम्= आनन्द लेने के लिए । ३८ मोहपरवशाम्=मूर्च्छित सी । ३९. भावमिश्राणाम्=

विद्वानों मे श्रेष्ठ ४०. वृद्धकुट्टनि=बूढी कुटनी । कुट्टयति धर्ममिति कुट्टनी । वृद्धा चासौ कुट्टनी इति ।

अधिकरणिक – अये, त्वं किल वसन्तसेनाया माता ।

न्यायाधीश– अजी ! तम वसन्तसेना की माता हो ?

वृद्धा— अथ किम् । (अघ इ ।)

वृद्धा— और क्या (जी हां) ।

अधिकरणिक – अथेदानीं वसन्तसेना क्व गता ।

न्यायाधीश– तो इस समय वसन्तसेना कहां गई है ?

वृद्धा— मित्रगृहम् । (मित्तघरअम् ।)

वृद्धा— मित्र के घर ।

अधिकरणिकः— किंनामधेयं तस्या मित्रम् ।

न्यायाधीश– उसके मित्र का क्या नाम है ?

वृद्धा— (स्वगतम् ।) हा धिक् । हा धिक् । अतिलज्जनीयं खल्विदम् । (प्रकाशम ।) जनस्य पृच्छनीयोऽयमर्थ , न पुनरधिकरणिकस्य । (हद्धी हद्धी । अदिल-ज्जणीअं क्खु एदम् । जणस्स पुच्छणीओ अअं अत्थो, ण उण अधिअरणिअस्स ।)

वृद्धा— (अपने आप) हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है । यह (बात) अत्यन्त लज्जा के योग्य है । (प्रकट) यह बात साधारण लोगो के पूछने योग्य है, न्यायाधीश के नही ।

अधिकरणिक – अल लज्जया । व्यवहारस्त्वा पृच्छति ।

न्यायाधीश– लज्जा करना व्यर्थ है । व्यवहार तुमसे पूछ रहा हैं ।

श्रेष्ठिकायस्थौ– व्यवहार पृच्छति । नास्ति दोष । कथय । [ववहारो पुच्छदि णत्थि दोसो । कधेहि ।]

सेठ और कायस्थ– व्यवहार पूछ रहा है । कोई दोष नहीं । कहो ।

वृद्धा— कथं व्यवहार यद्येवम्, तदा शृण्वन्त्वार्यमिश्रा । स खलु सार्थवाह-विनयदत्तस्य नप्ता, सागरदत्तस्य तनय , सुगृहीत– नामधेय आर्यचारुदत्तो नाम, श्रेष्ठि-चत्वरे प्रतिवसति । तत्र मे दारिका यौवन सुखमनुभवति । (कध ववहारो । जइ एव्वम्, ता सुणन्त अज्जमिस्सा । सो क्खु सत्यवाहविणअदत्तस्स णत्तिओ, साअरदत्तस्स तणओ, सुगहिदणामहेओ अज्जचारुदत्तो णाम, सेट्ठिचत्तरे पडिवसदि । तहिं मे दारिआ जोव्वणसुहं अणुभवदि ।]

वृद्धा— कैसा व्यवहार है ? यदि ऐसा है तो माननीय आप लोग सुनें । वे सार्थवाह विनयदत्त के नाती, सागरदत्त के पुत्र धन्यनामधन्य आर्य चारुदत्त हैं जो सेठों के चौक म रहते हैं । वहां मेरी पुत्री यौवन सुख का अनुभव करती है ।

शकारः—श्रुतमार्यैः। लिख्यन्तामेतान्यक्षराणि। चारुदत्तेन सह मम विवादः। [शुद अज्जेहिं। लिहीअन्दु एदे अक्खला। चालुदत्तेण शह मम विवादे।]

शकार—सुना आप लोगों ने ? लिख लीजिये इन अक्षरों को। मेरा विवाद चारुदत्त के साथ है।

श्रेष्ठिकायस्थौ—चारुदत्तो मित्रमिति नास्ति दोषः। (चारुदत्तो मित्तो त्ति णत्थि दोसो।)

सेठ और कायस्थ—चारुदत्त (वसन्तसेना) का मित्र है, इसमें दोष नहीं है।

अधिकरणिक—व्यवहारोऽयं चारुदत्तमवलम्बते।

न्यायाधीश—यह व्यवहार चारुदत्त पर आश्रित है।

श्रेष्ठिकायस्थौ—एवमिव। [एव्व विअ।]

सेठ और कायस्थ—ऐसा ही है।

अधिकरणिक—धनदत्त, वसन्तसेनार्यचारुदत्तस्य गृहं गतेति लिख्यतां व्यवहारस्य प्रथमः पादः। कथम्। आर्यचारुदत्तोऽप्यस्माभिराह्वायितव्यः। अथवा व्यवहारस्तमाह्वयति। भद्र शोधनक गच्छ,। आर्यचारुदत्तं स्वैरमसंभ्रान्तमनुद्विग्नं सादरमाह्वय प्रस्तावेन 'अधिकरणिकस्त्वां द्रष्टुमिच्छति' इति।

न्यायाधीश—धनदत्त! वसन्तसेना आर्य चारुदत्त के घर गई' यह व्यवहार का प्रथम चरण लिखिये। क्या आर्य चारुदत्त को भी हमें बुलाना होगा ? अथवा व्यवहार उन्हें बुलाता है। सौम्य शोधनक। जाओ। आर्य चारुदत्त को 'न्यायाधीश आपसे मिलना चाहते हैं' इस प्रस्ताव के द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक बिना घबराये, बिना उद्विग्न किये आदरपूर्वक बुला लाओ।

शोधनक—यदार्य आज्ञापयति। (इति निष्क्रान्तः चारुदत्तेन सह प्रविश्य च।) एत्वेत्वार्यः। [जं अज्जा आणवेदि एदु एदु अज्जो।]

शोधनक—जो आर्य आज्ञा करें [निकल कर तथा चारुदत्त के साथ प्रवेश करके] आइय, आइये आर्य।

विवृति

(१) किंनामधेयम्=किस नाम वाला। (२) अर्थः=बात (३) जनस्य पृच्छनीय=साधारण जन के पूछने योग्य, यहाँ जनस्य में 'कृत्यानां कर्तरि वा' सूत्र में षष्ठी विभक्ति है। (४) अधिकरणिकस्य=न्यायाधीश के। (५) व्यवहार=मुकदमा। (६) सुगृहीतनामधेय=प्रातः स्मरणीय। (७) नप्ता=नाती। (८) तनय=पुत्र। (९) श्रेष्ठिचत्वरे=धनिकों की चौक में। (१०) आर्यैः=श्रीमानों से। (११) अवलम्बते=आश्रित होता है। (१२) प्रथमः पादः=पहला चरण। मुकदमा निर्णय के चार चरण होते हैं—'चतुष्पाद् व्यवहारोऽयं विवादेषु उपदर्शितः।'

याज्ञवल्क्य। 'विवाद व्यवहार स्यात्' इत्यमर । (१३) स्वैरम=इच्छानुसार। (१४) असभ्रान्तम्=विना घवडाये हुए। (१५) अनुद्विग्नम्=चिन्ता से रहित।

चारुदत्त —(विचिन्त्य।)

चारुदत्त-[सोचकर]

परिज्ञातस्य मे राज्ञा शीलेन च कुलेन च ।
यत्सत्यमिदमाह्वानमवस्थामभिशङ्कते ॥८॥

अन्वय —राज्ञा, शीलेन, च, कुलेन, च, परिज्ञातस्य, मे, यत्, इदम्, आह्वानम्, (अस्ति, तत्) सत्यम्, अवस्थाम्, अभिश कते ॥८॥

पदार्थ —परिज्ञातस्य=भली-भांति जाने गये, आह्वानम्=बुलावा, अवस्थाम्=अवस्था का, अभिशकते=सन्देह करता है।

अनुवाद–राजा के द्वारा शील एव कुल से सुपरिचित मेरा जो यह बुलावा है वह सचमुच अवस्था (दरिद्रावस्था) की आशका कर रहा है।

सस्कृत टीका--राज्ञा=नृपेण, राजप्रतिनिधिभूतेन न्यायाधीशेनेति यावत शीलेन=स्वभावेन, च=तथा, कुलन=वशेन, च=अपि, परिज्ञातस्य=परिचितस्य मे=मम, यदिदम्=सम्प्रत्येव प्राप्तम्, आह्वानम्=आकारणम्, (अस्ति, तत्) सत्यम्=निश्चितम्, अवस्थाम्=दशाम्, दरिद्रावस्थामित्यर्थ, अभिशकते = आश कते ॥

समास एव व्याकरण—(१) परिज्ञातस्य-परि+ज्ञा+क्त। अभिशकते--अभि+शक्+लट्। आह्वानम्--आ+ह्वे+ल्युट्।

विवृति

(१) हूतिराकारणाह्वानम्' इत्यमर । (२) अवस्थामभिशकते–इसका कर्ता 'आह्वानम्' है, जो तत्' शब्द से सूचित किया जाता है। यह आह्वान (Summons) मरी अवस्था (दरिद्रावस्था) के प्रति शका करता है, क्योंकि राजा ने मुझे बुलाया है, इससे प्रकट होता है कि वह मरी दरिद्रता के कारण मुझ पर शका करता है। (३) दोष दरिद्रों पर ही मढे जाते हैं। कहा भी गया है—'दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी'। (४) प्रस्तुत पद्य म पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण "युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम्।"

(सवितर्कं स्वगतम।)

[तर्कपूर्वक अपने आप]

ज्ञातो नु किं स खलु बन्धनविप्रयुक्तो
मार्गागत प्रवहणेन मयापनीत ।

चारेक्षणस्य नृपते श्रुतिमागतो वा
येनाहमेवमभियुक्त इव प्रयामि ॥९॥

अन्वय—बन्धनविप्रयुक्त, मार्गागत, स, मया, प्रवहणेन, अपनीत, किम्, नु, खलु, चारेक्षणस्य, नृपते, ज्ञात, वा, श्रुतिम आगत, येन अहम्, अभियुक्त, इव, एवम, प्रयामि ॥ ९ ॥

पदार्थ—बन्धनविप्रयुक्त = कारागार से छूटा हुआ, मार्गागत = मार्ग के क्रम से आया हुआ, प्रवहणन = गाडी से, अपनीत = हटा दिया गया अथवा दूसरी जगह पहुँचा दिया गया चारेक्षणस्य = दूत रूपी नेत्रो वाले, नृपते = राजा को, ज्ञात = मालूम हो गया ? श्रुतिम् आगत = कान को पहुँच गया अर्थात् किसी ने राजा के कान म यह बात पहुँचा दी, अभियुक्त = अपराधी, प्रयामि = जा रहा हूँ ॥

अनुवाद—बन्धन से मुक्त होकर मार्ग क्रम से (मेरे समीप) आया हुआ वह (आर्यक) मेरे द्वारा गाडी से हटाया अथवा अन्यत्र पहुँचाया जाकर क्या गुप्तचररूपी नेत्र वाले राजा के द्वारा जान लिया गया अथवा (राजा के) कर्णगोचर हो गया जिससे कि मैं अभियुक्त के समान इस प्रकार (न्यायालय म) जा रहा हूँ।

संस्कृत टीका—बन्धनविप्रयुक्त = कारागारात्पलायित, मार्गागत = मार्गक्रमेण आयात, स = आर्यक, मया = चारुदत्तेन प्रवहणेन = शकटेन, अपनीत = स्थानान्तर प्रापित किम् नु = वितर्के खल्विति वाक्यालङ्कारे चारेक्षणस्य = दूतनयनस्य, नृपते = राज्ञ, ज्ञात = विदित, वा = अथवा, श्रुतिम् = श्रवणाम्, आगत = प्राप्त, येन = यस्मात् कारणात्, अहम् = चारुदत्त, अभियुक्त इव = अपराधीव, एवम् = राजानुचरेण सह अधिकरणिकाहूत प्रयामि = अधिकरण गच्छामि ॥

समास एवं व्याकरण-(१) बन्धनविप्रयुक्त—बन्धनात् विप्रयुक्त । मार्गागत—मार्गेण आगत । चारेक्षणस्य—चार एव ईक्षणम् यस्य तादृशस्य । (२) विप्रयुक्त—वि+प्र+युज्+क्त । अभियुक्त—अभि+युज्+क्त । अपनीत—अप्+नी+क्त । प्रयामि—प्र+या+लट् ।

टिप्पणि

(१) चारुदत्त ने आर्यक के बच भागने म सहायता की थी अत उसका ध्यान अपने इसी कार्य की ओर गया जो कि राजा की दृष्टि म अवश्य ही महान् अपराध होता है। (२) 'राजानश्चारचक्षुष' इति नीति । (३) 'चारेक्षणस्य' म रूपकालङ्कार है। (४) 'अभियुक्त इव' म उपमालङ्कार है। (५) कुछ टीकाकार अभियोग की सम्भावना न स्पष्ट होने स उत्प्रेक्षालङ्कार भी मानते हैं। (६) आर्यक पद का उपादान न होने स न्यूनपदतादोष है। (७) वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग ।"

अथवा किं विचारितेन । अधिकरणमण्डपमेव गच्छामि । भद्र शोधनक, अधिकरणस्य मार्गमादेशय ।

अथवा विचार से क्या ? न्यायालय मे ही जाता हूँ । सौम्य शोधनक ! न्यायालय का मार्ग बतलाओ ।

शोधनक — एत्वेत्वार्य । [एदु एदु अज्जो ।]

शोधनक— आइये, आइये आर्य ।

(इति परिक्रामत ।)

[यह कह कर घूमते हैं]

चारुदत्त — (सशङ्कम् ।) तत्किमपरम् ।

चारुदत्त— [शङ्कापूर्वक] तब दूसरा क्या है ?

रूक्षस्वर वाशति वायसोऽय
ममात्यभृत्या मुहुराह्वयन्ति ।
सव्य च नेत्र स्फुरति प्रसह्य
ममानिमित्तानि हि खेदयन्ति ॥ १० ॥

अन्वय — अयम्, वायस, रूक्षस्वरम्, वाशति, अमात्यभृत्या, मुहु, आह्वयन्ति, च, सव्यम्, नेत्रम्, च, स्फुरति, अनिमित्तानि, हि, प्रसह्य, मम, खेदयन्ति ॥ २० ॥

पदार्थ — वायस =कौआ, रूक्षस्वरम्=रूखी बोली मे, वाशति=चिल्ला रहा है, अमात्यभृत्या =मन्त्रियो के सेवक, आह्वयन्ति=बुला रहे हैं, सव्यम्=बायी, नेत्रम्=आँख, स्फुरति=फडक रही है, अनिमितानि=अपशकुन, प्रसह्य=जबर्दस्ती, खेदयन्ति=उदास बना रहे हैं ।

अनुवाद — यह कौआ रूखे स्वर मे बोल रहा है, मन्त्रियो के सेवक बार-बार बुला रहे हैं, तथा (मेरी) बायी आँख फडक रही है । ये अपशकुन बलपूर्वक मुझे खिन्न कर रहे हैं ।

संस्कृत टीका— अयम्=दृश्यमान, वायस =काक, रूक्षस्वरम्=कर्कशस्वरेण, वाशति=शब्द करोति, अमात्यभृत्या =सचिवानुचरा, मुहु =बारम्वारम्, आह्वयन्ति च=आकारयन्ति च, सव्यम्=वामम्, नेत्रम्=लोचनञ्च, स्फुरति=स्पन्दते, अनिमित्तानि=अपशकुनानि, हि=निश्चयेन, प्रसह्य=बलात्, मम=माम्, खेदयन्ति=पीडयन्ति ।।

समास एव व्याकरण– १ अमात्यभृत्या – अमात्यानाम् भृत्या । २. वाशति– 'वाशृ शब्दे' यह दिवादिगणीय आत्मनेपदी धातु है । इसका रूप 'वाश्यते' होता है । अत 'वाशति' यहाँ परस्मैपद चिन्तनीय है । किन्तु 'वाश करोति इति वाशति वाश+णिच्+लट्— ति इस प्रकार नामधातु मानने से काम चल सकता है । आह्वयन्ति– आ+ह्वे+लट् । स्फुरति— स्फुर्+लट् । खेदयन्ति – खेद+लट् (नामधातु) ।

विवृति

१. "काके तु करटारिष्टबलिपुष्टसकृत्प्रजा । ध्वाङ्क्षात्मघोषपरभृद्बलिभुग्वायसा अपि ।" इत्यमर । २ 'दारुणनादस्तरुकोटरोपगो वायसो महाभयदः' इति बृहत्संहिता । ३ 'वाम शरीर सव्य स्यात्' इत्यमर । ४ वामनयन स्पन्दन बन्धुविच्छेद धनहानि वा' इति गर्गवचनम् । ५. प्रस्तुत पद मे अनिमित्त सूचक काय के अनेक कारणो के कहने से समुच्चयालङ्कार है । ६ उपजाति छन्द है । लक्षण— "स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरोदीरितलक्ष्ममाजो पादौ यदीयावुपजातयस्ता ॥"

शोधनक — एत्वेत्वार्य स्वैरमसम्भ्रान्तम् । [एदु एदु अज्जो सैरं असभन्तम् ।]

शोधनक— बिना घबराये स्वतन्त्रतापूर्वक आइये आइये आर्य ।

चारुदत्त — (परिक्रम्याग्रतोऽवलोक्य च ।)

चारुदत्त— [घूमकर और आगे देखकर]

शुष्कवृक्षस्थितो ध्वाङ्क्ष आदित्याभिमुखस्तथा ।
मयि चोदयते वाम चक्षुर्घोरमसशयम् ॥ ११ ॥

अन्वय — शुष्कवृक्षस्थित, तथा, आदित्याभिमुख, ध्वाङ्क्ष, मयि, वामम्, चक्षु, चोदयते, असशयम्, घोरम्, (वर्तते) ॥ ११ ॥

पदार्थ — शुष्कवृक्षस्थित =सूखे वृक्ष पर बैठा हुआ, आदित्याभिमुख = सूर्य की ओर मुँह किए हुए, ध्वाङ्क्ष.=कौआ, मयि=मेरे ऊपर, वामम्=बायी, चक्षु =आँख को, चोदयते=डाल रहा है, प्रेरित कर रहा है, असशयम्=निश्चय ही, घोरम्=भयङ्कर, विपत्ति ।

अनुवाद — सूखे वृक्ष पर बैठा हुआ तथा सूर्याभिमुख कौआ मुझ पर वाम नेत्र डाल रहा है, नि सन्देह भयङ्कर (बात होने वाली) है ॥

सस्कृत टीका- शुष्कवृक्षस्थित =नीरसपादपे स्थित, तथा=एवम्, आदित्याभिमुख =सूर्याभिमुख, ध्वाङ्क्ष =काक, मयि=चारुदत्ते, वामम्=सव्यम्, चक्षु.= नेत्रम्, चोदयते=प्रेरयति, असशयम्=नि सन्देहम्, घोरम्=भयङ्करम् (वर्तते) ॥

समास एव व्याकरण- १ शुष्कवृक्षस्थित — शुष्कवृक्षे स्थित. । आदित्याभिमुख —अभि मुखम् यस्य स अभिमुख, आदित्यस्य अभिमुख । स्थित — स्था+क्त । चोदयते — चुद्+णिच्+लट । ध्वाङ्क्ष — ध्वक्ष्+अच् ।

विवृति

१. 'क्षाध्वाङ्क्षात्मघोषपरभृद्बलिभुग्वायसा अपि, इत्यमर । २ यह महाभय का सूचक है । कहा भी गया है— छिन्नाग्रऽङ्गच्छेद कलह शुष्कद्रुमस्थित ध्वाङ्क्षे । पुरतश्च पृष्ठतो वा गोमयसस्थे धनप्राप्ति । ऐन्द्रादिदिग्वलावी सूर्याभिमुखो गृह रुवन्

गृहिण । राजभयचौरभयवन्धनकलहा स्यु पशुभयञ्च ॥' ३. कुछ व्याख्याकारो ने 'धार वाम चक्षु मयि चोदयते, असद्यम्' ऐसा अन्वय किया है। इस अन्वय म 'असद्यम्' शब्द व्यर्थ मा ही है। ४ प्रस्तुत पद्य म पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण— "युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ॥"

(पुनरन्यतोऽवलोक्य ।) अय, कथमय सर्प ।

[पुन दूसरी ओर देखकर] अरे ! क्या यह सर्प है ?

मयि विनिहितदृष्टिर्भिन्ननीलाञ्जनाभः
स्फुरितविततजिह्व शुक्लदंष्ट्राचतुष्क ।
अभिपतति, सरोषो जिह्मिताध्मातकुक्षि—
भुजगपतिरय मे मार्गमाक्रम्यसुप्त. ॥ १२ ॥

अन्वय — भिन्ननीलाञ्जनाभ, स्फुरितविततजिह्व शुक्लदंष्ट्राचतुष्क, मे, मार्गम्, आक्रम्य, सुप्तः, अयम, भुजगपति, सरोष, जिह्मिताध्मातकुक्षि, (तथा), मयि, विनिहितदृष्टि, (सन्), अभिपतति ॥ १२ ॥

पदार्थ— भिन्ननीलाञ्जनाभ =खूब फटे गय अथवा चूर्णित नीले आंजन के समान कान्ति वाला, स्फुरितविततजिह्व =लम्बी अथवा निकली हुई जीभ को लपलपाता हुआ, शुक्लदंष्ट्राचतुष्कः=श्वेत चार दाँतो वाला, आक्रम्य=घेर कर, सुप्तः=पडा हुआ, भुजगपति =बहुत बडा साँप, सरोष.=क्रुद्ध, जिह्मिताध्मातकुक्षि = टेढ और वायु स फूले पेट वाला, विनिहतदृष्टि =दृष्टि लगाये हुये अथवा आँख गडाये हुये, अभिपतति=सामने आ रहा है अथवा झपट रहा है।

अनुवाद — चूर्णित नीले अञ्जन के समान कान्ति वाला, लम्बी जीभ को लपलपाता हुआ, श्वेत चार दाँतो वाला मेरे मार्ग को आक्रान्त कर पडा हुआ यह सर्पराज क्रोधपूर्वक वायु से फूले पेट को वक्र करता हुआ मुझ पर दृष्टि लगाये मेरी ओर आ रहा है।

संस्कृत टीका— भिन्ननीलाञ्जनाभ =चूर्णितकज्जलकान्ति., स्फुरित०= चञ्चलविस्तृतरसन, शुक्लदंष्ट्राचतुष्क =शुभ्रबृहद्दन्तचतुष्टय, मे=मम, मार्गम्= पन्थानम्, आक्रम्य=अभिव्याप्य, सुप्त =सुप्तवत् पतित, अयम्=दृश्यमानः, भुजग-पति.=महासर्प, सरोष =क्रोधसहित, जिह्मिताहध्मातक्षिः=वक्रीकृतप्रफुल्लोदर, मयि=चारुदत्ते, विनिहतदृष्टि =दत्तलोचन.,— (सन्) अभिपतति=अभिमुखमा-गच्छति ॥

समास एव व्याकरण- १ भिन्ननीलाञ्जनाभः— भिन्नम् नीलम् यत् अञ्जनम् तस्य आभा इव आभा यस्य तादृश । स्फुरितविततजिह्व – स्फुरिता वितता जिह्वा यस्य तादृश शुक्लदंष्ट्राचतुष्क – शुक्लम् दंष्ट्राणाम चतुष्कम् यस्य तादृश । भुजगपति— भुजगानाम् पति । सरोष – रोषेण सहित । जिह्मिताध्मातकुक्षि – जिह्मित आध्मात कुक्षि यस्य तादृश । विनिहतदृष्टि— विनिहिता दृष्टिर्येन तथाभूत । २ सुप्त — स्वप्+क्त। विनिहित— वि+नि+हन्+क्त। दृष्टि — दृश्+क्ति। अभिपतति— अभि+पत्+लट्। आक्रम्य— आ+क्रम्+क्त्वा—ल्यप्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य का अन्वय अनेक प्रकार से किया गया है। 'अय भुजगपति. अभिपतति'—यह मूल वाक्य है। शेष भुजगपति के विशेषण हैं। सम्भवतः अनेक अपशकुनों का साथ-साथ वर्णन करने के लिए ही कवि ने यहाँ सर्प का वर्णन किया है। वास्तव में दिन के समय, भीड़ से भरी हुई, उज्जयिनी नगरी की सड़क पर सर्प का होना सम्भव नहीं प्रतीत होता है। (२) 'पिचण्डकुक्षीजठरोदरतुन्दम्' इत्यमर। (३) 'भिन्ननीलाञ्जनाभ' में लुप्तोपमालङ्कार है। (४) कुछ टीकाकारों के अनुसार प्रस्तुत श्लोक में स्वभावोक्ति अलङ्कार है। (५) मालिनी छन्द है। लक्षण—"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।"

अपि च इदम्।

और भी यह—

स्खलति चरणं भूमौ न्यस्तं न चार्द्रतमा मही
स्फुरति नयनं वामो बाहुर्मुहुश्च विकम्पते।
शकुनिरपरश्चायं तावद्विरौति हि नैकशः
कथयति महाघोरं मृत्युं न चात्र विचारणा ॥१३॥

अन्वय—भूमौ, न्यस्तम्, चरणम्, स्खलति, मही, च, आर्द्रतमा, न (वर्तते), नयनम्, स्फुरति, वामः, बाहुः, च, मुहुः, विकम्पते, अयम्, अपरः, शकुनिः, च, तावत्, नैकशः, विरौति, (एतत्, सर्वम्,) महाघोरम्, मृत्युम्, कथयति, अत्र, च, विचारणा, न (अस्ति) ॥ १३ ॥

पदार्थ—न्यस्तम्=रखा हुआ, स्खलति=फिसल रहा है, आर्द्रतमा=बहुत गीली, विकम्पते=काँप रही है, नैकशः=अनेक बार, विरौति=विकट शब्द कर रहा है अथवा चिल्ला रहा है, महाघोरम्=भयङ्कर, विचारणा=विचार, सन्देह।

अनुवाद—भूमि पर रखा हुआ पैर फिसल रहा है और पृथ्वी गीली नहीं है (बाईं) आँख फड़क रही है तथा बायीं बाहु बार बार काँप रहा है एवं यह दूसरा पक्षी भी बारम्बार चिल्ला रहा है। ये सब महाभयङ्कर मृत्यु की सूचना दे रहे हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

संस्कृत टीका—भूमौ=पृथिव्याम्, न्यस्तम्=स्थापितम्, चरणम्=पादः, स्खलति=भ्रश्यति, मही च=पृथिवी च, आर्द्रतमा=पङ्किला, न (वर्तते) नयनम्=नेत्रम्, स्फुरति=स्पन्दते, वामः=दक्षिणेतरः, बाहुः=भुजः, च, मुहुः, विकम्पते=स्फुरति, अयम्=पुरो वर्तमानः, अपरः=काकातिरिक्त कादिवदन्यः, शकुनिः=पक्षी च, तावत्=इति वाक्यालङ्कारः, नैकशः=मुहुः, विरौति=विकटं शब्दायते, स्वरोत्यर्थः, (एतत् सर्वम्) महाघोरम्=अतिभयङ्करम्, मृत्युम्=मरणम्, कथयति=

निर्दिशति, अत्र च=अस्मिन् विषये च, विचारणा=तर्क, सन्देह इति भाव, न (अस्ति) ॥

समास एव व्याकरण—(१) न्यस्तम्–नि+अस+क्त+विभक्ति । स्खलति–स्खल्+लट् । विकम्पते–वि+कम्+लट् । विरौति—वि+रु+लट् । कथयति—कथ्+लट् ।

विवृति

(१) "पाद पदङ्घिश्चरणोऽस्त्रियाम्" इत्यमर । (२) "चरणोऽस्त्री बह्वृचादौ मूले गात्रे पदेऽपि च । भ्रमणो भक्षणो चापि नपुसक उदाहृतः ॥" इति मेदिनी । (३) प्रस्तुत पद्य मे भूमि के आर्द्रत्व कारण के अभाव मे भी स्खलन रूप कार्य हाने से विभावना अलङ्कार है । (४) मृत्यु सूचक एक कार्य के प्रति पैर फिसलना, बायी आँख एव बाहु का फडकना कारणो का उपन्यास करने से समुच्चयालङ्कार है । (५) इन दोनो का परस्पर अङ्गाङ्गि भाव होने से सङ्करालङ्कार है । (६) श्लोक के प्रथम चरण म भूमि कह कर पुन मही का उपादान करने से भग्नप्रक्रमता दोष है । (७) तृतीय चरण का निरर्थकत्व एव चतुर्थ चरण म कर्तृ पद का अभिधान न होने से न्यूनपदता दोष है । (८) कुछ टीकाकारो के अनुसार प्रस्तुत श्लोक म काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । (९) यात्रा के समय यात्री के पैरो का फिसलना अपशकुन माना गया है—'स्वपादयानस्खलन नृपाणा भङ्ग क्वचिद्यानपलायनश्च । द्वाराभिघाताध्वगशस्त्रपाता प्रस्थानविघ्न कथयन्ति यातु' इति वसन्तराजशाकुने । (१०) पुरुषो का दाहिना एव स्त्रियो का बायाँ अङ्ग फडकना शुभ माना गया है— दक्षिणमङ्ग पुस स्त्रियाश्च वाम शुभावह स्फुरितम् ।' शार्ङ्गधर-पद्धति ॥ (११) हरिणी छन्द है । लक्षण—'नसमरसला ग षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ॥"

सर्वथा देवता स्वस्ति करिष्यन्ति ।

सब प्रकार से देवता कल्याण करेंगे ।

शोधनक —एत्वेत्वार्य । इममधिकरणमण्डप प्रविशत्वार्य । [एदु एदु अज्जो । इम अधिअरणमण्डव पविसदु अज्जो ।]

शोधनक—आइये आइय आर्य । इस न्याय-मण्डप म आर्य प्रवश कर ।

चारुदत्त —(प्रविश्य समन्तादवलोक्य ।) अहो, अधिकरणमण्डपस्य परा श्री । इह हि

चारुदत्त–[प्रवेश करके, चारो ओर दख कर] अहा ! न्याय-भवन की उत्कृष्ट शोभा ! क्याकि यहाँ—

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिल दूतोर्मिशङ्खाकुल
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकर नागाश्वहिंस्राश्रयम् ।

नानावाशककङ्कपक्षिरचितं कायस्थसर्पास्पदं
नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते ॥१४॥

अन्वय —चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलम्, दूतोर्मिशङ्खाकुलम्, पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरम्, नागाश्वहिंस्राश्रयम्, नानावाशककङ्कपक्षिरचितम्, कायस्थसर्पास्पदम्, नीतिक्षुण्णतटम् च, राजकरणम्, हिंस्रैः, समुद्रायते ॥ १४ ॥

पदार्थ -चिन्ता० =जहाँ (कानूनी) चिन्तन में आसक्त एवं तल्लीन मन्त्री (न्यायाधीश) ही जल हैं, दूतोर्मिशङ्खाकुलम् =जो तरङ्गों एवं शङ्खों जैसे दूतों से भरा है, पर्यन्त० =जहाँ प्रान्त देश में अथवा चारों ओर रहने वाले गुप्तचर ही नक्र और मगर हैं, नागाश्व० =जो विविध प्रकार से बोलते हुए वादी-प्रतिवादी रूपी कंक पक्षियों (हाडगिलों) से भरा हुआ है, कायस्थसर्पास्पदम् =जो कायस्थों (व्यवहार-लेखकों) रूपी साँपों का स्थान है, नीतिक्षुण्णतटम् =राजनीति से जिसका तट (मर्यादा) भङ्ग हो गया है, राजकरणम् =न्यायालय, कचहरी, समुद्रायते =समुद्र के समान आचरण करता है ॥

अनुवाद —विवाद चिंतन में तत्पर एवं निमग्न मन्त्रियों रूपी जल वाला, दूत रूपी तरङ्गों एवं शङ्खों से भरा हुआ प्रान्त देश में स्थित गुप्तचर रूपी घड़ियालों एवं मगरों से युक्त, हाथी-घोड़े रूपी हिंस्र जन्तुओं का आश्रय, विविध प्रकार से बोलते हुए वादी-प्रतिवादी रूपी कंक पक्षियों से व्याप्त, कायस्थ रूपी सर्पों का स्थान और राजनीति से भग्न तट (मर्यादा) वाला (यह) न्यायाधिकरण घातक जनों के कारण समुद्रवत् प्रतीत हो रहा है।

संस्कृत टीका— चिन्तासक्त० = चिन्तनतत्परतल्लीनपरामर्शदातृजलम्, दूतोर्मिशङ्खाकुलम् = दूततरङ्गकम्बुपूर्णम्, पर्यन्तस्थित० = सीमान्तदेशवर्तमानगुप्तचरकुम्भीरजलचरम्, नागाश्व० =गजघोटकहिंसकस्थिम्, नानावाशक० =बहुप्रकारशब्दकर्तृमांसादपक्षिव्याप्तम्, कायस्थसर्पास्पदम् =लेखकभुजगस्थानम्, नीतिक्षुण्णतटम् =नयभग्नतटम्, चतिपादपूरणम्, राजकरणम् =न्यायाधिकरणम्, हिंस्रैः = घातुकैः, समुद्रायते =समुद्र इवाचरति ॥

समास एवं व्याकरण —(१) चिन्तासक्त० —चिन्तायाम् आसक्ताः (अतएव) निमग्ना मन्त्रिणः सलिलानीव यस्मिन् तत्। दूतोर्मिशङ्खाकुलम् —दूता ऊर्मयः शङ्खा इव तैराकुलम्। पर्यन्तस्थित० -पर्यन्ते स्थिताः चाराः नक्राः मकराः इव यत्र तत्। नागाश्व० —नागा अश्वा हिंस्रा इव तेषाम् आश्रयः यस्मिन् तत्। नानावाशक० —नाना वाश्यन्ते इति वाशकाः कङ्कपक्षिणः तैः रचितम्। कायस्थसर्पास्पदम् -कायस्थाः सर्पाः इव तेषाम् आस्पदम्। नीतिक्षुण्णतटम् -नीत्या क्षुण्णम् तटमिव यस्मिस्तत्। राजकरणम् -राज्ञः करणम्। (२) समुद्रायते-समुद्र इव आचरति इति समुद्र + क्यङ् (नामधातु) + लट् ते।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म न्यायालय को सागर के समान बताया गया है और उसके 'चिन्तासक्त०' इत्यादि सात विशेषण दिये गये हैं। (२) स्यात्सदश-हरो दूत ' इत्यमर (३) 'भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रिया वीचि' इत्यमर । (४) 'चारश्च गूढपुरुषश्च आप्त प्रत्ययित.' इत्यमर । (५) 'नक्रस्तु कुम्भीर' इत्यमर (६) वाशक-शब्द करने वाले, वादी-प्रतिवादी जन, छोटे वकील मुख्तार इत्यादि (Pettifoggers)—काले। इनकी कङ्क (हाडगिल) पक्षियों से समता दिखाई गयी है, क्योंकि ये हाडगिल पक्षी के समान निरन्तर बोलते हैं। (७)नानावासक पाठान्तर है,अनेक प्रकार के वेश धारण करने वाले (सुफिया)। (८) कविवर शूद्रक ने समुद्र की उपमा देकर कचहरी का बहुत ही सटीक चित्र चित्रित किया है। उनका यह श्लोक आज की कचहरियो म यथार्यत अपना स्वरूप दिखला रहा है। पहिले-पहल न्यायालय म प्रवेश करने वाला व्यक्ति पदे-पदे इस कठिनता का अनुभव करता है। कर्मचारी आदि हिंस्र जीव उसे व्यथित कर डालते हैं। (९) प्रस्तुत श्लोक म लुप्तोपमालङ्कार है। (१०) 'समुद्रायते' मे वयङ्गतोपमा है। (११) रूपकालङ्कार भी होने से परस्पर अङ्गाङ्गिभाव स सङ्कर है। (१२) शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लक्षण—'सूर्याश्वैर्यदिम सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम्'।

भवतु। (प्रविशञ्छिरोघातमभिनीय सवितर्कम्।) अहह इदमपरम्

अच्छा, [प्रवेश करते हुए सिर टकराने का अभिनय करके तर्कपूर्वक] ओह! यह दूसरा (अपशकुन)

> सव्यं मे स्पन्दते चक्षुर्विरौति वायसस्तथा।
> पन्था सर्पेण रुद्धोऽयं, स्वस्ति चास्मासु दैवत ॥ १५ ॥

अन्वय —मे, सव्यम्, चक्षु, स्पन्दते, तथा, वायस, विरौति, अयम्, पन्था, सर्पेण, रुद्ध, अस्मासु, दैवत, स्वस्ति, (भविष्यति) ॥ १५ ॥

पदार्थ — सव्यम्=बायी, चक्षु=आँख, स्पन्दते=फडक रही है, वायस = कौआ, विरौति=चिल्ला रहा है, रुद्ध=रुका हुआ है, दैवत =भाग्य से, स्वस्ति= कल्याण।

अनुवाद —मेरी बायी आँख फडक रही है तथा कौआ चिल्ला रहा है। यह मार्ग सर्प स अवरुद्ध हो गया है। हमारा भाग्य से (ही) कल्याण होगा।

संस्कृत टीका—मे=मम, सव्यम्=वामम्, चक्षु=नयनम्, स्पन्दते=स्फुरति, तथा, वायस=काक, विरौति=विकृतशब्द करोति, अयम्=दृश्यमान, पन्था=मार्ग, सर्पेण=अहिना,रुद्ध =आक्रान्त (अस्ति), अस्मासु=अस्माकमित्यर्थ दैवत=भाग्यात् (एव), स्वस्ति=कल्याणम् (भविष्यति)॥

समास एवं व्याकरण-(१) रुद्ध-रुध्+क्त। दैवत — दैव+तस् पञ्चम्यर्थे।

अथवा 'दैवतानि पुंसि वा' इस कोश प्रमाण से 'दैवत.' यह प्रथमान्त पद है। अर्थ होगा–'देवता कल्याण करेंगे।' देव एव देवता देव+तल् ततः 'प्रज्ञादिभ्यश्च' इति 'स्वार्थिकोऽण्=दैवतः। स्पन्दते—स्पन्द्+लट्। विरौति–वि+रु+लट्।

विवृति

(१) 'दैवत' शब्द का पुल्लिङ्ग मे प्रयोग 'पुंसि वा दैवत स्त्रियाम्' इस अमर कोष के प्रमाण से उपयुक्त है फिर भी कवियो द्वारा अनादृत होने से अप्रयुक्तास्य दोष है। जैसा कि नैषध मे–'पद्मान्हि मे प्रावृषि खञ्जरीटान्' इति। (२) प्रस्तुत पद्य मे पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण–'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम्।'

तावत्प्रविशामि। (इति प्रविशति।)

तो प्रवेश करता हूँ। [यह कहकर प्रवेश करता है]

न्यायाधीश—यह वह चारुदत्त है, जो यह—

घोणोन्नत मुखमपाङ्गविशालनेत्रं
नैतद्धि भाजनमकारणदूषणानाम्।
नागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु
नह्याकृतिः सुसदृश विजहाति वृत्तम् ॥ १६ ॥

अन्वय—घोणोन्नतम्, अपाङ्गविशालनेत्रम्, एतत् मुखम्, हि, अकारणदूषणानाम् भाजनम् न, (भवितुम्,शक्नोति,), (यतः) नागेषु, गोषु, तुरगेषु तथा, नरेषु, आकृतिः, सुसदृशम्, वृत्तम्, नहि, विजहाति ॥ १६ ॥

पदार्थ—घोणोन्नतम्=ऊँची नाक से युक्त, अपाङ्गविशालनेत्रम्=विशाल कानो वाली आँखो से युक्त, अकारणदूषणानाम्=बिना कारण के ही अपराधो का, भाजनम्=पात्र, नागेषु=हाथियो मे, गोषु= गायो अथवा बैलो मे, तुरगेषु=घोडों मे, नरेषु=मनुष्यो मे, आकृति=आकार, चेहरा, सुसदृशम्=अपने योग्य, वृत्तम्= आचरण को, नहि=नही,विजहाति=त्यागता है ॥

अनुवाद—ऊँची नासिका एव प्रान्त–प्रदेश तक विस्तृत नेत्रो वाला यह मुख (अर्थात् चारुदत्त) निश्चय ही अकारण अपराधों का पात्र नही (हो सकता) है (क्योंकि) हाथी, गौ, अश्व तथा मनुष्यो मे आकृति सर्वथा योग्य चरित्र का परित्याग नही करती ॥

संस्कृत टीका—घोणोन्नतम्=नासिकोद्गतम्, अपाङ्गविशालनेत्रम्=नेत्रान्तदीर्घनयनम्,एतत्=ईदृशम्, मुखम्=आननम्, हि=निश्चयेन, अकारणदूषणानाम्=निर्हेतुकापराधानाम्, भाजनम्=पात्रम्, न (भवितुम्, शक्नोति, यतः) नागेषु=गजेषु, गोषु=वृषभेषु, तुरगेषु=अश्वेषु, तथा=अपि च, नरेषु=मनुष्येषु, आकृतिः=आकारः, सुसदृशम्=सर्वथायोग्यम्, वृत्तम्=चरित्रम्, नहि विजहाति= नहि त्यजति ॥

समास एवं व्याकरण–(१) घोणोन्नतम्–घोणा उन्नता अथवा घोणया उन्नतम् यस्मिस्तत् । अपाङ्गविशालनेत्रम्–अपाङ्गयोः विशाले नेत्रे यस्मिन् तादृशम् । अकारणदूषणानाम्–अकारणेन दूषणानाम् । (२) उन्नतम्–उत्+नम्+क्त । आकृतिः–आ+कृ+क्तिन्, वृत्तम्–वृत्+क्त । विजहाति–वि+हा+लट् ।

विवृति

(१)'प्राण गन्धवहा घोणा नासा च नासिका' इत्यमरः । (२) वस्तुतः 'उन्नतघोणम्' होना चाहिये अथवा 'आहिताग्न्यादि' में मानकर 'उन्नत' शब्द का प्रयोग सिद्ध किया जा सकता है । (३) 'अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ' इत्यमरः । (४) प्रायः सुन्दर चेहरा अनुचित कार्य नही करता अथवा आकृति से मनुष्य के कार्य का पता चल जाता है । जैसा कि अन्यत्र कहा गया है–"आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च । नेत्र-वक्त्र-विकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥" (५) भावसाम्य–(i) 'भिद्येत वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य'–उत्तररामचरित ।, (ii) 'आकृतिमनुगृह्णन्ति गुणाः' ॥ विद्धशाल भञ्जिका ॥ (iii) 'न तादृशा आकृति विशेषा· गुणविरोधिनो भवन्ति' ॥ –शाकुन्तल ॥ (६) प्रस्तुत श्लोक मे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । (७) 'नरेषु' इस प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत गजो का वृत्त रूप एक धर्म सम्बन्ध होने से दीपकालङ्कार है । (८) वसन्ततिलका छन्द है लक्षण–" उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग. ।"

चारुदत्तः– भो, अधिकृतेभ्यः स्वस्ति । हहो नियुक्ता, अपि कुशल भवताम् ।

चारुदत्त– न्यायाधिकारियो का कल्याण हो । हे अधिकारी गण ! आप कुशल तो हैं ।

अधिकरणिक – (ससम्भ्रमम् ।) स्वागतमार्यस्य । भद्र शोधनक, आर्यस्यासनमुपनय ।

न्यायाधीश– [घबराहट से] आर्य का स्वागत है । सौम्य शोधनक ! आर्य के लिए आसन लाओ ।

शोधनक– (आसनमुपनीय ।) इदमासनम् । अत्रोपविशत्वार्य. । [एद आसनम् । एत्थ उवविसदु अज्जो ।]

शोधनक– [आसन लाकर] यह आसन है : आर्य इस पर बैठें ।

(चारुदत्त उपविशति ।)

[चारुदत्त बैठता है ।]

शकार – (सक्रोधम् ।) आगतोऽसि रे स्त्रीघातक, आगतोऽसि । अहो न्याय्यो व्यवहार', अहो धर्म्यो व्यवहार. [यदेतस्मै स्त्रीघातकायासन दीयते । (सगर्वम् ।) भवतु । ननु दीयताम् । [आगेदेशिले इस्थिआघादआ, आगदेशि । अहो णाए ववहाले, अहो धम्मे ववहाले, ज एदाह इस्थिआघादकाह आशणे दीअदि । भोदु । ण

दीजदु ।]

शकार– [क्रोधपूर्वक] आ गया रे स्त्रीघातक आ गया। आह ! कितना न्याययुक्त व्यवहार है ! कितना धर्मयुक्त व्यवहार है ! जो इस स्त्रीघातक को आसन दिया जा रहा है। [गर्व के साथ] अच्छा, दीजिए।

अधिकरणिक– आर्य चारुदत्त, अस्ति भवतोऽस्या आर्याया दुहित्रा सह प्रसक्ति: प्रणय: प्रीतिर्वा।

न्यायाधीश– आर्य चारुदत्त ! आपका इस आर्या की पुत्री के साथ गाढ सम्पर्क, अनुराग अथवा स्नेह है क्या ?

चारुदत्त– कस्या।

चारुदत्त– किसकी ?

अधिकरणिक– अस्या। (इति वसन्तसेनामातरं दर्शयति।)

न्यायाधीश– इसकी। [वसन्तसेना की माता को दिखलाता है।]

चारुदत्त– (उत्थाय।) आर्ये, अभिवादये।

चारुदत्त– [उठकर] आर्ये ! प्रणाम करता हूँ।

वृद्धा– जात चिरं मे जीव (स्वगतम्) अयं स चारुदत्त: । सुनिक्षिप्तं खलु दारिकया यौवनम्। [जाद चिरं मे जीव। अअं सो चारुदत्तो। सुणिक्खित्तं क्खु दारिआए जोव्वणम्।]

वृद्धा– वत्स ! चिरजीवी हो। [अपने आप] यह वह चारुदत्त है। निश्चय ही बेटी ने (अपना) यौवन सुन्दर सौंपा है।

अधिकरणिक– आर्य गणिका तव मित्रम्।

न्यायाधीश– आर्य ! वेश्या तुम्हारी मित्र है ?

(चारुदत्तो लज्जां नाटयति।)

[चारुदत्त लज्जा का अभिनय करता है]

विवृति

(१) अधिकृतेभ्य =अधिकारियों के लिए। यहाँ 'नम: स्वस्तिस्वाहा' सूत्र से चतुर्थी है। (२) स्वस्ति=कल्याण। (३) अहो=हे। (४) नियुक्ता=कर्मचारियों। यह सम्बोधन है। (५) ससम्भ्रमम्=शीघ्रता से। (६) न्याय्या= न्यायपूर्ण। (७) धर्म्य =धर्मपूर्ण। दोनों शब्दों में 'धर्म पथ्यर्थन्यायादनपेते' सूत्र से यत् प्रत्यय है। (८) स्त्रीघातक =स्त्रीहन्ता। (९) दुहित्रा=लड़की के साथ। (१०) प्रसक्ति –मित्रता। (११) प्रणय =प्रेम। (१२) प्रीति =स्नेह। (१३) जात=पुत्र। (१४) दारिकया=पुत्री के द्वारा। (१५) सुनिक्षिप्तम्=भली भाँति सौंपा है। (१६) नियुक्ता–नि+युज्–क्त। प्रसक्ति–प्र+सञ्ज्+क्तिन्। (१७) सुनिक्षिप्तम्–सु+नि+क्षिप्+क्त।

शकार:—

शकार—

लज्जया भीरुतया वा चारित्रमलीकं निगूहितुम् ।
स्वयं मारयित्वार्थकारणादिदानीं गूहति न तद्धि भट्टकः ॥१७॥

[लज्जाए भीलुदाए वा
चालित्त अलिए णिगूहिदु ।
शअं मालिअ अत्थकालणाए]
दाणिं गूहदि ण त हि भस्टके ॥१७॥

अन्वय'— अर्थकारणात्, स्वयम्, मारयित्वा, इदानीम्, (त्वम्), लज्जया, वा, भीरुतया, अलीकम्, चारित्रम्, निगूहितुम्, (यतसे), (किन्तु) भट्टक, हि, तत्, न गूहति ॥ १७ ॥

पदार्थ — अर्थकारणात्=धन के लिए, स्वयम्=अपने आप, मारयित्वा=मारकर, लज्जया=लज्जा के कारण, भीरुतया=कायरता अथवा डर के कारण, अलीकम्=अप्रिय, बुरा, निगूहितुम्=छिपाने के लिए, भट्टक=स्वामी (पालक) अथवा न्यायाधीश ॥

अनुवाद— धन के कारण (वसन्तसेना को) स्वय मारकर इस समय तू लज्जा अथवा भीरुता से (अपने) कुत्सित चरित्र को छिपाने का यत्न करता है, किन्तु स्वामी (अथवा न्यायाधीश) निश्चय ही उसे नही छिपायेगा ।

संस्कृत टीका—अर्थकारणात्=धनहेतो , स्वयम्=आत्मना, मारयित्वा=हत्वा, इदानीम्=सम्प्रति, (त्वम्) लज्जया=त्रपया, वा=अथवा, भीरुतया=भयेन, अलीकम्=मिथ्या, चारित्रम्=चरितम्, निगूहितम्=गोपायितुम्, (यतसे, किन्तु) भट्टक=स्वामी, राजा पालक. न्यायाधीश वा, हि=निश्चितम्, तत्=अलीकम्, न गूहति=न अपह्नुते ॥

समास और व्याकरण—(१) अर्थकारणात्–अर्थस्यकारणात् । (२)मारयित्वा मृ + णिच् + क्त्वा । निगूहितुम्–नि + गुह + तुमुन् । गूहति–गुह + लट् ।

विवृति

(१) 'स्यादलीक त्वप्रियेऽनृते' इत्यमर । (२) कुछ टीकाकारो का मत है कि 'भट्टक' शब्द चारुदत्त के लिए व्यग्य रूप मे कहा गया है। जो सङ्गत नही प्रतीत होता। पृथ्वीधर के अनुसार 'भट्टक' पाठ है। (३) वैतालीय छन्द है। छन्द का लक्षण—"षड्विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तरा। न समाऽत्र पराश्रिता कला वतालीयेऽन्ते रलौ गुरु ॥"

श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्य चारुदत्त, भण। अलं लज्जया। व्यवहारः खल्वेष।
[अज्जचारुदत्त, भणाहि। अलं लज्जाए। ववहारो क्खु एसो।]

सेठ और कायस्थ—आर्य चारुदत्त ! कहो। लज्जा करना व्यर्थ है। यह व्यवहार (मुकदमा) है।

चारुदत्त—(सलज्जम्।) भो अधिकृता, मया कथमीदृशं वक्तव्यम्, यथा गणिका मम मित्रमिति। अथवा यौवनमत्रापराध्यति, न चारित्र्यम्।

चारुदत्त—[लज्जापूर्वक] हे अधिकारियो ! मैं ऐसा कैसे कहूँ कि—वेश्या मेरी मित्र है। अथवा यहाँ यौवन अपराध करता है, चरित्र नहीं।

विवृति

(१) अत्र=गणिका के साथ मित्रता करने में। (२) यौवनम्=जवानी। (३) अपराध्यति-अपराध करता है। (४) चारि=यम्=चरित्र।

अधिकरणिक—

न्यायाधीश—

व्यवहारः सविघ्नोऽयं त्यज लज्जां हृदि स्थिताम्।
ब्रूहि सत्यमलं धैर्यं छलमत्र न गृह्यते ॥ १८ ॥

अन्वय—अयम्, व्यवहारः, सविघ्नः, (अतः) हृदि, स्थिताम्, लज्जाम्, त्यज, सत्यम्, ब्रूहि, धैर्यम्, अलम्, अत्र, छलम्, न, गृह्यते ॥ १८ ॥

पदार्थ—व्यवहारः=मुकदमा, सविघ्नः=विघ्नों अथवा सङ्कटों से युक्त, हृदि=हृदय में, स्थिताम्=वर्तमान, त्यज=छोड़ो, ब्रूहि=बोलो, अलम्=व्यर्थ अथवा पर्याप्त, छलम्=छल-कपट, गृह्यते=ग्रहण किया जाता, माना जाता ॥

अनुवाद—यह व्यवहार विघ्नमय है, (अतः) हृदयस्थित लज्जा का परित्याग करो, सत्य बोलो, धैर्य व्यर्थ है, यहाँ छल-कपट को स्वीकार नहीं किया जाता।

संस्कृत टीका—अयम्=एष, व्यवहारः=अभियोगविचारः, सविघ्नः=विघ्नेन सहितः, (अतः) हृदि=हृदये, स्थिताम्=वर्तमानाम्, लज्जाम्=व्रीडाम्, त्यज=मुञ्च, सत्यम्=ऋतम्, ब्रूहि=वद, धैर्यम्=गाम्भीर्यम्, अलम्=व्यर्थम्, अत्र=अस्मिन् न्यायालये, छलम्=कपटम्, न गृह्यते=न स्वीक्रियते ॥

समास एवं व्याकरण—(१) सविघ्नः-विघ्नेन सहितः। स्थिताम्—स्था+क्त+टाप्। लज्जाम्—लज्ज्+अ+टाप्। त्यज—त्यज्+लोट्। ब्रूहि—ब्रू+लोट्। गृह्यते—ग्रह्+यक्+लट्।

विवृति

(१) भाव यह है कि जो बात पूछी जाती है, उसका सही उत्तर दीजिये। गम्भीरता मत धारण कीजिये। यहाँ छलपूर्वक कोई उत्तर स्वीकार नहीं किया

जायेगा। (२) प्रस्तुत पद्य मे पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण—"युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम्।"

अल लज्जया। व्यवहारस्त्वा पृच्छति।

लज्जा करना व्यर्थ है। व्यवहार (मुकदमा) तुमसे पूछता है।

चारुदत्त—अधिकृत, केन सह मम व्यवहार।

चारुदत्त—अधिकारी! किसके साथ मेरा व्यवहार है?

शकार—(साटोपम्।) अरे, मया सह व्यवहार.। [अले, मए शह ववहाले।]

शकार—[गर्वसहित] अरे मेरे साथ व्यवहार है।

चारुदत्त—त्वमा सह मम व्यवहार सुदु सह।

चारुदत्त—तुम्हारे साथ मेरा व्यवहार असह्य है।

शकार—अरे स्त्रीघातक, ता तादृशी रत्नशतभूषणा वसन्तसेना मारयित्वा, साम्प्रत कपटकापटिको भूत्वा, निगूहसि। [अले इश्यिआघादआ, त तादिशि लअणशद-भूशणिअ वशन्तशेणिअ मालिअ, शपद कवडकावडिके भविअ णिगूहेशि।]

शकार—अरे स्त्रीघाती! सैकडो रत्नो के आभूषण वाली वैसी उस वसन्तसेना को मारकर इस समय छल स धूर्त बनकर छिपाता है।

चारुदत्त—असबद्ध खल्वसि।

चारुदत्त—तू असङ्गत (बात बोलने वाले) हो।

अधिकरणिक—आर्यचारुदत्त, अलमनेन। ब्रूहि सत्यम्। अपि गणिका तव मित्रम्।

न्यायाधीश—आर्य चारुदत्त! इस (बकवास) से क्या लाभ? सच बतलाओ। क्या वेश्या तुम्हारी मित्र है।

चारुदत्त—एवमेव।

चारुदत्त—ऐसा ही है।

अधिकरणिक—आर्य, वसन्तसेना क्व।

न्यायाधीश—आर्य! वसन्तसेना कहाँ है?

चारुदत्त—गृह गता।

चारुदत्त—घर गई।

श्रेष्ठिकायस्थौ—कथ गता, कदा गता, गच्छन्ती वा केनानुगता। [कव गदा, कदा गदा, गच्छन्ती वा केण अणुगदा।]

सेठ और कायस्थ—कैसे गई? कब गई? अथवा जाती हुई के साथ कौन गया?

चारुदत्त—(स्वगतम्।) कि प्रच्छन्न गतेति ब्रवीमि।

चारुदत्त—[अपने आप] क्या 'गुप्त रूप से गई' यह कह दूँ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्य, कथय । [अज्ज, कधेहि ।]

सेठ और कायस्थ—आर्य ! कहिये ।

चारुदत्त —गृह गता । किमन्यद्‌ब्रवीमि ।

चारुदत्त—घर गई । और क्या हूँ ?

शकार—मदीय पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान प्रवेश्यार्थनिमित्त बाहुपाशबलात्कारेण मारिता । अये, साप्रत वदसि गृह गतेति । [मम केलक पुष्फकलण्डकजिण्णुज्जाण पवेशिअ अत्थणिमित्त बाहुपाशबलक्कालेण मालिदा । अए, शपद वदशि घल गदे त्ति ।]

शकार—मेरे पुष्पकरण्डक नामक पुराने उपवन मे ले जाकर धन के लिए भुजपाश मे बलपूर्वक (दबाकर) मार दी है । अरे ! अब कहता है 'घर गई' ।

विवृति

(१) सुदु सह =अत्यन्त असह्य । (२) कपटकापटिक =कपट से धूर्त बना हुआ । कपटेन जयति कापटिक , कपटयुक्त कापटिक इति कपटकापटिक । कपट+ठक्=कापटिक । (२) निगूहसि=छिपा रहे हो । (३) असम्बद्ध =निरर्थक बालने वाला । (४) मृच्छन्नम्—छिपे रूप से ।

चारुदत्त— आ अमवद्ध प्रलापिन्,

चारुदत्त— अरे असङ्गत प्रलाप करने वाले !

> अम्युक्षितोऽसि मलिलैर्न वलाहकाना
>
> चापाग्रपक्षसदृश भृशमन्तराले ।
>
> मिथ्यैतदाननमिद भवतस्तथाहि
>
> हेमन्तपद्मामिव निष्प्रभतामुपैति ॥ १९ ॥

अन्वय – एतत् मिथ्या, (अस्ति), तयाहि, वलाहकानाम्, सलिलै , अभ्युक्षित , न, असि, (तथापि), अन्तराले चापाग्रप ामदृशम् भवत , इदम्, आननम्, हेमन्तपद्मम् इव, निष्प्रभताम् उपैति ॥ १९ ॥

पदार्थ — वलाहकानाम्=बादलों के, सलिलै =जल से, अभ्युक्षित =मीचा गया, अन्तराले=बीच म चापाग्रपक्षमदृशम्=नीलकण्ठ के पंख के अग्रभाग के समान, भवत =आपका, हेमन्तपद्मम्=हेमन्त ऋतु म कमल, निष्प्रभताम्=कान्तिहीनता अथवा मलिनता को, उपैति=प्राप्त हो रहा है ॥

अनुवाद — यह (तुम्हारा कथन) मिथ्या है, क्योकि तुम बाद ो जल से भीग नहीं हो, (तो भी इस कथन के) बीच म बिल्कुल नीलकण्ठ पक्षी के पंख के अग्रभाग के तुल्य (काला-काला) तेरा यह मुख हेमन्त ऋतु के कमल की भाँति कान्ति-हीनता को प्राप्त हो रहा है ।

संस्कृत टीका— एतत्=तव कथनम्, मिथ्या=असत्यम्, (अस्ति) तथाहि= यत, वलाहकानाम्=जलदानाम्, सलिलैः=जलै, अभ्युक्षित=सिक्त, न असि=न वर्तसे, (तथापि) अन्तराले=एतद्वचनमध्ये, चापाग्रपक्षसदृशम्=नीलकण्ठपक्षाग्रभागतुल्यम्, भवत=तव, इदम्=दृश्यमानम्, आननम्=मुखम्, हेमन्तपद्मम्= हैमन्तकालिककमलमिव, निष्प्रभताम्=कान्तिहीनताम्, उपैति=प्राप्नोति ॥

समास एव व्याकरण— (१) चापाग्रपक्षसदृशम्— चाप तस्य अग्रपक्ष तस्य सदृशम् । हेमन्तपद्मम्— हेमन्तस्य पद्मम् । (२) अभ्युक्षित— अभि+उक्ष्+क्त । (३) वलाहक— वारीणाम् वाहक । (४) असि— अस्+लट् । उपैति— उप+ इ+लट् ।

विवृति

(१) 'अभ्र मेघा वारिवाह स्तनयित्नुर्वलाहक' इत्यमर । (२) 'चाप स्त्रिकीदिवि' इत्यमर । (३) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि—

नीलकण्ठ के पक्षाग्र मेघ के जल में मलिन हो जाते हैं किन्तु आपका (शकार का) मुख अकारण ही क्यों मलिन हो गया, इसका कारण यह है कि मिथ्या अभियोग लगाने वाले का मुख विवर्ण हो जाता है ऐसा स्मृतियों में भी कहा गया है। (दे० याज्ञ० स्मृ० २, १३५) (४) निष्प्रभ कारण के अभाव में भी निष्प्रभता रूप कार्योत्पत्ति होने से विभावना अलङ्कार है। (५) उपमालङ्कार भी है। (६) वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण— "उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग ।"

अधिकरणिक— (जनान्तिकम् ।)

न्यायाधीश— [हाथ की आड में]

तुलनं चाद्रिराजस्य समुद्रस्य च तारणम् ।
ग्रहणं चानिलस्येव चारुदत्तस्य दूषणम् ॥ २० ॥

अन्वय— चारुदत्तस्य, दूषणम् अद्रिराजस्य तुलनम्, समुद्रस्य, तारणम्, अनिलस्य, ग्रहणम्, इव, (वर्तते) ॥ २० ॥

पदार्थ— दूषणम्=दोष निकालना अथवा सिद्ध करना, अद्रिराजस्य=पर्वतराज (हिमालय) का, तुलनम्=तौलना, तारणम्=तैरकर पार करना, अनिलस्य= वायु का, ग्रहणम्=पकड़ना ।

अनुवाद— चारुदत्त का दोष दिखलाना पर्वतराज (हिमालय) को तौलने के समान, सागर को तैर कर पार करने के समान एवं वायु को पकड़ने के समान है ।

संस्कृत टीका— चारुदत्तस्य=कुलेन आचरणेन चातिनिर्मलस्य चारुदत्तस्येत्यर्थ दूषणम्=स्त्रीहत्यालाञ्छनम्, अद्रिराजस्य=हिमालयस्य, तुलनम्=उत्तोलनम्, समुद्रस्य=सागरस्य, तारणम्=तीर्त्वा पारे गमनम्, अनिलस्य=वायो, ग्रहणम्=करे

धारणमिव, (वर्तते) ॥

समास एवं व्याकरण— (१) अद्रिराजस्य— अद्रीणाम् राजा तस्य 'राजाह: सखिभ्य' इति टच्। (२) तारणम्— तृ+णिच्+ल्युट्। दूषणम्— दुष्+ल्युट्। ग्रहणम्— ग्रह्+ल्युट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे मालोपमालङ्कार है। (२) पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण— "युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ॥"

(प्रकाशम्।) आर्यं चारुदत्त खल्वसौ कथमिदमकार्यं करिष्यति। ('घोणा'— (९/१६) इत्यादि पठति।)

[प्रकट रूप मे] यह आर्य चारुदत्त इस अकार्य को कैसे करेंगे ? ['घोणा' ९/१६ इत्यादि श्लोक पढना है]

शकार — किं पक्षपातेन व्यवहारो दृश्यते। [किं पक्खवादेण ववहाले दीशदि।]

शकार— क्या पक्षपात से व्यवहार (मुकदमा) देखा जाता है ?

अधिकरणिक — अपेहि मूर्ख,

न्यायाधीश— हट, मूर्ख।

वेदार्थान्प्राकृतस्त्वं वदसि, न च ते जिह्वा निपतिता,
मध्याह्ने वीक्षसेऽर्कं, न तव सहसा दृष्टिर्विचलिता।
दीप्ताग्नौ पाणिमन्तः क्षिपसि, स च ते दग्धो भवति नो
चारित्र्याच्चारुदत्तं चलयसि, न ते देहं हरति भूः ॥ २१ ॥

अन्वय— त्वम्, प्राकृत, (सन्), वेदार्थान्, वदसि, (किन्तु), ते, जिह्वा, न, च, निपतिता, मध्याह्ने, अर्कम्, वीक्षसे, (किन्तु), सहसा, तव, दृष्टि, न, विचलिता, दीप्ताग्ने, अन्त, पाणिम्, क्षिपसि, (किन्तु), ते, स, दग्ध, नो भवति, चारुदत्तम्, चारित्र्यात्, चलयसि, (किन्तु) भू, ते, देहम्, न, हरति ॥ २१ ॥

पदार्थ — प्राकृत =मूर्ख, पामर, वेदार्थान्=वेदो के अर्थो को, वदसि=कह रहा है, जिह्वा=जीभ, निपतिता=गिरी मध्याह्ने=दोपहर के समय मे, अर्कम्= सूर्य को, वीक्षसे=देख रहा है, सहसा=एकाएक, दृष्टि =आँख, न विचलिता= चौंधिया नही गयी, दीप्ताग्ने =धधकती आग के, अन्त —बीच मे, पाणिम् =हाथ को, क्षिपसि=डाल रहा है, दग्ध =जला हुआ, चलयसि -डिग रहा है अथवा भ्रष्ट कर रहा है, न हरति =छिपा नही लेती ॥

अनुवाद — तुम मूर्ख होकर वेदार्थो का उच्चारण करते हो, तथापि तेरी जिह्वा नही गिरी। दोपहर के समय तुम सूर्य की ओर ताकते हो, तथापि एकाएक तेरी आँख चौंधिया नहीं गई। प्रज्वलित अग्नि मे हाथ डाल रहा है, तथापि तेरा वह

(हाथ) जला नही, तू चारुदत्त को चरित्र से चलायमान कर रहा है, तथापि पृथ्वी तेरे शरीर का हरण नही कर लेती ।

संस्कृत टीका— त्वम् = शकार, प्राकृत = मूर्ख (सन्), वेदार्थान् = श्रुत्यर्थान् वदसि = कथयसि, (किन्तु) ते = तव, जिह्वा = रसना, न च, निपतिता = भ्रष्टा, मध्याह्ने = मध्यन्दिने, अर्कम् = सूर्यम्, वीक्षसे = पश्यसि (किन्तु) महसा = तत्क्षणमेव तव = ते, दृष्टि = नेत्रम्, न विचलिता = नोपहता, दीप्ताग्ने = जाज्वल्यमाने वह्नौ, अन्त अभ्यन्तरे, पाणिम् = करम्, क्षिपसि = प्रवेशयसि, (किन्तु) ते = तव, स = हस्त, दग्ध = भस्मीभूत, नो = नहि, भवति = जायत, चारुदत्तम् = कीर्तिधवल चारुदत्तमित्यर्थं, चारित्र्यात् = चरितात्, चलयसि = पातयसि, (किन्तु) भू = पृथ्वी, ते = तव, देहम् = शरीरम्, न हरति = न ग्रसति ॥

समास एवं व्याकरण— (१) वदसि–वद् + लट् । निपतिता–नि + पत् + क्त + टाप् । वीक्षसे–वीक्ष् + लट् । दृष्टि —दृश् + क्तिन् । विचलिता–वि + चल् + क्त + टाप् । क्षिपसि–क्षिप् + लट् । हरति–हृ + लट् ।

विवृति

(१) 'विवर्ण पामरो नीच प्राकृतश्च पृथग्जन' इत्यमर । (२) चलयसि–यहाँ पर घटादि गण की चल धातु है इसलिए मित होने से 'मिता ह्रस्व' से ह्रस्व हुआ है। (३) यहाँ तक शकार कर्तृक वेदार्थवाद रूप वस्तु सम्बन्ध न होते हुए, चारित्र्य से चारुदत्त का चालन प्राकृतो का वेदार्थवाद की भाँति अत्यन्त अन्यायी होने से सादृश्य का बोध कराता है। अत निदर्शनालङ्कार है। (४) वेदार्थ अध्ययनादि रूप कारण होने पर भी रसना पातादि रूप कार्योत्पत्ति न होने से विशेषोक्ति अलङ्कार है। (५) सुमधुरा छन्द है। 'म्रौ म्नौ मो नो गुरुश्चेद्वसुशररसैरुक्ता सुमधुरा।'

आर्यचारुदत्त कथमकार्यं करिष्यति ।

आर्यचारुदत्त कैसे अकार्य करेंगे ?

> कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेष
>
> दत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि ।
>
> स श्रेयसा कथमिवैकनिधिर्महात्मा
>
> पाप करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम् ॥२२॥

अन्वय —हि, येन, समुद्रम्, उदकोच्छ्रयमात्रशेषम्, कृत्वा, अनपेक्षितानि, धनानि दत्तानि, श्रेयसाम् एकनिधि, स, महात्मा, धनार्थम्, अवैरिजुष्टम्, पापम् कथमिव, करिष्यति ? ॥२२॥

द दिये गये, श्रेयसाम्=कल्याणों का, एकनिधि=एकमात्र निधि अर्थात् महान् आधार, अवैरिजुष्टम्=शत्रुओं द्वारा असेवित अर्थात् जिसे शत्रु भी न कर सके।

अनुवाद—क्योंकि जिसने (रत्नादि दान देते हुये) समुद्र को जल की प्रचुरतामात्र शेष वाला बना कर (याचकों के द्वारा) अप्रार्थित धन का दान किया, कल्याणों का अद्वितीय आश्रय वह महात्मा (चारुदत्त) धन के लिये वैरियों के द्वारा भी असेवनीय पाप कैसे करेगा ? ॥

संस्कृत टीका—हि=यत, येन=चारुदत्तेन, समुद्रम्=सागरम्, उदकोच्छ्रय-मात्रशेषम्=जलोन्नतिमात्रावशिष्टम्, कृत्वा=विधाय, अनपेक्षितानि=अनीप्सितानि, धनानि=अर्था दत्तानि समर्पितानि, श्रेयसाम्=कल्याणानाम्, एकनिधि=प्रधा-नाश्रय, स=प्रसिद्ध महात्मा=महानुभाव (चारुदत्त), धनार्थम्=वित्ताय,अवैरि-जुष्टम्=चारुदत्तस्य वैरिणाऽपि असेवितम् पापम्=स्त्रीवधात्मककुकर्म, कथमिव करिष्यति ?=कथमपि नेत्यर्थ ॥

समास एव व्याकरण—(१)उदकोच्छ्रयमात्रशेषम्=उदकेन उदकस्य वा उच्छ्रय तन्मात्रम् शेष यस्य तम । एकनिधि—एक निधि । अवैरिजुष्टम्—वैरिणा न जुष्टम् । अवीरजुष्टमिति पाठान्तरे वीरै न जुष्टम् अवीरजुष्टमिति । (२) जुष्टम्—जुष्+क्त । शेषम्—शिष्+अच् । कृत्वा—कृ+क्त्वा । अनपेक्षित—अन्+अप+ईक्ष्+क्त । दत्तानि—दा+क्त । श्रेयसाम्—प्रशस्य ईयसुन् (श्रादेश) । करिष्यति—कृ+लृट् ।

विवृति

(१) नगाद्यारोह उच्छ्राय उत्सेधश्चोच्छ्रयश्च स' इत्यमर । (२) चारुदत्त ने सागर के सभी रत्न और मोती दान कर दिये अत सागर में जलमात्र शेष रह गया । (३) स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृत वृष इत्यमर । (४) अवीरजुष्टम्—पाठान्तर है जिसका अर्थ कायर अथवा नीच प्रवृत्ति के लोगों द्वारा किया गया । (५) प्रस्तुत श्लोक में अतिशयोक्ति अलङ्कार है । (६) वसन्ततिलका छन्द है । लक्षण—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग ॥"

वृद्धा—हताश, यस्तदानीं न्यासीकृत सुवर्णभाण्ड रात्रौ चौरैरपहृतमिति तस्य कारणात्स्वत् समुद्रसारभूता रत्नावली ददाति, स इदानीमर्थकल्यवतस्य कारणादिदम् कार्यं करोति । हा जात, एहि मे पुत्रि । (इति रोदिति ।) [हदास, जो तदाणिं णासी-किद सुवण्णभण्डअं रत्तिं चोरेहिं अवहिदं त्ति तस्स कारणादो चदुस्समुद्दसारभूदं रअणावलिं देदि सो दाणिं अत्थकल्लवत्तस्स कालणादो इमं अकज्जं करेदि । हा जाद, एहि मे पुत्ति ।]

वृद्धा—निगोड़े ! जो (चारुदत्त) उस समय धराहर रक्खे हुए सुवर्णपात्र का

रात्रि में चोरों ने हर लिया, इसलिये उसके निमित्त चारों समुद्रों की सारभूत रत्नावली दे देता है वह इस समय कलेवा जैसे (तुच्छ) धन के निमित्त यह कुकृत्य करता है ? हाय वत्से ! आओ मेरी पुत्री ! [यह कहकर रोती है]

अधिकरणिक —आर्य चारुदत्त, किमसौ पद्भ्यां गता, उत प्रवहणेनेति।

न्यायाधीश—आर्य चारुदत्त ! क्या वह पैदल गई अथवा गाड़ी से ?

चारुदत्त —ननु मम प्रत्यक्षं न गता। तन्न जाने किं पद्भ्यां गता, उत प्रवहणेनेति।

चारुदत्त—मेरे सामने नहीं गई। अतः मैं नहीं जानता कि पैदल गई अथवा गाड़ी से।

(प्रविश्य, सामर्षं ।)

[प्रवेश करके क्रोध के साथ]

विवृति

(१)हताश=अभागा। (२)तदानीम्=उस समय। (३)प्रत्यक्षम्=सामने। (४) सामर्षं =क्रोध के साथ। 'कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघारुट् क्रुधौ' इत्यमर। (५) प्रवेष्ट =बाहु। 'भुजबाहुप्रवेष्टोदो' इत्यमर। प्रवेष्ट एव प्रवेष्टकः तेन=प्रवेष्टकेन।

वीरक —

वीरक

पादप्रहारपरिभवविमाननाबद्धगुरुकवैरस्य ।

अनुशोचत इयं कथमपि रात्रिः प्रभाता मे ॥२३॥

[पादप्पहारपरिभवविमाणणावद्धगरुअवेरस्स ।

अणुसोअलस्स इअं कधं पि रत्ती पभादा मे ॥२३॥]

अन्वय —पादप्रहारपरिभवविमाननाबद्धगुरुकवैरस्य, अनुशोचत, मे इयम्, रात्रि, कथमपि, प्रभाता ॥२३॥

पदार्थ —पादप्रहार०=पैर से मारने के तिरस्कार से होने वाली क्षुब्धता से अथवा तिरस्कार रूप अपमान से उत्पन्न हो गया है बडा वैरभाव जिसमें ऐसे, अनुशोचत =सोच करने वाले, प्रभाता=प्रभात रूप मे परिणत हो गयी अर्थात् बीत गई ॥

अनुवाद —पाद प्रहार के तिरस्कार रूप अपमान से उत्पन्न महान् वैर वाले चिन्तासक्त मेरी यह रात्रि किसी तरह व्यतीत हुई ॥

संस्कृत टीका—पादप्रहार०=चन्दनककर्तृक-पाद प्रहाररूपापमान क्षुभित महद्वैरभावस्य, अनुशोचत =पश्चात्ताप कुर्वत, मे=मम, इयम्=अद्यैव व्यतीता, रात्रि =निशा, कथमपि=येन केनापि रूपेण, प्रभाता=प्रातःकाल रूपेण परिणता व्यतीतेति भाव ॥

समास एवं व्याकरण—(१) पादप्रहार०-पादेन प्रहार येन य परिभव तेन

या विमानना तया बद्धम् गुरुकम् वैरम् यस्य तादृशस्य । (२) अनुशोचत —अनु+शुच्+शतृ ।

विवृति

(१) 'अनादर परिभव परीभावस्तिरस्क्रिया' इत्यमरः । (२) परिभव०—परिभव एव विमानना—इस प्रकार भी कुछ टीकाकारों ने अर्थ किया है । (३) आर्या छन्द है । (४) कुछ टीकाकारों के अनुसार गाथा छन्द है ।

तद्यावदधिकरणमण्डपमुपसर्पामि । (प्रवेष्टकेन ।) सुखमार्यमिश्राणाम् ।

[ता जाव अधिअरणमण्डव उवसप्पामि । सुह अज्ज मिस्साणम् ।]

तो अब न्याय-मण्डप में जाता हूँ । [हाथ उठाकर] आर्य-प्रवरों का कल्याण हो ।

अधिकरणिक—अये, नगररक्षाधिकृतो वीरक । वीरक, किमागमन प्रयोजनम् ।

न्यायाधीश— अरे ! नगर-रक्षा में नियुक्त वीरक है । वीरक ! आने का क्या प्रयोजन है ?

वीरक—ही, बन्धनभेदनसभ्रम आर्यकमन्वेषयन्, अपवारित प्रवहण व्रजतीति विचार कुर्वन्नन्वेषयन्, 'अरे— त्वयाप्यालोकितम्, मयाप्यालोकितव्यम्' इति भणन्नेव चन्दनमहत्तरकेण, पादेन ताडितोऽस्मि । एतच्छ्रुत्वार्यमिश्रा प्रमाणम् । [ही, बन्धण-भेअणसभम अज्जअ अण्णेसन्तो, ओवारिद पवहण वव्वदि त्ति विआर करन्तो अण्णेसन्तो, 'अरे, तुए वि आलोइदे, मए वि आलोइदव्वो' त्ति भणन्तो ज्जेव चन्दणमहत्तरएण पादेण ताडिदो ह्मि । एद सुणिअ अज्जमिस्सा पमाणम् ।]

वीरक— अहो ! बन्धन तोड़ने की शीघ्रता में (लगे हुए) आर्यक को ढूंढते हुए ,ढकी हुई गाड़ी जा रही है ।' यह विचार करते हुये तथा निरीक्षण करते हुए 'अरे ! तुमने भी देख ली मुझे भी देख लेनी चाहिए' यह कहते हुये ही मुझे अधिक महान् (बड़े अधिकारी) चन्दनक ने लात से मारा है । यह सुनकर आर्य-प्रवर (आप लोग) ही प्रमाण हैं (अर्थात् निर्णय करें ।)

अधिकरणिक — भद्र, जानीषे कस्य तत्प्रवहणमिति ।

न्यायाधीश— सौम्य ! जानते हो कि वह किसकी गाड़ी थी ?

वीरक – अस्यार्यचारुदत्तस्य । वसन्तसेनारूढा पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान क्रीडितु नीयत इति प्रवहणवाहकेन कथितम् । [इमस्स अज्जचारुदत्तस्स वसन्तसेणा आरूढा पुप्फकरण्डअजिण्णुज्जाण कीलिदु णीअदि त्ति पवहणवाहएण कहिदम् ।]

वीरक— इन आर्य चारुदत्त की । 'इस पर चढ़ी हुई वसन्तसेना पुष्पकरण्डक नामक पुराने उपवन में क्रीडा करने के लिए ले जायी जा रही है' यह गाड़ीवान् ने कहा था ।

शकार— पुनरपि श्रुतमार्यै । [पुणो वि सुद अज्जेहि ।]

शकार– आर्यो ने पुन सुन लिया ?

विवृति

(१) नगररक्षाधिकृत =नगर के पहरे के लिए नियुक्त । (२) ह्री=विषाद । (३) बन्धनभेदनसम्भ्रमे=बन्धन तोडने की घबडाहट मे । (४) अपवारितम्=ढकी हुई । चन्दनमहत्तरकेण=अधिक महान् चन्दन से । (६) प्रवहणवाहकेण=गाडीवान् के द्वारा ।

अधिकरणिक –
न्यायाधीश–

एष भो ! निर्मलज्योत्स्नो राहुणा ग्रस्यते शशी ,
जल कूलवपातेन प्रसन्न कलुषायते ॥ २४ ॥

अन्वय – भो ! निर्मलज्योत्स्न , एष, शशी, राहुणा, ग्रस्यते, कूलावपातेन, प्रसन्नम्, जलम्, कलुषायते ॥२४॥

पदार्थ – निर्मलज्योत्स्न =निर्मल चाँदनी वाला (चारुदत्त–पक्ष मे निष्कलक कीर्ति वाला), राहुणा=राहु के द्वारा (चारुदत्त–पक्ष मे) शकार के द्वारा, ग्रस्यते= ग्रसा जा रहा है, कूलावपातेन=तट के गिरने से (चारुदत्त–पक्ष मे दोषारोपण अथवा लोकापवाद से), प्रसन्न जलम्=निर्मल जल (चारुदत्त–पक्ष मे निर्मल चरित्र) कलुषायते=गन्दा हो रहा है ॥

अनुवाद– अजी ! निर्मल चन्द्रिका वाला यह चन्द्रमा राहु से ग्रसा जा रहा है । तट के पतन से निर्मल जल मलिन हो रहा है (अर्थात् दुर्भाग्य से पवित्र चरित्र वाला चारुदत्त कलकित हो रहा है) ॥

संस्कृत टीका– भो ! इति खेदाभिव्यञ्जकमव्ययपदम्, निर्मलज्योत्स्न = शुभ्रचन्द्रिक, एष =प्रसिद्ध , शशी=चन्द्र , राहुणा=सैंहिकेयेन, ग्रते=स्वग्रासविषयीक्रियते, कूलावपातेन=तटपतनेन, प्रसन्नम्=विमलम्, जलम्=उदकम्, कलुषायते= मलिनायते ॥

समास एव व्याकरण– (१) निर्मला ज्योत्स्न निर्मलज्योत्स्ना यस्य स तादृश: कूलावपातेन–कूलस्य अवपातेन । (२) ग्रस्यते–ग्रस्+यक्+लट् । अवपातेन–अव+पत्+घञ् । प्रसन्नम्–प्र+सद्+क्त । कलुषायते–कलुष+लट् (नामधातु) ।

विवृति

(१) 'तमस्तु राहु स्वर्भानु सैंहिकेयो विधुन्तुद दुष्ट' इत्यमर । (२) 'कूल रोधश्च तीर च प्रतीर च तट त्रिषु' इत्यमर । (३) प्रस्तुत पद्य मे अप्रस्तुत शशि एव जल तुल्यो के साथ प्रस्तुत चारुदत्त और उसके चरित्र की प्रतीति होने स दो अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार हैं । (४) अतिशयोक्ति अलकार भी है । (५) पथ्यावक्त्र

छन्द है । लक्षण—'युजोच्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ।'

वीरक, पश्चादिह भवतो न्याय द्रक्ष्यामः । य एषोऽधिकरणद्वारेऽश्वस्तिष्ठति, तमेनमारुह्य गत्वा पुष्पकरण्डकोद्यानम्, दृश्यतामस्ति तत्र काचिद्विपन्ना स्त्री न वेति ।

वीरक ! यहाँ आपका न्याय बाद मे देखेंगे । जो यह न्यायालय के द्वार पर घोडा खडा है, उस पर चढ़कर पुष्पकरण्डक नामक उपवन मे जाकर देखिये कि वहाँ कोई मृतक स्त्री है अथवा नहीं ।

वीरक — यदार्य आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्त । प्रविश्य च ।) गतोऽस्मि तत्र । दृष्ट च यमा स्त्रीकलेवर श्वापदैर्विलुप्यमानम् । [ज अज्जो आणवेदि । गदो म्हि तहिं । दिट्ठ च मए इत्थिआकलेवर सावएहिं विलुप्पन्तम् ।

वीरक— जो आर्य की आज्ञा । [यह कह कर चला जाता है, पुन. प्रवेश करके] वहाँ गया और मैंने स्त्री के शरीर को हिंसक जन्तुओं द्वारा विनष्ट किये जाते हुए देखा ।

श्रेष्ठिकायस्थौ— कथ त्वयाज्ञात स्त्रीकलेवरमिति । [कध तुए आणिद इत्थिआकलेवरत्ति ।

सेठ और कायस्थ— कैसे तुमने जाना कि स्त्री का शरीर है ।

वीरक— सावशेषं केशहस्तपाणिपादैरुपलक्षित मया । [सावसेसेहिं केसहत्थ-पाणिपादेहिं उवलक्खिद मए ।]

वीरक— बचे हुए केशपाश, हाथ और पैरो से मैंने समझा ।

विवृति

(१) विपन्न =मरी हुई । (२) स्त्रीकलेवरम् =नारी का शरीर । (३) श्वापदै =हिंसक जन्तुओं से ।(४) विलुप्यमानम् =काटे जाते हुये । (५) उपलक्षितम् = जाना, समझा ।

अधिकरणिक — अहो, धिग्वैषम्य लोकव्यवहारस्य ।

न्यायाधीश अहो ! सासारिक व्यवहार की विषमता को धिक्कार है ।

यथा यथेद निपुण विचार्यते तथा तथा सकटमेव दृश्यते ।
अहो सुसन्ना व्यवहारनीतयो, मतिस्तु गौः पङ्कगतेव सीदति ॥२५॥

अन्वय – इदम्, यथा, यथा निपुणम् विचार्यते, तथा, तथा, सकटम्, एव, दृश्यते, अहो, व्यवहारनीतय सुसन्ना , (भवन्ति), तु, मति पङ्कगता, गौ इव, सीदति ॥२५॥

पदार्थ– निपुणम् = दक्षतापूर्वक, भली-भाँति, विचार्यते = विचारा जाता है, सकटम् = सकटपूर्ण, जटिल, व्यवहारनीतय = व्यवहार-सम्बन्धी प्रमाण (कानून सबूत), सुसन्ना = सुस्पष्ट अथवा पुष्टि, मति. = बुद्धि, पङ्कगता = कीचड़ मे फँसी हुई, गौ = गाय, सीदति = खिन्न हो रही है ।

अनुवाद— इस (अभियोग) पर जैसे-जैसे निपुणतापूर्वक विचार किया जाता

है वैसे-वैसे उलझा हुआ ही दिखलाई देता है। अहो! व्यवहार के नियम (The legal points or proofs) स्पष्ट हो रहे है, किन्तु मेरी बुद्धि कीचड मे फँसी हुई गौ के समान खिन्न हो रही है।

संस्कृत टीका—इदम् = वसन्तसेनाहननात्मक कुकर्म, यथा यथा = येन येन प्रकारेण निपुणम् = सम्यक्, विचार्यते = निर्णीयते, तथा तथा = तेन तेन प्रकारेण, संकटम् = दु खावस्थापन्नमेव, दृश्यते = अवलोक्यते, अहो ! इति खेद, व्यवहारनीतय = विवाद-नियमा, सुसन्ना = सम्यक् पुष्टा (भवन्ति), तु = किन्तु, (मम) मति = बुद्धि, पङ्कगता = पङ्कनिमग्ना, गौरिव = सौरभेयीव, सीदति = निमज्जति ॥

समास एव व्याकरण—(१) व्यवहारनीतय — व्यवहारस्य नीतय । पङ्क-गता = पङ्के गता । (२) विचार्यते—वि + चर् + णिच् + यक् + लट् । दृश्यते—दृश् + यक् + लट् । नीतय —नी + क्तिन् । सुसन्ना —सु + सद् + क्त + टाप् । मति — मन् + क्तिन् । सीदति—सद् + लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि (।) वसन्तसेना की माँ ने बताया कि वसन्तसेना चारुदत्त के यहाँ गई है। (॥) वीरक ने कहा कि चारुदत्त की गाडी मे बैठकर वसन्तसेना पुष्पकरण्डक उपवन म जा रही थी। (॥) मृतक स्त्री के चिन्ह उस उपवन म उपलब्ध है। इन घटनाओ से सिद्ध होता है कि चारुदत्त अपराधी है। इन प्रमाणो का देखकर न्यायाधीश की बुद्धि किंकर्तव्यविमूढ हो गई। (२) प्रस्तुत श्लोक मे कारणाभाव होने पर भी मति अवसाद रूप कार्योत्पत्ति होने से विभावनालङ्कार है। अथवा व्यवहार नीतियो कासुसन्नत्व रूप कारण होने पर मति अवसाद अभाव रूप कार्योत्पत्ति न होने से विशेषोक्ति है ? इस प्रकार दोनो का सन्देह होने से सन्देह सङ्करोऽलङ्कार है। (३) न्यायाधीश की बुद्धि की समता कीचड म फँसी हुई गाय के साथ बतलाने स श्रौतोपमालङ्कार है। (४) 'पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ' ईत्यमर । (५) वशस्थ छन्द है। लक्षण-'जतौ तु वशस्थमुदीरित जरौ ॥

चारुदत्त —(स्वगतम् ।)
चारुदत्त—[अपने आप]

तथैव पुष्प प्रथमे विकाशे समेत्य पातुं मधुपा पतन्ति ।
एव मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥२६॥

अन्वय—यथैव, प्रथमे, विकाशे, पुष्पम्, पातुम्, मधुपा, समेत्य पतन्ति, एवम्, मनुष्यस्य, विपत्तिकाले, छिद्रेषु, अनर्था, बहुलीभवन्ति ॥२६॥

पदार्थ—यथैव = जैसे, प्रथमे = पहले, विकाशे = खिलने मे, पुष्पम् = फूल

को, पातुम्=पाने के लिए, मधुपा=भौरे, समेत्य=इकट्ठा होकर, पतन्ति=गिरते है, विपत्तिकाले=आपत्ति के समय, छिद्रेषु=जरा सी सुराखो मे (जरा से दोषो मे), अनर्था=अनिष्ट, बहुलीभवन्ति=बहुत से हो जाते है।

अनुवाद—जिस प्रकार प्राथमिक विकसितावस्था मे पुष्प (रस) का पान के लिये भ्रमर एकत्रित होकर गिरते है उसी प्रकार मनुष्य की विपत्ति के समय भूल (दोष) पाकर अनिष्ट एकत्रित हो जाते हैं।

संस्कृत टीका—यथैव=येन प्रकारेणैव, प्रथमे=प्रारम्भिके, विकाशे=उन्मेषे, पुष्पम्=प्रसूनम् मकरन्दमित्यर्थं, पातुम्=आस्वादितुम्, मधुपा=भ्रमरा, समेत्य=एकत्रीभूय, पतन्ति=वेगेन आगच्छन्ति, एवम्=इत्यम्, मनुष्यस्य=मानवस्य, विपत्तिकाले=आपत्तिसमये, छिद्रेषु=रन्ध्रेषु दोषेष्वित्यर्थ, अनर्था=अनिष्टार्था, बहुलीभवन्ति=एकत्र जायन्ते।

समास एवं व्याकरण—(१) पातुम्=पा+तुमुन्। बहुली भवन्ति—अबहुला बहुला भवन्ति इति बहुल+च्वि, ईत्व, भू+लट्—अन्ति। समेत्य—सम्+इ+क्त्वा (ल्यप्)। विकाश—वि+काश+घञ्। पतन्ति—पत्+लट्।

विवृति

(१) 'द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालय' इत्यमर (२) 'छिद्र विवर-रन्ध्रवत्। गर्तं दोषे' इति हैम (३) प्रस्तुत पद्य मे अप्रस्तुतप्रशमालङ्कार है। (४) श्लोक के पूर्वार्द्ध मे श्रौतोपमालङ्कार है। (५) उपजाति छन्द है। लक्षण—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। अनन्तरोदीरित-लक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता॥"

अधिकरणिक—आर्यचारुदत्त, सत्यमभिधीयताम्।

न्यायाधीश—आर्य चारुदत्त! सत्य कहिये।

चारुदत्त—

चारुदत्त—

दुष्टात्मा परगुणमत्सरी मनुष्यो
रागान्धः परमिह हन्तुकामबुद्धिः।
किं यो यद्वदति मृषैव जातिदोषा—
त्तद्ग्राह्यं भवति, न तद्विचारणीयम्॥२७॥

अन्वय—इह, दुष्टात्मा, परगुणमत्सरी, रागान्ध, परम्, हन्तुकामबुद्धि, य, मनुष्य, जातिदोषात्, मृषा, एव, यत्, वदति, किम्, तत्, ग्राह्यम्, भवति, ? तत्, विचारणीयम्, न ? ॥२७॥

पदार्थ—दुष्टात्मा=दुष्ट बुद्धि अथवा स्वभाव वाला, परगुणमत्सरी=दूसरे के गुणों केप्रति ईर्ष्या करने वाला, रागान्ध=राग (काम, क्रोधादि) से अन्धा, परम्=दूसरे को, हन्तुकामबुद्धि=मारने की इच्छा से युक्त बुद्धि वाला, जातिदोषात्=जन्मगत दोष अथवा स्वाभाविक दुष्टता के कारण, मृषा=असत्य, ग्राह्यम्=मानने योग्य, विचारणीयम्=विचार करने के योग्य ॥

अनुवाद—इस (न्यायालय अथवा जगत्) मे दुष्टात्मा, दूसरे के गुणो से द्वेष करने वाला, राग से अन्धा, दूसरे को मारने की कामना-वाली बुद्धि से युक्त जो मनुष्य जन्म-दोष के कानून मिथ्या ही जो कुछ कहता है क्या वह स्वीकार्य होता है ? क्या वह विचारणीय नही होता ?

सस्कृत टीका—इह=अधिकरणे समारे वा, दुष्टात्मा = कलुषितबुद्धि, परगुणमत्सरी = अन्यगुणेर्ष्यालु, — रागान्ध = विषयाभिलाष विचार शून्य, परम्=अन्यम्, हन्तुकामबुद्धि=मारणेच्छामति, य = कश्चित् मनुष्य=नर, जातिदोषात्=दुष्कुलजन्मदोषात्, मृषैव=असत्यमेव, यत्, वदति=कथयति, किम् तत्=तस्य असत्यकथनम्, ग्राह्यम्=स्वीकार्यम् भवति=अस्ति ? तत्=तस्य मिथ्याभाषणम्, विचारणीयम्=विवेचनीयम् न—नही (भवति) ? ।

समास एव व्याकरण—(१) दुष्टात्मा—दुष्ट आत्मा यस्यस । परगुणमत्सरी—परस्य गुणे मत्सरी । रागान्ध—रागेण अन्ध । हन्तुकामबुद्धि—हन्तुम् कामो यस्या सा तादृशी बुद्धिर्यस्य स 'तुम् काममनसोरपि' इति मकारस्य लोप । (२) मत्सरी—मत्सर+इनि (अत इनि ठनौ) । राग—रञ्ज+घञ । बुद्धि—बुध्+क्तिन् । दोष—दुष्+घञ् । ग्राह्यम्—ग्रह + ण्यत् । विचारणीयम्—वि + चर्+णिच्+अनीयर् ।

विवृति

(१) 'आत्मा जीवे धृतौ बुद्धौ'। इत्यमर । (२) 'मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे' इत्यमर । (३) प्रस्तुत पद्य मे अप्रस्तुत दुर्जन सामान्य से प्रस्तुत दुर्जन विशेष शकार की प्रतीति होने से अप्रस्तुतप्रशसालङ्कार है। (४) प्रहर्षिणी छन्द है। लक्षण—'म्नाशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम् ।'

अपि च ।
और भी—

> योऽह लता कुसुमितामपि पुष्पहेतो—
> आकृष्य नैव कुसुमावचय करोमि ।
> सोऽह कथ भ्रमरपक्षरुचौ सुदीर्घे
> केशे प्रगृह्य रुदती प्रमदा निहन्मि ?॥२८॥

अन्वय—य, अहम्, कुसुमिताम्, लताम्, अपि, पुष्पहेतो, आकृष्य, पुष्पा-

वचयम्, न, करोमि, स, अहम, भ्रमरपक्षरुचौ, सुदीर्घे, केशे, प्रगृह्य, रुदतीम्, प्रमदाम्, कथम् निहन्मि ? ॥२८॥

पदार्थ -कुसुमिताम्=फूली हुई, पुष्पयुक्त, लताम्, =लता को, पुष्पहेतो = फूल के लिये, आकृष्य=खीच कर, पुष्पावचयम्=फूलों का चयन करना, भ्रमरपक्षरुचौ=भौरे की पाँख के समान कान्ति अथवा रङ्ग वाले, सुदीर्घे-लम्बे-लम्बे, केशे=बालो मे, प्रगृह्य=पकड कर रुदतीम्=रोती हुई, प्रमदाम्=स्त्री को, निहन्मि=मारता हूँ ?

अनुवाद —जो मैं पुष्पित लता को भी पुष्पो के लिये खीचकर पुष्पचयन नही करता, वह मैं (चारुदत्त) भ्रमर के पख के समान कान्ति वाले लम्बे केशो को पकड कर रोती हुई रमणी को कैसे मार सकता हूँ।

सस्कृत टीका —य परमकारुणिक इति भाव, अहम्=चारुदत्त, कुसुमिताम्=पुष्पिताम् लताम् = वल्लीम् अपि, पुष्पहेतो =कुसुमनिमित्तम्, आकृष्य=नमयित्वा पुष्पावचयम्=कुसुमावचयम्, न करोमि=न विदधामि, स = एतादृश दयालु इति भाव अहम्=अभियुक्तत्वेन उपस्थित चारुदत्त इत्यर्थ, भ्रमरपक्षरुचौ—मधुपच्छद कान्तौ, सुदीर्घे=सुविशाले, केशे=कुन्तले, प्रगृह्य=बलात् गृहीत्वा, रुदतीम्=क्रन्दन्तीम् प्रमदाम्=ललनाम् कथम्=केन प्रकारेण, निहन्मि= मारयामि।

समास एव व्याकरण —(१) पुष्पहेतो—पुष्पाणाम् हेतो । पुष्पावचयम्—पुष्पाणाम् अवचयम् । भ्रमरपक्षरुचौ—भ्रमरस्य पक्ष तस्य रुचि इव रुचि यस्मिन् तादृशे । (२) कुसुमिताम्—कुसुमानि अस्या सञ्जातानि इति कुसुमिता कुसुम+ इतच्+टाप् (आ) । पुष्पावचयम्—'हस्तादाने केरस्तेये' (पा० ३/३/४०)—इस सूत्र के अनुसार यहाँ अवचाय (अव+चि+घञ्) शब्द होना चाहिये, किन्तु इसी अर्थ मे 'अवचय' (अव+चि+अच्) शब्द का भी प्रयोग देखा जाता है और वैयाकरणो ने जिस किसी प्रकार स 'अवचय' शब्द की भी सिद्धि की है। आकृष्य—आ+ कृष्+क्त्वा (ल्यप्) । चयम्—चि+अच् । करोमि+कृ+लट् । प्रगृह्य—प्र+ गृह्+क्त्वा (ल्यप्) । रुदतीम्—रुद+शतृ+ङीप् । निहन्मि—नि+हन्+लट् ।

विवृति

(१) 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमर । (२) द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालय' इत्यमर । (३) 'गरुत्पक्षच्छदा पत्र पतत्र च तनूरुहम्' इत्यमर. । (४) चिकुर कुन्तला बाल कच केश शिरोरुह' इत्यमर । (५) प्रमदा मानिनी कान्ता ललना च नितम्बिनी' इत्यमर । (६) यहाँ वस्तुसम्बन्ध की असम्भावना होने

हुये खीचने से जैसे लता को पीडा होती है वैसे ही कामनियों को भी होगी, इस सादृश्य का बोध होने से निदर्शनालकार है। (७) 'किं निहन्मि' इस अर्थान्तर 'न निहन्मि' यह अर्थाविगम होने से अर्थापत्ति अलकार है। (८) 'भ्रमरपक्षरुचौ' इस अश मे लुप्तोपमालकार है। (९) इन अलकारो का परस्पर अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध होने से सङ्कारालङ्कार है। कुछ टीकाकारो के अनुसार काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (१०) कुसुम शब्द के स्थान पर पुष्प पद का प्रयोग होने से भग्नप्रक्रमता दोष है। तस्य हेतो इस पाठ मे उसका समाधान होता है। वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण— "उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग ॥" (१३) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि जो चारुदत्त निर्जीव लता पर भी दया करता है वह मजीव स्त्री को कैसे मार सकता है ? ॥

शकार :—हहो अधिकरण भोजका, किं यूय पक्षपातेन व्यवहार पश्यत येनाद्याप्येष हताशचारुदत्त आसने धार्यते। [हहो अधिअलणभोइआ, किं तुम्हे पक्ख-वादेण ववहाल पेक्खध, ज्जेण अज्ज वि एशे हदाश चालुदत्ते आशणे धालीअदि।]

शकार—हे न्यायाधिकारीगण ! क्या आपलोग पक्षपात मे व्यवहार (मुकदमा) देखते है ? जो अभी भी इस नीच चारुदत्त को आसन पर बैठा रखा है।

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, एव क्रियताम्।

न्यायाधीश—सौम्य शोधनक, ऐसा कर दो।

(शोधनकस्तथा करोति।)

[शोधनक वैसा करता है]

चारुदत्त—विचार्यताम्। भो अधिकृता, विचार्यताम्। इत्यासनादवतीर्य भूमावुपविशति।)

चारुदत्त—विचार कीजिये। हे अधिकारीगण ! विचार कीजिए। [यह कह आसन से उतर कर भूमि पर बैठ जाता है।]

शकार—(स्वगतम्। सहर्षं नर्तित्वा।) हीं, अनेन मया कृत पापमन्यस्य मस्तके निपतितम्। तद्यत्र चारुदत्त उपविशति तत्राहमुपविशामि। (तथा कृत्वा।) चारुदत्त, पश्य पश्य माम्। तद्भण भण मया मारितेति। [हीं, अर्णेण मए कडे पावे अण्णश्श मस्तके निवडिदे। ता जहिं चालुदत्ताके उवविशदि तहिं हग्गे उवविशामि। चालुदत्ता, पेक्ख पेक्ख मम्। ता भण भण मए मालिदे त्ति।]

शकार—[अपने आप, हर्षपूर्वक नाचकर] अहा ! इसने मेरे किये हुए पाप दूसरे के मस्तक पर गिरा दिये। तो जहाँ चारुदत्त बैठा था, वहाँ मैं बैठता हूँ। [वैसा करके] चारुदत्त देख, देख मुझे। तो कह दे, कि मैंने मारा है।

चारुदत्त—भो अधिकृता. । ('दुष्टात्मा–' (९/२७) इत्यादि पूर्वोक्तं पठति सनिश्वास स्वगतम् ।)

चारुदत्त–हे अधिकारीगण ! ['दुष्टात्मा'–(९/२७) इत्यादि पूर्वोक्त (श्लोक पढता है, लम्बी साँस लेकर अपने आप] ।

मैत्रेय भोः ! किमिदमद्य ममोपघातो
हा ब्राह्मणि ! द्विजकुले विमले प्रसूता ।
हा रोहसेन ! हि न पश्यसि मे विपत्ति,
मिथ्यैव नन्दसि परव्यसनेन नित्यम् ॥२९॥

अन्वय—भो मैत्रेय ! इदम्, किम् ? अद्य, मम, उपघात, (आगत) हा ब्राह्मणि ! विमले, द्विजकुले, प्रसूता । हा रोहसेन ! मे विपत्तिम्, न, हि, पश्यसि, मिथ्या, एव, परव्यसनेन नित्यम्, नन्दसि ॥२९॥

पदार्थ—भो = हे, मैत्रेय ! = सखे विदूषक ! उपघात = विनाश, विमले = निर्मल, द्विजकुले = ब्राह्मण कुल मे, प्रसूता = पैदा हुई, ब्राह्मणि ! = ब्राह्मण की स्त्री ? (अर्थात् मेरी स्त्री) हा रोहसेन ! = हाय बेटा रोहसेन !, परव्यसनेन = केवल (बच्चों की) क्रीडा से, नन्दसि = प्रसन्न हो रहे हो ।

अनुवाद—हे मैत्रेय ! यह क्या (हो गया) ? आज मेरा विनाश (उपस्थित हो गया है) । हाय ब्राह्मणी ! तुम पवित्र ब्राह्मण-वश मे उत्पन्न हुई हो । हाय रोहसेन ! तुम मेरी विपत्ति को नही देख रहे हो, व्यर्थ ही बालसुलभ क्रीडा से सदा आनन्दित होते रहते हो ।)

संस्कृत टीका–भो मैत्रेय ! = हे विदूषक ! इदम् = एतत्, किम् = किमुपस्थितमित्यर्थ, अद्य = अस्मिन् दिने, मम = मे, उपघात = विनाश (उपस्थित) । हा ब्राह्मणि ! = हे नार्ये पूते ! विमले = विशुद्धे, द्विजकुले = ब्राह्मणवंशे, प्रसूता = उत्पन्ना (असि), हा रोहसेन ! = हा पुत्र रोहसेन ! मे = मम, विपत्तिम् = आपत्तिम्, न हि पश्यसि = न हि अवलोकयसि, मिथ्यैव = वृथैव, परव्यसनेन = केवलबालक्रीडया, नित्यम् = सदा, नन्दसि = आनन्दमनुभवसि ॥

समास एवं व्याकरण—(१) द्विजकुले = द्विजस्य कुले । परव्यसनेन परेण व्यसनेन । (२) उपघात–उप + हन् + घञ् प्रसूता–प्र + सू + क्त + टाप् । विपत्तिम्–वि + पद् + क्तिन् । पश्यसि–दृश् + लट् । नन्दसि–नन्द् + लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे चारुदत्त अपने मित्र, स्त्री तथा पुत्र को सम्बोधित करते हुये खेद प्रकट करता है । इसके अन्तिम पद का अर्थ विवादास्पद है । (२) 'परव्य-

मनेन' शब्द का अर्थ कई प्रकार से किया गया है, परेण श्रेष्ठेन व्यसनेनापलक्षित, परेण केवलेन व्यसनेन बाल्यसुलभेन क्रीडनेन (J V) केवल बालक्रीडया (केवल बाल्यकाल के खेला से), पर दूर यद् व्यसन तेन (अर्थात् तुम आपत्ति से दूर हो, तुम नही जानते कि आपत्ति क्या है) व्यसन=क्रीडा, आपत्ति। (३) इस श्लोक मे जातादि पद अनुक्त होने पर भी 'उक्तावानन्द' ति सा०द० के इस लक्षण से परिहार होने से न्यूनपदत्व दोष नहीं है प्रत्युत वक्ता के विषादग्रस्त होने से गुण ही है। (४) खेद नामक विमर्श सन्धि का अङ्ग है। लक्षण—'मनश्चेष्टासमुत्पन्न श्रम खेद इति स्मृत'॥ सा०द०॥ (५) आक्रन्द नामक नाट्यालकार है। लक्षण—'आक्रन्द प्रलपित शुचा'॥ सा०द०॥ (६) वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण—"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौग ॥"

प्रेषितश्च मया तद्वार्तान्वेषणाय मैत्रेयो वसन्तसेनासकाश शकटिका–निमित्त च तस्य प्रदत्तान्यलकरणानि प्रत्यर्पयितुम्। तत्कथ चिरयत।

और मैंने उस (वसन्तसेना) का समाचार जानने के लिए तथा गाडी (बनाने) के निमित्त उस (रोहसेन) को (वसन्तसेना द्वारा) दिये गये आभूषणो को लौटाने के लिए मैत्रेय को वसन्तसेना के पास भेजा था, सो वह क्यो विलम्ब कर रहा है ?

(तत प्रविशति गृहीताभरणो विदूषक ।)

[तब आभूषण लिये हुये विदूषक प्रवेश करता है।]

विदूषक–प्रेषितोस्म्यार्यचारुदत्तेन वसन्तसेनासकाशम्, तत्रालकरणानि गृहीत्वा, यथा–'आर्यमैत्रेय, वसन्तसेनया वत्सो रोहसेन आत्मनोऽलकारेणालकृत्य जननीसकाश प्रेषित'। अस्या आभरण दातव्यम्, न पुनर्ग्रहीतव्यम्। तत्समर्पय' इति। तद्यावद्वसन्तसेनासकाशमेव गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च। आकाशे।) कथ भावरेभिल। भो भावरेभिल, किंनिमित्त त्वमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे। (आकर्ण्य।) किं भणसि–'प्रियवयस्यश्चारुदत्तोऽधिकरणमण्डप आहूत' इति। तत्र खल्वल्पेन कार्येण भवितव्यम्। (विचिन्त्य।) तत्पश्चाद्वसन्तसेनासकाश गमिष्यामि। अधिकरणमण्डप तावद्गमिष्यामि। (परिक्रम्यावलोक्य च।) अयमधिकरणमण्डप। तद्यावत्प्रविशामि। (प्रविश्य।) सुखमधिकरणभोजकानाम्। कुत्र मम प्रियवयस्य [पेसिदोह्मि अज्ज चारुदत्तेण वसन्तसेणासआसम्, तहिं अलकरणाइ गेण्हिअ जधा 'अज्जमित्तेअ वसन्तसेणाए वच्छो रोहसेणो अत्तणो अलकारेण अलकरिअ जणणीसआस पसिदो। इमस्स आहरण दादव्वम्, ण उण गेण्हिदव्वम्। ता समप्पेहि' त्ति। ता जाव वसन्तसेणासआस ज्जेव गच्छामि। कध भावरेभिलो। भो भावरेभिल, किंणिमित्त तुम उव्विग्गो उव्विग्गो विअ लक्खीअसि। किं भणासि–'पिअवअस्सो चारुदत्तो अधिअरणमण्डवे

सद्दाइदो' त्ति । ता ण हुअप्पेण कज्जेण होदव्वम् । ता पच्छा वसन्तसेणासआस गमिस्सम् । अधिअरणमण्डव दाव गमिस्सम् । इद अधिअरणमण्डवम् । ता जाव पविसामि। सुह अधिअरणभोइआणम् कहिं मम पिअवअस्सो ।]

विदूषक–मुझे आर्य चारुदत्त के द्वारा आभूषणो को लेकर वहाँ (वसन्तसेना के घर) वसन्तसेना के पास भेजा गया है (और कहा गया है–) "आर्य मैत्रेय ! वसन्तसेना ने वत्स रोहसेन को अपने आभूषणो से अलकृत करके माता के पास भेजा है। (किन्तु) इस (वसन्तसेना) के आभूषण दे देने चाहिए, लेने नही चाहिए, अत (उसे) लौटा दो।' इसलिये अब मैं वसन्तसेना के पास जाता हूँ। [घूमकर और देखकर आकाश की ओर (लक्ष्य करके)] क्या विद्वान् रेभिल है ? हे विद्वान् रेभिल ! किस लिए तुम उद्विग्न उद्विग्न से दिखाई पड रहे हो ? [सुनकर] क्या कहते हो ? 'प्रियमित्र चारुदत्त न्यायालय मे बुलाये गये है।' तो निश्चित ही कोई छोटा कार्य नही होगा। [सोचकर] ता पीछे वसन्तसेना के पास जाऊँगा, अभी न्यायालय मे जाऊँगा [घूमकर और देखकर] यह न्यायालय है तो तब तक प्रवेश करता हूँ। [प्रवेश करके] न्यायाधीशो का कल्याण हो। कहाँ है मेरा प्रियमित्र ?

अधिकरणिक–नन्वेष तिष्ठति ।

न्यायाधीश–यह बैठा है ।

विदूषक–वयस्य स्वस्ति ते । [वअस्स, सोत्थि दे ।]

विदूषक–मित्र ! तुम्हारा कल्याण हो ।

चारुदत्त–भविष्यति ।

चारुदत्त–होगा ।

विदूषक–अपि क्षेम ते । [अवि क्खेम दे ।]

विदूषक–तुम्हारी कुशल तो है ?

चारुदत्त–एतदपि भविष्यति ।

चारुदत्त–यह भी होगी ।

विदूषक–भो वयस्य, किंनिमित्तमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे । कुतो वाहूत । [भो वअस्स, किंणिमित्त उव्विग्गो उव्विग्गो विअ लक्खीअसि । कुदो वा सद्दाइदो ।]

विदूषक–हे मित्र ! किस कारण उद्विग्न-उद्विग्न से दिखाई दे रहे हो ? अथवा (यहाँ) किसलिए बुलाये गये हो ?

विवृति

(१) तद्वार्तान्वेषणाय–उस (वसन्तसेना) के समाचार का पता लगाने के

लिये । (२) वसन्तसेनामकाशम्—वसन्तसेना के पास । (३) शकटिकानिमित्तम् = छोटी गाड़ी बनाने के लिये । (४) तस्य = रोहसेन को । (५) प्रत्यर्पयितुम् = लौटाने के लिये । (६) चिरयते = देर कर रहा है । चिर करोतीति–चिर + णिच् (नामधातु) + लट्–ते । (७) गृहीताभरण.= आभूषणों को लिये हुये । (८) अस्याः = इसको (अर्थात् वसन्तसेना को) । (९) दातव्यम् = देना चाहिये । (१०) आकाशे = आकाश में अर्थात् आकाश की ओर मुख करके । (११) रेभिल.—यह चारुदत्त का गायक मित्र है । (१२) उद्विग्न = चिन्तित ॥

चारुदत्त.—वयस्य,

चारुदत्त—मित्र !

मया खलु नृशसेन परलोकमजानता ।
स्त्री रतिर्वाविशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति ॥ ३० ॥

अन्वय—परलोकम्, अजानता, नृशसेन, मया, खलु, स्त्री, वा, अविशेषेण, रति, शेषम्, एष, अभिधास्यति ॥ ३० ॥

पदार्थ.—परलोकम् = परलोक को अर्थात् पुण्य करने से उत्तम लोक की प्राप्ति होती है और पाप करने से नरक की—इस बात को, अजानता = न जानने वाले, नृशसेन = क्रूर, अविशेषेण = बिना भेद के अर्थात् साक्षात्, रति = काम–पत्नी, अभिधास्यति = बतलायेगा ॥

अनुवाद—परलोक से अनभिज्ञ, क्रूर मैंने स्त्री अथवा साक्षात् (कामपत्नी) रति को……शेष (अर्थात् मार दी) यह (शकार) कहेगा ॥

सस्कृत टीका—परलोकम् = स्वर्गादिलोकम्, अजानता = अविदता, नृशसेन = क्रूरेण, मया = चारुदत्तेन, खलु = निश्चितम्, स्त्री = सामान्यस्त्री, व = अथवा, अविशेषेण = अभेदेन, साक्षादित्यर्थ, रति = कामपत्नी, शेषम् = वक्तव्यावशिष्टम्, एष = शकार, अभिधास्यति = कथयिष्यति ॥

समास एवं व्याकरण—(१) नृशसेन–नॄन् शसति हिनस्तीति विग्रहे 'कर्मण्यण्' इत्यण् । शसु हिंसायाम् (भ्वा० प० से०) । (२) अजानता–नञ् + ज्ञा + (लट्) + शतृ । अजानन् । अभिधास्यति–अभि + धा + लृट् । शेषम्–शिष् + अच् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे स्त्री हत्या रूप अनिष्टार्थ का शेप इस पद से सूचित 'मारिता' इस पद से विधि के अभ्यास होने से आक्षेपालङ्कार का दूसरा भेद है । 'मया ध्रुव न मारिता' यह विशेष प्रतिपत्ति यहाँ होती है । 'वस्तुनो वक्तुमिष्टस्य विशेषप्रतिपत्तये' । इत्युपक्रम्य = 'अनिष्टस्य तयार्थस्य विध्याभास. परो मत.' ॥ सा० द० ॥ (२) भेद होने पर भी वसन्तसेना का कामपत्नी रति से व्यपदेश करने

मे अतिशयोक्ति अलङ्कार है। (३) शेषमेष' इस अंश में छेकानुप्रास एवं उत्तरार्द्ध में वृत्यनुप्रास होने से परस्पर निरपेक्ष रूप से इन दोनों की संसृष्टि है। (४) 'नाहं नृशंस, नाहं परलोकानभिज्ञ, न मया वसन्तसेना मारिता' इस अभिप्राय का भङ्ग्यन्तर (विरुद्ध लक्षण) से कथन करने के कारण मनोरथ नामक नाट्यलक्षण है। मनोरथः स्त्वभिप्रायस्योक्तिर्भङ्ग्यन्तरेण यत्।' सा० द० ॥ (५) प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—पथ्यावक्त्र। लक्षण—"युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ॥"

विदूषक—किं किम्। [किं किम्।]

विदूषक—क्या-क्या ?

चारुदत्त—(कर्णे) एवमेवम्।

चारुदत्त—[कान में] इस प्रकार, इस प्रकार।

विदूषक—क एवं भणति। [को एव्वं भणादि।]

विदूषक—कौन ऐसा कहता है ?

चारुदत्त—(संज्ञया शकारं दर्शयति।) नन्वेष तपस्वी हेतुभूतः कृतान्तो मां व्याहरति।

चारुदत्त—[संकेत से शकार को दिखाता है] यह बेचारा निमित्तमात्र बना हुआ (है वस्तुतः) यमराज (ही) मुझे कह रहा है।

विदूषक—(जनान्तिकम्।) एवं किमर्थं न भण्यते, गृहं गतेति। [एव्वं कीस ण भणीअदि गेहं गदे त्ति।]

विदूषक—[हाथ की ओट में] ऐसा क्यों नहीं कह देते कि—घर गई।

चारुदत्त—उच्यमानमप्यवस्थादोषान्न गृह्यते।

चारुदत्त—कहा गया भी अवस्था (दरिद्रावस्था) के दोष से नहीं माना गया।

विदूषक—भो भो आर्याः, येन तावत्पुरस्थापनविहारारामदेवालयतडागकूपयूपैरलङ्कृता नगर्युज्जयिनी सोऽनीशोऽर्थकल्यवर्तकारणादीदृशमकार्यमनुतिष्ठतीति। (सक्रोधम्।) अरे रे कुलटापुत्र राजश्यालसंस्थानक उच्छृङ्खलकृतजनदोषभण्ड बहुसुवर्णमण्डितमर्कटक, भण भण ममाग्रतः, यः इदानीं मम प्रियवयस्यः कुसुमितां माधवीलतामप्याकृष्य कुसुमावचयं न करोति कदाचिदाकृष्टतया पल्लवच्छेदो भवतीति, स कथमीदृशमकार्यमुभयलोकविरुद्धं करोति। तिष्ठ रे कुट्टिनीपुत्र, तिष्ठ। यावदेतेन तव हृदयकुटिलेन दण्डकाष्ठेन मस्तकं ते शतखण्डं करोमि। [भो भो अज्जा, जेण दाव पुरट्ठावणविहारारामदेउलतडागकूवजूवेहिं अलंकिदा णअरी उज्जइणी, सो अणीसो अत्थकल्लवत्तकारणादो एरिसं अकज्जं अणुचिट्ठदि त्ति। अरे रे काणेलीसुदा राअस्सालसंठाणआ उस्सुङ्खला किदजणदोसभण्डआ बहुसुवण्णमण्डिदमक्कडआ, भण भण मम अग्गदो, जो दाणिं मम पिअवअस्सो कुसुमिदं माधवीलदं पि आकड्ढिअ कुसुमावचअं ण करेदि कदा वि आअड्ढिदाए पल्लवच्छेदो भोदि त्ति, सो कथं एरिसं अकज्जं उहअला-

अविरुद्ध करेदि । चिट्ठ रे वुड्ढणिपुत्ता, चिट्ठ । जाव एदिणा तव हिअअकुडिलेण दण्डअट्ठेण मत्थअं दे सदखण्ड करेमि ।]

विदूषक—हे हे आर्यो ! जिसने उपनगर-निर्माण, बौद्धाश्रम, उपवन, देव-मन्दिर, तालाव, कूप तथा यज्ञस्तम्भो के द्वारा उज्जयिनी नगरी को अलङ्कृत किया है, क्या वह निर्धन होने पर कलेवा जैसे तुच्छ धन के लिए ऐसा (स्त्रीहत्यारूप) गर्हित कार्य करेगा ? [क्रोधपूर्वक] अरे कुलट के पुत्र ! राजा के साले, मस्थानक, उच्छृङ्खल, लोगो पर दोष मढने वाला, वहुत-से सोने से विभूषित वन्दर ! मेरे आगे बोल, बोल । इस समय जो मेरा प्रिय मित्र पुष्पयुक्त माधवीलता को भी खीचकर अथवा झुकाकर पुष्प चयन नही करता कि कही खीचने पर (इसका) पल्लव न टूट जाय, वह ऐसा दोनो लोकों के विरुद्ध कुकृत्य कैसे करेगा ? ठहर, रे कुलटा के पुत्र ! ठहर । जब तक तेरे हृदय के समान कुटिल इस काष्ठ-दण्ड से तेरे मस्तक के सौ टुकड़े करता हूँ ।

शकार—(सक्रोधम् ।) शृण्वन्तु शृण्वन्त्वार्यमिश्रा चारुदत्तेन सह मम विवादो व्यवहारो वा । तत्किमर्थमेष काकपदशीर्षमस्तको मम शिरः शतखण्ड करोति । मा तावत् । रे दास्याः पुत्र दुष्ट वटुक । [शुणन्तु शुणन्तु अज्जमिश्शा । चालुदत्तकेण शह मम विवादे ववहाले वा । ता कीश एशे काकपदशीशमस्तका मए शिले शदखण्डे क्लेदि । मा दाव ले दाशीएपुत्ता, दुट्ठवडुका ।

शकार—[क्रोधपूर्वक] महानुभावो ! सुनिए, सुनिए । चारुदत्त के साथ मेरा विवाद अथवा व्यवहार है । तव क्यो यह कौए के समान सिर-माथे वाला मेरे सिर के सौ टुकडे करता है ? ऐसा मत कर रे दासी के पुत्र दुष्ट ब्राह्मण !

(विदूषको दण्डकाष्ठमुद्यम्य पूर्वोक्तं पठति । शकारः सक्रोधमुत्थाय ताडयति । विदूषकः प्रतीपं ताडयति । अन्योन्यं ताडतः । विदूषकस्य कक्षदेशादाभरणानि पतन्ति ।)

[विदूषक काष्ठ-दण्ड को उठाकर पूर्वोक्त पढता है, शकार क्रोधपूर्वक उठकर मारता है, विदूषक उल्टा मारता है, परस्पर मार-पीट करते विदूषक की वगल से आभूषण गिरते हैं ।]

शकार—(तानि गृहीत्वा दृष्ट्वा ससाध्वसम् ।) पश्यन्तु पश्यन्त्वार्याः । एते खलु तस्यास्तपास्विन्या अलकाराः । (चारुदत्तमुद्दिश्य ।) अस्यार्थं कल्यवर्तस्य कारणा-देषा मारिता व्यापादिता च । [पेक्खन्तु पेक्खन्तु अज्जा । एदे क्खु ताए तवस्सिणीए केलका अलकाला । इमश्श अत्थकल्लवत्तश्श कालणादो एशा मालिदा वावादिदा अ ।]

शकार—[उन्हें लेकर, देखकर, भय के साथ] आर्यो ! देखिये, देखिये । ये उसी बेचारी के आभूषण हैं । [चारुदत्त को लक्ष्य करके] इस कलेवे जैसे (तुच्छ) धन के निमित्त यह (वसन्तसेना) मारी गई और विनष्ट की गई ।

(अधिकृता सर्वेऽधोमुखा स्थिता ।)
[सभी अधिकारी नीचे मुख करके स्थित होते है]

विवृति

(१) तपस्वी=बेचारा। (२) हेतुभूत=निमित्तमात्र बना हुआ। (३) कृतान्त=दैव अथवा यमराज। 'कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशल कर्मसु' इत्यमर। (४) अवस्थादोषात्=अवस्था के दोष से अर्थात् दरिद्रता के कारण। (५) गृह्यते=ग्रहण किया जाता माना जाता। (६) पुरस्थापन=पुरो अथवा उपनगरो का निर्माण। (७) विहार=बौद्धो का आश्रम अथवा मठ। (८) आराम बगीचा। (९) देवालय=देवताओ का मन्दिर। (१०) तडाग=जलाशय, तालाब। (११) कूप=कुआँ। (१२)यूप्=यज्ञ-स्तम्भ। (१३) अनीश=असमर्थ अर्थात्निर्धन। (१४) अनुतिष्ठति=करेगा ? (१५) कुलटा पुत्र=छिनार के बच्चे। पुंश्चली चर्षिणी बन्धकयसती कुल्टेश्वरी इत्यमर। (१६) उच्छृङ्खलक[1] = उदण्ड (१७) कृतजनदोषमाण्ड [1] = लोगो पर दोष मढने वाले। (१८) उभयलोक विरुद्धम्= इहलोक और परलाक दोनो के विरुद्ध। (१९) कुट्टिनीपुत्र।=कुटनी के बच्चे। 'कुट्टनी शम्मली समे' इत्यमर। (२०) तव=तुम्हारे। (२१) हृदय कुटिलेन=हृदय के समान टेढे। (२२) काकपदशीपमस्तक =कौवा के पैर के समान सिर-माथे वाला। (२३) शतखण्डम्=सौ टुकडे। (२४) प्रतीपम्=बदले में। (२५) कक्षादशात्=काँख से। (२६) आभरणानि=आभूषण। (२७) पतन्ति= गिरते हैं। (२८) ससाध्वसम्=भय के साथ। 'भीतिर्भी साध्वस भयम्' इत्यमर। (२९) तपस्विन्या =बेचारी के (वसन्तसेना के)। (३०) मारिता व्यापादिता= मारी गई, नष्ट की गई। शकारोक्ति होने स पुनरुक्ति क्षम्य है। (३१) अधोमुखा = नीचे की ओर मुँह किये हुए।

चारुदत्त-(जनान्तिकम् ।)

चारुदत्त-[हाथ की आट म]

अयमेवविधे काले दृष्टो भूषणविस्तर ।
अस्माक भाग्यवैषम्यात्पतित पातयिष्यति ॥३१॥

अन्वय-एव विधे, काले, अस्माकम्, भाग्य-वैषम्यात्, पतित, (तथा न्यायाधिकारिभि), दृष्ट, अयम्, भूषणविस्तर, पातयिष्यति ॥३१॥

पदार्थ -एवविधे=एसे, काले=समय म, भाग्य-वैषम्यात्=भाग्य के दोष स, भूषणविस्तर.=आभूषणो का ढेर अथवा समूह, पातयिष्यति=गिरा देगा।

अनुवाद -एस समय हमारे प्रारब्ध क दोष स गिरा हुआ (तथा न्यायाधीशो द्वारा) देखा गया यह अलकार समूह (मुझे विपत्ति म) गिरा देगा।

संस्कृत टीका-एवविध=एतादृशे, काल=समय, अस्माकम्=मम, भाग्य-

वैषम्यात्=प्रारब्धप्रातिकूल्यात्, पतित=तव कक्षात् परिभ्रष्ट (तया न्यायाधिकारिमि) दृष्ट=अवलोकित, अयम=एष, भूषणविस्तर=अलङ्कारराशि, पातयिष्यति=(महाविपत्तिगर्ते मा) भ्रंशयिष्यति ॥

समास एव व्याकरण-(१) भाग्य-वैषम्यात्-भाग्यस्य वैषम्यात् । भूषणविस्तर-भूषणानाम् विस्तर । (२) विस्तर-वि+स्तृ+अप् । फैलाव के अर्थ म विस्तार होता है-वि+स्तृ+घञ् । वृक्ष और आसन अर्थ में 'विष्टर' होता है-'वृक्षासनयोर्विष्टर' (८-३-९३) । वैषम्य-विषम+ष्यञ् । पतित-पत्+क्त । दृष्ट-दृश्+क्त । पातयिष्यति-पत्+णिच्+लृट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि मैत्रेय के पास से वसन्तसेना के आभूषणों का मिलना तो इस बात का पुष्ट प्रमाण था कि चारुदत्त ने वसन्तसेना को मारा है । अत इससे चारुदत्त का विपत्ति मे पडना अवश्यभावी था । (२) प्रस्तुत श्लोक मे पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण-'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।'

विदूषक—भो, किमर्थ भूतार्थो न निवेद्यते । [भो, कीस भूदत्थ ण णिवेदीअदि ।]

विदूषक—जी, यथार्थ बात क्यो नही कह दी जाती ?

चारुदत्त—वयस्य,

चारुदत्त–मित्र !

दुर्बल नृपतेश्चक्षुर्नैतत्तत्व निरीक्षते ।

केवल वदतो दैन्यमश्लाघ्य मरण भवेत् ॥३२॥

अन्वय—नृपते, चक्षु, दुर्बलम्, एतत्, तत्वम्, न, निरीक्षते, (अत), केवलम्, दैन्यम्, वदत, (मम), अश्लाघ्यम्, मरणम्, भवेत् ॥३२॥

पदार्थ—नृपते=राजा (राजा के अधिकारियो) की चक्षु=आँख, तत्वम्=वास्तविकता को, निरीक्षते=देखता है, समझता है, दैन्यम्=दीनता अथवा कातरता पूर्वक, वदत=वचन कहने वाले, अश्लाघ्यम्=निन्दनीय, अप्रशसनीय ॥

अनुवाद—राजा (अथवा उसके प्रतिनिधि न्यायाधीश) की दृष्टि दुर्बल होती है । वह तात्विक बात नही देखती । (अत) केवल दीनतापूर्वक कहते हुये मेरा गर्हित मरण ही होगा ।

सस्कृत टीका—नृपते=राज्ञ, चक्षु=नेत्रम्, दुर्बलम्=बलहीनम्, सत्य दृष्टुमसमर्थमित्यर्थ (भवति), एतत्=राज्ञ चक्षु, तत्वम्=सत्यमर्थम्, न निरीक्षते=नावलोकयति, (अत) केवलम्=एकमात्रम्=दैन्यम्=कातर्यम् वदत=

कथयत (मम) अश्लाघ्यम् =अतिगर्हितम्, मरणम् =मृत्युः, भवेत् =सम्पद्येत ।

समास एवं व्याकरण–(१) दैन्यम्–दीन+अण् अथवा ष्यञ् । (२) निरीक्षते–निर्+ईक्ष्+लट् । अश्लाघ्यम्–नञ्+श्लाघ्+ण्यत् ।

विवृति

(१) 'मरणं वरमार्याणां न च दैन्यप्रकाशनम् ।' (२) यदि मैं किसी प्रकार की सफाई देता हूँ तो वह असत्य कल्पना ही समझी जायेगी, क्योंकि उसको पुष्ट करने के लिये वसन्तसेना तो जीवित नहीं है । इससे न्यायाधीशों का मन मेरी ओर से अधिक बिगड़ जायेगा और मेरी मृत्यु अपमानपूर्ण होगी । यहाँ चारुदत्त ने फिर सफाई का अवसर खो दिया । (३) प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण–'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ।'

अधिकरणिक—कष्टं भो, कष्टम् ।

न्यायाधीश–कष्ट है अरे ! कष्ट है—

> अङ्गारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः ।
>
> ग्रहोऽयमपरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्थितः ॥३३॥

अन्वय—अङ्गारकविरुद्धस्य, प्रक्षीणस्य, बृहस्पतेः, पार्श्वे, धूमकेतुः, इव, अयम्, अपरः, ग्रहः, उत्थितः ॥३३॥

पदार्थ–अङ्गारकविरुद्धस्य=मङ्गल जिसके विरुद्ध हैं ऐसे, प्रक्षीणस्य=दुर्बल, नीच स्थान में स्थित, पार्श्वे=समीप, धूमकेतु =पुच्छल तारा, उत्थित =प्रकट हुआ है ।

अनुवाद—विरुद्ध मङ्गल ग्रह वाले क्षीण बृहस्पति ग्रह के समीप धूमकेतु के समान यह (अलङ्कारपतन रूपी) दूसरा ग्रह उपस्थित हुआ है ।

संस्कृत टीका—अङ्गारकविरुद्धस्य=मङ्गलविपरीतस्य, प्रक्षीणस्य= नीचस्थानस्थतया दुर्बलस्य, बृहस्पतेः – जीवस्य, पार्श्वे समीपे, धूमकेतुः उत्पातग्रहः, इव= यथा, अयम् = विदूषककक्षप्रदेशादलङ्कारभ्रंशः, अपरः= अन्यः, ग्रहः =विरुद्धग्रहः इत्यर्थः, उत्थितः =उद्गतः ।

समास एवं व्याकरण– (१) अङ्गारकविरुद्धस्य–अङ्गारकः विरुद्धः यस्य तादृशस्य । (२)– विरुद्धस्य–वि+रुध्+क्त । प्रक्षीणस्य–प्र+क्षि+क्त (दीर्घ) । उत्थितः – उद्+स्था+क्त ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि जैसे बृहस्पति स्वयं क्षीण (नीच स्थान में स्थित) हो, मङ्गल से उसका विरोध हो और उसके समीप ही धूमकेतु का उदय हो गया हो तो बृहस्पति का अनिष्ट निश्चित ही होता है, उसी प्रकार बृहस्पति के समान

चारुदत्त का मगल के समान शकार से विरोध है, दरिद्रता उस चारुदत्त की क्षीणता है और विदूषक की कांख से आभूषणो का गिरना धूमकेतु के उदय के समान हो गया है अतः चारुदत्त का अनिष्ट अवश्यम्भावी है। (२) 'बृहस्पति सुराचार्यो गीर्पतिर्धिषणो गुरु । जीव आङ्गिरसो वाचस्पतिश्चित्र शिखण्डिज' इत्यमर । (३) 'धूमकेतु स्मृतो वह्नावुत्पातप्रभेदयोः' इति विश्व । (४) ग्रहो की उच्च-नीच स्थान-स्थिति इस प्रकार बताई गई है– 'मेषो वृषस्तथा नक्र कन्याकर्कझषास्तुला। सूर्यादीना क्रमादेते कथिता उच्चराशय । सूर्यादीना जगुर्नीच स्वोच्चमाद्यच्च सप्तमम् ।' (५) प्राचीन खगोल शास्त्रियों के अनुसार मङ्गल को वृहस्पति का शत्रु बतलाया गया है। वराहमिहिर आदि ने मङ्गल को वृहस्पति का शत्रु नहीं माना । (६)धूमकेतु के उदय से लोक में उपद्रव होता है। जैसा कि कविकुलगुरु कालिदास ने भी लिखा है— 'उपप्लवाय लोकाना धूमकेतुरिवोत्थितः ।' (७) प्रस्तुत श्लोक म अप्रस्तुत सम रूप बृहस्पति को प्रस्तुत समरूप चारुदत्त की प्रतीति होने से अप्रस्तुत प्रशसालङ्कार है। (८) 'धूमकेतुरिव' इस अश म श्रौतोपमालङ्कार होने से परस्पर दोनो का सङ्कर है। (९) पथ्यावक्त्र छन्द है। (१०) 'उत्तिष्ठति यदा भीमो धूमकेतुर्नभ स्थले । तदा विनश्यति क्षिप्र जगदेतच्चराचरम् ।' (गर्गसहिता) '

श्रेष्ठिकायस्थौ–(विलोक्य वसन्तसेनामातरमुद्दिश्य ।) अवहिता तावदार्येद सुवर्णभाण्डमवलोकयतु तदेवेद न वेति। [अवहिदा दाव अज्ज एद सुवण्णभण्डअ अवलोएदु, सो ज्जेव एसो ण वेत्ति ।]

सेठ और कायस्थ– [देखकर, वसन्तसेना की माता का लक्ष्य करके] आर्या सावधान होकर इस सुवर्णपात्र को देखें कि यह वही है अथवा नहीं ।

वृद्धा– (अवलोक्य) सदृशमेतत्, न पुनस्तत् । [सरिसा एसो, ण उण सो ।]

वृद्धा– [देखकर] यह समान तो है, किन्तु वह नही है ।

शकार – आ वृद्धकुट्टनि, अक्षिभ्या मन्त्रित वाचा मूकितम् । [आ वुड्ढिकुट्टणि, अक्खीहिं मन्तिद वाआए मूकिदम्]

शकार– अच्छा, बूढी कुटनी ! आँखो से कह दिया और वाणी से चुप हो गई ।

वृद्धा– हताश, अपेहि । [हदास, अवहि]

वृद्धा– निगोड़े ! दूर हटो ।

श्रेष्ठिकायस्थौ– अप्रमत्त कथय, तदेवैतन्न वेति ।]अप्पमत्त कवहि, साज्जेव एसो ण वेत्ति ।]

सेठ और कायस्थ– सावधानी से कहो कि यह वही है अथवा नही ।

वृद्धा– आर्य, शिल्पिकुशलतयावबध्नाति दृष्टिम् । न पुनस्तत् । [अज्ज, सिप्पिकुसलदाए ओवन्धेदि दिट्ठिम्। [ण उण सा ।]

वृद्धा– आर्य ! शिल्पकार की कुशलता से यह (मेरी) दृष्टि को बाँध रहा है, किन्तु वह नहीं है।

अधिकरणिक – भद्रे अपि जानास्येतान्याभरणानि ।

न्यायाधीश– भद्रे ! क्या इन आभूषणों को पहचानती हो ?

वृद्धा— ननु भणामि न खलु न खल्वनभिज्ञात । अथवा कदापि शिल्पिना घटितो भवेत् । [ण भणामि, ण हु ण हु अणभिजाणिदो । अह वा कदा वि सिप्पिणा गडिदो भवे ।]

वृद्धा– कहती तो हूँ कि नहीं, यह अपरिचित नहीं है अथवा सम्भवतः शिल्पकार ने (वैसा ही बना) दिया हो।

विवृत्ति

(१) अवहिता=सावधान। अव+धा+क्त, धा इत्यस्य हि आदेश । (२) तदेव=वही (वसन्तसेना का) । (३) तत्=वह अर्थात् वसन्तसेना का। (४) मन्त्रितम्=कह दिया। (५) वाचा=वाणी से (६) मूकितम्=मौन रहा गया। (७) अप्रमत्तम्=सावधानी के साथ। (८) शिल्पिकुशलतया=कारीगर की बारीकी के कारण। (९) अवबध्नाति=आकृष्ट कर रहा है, बाँध रहा है। (१०) शिल्पिन= कारीगर के द्वारा। (११) घटित=बनाया गया।

अधिकरणिक – पश्य श्रेष्ठिन्,

न्यायाधीश– सेठ जी देखो—

> वस्त्वन्तराणि सदृशानि भवन्ति नून
> रूपस्य भूषणगुणस्य च कृत्रिमस्य।
> दृष्ट्वा क्रियामनुकरोति हि शिल्पिवर्गः
> सादृश्यमेव कृतहस्ततया च दृष्टम् ॥३४॥

अन्वय — नूनम्, कृतिमस्य, रूपस्य, भूषणगुणस्य, च, सदृशानि, वस्त्वन्तराणि, भवन्ति, हि, शिल्पिवर्ग दृष्ट्वा क्रियाम्, अनुकरोति, कृतहस्ततया, एव, च, सादृश्यम्, दृष्टम् ॥३४॥

पदार्थ —नूनम्=निश्चय ही, कृत्रिमस्य=बनावटी, रूपस्य=आकार के, सदृशानि=तुल्य, वस्त्वन्तराणि=दूसरी वस्तुएँ, शिल्पिवर्ग =कारीगर वर्ग, अनुकरोति=नकल करता है, कृतहस्ततया=हाथ की सफाई के कारण, सादृश्यम्=समानता, दृष्टम्=देखी जाती है।

अनुवाद– निश्चय ही कृत्रिम रूप और आभूषण के गुण (सौन्दर्य आदि) के के समान अन्य वस्तुएं हो जाती हैं, क्योंकि शिल्पकार जन (किसी वस्तु को) देखकर रचना का अनुकरण करता है। (शिल्पकार के) हस्तकौशल के कारण ही (दो वस्तुओं

म) समानता दर्शाई गई है।

संस्कृत टीका– नूनम् =निश्चितम्, कृत्रिमस्य=रचितस्य, रूपस्य=आकृतेः, भूषणगुणस्य=सौन्दर्याधायकाकारप्रकारादेः, च, सदृशानि= तुल्यानि, वस्त्वन्तराणि= अन्यानि वस्तूनि, भवन्ति=जायन्ते, हि=यतः शिल्पिवर्गः=आभूषणनिर्मातृणाम् समूहः, दृष्ट्वा=अवलोक्य, क्रियाम्=तत्कृतिम्, अनुकरोति=तदनुरूपेण वस्त्वन्तरं निर्माति, कृतहस्तया=हस्तकौशलेन, एव, च, सादृश्यम्=साम्यम् दृष्टम्= अवलोकितम् ॥

समास एवं व्याकरण– १ भूषणगुणस्य–भूषणानाम् गुणस्य। वस्त्वन्तराणि– अन्यानि वस्तूनि इति वस्त्वन्तराणि (मयूरव्यंसकादित्वात् समासः)। २ कृत्रिमस्य– कृ+क्त्रि 'ड्वितः क्त्रिः' इत्यनेन, 'क्त्रेर्मम्नित्यम्' इत्यनेन मप् आगमः। कृतहस्ततया– कृतहस्तस्य भावः कृतहस्तता कृतहस्त+तल्+टाप्, तया। (३) भवन्ति–भू+ लट्। दृष्ट्वा– दृश्+क्त्वा। क्रियाम्– कृ+श (रिङ्, इयङादेश)। दृष्टम्– दृश्+क्त। सादृश्यम्– सदृश+ष्यञ्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में यह सूचित हुआ है कि यह आभूषणों का समूह वसन्त-सेना का है दूसरे का नहीं, यह कहना कठिन है क्योंकि कलाकार की कुशलता से आभूषणों में परस्पर भेद होने पर भी अभेद दिखाई देता है। साथ ही, विशिष्ट कुशल शिल्पी से एक आभूषण को देखकर वैसे ही आभूषण का निर्माण भी प्रायः संसार में देखा जाता है। यह भी सम्भावना हो सकती है।(२)प्रस्तुत पद्य में काव्य-लिङ्ग वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण–'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।'

श्रेष्ठिकायस्थौ– आर्यचारुदत्तीयान्येतानि। [अज्जचारुदत्तस्स केरकाइ एदाइं।]

सेठ और कायस्थ–ये (आभूषण) आर्य चारुदत्त के हैं।

चारुदत्त– न खलु न खलु।

चारुदत्त–नहीं, निश्चित रूप से नहीं।

श्रेष्ठिकायस्थौ–तदा कस्य। [ता कस्स।]

सेठ और कायस्थ–तब किसके हैं ?

चारुदत्त–इहात्रभवत्या दुहितुः।

चारुदत्त–इन माननीया की पुत्री के।

श्रेष्ठिकायस्थौ–कथमेतानि तस्या वियोगं गतानि। [कधं एदाइं ताए विओअं गदाइं]

सेठ और कायस्थ–ये उससे अलग कैसे हो गये ?

चारुदत्त –एव गतानि । आ, इदम् ।

चारुदत्त–इस प्रकार (अलग) हुए । हाँ यह–

श्रेष्ठिकायस्थौ–आर्यचारुदत्त, अत्र सत्य वक्तव्यम् । पश्य पश्य । [अज्ज-चारुदत्त, एत्थ सच्च वत्तव्वम् । पेक्ख पेक्ख ।

सेठ और कायस्थ–आर्य चारुदत्त ! यहाँ सत्य कहना चाहिये । देखो, देखो–

विवृति

(१) आर्य चारुदत्तीयानि=आर्यचारुदत्त के । (२) दुहितु =पुत्री के । (३) एवम्=इस प्रकार अर्थात् सोने की गाड़ी के लिए रोते हुए मेरे पुत्र रोहसेन को वसन्तसेना ने दिया है ।

सत्येन सुख खलु लभ्यते सत्यालापेन भवति पातकम् ।
सत्यमिति द्वे अप्यक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय ॥३५॥
[सच्चेण सुह खु लब्भइ सच्चालावेण होइ पाव ।
सच्च त्ति दिवेवि अक्खरा मा सच्च अलिएण गूहेहि ॥३५॥]

अन्वय–सत्येन, खलु, सुखम्, लभ्यते, सत्यालापे, पातकम्, न, भवति, सत्यम्, इति, द्वे, अपि, अक्षरे, सत्यम्, अलीकेन, मा, गूहय ॥३५॥

पदार्थ–लभ्यते=मिलता है, सत्यालापे=सत्य बोलने पर, पातकम्=पाप, सत्यमिति द्वे अपि अक्षरे='सत्य' ये दो अक्षर हैं किन्तु ये कितने महत्वपूर्ण हैं ? अलीकेन=असत्य से ॥

अनुवाद–सत्य से निश्चय ही सुख प्राप्त होता है, सत्य कहने पर पाप नहीं होता । 'सत्य' यह दो वर्ण अविनाशी (अक्षर) हैं । (अत) सत्य को असत्य से न छिपाओ ।

संस्कृत टीका–सत्येन=सत्यवचसा, खलु = निश्चयेन, सुखम् = आनन्द, लभ्यत = प्राप्यते, सत्यालापे = सत्यकथने, पातकम् = पापम्, न भवति= न जायते, सत्यमिति द्वे अपि, अक्षरे=वर्णे जगति साररूपे इति शेष, सत्यम्= ऋतम्, अलीकेन=अनृतेन, मा गूहय=न सवृणु ॥

समास एव व्याकरण–१ सत्यालापे – सत्यस्य आलापे । २ अलीकेन– अल् + वीकन् = 'अलीकम्' तेन । लभ्यते–लभ् + यक्+लट् । गूहय–गूह + लोट् ।

विवृति

१ प्रस्तुत पद्य मे वैतालीय छन्द है । लक्षण–"षड् विषमेऽष्टौ समे कला-

स्तादच समे स्युर्नोनिरन्तरा । न समात्र पराश्रिता कला, वैतालीयऽन्ते रलौ गुरु ॥"

चारुदत्त–आभरणान्याभरणानीति । न जाने, किन्त्वस्मद्गृहादानीतानीति जाने ।

चारुदत्त–(ये) आभूषण (वही) आभूषण है–यह मैं नहीं जानता, किन्तु हमारे घर से लाये गये हैं, यह जानता हूँ ।

शकार–उद्यान प्रवेश्य प्रथम मारयसि । कपटकापटिकतया साम्प्रतं निगूहसि । [उज्जाण पवेशिअ पढम मालेशि । कवडकावडिआए शपद णिगूहशि ।]

शकार–पहले तो उद्यान म ले जाकर मारते हो अब कपट द्वारा धूर्तता से छिपाते हो ।

विवृति

१ कपटकापटिकतया=कपटपूर्वक धूर्तता से । २ निगूहसि=छिपा रहे हो ?॥

अधिकरणिक–आर्यचारुदत्त, सत्यमभिधीयताम् ।

न्यायाधीश–आर्यचारुदत्त ! सत्य बालो (अन्यथा)–

इदानीं सुकुमारेऽस्मिन्निःशङ्कं कर्कशा कशा ।
तव गात्रे पतिष्यन्ति सहास्माकं मनोरथैः ॥३६॥

अन्वय –इदानीम्, तव, अस्मिन् सुकुमारे गात्रे, कर्कशा , कशा , अस्माकम् मनोरथैः , सह, निःशङ्कम्, पतिष्यन्ति ॥३६॥

पदार्थ–गात्रे = शरीर पर, कर्कशा = कठोर, कशा =कोड़े, मनोरथैः = मनोरथों के, निःशङ्कम्=निर्भयता पूर्वक, पतिष्यन्ति=पड़ेंगे ॥

अनुवाद–इस समय तुम्हारे इस सुकोमल शरीर पर कठोर कोड़े, हमारे मनोरथों के साथ निःसन्देह पड़ेंगे ।

संस्कृत टीका–इदानीम्=सम्प्रति, तव=भवत , अस्मिन्=दृश्यमाने, सुकुमारे=सुकोमले, गात्रे = शरीरे, कर्कशा = अतिकठिना, कशा =अश्वादे-ताडन्य, अस्माकम् = न्यायाधिकारिणाम्, मनोरथैः = त्वद्रक्षणविषयकै अभिलाषै , सह= साकम्, निःशङ्कम्=निःसन्देहम्, पतिष्यन्ति=निक्षिप्ता भविष्यन्ति ॥

समास एवं व्याकरण–१ कर्कशा–कर्क+श । कशा–कश्+अच् । पत्+लृट् ।

विवृति

(१) 'अश्वादेस्ताडनी कशा' इत्यमर । (२) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि न्यायाधीश की यही अभिलाषा थी कि चारुदत्त सच सच कह दे यह निरपराध

सिद्ध हो जाये । यदि ऐसा नही तो न्यायाधीशो की अभिलाषा नष्ट हो जायेगी, साथ ही चारुदत्त के शरीर पर कोडे बरसाये जायेंगे ॥ (३) प्रस्तुत श्लोक मे पतन क्रिया रूप वस्तु का सह अर्थ के बल से कशा और गात्र दोनो पदार्थो के अन्वित होने से सहोक्ति अलङ्कार है । लक्ष–'सहार्थस्य बलादेक यत्र स्याद्वाचक द्वयो ॥ स० द० ॥ (४) पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण–'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।'

चारुदत्त –

चारुदत्त–

अपापाना कुले जाते मयि पाप न विद्यते ।

यदि सभाव्यते पापमपापेन च किं मया ? ॥३७॥

अन्वय–अपापानाम् कुले, जाते, मयि, पापम् न, विद्यते, यदि, (मयि) पापम्, सभाव्यते, (र्ताह) अपापेन, च मया, किम् ? ॥३७॥

पदार्थ–अपापानाम् =पापरहित व्यक्तियो के, जाते=पैदा हुए, सभाव्यते= सोचा जाता है ।

अनुवाद–निष्पाप जनो के कुल मे उत्पन्न मुझमे पाप नही है, यदि (मुझ मे)पाप की शङ्का की जाती है तो मेरे निष्पाप होने से भी क्या (लाभ) ? ॥

सस्कृत टीका–अपापानाम् = निष्पापानाम्, कुले=वशे, जाते=समुत्पन्ने, मयि=चारुदत्ते पापम् =पातकम्, न विद्यते=न वर्तते, यदि=चेत् (मयि) पापमं= अघम्, सम्भाव्यते=युष्माभिर्मन्यते (र्ताह) अपापेन=पापशून्येन, च=अपि, मया= चारुदत्तेन, किम् =किम् फलम् ? न किमपीत्यर्थ ॥

समास एव व्याकरण–(१) अपापानाम–न विद्यते पापम् येषु ते अपापा (न० ब०), तेषाम् । (२) विद्यते–विद्+लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि यदि मुझमे पाप की सम्भावना की जाती हो तो मैं पापशून्य हूँ–इस कथन से क्या प्रयाजन ? आप लोगो को जो करना हो सो कीजिये। (२) यहाँ अपने निष्पापत्व मे निष्पाप कुल म उत्पन्न होना हेतु होने से पदार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (३) पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण– 'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।'

(स्वगतम् ।) न च मे वसन्तसेनाविरहितस्य जीवितेन कृत्यम् ।

(प्रकाशम् ।) भो , किं बहुना ।

[अपने आप] और वसन्तसेना से रहित मेरे जीवन मे कुछ प्रयोजन नही। [प्रकट] अरे ! अधिक क्या ?

मया किल नृशंसेन लोकद्वयमजानता ।
स्त्रीरत्नं च विशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति ॥३८॥

[प्रस्तुत श्लोक के अन्वय आदि पिछले श्लोक ३० के नीचे देखिये। उससे इसके कुछ भिन्न शब्दों का अर्थ— लोकद्वयम् = दोनों लोक—इहलोक और परलोक। स्त्रीरत्नं च विशेषेण = विशेष रूप से स्त्रियों में रत्न का।

शकार — व्यापादिता। अरे, त्वमपि भण, मया व्यापादितेति। [वावादिदा। अले, तुम पि भए वावादिदेत्ति।

शकार— मार डाला। अरे ! तुम भी कहो, कि 'मैंने मार डाला।'

चारुदत्त— त्वयैवोक्तम्।

चारुदत्त— तुम्हीं ने कह दिया।

शकार— शृणुत शृणुत भट्टारका एतेन मारिता। एतेनैव संशयच्छिन्न। एतस्य दरिद्रचारुदत्तस्य शारीरो दण्डो धार्यताम्। [शुणेध शुणेध भट्टालका, एदेण मालिदा। एदेण ज्जेव शशए छिण्णे। दस्श दलिद्दचालुदत्तश्श शालीले दण्डे धालीअदु।]

शकार— सुनिए, सुनिए अधिकारीगण ! इसने मारा। इसने ही सन्देह को दूर कर दिया। इस दरिद्र चारुदत्त को शारीरिक दण्ड निश्चित किया जाय।

अधिकरणिक— शोधनक, यथाह राष्ट्रियः। भो राजपुरुषा, गृह्यताम चारुदत्त।

न्यायाधीश— शोधनक ! जैसा राजश्यालक ने कहा (वैसा किया जाय)। हे राजपुरुषो ! इस चारुदत्त को पकड लिया जाय।

(राजपुरुषा गृह्णन्ति।)

[राजपुरुष पकडते हैं।]

वृद्धा— प्रसीदन्तु प्रसीदन्त्वार्य मिश्रा। ('जो दाव चोरेहिं अवहिन्स—' इत्यादि पूर्वोक्त पठनि।) तद्यदि व्यापादिता मम दारिका, व्यापादिता। जीवतु मे दीर्घायुः। अन्यच्च। अर्थिप्रत्यर्थिनोर्व्यवहारः। अहमर्थिनी। तन्मुञ्चतैनम्। (पसीदन्तु पसीदन्तु अज्जमिस्सा। ता जदि वावादिदा मम दारिआ, वावादिदा। जीवदु मे दीहाऊ। अण्ण च। अत्थिपच्चत्थिण्ण व्वावहारो। अहं अत्थिणी। ता मुञ्चध एदम्।)

वृद्ध— आर्यप्रवर ! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो। ['य' तावत् चौरैः अपहृतम्' इत्यादि पूर्वोक्त पढती है] तो यदि मेरी पुत्री मारी गई तो मारी गई। मेरा चिरजीव जीवित रहे। फिर वादी और प्रतिवादी का व्यवहार है। मैं वादी हूँ। तो इसको छोड दें।

शकार – अपेहि गर्भदासि, गच्छ। किं तवैतेन। [अवेहि गब्भदाशि, गच्छ। किं तव एदिणा।

शकार– दूर हट जन्म की दासी ! जा, तेरा इससे क्या (प्रयोजन) ?

अधिकरणिक – आर्ये, गम्यताम्। हे राजपुरुषा, निष्क्रामयतैनाम्।

न्यायाधीश– आर्ये ! जाइये ह राजपुरुषो ! इसे निकालो।

वृद्धा– हा जात हा पुत्रक। (इति रुदति निष्क्रान्ता।) [हा जाद, हा पुत्तअ।]

वृद्धा– हाय वत्स ! हाय पुत्र ! [रोती हुई निकल जाती है]

शकार – (स्वगतम्।) कृत मयैतस्यात्मन सदृशम्। साम्प्रत गच्छामि। (इति निष्क्रान्त।) [कड मए एदश्श अत्तणो शलिशम्। शपद गच्छामि।]

शकार– [अपने आप] मैंने इसके प्रति अपने अनुरूप (कार्य) कर दिया। अब जाता हूँ। [निकल जाता है]

विवृति

(१) अहमर्थिनी=मै वादिनी हूँ। अर्थात् जिसे अभियोग करना चाहिए, वह तो मैं हूँ क्योकि वसन्तसेना मेरी पुत्री थी। (२) आत्मन सदृशम्=अपने अनुरूप अर्थात् अपनी शक्ति के अनुसार।

अधिकरणिक – आर्यचारुदत्त, निर्णये वय प्रमाणम् (शेषे तु राजा। तथापि शोधनक, विज्ञाप्यता राजा पालक –

न्यायाधीश– आयचारुदत्त ! निर्णय देने मे हम लोग प्रमाण है, किन्तु शेष कार्य करने मे राजा। तो भी शोधनक ! राजा पालक को (यह) सूचित किया जाय–

'अय हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मात् निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह ॥३९॥

अन्वय – अयम्, विप्र पातकी,(अपि, तथापि), न हि वध्य (इति), मनु, अब्रवीत्, तु अक्षतै, विभवै, सह अस्मात्, राष्ट्रात्, निर्वास्य ॥३९॥

पदार्थ – विप्र =ब्राह्मण पातकी=पापी, वध्य =वध करने के योग्य, अक्षतै =सम्पूर्ण, विभवै –सम्पत्ति के राष्ट्रात्=राष्ट्र से, निर्वास्य=निकाल देना चाहिये।

अनुवाद– यह ब्राह्मण पापी है, (तो भी) वध के योग्य नही है, ऐसा मनु ने कहा है, किन्तु सम्पूर्ण सम्पत्ति के साथ इसे इस राष्ट्र से निकाल देना चाहिए ॥

संस्कृत टीका– अयम्=वसन्तसेनायाः वधे अभियुक्तः, 'विप्रः=ब्राह्मणः, पातकी=पापी (अस्ति, तथापि) न=नहि, हि=निश्चयेन, वध्यः=प्राणदण्डयोग्य', (इति) मनुः=धर्मशास्त्रप्रणेता एकः=ऋषिः, अब्रवीत्=अकथयत्, तु=किन्तु, अक्षतैः=क्षतिरहितैः, विभवैः=सम्पद्भिः, सह=साकम्, अस्मात्=एतस्मात्, राष्ट्रात्=राज्यात्, निर्वास्यः=बहिष्करणीयः ॥

समास एवं व्याकरण– (१) विप्र–वप्+रन् पृषो० अत इत्वम् । वध्यः–वधमर्हति वध+यत् । अक्षत– नञ्+क्षण्+क्त–न० त० । राष्ट्रम्–राज+ष्ट्रन् ।

विवृति

(१) धर्मशास्त्रानुसार प्राचीन काल में ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता था । जैसा कि मनु ने कहा है– 'वपन द्रविणादान देशान्निर्यातिन तथा । एष हि ब्रह्मबन्धूना वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥' (२) मनुवचनम्–"न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम् । राष्ट्रादेनं बहिष्कुर्यात् समग्रधनमक्षतम् ॥" (३) प्रस्तुत श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण–'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ।'

शोधनक–यदार्य आज्ञापयति, (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य । सास्रम् ।) आर्या, गतोऽस्मि तत्र । राजा पालको भणति–'येनार्थकल्यवर्तस्य कारणाद्वसन्तसेना व्यापादिता, त तान्येवाभरणानि गलेबद्ध्वा डिण्डिमं ताडयित्वा दक्षिणश्मशानं नीत्वा शूले भङ्क्त' इति । यः कोऽपर ईदृशमकार्यमनुतिष्ठति स एतेन सनिकारदण्डेन शास्यते । [ज अज्जो आणवेदि । अज्जा, गदह्मि तहिं । राजा पालओ भणादि–'जेण अत्थकल्लवत्तस्स कालणादो वसन्तसेणा वावादिदा, तं ताइज्जेव आहरणाइं गले बन्धिअ डिण्डिमं ताडिअ दक्खिणमसाणं णदुअ सूले भञ्जेध' त्ति । जो का वि अवरो एरिसं अकज्जं अणुचिट्ठदि सो एदिणा सणिआरदण्डेण सासीअदि ।]

शोधनक–जो आर्य की आज्ञा । [यह कह कर निकल कर पुनः प्रवेश करके, अश्रुपूर्वक] आर्यो ! मैं वहाँ गया हूँ । राजा पालक कहते हैं–'जिसने कलेवा जैसे (तुच्छ) धन के निमित्त वसन्तसेना को मार दिया, उसे वही आभूषण गले में बाँधकर ढिंढोरा पीटकर दक्षिण श्मशान में ले जाकर–शूली पर चढा दो ।' जो कोई दूसरा भी ऐसा दुष्कार्य करेगा, वह इस अपमान सहित दण्ड से शासित किया जायेगा ।

विवृति

(१) डिण्डिमम् ताडयित्वा=ढिंढोरा पीटकर । (२) शूले भङ्क्त=शूली पर (चढाकर) मार दो । (३) सनिकारदण्डेन=अपमान सहित दण्ड से ।

चारुदत्त–अहो, अविमृश्यकारी राजा पालकः । अथवा ।

चारुदत्त–अरे ! राजा पालक बिना विचारे कार्य करने वाला है ।

अथवा–

ईदृशे व्यवहाराग्नौ मन्त्रिभिः परिपातिताः ।
स्थाने खलु महीपाला गच्छन्ति कृपणां दशाम् ॥४०॥

अन्वय-मन्त्रिभि, ईदृशे, व्यवहाराग्नौ, परिपातिता, महीपाला, कृपणाम्, दशाम्, गच्छन्ति, (इति), स्थाने, खलु ॥४०॥

पदार्थ-मन्त्रिभि=मन्त्रियो के द्वारा, व्यवहाराग्नौ=मुकदमा-विचार रूपी आग मे, परिपातिता=झोके गये, महीपाला.=राजा लोग, कृपणाम्=शोचनीय, दशाम्=दशा को, गच्छन्ति=प्राप्त होते है, स्थाने=उचित, स्थान पर।

अनुवाद-मन्त्रियो के द्वारा ऐसे विवाद-विचार-रूपी अग्नि मे निक्षिप्त राजा लोग शोचनीय दशा को प्राप्त होते हैं, यह ठीक ही है।

संस्कृत टीका-मन्त्रिभि=सचिवैः ईदृशे=एतादृशे, व्यवहाराग्नौ=विवाद-विचार रूपाग्नौ, परिपातिता=मन्त्रदानेन निक्षिप्ता, महीपाला.=राजान, कृपणाम्=कातराम्,=दशाम्=अवस्थाम्, गच्छन्ति=यान्ति, प्राप्नुवन्ति, (इति) स्थाने खलु=युक्तमेव ॥

समास एवं व्याकरण-(१) व्यवहाराग्नौ-व्यवहार एव अग्नि तस्मिन्। व्यवहार-वि+अव+हृ+घञ्। कृपणा-कृप्-क्युन् नस्यणत्वम्। गच्छन्ति-गम्+लट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे अप्रस्तुत महीपाल सामान्य से प्रस्तुत पालक रूप महीपाल विशेष की प्रतीति होने से अप्रस्तुतप्रशसालङ्कार है।

(२) रूपकालङ्कार भी है। (३) 'युक्ते द्वे साम्प्रत स्थाने' इत्यमरः।

(३) पथ्यावक्त्र छन्द है।

अपिच।

और भी-

> ईदृशैः श्वेतकाकीयै राज्ञः शासनदूषकैः।
> अपापाना सहस्राणि हन्यते च हतानि च ॥४१॥

अन्वय-श्वेतकाकीयै., राज्ञ, शासनदूषकै, ईदृशै, (अधिकरणिकै.) अपापानाम्, सहस्राणि, हतानि, च, हन्यते, च ॥४१॥

पदार्थ :-श्वेतकाकीयै=श्वेत कौओं के समान (अर्थात् बगुला भगत) अथवा 'कौआ श्वेत है' इस मिथ्या बात को भी मान लेने वाले, शासन दूषकै.=शासन को दूषित करने वाले, ईदृशै=ऐसे, अपापानाम्=निरपराध व्यक्तियों के, सहस्राणि=हजार, हतानि=मार गये है, हन्यन्त=मारे जाते हैं ॥

अनुवाद -श्वेत कौओं के समान राजा के शासन को दूषित करने वाले ऐसे (न्यायाधीशों) के द्वारा सहस्रों निर्दोष व्यक्ति मारे गये तथा मारे जा रहे हैं ॥

संस्कृत टीका-श्वेतकाकीयै =शुभ्रवर्णकाकसदृशं (वकतुल्यै.), राज = शासकस्य, शासनदूपकै = ईदृशं =एतादृशं , !(अधिकरणिकै) अपापानाम् = पापरहितानाम्, सहस्राणि=बहूनि, हतानि=मारितानि, च=तथा, हन्यते च= मार्यन्ते च ॥

समास एव व्याकरण-(१) श्वेतकाकीयै -श्वेता काका श्वेतकाका (कर्म० स०), त एव श्वेतकाकीया 'समासाच्च तद्विषयात्' इति सूत्रेण छ प्रत्यय, तै । शासन दूपकै -शासनम् दूषयन्ति ये तै तयोक्तै अपापानाम्-न विद्यते पापम् येषु ते अपापा (न० ब०), तषाम् । (२) हन्यत-हन्+लट् ।

विवृति

(१) 'श्वेतकाकीयै' शब्द की निष्पत्ति 'काकतालीय' आदि के समान है । है । (२) प्रस्तुत पद्य मे श्लोक स० १/७ मे कही गई व्यवहारदुष्टता दिखलाई गई है । (३) अप्रस्तुतप्रशसालङ्कार है । (४) पथ्यावक्त्र छन्द है ।

सखे मैत्रेय, गच्छ । मद्वचनादम्बामपश्चिममभिवादयस्व । पुत्र च मे रोहसेन परिपालयस्व ।

मित्र मैत्रेय ! जाओ । मेरी ओर से माता को अन्तिम प्रणाम करो । और मेरे पुत्र रोहसेन का पालन करो ।

विदूषक-मूले छिन्ने कुत पादपस्य पालनम् । [मूले छिण्णे कुदो पादवस्य पालणम् ।]

विदूषक-जड कट जाने पर वृक्ष का पालन कहाँ से (हो सकता है) ?

चारुदत्त-मा मैवम् ।

चारुदत्त-नही, ऐसा नही ।

नृणा लोकान्तरस्थाना देहप्रतिकृति. सुत ।
मयि यो वै तव स्नेहो रोहसेने स युज्यताम् ॥४२॥

अन्वय -सुत , लोकान्तरस्थानाम्, नृणाम्, देहप्रतिकृति (भवति अत), मयि, तव, य, स्नेह , स रोहसने, वै, युज्यताम् ॥४२॥

पदार्थ-सुत =पुत्र, लोकान्तरस्थानाम्=दूसरे लोक म स्थित अर्थात् मृत, नृणाम्=लोगो का, देहप्रतिकृति =शरीर की प्रतिमा, प्रतिनिधि, वै=अवश्य ही, युज्यताम्=लगा दिया जाय ॥

अनुवाद -पुत्र परलोक म स्थित मनुष्यो के शरीर का प्रतिनिधि होता है । अत मुझ पर तुम्हारा जो स्नेह है, उसे निश्चित रूप से रोहसेन म समर्पित कर दो ॥

संस्कृत टीका-सुत =पुत्र ,लोकान्तरस्थानाम्=परलोक गतानाम्, नृणाम्=

मनुष्याणाम्, देहप्रतिकृति =शरीरप्रतिमूर्ति, (भवति अत) मयि=चारुदत्ते, तव= ते, य =अपूर्व स्नेह =प्रीति, स =स्नेह, रोहसेने=तदाख्ये मम पुत्रे, वै =निश्चयेन, युज्यताम् =अर्प्यताम् ॥

समास एवं व्याकरण–(१) लोकान्तरस्थानाम्–अन्य लोक लोकान्तरम् लोकान्तरे तिष्ठन्तीति लोकान्तरस्था तेषाम् । देहप्रतिकृति–देहस्य प्रतिकृति । (२) प्रतिकृति–प्रति+कृ+क्तिन् । स्नेह–स्निह्+घञ् । युज्यताम्–युज्+लोट् ।

विवृति

(१) 'आत्मा वै जायते पुत्र' इति स्मृति । (२) प्रस्तुत पद्य मे उत्तरार्द्ध के प्रति पूर्वार्द्ध वाक्यार्थ हेतु होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । (३) 'स्युरेव तु पुनर्वैवेत्यवधारणवाचका' इस अमरकोष के प्रमाण मे 'वै' इसका निश्चय अर्थ होने से निरर्थकत्वदोष नही है (४) पथ्यावक्त्र छन्द है ॥

विदूषक–भो वयस्य, अहं ते प्रिय वयस्यो भूत्वा त्वया विरहितान्प्राणान्धारयामि । [भो वअस्स अहं ते पिअ वअस्सो भविअ तुए विरहिदाइ पाणाइ धारेमि ।]

विदूषक–हे मित्र ! मैं तुम्हारा प्रिय मित्र होकर तुमसे वियुक्त प्राणो को धारण कर सकूँगा ?

चारुदत्त–रोहसेनमपि तावद्दर्शय ।

चारुदत्त–रोहसेन को भी तो दिखा दो ।

विदूषक–एवम् । युज्यते [एव्वम् । जुज्जदि ।]

विदूषक–अच्छा, ठीक है ।

अधिकरणिक–भद्र शोधनक, अपसार्यतामय वटु ।

न्यायाधीश–सौम्य शोधनक ! इस ब्राह्मण को हटाओ ।

(शोधनकस्तथा करोति ।)

[शोधनक वैसा करता है]

अधिकरणिक–क कोऽत्रभो । चाण्डालाना दीयतामादेश ।

न्यायाधीश–कौन ? अरे यहाँ कौन है ? चाण्डालो को आदेश दिया जाय ।

(इति चारुदत्त विमुच्य निष्क्रान्ता: सर्वे राजपुरुषा ।)

[चारुदत्त को छोडकर सब राजपुरुष निकल जाते हैं]

शोधनक–इत आगच्छत्वार्य [इदो आअच्छदु अज्जो ।]

शोधनक–आर्य इधर आयें ।

विवृति

(१) चाण्डालाना दीयतामादेश = चाण्डालों (वधिकों) को आज्ञा दी जाय। 'स्याच्चाण्डालस्तु जनितो ब्राह्मण्यां वृषलेन य' इत्यमर । यहाँ 'दा' धातु के योग में चतुर्थी होनी चाहिये, किन्तु सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी हुई।

चारुदत्त –(सकरुणम् । 'मैत्रेय भो किमिदमद्य' (९/२९) इत्यादि पठति आकाशे ।)

चारुदत्त–[करुणापूर्वक, 'मैत्रेय भो ! किमिदमद्य' (९,२९) इत्यादि पढता है। आकाश की ओर]

विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते मे विचारे
क्रकचमिह शरीरे वीक्ष्य दातव्यमद्य
अथ रिपुवचनाद्वा ब्राह्मण या निहंसि
पतसि नरकमध्ये पुत्रपौत्रैः समेत ॥४३॥

अन्वय –विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते, मे, विचारे (सति), वीक्ष्य अद्य, इह, शरीरे, क्रकचम्, दातव्यम्, अथ, रिपुवचनात्, वा, माम्, ब्राह्मणम्, निहंसि, (चेत्), पुत्रपौत्रैः, समेत, नरकमध्ये, पतसि ॥४३॥

पदार्थ –विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते = विष, जल, तुला तथा अग्नि के द्वारा दिव्य परीक्षा लेने की प्रार्थना करने पर, मे = मेरे, विचार = मुकदमा के निर्णय होने पर, वीक्ष्य = देखकर, क्रकचम् = आरा, दातव्यम् = देना चाहिये, अथ = यदि, रिपुवचनात् = शत्रु के कहने से, निहंसि = मारते हो, पुत्रपौत्रैः = पुत्र तथा पौत्रों के, समेत = साथ, नरकमध्ये = नरक में, पतसि = गिरोगे ॥

अनुवाद –व्यवहार-विचार में विष, जल, तुला तथा अग्नि (के द्वारा की जाने वाली दिव्य परीक्षा) की प्रार्थना मेरे द्वारा करने पर उसे देखकर आज इस शरीर पर 'आरा' चलाना चाहिये, किन्तु यदि शत्रु (शकार) के वचन से ही मुझ ब्राह्मण को मारते हो तो तुम पुत्र पौत्रों के साथ नरक में गिरोगे ॥

संस्कृत टीका–विषसलिल० = विषभक्षणजलमज्जनतुलारोहणाग्नि स्पर्श प्रार्थिते, मे = मम, विचारे = व्यवहारे, (सति) वीक्ष्य = दृष्ट्वा दिव्यपरीक्षा दृष्ट्वेत्यर्थ, अद्य = अधुना, इह = अस्मिन्, शरीरे = देहे, क्रकचम् = करपत्रम्, दातव्यम् = दातुमुचितम्, अथ = अनन्तरम्, रिपुवचनात् = शकारस्य कथनात्, वा = एव, माम् = चारुदत्तम्, ब्राह्मणम् = द्विजम्, निहंसि = मारयसि, (चेत् पुत्रपौत्रैः = सुततत्सुतादिभि, निखिलैः परिवारैः इत्यर्थ, समेत = सहित, नरकमध्ये = निरयान्तर, पतसि = पतिष्यसि ॥

समास एवं व्याकरण–(१) विषसलिल०–विषम् सलिलम् जलम् तुला अग्नि तैः विषसलिलतुलाग्निभि प्रार्थिते । रिपुवचनात्–रिपो वचनात् । (२)

वि+ईक्ष+ल्यप् । ब्राह्मणम्–(१) ब्रह्मण अपत्यम् पुमान् ब्राह्मण ब्रह्मन्+अण् (तस्यापत्यम्), (२) ब्रह्म=(वेदम्) अधीते वेद (जानाति) वा–ब्रह्मन्+अण् (तदधीते (तद्वेद)। दातव्यम्–दा+तव्यत्। वीक्ष्य–वि+ईक्ष्+क्त्वा (ल्यप्)। विचारय–वि+चर्+घञ्। निहंसि–नि+हन्+लट्। पतसि–पत्+लट्। समेत–सम्+आ+इ+क्त।

विवृति

(१) प्राचीन काल मे किसी व्यक्ति को निरपराध प्रमाणित करने के लिए दिव्य परीक्षा ली जाती थी। जैसा कि याज्ञवल्क्य ने बतलाया है– (i) किसी व्यक्ति को विष खिलाया जाता था यदि वह निष्पाप होता था तो उस पर विष का कोई प्रभाव नही होता था। (ii) उसे नाभिपर्यन्त जल मे इतने समय डुबकी लगवाई जाती थी जितने समय मे कोई वेगवान् मनुष्य तत्काल फेंके गये बाण को लेकर आ जाता था यदि वह अपराधी होता तो डूब जाता अन्यथा नही। (iii) वह तुला के एक पलड़े मे बैठता था और दूसरे पलड़े मे समान भार का बाँट आदि रखा जाता यदि वह निरपराध होता तो उसका पलडा ऊपर उठ जाता। (iv) उसके हाथ पर अभिमन्त्रित पीपल के सात पत्ते सूत्र से बाँधे जाते और फिर उस पर नियत काल के लिये तपा हुआ लोहगोलक रखा जाता था। यदि वह निरपराध होता तो नही जलता था। (विशेष देखिये याज्ञवल्क्यस्मृति २,१००–१११) (२) 'गरल विषम' इत्यमर। (३) 'क्रकचोऽस्त्री करपत्रम्' इत्यमर। (४) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि निरपराध मरे मार मे अपरा तो तुम्हारा नरक- पात होगा। जैसा कि मनु ने कहा है– अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्य दण्डयन्। अयशो महदाप्नोति नरकं चापि गच्छति॥ (५) प्रस्तुत श्लोक म काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (६) मालिनी छन्द है। लक्षण– 'ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकै।"

अयमागतोऽस्मि।

मद्द मैं आ गया हूँ।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे।)

[सब निकल जाते है।]

इति व्यवहारो नाम नवमाऽङ्कः।

व्यवहार नामक नवम अङ्क समाप्त॥

विवृति

१ मृच्छकटिक का यह अङ्क कई दृष्टियो स अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कवि ने प्रस्तावना क 'नयप्रचार' व्यवहारदुष्टताम्' इस कथन का सुन्दर निर्वाह किया है। स्थल-स्थल पर 'न्यायालय' की सूक्ष्मता का वर्णन शूद्रक की लेखनी स सजीव रूप

में हुआ है। २ इस अङ्क से तात्कालिक राजनैतिक व्यवस्था का भी परिचय प्राप्त होता है। उस समय मनुस्मृति के अनुसार अभियोगों का निर्णय होता था। निर्णय कर्ता 'अधिकरणिक' कहलाता था। ३ यह अङ्क इस प्रकरण का महत्वपूर्ण अंश है। इसमें कवि का अपना अनुभव स्पष्ट है। संक्षेप में इसका 'व्यवहार' नाम यथार्थ ही है।

दशमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति चाण्डालद्वयेनानुगम्यमानश्चारुदत्तः ।)

[तदनन्तर दो चाण्डालों से अनुगत चारुदत्त प्रवेश करता है।]

उभौ

दोनों

तत्किं न कलय कारणं नववधबन्धनयने निपुणौ ।

आचरेण शीर्षच्छेदनशूलारोपेषु कुशलौ स्वः ॥१॥

[तक्किं ण कलअ कालणं णववहबधणअणे णिउणा ॥

अचिलेण शीशछेअणशूलालोवेशु कुशलम्ह ॥ १ ॥]

अन्वय— तत्, किम्, कारणम्, न, कलय, (आवाम्), नववधबन्धनयने, निपुणौ, अचिरेण, शीर्षच्छेदनशूलारोपेषु, कुशलौ, स्वः ॥ १ ॥

पदार्थ— तत्=तो, किम्=क्या, कारणम्=मतलब को, न=नहीं कलय= जानते हो ?, नववधबन्धनयने=नये वध और बन्धन के लिये ले जाने में, निपुणौ= परम चतुर, अचिरेण=बहुत जल्द, शीर्षच्छेदन०=शिर काटने और शूली (फाँसी) पर चढ़ाने में।

अनुवाद— तो क्या कारण है ? इसको मत सोचो, हम दोनों वध और बन्धन के लिये ले जाने में निपुण हैं, अविलम्ब शिर काटने और शूली पर चढ़ाने में दक्ष हैं।

संस्कृत टीका— तत्=तु, किम्=इति प्रश्ने, कारणम्=हेतुम्, न कलय= नावधारय, नववधबन्धनयने=प्रतिदिनमारणबन्धना कर्षणे, निपुणौ=चतुरौ, अचिरेण, अविलम्बेन, शीर्षच्छेदनशूलारोपेषु=शिरसः कर्तनलौहकीलका रोपणेषु, कुशलौ=दक्षौ, स्वः=विद्यावहे।

समास एवं व्याकरण— १ नववध— नवौ यौ वधबन्धौ तयो नयने अथवा नवः यः वधः तस्मै बन्धः तस्य नयनो अथवा नववधाय बन्धः तत्र नयनं। शीर्ष०— शीर्ष्णः छेदनेषु तथा शूले आरोपषु। २ कलय— कल्+णिच्+लोट्। ३ कारणम्— कृ+णिच्+ल्युट्। ४ कुशलौ— कुश+ला+क। ५ स्वः— अस्+लट्।

विवृति

१ तत्किम्०— यह चारुदत्त के प्रति कहा गया है। २ भाव यह है कि इस

समय हमारी नियुक्ति चारुदत्त को दक्षिण श्मशान' मे ले जाकर शूली देने की' है, अत हम दक्षिण भाग से जा रहे हैं। ३ प्रस्तुत पद्य मे गाथा छन्द है। ४ कुछ टीकाकारो के अनुसार उपगीति छन्द है। लक्षण— 'आर्योत्तरार्धतुल्य प्रथमाधमपि प्रयुक्त चेत्। कामिनि तामुपगीतिं प्रतिभाषन्त महाकवय ॥'

अपसरतार्या अपसरत। एष आयचारुदत्त। [ओशलध अज्जा, ओशलध। एशे अज्जलालुदत्ते।]

हटो आर्यो! हटो। यह आय चारुदत्त—

दत्तकरवीरदामा गृहीत आवाभ्या वध्यपुरुषाभ्याम्।
दीप इव मन्दस्नेह स्तोक स्तोक क्षय याति ॥ २ ॥
[दिण्णकलवीलदामे गहिदे अम्हेहि वज्झपुलिसेहिं।
दीवे व्व मदणहे थोअ थोअ खअ जादि ॥ २]

अन्वय — दत्तकरवीरदामा, आवाभ्याम्, वध्यपुरुषाभ्याम्, गृहीत, (एष, आर्यचारुदत्त) मन्द स्नेह, दीप इव, स्तोकम् स्तोकम्, क्षयम्, याति ॥ २ ॥

पदार्थ — दत्तकरवीरदामा=पहनायी गयी कनेर की माला वाला, वध्यपुरुषाभ्याम्=वध करने म प्रवीण पुरुषो के द्वारा, मन्दस्नेह=कम तेल वाले, दीप=दीपक, स्तोकम्=थोडा क्षयम्=नाश को, याति=प्राप्त हो रहा है।

अनुवाद — पहनायी गयी करवीरपुष्प की माला वाला, वधकार्य म नियुक्त हम दोनो जनो के द्वारा पकडा गया (यह चारुदत्त) स्वल्प तेल वाले दीपक की भाँति धीरे धीरे क्षीण हो रहा है।

संस्कृत टीका— दत्तकरवीरदामा=धृतरक्तकरवीरपुष्पमालाव्य चारुदत्त, आवाभ्याम् वध्यपुरुषाभ्याम्=वधकार्ये नियुक्ताभ्यामावाभ्यामित्यर्थ, गृहीत=धृत, मन्दस्नेह=क्षीणतैल दीप=प्रदीप, इव=यथा स्तोकम् स्तोकम्=मन्दम् मन्दम्, क्षयम्=विनाशम् याति=गच्छति ॥

समास एव व्याकरण — १ दत्तकर०— दत्तम् करवीरस्य दाम यस्मै तादृश अथवा वध्यपुरुषाभ्याम्=दत्तानि करवीराणाम्, दामानि यस्य स। वधे साधू इति वध्यौ। वध+यत्। वध्यौ पुरुषौ तौ च तौ पुरुषौ चेति (कम० स०), ताभ्याम्। २ गृहीत— ग्रह्+क्त। ३ स्नेह— स्निह्+घञ्। ४ क्षयम्— क्षि+अच्। ५ याति— या+लट्।

विवृति

१ प्रतिहासमानप्रासचण्डालद्वयमारका करवीर' दयमर। २ प्राचीन परम्परानुसार जिसको फासी का आदेश दिया जाता था, उसे कनेर के लाल पुष्प की माला पहनायी जाती थी। उसके शरीर पर लालचन्दन पोता जाता था। ३ प्रस्तुत पद्य

मे श्लेष से अनुप्राणित उपमालङ्कार है । ४ आर्या छन्द है । लक्षण— "यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"
५ अस्ति— 'अस्ति' म 'सादरस्नेहाऽप्येतपुं' शाकुन्तलम् ।

चारुदत्त —(सविषादम् ।)

चारुदत्त—[दु:ख क साथ]

नयनसलिलसिक्तं पांशुरूक्षीकृताङ्ग

पितृवनसुमनोभिर्वेष्टितं मे शरीरम् ।

विरसमिह रटन्तो रक्तगन्धानुलिप्तं

बलिमिव परिभोक्तुं वायसास्तर्कयन्ति ॥३॥

अन्वय —इह, विरसम्, रटन्त, वायसा, नयनसलिलसिक्तम्, पांशुरूक्षीकृताङ्गम्, पितृवनसुमनाभि, वेष्टितम्, रक्तगन्धानुलिप्तम्, मे, शरीरम्, बलिम्, इव परिभोक्तुम्, तर्कयन्ति ॥३॥

पदार्थ —विरसम्=कर्कश, कणकटु, रटन्त=शब्द करत हुए, वायसा= कौए, नयनसलिलसिक्तम्=आँसुओ स भीग हुए, पांशुरूक्षीकृताङ्गम्=धूलि-धूसरित अङ्ग वाले, पितृवनसुमनाभि=श्मशान क पुष्पा स, वेष्टितम्=ढके हुए, रक्तगन्धानुलिप्तम्=लाल चन्दन स पुत हुए, म=मेरे, शरीरम्=शरीर को, बलिम्=बलि के (पूजा म चढाय गय पदार्थों क), परिभोक्तुम्=खान क लिय, तर्कयन्ति=अनुमान कर रहे हैं या विचार कर रह हैं।

अनुवाद—यहाँ कर्कश शब्द करत हुए कौए अश्रुजल स अभिषिक्त, धूलि-धूसरित अवयवो वाले, श्मशान के पुष्पो स परिवेष्टित, रक्तचन्दन से लिप्त मेरे शरीर को बलि क समान खान का विचार कर रहे हैं।

संस्कृत टीका—इह=दक्षिणश्मशानमार्गे, विरसम्=कर्कशम्, रटन्त=शब्द कुर्वन्त, वायसा=काका, नयनसलिलसिक्तम्=अश्रुसिक्तम्, पांशुरूक्षीकृताङ्गम्—धूलिधूसरितम्, पितृवनसुमनाभि=श्मशानोद्भूतपुष्पयुक्तम्, रक्तगन्धानुलिप्तम्=रक्तचन्दनानुलिप्तम्, म=मम चारुदत्तस्य, शरीरम्=वपु, बलिमिव=पूजाद्रव्यमिव, परिभोक्तुम्=खादितुम्, तर्कयन्ति=उत्प्रेक्षन्त, विचारयन्ति ॥

समास एव व्याकरण—(१) नयनसलिलसिक्तम्—नयनयो सलिलैः सिक्तम् । पांशुरूक्षीकृताङ्गम् पांशुभि रूक्षीकृतानि अङ्गानि यस्य तत् । पितृवन०—पितृवनस्य सुमनोभि । रक्तगन्धानुलिप्तम्—रक्तगन्धेन अनुलिप्तम् । वेष्टितम्—वेष्ट+क्त+विभक्तिकार्य । (२) रटन्त—रट+शतृ । (३) परिभोक्तुम्—परि+भुज्+तुमुन् । (४) तर्कयन्ति—तर्क्+णिच्+लट् ।

विवृति

(१) 'काके तु करटारिष्टबलिपुष्टसकृत्प्रजा' । ध्वाङ्क्षात्मघोषपरभृद्बलि-

मुग्वायसा अपि' इत्यमर । (२) 'रेणुर्द्वयो स्त्रिया धूलि पांशुर्ना न द्वयो रज' इत्यमर । (३) 'श्मशान स्यात्पितृवनम्' इत्यमर । (४) वध्य के लिए लाल चन्दन का लेपन किया जाता है । (५) प्रस्तुत पद्य मे विशेष प्रकार की बलि का वर्णन है जो किसी देव या भूत आदि के लिये दी जाती थी । वह बलि भी—(i) जल से अभिषिक्त (ii) रूक्ष, (iii) पुष्पो से ढकी हुई तथा (iv) रक्त की गन्ध (बूंद या गन्ध) से युक्त होती थी । (५) श्रौती उपमालङ्कार है । (६) उत्प्रेक्षालङ्कार भी है । (७) मालिनी छन्द है । लक्षण—'ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकै ।' (८) त्व चेदच्छस्फटिकविशद तर्कयेस्तिर्यगम्भ । मेघदूत ।

चाण्डालौ—अपसरतार्या , अपसरत । [ओशलध अज्जा, ओशलध ।]

दोनो चाण्डाल—हटो आर्यो ! हटो ।

> किं पश्यत छिद्यमान सत्पुरुषा: कालपरशुधाराभि. ।
> सुजनशकुनाधिवास सज्जनपुरुषद्रुममेतम् ॥४॥
> [किं पेक्खध छिज्जत शप्पुलिश कालपलशुधालाहिं ? ।
> शुअणशउणाधिवाश शज्जण पुलिशद्दुम एद ॥४॥]

अन्वय—हे सत्पुरुषा ! सुजनशकुनाधिवासम्, एतम्, सज्जनपुरुषद्रुमम्, कालपरशुधाराभि , छिद्यमानम् किम्, पश्यत ? ॥४॥

पदार्थ—सुजन० =सज्जन रूपी पक्षियो के आश्रय स्थान, सज्जन० =सज्जन पुरुषो के लिए वृक्ष (के समान छाया देने वाले), कालपरशु० =काल रूपी कुल्हाडी या काल के समान कुल्हाडी या काल की कुल्हाडी की धाराओ से, छिद्यमानम् =काटे जाते हुए, किं पश्यत =क्यो देखते हो (अर्थात् सत्पुरुष का वध देखना उचित नही है, अत हट जाओ) ।

अनुवाद—हे सज्जनो ! साधुजन रूपी पक्षिगण के निवास स्थान, सत्पुरुषो के लिए वृक्षतुल्य इस महानुभाव को कालरूप कुठार की धाराओं से काटे जाते हुए क्यो देखते हो ?

संस्कृत टीका—हे सत्पुरुषा ! हे सज्जना ! सुजन० = सत्पुरुषपक्षिणामावासवृक्षरूप, एतम् = आर्यचारुदत्तम्, सज्जन० =सज्जनछायाकरम्, कालपरशुधाराभि = कालरूठारतीक्ष्णाग्रै , छिद्यमानम् =भिद्यमानम्, किम् पश्यत —किमवलोकयत ? ॥

समास एव व्याकरण—(१) सुजन०—सुजना एव शकुना तेषाम् अधिवासम् । सज्जनपुरुषद्रुमम्—पुरुष एव द्रुम पुरुषद्रुम सज्जनाम् पुरुषद्रुम सज्जनपुरुषद्रुम तम् । कालपरशु धाराभि—कालस्य परशु धाराभि अथवा काल एव परशु तस्य धाराभि अथवा काल इव परशु तस्य धाराभि । (२) अधिवासम्—अधि+

वस्+घञ् । (३) छिद्यमानम्—छिद्+शानच् लट् । (४) पश्यत–दृश्+लाट् (पश्यादेश) ।

विवृति

(१) शकुन्तिपक्षिशकुनिशकुन्तशकुनद्विजा ' इत्यमर । (२) प्रस्तुत पद्य म चारुदत्त को वृक्ष का रूप दिया गया है, उस पर आश्रित साधुजना का पक्षिया का तथा काल को परशु का । काल=मृत्यु । यदि सज्जन' शब्द का अथ कवल श्रेष्ठ' लिया जाये ता सज्जन पुरुष एव द्रुम तम्—यह भी विग्रह हा सकता है । (३) शकुनत्व का आरोप द्रुमत्व के आरोप का निमित्त होने स परम्परितरूपकालङ्कार है । (४) प्रस्तुत श्लाक म प्रयुक्त छन्द का नाम है—आर्या । लक्षण— यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तया तृतीयऽपि । अष्टादश द्वितीय चतुर्थक पञ्चदश साऽर्या ॥"

आगच्छ रे चारुदत्त, आगच्छ, [आवच्छ ल चालुदत्ता आअच्छ ।]

आओ रे चारुदत्त ! आओ ।

चारुदत्त –पुरुषभाग्यानामचिन्त्या खलु व्यापारा, यदहमादृशा दशामनुप्राप्त ।

चारुदत्त—पुरुषा क भाग्या की चेष्टायें अचिन्तनीय है जा कि एसी दशा का प्राप्त हो गया हूँ ।

सर्वगात्रेषु विन्यस्तै रक्तचन्दनहस्तकैः ।

पिष्टचूर्णावकीर्णश्च पुरुषाहं पशूकृत ॥५॥

अन्वय —सर्वगात्रेषु विन्यस्तै रक्तचन्दनहस्तकैः, पिष्टचूर्णावकीर्ण, च, अहम्, पुरुष, पशूकृत ॥५॥

पदार्थ —सभी अङ्गो पर, विन्यस्तै =लगाय गय, रक्तचन्दनहस्तकै =लाल चन्दन के हाथ के थापे के द्वारा, पिष्टचूर्णावकीर्ण =पिसान और चूर्णो स, अर्थात् चावल के आटे और तिल क चूर्णो स पशूकृत =पशू बना दिया गया हूँ ।

अनुवाद– समस्त अङ्गो पर लगाय गय लाल चन्दन क चिन्हो के द्वारा तथा (चावल आदि के) आटे और (तिलो के) चूर्ण स व्याप्त कर मुझ पुरुष को (बलि का) पशु बना दिया गया है ।

संस्कृत टीका – सर्वगात्रेषु=समस्ताङ्गेषु, विन्यस्तै =प्रदत्तै, रक्तचन्दन-हस्तकैः = रक्तचन्दनरचितहस्तचिन्हैः, पिष्टचूर्णावकीर्ण =तण्डुलपिष्टतिलचूर्णोद्-धूलित, च, अहम्=चारुदत्त, पुरुष =मानव (सन्), पशूकृत =बलिपशु कृत ॥

समास एव व्याकरण—(१) रक्तचन्दन०—रक्तचन्दनस्य हस्तकै =हस्ता एव हस्तका, हस्ता इव हस्तका वा, स्वार्थे इवार्थे वा कन् तै । पिष्टचूर्णावकीर्ण – पिष्टै चूर्णै अवकीर्ण पशूकृत–अपशु पशु सम्पद्यमान कृत इति पशूकृत पशु+

च्चि, दीर्घ कृ+क्त। (२) विन्यस्त--वि+नि+अस्+क्त । अवकीर्ण --अव+कृ+क्त।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य से प्रतीत होता है कि पहले वध्य के शरीर पर लाल चन्दन से हस्तछाप लगाया जाता था। उसे चावल एव तिलो इत्यादि के चूर्ण से भी खूब व्याप्त कर दिया जाता था। (२) प्रस्तुत श्लोक मे रूपकालङ्कार है। (३) श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है—पथ्यावक्त्र। लक्षण—'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम्।'

(अग्रतो निरूप्य।) अहो, तारतम्य नराणाम्। (सकरुणम्।)

[आगे देखकर] ओह! मनुष्यो की कितनी भीड है! [करुणा के साथ]

अमी हि दृष्ट्वा मदुपेतमेतन्मर्त्यं धिगस्त्वित्युपजातबाष्पाः।
अशक्नुवन्त परिरक्षितु मा स्वर्गं लभस्वेति वदन्ति पौराः ॥६॥

अन्वय—अमी, हि, पौरा, मदुपेतम्, एतत्, दृष्ट्वा, मर्त्यम्, धिक्, अस्तु, इति, (उक्त्वा), उपजातबाष्पा, माम्, परिरक्षितुम्, अशक्नुवन्त, स्वर्गम्, लभस्व, इति, वदन्ति ॥६॥

पदार्थ—पौरा=नगर के निवासी, मदुपेतम्=मेरे द्वारा पाये गये, उपजातबाष्पा=अश्रुयुक्त, परिरक्षितुम्=बचाने के लिये, अशक्नुवन्त=असमर्थ होते हुये, स्वर्गम्=स्वर्ग को, लभस्व=पाओ।

अनुवादः—ये पुरवासीगण मेरे द्वारा प्राप्त इस (अवस्था) को देखकर 'मरणशील मनुष्य को धिक्कार है' यह कहकर आँखो मे आँसू भरे हुये मेरी रक्षा करने मे असमर्थ होते हुये 'स्वर्ग प्राप्त करो' यह कह रहे हैं।।

संस्कृत टीका—अमी=एते, हि, पौरा=पुरवासिन, मदुपेतम्=मया प्राप्तम्, एतत्=मदीय दु खम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, मर्त्यम्=मनुष्यम्, धिक्=धिक्कारम्, अस्तु=वर्तताम्, इति=इत्थम् (उक्त्वा), उपजातबाष्पा=अश्रुयुक्ता. (सन्त), माम्=चारुदत्तम्, परिरक्षितुम्=परित्रातुम्, अशक्नुवन्त=अपारयन्त, असमर्था भवन्त इत्यर्थ, स्वर्गम्=सुरलोकम्, लभस्व=प्राप्नुहि, इति, वदन्ति=कथयन्ति॥

समास एव व्याकरण—(१) मदुपेतम्—मया उपेतम् अथवा मयि उपेतम्। (तृ त० वा स० त०) (२) मर्त्यम्—मृ+तन्+यत्। (३) उपेतम्—उप+इ=क्त। (४) दृष्ट्वा—दृश्+क्त्वा। (५) अस्तु—अस्+लोट्। (६) परिरक्षितुम्—परि+रक्ष्+तुमुन्। लभस्व—लभ्+लोट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में उपजाति छन्द है। लक्षण–"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।"

चाण्डालौ–अपसरतार्याः अपसरत। किं पश्यत। [ओशलध अज्जा, ओशलध। किं पेक्खध।]

दोनों चाण्डाल–हटो आर्यो! हटो। क्या देखते हो?

इन्द्रः प्रवाह्यमाणो गोप्रसवः सङ्क्रमश्च ताराणाम्।
सुपुरुषप्राणविपत्तिश्चत्वार्येतानि न द्रष्टव्यानि ॥७॥
[इन्दे प्पवाहिअन्ते गोप्पशवे शंकमे च ताला॰ण।
शुपुलिशपाणविपत्ती चत्तालि इमे ण दट्टव्वा ॥७॥]

अन्वय–प्रवाह्यमाण, इन्द्र, गोप्रसव, ताराणाम्, सङ्क्रम, च, सुपुरुषप्राणविपत्ति, च, एतानि, चत्वारि, न, द्रष्टव्यानि ॥७॥

पदार्थ–प्रवाह्यमाण =प्रवाहित किया जाता हुआ अर्थात् विसर्जन के लिये ले जाया जाता हुआ, गोप्रसव =गाय का प्रसव (ब्याना), ताराणाम् सङ्क्रम =तारों का टूट कर गिरना, सुपुरुष० =श्रेष्ठ पुरुष का वध।

अनुवाद–विसर्जन करने के लिए ले जाते हुये इन्द्रध्वज, गौ का प्रसव, नक्षत्र का अधःपतन तथा सत्पुरुष का वध–इन चारों को नहीं देखना चाहिए।

संस्कृत टीका–प्रवाह्यमाणः =नद्यादौ प्रवाहयितुं नीयमानः, इन्द्रः =इन्द्रध्वजः, गोप्रसवः =प्रसवकालिकी गौः, ताराणाम् =नक्षत्राणाम्, सङ्क्रमः =स्थानच्युतिः पतनमित्यर्थः, च, सुपुरुष० =श्रेष्ठपुरुषप्राणनाशः, एतानि =इमानि, चत्वारि =चतुःसङ्ख्याकानि, न द्रष्टव्यानि =नावलोकनीयानि।

समास एवं व्याकरण–१ गोप्रसवः–गवाम् प्रसवः। सुपुरुष०–सुपुरुषस्य प्राणविपत्तिः। २ प्रवाह्यमाणः =प्र+वह+णिच्+ शानच् (लट्)। ३ द्रष्टव्यानि–दृश्+तव्यत्।

विवृति

१ इन्द्रयज्ञ में जो ध्वज गाड़ा जाता है, उसे यज्ञ की समाप्ति पर जल में बहाया जाता है। उसका विसर्जन देखना अच्छा नहीं समझा जाता है–'उत्थापयेत्तु यत्नेन सर्वलोकस्य वै पुरः। रात्रौ विसर्जयेत् केतु विशेषोऽयं प्रपूजने॥' (कालिका–पुराण)। २ 'प्रसूतिः प्रसवे' इत्यमरः। ३ प्रस्तुत पद्य में वर्णित चार चीजों के

अतिरिक्त मैथुन का भी देखना निषिद्ध माना गया है–"मैथुनञ्च गोप्रसव केतुपात सतो वधम् । नक्षत्राणाञ्च सञ्चार शुभार्थी नावलोकयेत् ॥" (कालिकापुराण) ४ आर्याछन्द है । लक्षण–"यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"

एक –अरे आहीन्त, पश्य पश्य । [हण्डे आहीन्ता, पेक्ख पेक्ख ।]

एक (चाण्डाल)–अरे आहीन्त ! देखो देखो–

नगरीप्रधानभूते वध्यमाने कृतान्ताज्ञया ।
किं रोदित्यन्तरिक्षमथवाऽनभ्रे पतति वज्रम् ॥८॥
[ण अलीपधाणभूदे वज्झीअ ते कदतअण्णाए ।
किं लुअदि अ तलिक्खे आदु अणब्भे पडदि वज्जे॥ ८॥]

अन्वय–कृतान्ताज्ञया, नगरीप्रधानभूत, वध्यमाने, किम्, अन्तरिक्षम्, रोदिति, अथवा, अनभ्रम्, वज्रम्, पतति ? ॥८॥

पदार्थ –कृतान्ताज्ञया =यमराज की आज्ञा से, नगरीप्रधानभूते=नगरी के प्रधान (पुरुष चारुदत्त के), वध्यमाने=मारे जाने पर (वध की तैयारी होने पर), किम्=क्या, अन्तरिक्षम्=आकाश, रोदिति=रो रहा है, अनभ्रम्=बिना बादलों का, वज्रम्=वज्र ।

अनुवाद – यमराज (अथवा यमराज तुल्य राजा पालक) के आदेश से नगरी के प्रधानपुरुष का वध के लिये प्रस्तुत किए जाने पर क्या आकाश रो रहा है ? अथवा बिना बादल के वज्रपात हो रहा है ।

संस्कृत टीका—कृतान्ताज्ञया=यमतुल्यशासकस्याज्ञया, नगरीप्रधानभूते= नागरिकशिरोमणौ, वध्यमाने=हन्यमाने, किम्, अन्तरिक्षम्=गगनम्, रोदिति विलपति, अथवा, अनभ्रम्=मेघशून्यम्, वज्रम्=अशनि, पतति=आकाशान्नीचै-रायाति ॥

समास एवं व्याकरण—कृतान्ताज्ञया—कृतान्तस्य आज्ञया । नगरीप्रधानभूते= नगर्या प्रधानभूते । अनभ्रम्—नास्ति अभ्रम् यत्र तद् अनभ्रम् यथा स्यात् तथा (पतति का क्रिया विशेषण) अथवा नास्ति अभ्रम् यस्य तत् वज्रम्—बिना बादल का वज्र ।

विवृति

१. 'कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु' इत्यमरः । २ 'नभोऽन्तरीक्षं गगन-मनन्तं सुरवर्त्म खम्' इत्यमरः । ३ गवाक्षों में मुख निकाले हुए नारियाँ चारुदत्त को

देखकर अश्रु वर्षा कर रही थी। ४ 'अनभ्रे'—पाठान्तर है, बादल बिना ही, न अभ्रम् अनभ्र तस्मिन्। ५ 'शतकोटि स्वरु शम्बो दम्भोलि—रशनिर्द्वयो' इत्यमर। ६. प्रस्तुत पद्य में सन्देहालङ्कार है। ७ आर्या छन्द है। ८ कुछ टीकाकारों के अनुसार गाथा छन्द है।

द्वितीय —अरे गोह, [अले गोहा,]

दूसरा (चाण्डाल)—अरे गोह!

न च रोदित्यन्तरिक्ष नैवानभ्र पतति वज्रम्।
महिलासमूहमेघान्निपतति नयनाम्बु धाराभि ॥९॥
[ण अ लुअदि अ तलिक्खे णेय अणब्भे पडदि वज्जे।
महिलाशमूहमेहे निवडदि णअणबु धाराहि ॥९॥]

अन्वय—न, च, अन्तरिक्षम्, रोदिति, नैव, अनभ्रम्, वज्रम्, पतति, (किन्तु) महिलासमूहमेघात्, नयनाम्बु, धाराभि, निपतति ॥९॥

पदार्थ —अन्तरिक्षम्=आकाश, रोदिति=रो रहा है, अनभ्रम्=बिना बादलो के, वज्रम्=वज्र, महिला०=स्त्रियो के समूह रूपी बादल से, नयनाम्बु=आंसू, धाराभि=धाराओ से, निपतति=गिर रहा है।

अनुवाद —न तो आकाश रो रहा है, बिना बादल के वज्रपात ही हो रहा है किन्तु नारीवृन्दरूप मेघ से नेत्र-जल धाराओं म गिर रहा है।

संस्कृत टीका—न च=नैव, अन्तरिक्षम्=गगनम्, रोदिति=रोदन करोति, अनभ्रम्=अवलाहकम्, वज्रम्=अशनि, पतति=आकाशादागच्छति, (किन्तु) महिलासमूहमेघात्=नारीवृन्दजलदात्, नयनाम्बु=अश्रु, धाराभि=प्रवाहै, निपतति=वर्षति।

समास एव व्याकरण-१ महिलासमूहमेघात्=महिलानाम् समूह स एव मेघ तस्मात्। २ रोदिति-रुद्+लट्। पतति-पत्+लट्।

विवृति

१ 'चारुदत्त' के वध से सारी नगरी-नारियाँ रो रही हैं। २ प्रस्तुत पद्य म महिला समुदाय का मेघ के साथ एव आंसुओं का वर्षा के जल स साम्य गम्यमान होने से एकदेशविवर्तिनी उपमालङ्कार है। ३ 'अनभ्रे'—पाठान्तर है, न अभ्रम् अनभ्रम् तस्मिन्। ४ कुछ टीकाकारों के अनुसार रूपकालङ्कार है। ५ उपगीति छन्द है। लक्षण—"आर्यापरार्धतुल्ये दलद्वये प्राहुरुपगीतिम्।"

अपि च। [अवि अ।]

और भी—

वध्ये नीयमाने जनस्य सर्वस्य रुदतः ।
नयनसलिलैः सिक्तो रथ्यातो नोन्नमति रेणुः ॥१०॥

[वज्झम्मि णीअमाणे जणश्श शव्वश्श लोदमाणश्श।
णअणशलिलेहिं शित्ते लच्छादो ण उण्णमइ लेणू ॥१०॥]

अन्वय–वध्ये, नीयमाने, रुदत , सर्वस्य, जनस्य, नयनसलिलैः, सिक्त, रेणु, रथ्यात, न, उन्नमति ॥१०॥

पदार्थ–वध्ये=जिसे प्राणदण्ड की आज्ञा मिल चुकी है ऐसे (चारुदत्त के), नीयमाने–ले जाये जाने पर (अर्थात् ले जाये जाने के समय), रुदत =रोते हुए, नयनसलिलैः =आँखो के जल से (अर्थात् आँसुओं से), सिक्त =भीगी हुई, रेणु = धूलि, रथ्यात =गली से, न उन्नमति=नही उठती है अथवा नही उडती है।

अनुवाद – वध्य (चारुदत्त को ले जाते समय रोते हुए समस्त जनो के अश्रु-जल से आर्द्र धूलि गली से नहीं उठ रही है।

संस्कृत टीका–वध्ये=प्राणदण्डार्हे (चारुदत्ते),नीयमाने=प्राप्यमाणे (सति), रुदत =विलपत सर्वस्य=निखिलस्य, जनस्य, =लोकस्य नयनसलिलैः=नेत्राम्बुभि, सिक्त =आर्द्र , रेणु -धूलि रथ्यात =प्रतोल्या , न उन्नमति=न उत्तिष्ठति।

समास एवं व्याकरण-(१) नयनसलिलैः–नयनानाम् सलिलैः । वध्ये–वधम् अर्हतीति वध्य वध+यत्, तस्मिन् । (२) नीयमाने–नी+लट् कर्मणि–शानच् । (३) रुदत –रुद्+शतृ । (४) सिक्त –सिच्+क्त । (५) रथ्यात –रथ्या+तसिल् । (६) उन्नमति–उत्+नम्+लट् ।

विवृति

(१) रेणुर्द्वयो स्त्रिया धूलि पांशुर्ना न द्वयो रज' इत्यमर । (२)'रथ्या प्रतोली विशिखा' इत्यमर । (३) गली से धूल का सम्बन्ध होने पर भी उस सम्बन्ध का उक्त प्रकार से कथन करने से अतिशयोक्ति अलङ्कार है। (४) आर्या छन्द है। लक्षण–"यस्या पाद प्रथम द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि अष्टादश द्वितीय चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

चारुदत्त –(निरूप्य सकरुणम् ।)

चारुदत्त–[देखकर करुणा के साथ]

एता. पुनर्हर्म्यगता स्त्रियो मां वातायनार्धेन विनि सृतास्याः ।
हा चारुदत्तेत्यभिभाषमाणा वाष्पं प्रणालीभिरिवोत्सृजन्ति ॥११॥

अन्वय–हर्म्यगता , एता , स्त्रिय , पुन , वातायनार्धेन, विनि सृतास्या , माम् (अभिलक्ष्य) हा चारुदत्त !' इति, अभिभाषमाणा , प्रणालीभि, इव वाष्पम्, उत्सृजन्ति ॥११॥

पदार्थ—हर्म्यगता = भवनों में अवस्थित, वातायनार्धेन = खिड़की के एक भाग से, विनि सृतास्या = मुँह निकाले हुई, अभिनापमाणा = कहती हुई, प्रणालिभि = परनालो से, बाष्पम् = आँसू, उत्सृजन्ति = वहा रही हैं ॥

अनुवाद—भवनो म स्थित ये स्त्रियाँ पुन खिड़की के आधे हिस्से से मुख निकाल कर मुझे 'हाय चारुदत्त' इस प्रकार कहती हुई मानो परनाला से अश्रुजल वहा रही हैं।

संस्कृत टीका—हर्म्यगता = प्रासादस्थिता, एता = परिदृश्यमान, स्त्रिय = नार्य, पुन = मुहु = वातायनार्धेन = गवाक्षार्धभागेन, विनि सृतास्या = बहिष्कृतमुखा. माम् = चारुदत्तम्, 'हा' = खेदेऽव्ययपदम् चारुदत्त ! इति = इत्थम्, अभिमाषमाण = कथयन्त्य, प्रणालिभि = जलनि सरणमार्गे, इव = यथा, बाष्पम् = अश्रुजलम्, उत्सृजन्ति = मुञ्चन्ति ।

समास एव व्याकरण—(१) वातायनार्धेन—वातस्य वायो अयनम् येन तत् वातायनम् तस्य अर्धेन । विनि सृतास्या = विनिर्गतानि आस्यानि यासाम् ता । (२) गता—गम् + क्त + टाप् । अभिभाषमाणा – अभि + भाष् + शानच् + टाप् । उत्सृजन्ति—उत् + सृज् + लट् ।

विवृति

(१) 'हर्म्यादि घनिना वास प्रासादो देवभूभुजाम्' इत्यमर. । (२) 'वातायन गवाक्ष' इत्यमर (३) 'प्रणाली पयस पदव्याम्' इत्यमर । (४) 'प्रणालीभिरिव' मे जात्युत्प्रेक्षालङ्कार है । (५) प्रस्तुत पद्य म प्रयुक्त छन्द का नाम है—इन्द्र वज्रा । लक्षण—"जतौ तु वशस्थमुदीरित जरौ । तच्चेन्द्रवज्रा प्रथमाक्षरे गुरौ ॥"

चाण्डालौ—आगच्छ रे चारुदत्त, आगच्छ । इद घोषणस्थानम् । आहत डिण्डिमम् । घोषयत घोषणाम् । [आअच्छ ले चालुदत्ता, आअच्छ । इम घोषणट्ठाणम् आहणेध डिण्डिमम् । घोशेध घोशणम् ।]

दोनो चाण्डाल—आ रे चारुदत्त ! आ । यह घोषणा का स्थान है । ढोल पीटो । घोषणा करो ।

उभौ—शृणुतार्या शृणुत । एप सार्थवाहविनयदत्तस्य नप्ता सागरदत्तस्य पुत्रक आर्यचारुदत्तो नाम । एतेन किलाकार्यकारिणा गणिका वसन्तसेनार्यकल्य वर्तस्य कारणाच्छून्य पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण मारितेति एप सलोप्त्रो गृहीत, स्वय च प्रतिपन्न । ततो राजा पालकेन वयमाज्ञप्ता एत मारयितुम् । यद्य पर ईदृशमुभयलोक विरुद्धमकार्य करोति तमपि राजा पालक एवमेव शास्ति । [शुणाध अज्जा, शुणाध । एशे शत्थ—वाहविणअदत्तश्श णत्तिके शाअलदत्तश्श पुत्तके अज्जचालुदत्ते णाम । एदिणा किल अकज्जकालिणा गणिआ वशन्तशेणा अत्यकल्ल—वतश्शकालणादो शुण्ण पुप्फकलण्डअजिण्णुज्जाण पवेशिअ बाहुपाशबल्लक्कालेण मालिदे

त्ति एशे शलोत्त गहिदे, शअ अ पडिवण्णे । इदो लण्णा पालएण अह्मे आणत्ता एद मालेदुम् । जादि अवले ईदिश उभअलोअविलुद्ध अकज्ज कलेदि त पि लाआ पालए वव्वं ज्जेव शाशदि ।]

दोनो—सुनो आर्यो ! सुनो । यह व्यापारी विनयदत्त का नाती (पौत्र) सागरदत्त का पुत्र आर्य चारुदत्त है । इस कुकृत्यकारी ने वेश्या वसन्तसेना को कलेवा जैसे (तुच्छ) धन के निमित्त, सूने पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे मे ले जाकर बाहुपाश से बलपूर्वक मार दिया । यह चोरी के धन सहित पकडा गया और इसने स्वय स्वीकार कर लिया । तब राजा पालक ने हमको इसे मारने की आज्ञा दी है । यदि कोई दूसरा दोनो लोको के विरुद्ध ऐसा कुकार्य करेगा तो उसे भी राजा पालक इसी प्रकार दण्ड देंगे ।

विवृत्ति

(१) नप्ता=पौत्र, नाती । (२) सलोप्त्र =चोरी के ढग के सहित । लुप्यते अन्तर्हित क्रियते इति लोप्त्रम्, लुप्+ष्ट्रन् । 'चौरिका स्तैन्यचौर्ये च स्तेय लोप्त्रन्तु तद्धनम्' इत्यमर । लोप्त्रेण सह इति सलोप्त्र [ब० स०] । [३] प्रतिपन्न—स्वीकार कर लिया, प्रति+पद+क्त । [४] गृहीत —पकडा गया, ग्रह्+क्त ।

चारुदत्त—(सनिर्वेदम् स्वगतम् ।)

चारुदत्त—[दु ख के साथ अपने आप]

मखशतपरिपूत गोत्रमुद्भासित मे
सदसि निविडचैत्यब्रह्मघोषै: पुरस्तात् ।
मम मरणदशाया वर्तमानस्य पापै-
स्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम् ॥१२॥

अन्वय—पुरस्तात्, मखशतपरिपूतम्, (यत्), मे, गोत्रम्, सदसि, निविडचैत्यब्रह्मघोषै, उद्भासितम्, (आसीत्), मरणदशायाम्, वर्तमानस्य, मम, तत् पापै, असदृशमनुष्यै, घोषणायाम्, घुष्यते ॥१२॥

पदार्थ—पुरस्तात्=पहले, मखशतपरिपूतम्=सैकडो यज्ञो से पवित्र, मे=मेरा, गोत्रम्=कुल, सदसि=(धार्मिक) सभा मे, निविड=(आमन्त्रित) लोगो की भीड से युक्त अथवा ब्राह्मण और पुरोहितो की भीड से युक्त (प्रो० काले के अनुसार) चैत्य=यज्ञ का स्थान, यज्ञ शाला, ब्रह्मघोषै=वेदपाठो से, उद्भासितम्=उज्ज्वल अथवा प्रकाशित, मरणदशायाम्=मरने की हालत मे, वर्तमानस्य=विद्यमान असदृशमनुष्यै =अयोग्य जनो के द्वारा, घोषणायाम्=घोषणा मे अथवा घोषणा के स्थान मे, घुष्यते=घोषित किया जा रहा है ।

अनुवाद—पहले सैकड़ो यज्ञो मे पवित्र (जो) मेरा वंश सभा मे जनाकीर्ण यज्ञशाला की वेद ध्वनियों से प्रकाशित हुआ था, मरणावस्था मे विद्यमान मेरा वह वंश पापी एव अयोग्य जनो के द्वारा घोषणा-स्थल म घोषित किया जा रहा है।

संस्कृत टीका—पुरस्तात् =पूर्वकाले, मखशतपरिपूतम् = अगणितयज्ञानुष्ठानेन पवित्रीकृतम्, मे=मम चारुदत्तस्य, गोत्रम्=कुलम्, सदसि=धार्मिक-सभायाम्, निबिडचैत्यब्रह्मघोषैं = जनसकुलयज्ञशालावेदध्वनिमि, उद्भासितम् = उत्कर्षेण प्रकाशितमासीत्, मरणदशायाम् = मृत्युसमय, वर्तमानस्य=स्थितस्य, मम=पवित्रान्वयस्य चारुदत्तस्य, तत् = गोत्रम्, पापैं = पापशीलैं, असदृशमनुष्यैं = अयोग्यजनै, घोषणायाम्=घोषणास्थले, घुष्यते=उच्चैं कीर्त्यते ॥

समास एव व्याकरण— (१) मखशतपरिपूतम्—मखानाम् शतै परिपूतम्। निबिड०—निबिडानि यानि चैत्यानि तेषु ब्राह्मणाम् घोषैं इति यावत्। मरणदशायाम् मरणस्य दशायाम्, असदृशमनुष्यैं—असदृशैं मनुष्यैं। (२) चित्या=अग्नि, चि+क्यप्। चित्याया इद चैत्यम्-चित्या+अण्=चैत्यम्। उद्भासितम्—उद्+भास्+क्त। वर्तमानस्य—वृत्+शानच्। घोषणा-घुष्+ल्युट्+टाप्। घुष्यते-घुष्+यक्+लट्।

विवृति

(१) 'यज्ञ सवोध्वरो याग सप्ततन्तुर्मख क्रतु' इत्यमर। (२) 'सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ। वशोऽन्ववाय सन्तान' इत्यमर। (३) 'वेदस्तत्व तपो ब्रह्म' इत्यमर। (४) A contrast is intended between असदृशमनुष्य घोष and ब्रह्मघोष and सदस् and घोषणा स्थान वदघोषप्रतिनिधिर्दोषघोष, मखसद प्रतिनिधिश्च घोषणस्थान सवृत्तमिति महानय पूर्वापरविपर्यय इव भाव (श्रीनिवासाचार्य)। (५) प्रस्तुत पद्य मे ब्रह्मघोषणा एव हत्याघोषणा रूप दो विपरीत बातो का एक स्थान पर वर्णन करने के कारण विषमालङ्कार है। लक्षण-'विरूपयो सघटना या च तद्विषम मतम्' ॥सा० द०॥ (६) विमर्शसन्धि का प्रसङ्ग नामक अङ्ग है। लक्षण-'प्रसङ्गो गुरुकीर्तनम् ॥' सा० द० ॥ (७) प्रस्तुत श्लोक म प्रयुक्त छन्द का नाम है—मालिनी। लक्षण—"ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकैं ॥" (८) धीरप्रशान्त नायक चारुदत्त के गुणो का प्रकटीकरण प्रस्तुत श्लोक से होता है।

(उद्वीक्ष्य कर्णौ पिधाय।) हा प्रिये वसन्तसेने,

[ऊपर की ओर देखकर, कानो को बन्द करके] हाय प्रिये! वसन्तसेने!

शशि विमलमयूखशुभ्रदन्ति! सुरुचिरविद्रुमसनिभाधरोष्ठि!।
तव वदनभवामृत निपीय कथमवशो ह्ययशोविष पिबामि? ॥१३॥

अन्वय—शशिविमलमयूखशुभ्रदन्ति ! सुरुचिरविद्रुमसन्निभाधरोष्ठि ! तव वदनभवामृतम्, निपीय, (अधुना), अवश, (अहम्), अयशोविषम्, कथम् पिबामि ? ॥१३॥

पदार्थ—शशि० =हे निर्मल चन्द्रकिरणों के समान सफेद दाँतो वाली, सुरु-चिर० =हे अत्यन्त मनोहर मूँगे के समान अधरोष्ठ वाली, वदनभवामृतम् =मुख से उत्पन्न अमृत को निपीय =पीकर अवश =परवश हुआ, अयशोविषम् =अपकीर्ति-रूपी विष को, पिबामि =पी रहा हूँ ॥

अनुवाद—हे चन्द्रमा की निर्मल किरणों के समान उज्ज्वल दाँतो वाली ! मनोरम प्रवाल के तुल्य अधरोष्ठ वाली ! तुम्हारे मुख मे उत्पन्न अमृत का पान कर (अब) पराधीन हुआ मैं अपयश रूपी विष कैसे पी रहा हूँ ?

संस्कृत टीका—शशिविमल० =हा चन्द्रकिरणतुल्यदशने ! सुरुचिर० = सुन्दरविद्रुमसदृशाधरोष्ठि । तव = ते, वदनभवामृतम् =मुखोत्पन्नामृतम्, निपीय = पीत्वा (अधुना) अवश =परवश (अहम्) अयशोविषम् =दुष्कीर्तिविषम्, कथम् = केन प्रकारेण, पिबामि =पान करोमि ! शृणोमीत्यर्थ ॥

समास एवं व्याकरण—(१) शशिविमल०—शशिन विमला मयूखा तद्वत् शुभ्रा दन्ता यस्यास्तत्सम्बुद्धौ । सुरुचिर०—सुतरा रुचिर य विद्रुम तत्सन्निभ अधस्ताद्वर्तमान ओष्ठ अथवा अधरेण सहित ओष्ठ =उत्तरोष्ठ यस्या सा तत्स-म्बुद्धौ । अधरोष्ठ—अधरश्च ओष्ठश्च इति अधरोष्ठम् (द्व० स०) । अथवा अधर-सहित ओष्ठ अधरोष्ठ (मध्य० स०) अथवा अधरश्च असौ ओष्ठश्च इति अधरोष्ठ (कर्म० स०) । (२) निपीय–नि+पा+क्त्वा (ल्यप्) । पिबामि—पा+लट् (पिबादेश) ।

विवृति

(१) 'विद्रुम पुंसि प्रवाल पुनपुंसकम्' इत्यमर । (२) अमृत के बाद विष पीना सर्वथा अनुचित, असह्य तथा विरुद्ध है । (३) 'अयशोविषम्' मे निरङ्ग रूपका-लङ्कार है । (४) अमृतपान एव विषपान दो विरुद्ध वस्तुओं का वर्णन किया गया है, अत विषमालङ्कार है । (५) श्लोक के पूर्वार्द्ध मे लुप्तोपमालङ्कार है । (६) पुष्पि-ताग्रा छन्द है—"अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥" (७) सभी अलङ्कार यहाँ निरपेक्ष हैं, इसलिए संसृष्टि अलङ्कार भी है ।

आयरतार्या, अपमरत । [आदत्य अज्जा, आदलय ।]

(चाण्डाल)—हटा आर्या ! हटा ।

एष गुणरत्ननिधिः सज्जनदुःखानामुत्तरणसेतुः ।

अमुवर्णं मण्डनकमपनीयतेऽद्य नगरीतः ॥१४॥

[एशे गुणलअणणिही शज्जणदुक्खाण उत्तालणशेदू ।
असुवण्ण मडणअ ज्जवणीअदि अज्ज णअलीदो ॥१४॥

अन्वय—गुणरत्ननिधि, सज्जनदुःखानाम्, उत्तरणसेतु, असुवर्णम्, मण्डनकम्, एष, (चारुदत्त), अद्य, नगरीत, अपनीयते ॥१४॥

पदार्थ—गुणरत्ननिधि =(दया, उदारता आदि) गुणो का खजाना, सज्जनदुःखानाम् = सज्जनो के दुःखो का, उत्तरणसेतु = पार करने के लिये पुल, असुवर्णम् = बिना सोने का, मण्डनकम् = आभूषण, नगरीत = नगरी से, अपनीयते = दूर किया जा रहा है।

अनुवाद—गुण रूपी रत्नो का भण्डार (सागर), सत्पुरुषो की विपत्ति को पार करने मे सेतु रूप बिना सुवर्ण का अलङ्करण यह (चारुदत्त) आज नगरी से दूर किया जा रहा है।

संस्कृत टीका—गुणरत्ननिधि = सद्गुणनिधि, सज्जनदुःखानाम् = सत्पुरुष-कष्टानाम्, उत्तरणसेतु = लङ्घनसाधनम्, असुवर्णम् = अकनकघटितम्, मण्डनकम् = आभूषणम्, एष = चारुदत्त, अद्य = अस्मिन् दिने, नगरीत = उज्जयिनीत, अपनीयते दूरीक्रियते ॥

समास एव व्याकरण—(१) गुणरत्ननिधि गुणा एव रत्नानि तेषाम् निधि, सज्जनदुःखानाम् सज्जनानाम् दुःखानि तेषाम्। उत्तरणसेतु—उत्तरणे सेतु। असुवर्णम्—नास्ति सुवर्णम् यस्मिन् तत्। (२) अपनीयते—अप+नी+[कर्मवाच्य] लट्। निधि—नि+धा+कि। मण्डनकम्—मडि+ल्युट्+क [स्वार्थे]। अपनीयते—अप+नी+यक्+लट् [कर्मवाच्य]।

विवृति

(१) 'रत्न मणि' इत्यमर। (२) 'सेतुरालौ' इत्यमर। (३) 'अपसुवर्ण मण्डनकम्'—पाठान्तर है, नास्ति सुवर्णमण्डन यस्मिन् तत् यथा स्यात् तथा। (४) मरते हुए व्यक्ति के कण, नासिका आदि मे सुवर्ण पहनाया जाता है। यह प्रसिद्धि है। (५) प्रस्तुत पद्य मे रूपकालकार है। (६) गाथा छन्द है।

अन्यच्च। [अण्ण च।]

और भी।

सर्वं खलु भवति लोके लोकः सुखसस्थितानां चिन्तायुक्त ।
विनिपतितानां नराणां प्रियकारी दुर्लभो भवति ॥१५॥
[शव्वे खु होइ लोए लोए शुहशठिदाण तत्तिल्लः।
विणिवडिदाण णलाण पिअकाली दुल्लहो होदि ॥१५॥]

अन्वय—लोके, सर्व लोक खलु, सुखसस्थितानाम्, चिन्तायुक्त, भवति, (किन्तु), विनिपतितानाम्, नराणाम्, प्रियकारी, दुर्लभ, भवति ॥१५॥

पदार्थ—लोके=ससार मे, सुखसस्थितानाम्=सुखी व्यक्तियो का, चिन्तायुक्त=शुभ-चिन्तक, विनिपतितानाम्=आपत्ति मे पडे हुए, नराणाम्=मनुष्यो का, प्रियकारी=हित करने वाला, दुर्लभ=दुर्लभ।

अनुवाद—ससार मे सब लोग सुखी व्यक्तियो के शुभ-चिन्तक होते हैं, (किन्तु) विपद्ग्रस्त मनुष्यो का हितकर्ता दुर्लभ होता है।

सस्कृत टीका—लोके=ससारे, सर्व=निखिल, लाक=जन, खलु=निश्चयेन, सुखसस्थितानाम्=सुखिनाम् जनानाम्, चिन्तायुक्त=शुभचिन्तक, भवति=अस्ति, (किन्तु) विनिपतितानाम्=विपन्नानाम्, नराणाम्=मनुष्याणाम्, प्रियकारी=हितकर्ता, दुर्लभ=दुष्प्राप, भवति=जायते, वर्तते इत्यर्थ।

समास एव व्याकरण—(१) सुखसस्थितानाम् सुखे सस्थितानाम्। (२) सस्थित—सम्+स्था+क्त। युक्त—युज्+क्त। विनिपतित—वि+नि+पत्+क्त।

विवृति

(१) भाव यह है कि इस चारुदत्त के, सम्पत्ति से समृद्ध होने पर, अनक अनुयायी एव शुभचिन्तक थे, किन्तु इस विपत्ति के समय मे कोई भी हितकारी नही दिखाई पडता है। (२) प्रस्तुत पद्य मे प्रस्तुत जन सामान्य से प्रस्तुत चारुदत्तरूप पुरुष विशेष की प्रतीति होने से अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है। (३) पृथ्वीधर के अनुसार प्रस्तुत श्लोक मे गाथा छन्द है।

चारुदत्त—(सर्वतोऽवलोक्य।)

चारुदत्त—[सब ओर देखकर]

अमी हि वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्रा. प्रयान्ति मे दूरतर वयस्या।
परोऽपि बन्धुः सुखसस्थितस्य मित्र न कश्चिद्विषमस्थितस्य ॥१६॥

अन्वय—अमी, मे, वयस्या, वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्रा, हि, दूरतरम्, प्रयान्ति, (सत्यम्), सुखसस्थितस्य, पर, अपि, बन्धु, (भवति, किन्तु), विषमस्थितस्य, कश्चित्, मित्रम्, न, भवति ॥१६॥

पदार्थ—वयस्या=मित्र, वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्रा=वस्त्र के छोर से ढके हुए मुख वाले, दूरतरम्=दूर-दूर, प्रयान्ति=जा रहे हैं, सुखसस्थितस्य=सुख की अवस्था मे विद्यमान व्यक्ति का, विषमस्थितस्य=विपत्ति मे पडे हुए का।

अनुवाद—ये मेरे मित्रगण वस्त्र के आँचल से मुख ढके हुए बहुत दूर जा रहे है। (सच है) सुखी जन के अनात्मीय गण भी बन्धु हो जाते हैं, किन्तु विपत्ति मे

स्थित जन का कोई मित्र नहीं होता है ।

संस्कृत टीका—अमी = दूरतो दृश्यमान, मे = मम चारुदत्तस्य, वयस्या = सुहृद, वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्रा = पटाञ्चलाच्छादिताननाः, हि = निश्चितम्, दूरतरम् = अतिदूरम्, प्रयान्ति = गच्छन्ति, सुखसस्थितस्य = आनन्दवतमानस्य, पर अपि = अन्योऽपि, बन्धु = सुहृद् (भवति, किन्तु) विषमस्थितस्य = विपन्नावस्थापन्नस्य, कश्चित् = कोऽपि, मित्रम् = सुहृत्, न भवति ।

समास एव व्याकरण—(१) वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्रा—वस्त्रान्तन निरुद्धम् वक्त्रम् यैस्ते तादृशा । सुखसस्थितस्य—सुखेसस्थितस्य । विषमस्थितस्य—विषमे स्थितस्य । (२) वयस्या—वयसा तुल्या वयस्या वयस्+यत् 'नौवयोधर्म' इति सूत्रेण । निरुद्ध-नि+रुध्+क्त । प्रयान्ति—प्र+या+लट् । स्थित—स्था+क्त ।

विवृति

[१] 'वयस्य स्निग्ध सवयाऽथ मित्र सखा सुहृत्' इत्यमर । [२] प्रस्तुत पद्य मे अर्थान्तरन्यास अलकार है । उपजाति छन्द है । लक्षण—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौ यदीया-वुपजातयस्ता ।"

चाण्डालौ—अपसारण कृतम् । विविक्तो राजमार्ग । तदानयतैन दत्तवध्य-चिह्नम् । [ओशालण किदम् । विवित्त लाअमग्गम् । ता आणेध एद दिण्णवज्झ-चिण्हम् ।]

दोनो चाण्डाल—हटाने का कार्य कर दिया । राजमार्ग खाली है अत दिये गये वध्य (व्यक्ति) के चिह्न वाले इस (चारुदत्त) को ले आओ ।

(चारुदत्तो नि श्वस्य 'मैत्रेय भो किमिदमद्य' (९/२९) इत्यादि पठति ।)

[चारुदत्त लम्बी साँस लेकर 'मैत्रेय ! भो किमिदमद्य' (९/२९) इत्यादि पढता है ।]

(नेपथ्य ।)

[नेपथ्य म]

हा तात, हा प्रियवयस्य । [हा ताद, हा पिअवअस्स ।]

हाय पिता जी , हाय प्रिय मित्र !

चारुदत्त—(आकर्ण्य सकरुणम् ।) भो स्वजातिमहत्तर, इच्छाम्यह भवत सकाशात्प्रतिग्रह कर्तुम् ।

चारुदत्त—[सुनकर करुणा के साथ] हे अपनी जाति के प्रधान ! मैं आपसे दान लेना चाहता हूँ ।

चाण्डालौ–किमस्माक हस्तात्प्रतिग्रह करोषि । [किं अह्माण इत्यादो पडिग्गह कलेशि ।]

दोनो चाण्डाल–क्या हमारे हाथ से दान लोगे ?

चारुदत्त–शान्त पापम् । नापरीक्ष्यकारी दुराचार पालक इव चाण्डाल । तत्परलोकार्थं पुत्रमुख द्रष्टुमभ्यर्थये ।

चारुदत्त–पाप शान्त हो, चाण्डाल पालक के समान बिना विचारे काम करने वाला तथा दुराचारी नही है । तो मैं परलोक (मे शुभगति पाने) के लिए पुत्र का मुख देखने की प्रार्थना करता हू ।

चाण्डालौ–एव क्रियताम् । [एव्व कलीअदु ।]

दोनो चाण्डाल–ऐसा कर लीजिए ।

(नेपथ्ये ।)

[नेपथ्य मे]

हा तात, हा पित । [हा ताद, हा आवुक ।]

हाय तात ! हाय पिता !

(चारुदत्त श्रुत्वा सकरुणम् 'भो स्वजातिमहत्तर' इत्यादि पठति) ।

[चारुदत्त सुनकर करुणा के साथ 'हे अपनी जाति के प्रधान ।' इत्यादि पढता है ।]

चाण्डालौ–ह पौरा क्षणमन्तर दत्त । एष आर्य चारुदत्त पुत्रमुख पश्यतु । (नेपथ्याभिमुखम् ।) इत इत । आगच्छ रे दारक, आगच्छ । [अले पउला, खण अन्तल देघ । एशे अज्जचालुदत्ते पुत्तमुह पेक्खदु । अज्ज, इदो इदो । आअच्छ ले दालआ, आअच्छ ।]

दोनो चाण्डाल–हे नगरनिवासियो थोडी देर के लिए रास्ता दे दो । यह आर्य चारुदत्त पुत्र का मुख देख ले । [नेपथ्य की ओर] आर्य ! इधर, इधर । आ रे बालक ! आ ।

(तत प्रविशति दारकमादाय विदूषक ।)

[तब बालक को लेकर विदूषक प्रवेश करता है]

विदूषक–त्वरता त्वरता भद्रमुख पिता ते मारयितु नीयते । [तुवरदु तुवरदु भद्दमुहो । पिदा ते मारिदु णीअदि ।]

विदूषक–कल्याणमय मुख वाला (बालक) शीघ्रता करे, शीघ्रता करे । तुम्हारे पिता मारने के लिए ले जाये जा रहे है ।

दारक–हा तात, हा पित । [हा ताद, हा आवुक ।]

बालक–हाय तात ! हा पिता !

विदूषक -हा प्रियवयस्य, कुत्र मया त्वं द्रष्टव्यः । [हा पिअवअस्स, कहिं मए तुमं पेक्खिदव्वो ।]

विदूषक-हाय प्रियमित्र ! (अब) कहाँ तुम्हें देखूंगा ?

विवृति

(१) अपसारणम्=हटाना। (२) विविक्तः=शून्य, 'विविक्तौ पूत विजनौ' इत्यमरः। (३) दत्तवध्यचिह्नम्=पहनाया गया है वध योग्य चिह्न जिसको। (४) एनम्=इसको। (५) स्वजातिमहत्तर !=अपनी जाति का मुखिया (६) प्रतिग्रहम्=दान। (७) अपरीक्ष्यकारी=बिना विचारे कार्य करने वाला। (८) परलोकार्थम्=परलोक के लिए। (९) अभ्यर्थये=प्रार्थना कर रहा हूँ। (१०) हे पौरा !=हे नगर के निवासियो ! (११) अन्तरम्=स्थान, अवकाश। (१२) दारकम्=बालक को। (१३) भद्रमुख=सौम्य मुख वाला। (१४) आवुक= पिता। 'अथावुक पिता' इत्यमरः। (१५) 'पुन्नाम्नो नरकात् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवः ॥ मनुस्मृति ॥

चारुदत्त -(पुत्रं मित्रं च वीक्ष्य।) हा पुत्र, हा मैत्रेय। (सकरुणम्।) भो, कष्टम्।

चारुदत्त-[पुत्र और मित्र को देखकर] हाय पुत्र ! हाय मैत्रेय ! [करुणा के साथ] अजी ! कष्ट है।

चिरं खलु भविष्यामि परलोके पिपासितः।
अत्यल्पमिदमस्माकं निवापोदकभोजनम् ॥१७॥

अन्वय -(अहम्), परलोके, खलु, चिरम्, पिपासितः, भविष्यामि, (यत), अस्माकम्, निवापोदकभोजनम्, इदम्, अत्यल्पम्, (अस्ति) ॥१७॥

पदार्थ -परलोके=परलोक में, चिरम्=बहुत दिनों तक, पिपासितः= प्यासा, निवापोदकभोजनम्=पितृतर्पण के जल रूपी भोजन का दाता, अत्यल्पम्= बहुत छोटा।

अनुवाद -(मैं) परलोक में चिरकाल तक पिपासाकुल रहूँगा, (क्योंकि) हमारे पितृतर्पण के जल रूप भोजन का दाता यह (बालक) बहुत छोटा है ॥

संस्कृत टीका-(अहम्) परलोके=लोकान्तरे, खलु=निश्चयेन, चिरम्= बहुकालपर्यन्तम्, पिपासितः=पिपासाकुलः, भविष्यामि, (यत) अस्माकम्=मम, निवापोदकभोजनम्=पितृतर्पणसलिलपानम्, इदम्=एतदपत्यम्, अत्यल्पम्=स्वल्पम् (अस्ति) ॥

समास एवं व्याकरण—१ निवापोदकभोजनम्-निवापस्य उदकम् तस्य भोजनम् यस्मात् तत्। २ पिपासितः-पा+सन्, इत्वादि+क्त भविष्यामि—

भू+लृट् ।

विवृति

१ 'पितृदान निवाप स्यात्' इत्यमरः । २ भाव यह है कि पुत्र द्वारा पितृतर्पण मे दिया गया जल पितरो को भोजन रूप मे प्राप्त होता है किन्तु चारुदत्त का पुत्र अभी बालक ही था अत उसके द्वारा दी गई जलाञ्जलि बहुत छोटी होती और जब तक पुत्र बडा न होता तब तक उसकी जलाञ्जलि से परलोक मे स्थित चारुदत्त की पिपासा कैसे शान्त होती । ३ प्रस्तुत पद्य मे पूर्वार्द्ध वाक्य के प्रति उत्तरार्द्ध वाक्य कारण के रूप मे कहा गया है । अत काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । ४ पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण–"युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।"

किं पुत्राय प्रयच्छामि । (आत्मानमवलोक्य । यज्ञोपवीत दृष्ट्वा ।) आ, इद तावदस्ति मम च ।

पुत्र को क्या दूँ ? [अपने आपको देखकर, यज्ञोपवीत को देखकर] हाँ यह तो मेरे पास है–

अमौक्तिकमसौवर्ण ब्राह्मणाना विभूषणम् ।
देवताना पितृणा च भागो येन प्रदीयते ॥१८॥

अन्वय –(इदम्, यज्ञोपवीतम्), ब्राह्मणानाम्, अमौक्तिकम्, असौवर्णम्, विभूषणम्, (अस्ति), येन देवतानाम्, पितृणाम्, च, भाग , प्रदीयते ॥१८॥

पदार्थ –ब्राह्मणानाम् = ब्राह्मणो का, अमौक्तिकम् = मोती का न बना हुआ, असौवर्णम् = सोने का न बना हुआ, विभूषणम् = आभूषण, देवतानाम् = देवताओं का, पितृणाम् = पितरो का, भाग = भाग, प्रदीयते = दिया जाता है ।

अनुवाद –(यह यज्ञोपवीत) ब्राह्मणो का बिना मोती का तथा बिना सुवर्ण का बना हुआ आभूषण है, जिसके द्वारा देवता तथा पितरो का अश दिया जाता है ।

संस्कृत टीका–(इद यज्ञोपवीतम्) ब्राह्मणानाम् = द्विजानाम्, अमौक्तिकम् = मुक्ताभिररचितम्, असौवर्णम् = न सुवर्ण निर्मितम्, विभूषणम् = आभूषणम् (अस्ति) येन = यज्ञोपवीतेन, देवतानाम् = देवानाम्, पितृणाम् च = अग्निष्वात्तादीनाञ्च, भाग = अश , प्रदीयते = समर्प्यते ॥

समास एव व्याकरण-- (१) अमौक्तिकम्—नास्ति मौक्तिकम् यस्मिन् तथा-भूतम् अथवा न मौक्तिकम् अमौक्तिकम् (न० त०) । (२) मौक्तिकम्—मुक्ता+ठक् । विभूषणम्—वि + भूष् + ल्युट् । भाग —भज् + घञ् । प्रदीयते–प्र+दा+यक्+लट् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म रूपकालङ्कार है। (२) पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण–'युजोश्चतुर्यता जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ।'

(इति यज्ञोपवीतं ददाति ।)

[यह कह कर यज्ञोपवीत देता है]

चाण्डाल–आगच्छ रे चारुदत्त आगच्छ । [आअच्छ ले चालुदत्ता, आअच्छ ।]

चाण्डाल–आ रे चारुदत्त ! आ ।

द्वितीय–अरे, आर्यचारुदत्त निरुपपदेन नाम्नाल्पसि । अरे पश्य । [अले, अज्जचालुदत्त णिलुववदेण णामेण आलवसि । अले पेक्ख ।]

दूसरा चाण्डाल–अरे ! आर्य चारुदत्त को बिना उपाधि के नाम से पुकारते हो ? अरे ! देखो–

अभ्युदयेऽवसाने तथैव रात्रिन्दिवमहतमार्गा ।
उद्दामेव किशोरी नियतिः खलु प्रत्येपितुं याति ॥१९॥
[अब्भुदए अवशाणे तहे अ लत्तिदिवं अहदमग्गा ।
उद्दामे व्व किशोली णिअदी खु पडिच्छिदुं जादि ॥१९॥]

अन्वय–अभ्युदये, अवसाने तथैव रात्रिन्दिवम् अहतमार्गा नियतिः, उद्दामा, किशोरी, इव, खलु, प्रत्यपितुम् याति ॥१९॥

पदार्थ–अभ्युदये=उन्नति की अवस्था में, अवसाने=गिरी हालत में, रात्रिन्दिवम्=रात-दिन, आहतमार्गा=बेरोक-टोक चलने वाली नियतिः=भाग्य, उद्दामा=बन्धनरहित, स्वच्छन्द, किशोरी=बाला, नवयुवती प्रत्यपितुम्=(पुरुष को) स्वीकार करने के लिए।

अनुवाद–उन्नति और अवनति में तथा रात दिन में अप्रतिहत-गति वाली नियति उन्मुक्त बन्धना नवयुवती के समान पुरुष को स्वीकार करने के लिये जाती है।

संस्कृत टीका–अभ्युदये=समुन्नतौ, अवसाने=अवनतौ, तथैव=तनैव प्रकारेण, रात्रिन्दिवम्=अहोरात्रम्, आहतमार्गा=अप्रतिहत=गतिरित्यर्थः, नियतिः=भाग्यम्, उद्दामा=बन्धनरहिता, किशोरी=बाला, इव=यथा, खलु=निश्चितम् । प्रत्यपितुम् = प्रत्येकं पुरुषं स्वीकर्तुम् (बाला-पक्षे आलिङ्गितुम्), याति = व्रजति ॥

समास एवं व्याकरण–(१) अहतमार्गा–अहतः मार्गः यस्याः सा । उद्दामा

उद्गतम् दाम यस्या सा। (२) प्रत्येपितुम्–प्रति+इण्+तुमुन्। याति–या+लट्। अभ्युदय–अभि+उद्+इ+घञ्। अवसान–अव+सो+ल्युट्। नियति–नि+यम्+क्तिन्।

विवृति

(१) भाव यह है कि भाग्य बहुत चञ्चल है। कभी चारुदत्त समृद्ध थे परन्तु आज एकदम निर्धन हो गये है। अत उपाधिरहित नाम लेकर अपनी योग्यता का प्रकाशन मत कर। सभ्यता से बाते कर। 'दैव दिष्ट भागधेय भाग्य स्त्री नियतिर्विधि' इत्यमर। (३) भाग्य के विषय मे किसी ने कहा है–"अघटितमपि घटयति, सुघटितमपि दुर्घटीकुरुते। विधिरेव तानि घटयति,यानि पुमान् नैव सघटते।" (४) अहतमार्गा–(१) जिसका मार्ग (गमन) नही रुका है ऐसी नियति (२) जिसका मार्ग नही रुका अर्थात् स्वच्छन्द विचरने वाली किशोरी। (५) प्रस्तुत पद्य मे 'किशोरी' शब्द का अर्थ विवादास्पद है, किसी ने इसका अर्थ हस्तिनी, किसी ने तरुण घोडी तथा किसी ने तरुणी बाला किया है। (६) 'प्रत्येपितुम्' के स्थान पर 'प्रतीप्टम्'–पाठान्तर है–यथेच्छ यह अर्थ है। (७) इस श्लोक मे श्रौती उपमालङ्कार है। (८) प्रस्तुत पद्य मे प्रयुक्त छन्द का नाम है–आर्या। लक्षण–"यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥"

अन्यच्च। [अण्ण च।]

और भी–

शुष्का अपि प्रदेशा अस्य किं विनमितमस्तकेन कर्तव्यम्।
राहुगृहीतोऽपि चन्द्रो न वन्दनीयो जनपदस्य॥२७।
[शुक्खा वि वदेशा शे किं विणमिअमत्थएण काअव्व।
लाहुगहिदे वि चदे ण वदणीए जणपदश्श॥२०॥]

अन्वय —अस्य, प्रदेशा, अपि, शुष्का, (अत), वितमितमस्तकेन, किम्, कर्त्तव्यम्?, (इति, न विचारणीयम्), राहुगृहीत, अपि, चन्द्र, जनपदस्य, न वन्दनीय? ॥२०॥

पदार्थ —प्रदेशा = (सम्पत्ति, कीर्ति आदि) अङ्ग, विनमितमस्तकेन = झुके हुए मस्तक स, (प्रणाम करने से), राहुगृहीत = राहु के द्वारा ग्रसा गया, जनपदस्य = जनपद के निवासियो के लिए, न वन्दनीय = वन्दनीय नही होता? ॥

अनुवाद —इस (चारुदत्त) के अङ्ग (नाम, यश आदि) सूख गये हैं। (अत) मस्तक झुकाने स क्या (प्रयोजन)? क्या राहु से ग्रसित चन्द्रमा जनपदवासियो के लिए प्रणम्य नही होता?

संस्कृत टीका—अस्य=आर्य चारुदत्तस्य, प्रदेशा=अङ्गानि, ग्रहानामादय, अपि, शुष्का=शुष्कता प्राप्ता, (अत) विनमितमस्तकेन=अवनतशिरसा, किम् कर्त्तव्यम्=किम् प्रयोजनम्? (इति न विचारणीयम्), राहुगृहीत=राहुग्रस्तोऽपि, चन्द्र=शशी, जनपदस्य=जनपदवासिनो जनस्येत्यर्थ, न वन्दनीय=नाभिनन्दनीय? अपि तु अभिनन्दनीय एव ॥

समास एव व्याकरण—(१) विनमितमस्तकेन—विनमितम् मस्तकम् तेन। राहुगृहीत—राहुणा गृहीत। जनपदस्य—जनानाम् पदम्=स्थानम् जनपदम् तस्य। अथवा जना पद्यन्ते=गच्छन्ति अत्र इति जनपद=देश तस्य। अथवा जनपदस्य लोकस्य जनताया इत्यर्थ। (२) शुष्क—शुष्+क्त। कर्त्तव्यम्—कृ+तव्यत्। वन्दनीय—वन्द+अनीयर्।

विवृति

(१) भाव यह है कि जिस प्रकार राहुगृहीत चन्द्रमा अभिनन्दनीय होता है वैसे ही आज यह विपद्ग्रस्त महानुभाव सर्वथा वन्दनीय हैं। (२) 'राहु स्वर्भानु सैंहिकेयो विधुन्तुद' इत्यमर। (३) भवेज्जनपदो जानपदोऽपि जनदशया' इति मेदिनी। (४) 'शुष्का अपि प्रदेशा अङ्गानि। किं विनमितमस्तकेन अवनतशिरसा किं कर्त्तव्यम्। अस्य स्त्रीहरणस्य लज्जया नतशिरसोऽपि न कुत्सेत्यर्थ।"—इति पृथ्वीधर। (५) प्रस्तुत पद्य म जनपदवन्द्य रूप धर्मसाम्य से चन्द्ररूप वस्तु का प्रकृत चारुदत्तवन्द्यत्व के बोध कराने के लिए प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्तालङ्कार है। (६) श्लोक म प्रयुक्त छन्द का नाम है—आर्या। लक्षण— यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

दारक—अरे रे चाण्डाला कुत्र मम पितर नयत। [अरे रे चाण्डाला, कहिं मे आवुक णेध।]

बालक—अरे रे चाण्डालो! कहाँ मेरे पिता को ले जा रहे हो?

चारुदत्त—वत्स

चारुदत्त—पुत्र!

असेन बिभ्रत्करवीरमाला स्कन्धेन शूल हृदयेन शोकम्।
आघातमद्याहमनुप्रयामि शामित्रमालब्धुमिवाध्वरेऽज ॥२१॥

अन्वय—असेन, करवीरमालाम्, स्कन्धेन शूलम्, हृदयेन, शोकम्, विभ्रत्, अहम्, अध्वरे, आलब्धुम्, शामित्रम, अज, इव, अद्य आघातम्, अनुप्रयामि ॥२१॥

पदार्थ—असेन=गले म, करवीरमालाम्=कनेर की माला का, स्कन्धेन=कन्धे मे, शूलम्=शूली का, बिभ्रत्=धारण किये हुए, अध्वर=यज्ञ म, आलब्धुम्=मारने के लिए, शामित्रम्=वलि क लिय लाये गय पशु का बाँधने का स्थान य

खम्भा, अज = बकरा, आघातम् = फाँसी के स्थान को, अनुप्रयामि = (चाण्डालो के) पीछे-पीछे जा रहा है ।

अनुवाद—कण्ठ मे करवीर की माला, कन्धे पर शूली तथा हृदय मे शोक धारण किये हुये मैं यज्ञ मे मारने के लिये बाँधने वाले खम्भे के पास बकरे की भाँति आज वध-स्थान पर (चाण्डालो के) पीछे-पीछे जा रहा हूँ ॥

संस्कृत टीका—असेन = गलेन, करवीरमालम् = रक्तकरवीरस्रजम्, स्कन्धेन = बाहुमूलेन, शूलम् = प्राणदण्डसाधन लौहफलकम्, बिभ्रत् = धारयन्, अहम् = चारुदत्त, अध्वरे = यज्ञे, आलब्धुम् = मारयितुम्, शामित्रम् = वध्यदेशम्, अज = छाग, इव = यथा, अद्य = अधुना, आघातम्—वधस्थानम्, अनुप्रयामि = अनुव्रजामि, चाण्डालयो. अनुगमन करोमीत्यर्थ ॥

समास एव व्याकरण—(१) करवीरमालाम्–करवीरस्य मालाम् । शामित्रम्-शमितरि भवम् अथवा शमितु इद शामित्रम् । आघातम्–आहन्यते अस्मिन् इति आघात । (२) शामित्रम्–शमितृ + अण् । आघातम्–आ + हन् + घञ् अधिकरणे । शोकम्–शुच् + घञ् । बिभ्रत–भृ + शतृ । आलब्धुम्–आ + लभ् + तुमन् । अनुप्रयामि-अनु + प्र + या + लट् ।

विवृति

(१) 'अस स्कन्धे विभागे चेति' विश्व । (२) 'यज्ञ सवोऽध्वरो याग सप्ततन्तुर्मख क्रतु' इत्यमर । (३) 'अजश्छागे हरे विष्णौ रघुजे वेधसि स्मरे' इति हैम । (४) 'आलब्ध इवाध्वरेऽज" इति पृथ्वीधरटीकायाम् । तत्रैव—"आलब्धोऽभिमन्त्रित । मारित इत्येके ।" (५) वध के लिए ले जाये जाते हुये व्यक्ति के गले मे कनेर की माला पहनाने की प्रथा थी । (६) अप्रस्तुत करवीरमाला आदि का 'बिभ्रत्' इस एक क्रिया से सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलङ्कार है । (७) 'अध्वरे अज इव' मे श्रौती उपमालङ्कार है । (८) कुछ टीकाकारो के अनुसार प्रस्तुत पद्य मे दीपकालङ्कार है । (९) इन्द्रवज्रा छन्द है । लक्षण—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग ।"

चाण्डाल—दारक, [दालआ,]

चाण्डाल—बालक !

न खलु वयं चाण्डालाश्चाण्डालकुले जातपूर्वा अपि ।
येऽभिभवन्ति साधु ते पापास्ते च चाण्डालाः ॥२२॥
[ण हु अम्हे चाडाला चाडालकुलम्मि जादपुव्वा वि ।
जे अहि भवन्ति साहुं ते पावा ते अ चाडाला ॥]

अन्वय—चाण्डालकुले, जातपूर्वा, अपि, वयम्, खलु, चाण्डाला, न, ये, साधुम्,

अभिभवन्ति, ते पापाः, ते, चाण्डालाः, च ।।२२।।

पदार्थ—चाण्डालकुले=चाण्डाल कुल मे, जातपूर्वा=पहले उत्पन्न हुए, साधुम्=सज्जन को, अभिभवन्ति=अपमानित, तिरस्कृत करते हैं। पापा =पापी।

अनुवाद—चाण्डाल कुल मे उत्पन्न होने पर भी हम चाण्डाल नही हैं। जो साधुजन का अपमान करते हैं वे पापी हैं एव चाण्डाल हैं।

संस्कृत टीका—चाण्डालकुले=अन्त्यजवशे, जातपूर्वा अपि=लब्धजन्मानोऽपि, वयम्, खलु=निश्चयेन, चाण्डाला न=वर्णधर्मा न, च=पुन, ये=जना, साधुम्=सज्जनम्, अभिभवन्ति=तिरस्कुर्वन्ति, ते=तादृशा जना, एवैत्यर्थ पापा.=पापिन, ते चाण्डालाः=चाण्डालपदवाच्याश्चेति ।।

समास एव व्याकरण—(१) चाण्डालकुले=चाण्डालानाम् कुले। जातपूर्वा.—पूर्वम् जात. इति जातपूर्वा (सुप्सुपा स०)। (२) अभिभवन्ति—अभि+भू+लट्। चाण्डाल—चण्डाल+अण्।

विवृति

(१) 'स्याच्चाण्डालस्तु जनितो ब्राह्मण्या वृपलेन य' इत्यमर'। (२) प्रस्तुत पद्य मे चाण्डाल कुल जन्मत्व रूप कारण के होने पर भी कार्य चाण्डालत्व का अभाव होने से विशेषोक्ति अलङ्कार है। (३) आर्या छन्द है। लक्षण—"यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।" (४) 'न वयम्' , जातिमात्रेण चाण्डालौ न कर्मणा'—श्री निवासाचार्य। (५) 'चाण्डाल. किमय द्विजातिरथवा०।' भर्तृहरि।

दारक—तत्किमर्थं मारयत पितरम्। [ता कीस मारेध आवुकम्।]

बालक—तब क्यो पिता को मार रहे हो ?

चाण्डाल—दीर्घायु, अत्र राजा नियोग खल्वपराध्यति, न खलु वयम्। [दीहाओ, अत्त लाअणिओओ क्खु अवलज्झदि, ण क्खु अह्मे।]

चाण्डाल—दीर्घायु ! इसमे राजा की आज्ञा अपराध करती है, हम नही।

दारक.—व्यापादयत माम्। मुञ्चत पितरम्। [वावादेध मम् मुञ्चध आवुकम्।]

बालक—मुझे मार दो, पिता को छोड दो।

चाण्डाल.—दीर्घायु, एव भणश्चिर मे जीव। [दीहाओ, एव भणन्ते चिल मे जीव।]

चाण्डाल—मेरे दीर्घायु ! इस प्रकार कहते हुए तुम बहुत दिनो तक जीओ।

विवृति

(१) तत्=तो अर्थात् यदि तत्त्वत. चाण्डाल नही हो तव। (२) अत्र=

इसमे, अर्थात् तुम्हारे पिताजी को मारने मे । ३ राजनियोग = राजा की आज्ञा । ४ सास्रम् = आँखो मे आँसू भरे हुये । 'अस्र कोणे कचे पुंसि क्लीबमश्रुणि शोणिते' इति मेदिनी ।

चारुदत्त –(सास्रं पुत्रं कण्ठे गृहीत्वा ।)

चारुदत्त–[अश्रुयुक्त पुत्र को गले लगाकर]

इदं तत्स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः ।
अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम् ॥२३॥

अन्वय—इदम् तत्, स्नेहसर्वस्वम्, आढ्यदरिद्रयो, समम्, (तथा), अचन्दनम्, अनौशीरम्, हृदयस्य, अनुलेपनम्, (अस्ति) ॥२३॥

पदार्थ—इदम् = यह पुत्र, आढ्यदरिद्रयो–धनी और निर्धन दोनों के लिये, समम् = एक समान, स्नेहसर्वस्वम् = स्नेह का सर्वस्व (प्राण), अचन्दनम् = बिना चन्दन का, अनौशीरम् = बिना खस का, हृदयस्य = हृदय का, अनुलेपनम् = लेप ।

अनुवाद –यह वह स्नेह का सर्वस्व है जो धनी एव निर्धन दोनों के लिये समान है तथा बिना चन्दन और खस के भी हृदय का सुखकर लेप है ।

संस्कृत टीका–इदम् = पुत्रालिङ्गनम् सुतरूपम् वस्तु वा, तत् = प्रसिद्धम्, स्नेह-सर्वस्वम् = वात्सल्यात्मकस्य प्रेम्ण निष्कर्ष भूतम्, आढ्यदरिद्रयो = धनिकदरिद्रयो, समम् = तुल्यमानन्ददायकम्, अचन्दनम् = चन्दनशून्यम्, अनौशीरम् = वीरणमूलद्रव्यभिन्नम्, हृदयस्य = अन्त करणस्य, अनुलेपनम् = सुखकर विलेपनमस्तीति शेष ।

समास एव व्याकरण—१ स्नेहसर्वस्वम्–स्नेहस्य सर्वस्वम् । आढ्य–दरिद्रयो – आढ्य दरिद्र च तयो । अचन्दनम्–न विद्यते चन्दनम् यस्मिन् तदचन्दनम् । अनौशीरम्–उशीरस्य इदम् औशीरम् उशीर+अण, न औशीरम् अनौशीरम् (न० त०) । २ अनुलेपनम्–अनु+लिप्+ल्युट् । स्नेह –स्निह्+घञ् ।

विवृति

१ 'स्याद्वीरण वीरतर मूलेऽस्योशीरमस्त्रियाम्' इत्यमर । २ चन्दनादि के लेप से भी इतना आनन्द नही होता है जितना कि पुत्र के स्पर्श से । ३. तत्–वह, 'प्रसिद्ध' अर्थ को व्यक्त है । ४ प्रस्तुत पद्य मे अधिकारूढ रूपकालङ्कार है । ५ पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण–"युजश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ॥" ६ 'स्नेह' दाक्षिण्ययोर्योगात् कामीव प्रतिभाति मे ।' विक्रमो० ॥

('असेन बिभ्रत्'–(१०/२१) इत्यादि पुन पठति । अवलोक्य स्वगतम् । 'अमी हि वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्रा' (१०/१६) इत्यादि पुन. पठति ।)

('असेन बिभ्रत्'–(१०/२१) इत्यादि पुन पढता है । देखकर अपने आप ।

'अमी हि वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्रा' (१०/१६) इत्यादि फिर पढता है ।

विदूषक—भो भद्रमुखा, मुञ्चत प्रियवयस्य चारुदत्तम् । मा व्यापादयत । [भो भद्दमुहा, मुञ्चध पिअवअस्स चालुदत्तम् । म वावादेध ।]

विदूषक—हे भद्रमुखो ! प्रियमित्र चारुदत्त को छोड दो, मुझे मार दो ।

चारुदत्त—शान्त पापम् (दृष्ट्वा स्वगतम् ।) अद्यावगच्छामि । ('समय-स्थित'—(१०/१६) इत्यादि पठति । प्रकाशम् । 'एता पुनर्हर्म्यगता स्त्रियोमाम्' (१०/११) इत्यादि पुन पठति ।)

चारुदत्त—पाप शान्त हो । [देखकर अपने आप] आज समझता हूँ । ['सम-सस्थित'—(१०/१६) इत्यादि पढता है । प्रकट रूप म । 'एता पुनर्हर्म्यगता स्त्रियो माम्' (१०/११) इत्यादि पुन पढता है ।]

चाण्डाल—अपसरतार्या, अपसरत । [ओशलघ अज्जा, ओशलध ।]

चाण्डाल—हटो आर्यो ! हटो ।

किं पश्यत सत्पुरुषमयशोवशेन प्रनष्टजीवाशम् ? ।
कूपे खण्डितपाश काञ्चनकलशमिव मज्जन्तम् ॥२४॥
[किं पेक्खध शप्पुलिश अजशवशेण घणट्टजीवाश ।
कूवे खडिदपाश कचणकलश व्व डुब्बत ॥२४॥]

अन्वय—खण्डिलपाशम्, कूपे, मज्जन्तम् काञ्चनकलशम्, इव अयशोवशेन, प्रनष्टजीवाशम् सत्पुरुषम्, किम्, पश्यत ? ॥२४॥

पदार्थ—खण्डितपाशम्=टूटी हुई रस्सी वाले, कूपे=कुएँ म, मज्जन्तम्=डूबते हुये, काञ्चनकलशम्=सोने के घडे (के), इव=समान, अयशोवशेन=(झूठे) कलङ्क के कारण, प्रनष्टजीवाशम्=जिसके जीवन की आशा दूर हो गई है, सत्पुरुषम्=सज्जन पुरुष को ।

अनुवाद—रस्सी टूटने पर कूप मे डूबते हुये सुवर्णघट के समान अपयश के कारण लुप्त हुई जीवन की आशा वाले सत्पुरुष (चारुदत्त) को क्या देखते हो ?

सस्कृत टीका—खण्डितपाशम्=द्वैधीकृतोद्वहनसूत्रम्, कूपे=उदपाने, मज्जन्तम्=ब्रुडन्तम्, काञ्चनकलशमिव=सुवर्णघटमिव, अयशोवशेन=अपकीर्तिकारणात्, प्रनष्टजीवाशम्=जीवितविषये निरस्ताशम्, सत्पुरुषम्=सज्जनपुरुषम्, किम् पश्यत=किम् द्रक्ष्यथ?

समास एव व्याकरण—१ खण्डितपाशम्=खण्डित पाश यस्य तम् । काञ्चनकलशम्—काञ्चनस्याय काञ्चन, कलश तम् अथवा काञ्चनस्य कलशम् इति । प्रनष्टजीवाशम्—प्रनष्टा जीवस्य आशा यस्य तम् (तादृशम्) । २ मज्जन्तम्—मस्ज्+शतृ । पश्यत—दृश्+लोट् । पाशम्—पश्+घञ् पश्यते अनन इति ।

विवृति

१ जिस प्रकार डूबता हुआ स्वर्ण कलश देखनेवालो के लिये दु खद होता है। वैसे ही चारुदत्त की मृत्यु भी आप लोगो को खिन्न ही करेगी। अत मार्ग छोडो। २ 'पुस्येवान्धु प्रहि कूप उदपान तु पुसि वा' इत्यमर । ३ 'कलशमिव' मे श्रौती उपमालङ्कार है। ४ आर्या छन्द है।

(चारुदत्त —सकरुणम् 'शशिविमलमयूख'–(१०,१३) इत्यादि पठति)

[चारुदत्त—करुण सहित 'शशिविमलमयूख'–(१०,१३) इत्यादि पढता है]

अपर —अरे पुनरपि घोषय । [अले, पुणोवि घोशेहि ।]

दूसरा—अरे, फिर भी घोषणा करो।

[चाण्डालस्तथा करोति ।]

[चाण्डाल वैसा करता है]

चारुदत्त –

चारुदत्त—

प्राप्तोऽहव्यसनकृशा दशामनार्यां
यत्रेद फलमपि जीवितावसानम् ।
एषा च व्यथयति घोषणा मनो मे
श्रोतव्य यदिदमसौ मया हतेति ॥२५॥

अन्वय-अह, व्यसनकृशाम्, अनार्याम्, दशम्, प्राप्त, यत्र, इदम्, जीवितावसानम्, फलम्, अपि, (अस्ति), एषा, घोषणा, मे, मन, व्यथयति, यत्, इद, श्रोतव्यम्,-असौ, मया, हता, इति ॥२५॥

पदार्थ —व्यसनकृशाम् =विपत्ति के कारण कमजोर, अनार्याम् =गर्हित, दशाम् =अवस्था को, प्राप्त =पहुँच गया (हूँ), जीवितावसानम् = मृत्यु, घोषणा= जनता मे एलान, व्यथयति =पीडा देता है, श्रोतव्यम् =सुनना पडता है ॥

अनुवाद – मैं विपत्ति के कारण हीन एव गर्हित अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ, जहाँ यह जीवन की समाप्ति रूप फल भी (मिलना) है, यह घोषणा मेरे मन को पीडित करती है जो यह सुनना पडता है—कि मैंने उस वसन्तसेना को मारा है ॥

सस्कृत टीका-अह=चारुदत्त, व्यसनकृशाम् =विपत्तिदुर्बलाम्, अनार्याम् = साधुजनविगर्हिताम्, दशाम् =अवस्थाम्, प्राप्त =आपन्न, यत्र=यस्याम् दशायाम्, इदम् =वक्ष्यमाणम्, फलम् =परिणाम अपि अस्तीति शेष, एषा=इयम्, घोषणा= उद्घोष, मे=मम, मन =चित्तम्, व्यथयति=पीडयति, यत्, इदम् =एतत्, श्रोतव्यम् =आकर्णनीयम्, असौ=वसन्तसेना, मया=चारुदत्तेन, हता=मारिता, इति —एव रूपा ॥

समास एवं व्याकरण—१ व्यसनकृशाम्—व्यसनेन कृशाम् । जीवितावसानम्—जीवितस्य अवसानम् । २ व्यसन-वि+अस्+ल्युट् । प्राप्त-प्र+आप्+क्त । अवसानम्-अव+सो ल्युट् । व्यथयति-व्यथ्+णिच्+लट् । हता-हन्+क्त+टाप् । श्रोतव्यम्-श्रु+तव्यत् ।

विवृति

१ 'व्यसन विपदि भ्रशे दोषे कामकोपजे' इत्यमर । १ प्रस्तुत पद्य मे प्रहर्षिणी छन्द है । छन्द का लक्षण–"=याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम् ।" ३ 'व्यसन-कृशाम्' के स्थान पर 'व्यसनकृताम्' पाठान्तर भी मिलता है ।

(तत प्रविशति प्रासादस्थो बद्ध स्थावरक ।)

[तदनन्तर राजभवन पर स्थित बँधा हुआ स्थावरक प्रवेश करता है ।]

स्थावरक– (घोषणामाकर्ण्य सवैक्लव्यम् ।) कथमपापश्चारुदत्तो व्यापाद्यते अह निगडेन स्वामिना बद्ध । भवतु । आक्रन्दामि । शृणुतार्या, शृणुत । अस्तीदानी मया पापेन प्रवहणमपरिवर्तेन पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान वसन्तसेना नीता । ततो मम स्वामिना मा न कामयस इतिकृत्वा बाहुपाशबलात्कारेण मारिता, न पुनरेतेनार्येण । कथम् । विदूरतया न कोपि शृणोति । तत्किं करोमि । आत्मान पातयामि । (विचिन्त्य ।) यद्येव करोमि, तदार्यचारुदत्तो न व्यापाद्यते । भवतु । अस्या प्रासादबालाग्रप्रतोलिकात एतत जीर्णगवाक्षेणात्मान निक्षिपामि । वरमहमुपरत, न पुनरेष कुलपुत्रविहगाना वासपादप आर्यचारुदत्त । एव यदि विपद्ये लब्धो मया परलोक । (इत्यात्मान पातयित्वा ।) आश्चर्यम् । नापरतोऽस्मि । भग्ना म दण्डनिगड , तच्चाण्डालघोप समन्विष्यामि ।

(दृष्ट्वोपसृत्य ।) हहा चाण्डाला, अन्तरमन्तरम् । [कध अपावे चालुदत्ते वावादीअदि । हग्गे णिअलेण शामिणा वन्धिदे । मोदु आक्कदामि । शुणाध अज्जा, शुणाध । अत्थि दाणि मए पावेण पवहणपडिवत्तेन पुप्फकलण्डअजिण्णुज्जाण वसन्तशेणा णीदा । तदो मम शामिणा म ण कामेशित्ति कदुअ बाहुपाशबलक्कालेण मालिदा, ण उ ण एदिणा अज्जेण । कथम् । विदूलदाए ण का वि शुणादि । ता किं कलेमि । अत्ताणअ पाडेमि । जइ एव्व कलेमि, तदा अज्जचालुदत्ते ण वावादी अदि । मोदु । इमादो पाशादबालग्गपदोलिकादो एदिणा जिण्णगवक्खेण अत्ताणअ णिक्खिवमि । वल हग्ग उवलदे, ण उण एशे कुलपुत्तविहागाण वाशपादवे अज्जचालुदत्ते । एव्व जइ विवज्जामि लद्धे मए पललोए । ही ही । ण उवलदम्हि । भग्गे मे दण्डणिअले । ना चाण्डालघोश शमण्णेशामि । हहा चाण्डाला, अन्तल अन्तलम् ।]

स्थावरक– [घोषणा सुनकर व्याकुलता के साथ] क्या निष्पाप चारुदत्त मारे जा रहे हैं ? मुझे तो स्वामी न जजीर से बाँध दिया है । अच्छा, चिल्लाता हूँ । सुनो

आर्यो । सुनो । ऐसा है कि मुझ पापी के द्वारा गाडी बदल जाने के कारण वसन्तसेना पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे मे ले जाई गई । तब मेरे स्वामी (शकार) ने 'तुम मुझे नही चाहती हो' यह कहकर बाहुपाश से बलपूर्वक (गला दबा कर उसे) मार दिया, इस आर्य (चारुदत्त) ने नही । क्या, दूर होने के कारण कोई भी नही सुनता है ? तो क्या करूँ ? अपने आप को गिराता हूँ (सोचकर) यदि ऐसा करता हूँ तो आर्य चारुदत्त नही मारे जाते । अच्छा, इस राजभवन की नई बनी हुई ऊँची अटारी की गली से इस टूटी खिडकी द्वारा अपने को गिराता हूँ । मैं मर जाऊँ, यह अच्छा, किन्तु कुलीनजन रूपी पक्षियो के निवास वृक्ष (रूप) आर्य चारुदत्त (का मरना) अच्छा नही । इस प्रकार यदि मैं मर जाता हूँ तो मुझे परलोक का लाभ होगा । [अपने को गिराकर] आश्चर्य है, मैं मरा नही हूँ । मेरी दण्डस्वरूप बेडी टूट गई है । अत चाण्डाल के घोषणा-स्थान को खोजता हूँ । [देखकर, पास जाकर] अरे चाण्डालो ! अवकाश (दो) अवकाश ।

चाण्डालौ— अरे, कोऽन्तर याचते । [अले, के अन्तल मग्गेदि ।]

दोनो चाण्डाल— अरे कौन अवकाश माँगता है ?

(चेट 'शृणाथ' इति पूर्वोक्त पठति ।)

[चेट— श्रृणुतार्या ' यह पूर्वोक्त पढता है ।

विवृति

(१) सवैक्लव्यम् = विकलता के साथ । विशेषेण क्लवते आत्मत्राणार्थमितस्ततो गच्छति इति वि + क्लु + अच् पचादित्वात् = विक्लव, तस्य भाव वैक्लव्यम् विक्लव + ष्यञ् । तेन सह इति सवैक्लव्यम् (ब० स०) । (२) व्यापाद्यते = मारा जा रहा है ? (३) स्वामिना = मालिक (शकार) के द्वारा । (४) निगडेन = बेडी से । 'श्रृङ्खला अन्दुको निगड ' इत्यमर । (५) बद्ध = बाँध दिया गया । (६) आक्रन्दामि = चिल्लाता हूँ । (७) कामयसे = चाहती हो । (८) आत्मानम् = अपने को अर्थात् अपने शरीर को । 'आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धि स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च' इत्यमर । वर्ष्म = शरीर । (९) प्रासाद० = महल की नयी बनी हुई ऊँची अटारी की गली से । (१०) उपरत = मरा हुआ । उप + रम् + क्त । (११) कुलपुत्रविहगानाम् = कुल–पुत्र रूपी पक्षियो के । (१२) वासपादप = निवास–वृक्ष । (१३) विपद्ये = मरता हूँ । (१४) भग्न = टूटा हुआ । (१५) दण्डनिगड = बेडी– डण्डा अथवा दण्ड स्वरूप बेडी ।

चारुदत्त – अये,

चारुदत्त– अहो !

कोऽयमेवंविधे काले कालपाशस्थिते मयि ।
अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणमेघ इवोदित ? ॥२६॥

अन्वय – अनावृष्टिहते, सस्ये, द्रोणमेघ , इव, एवंविधे, काले, मयि, कालपाश-स्थिते, अयम्, क', उदित. ? ॥२६॥

पदार्थ –अनावृष्टिहते=वर्षा के न होने अथवा सूखे से नष्टप्राय अथवा चौपट हुए, सस्ये=धान्य अथवा फसल पर, द्रोणमेघ=द्रोण नामक मेघ, एवंविधे=इस प्रकार के, काले=समय मे, कालपाशस्थिते= मृत्यु के पाश अथवा फन्दे मे स्थित होने अथवा फँसने पर, उदित =उदित हो गया अथवा आ गया ।

अनुवाद— अवर्षण से नष्टप्राय धान्य पर द्रोण नामक मेघ के समान इस प्रकार के (आपत्ति) काल मे मेरे, मृत्यु-पाश मे स्थित हो जाने पर यह कौन आ गया ?

संस्कृत टीका– अनावृष्टिहते=अवर्षणशुष्क प्राये, सस्ये=धान्ये, द्रोणमेघ = सस्यप्रपूरको मेघ', इव, एवंविधे =एवम्प्रकारे, काले=समये, मयि=चारुदत्ते, काल-पाशस्थिते=मृत्युजालबद्धे, अयम्=एष , क उदित =क आगत ?

समास एवं व्याकरण—(१) अनावृष्टिहते–न आवृष्टि अनावृष्टि तया हते । कालपाशस्थिते–कालस्य पाश तस्मिन् स्थिते । (२) वृष्टि –वृषि+क्तिन् । हते–हन्+क्त । उदित – उद् + इ + क्त ।

विवृति

१ मेघ के चार भेद माने गये हैं– पुष्कर, आवर्त, सवर्त और द्रोण । द्रोण मेघ पर्याप्त वर्षा करने वाला तथा सस्य को समृद्ध करनेवाला होता है–"आवर्तो निर्जलो मेघ. सवर्तश्च बहूदक' । पुष्करो दुष्करजले द्रोण सस्यप्रपूरक ।" २ कविकुलचूडा-मणि महाकवि कालिदास पुष्कर एव आवर्त मेघो को ही श्रेष्ठतम मानते हैं – "जात वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानाम् " ॥ मेघ० १/६ ॥ (३) प्रस्तुत पद्य मे छेकानु-प्रास नामक शब्दालङ्कार है । ४ 'द्रोणमेघ इव' मे श्रौती उपमा है । ५ भावसाम्य– "रावणवग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन स. । अभिवृष्य मरुत्सस्य कृष्णमेघस्तिरोदधे ॥ रघु० X ॥ ६. श्लोक मे प्रयुक्त छन्द का नाम है– पथ्यावक्त्र । लक्षण— "युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।"

भो, श्रुत भवद्भि ।

अरे, आप लोगो ने सुना ।

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषित यशः ।
विशुद्धस्य हि मे मृत्युः पुत्रजन्मसमो भवेत् ॥२७॥

अन्वय — (अहम्), मरणात्, भीत', न, अस्मि, केवलम्, यश, दूषितम्, विशुद्धस्य, मे मृत्यु, हि, पुत्रजन्मसम, भवेत् ॥२७॥

पदार्थ—मरणात्=मरने से, भीत = भयभीत, दूषितम्=कलङ्कित हुआ है, विशुद्धस्य=(स्त्री वध के) दोष से रहित, पुत्रजन्मसम =पुत्र के जन्म के समान ॥

अनुवाद—मैं मृत्यु से भयभीत नही हू, केवल मेरी कीर्ति कलङ्कित हुई है निर्दोष होकर मेरी मृत्यु तो पुत्र-जन्म के समान (सुखदायक) होती।

संस्कृत टीका—मरणात्=मृत्यो, भीत =त्रस्त, न अस्मि=न भवामि, केवल, यश =कीर्ति, दूषितम् =कलङ्कितम्, विशुद्धस्य=दोषरहितस्य, मे=मम, मृत्यु = मरणम्, हि=निश्चितम्, पुत्रजन्मसम =पुत्रोत्पत्तितुल्यसुखप्रदो, भवेत्=स्यात् ॥

समास एवं व्याकरण—(१) पुत्रजन्मसम—पुत्रस्य जन्मना सम (२) मरण—ल्युट्। भीत =भी+क्त। अस्मि—अस्+लट्। दूषितम्—दूष्+क्त। विशुद्धस्य—वि+शुध्+क्त।

विवृति

(१) यश कीर्ति समज्ञा च' इत्यमर। (२) 'मरणात्' मे 'भीत्रार्थाना भयहेतु' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हुई है। (३) चारुदत्त के कथन का भाव यह है कि वसन्तसेना की हत्या के उद्घोष से मेरी कीर्ति मे धब्बा लग गया है। (४) प्रस्तुत पद्य मे आर्थी उपमालङ्कार है। (५) पथ्यावक्त्र छन्द है।

अन्यच्च।

और भी।

तेनास्म्यकृतवैरेण क्षुद्रेणात्यल्पबुद्धिना ।
शरेणेव विषाक्तेन दूषितेनापि दूषित. ॥२८॥

पदार्थ—अकृतवैरेण=जिसके साथ कभी वैर नही किया था, क्षुद्रेण=नीच, अल्पबुद्धिना=मन्दबुद्धिवाले, दूषितेन=स्वय दोषी, विषाक्तेन=विष बुझे, विषैले, शरेण=तीर (की), दूषित =कलंकित किया गया।

अनुवाद—न किये गये वैर वाले, नीच अतिमन्दबुद्धि (स्वय) दोषयुक्त होते हुये भी उस (शकार) ने विष-बुझे वाण की भाँति मुझे कलङ्कित कर दिया है।

संस्कृत टीका—अकृतवैरेण=अविहितविरोधेन, क्षुद्रेण=नीचेन, अत्यल्पबुद्धिना=बहुस्वल्पमतिना, दूषितेन=दोषयुक्तेन, अपि, तेन=शकारेण, विषाक्तेन= विषयुक्तेन, शरेण=बाणेन, इव=यथा, दूषित =कलङ्कित, अस्मि=वर्ते ॥

समास एवं व्याकरण—(१) अकृतवैरेण—न कृतम् वैरम् यस्य तेन। अल्पबुद्धिना—अल्पा बुद्धि यस्य तादृशेन। विषाक्तेन—विषेण अक्त. लिप्त विषाक्त तेन।

(२) विषाक्तेन–विष्+अञ्ज्+क्त । दूषित–दूष्+क्त । अस्मि–अस्+लट् । बुद्धि–बुध्+क्तिन् ।

विवृति

(१) भाव यह है कि जिस प्रकार विषैला बाण लगकर किसी व्यक्ति को विषयुक्त कर देता है इसी प्रकार इस दोषयुक्त (शकार) ने मुझे ही दोषी सिद्ध कर दिया है। (२) बाण के अगले भाग का लाल कर उसे विष के पानी में डाला जाता है। यही बाण विष–बुझा बाण या दिग्धाक्त बाण कहा जाता है। इससे घायल हुए प्राणी का बचना मुश्किल होता है। (३) प्रस्तुत पद्य में श्रौती उपमालङ्कार है। (४) पथ्यावक्त्र छन्द है।

चाण्डालौ–स्थावरक, अपि सत्यं भणसि। [थावलअ, अवि शच्चं भणाशि।]

दोनों चाण्डाल–स्थावरक ! क्या सत्य कहते हो ?

चेट–सत्यम्। अहमपि मा कस्यापि कथयिष्यसीति प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायां दण्डनिगडेन बद्ध्वा निक्षिप्तः। [शच्चम्। हग्गे वि मा कश्श वि कधइश्शशि त्ति पाशाद बालग्गपदोलिकाए दण्डणिअलेण बन्धिअ णिक्खित्ते।]

चेट–सच। "तुम किसी से कहोगे नहीं" इसलिये मुझे भी महल के नवीन अग्रभाग में डण्डा–बेडी से बाँधकर डाल दिया।

(प्रविश्य।)
[प्रवेश करके]

शकार–(सहर्षम्।)

शकार–[हर्षपूर्वक]

मांसेन तिक्ताम्लेन भक्तं शाकेन सूपेन समत्स्यकेन।
भुक्तं मयात्मनो गेहे शालीयकूरेण गुडौदनेन ॥२९॥
[मशेण तिक्खामिलकेण भत्ते शाकेन शूपेण शमच्छकेण।
भुत्तं मए अत्तणअश्श गेहे शालीकूलेण गुलोदणेण ॥२९॥]

अन्वय–मया, आत्मनः, गेहे, तिक्ताम्लेन, मांसेन, शाकेन, समत्स्यकेन, सूपेन, शालीयकूरेण, गुडौदनेन, भक्तम्, भुक्तम् ॥२९॥

पदार्थ–तिक्ताम्लेन=तीते–खट्टे, मांसेन=मांस से, शाकेन=शाक से, समत्स्यकेन=मछली के सहित, सूपेन=दाल (या रसा) से, शालीयकूरेण=अगहनी धान के चावल के भात से, गुडौदनेन=खीर से, भक्तम्=भात, भुक्तम्=खाया है।

अनुवाद–मैंने अपने घर तीते–खट्टे मांस, शाक, मछली सहित दाल, शालि (चावल) के भात तथा गुडमिश्रित भात के साथ भोजन किया है॥

संस्कृत टीका–मया=शकारेण, आत्मनः=स्वस्य, गेहे=गृहे, तिक्ताम्लेन=

तिक्तरसान्वितेन, मांसेन=पिशितेन, शाकेन=व्यञ्जनेन, समत्स्यकैन, मीनसहितेन, सूपेन=द्विदलेन, शालीयकूरेण=शालेर्भक्तेन, =गुडौदनेन=गुडमिश्रितेन, भक्तम्=भोजनम् भुक्तम्=भक्षितम् ॥

समास एवं व्याकरण-(१) तिक्ताम्लेन-तिक्तम् च तद् अम्लञ्चेति तिक्ताम्लम् तेन। (२) शालीयकूरेण-शल्+घञ्=शाल शाल+छ=शालीय। वे+क्विप्=ऊ। कु+ऊ+ला+क=शालीयकूर' (लरयोरभेद')।

विवृति

(१) 'पिशित तरस मास पलल क्रव्यमामिषम्' इत्यमरः। (२) मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकम्। त्वक्पुष्प कवक चैव शाक दशविध स्मृतम्। (३) पृथ्वीधर के अनुसार प्रस्तुत पद्य मे उपजाति छन्द है। (४) कुछ टीकाकारो के अनुसार इसमे इन्द्रवज्रा छन्द है। (५) उपजाति का लक्षण-"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता।" (६) 'शालय कलमाद्याश्चे' त्यमर। (७) 'कूल स्तूपे तडागे च सैन्यपृष्ठप्रतीरधो' इति विश्व।

(कर्णं दत्वा।) भिन्नकांस्यवत्खङ्खणायाश्चाण्डालवाचाया स्वरसयोग। यथा चैप उद्गीतो बध्यडिण्डिमशब्द पटहाना च श्रूयते, तथा तर्कयामि, दरिद्रचारुदत्तको वध्यस्थान नीयत इति। तत्प्रेक्षिष्ये। शत्रुविनाशो नाम मम महान्हृदयस्य परितोषो भवति। श्रुत च मया, योऽपि किल शत्रु व्यापाद्यमान पश्यति, तस्यान्यस्मिञ्जन्मान्तरेऽक्षिरोगो न भवति। मया खलु विषग्रन्थिगर्भप्रविष्टेनेव कीटकेन किमप्यन्तर मृगयमाणेनोत्पादितस्तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य विनाश.। साप्रतमात्मीयाया प्रासाद बालाग्रप्रतोलिकायामधिरुह्यात्मन. पराक्रम पश्यामि। (तथा कृत्वा दृष्ट्वा च।) ही ही, एतस्य दरिद्रचारुदत्तस्य वध्य नीयमानस्यैतावाञ्जनसमर्द, यस्या वेलायामस्मादृश प्रवरो वरमानुषो वध्य नीयते तस्या वेलाया कीदृशो भवेत्। (निरीक्ष्य।) कथम्। एष स नववलीवर्द इव मण्डितो दक्षिणा दिश नीयते। अथ किंनिमित्त मदीयाया प्रासाद बालाग्रप्रतोलिकाया समीपे घोषणा निपतिता, निवारिता च। (विलोक्य।) कथम्, स्थावरकश्चेटोऽपि नास्तीह। मा नाम तेनेतो गत्वा मन्त्रभेद. कृतो भविष्यति। तद्यावदेनमन्विष्यामि। (इत्यवतीर्योपसर्पति।) [भिण्णकशखङ्खणाए चाण्डालवाआए शलशजोए। जधा अ एशे उक्खालिदे वज्झडिण्डिमशद्दे पडहाण अ शुणीअदि, तधा तक्केमि, दलिद्दचालुदत्ताके वज्झट्ठाण णीआदि त्ति। ता पेक्खिश्शम्। शत्तुविणाशे णाम मम महन्ते हलक्कश्श पलिदोशे होदि। शुद अ मए, जे वि किल शत्तु वावादअन्त पेक्खदि, तश्श अण्णश्शि जम्मन्तले अक्खिलोगे ण होदि। मए क्खु विशगण्ठि-

गब्भपविट्ठेण विअ कीडएण किंपि अन्तल मग्गमाणेण उप्पाडिदे ताह् दलिद्दचारुदत्ताह् विणाशे । शपद अत्तणकेलिकाए पाशादवालग्गपदालिकाए अहिलुहिअ अत्तणा पल्कमम पेक्खामि । ही ही, एदाह् दलिद्दचालुदत्ताह् वज्झ णीअमाणाह् एव्वड्ढे जणशम्मद्दे, ज वेल अह्मालिशे पवले वलमणुश्शे वज्झ णीअदि त वल क दिशे भव । वधम् । एश दोणव वलद्दके विअ मण्डिद दक्खिण दिश णीअदि । अध किंणिमित्त मम कलिकाए पाशादवालग्गपदालिकाए शमी वे घाशणा णिवडिदा णिवालिदा अ । कधम्, थावलक चेडे वि णत्थि इध । मा णाम तण इदा गदुअ मन्तुभेदे कडे भविश्शदि । ता जाव ण अण्णेशामि ।]

[कान देकर] फूटे काँस के समान खन्—खन् ध्वनि वाली चाण्डाल की वाणी के स्वर का सम्बन्ध (मालूम होता) है । जैसे यह जार से किया गया वध्य क नगाडे और ढोल का शब्द सुनाई पडता है । उससे अनुमान करता हूँ कि दरिद्र चारुदत्त वध स्थान पर ले जाया जा रहा है । तो देखूँ । शत्रु के विनाश स मर हृदय को महान् सन्तोष होता है । मैंने सुना भी है कि जो कोई शत्रु को मारे जाते हुए देखता है, उसे दूसरे जन्म म नेत्र रोग नही होता । विष की गाँठ के भीतर घुसे हुए छोटे कीडे का भाँति कुछ अवकाश खोजते हुए मैंने उस दरिद्र चारुदत्त का विनाश उपस्थित कर दिया है । अब मैं अपनी अट्टालिका के नवनिर्मित अग्रभाग पर चढ़कर अपना पराक्रम देखता हूँ । [वैसा करके और देखकर] अरे ! इस दरिद्र चारुदत्त का वध-स्थान पर ल जाते समय इतनी अधिक लोगो की भीड है । जिस समय हमारे जैसे श्रेष्ठ उत्तम मनुष्य का वध-स्थान पर ले जाया जायेगा उस समय कैसी भीड होगी । [अच्छी तरह देखकर] क्या यह वही नवीन बैल के समान आभूषित करके दक्षिण दिशा को ले जाया जा रहा है । किन्तु किसलिए मेरे महल के नवनिर्मित अग्रभाग के समीप घोषणा हुई और बन्द कर दी गई ? (देखकर) क्या स्थावरक चेट भी यहाँ नहा है ? कहीं ऐसा न हो कि उसने यहाँ स जाकर गुप्त बात का प्रकट कर दिया हो । तब तक उसे ढूँढता हूँ । [उतर कर समीप जाता है]

चेट – (दृष्ट्वा ।) भट्टारका, एष स आगत । [भट्टालका एशे शे आगदे ।]
चेट– [देखकर] स्वामियो ! यह वह आ गया ।

विवृति

१ भिन्नकांस्य० = फूटे हुए काँसे के समान खन-खनाने वाली । २ चाण्डाल वाचाया = चाण्डालो की आवाज का । क्षुधा वाचा दिशा क्रुञ्चा' इत्यादि दर्शनात् । ३ स्वरसंयोग = आवाज का सयोग (अर्थात् आवाज) । ४ उद्गीत – उठा हुआ । ५ वध्यडिण्डिमशब्द = वध किये जाने वाले के लिये पीटे जाते हुए ढिंढोरे का शब्द । ६ पटहानाम् = नगाडो का (शब्द) । आनक पटहोऽस्त्री' इत्यमर । ७ व्यापाद्यमानम् = मारे जाते हुए । ८ विषग्रन्थि० = विष की गाँठ के भीतर घुसे

हुए। ९ जनसमर्द =लोगों की भीड़। १० नवबलीवर्द =नया बैल। 'बलीवर्द ऋषभो वृषभो वृष, इत्यमर। ११ मन्त्रभेद =गुप्त वृतान्त का प्रकाशन। 'वेदभेदे गुप्तवादे मन्त्र' इत्यमर।

चाण्डालौ—

दोनों चाण्डाल—

अपसरत दत्त मार्गं द्वारं पिधत्त भवत तूष्णीका ।
अविनयतीक्ष्णविषाणो दुष्टबलीवर्द इत एति ॥ ३० ॥
[ओशलध देध मग्ग दाल ढक्केध होध तुण्हीआ।
अविणअतिक्खविशाणे दुट्ठबइल्ले इदो एदि ॥३०॥]

अन्वय– अपसरत, मार्गम्, दत्त, द्वारम्, पिधत्त, तूष्णीका भवत, अविनयतीक्षणविषाण, दुष्टबलीवर्द, इत, एति ॥ ३० ॥

पदार्थ– अपसरत=हट जाओ, पिधत्त=बन्द कर लो, तूष्णीका =मौन, अथवा चुप, भवत=हो जाओ, अविनयतीक्ष्णविषाण =उद्दण्डता रूपी तीक्ष्ण सींगों वाला, दुष्टबलीवर्द =दुष्ट साड, इत =इधर, एति=आ रहा है।

अनुवाद– हट जाओ मार्ग दे दो, द्वार बन्द कर लो, चुप हो जाओ। (क्योंकि) अविनय रूपी तीक्ष्ण सींगों वाला दुष्ट बैल (शकार) इधर आ रहा है।

संस्कृत टीका– अपसरत=दूरम् गच्छत, मार्गम्=पन्थानम् दत्त=अर्पयत, द्वारम्=गृहप्रवेशमार्गम् पिधत्त=आवृणुत, तूष्णीका =मौनावलम्बिन, भवत, अविनयतीक्ष्णविषाण =अशिष्टाचरणरूपतीक्ष्णशृङ्ग, दुष्टबलीवर्दे =दुष्टवृषभ, इत = अत्र, एति=आगच्छति।

समास एवं व्याकरण– १ तूष्णी शीलमस्य इत्यर्थे शीले को मलोपश्च' इति वार्तिकेन साधु। २ अविनयतीक्ष्णविषाण– अविनय एव तीक्ष्ण विषाण यस्य तादृश। ३ पिधत्त=अपिधत्त, अपि+धा+लोट्– थ (म० पु० ब०), 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयो' सूत्रेण इति अपे अकारस्य लोप। अपसरत—अप+सृ+लोट्। दत्त– दा+लोट्। भवत– भू+लोट्। एति– इ+लट्।

विवृति

१ 'तूष्णीशीलस्तु तूष्णीक' इत्यमर। २ प्रस्तुत पद्य मे अप्रस्तुतप्रशसा, रूपक एव काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। ३ आर्या छन्द है।

शकार—अरे अरे, अन्तरमन्तर दत्त। (उपसृत्य।) पुत्रक स्थावरक चेटक, एहि गच्छाव। [अले अले, अन्तल अन्तल देध। पुत्तका थावलका चेडा, एहि। गच्छह्म।

शकार–अरे अरे, अवकाश दो अवकाश (पास जाकर) पुत्र स्थावरक, चेट आओ चलें ।

चेट.–ही ही अनार्य, वसन्तसेना मारयित्वा न परितुष्टोऽसि साम्प्रत प्रणयिजन-कल्पपादपमार्य चारुदत्त मारयितु व्यवसितोऽसि । [ही ही अणज्ज, वसन्तसेणिअ मालिअ ण पलितुट्टे सि । शपद पणइजण-कप्पपादव अज्जचालुदत्त मालइदु ववशिदेशि ।]

चेट–अहो अनार्य ! वसन्तसेना को मारकर सन्तुष्ट नहीं हुआ ? जब प्रार्थी जनों के लिए कल्पवृक्ष स्वरूप आर्य चारुदत्त को मरवाने के लिए उद्यत है ।

शकार.–न हि रत्नकुम्भसदृशोऽहं स्त्रियं व्यापादयामि । [ण हि लअणकुम्भ-शलिशे हग्गे इत्थिअं वावादेमि ।]

शकार–रत्नों के घड़े के समान मैं स्त्री को नहीं मारता हूँ ।

सर्वे–अहो, त्वया मारिता । आर्यचारुदत्तेन । [अहो, तुए मारिदा । ण अज्ज-चारुदत्तेण ।]

सब–अहो, (वसन्तसेना को) तूने मारा है, आर्य चारुदत्त ने नहीं ।

शकार.–के एव भणति । [के एव्व भणादि ।]

शकार–कौन ऐसा कहता है ?

सर्वे–(चेटमुद्दिश्य ।) नन्वेष साधु । [ण एसो साहू ।]

सब–[चेट को लक्ष्य करके] यह सत्पुरुष ।

शकार.–(अपवार्य सभयम्) हन्त, कथ स्थावरकश्चेट सुष्ठु न मया नयत । एष खलु ममाकार्यस्य साक्षी । (विचिन्त्य ।) एवं तावत्करिष्यामि । (प्रकाशम् ।) अलीक भट्टारकाः । अहो, एष चेट सुवर्णचोरिकया मया गृहीतस्ताडितो मारितो वद्धश्च । तत्कृतवैर एव यद्भणति किं सत्यम् । (अपवारितकेन चेटस्य कटक प्रय-च्छति । स्वैरकम् ।) पुत्रक स्थावरक चेट, एतद्गृहीत्वान्यथा भण । [अविद मादिके, अविद मादिके, कध थावलके चेडे गुस्ठु ण मये शजदे । एशे क्खु मम अकज्जश्श शक्खी । एव्व दाव कलइश्शम् । अलीअं भस्टालका । हहो, एशे चेडे शुवण्णचोलिआए मए गहिदे पिटिदे मालिदे वद्धे अ । ता किदवेले एशे ज भणादि किं शच्चम । पुत्तका थावलका चेडा, एदं गेण्हिअ अण्णधा भणाहि ।]

शकार–[अलग से भयपूर्वक] खेद है, स्थावरक चेट को मैंने भली-भाँति क्यों नहीं बाँधा ? यह मेरे कुकृत्य का साक्षी है । [सोचकर] तो ऐसा करूँगा । [प्रकट रूप में] अधिकारीगण ! यह असत्य है । अहो, इस चेट को मैंने सोने की चोरी करने के कारण पकड़ा, पीटा, मारा और बाँधा था । इसलिए वैर करके जो यह कहता है, क्या वह सत्य है ? [अलग से चेट को कड़ा देता है । धीरे से] बेटा स्थावरक चेट !

यह लेकर दूसरे प्रकार से कह दो।

चेट–(गृहीत्वा ।) पश्यत पश्यत भट्टारका अहो, सुवर्णेन मां प्रलोभयति। पेक्खध पेक्खध भट्टालका। हहो, शुवण्णेण म पलोभेदि।]

चेट–[लेकर] स्वामियो! देखिये देखिये! अहो! मुझे सुवर्ण से लुभा रहा है।

शकार—(कटकमाच्छिद्य।) एतत्तत्सुवर्णकम्, यस्य कारणान्मया बद्ध। (सक्रोधम्।) हहो चाण्डाला, मया खल्वेष सुवर्णभाण्डारे नियुक्त सुवर्ण चोरयन्मारितस्ताडित। तद्यदि न प्रत्ययध्व तदा पृष्ठ तावत्पश्यत। [एशे शे शुवण्णके, जश्श कालणादो मए बद्ध। हहो चाण्डाला, मए क्खु एशे शुवण्णभण्डाले णिउत्ते शुवण्ण चोलअन्ते मालिदे पिरटदे। ता जदि ण पत्तिआअध ता पिट्ठिं दाव पेक्खध।]

शकार–[कड़ा छीनकर] यही वह सुवर्ण है, जिसके कारण मैंने बाँधा था। [क्रोध के साथ] हे चाण्डालो! मेरे द्वारा इसे सुवर्ण-भाण्डार में नियुक्त किया गया यह सोना चुराता हुआ मारा गया, पीटा गया। तो यदि तुम लोगों को विश्वास न हो तो (इसकी) पीठ देख लो।

चाण्डालौ–(दृष्ट्वा।) शोभन भणति। वितप्तश्चेट किं न प्रलपति। [शोहण भणादि। वितत्ते चेडे किं ण प्पलवदि।]

दोनो चाण्डाल–[देखकर] ठीक कह रहे है आप। पीडित (या क्रुद्ध) चेट क्या नही बकेगा (अथवा बक सकता है)?

चेट–हन्त, ईदृशो दासभाव, यत्सत्य कमपि न प्रत्याययति। (सकरुणम्।) आर्यचारुदत्त, एतावान्मे विभव। (इति पादयो पतति।) [हीमादिके ईदिशे दाशभावे, ण शच्च कपि ण पत्तिआअदि। अज्जचालुदत्त, एत्तिके मे विहवे।]

चेट–खेद है, दासता ऐसी (बुरी) है कि सत्य का भी किसी को विश्वास नही करा पाती। (करुणा के साथ) आर्य चारुदत्त! इतना ही मेरा सामर्थ्य है। [यह कहकर पैरो पर गिरता है।]

विवृति

(१) ही=यह विषाद को सूचित करने वाला अव्यय है। (२) प्रणयिजनकल्पपादपम्=याचको के कल्पवृक्ष। (३) व्यवसित=तैयार। (४) रत्नकुम्भसदृश=रत्नकलश के समान (सम्पत्ति से युक्त तथा श्रेष्ठ)। (५) अपवार्य=पृथक्, एक ओर। (६) हन्त=खेद सूचक अव्यय। (७) अकार्यस्य=कुकृत्य का, (अर्थात् वसन्तसेना को मारने रूप बुरे काम का।) (८) साक्षी=प्रमाण, गवाह (९) सुवर्णचोरिकया=सोने की चोरी के कारण। चोरस्य कर्मचोरिका चोर+वुन्+(इक)+टाप्। (१०) कृतवैर=जिसने वैर किया है। (११) कटकम=

कडा। (१२) स्वैरकम्=मन्द स्वर मे। (१३) प्रलोभयनि=लुभा रहा है। (१४) सुवर्णभाण्डारे=सोने के भण्डार मे। (१५) वितप्त=उत्पीडित, क्रुद्ध। (१६) विभव=सामर्थ्य। (१७) प्रत्याययति=विश्वास करा पाता है।

चारुदत्त –(सकरुणम्।)

चारुदत्त–[करुणा सहित]।

उत्तिष्ठ भो ! पतितसाधुजनानुकम्पि—
निष्कारणोपगतबान्धव धर्मशील !
यत्न. कृतोऽपि सुमहान्मम मोक्षणाय
दैवं न संवदति, किं न कृत त्वयाद्य ॥३१॥

अन्वय —भो पतितसाधुजनानुकम्पिन्। निष्कारणोपगतबान्धव। धर्मशील ! उत्तिष्ठ, मम, मोक्षणाय, (त्वया), सुमहान्, यत्न, अपि, कृत, (किन्तु), दैवम्, न, संवदति, अद्य, त्वया, किम्, न, कृतम् ? ॥३१॥

पदार्थ –भो पतितसाधुजनानुकम्पिन् ! =हे आपत्ति मे गिरे हुए सज्जनो पर दया करने वाले !, निष्कारणोपगतबान्धव ! =अकारण आये हुए बन्धु !, धर्मशील= धार्मिक स्वभाव वाले, उत्तिष्ठ=उठो, मोक्षणाय=छुडाने के लिए, सुमहान्=बहुत बडा, यत्न=प्रयत्न, कृत=किया गया, न संवदति=नही मिलता-जुलता है अर्थात् नही साथ दे रहा है अथवा अनुकूल नही है।

अनुवाद–हे विपद्ग्रस्त सज्जनो पर कृपा करने वाले ! अकारण आगत-बन्धु! धर्मशील ! उठो मेरी मुक्ति हेतु (तुमने) महान् प्रयत्न भी किया, किन्तु भाग्य साथ नही दे रहा है। आज तुमने (मेरे लिए) क्या नहीं किया ?

संस्कृत टीका–भो पतितसाधु० =हे दु खपतितसज्जन कृपाकारिन् ! निष्कारणोपगतबान्धव ! =हे बन्धुभाव समुपस्थित !, धर्मशील !=परमधार्मिक !, उत्तिष्ठ=उत्थितो भव, मम=म, मोक्षणाय=उद्धाराय, (त्वया) सुमहान्=बलवत्तम, यत्न=प्रयास, कृत=विहित, (किन्तु) दैवम्=भाग्यम्, न संवदति= नानुकूलम् भवति, अद्य=अस्मिन् दिने, त्वया=भवता, किम् न कृतम्=किम् न विहितम् ?

समास एव व्याकरण–(१) पतितसाधुजनानुकम्पिन्—पतित साधुजन (कर्म०स०), तम् अनुकम्पते तच्छील इति। पतितसाधुजन+अनु+कम्प्+णिनि कर्तरि। निष्कारणापगतबान्धव–निष्कारणम् उपगत 'सुप्सुपे' ति यागविभागात्समास, स चासौ बान्धवश्चेति 'विशेषण' मिति समास, तत्सम्बुद्धौ। धर्मशील–धर्मे शीलम् यस्य तत्सम्बुद्धौ। (२) पतित–पत्+क्त। उत्तिष्ठ–उद्+स्था+लाट्। संवदति–सम्=वद्+लट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्द्ध मे साभिप्राय विशेषणो द्वारा कथन किया गया है, अत परिकराङ्कुर है—' विशेषणैर्यत साकूतैरुक्ति परिकरस्तु स"—काव्य प्रकाश। (२) अप्राकरणिक अर्थ से प्राकरणिक अर्थ के अपतन रूप, अर्थापत्ति अलङ्कार है— "कार्यात्ययोपगमन विरोधनमिति स्मृतम्"—साहित्य दर्पण । (३) प्रस्तुत श्लोक विरोधन नामक विमर्शसन्धि का अङ्ग है। (४) वसन्ततिलका छन्द है। लक्षण— ' उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग ।

चाण्डालौ—भट्टक, ताडयित्वैत चेट निष्कासय। [भट्टके, पिट्टिअ एद चेड णिक्खालेहि ।]

दोनो चाण्डाल—स्वामी ! मार कर इस चेट को निकाल दीजिये।

शकार—निष्क्राम रे। (इति निष्क्रामयति।) अरे अरे चाण्डाला, कि विलम्बध्वम्। मारयतैनम्। [णिक्कम ले। अले चाण्डाला, कि विलम्बेध। मालेध एदम्।]

शकार—अरे निकल जा। [निकाल देता है] अरे, अरे चाण्डालो ! क्यो विलम्ब कर रहे हो ? इसको मार दो।

चाण्डालौ—यदि त्वरयसे तदा स्वयमेव मारय। [जदि तुवलशि ता शअ ज्जेव मालेहि।]

दोनो चाण्डाल—यदि शीघ्रता करते हैं तो स्वय मार दीजिये।

रोहसेन —अरे चाण्डाला, मा मारयत। मुञ्चत पितरम्। [अले चाण्डाला, म मारेध। मुञ्चध आवुकम्।]

रोहसेन—अरे चाण्डालो ! मुझे मारो, पिता जी को छोड दो।

शकार—सपुत्रमेवैत मारयत। [शपुत्त ज्जेव एद मालेध।]

शकार—पुत्र के सहित ही इसे मार दो।

चारुदत्त—सर्वमस्य मूर्खस्य सभाव्यते। तद्गच्छ पुत्र, मातु समीपम्।

चारुदत्त—इस मूख के लिए सब सम्भव है। इसलिए बेटा ! माँ के पास जाओ।

रोहसेन—कि मया गतेन कर्तव्यम्। [किं मए गदेण कादव्वम्।]

रोहसेन—मुझे जाकर क्या करना है।

विवृति

(१) निष्कामय=बाहर निकाल दो (२) मुञ्चत=छोड दो। (३) मारयत=मार दो।

चारुदत्त —

चारुदत्त–

आश्रम वत्स ! गन्तव्य गृहीत्वाद्यैव मातरम् ।
मा पुत्र ! पितृदोषेण त्वमप्येव गमिष्यसि ॥३२॥

अन्वय–वत्स ! मातरम्, गृहीत्वा अद्य, एव, आश्रमम्, गन्तव्यम्, पुत्र ! पितृदोषेण, त्वम्, अपि, एवम्, मा, गमिष्यसि ॥३२॥

पदार्थ—वत्स ! हे पुत्र ! मातरम्=माता को, गृहीत्वा=लेकर, आश्रमम्=आश्रम को, गन्तव्यम्=चले जाना चाहिये, पितृदोषेण=पिता के दोष के कारण ।।

अनुवाद.–वत्स ! माता को लेकर आज ही आश्रम मे चले जाना । हे पुत्र ! पिता के दोष के कारण (कही) तुम भी न इसी प्रकार चले जाओ ।

संस्कृत टीका–वत्स ! = हे पुत्र ! मातरम् = स्वजननीम्, गृहीत्वा= आदाय, अद्यैव=अस्मिन्नेव दिने, आश्रमम् = तपोवनम्, गन्तव्यम्=यातव्यम्, पुत्र !=हे सुत ! पितृदोषेण=जनकापराधेन, त्वमपि = निरपराध बालक अपि, एवम्=ईदृशम्, मा=नहि, गमिष्यसि=यास्यसि ॥

समास एवं व्याकरण–(१) पितृदोषेण–पितु दोषेण । (२) गृहीत्वा–ग्रह्+क्त्वा । गन्तव्यम्–गम्+तव्यत् । गमिष्यसि–गम्+लृट् । मातरम्–मान्+तृच् (नलोप.) ।

विवृति

(१) 'आश्रमो वत्स ! गन्तव्य "–यह पाठान्तर भी मिलता है । (२) प्रस्तुत पद्य में प्रयुक्त छन्द का नाम है–पथ्यावक्त्र । लक्षण–"युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।"

तद्वयस्य, गृहीत्वैन व्रज ।

इसलिये मित्र ! इसे लेकर जाओ ।

विदूषक–भो वयस्य, एव त्वया ज्ञातम्, त्वया विनाह प्राणान्धारयामीति । [भो वअस्स, एव्व तुए जाणिदम्, तुए विणा अह पाणाइ धारेमि त्ति ।]

विदूषक–हे मित्र ! क्या तुमने यह समझ लिया है कि तुम्हारे बिना मैं प्राण धारण करूंगा ?

चारुदत्त–वयस्य, स्वाधीनजीवितस्य न युज्यते तव प्राण-परित्याग. ।

चारुदत्त–मित्र ! अपने अधीन जीवन वाले तुम्हारा प्राण त्याग करना उचित नही है ।

विदूषक–(स्वगतम् ।) युक्त न्विदम् । तथापि न शक्नोमि प्रियवयस्यविरहितः प्राणान्धर्तुमिति । तद्ब्राह्मण्यै दारक समर्प्य प्राणपरित्यागेनात्मन. प्रियवयस्य-

मनुगमिष्यामि। (प्रकाशम्।) भो वयस्य, परानयाम्यत लघु। (इति सकण्ठग्रह पादयो पतति।) [जुत्त णेदम्। तधा वि ण सक्कुणोमि पिअवअस्सविरहिदो पाणाइ धारेदु त्ति। ता बह्मणीए दारअ समप्पिअ पाणपरिच्चाएण अत्तणो पिअवअस्स अणुगमिस्सम्। भो वअस्स, पराणेमि एद लहुम्।]

विदूषक–[अपने आप] निश्चय ही यह ठीक है। तो भी प्रिय मित्र के बिना मै प्राण धारण नही कर सकता हूँ। इसलिये ब्राह्मणी को बालक सौपकर प्राण त्याग के द्वारा प्रिय मित्र का अनुगमन करूँगा। [प्रकट रूप से] हे मित्र ! मै इसे शीघ्र लौटा ले जाता हूँ। [यह कह कर गले लगकर पैरो पर गिर जाता है]

(दारकोऽपि रुदन्पतति।)

[बालक भी रोता हुआ गिर जाता है]

शकार–अरे ननु भणामि सपुत्रक चारुदत्त व्यापादयतेति। [अले, ण भणामि शपुत्ताक चालुदत्ताक वावादेघ त्ति।]

शकार–अरे ! कहता तो हूँ कि पुत्र सहित चारुदत्त को मार दो।

(चारुदत्तो भय नाटयति।)

[चारुदत्त भय का अभिनय करता है]

चाण्डालौ–न ह्यस्माकमीदृशी राजाज्ञप्ति, यथा सपुत्र चारुदत्त व्यापादयतेति। तन्निष्क्राम रे दारक निष्क्राम। (इति निष्क्रामयत।) इद तृतीय घोषणास्थानम्। ताडयत डिण्डिमम्। (पुनर्घोषयत।) [णहि अह्माण ईदिशी लाआणत्ती, जधा शपुत्त चालुदत्त वावादेघ त्ति। ता णिक्कम ले दालआ, णिक्कम। इम तइअ घोशणट्ठाणम्। ताडेध डिण्डिमम्।]

दोनो चाण्डाल–हम लोगो को ऐसी राजा की आज्ञा नही है कि पुत्र सहित चारुदत्त को मार दो। अत निकल जा रे बालक। निकल जा। [यह कह कर निकाल देते है] यह तीसरा घोषणा का स्थान है। ढोल पीटो। [पुन घोषणा करते हैं]

शकार–(स्वगतम्।) कथमेते न प्रत्ययन्ते पौरा (प्रकाशम्।) अरे चारुदत्त वटुक, न प्रत्ययत एष पौरजन। तदात्मीयया जिह्वया भण मया वसन्तसेना मारितेति। [कध एशे ण पत्ति आअन्ति पौला। हह्यो चालुदत्ता वडुका, ण पत्तिआअदि एशे पौलजणे। ता अत्तणकेलिकाए जीहाए भणाहि मए वशन्तशेणा मालिदेत्ति।]

शकार–[अपने आप] ये पुरवासी लोग क्यो विश्वास नही करते हैं ? [प्रकट] अरे चारुदत्त वटुक। ये नगर के लोग विश्वास नही करते है। अत अपनी जिह्वा से कहो कि 'मैंने बसन्तसेना को मारा है।"

(चारुदत्तस्तूष्णीमास्ते।)

[चारुदत्त चुप रहता है]

शकार–अरे चाण्डालमनुष्य, न भणति चारुदत्तवटुक । तद्भणयतानेन जर्जरवंशखण्डेन शल्लेन ताडयित्वा । [अले चण्डालगोहे, ण भणादि चालुदत्तवडुके । ता भणावेध इमिणा जज्जलवंशखण्डेण शल्लेण तालिअ तालिअ ।]

शकार–अरे चाण्डाल गोह ! चारुदत्त वटुक तो नहीं कहता है । इसलिये इस फटे बांस के टुकड़े के वादन-दण्ड से मार-मारकर इससे कहलाओ ।

चाण्डाल–(प्रहारमुद्यम्य ।) भोश्चारुदत्त, भण । [भोचालुदत्त, भणाहि ।]

चाण्डाल–[मारने का उपक्रम करके] हे चारुदत्त ! कहो ।

विवृति

(१) स्वाधीनजीवितस्य=अपने अधीन जीवन वाले । (२) प्राणपरित्याग = प्राण छोड़ना । (३) न युज्यते=ठीक नहीं है । (४) युक्तम्=ठीक । (५) प्रियवयस्य विरहित=प्रिय मित्र से शून्य । (६) ब्राह्मण्यै=चारुदत्त की स्त्री को । (७) दारकम्=बालक को । (८) समर्प्य=सौंपकर । (९) परानयामि=लौटाता हूँ । (१०) लघु=शीघ्र । (११) ईदृशी=ऐसी । (१२) राजाज्ञप्ति=राजा की आज्ञा । (१३) जर्जरवंश खण्डेन=जीर्ण बाँस के टुकड़े से । (१४) शल्लेन=नगाड़े में प्रहार करने के डण्डे से ।

चारुदत्त–(सकरुणम् ।)

चारुदत्त–[करुणा सहित]

प्राप्यैतद्व्यसनमहार्णवप्रपात

न त्रासो न च मनसोऽस्ति मे विषादः ।

एको मा दहति जनापवादवह्नि–

र्वक्तव्य यदिह मया हता प्रियेति ॥३३॥

अन्वय–एतद्व्यसनमहार्णवप्रपातम्, प्राप्य, मे, मनस, न, त्रास, न, च, विषाद अस्ति, एक, जनापवादवह्नि, मा, दहति, यत्, इह, वक्तव्यम्–मया, प्रिया, हता, इति ॥

पदार्थ–एतद्व्यसन=इस विपत्ति के समुद्र में गिरने को, प्राप्य=पाकर, मनस=मन को, त्रास=भय, विषाद=खेद, जनापवादवह्नि=लोकनिन्दा रूपी अग्नि, माम्=मुझको, दहति=जला रही है, वक्तव्यम्=कहना है ।

अनुवाद–इस विपत्ति रूप महासागर में गिर कर मेरे मन में भय नहीं और न विषाद ही, केवल लोकापवादरूपी अग्नि मुझे जलाती है जो यहाँ कहना है कि "मैंने प्रिया (वसन्तसेना) को मारा है ।"

संस्कृत टीका–एतद्व्यसन०=अनुभूयमानापत्तिमहासमुद्रपतनम्, प्राप्य=लब्ध्वा, मे=मम, मनस=चित्तस्य, न त्रास=न भीति, न च विषाद=मानसिक

दुःखम्, अस्ति = वर्तते, एक = केवल, जनापवादवह्नि = लोकापवादानल, माम् = चारुदत्तम्, दहति = सन्तापयति, यत्, इह = अत्र, वक्तव्यम् = कथनीयम्, मया = चारुदत्तेन, प्रिया = वसन्तसेना, हता = मारिता, इति ॥

समास एवं व्याकरण–(१) एतद्व्यसन०–एतत् व्यसनम् एव महार्णव तस्मिन् प्रपातम्। जनापवादवह्नि–जनापवाद एव वह्नि। (२) प्राप्य–प्र+आप्+क्त्वा (ल्यप्)। त्रास–त्रस्+घञ्। विषाद–वि+षद्+घञ। वक्तव्यम्–वच्+तव्य। प्रिया–प्री+क+टाप्।

विवृति

(१) 'व्यसन विपदि भ्रंशे दोषे कामप्रकोपजे' इत्यमर। (२) 'दरत्रासौ भीतिर्भीः साध्वस भयम्' इत्यमर। (३) 'एके मुख्यान्यकेवला' इत्यमर। (४) 'एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा' इति कोष। (५) 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु' इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। (६) 'व्यसनमहार्णवे' और 'अपवादवह्नि' में निरङ्ग एवं केवल रूपका अलङ्कार की संसृष्टि है। (७) प्रहर्षिणी छन्द है। लक्षण–'म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।'

(शकार पुनस्तथैव।)

[शकार फिर उसी प्रकार (कहता है)]

चारुदत्त–भो भो पौरा। ('मया खलु नृशसेन' (९/३०, ३८) इत्यादि पुन पठति।)

चारुदत्त–हे हे पुरवासियो! 'मया खलु नृशसेन' (९/३०, ३८) इत्यादि पुन पढता है।

शकार–व्यापादिता। [वावादिदा।]

शकार–मार दी।

चारुदत्त–एवमस्तु।

चारुदत्त–ऐसा ही सही।

प्रथमचाण्डाल–अरे, तवात्र वध्यपालिका। [अले तव अत्त वज्झपालिआ।]

पहला चाण्डाल–अरे! यहाँ वध करने की तुम्हारी बारी है।

द्वितीय चाण्डाल–अरे, तव। [अले, तव।]

दूसरा चाण्डाल–अरे! तुम्हारी।

प्रथम–अरे, लेख कुर्मः। (इति बहुविध लेखक कृत्वा।) अरे, यदि मदीया वध्यपालिका, तदा तिष्ठतु तावन्मुहूर्तकम्। [अले लेक्खअ कलेम्ह। अले यदि ममकेलिका वज्झपालिआ, ता चिठ्ठदु दाव मुहूत्तअम्।]

पहला–अरे! गणना करते हैं। [अनेक प्रकार की गणना करके] अरे! यदि मेरी वध करने की बारी है तो क्षण भर ठहरो।

द्वितीय–किंनिमित्तम् । [किंणिमित्तम् ।]

दूसरा–किसलिए ?

प्रथम–अरे, भणितोऽस्मि पित्रा स्वर्गं गच्छता, यथा–पुत्र वीरक, यदि तव वध्यपालिकामवति, मा सहसा व्यापादयसि वध्यम् । [अले, भणिदो ह्मि पिदुणा शग्ग-गच्छन्तेण, जधा–पुत्त वीरअ, जइ तुह वज्झपालिआ होदि, मा शहशा वावादअशि वज्झम् ।]

पहला–अरे ! स्वर्गारोहण करते हुये पिता जी ने मुझसे कहा था कि–हे वीर पुत्र ! यदि वध करने की तुम्हारी बारी हो तो वध्य को एकाएक न मारना।

द्वितीय–अरे, किंनिमित्तम् । [अले, किंणिमित्तम् ।]

दूसरा–अरे ! किसलिय ?

प्रथम–कदापि कोऽपि साधुरर्थं दत्वा वध्य मोचयति । कदापि राज्ञ पुत्रा भवति, तेन वृद्धिमहोत्सवेन सर्ववध्याना मोक्षो भवति । कदापि हस्ती वन्ध खण्डयति नैन सभ्रमण वध्यो मुक्तो भवति । कदापि राजपरिवर्तो भवति, तेन सर्ववध्याना मोक्षा भवति । [कदाविकोवि साहू अत्थ दइअ वज्झ मोआवेदि । कदावि लण्णो पुत्ते भादि, तण वद्धावेण शव्ववज्झाण मोक्खे होदि । कदावि हत्थी वन्ध खण्डदि, तेण शभमेण वज्झे मुक्के होदि । कदावि लाअपलिवत्ते होदि तण शव्ववज्झाण मोक्खे होदि ।]

पहला–कभी कोई सज्जन धन देकर वध्य को छुडा दे । कभी राजा को पुत्र हो जाय तो (कुल की) वृद्धि के महोत्सव के कारण सभी वध्यों को छोड दिया जाय । कभी हाथी वन्धन को तोड दें तो उस घबराहट से वध्य मुक्त हो जाय । कभी राजा वदल जाय ता सभी वध्य छूट जांय।

शकार–किं किं, राजपरिवर्तो भवति । [किं किं लाअपलिवत्ते होदि ।]

शकार–क्या क्या ? राज्य वदलता है ?

चाण्डाल–अरे, वध्यपालिकाया लेख कुर्म । [अले, वज्झपालिआए लेक्खअ कलेह्म ।]

चाण्डाल–अरे ! वध करन की बारी की गणना कर रह हैं।

शकार–अर, शीघ्र मारयन चारुदत्तम् । (इत्युक्त्वा चेट गृहीत्वैकान्ते स्थित ।) [अले, शिग्घ मालेध चालुदत्ताकम् ।]

शकार–अरे ! चारुदत्त को शीघ्र मार दा । [यह कह कर चेट को लेकर एकान्त म ठहर जाता है]

चाण्डाल–आय चारुदत्त, राजनियाग खल्वपराध्यति, न खलु वय चाण्डाला तत्स्मतव्यम् य स्मर्तव्य । [अज्जचालुदत्त, लाअणिओओ क्खु अवलज्झदि, ण क्खु अह्मे चाण्डाला । ता शुमल्हि ज शुमलिव्वम् ।]

चाण्डाल–आय चारुदत्त ! राजा की आज्ञा दापी है, न कि हम चाण्डाल । ता स्मरण कर लो जिसका स्मरण करना हो।

विवृति

(१) वध्यपालिका=वध करने की पारी। (२) लेखनम्=गणना। (३) वध्यम्=मारे जाने वाले को। (४) वृद्धिमहोत्सवेन= राजकुल में बालक के जन्मोत्सव के कारण। (५) सम्भ्रमेण=घबड़ाहट से। (६) राजपरिवर्त=राज का परिवर्तन। (७) राजनियोग=राजा की आज्ञा। (८) स्मर्तव्यम्= याद कर लेना चाहिए।

चारुदत्त—

चारुदत्त—

प्रभवति यदि धर्मो दूषितस्यापि मेऽद्य
प्रबल पुरुष वाक्यैर्भाग्य दोषात्कथंचित्।
सुरपतिभवनस्था यत्र तत्र स्थिता वा
व्यपनयतु कलङ्कं स्वस्वभावेन सैव ॥३४॥

अन्वय—भाग्यदोषात्, अद्य, प्रबलपुरुषवाक्यैः, दूषितस्य, अपि, मे, धर्मः, यदि कथञ्चित्, प्रभवति, (तर्हि), सुरपतिभवनस्था, वा, यत्र, तत्र, स्थिता, सा, एव, स्वस्व भावेन, (मे), कलङ्कम्, व्यपनयतु ॥३४॥

पदार्थ—भाग्यदोषात्=भाग्य के दोष से, प्रबलपुरुषवाक्यैः=प्रबल पुरुष (राजा पालक की कृपा से बलवान् शकार या न्यायाधीश) के वचनों से, दूषितस्य= कलङ्कित, सुरपतिभवनस्था=इन्द्र के भवन में अर्थात् स्वर्ग में स्थित, स्वभावेन= अपने स्वभाव से, अपने भाव-प्रकाशन अथवा अपनी चारुकृति से, व्यपनयतु=दूर करे।

अनुवाद— भाग्य के दोष से आज शक्तिशाली पुरुषों के वचनों से कलङ्कित हुये भी मेरा धर्म यदि किसी प्रकार समर्थ है तो इन्द्र-भवन में स्थित अथवा जहाँ तहाँ वर्तमान वह (वसन्तसेना) अपने स्वभाव से मेरे कलङ्क को दूर करे।

संस्कृत टीका—भाग्यदोषात्= अदृष्टवशात्, अद्य=सम्प्रति प्रबलपुरुषवाक्यैः=बलवत्जनवचनैः, दूषितस्य=कलङ्कितस्य, अपि, मे=मम, धर्मः -पुण्यम् यदि=चेत्, कथञ्चित्=केनापि प्रकारेण, प्रभवति=समर्थोऽस्ति, (तर्हि) सुरपति भवनस्था—अमरावतीस्था, वा=अथवा, यत्र तत्र=यस्मिन् कस्मिन् स्थाने [illegible] स्थिता=वर्तमाना, सा एव=वसन्तसेना एव, स्वस्वभावेन=स्वचारुत्वेन (मे) कलङ्कम्=लाञ्छनम्, व्यपनयतु=दूरीकरोतु ॥

समास एवं व्याकरण—(१) भाग्यदोषात्-भाग्यस्य दोषात्। प्रबलपुरुष-वाक्यैः-प्रबलस्य य पुरुषः तस्य वाक्यैः। सुरपतिभवनस्था-सुराणाम् पतिः इन्द्र

भवनम्, तत्र तिष्ठतीति स्था । (२) स्थिता=स्था+क्त । व्यपनयतु–वि+अप+नी+लोट् ।

विवृति

(१) दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः" इत्यमरः । (२) "स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः" इत्यमरः । (३) "गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनम् । निशान्तवस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम्" इत्यमरः । (४) यन यन०–चारुदत्त को यह निश्चय नहीं था कि वसन्तसेना जीवित है । (५) प्रस्तुत श्लोक में मालिनी छन्द है । लक्षण–"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" । (६) यहाँ अशंसा नामक नाट्यालङ्कार है—"आशंसनं स्यादाशंसा" ॥सा० द०॥

भो, क्व तावन्मया गन्तव्यम् ।

अरे ! तो मुझे कहाँ जाना है ?

चाण्डाल–(अग्रतो दर्शयित्वा ।) अरे एतद्दृश्यते दक्षिणश्मशानम्, यत्प्रेक्ष्य वध्या झटिति प्राणान्मुञ्चन्ति । पश्य पश्य । [अले, एद दीशदि दक्खिणमशाणम्, जं पेक्खिअ वज्झा झत्ति पाणाइ मुञ्चन्ति । पेक्ख पेक्ख ।]

चाण्डाल–[आगे दिखाकर] अरे ! यह दक्षिण श्मशान दिखाई दे रहा है, जिसे देखकर वध्य (पुरुष) शीघ्र ही प्राणों को छोड़ देते हैं । देखो, देखो—

अर्धं कलेवरं प्रतिवृत्तं कर्षन्ति दीर्घगोमायवः ।
अर्धमपि शूललग्नं वेश इवाट्टहासस्य ॥३५॥

अद्धं कलेवलं पडिवुत्तं कट्टति दीहगोमाआ ।
अद्धं पि शूललग्गं वेशं विअ अट्टहाशश्श ॥३५॥

अन्वय.—दीर्घगोमायवः, प्रतिवृत्तम्, अर्धम्, कलेवरम्, कर्षन्ति, शूललग्नम्, अर्धम्, अपि अट्टहासस्य, वेशः, इव, (प्रतिभाति) ॥३५॥

पदार्थ—दीर्घगोमायवः=लम्बे या गर्दन को ऊपर उठाये हुये प्रसियार, प्रतिवृत्तम्=उलटा हुआ अथवा लटका हुआ, अर्धम्=आधे, कलेवरम्=शरीर को, कर्षन्ति=खींच रहे हैं, खींच रहे हैं, शूललग्नम्=शूली में लगा हुआ, अट्टहासस्य=विकट हास का, वेश=रूप ॥

अनुवाद—विशालकाय अथवा उन्नत शरीर वाले शृगाल लटके हुये आधे शरीर को खींच रहा है । शूल में आवद्ध आधा (शरीर) भी विकट हास का स्वरूप-सा प्रतीत होता है ।

संस्कृत टीका—दीर्घगोमायवः = विशाल शृगालाः, प्रतिवृत्तम्=लम्बितम्, अर्धम्, कलेवरम्=शरीरम्, कर्षन्ति=आकर्षन्ति शूललग्नम्=शूलसक्तम्, अर्धमपि=शेषार्धमपि, अट्टहासस्य=अतिहसितस्य, वेश इव=स्वरूपमिव, (प्रतिभाति) ॥

समास एवं व्याकरण—(१) दीर्घगोमायवः—दीर्घाः गोमायवः । शूललग्नम्–शूले लग्नम् । (२) प्रतिवृत्तम्–प्रति+वृत्+क्त । कर्षन्ति–कृष्+लट् ।

विवृति

(१) 'भूरिमायगोमायुमृग धूर्तका शृगालवञ्चकक्रोष्टुफेरुफेरवजम्बुका' इत्यमरः । (२) मरते समय वध्य की मुख-मुद्रा बदल जाती है– उसका मुख फटा रह जाता है । अतः ऐसा प्रतीत होता है मानो वह अट्टहास कर रहा हो। (३) 'अट्टहास इव' में गुणोत्प्रेक्षालङ्कार है । (४) पूर्वकृत कार्य का सङ्ग्रह होने से आदान नामक विमर्श सन्धि का अङ्ग है । लक्षण-'कार्यसंग्रह आदानम्' । (५) प्रस्तुत पद्य में रूपकालङ्कार है । (६) आर्या छन्द है ॥

चारुदत्त–हा, हतोऽस्मि मन्दभाग्य ।(इतिसवेगमुपविशति ।)

चारुदत्त–हाय, मैं अभागा मारा गया । [यह कह आवेगपूर्वक बैठ जाता है]

शकार–न तावद्गमिष्यामि । चारुदत्तकं व्यापाद्यमानं तावत्पश्यामि । (परिक्रम्य दृष्ट्वा ।) कथमुपविष्टः । [ण दाव गमिश्शम् । चालुदत्तकं वावादअन्तं दाव पेक्खामि । कध उवविट्ट ।]

शकार–अभी नही जाऊँगा । चारुदत्त को मारे जाते हुए देखूँगा । [घूमकर देखकर] क्या बैठ गया है ?

चाण्डाल–चारुदत्त किं भीतोऽसि । [चारुदत्ता, किं भीदेशि ।]

चाण्डाल–चारुदत्त ! क्या डर गये हो ?

चारुदत्त–(सहसोत्थाय ।) मूर्ख । ("न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः' (१०/२७) इत्यादि पुनः पठति ।)

चारुदत्त–[एकाएक उठकर] मूर्ख ! ['न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः' (१०/२७) इत्यादि पुनः पढ़ता है ।

चाण्डाल–आर्यचारुदत्त, गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्तिं लभेते । किं पुनर्जना मरणभीरुका मानवा वा । लोके कोऽप्युत्थितः पतति, कोऽपि पतितोऽपुनरुत्तिष्ठते । [अज्ज चालुदत्त, गअणदले पडिवसन्ता चन्दसुज्जा वि विपत्तिं लहन्ति । किं उण जणा मलणभीलुआ माणवा वा । लोए कोवि उट्ठिदो पडदि कोवि पडिदोवि उट्ठेदि ।]

चाण्डाल–आर्य चारुदत्त ! आकाश-प्रान्त में वास करते हुये चन्द्रमा और सूर्य भी विपत्तिग्रस्त हो जाते हैं, फिर लोगों अथवा मृत्यु से डरने वाले मानवों का क्या कहना है ? लोक में कोई उठकर गिरता है, कोई गिरकर भी उठता है ।

विवृति

(१) मरणभीरुका =मृत्यु से डरने वाले ।

उत्तिष्ठत्पततो वसनपातिका शवस्य पुनरस्ति ।
एतानि हृदये कृत्वा सधारयात्मानम् ॥३६॥
[उट्ठनपडनाह वशणपाडिआ शवश्श उण अत्थि ।
एदाइ हिअए कदुअ संधालेहि अत्ताणअं ॥३६॥]

अन्वय —उत्तिष्ठत्पतत, शवस्य, पुन, वसनपातिका, अस्ति, एतानि, हृदये, कृत्वा, आत्मानम्, सधारय ॥३६॥

पदार्थ —उत्तिष्ठत्पतत =उठने और गिरते हुये अथवा उठकर गिरते हुये, शवस्य=मृत शरीर को, वसनपतिका=वस्त्र के समान पतनक्रिया, एतानि=इनको, आत्मानम्=अपने आप को, सधारय=ढाँढस दो ॥

अनुवाद —उठकर गिरते हुये मृत शरीर की भी (ध्वजा के) वस्त्र के समान पतन-क्रिया होती है। यह हृदय म विचार कर अपने आपको स्थिर करो ॥

संस्कृत टीका—उत्तिष्ठत्पतत =उत्थानपतन गच्छत, शवस्य=मृतशरीरस्य, पुन=भूय, वसनपातिका=वस्त्रपतनक्रिया, अस्ति=विद्यते, एतानि=इमानि (उत्थानपतनहेतु भूतानि दैवचेष्टितानि), हृदये=चेतसि, कृत्वा= विचार्य, आत्मानम्=मन, सन्धारय=स्थिरीकुरु ॥

समास एव व्याकरण—(१) उत्तिष्ठत्पतत –उत्तिष्ठश्चासौ पतश्चेति उत्तिष्ठत्पतत् तस्य अथवा पूर्वमुत्तिष्ठत पश्चात् पतित च। वसनपतिका–वसनस्येव पातिका अथवा वसनञ्च पातिका चेति वसनपातिका। (२) पातिका–पत्+ण्वुल् 'धात्वर्थ-निर्देशे ण्वुल् वक्तव्य' इति वार्तिकेन ण्वुल्। उत्तिष्ठन्–उत्+स्था+शतृ। पतत–पत्+शतृ। अस्ति– अस्+लट्। कृत्वा–कृ+क्त्वा। सधारय–सम्+धृ+णिच्+लोट्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि पताका के उत्थान-पतन के समान ही शव का भी शूल पर उत्थान पतन होता है अथवा वस्त्र वस्त्र को त्यागने के समान ही शरीर का त्याग है। इन बातो का विचार कर धैर्य धारण करो। (२) वस्त्र को छोडने के समान ही शरीर का त्याग है, यहाँ गीता के निम्नाङ्कित श्लोक के भाव की छाया दृष्टिगत होती है—

"वासासि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि सयाति नवानि देही ॥"–गीता ॥ (३) नीच चाण्डाल के इस कथन मे कितनी सत्यता है। उसके एक–एक शब्द से दार्शनिकता टपक रही है। 'उत्थान-पतन' का उपदेश बडा ही मनोहर है। किसी कवि ने कहा है–"उत्थान-पतन का जोडा, रवि-शशि सा चलता रहता। सूखी पर्वत नदियो मे, है कभी नीर भी बहता।"(४) प्रस्तुत पद्य मे आर्या छन्द है। लक्षण–"यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥"

(द्वितीयचाण्डाल प्रति।) एतच्चतुर्थं घोषणास्थानम्। तदुद्घोषयाव। [एद चउट्ठ घोशणट्ठाणम्। ता उग्घोशम्ह।]

[दूसरे चाण्डाल के प्रति] यह चौथा घोषणा करने का स्थान है। इसलिये हम घोषणा करें।

(पुनस्तथैवोद्घोषयन्ति ।)

[पुनः उसी प्रकार घोषणा करते हैं]

चारुदत्त— हा प्रिये वसन्तसेने। ('शशिविमलमयूख' (१०/१३) इत्यादि पुनः पठति।)

चारुदत्त— हाय प्रिया वसन्तसेना! ['शशिविमलमयूख'—(१०/१३) इत्यादि पुनः पढ़ता है]

(ततः प्रविशति ससम्भ्रमा वसन्तसेना भिक्षुश्च ।)

[तदनन्तर घबराहट के साथ वसन्तसेना और भिक्षु प्रवेश करते हैं]

भिक्षु— आश्चर्यम्। अस्थानपरिश्रान्ता समाश्वास्य वसन्तसेनिकां नयन्ननुगृहीतोऽस्मि प्रव्रज्यया। उपासिके, कुत्र त्वां नेष्यामि।

[हीमाणहे, अट्ठाणपलिस्सन्तं समस्सासिअ वसन्तशेणिअं णअन्ते अणुग्गहिदह्मि पव्वज्जाए। उवाशिके, कहिं तुमं णइस्सम्।]

भिक्षु— आश्चर्य है, अनुचित स्थान में परिश्रान्त (मूर्च्छित) वसन्तसेना को आश्वस्त (होश में) करके ले जाता हुआ मैं सन्यास के द्वारा अनुग्रहीत हुआ हूँ। उपासिका! तुम्हें कहाँ ले चलूँ ?

वसन्तसेना— आर्य चारुदत्तस्यैव गेहम्। तस्य दर्शनेन मृगलाञ्छनस्येव कुमुदिनीमानन्दय माम्। [अज्जचारुदत्तस्स ज्जेव गेहम्। तस्स दंसणेण मिअलाञ्छणस्स विअ कुमुदिणिं आणन्देहि मम्।]

वसन्तसेना— आर्य चारुदत्त के ही घर। उनके दर्शन से, चन्द्रमा (के दर्शन) से कुमुदिनी की भाँति, मुझे आनन्दित करो।

भिक्षु— (स्वगतम्।) कतरेण मार्गेण प्रविशामि। (विचिन्त्य।) राजमार्गेणैव प्रविशामि। उपासिके, एहि। अयं राजमार्गः। (आकर्ण्य।) किं नु खल्वेष राजमार्गे महान्कलकलः श्रूयते। [कदलेण मग्गेण पविशामि। लाअमग्गेण ज्जेव पविशामि। उवाशिके, एहि। इअं लाअमग्गे। किं णु क्खु एशे लाअमग्गे महन्ते कलअले शुणीअदि।]

भिक्षु— [अपने आप] किस मार्ग से प्रवेश करूँ ? [सोचकर] राज मार्ग से ही प्रवेश करता हूँ। उपसिका! आओ। यह राज मार्ग है। [सुन कर] राजमार्ग पर यह महान कोलाहल क्या सुनाई दे रहा है ?

विवृति

१ ससम्भ्रमा=घबराहट के साथ। २. भिक्षुः=बौद्ध सन्यासी। (पहले का संवाहक)। ३ अस्थानपरिश्रान्ताम्=कुस्थान अथवा अनुचित स्थान में (जहाँ किसी की दृष्टि भी न पड़े) अत्यन्त थकी हुई अर्थात् मूर्च्छित। ४ प्रव्रज्या=

सन्यास से। प्रव्रजनम् इति प्रव्रज्या प्र+व्रज+क्यप्, 'व्रजयजोर्भावे क्यप्' इति सूत्रेण, तत टाप्। ५ मृगलाञ्छनस्य=चन्द्रमा के। ६ उपासिके!=हे बुद्ध की उपासना करने वाली! ७ कतरेण=दो में से किस (मार्ग) से।

वसन्तसेना– (अग्रतो निरूप्य।) कथ पुरतो महाञ्जनसमूह। आर्य, जानीहि तावत्किमिदमिति विषमभरक्रान्तेव वसुधरा एकवासोन्नतोज्जयिनी वर्तते। [कध पुरदो महाजणसमूहो। अज्ज, जाणाहि दाव किं णेदत्ति। विसमभरक्कन्ता विअ वसुधरा एअवासोण्णदा उज्जइणी वट्टदि।]

वसन्तसेना– [आगे देखकर] क्या सामने बड़ा जनसमुदाय है? आर्य! पता लगाओ कि यह क्या है? विषम भार से आक्रान्त पृथ्वी के समान उज्जयिनी नगरी एक स्थान पर उमडी जा रही है।

चाण्डाल– इद च पश्चिम घोषणास्थानम्। तत्ताडयत डिण्डिमम्। उद्घोषयत घोषणाम्। (तथा कृत्वा) भोश्चारुदत्त, प्रतिपालय। मा भैः। शीघ्रमेव मार्यसे। [इम अ पच्छिम घोशणट्ठाणम्। ता तालेध डिण्डिमम्। उग्घोशेध घोशणम्। भो चालुदत्त, पडिवालेहि। मा भाआहि। लहु ज्जेव मालीअशि।]

चाण्डाल– और यह अन्तिम घोषणा का स्थान है। अतः ढोल पीटो। घोषणा घोषित करो। [वैसा करके] हे चारुदत्त! (प्रहार की) प्रतीक्षा करो। डरो मत। शीघ्र ही मार दिये जाओगे।

चारुदत्त– भगवत्यो देवताः।

चारुदत्त– भगवान देवताओ!

भिक्षु– (श्रुत्वा ससभ्रमम्।) उपासिके, त्व किल चारुदत्तेन मारितासीति चारुदत्तो मारयितु नीयते। [उवाशिके, तुम किल चालुदत्तेण मालिदाशि त्ति चालुदत्ता मालिदु णीअदि।]

भिक्षु– [सुनकर उतावली के साथ] उपासिका! तुम चारुदत्त के द्वारा मार दी गई हो, इसलिए चारुदत्त को मारने के लिए ले जाया जा रहा है।

वसन्तसेना– (ससभ्रमम्।) हा धिक् हा धिक्, कथ मम मन्दभागिन्या कृत आर्यचारुदत्तो व्यापाद्यते। भो, त्वरित त्वरितमादिश मार्गम्। [हद्धी हद्धी, कध मम मन्दभाइणीए किद अज्जचालुदत्तो वावादीअदि। भो, तुरिद तुरिद आदेसेहि मग्गम्।]

वसन्तसेना– [घबराहट के साथ] हाय धिक्कार! हाय धिक्कार! क्या मुझ अभागिन के लिये चारुदत्त को मारा जा रहा है? अरे, शीघ्रातिशीघ्र मार्ग बतलाओ।

भिक्षु– त्वरता त्वरता बुद्धोपासिकार्यचारुदत्त जीवन्त समाश्वासयितुम्। आर्याः, अन्तरमन्तर दत्त। [तुवलदु तुवलदु बुद्धोवाशिका अज्जचालुदत्त जीअन्त शमश्शाशिदुम्। अज्जा अन्तल अन्तल देध।]

भिक्षु– जीवित रहते आर्यचारुदत्त को आश्वासन देने के लिये बुद्ध की उपासिका शीघ्रता करे शीघ्रता करें। आर्यो ! (जाने के लिये) स्थान दो स्थान।

वसन्तसेना– अन्तरमन्तरम् । [अन्तर अन्तरम् ।]

वसन्तसेना– स्थान (दो) स्थान (दो) ।

चाण्डाल – आर्य चारुदत्त, स्वामिनियोगोऽपराध्यति । तत्स्मर यत्स्मर्तव्यम्। [अज्जचालुदत्त, शामिणिओओ अवलज्झदि । ता शुमलेहि ज शुमलिदव्वम् ।]

चाण्डाल– आर्य चारुदत्त ! स्वामी का आदेश अपराधी है। अत जो कुछ स्मरण करना हो, स्मरण कर लो ।

चारुदत्त– किं बहुना । ('प्रभवति–' (१०/३४) इत्यादि श्लोक पठति ।)

चारुदत्त– अधिक क्या ? ['प्रभवति–' (१०/३४) इत्यादि श्लोक पढ़ता है।]

चाण्डाल – (खड्गमाकृष्य ।) आर्यचारुदत्त, उत्तानो भूत्वा सम तिष्ठ ।

एक प्रहारेण मारयित्वा त्वां स्वर्गं नयाम । [अज्जचालुदत्त, उत्ताणे भविअ सम चिट्ठ । एक्कप्पहालेण मालिअ तुम शग्ग णेम्ह ।]

चाण्डाल– [तलवार खींच कर] आर्य चारुदत्त ! उत्तान होकर सीधे स्थित हो जाओ । एक (हो) प्रहार से मारकर तुम्हे स्वर्ग पहुँचा देते है ।

(चारुदत्तस्तथा तिष्ठति ।

[चारुदत्त वैसे ही खडा होता है]

विवृति

(१) विषमभरक्रान्ता—विषय भार मे लदी हुई। (२) एक वासोन्नता=एक स्थान मे उन्नत अथवा एकत्रित वास के कारण उन्नत । (३) पश्चिमम्=अन्तिम । (४) मा भै =मत डरो । यहाँ 'मा भैषी ' प्रयोग होना चाहिये था । (५) भगवत्यो देवता =हे भगवान् देवगण । सस्कृत मे देवता शब्द स्त्रीलिङ्ग है, अत 'भगवत्य' विशेषण है ।-(६) 'विषमभरक्रान्तेव वसुन्धरा' के स्थान पर 'विषमभरक्रान्तेव नौ' पाठ अधिक अच्छा होता । (७) 'चरममन्त्यपाश्चात्य पश्चिमम्' इत्यमर ।

चाण्डाल –(प्रहर्तुमीहते । खड्गपतन हस्तादभिनयन् ।) ही कथम् ?

[ही, कधम् ।]

चाण्डाल—[प्रहार करना चाहता है, हाथ से तलवार गिरने का अभिनय करता हुआ] ओह ! कैसे ?

आकृष्ट. सरोष मुष्टौ मुष्टिना गृहीतोऽपि ।
धरण्या किमर्थं पतितो दारुणकोऽशनि सन्निभः खड्गः ॥३७॥
[आअट्ठिदे शलोश मुट्ठीए मुट्ठिणा गहीदे वि ।
धलणीए कीश पडिदे दालुणके अशणिशण्णिहे खग्गे ॥३७॥]

अन्वय —सरोषम्, आकृष्ट , मुष्टौ, मुष्टिना, गृहीत, अपि, अशनिसन्निभ, दारुणक, खड्ग, धरण्याम्, 'किमर्थम् पतित' ॥३७॥

पदार्थः—मुष्टौ=मूठ पर, मुष्टिना=मुट्ठी से, गृहीत =पकडी गयी, सरोषम्=क्रोधपूर्वक, आकृष्ट =खीची गई, अशनिसन्निभ =वज्र के समान, दारुण = भयङ्कर, खड्ग = तलवार, धरण्याम्=पृथ्वी पर, किमर्थम्=क्या, पतित =गिरी ?

अनुवाद —रोषपूर्वक खीची गई, मूठ पर मुट्ठी से पकडी गई भी वज्र के समान भयङ्कर तलवार भूमि पर क्यो गिरी ?

संस्कृत टीका—सरोषम्=सक्रोधम्, आकृष्ट =कोशात्निष्काशित , मुष्टौ= त्सरौ, मुष्टिना=बद्धहस्तेन, गृहीत अपि=धारित अपि, अशनिसन्निभ वज्रतुल्य, दारुणक =अतिभयङ्कर, खड्ग =असि, धरण्याम्=भूमौ, किमर्थम्=किन्निमित्तम्, पतित =च्युत ?

समास एव व्याकरण-(१) आकृष्ट –आ+कृष्+क्त। मुष्टि –मुष्+क्तिन्। गृहीत –ग्रह्+क्त। पतित –पत्+क्त।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे आर्यो उपमालङ्कार है। (२) पृथ्वीधर के अनुसार प्रस्तुत श्लोक म उद्गीति छन्द है। लक्षण–"आर्याशकलद्वितय विपरीत पुनरिहाद्गीति ।" (३) कुछ टीकाकारो के अनुसार इस श्लोक मे गीति छन्द है। लक्षण– "आर्याप्रथमदलोक्त यदि कथमपि लक्षण भवेदुभयो दलयो कृतयतिशोभा ता गीति गीतवान् भुजङ्गेश ॥"

यथैतत्सवृत्तम्, तथा तर्कयामि न विपद्यत आर्यचारुदत्त इति। भगवति सह्यवासिनि, प्रसीद प्रसीद। अपि नाम चारुदत्तस्य मोक्षो भवेत्, तदानुगृहीत त्वया चाण्डाल कुल भवेत्। [जधा एद सवुत्तम्, तधा तक्केमि ण विवज्जदि अज्जचालुदत्ते त्ति। भअवदि शज्झवाशिणि, पशीद पशीद। अवि णाम चालुदत्तश्श मोक्खे भव, तदो अणग्गहीद तुए चाण्डालउल भव।]

जिस प्रकार यह घटना हुई है, उससे अनुमान करता हूँ कि आर्य चारुदत्त नही मारा जायगा। हे सह्य पर्वत पर निवास करने वाली देवी (दुर्गा)! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो। यदि चारुदत्त को छुटकारा मिल जाय तो चाण्डाल-कुल कृतार्थ हो जाये।

अपर–यथाज्ञप्तमनुतिष्ठाव। [जधाण्णत्त अणुचिट्ठह्य।]

दूसरा–हम दोनो (राजा की) आज्ञा के अनुसार कार्य करें।

प्रथम–भवतु। एव कुर्व। [भोदु। एव्व। क्लेह्य।]

पहला–अच्छा, ऐसा ही करें।

(इत्युभौ चारुदत्तं शूले समारोपयितुमिच्छत ।)

[दोनों चारुदत्त को शूली पर चढ़ाना चाहते हैं]

(चारुदत्त 'प्रभवति' (१०/३४) इत्यादि पुन पठति ।)

[चारुदत्त 'प्रभवति–' (१०/३४) इत्यादि पुन. पढ़ता है]

भिक्षुर्वसन्तसेना च–(दृष्ट्वा ।) आर्या मा तावन्मा तावत् । आर्या, एषाह मन्दभागिनी यस्या कारणादेष व्यापाद्यते । [अज्जा, मा दाव मा दाव । अज्जा, एषा अहं मन्दभाइणी, जाए कारणादो एसो वावादीअदि ।]

भिक्षु और वसन्तसेना–[देखकर] आर्यों ! ऐसा न कीजिये, ऐसा न कीजिए। यह मैं (ही) अभागिन हूँ, जिसके कारण ये मारे जा रहे हैं।

विवृति

(१) यथंतत्सवृत्तम्=जैसा यह हुआ है अर्थात् जैसे यह घटना घटी है। (२) तर्कयामि—अनुमान करता हूँ। (३) विपद्यते=मरता है (अर्थात् मरेगा)। (४) सह्यवासिनि !=हे सह्य पर्वत पर निवास करने वाली (दुर्गा माता)। यह चाण्डालकुल की इष्टदेवी मालूम होती है। (५) अपि नाम=यदि ऐसा होता। यह सभावना सूचक अव्यय है। (६) यथाज्ञप्तम्=जैसी राजाज्ञा है अर्थात् शूली पर चढ़ाने की। (७) यहाँ से लेकर समाप्ति पर्यन्त उपसहार सन्धि है। इनके १४ अङ्ग होते हैं। इसमे वसन्तसेना और चारुदत्त के चिरमिलनोत्पत्ति से फलागम नामक अन्तिम कार्यावस्था निबद्ध है— सावस्था फलयोग स्यात् य समग्रफलोदय ।' (८) वसन्तसेना और चारुदत्त के परस्पर अनुराग रूप बीज वाले मुख सन्धि आदि मे निविष्ट अनेक अर्थ यहाँ परस्पर मिल कर मुख्य फल के उपयोगी होकर निबद्ध हैं। 'बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्। एकार्थमुपनीयन्तो यत्र निर्वहण हि तत् ॥'

चाण्डाल– (दृष्ट्वा ।)

चाण्डाल– [देखकर]

का पुनस्त्वरितमेषासपतता चिकुरभारेण ।
मा मेति व्याहरन्त्युत्थितहस्तेन एति ॥ ३८ ॥

[का उण तुलिद एशा अशपडतेण चिउलभालेण ।
मा मेत्ति वाहलती उद्विदहत्था इदो एदि ॥ ३८ ॥]

अन्वय –असपतता, चिकुरभारेण, (उपलक्षिता), उत्थितहस्ता, मा, मा, इति, व्याहरन्ती, एषा का पुन, त्वरितम्, इत एति ॥३८॥

पदार्थ –असपतता=कधों पर गिरते हुए अर्थात् व्याकुलतापूर्वक शीघ्र गमन मे इधर-उधर बिखरे हुए, चिकुरभारेण=केश-कलाप से, उत्थितहस्ता=जिसके हाथ

उठे हुये हैं, मा=मत, व्याहरन्ती=कहती हुई, एषा=यह, त्वरितम्=जल्दी से, इत=इधर, एति=आ रही है।

अनुवाद–कन्धों पर बिखरे हुए केशकलाप से युक्त हाथ उठाये हुए 'नहीं, नहीं' यह कहती हुई यह कौन शीघ्रता से इधर आ रही है।

संस्कृत टीका–अंसपतता = स्कन्धविपर्यस्तेन, चिकुरभारेण = केशसमूहेन, उत्थितहस्ता=उद्गतकरा, 'मा, मा'=नहि, नहि, इति=इत्थम्, व्याहरन्ती=कथयन्ती, एषा=इयं पुरोदृश्यमाना, का पुनः=किंनामधेया स्त्री, त्वरितम्=शीघ्रम्, इत=अस्याम् दिशि, एति=आगच्छति ॥

समास एवं व्याकरण–(१) अंसपतता–अंसयोः पतता। चिकुरभारेण–चिकुराणाम् भारेण, उत्थितहस्ता–उत्थितः हस्तः यस्याः सा। (२) पतता–पत्+शतृ। व्याहरन्ती–वि+आ+हृ+शतृ+ङीप्। एति–इ+लट्।

विवृति

(१) "अंस स्कन्धे विभागे स्यादिति हैम"। (२) "चिकुर कुन्तलो बाल. कच केशः शिरोरुहः" इत्यमर। (३) 'चिकुरभारेण' में 'उपलक्षणे' से तृतीया विभक्ति है। (४) प्रस्तुत पद्य में आर्या छन्द है। (५) पृथ्वीधर के अनुसार श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है–गाथा।

वसन्तसेना–आर्यचारुदत्त, किमिदम्। (इत्युरसि पतति।) [अज्जचारुदत्त, किं णेदम्।]

वसन्तसेना–आर्यचारुदत्त! यह क्या? यह कहकर [वक्षःस्थल पर गिर जाती है]

भिक्षु–आर्यचारुदत्त, किं न्विदम् (इति पादयोः पतति।) [अज्जचालुदत्त, किं णेदम्।]

भिक्षु–आर्यचारुदत्त! यह क्या? [यह कहकर पैरों पर गिरता है]

चाण्डाल–(सभयमुपसृत्य।) कथम्, वसन्तसेना। ननु खल्वस्माभिः साधुर्न व्यापादितः। [कधम्, वसन्तसेणा। ण क्खु अम्हेहिं शाहु ण वावादिदे।]

चाण्डाल–[भयपूर्वक पास जाकर] क्या? वसन्तसेना! ठीक है, हमने सत्पुरुष को नहीं मारा।

भिक्षु–(उत्थाय।) अरे जीवति चारुदत्तः। [अले, जीवदि चालुदत्ते।]

भिक्षु [उठकर] अरे चारुदत्त जीवित हैं?

चाण्डाल–जीवति वर्षशतम्। [जीवदि वश्शशदम्।]

चाण्डाल–सौ वर्ष तक जीवित रहें।

वसन्तसेना–(सहर्षम्।) प्रत्युज्जीवितास्मि। [पच्चुज्जीविदह्मि।]

वसन्तसेना–[हर्ष के साथ] मैं पुनर्जीवित हो गई हूँ।

चाण्डाल–तद्यावदेतद्वृत्तं राज्ञो यज्ञवाटगतस्य निवेदयावः। [ता जाव एद वुत्तं राइण्णो जण्णवाडगदस्स णिवेदेह्म।]

चाण्डाल–तो तब तक यह समाचार यज्ञशाला में स्थित राजा से निवेदन करते हैं।

(इति निष्क्रान्तौ।)
[दोनों जाते हैं]

शकार–(वसन्तसेनां दृष्ट्वा सत्रासम्।) आश्चर्यम्। केन गर्भदासी जीवनं प्रापिता। उत्क्रान्ता मे प्राणाः। भवतु पलायिष्ये। (इति पलायते।) [हीमादिके। केण गब्भदाशी जीवाविदा। उक्कन्ताइ मे पाणाइं। भोदु पलाइश्शम्।]

शकार–[वसन्तसेना को देखकर भय के साथ] आश्चर्य, किसने जन्मदासी को जीवन प्राप्त करा दिया? मेरे प्राण निकल रहे हैं। अच्छा, भाग जाऊँ। [भाग जाता है]

चाण्डाल–(उपसृत्य।) अरे, नन्वस्माकमीदृशी राजाज्ञप्तिः–येन सा व्यापादिता, तं मारयतेति। तद्राष्ट्रियश्यालमेवान्विष्याव। [अले, ण अह्माण ईदिशी लाआणत्ती–जेण शा वावादिदा, तं मालेधत्ति। ता लट्ठिअशालअं ज्जेव अण्णेशह्म।]

चाण्डाल–[समीप जाकर] अरे! हमें ऐसी राजा की आज्ञा है कि जिसने उस (वसन्तसेना) को मारा है उसको मार दो। अतः राजा के साले को ही ढूँढेंगे।

(इति निष्क्रान्तौ।)
[यह कहकर दोनों चले जाते हैं]

विवृति

(१) उरसि=वक्षःस्थल पर। (२) उपसृत्य=जाकर। (३) प्रत्युज्जीविताऽस्मि=फिर से जीवित हो गई हूँ। (४) वृत्तम्=समाचार को। (५) यज्ञवाटगतस्य=यज्ञशाला में गये हुए। (६) राजाज्ञप्तिः=राजा का आदेश। (७) व्यापादिता=मारी गई। उत्क्रान्ता=निकल रहे हैं। (८) चकार मारण कार्य में अन्वेषण होने से विबोधनामक उपसंहार नामक सन्धि का अंग है।

चारुदत्त–(सविस्मयम्।)

चारुदत्त–[आश्चर्य के साथ]

> केयमभ्युद्यते शस्त्रे मृत्युवक्त्रगते मयि।
> अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणवृष्टिरिवागता॥ ३९॥

अन्वय–शस्त्रे, अभ्युद्यते, मयि, मृत्युवक्त्रगते, अनावृष्टिहते, सस्ये, द्रोणवृष्टिः, इव, इयम्, का, आगता॥ ३९॥

पदार्थ –शस्त्रे=शस्त्र, अभ्युद्यते=उठ जाने पर, मयि=मैंने, मृत्युवक्त्रगते=मृत्यु के मुख मे पड जाने पर, अनावृष्टिहते=विना वर्षा के सूखी, सस्ये=खेती पर, द्रोणवृष्टि =द्रोण (नामक बादल) की वर्षा (के), इव=समान, आगता=आ गई है।

अनुवाद –शस्त्र उठ जाने पर एव मेरे मृत्यु के मुख मे चले जाने पर अवर्षण से नष्टप्राय धान्य के हो जाने पर, द्रोण-वृष्टि के समान यह कौन (स्त्री) आ गई ?॥

संस्कृत टीका–शस्त्रे=खड्गे, अभ्युद्यते=मद्वधार्थमुत्थापिते, मयि=चारुदत्ते, मृत्युवक्त्रगते=मृत्युमुखे पतितप्राये, अनावृष्टिहते=अवर्षणेन नष्टप्राये, सस्ये=धान्ये, द्रोणवृष्टि =पूर्वव्याख्यातमघविशेषस्य वर्षणमिव, इयम्=दृश्यमाना, का=नारी, आगता=उपस्थिता ? ॥

समास एवं व्याकरण–(१) मृत्युवक्त्रगते–मृत्यो वक्त्रगते। अनावृष्टिहते–अनावृष्ट्या हते। द्रोणवृष्टि –द्रोणस्य वृष्टि । (२) अभ्युद्यते–अभि+उत्+यम्+क्त। अनावृष्टिहते–नञ्+आ+वृष्+क्तिन्=अनावृष्टि । हन्+क्त+हत । आगत =आ+गम्+क्त+टाप्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे श्रौती उपमालङ्कार है। (२) पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण–"युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम्।"

(अवलोक्य च।)

[देखकर]

वसन्तसेना किमिय द्वितीया समागता सैवदिव वि मित्थम्।
भ्रान्त मन: पश्यति वा ममैना वसन्तसेना न मृताऽथ सैव ॥४०॥

अन्वय –किम्, इयम्, द्वितीया वसन्तसेना ? किम, सा, एव, दिव, इत्थम्, समागता ? वा, मम, भ्रान्तम्, मन, एनाम्, पश्यति ? अथवा वसन्तसेना, न मृता, सा, एव (इयमस्ति) ॥४०॥

पदार्थ–किम्=क्या, इयम्=यह, द्वितीया=दूसरी, दिव =स्वर्ग से, इत्थम्=इस तरह, समागता=आ गयी है ? भ्रान्तम्=भ्रम मे पडा हुआ अर्थात् प्राणदण्ड एव वसन्तसेना की हत्याजन्य अपवाद के कारण व्याकुल होने से विक्षिप्त, न मृता=मरी नही है।

अनुवाद –क्या यह दूसरी वसन्तसेना है ? क्या वही (वसन्तसेना) स्वर्ग-लोक से इस रूप मे आ गई ? अथवा मेरा भ्रमयुक्त मन इसको (वसन्तसेना के रूप मे) देख रहा है ? अथवा वसन्तसेना मरी नही है, यह वही है ?

संस्कृत टीका–किमति सन्देहे, इयम्=पुरो दृश्यमाना रमणी, द्वितीया=अन्या, वसन्तसेना? किं सा एव=वसन्तसेनैव, दिव=स्वर्गात्,इत्थम्=अनेन प्रकारेण, समागता=प्राप्ता ? वा=अथवा, मम=वधस्थले स्थितस्य चारुदत्तस्य, भ्रान्तम्=भ्रान्तियुक्तम् मन=चेत, एना (=वसन्तसेनाम, पश्यति=अवलोकयति ? अथवा, वसन्तसेना=मम प्रेयसी प्रसिद्धा वेश्या न मृता न मृत्यु प्राप्ता, सा एव=वसन्तसेनैव (इयमस्ति) ॥

समास एवं व्याकरण–(१) समागता–सम् + आ + गम्+क्त+टाप् । भ्रान्तम्–भ्रम्+क्त । पश्यति–दृश्+लट् । मृता+मृ+क्त+टाप् ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में सन्देहालङ्कार है । लक्षण–सन्देह प्रकृतेऽन्यस्य संशय प्रतिभोत्थित । शुद्धा निश्चयगर्भोऽसौ निश्चयान्त ॥" सा० द० ॥ (२) उपजाति छन्द है । लक्षण– स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ॥ अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजा यस्ता ॥"

अथवा ।

अथवा ।

किं नु स्वर्गात्पुन प्राप्ता मम जीवातुकाम्यया ।
तस्या रूपानुरूपेण किमुतान्येयमागता ॥४१॥

अन्वय–किम् नु मम, जीवातुकाम्यया स्वर्गात्, पुन प्राप्ता ? किमुत, तस्या, रूपानुरूपेण इयम् अन्या आगता ? ॥४१॥

पदार्थ–जीवातुकाम्यया=जीवन अथवा जीवनौषधि की इच्छा से, स्वर्गात्=स्वर्ग से प्राप्ता=उतर आई है, उत=अथवा, तस्या=उस (वसन्तसेना) के, रूपानुरूपेण=रूप के सादृश्य से (अर्थात् रूप के समान रूप वाली), अन्या=दूसरी स्त्री, आगता=आ गयी है ।

अनुवाद–अथवा-क्या मेरे जीवन की कामना से (यह) स्वर्ग से फिर आ गई है ? अथवा उस (वसन्तसेना) के रूप के समान रूपवाली यह कोई अन्य (स्त्री) आई है ?

संस्कृत टीका–किं नु=इति वितर्के मम्=चारुदत्तस्य, जीवातुकाम्यया=जीवनेच्छया, स्वर्गात्=दिव, पुन=भूय, प्राप्ता=आगता ? किमुत=किंवा, तस्या=वसन्तसेनाया, रूपानुरूपेण=रूपसादृश्येन, इयम्=सम्मुखस्था, अन्या=अपरा स्त्री, आगता=समागता ?

समास एवं व्याकरण–(१) जीवातुकाम्यया–जीव्यते अनेन इति जीवातु तस्य काम्या तया । रूपानुरूपेण–रूपस्य अनुरूपेण । (२) जीवातु–जीव्+आतु जीवन-

नेनेत्यर्थे 'जीव प्राणधारणे' (भ्वा० प० से०) इत्यत 'जीवेरातु ' इत्यातु प्रत्यय । काम्या–'काम्यच्चे' ति काम्यजन्तात् 'अप्रत्ययात्' इति स्त्रियाम्प्रत्यय । (२) प्राप्ता–प्र+आ+क्त+टाप् । काम्यया–कम्+णिनि+यत्+टाप् ।

विवृति

(१) 'जीवातुस्त्रिया भक्ते जीविते जीवनौषधे' इति मेदिनी ।(२)''जीवातु–जीवनौषधम्'' इत्यमर । (३) प्रस्तुत श्लोक के पूर्वार्द्ध मे क्रियोत्प्रेक्षालङ्कार है । (४) उत्तरार्द्ध म सन्देहालङ्कार होने से इन दोनो की परस्पर ससृष्टि है । (५) भावसाम्य–'मृतस्य शिशोर्द्विजस्य जीवातवे' ॥ उत्तररामचरित २/१० ॥ (६) 'केय-मम्युद्यते शस्त्रे' से लेकर 'किन्तु स्वर्गात्' तक उपगूहन नामक उपसहार सधि का अङ्ग है । लक्षण–''तद्भवेदुपगूहनम् यत्स्यादद्भुतसम्प्राप्ति ॥'' सा०द० ॥ (७) पथ्या-वक्त्र छन्द है । लक्षण–''युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ॥''

वसन्तसेना–(सास्रमुत्थाय पादयोर्निपत्य ।) आर्य चारुदत्त, सैवाह पापा, यस्या कारणादिय त्वया सदृश्यवस्था प्राप्ता । [अज्जचालुदत्त, सा ज्जेव अह पावा, जाए कारणादो इअ तुए असरिसी अवत्था पाविदा ।]

वसन्तसेना–[अश्रुसहित उठकर, पैरो पर गिर कर] आर्य चारुदत्त ! वही मैं पापिनी हूँ, जिसके कारण तुमने ऐसी अनुचित दशा प्राप्त की है ।

(नेपथ्ये ।)
[नेपथ्य मे]

आश्चर्यमाश्चर्यम् । जीवति वसन्तसेना । (इति सर्वे पठन्ति ।) [अच्चरिअ अच्चरिअम् । जीवदि वसन्तसेना ।]

आश्चर्य, आश्चर्य ! वसन्तसेना जीवित है । [यह सभी पढते हैं]

चारुदत्त — (आकर्ण्य सहसोत्थाय स्पर्शसुखमभिनीय निमीलिताक्ष एव हर्ष-गद्गदाक्षरम् ।) प्रिये, वसन्तसेना त्वम् ।

चारुदत्त– [सुनकर, एकाएक उठकर, स्पर्श-सुख का अभिनय करके आँखें मूँदे ही हर्ष से गद्गद् अक्षरो मे] प्रिय ! तुम वसन्तसेना हो ?

वसन्तसेना–सैवाह मन्दभाग्या । [सा ज्जेवाह मन्दभाआ ।]

वसन्तसेना–मैं वही अभागिन हूँ ।

विवृति

(१) सास्रम् = आँसू के साथ । (२) निपत्य = गिरकर (३) पापा = पापिनी । (४) असदृशी = अनुचित । (५) अवस्था = दशा । (६)निमीलिताक्ष = नेत्र मूँदे हुए । निमीलिते अक्षिणी यस्य स = निमीलिताक्ष (७) आकर्ण्य = सुनकर । (८) हर्षगद्गदाक्षरम् = प्रसन्नता के कारण गद्गद् शब्दो मे । हर्षेण गद्गदानि अक्षराणि यस्मिन् तत् यथा तथा ।

चारुदत्त –(निरूप्य सहर्षम्) कथं वसन्तसेनैव। (सानन्दम् ।)
चारुदत्त–[देखकर, हर्षपूर्वक] क्या वसन्तसेना ही हो ? [आनन्द के साथ]

कुतो बाष्पाम्बुधाराभिः स्नपयन्ती पयोधरौ ।
मयि मृत्युवशं प्राप्ते विद्येव समुपागता ॥४२॥

अन्वय –मयि मृत्युवशम्, प्राप्ते, बाष्पाम्बुधाराभिः, पयोधरौ, स्नपयन्ती, (त्वम्), विद्या, इव, कुतः समागता ॥४२॥

पदार्थ –मृत्युवशम् = मृत्यु के वश को, प्राप्ते = प्राप्त होने पर, बाष्पाम्बुधाराभिः = गरम आँसू की धाराओं से, पयोधरौ = दोनों स्तनों को, स्नपयन्ती = नहलाती अथवा सींचती हुई, विद्या = सजीवनीविद्या, समागता = आ गई हो ?

अनुवाद –मेरे मृत्यु के वश में होने पर, अश्रु-जल की धाराओं से दोनों कुचों को अभिषिक्त करती हुई (सञ्जीवनी) विद्या की भाँति कहाँ से आ गई ?

संस्कृत टीका–मयि = चारुदत्ते, मृत्युवशम् = मृत्योरधीनताम्, प्राप्ते = उपगते, बाष्पाम्बुधाराभिः = उष्णाश्रुजलधाराभिः, पयोधरौ = स्तनौ, स्नपयन्ती = सिञ्चन्ती, विद्या = मृतसञ्जीवनी नामक, इव = यथा, कुतः = कस्मात् स्थानात्, समागता = सम्प्राप्ता ॥

समास एवं व्याकरण–१ मृत्युवशम्–मृत्योः वशम् । बाष्पाम्बु०–बाष्पस्य अम्बुधाराभिः । २ स्नपयन्ती–स्ना+णिच्, पुक्+लट्–शतृ+ङीप् । कुतः–किम्+तसिल् । समागता–सम्+आ+गम्+क्त+टाप् । विद्या–विद्+क्यप्+टाप् ।

विवृति

(१) विद्या = सञ्जीवनी विद्या—पुराणों के अनुसार दैत्य गुरु शुक्राचार्य इस विद्या के मर्मज्ञ थे । उन्होंने देवताओं के साथ युद्ध में मरे हुये दैत्यों को इसी विद्या से जीवित कर दिया था । (२) 'बाष्पाम्बुधाराभिः' में अम्बु शब्द निरर्थक है । क्योंकि बाष्प शब्द से ही अभीष्ट अर्थ निकल आता है । (३) प्रस्तुत पद्य में उपमालङ्कार है । (४) पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण–'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम् ।'

प्रिय–वसन्तसेने,
प्रिय–वसन्तसेना !

त्वदर्थमेतद्विनिपात्यमानं देहं त्वयैव प्रतिमोचितं मे ।
अहो प्रभावः प्रियसङ्गमस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्ध्रियेत ? ॥४३॥

अन्वय –त्वदर्थम्, विनिपात्यमानम्, मे, एतत्, देहम्, त्वया, एव, प्रतिमोचि-

तम्, प्रियसगमस्य, अहो । प्रभाव, (अन्यथा), मृत, अपि, क नाम, पुन, ध्रियेत ? ॥४३॥

पदार्थ—त्वदर्थम्=तुम्हारे लिए, विनिपात्यमानम्=नष्ट किया जाता हुआ, प्रतिमोचितम्=छुडाया गया, प्रियसगमस्य=प्रेमी के मिलन का, अहो=आश्चर्यजनक, मृत=मरा, ध्रियेत=जिन्दा होता है।

अनुवाद—तुम्हारे लिये नष्ट किया जाता हुआ यह मरा शरीर तुम्हारे द्वारा मुक्त किया गया है। प्रिय मिलन का प्रभाव आश्चर्यजनक होता है अन्यथा मरा हुआ भी कोई फिर जीवित हो सकता है।

संस्कृत टीका—त्वदर्थम्=तव कारणात्, विनिपात्यमानम्=विनाश्यमानम्, मे=मम, एतत्=इदम्, देहम्=शरीरम त्वयैव=वधे कारणभूतया भवत्यैव, प्रतिमोचितम्=शूलादवतारितम्, प्रियसगमस्य=प्रियजनसम्मेलनस्य, अहो !=आश्चर्यजनक, प्रभाव=सामर्थ्यम, क नाम=जन, मृत अपि=प्राणवियुक्तोऽपि, पुन=मुहु, ध्रियेत=जीवेत् प्राणैरिति शेष ।

समास एव व्याकरण–(१) विनिपात्यमानम्–वि+नि+पत्+णिच्+लट (कर्मणि)+शानच्। प्रतिमोचितम्–प्रति+मुच+णिच्+क्त। प्रभाव–प्र+भू+घञ्। ध्रियेत–धृ+लिङ्।

विवृति

(१) काया दह क्लीवपुंसो' इत्यमर। (२) प्रस्तुत श्लोक म सामान्य का विशेष स समर्थन होन से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। (३) चतुर्थ चरण मे अर्थापत्ति अलङ्कार है। (४) दह शब्द का काष स उभयलिङ्गत्व सिद्ध होने पर भी क्लीब म प्रयाग अप्रयुक्तत्व दोष से युक्त है क्योंकि इसका प्रयोग सर्वत्र पुल्लिङ्ग म देखा जाता है। (५) उपजाति छन्द है। लक्षण–'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग। उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततोगौ। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता ॥" (६) कुछ टीकाकारा के अनुसार प्रस्तुत पद्य म विरोधाभास एव आक्षेप अलङ्कार है।

अपि च। प्रिये, पश्य।

और भी, प्रिये ! देखो–

रक्त तदेव वरवस्त्रमिय च माला
कान्तागमेन हि वरस्य यथा विभाति।
एते च वध्यपटहध्वनयस्तथैव
जाता विवाहपटहध्वनिभि समाना. ॥४४॥

अन्वय–कान्तागमेन, तदव, रक्तम्, वरवस्त्रम्, इयम्, माला, च, वरस्य, यथा,

हि विभाति, तथैव, च, एते, वध्यपटहध्वनय, विवाहपटहध्वनिभि, समाना, जाता ॥४४॥

पदार्थ – कान्तागमेन = प्रिया के आ जाने से, तदेव = वही, रक्तम् – लाल, वरवस्त्रम् = श्रेष्ठ वस्त्र, वरस्य = दुलहे की, विभाति = शोभित हो रही है, तथैव = उसी प्रकार से, वध्यपटहध्वनय = वध के समय बजाये जाने वाले ढोलो अथवा नगाडो की ध्वनियाँ, विवाहपटहध्वनिभि = विवाह के बाजो की ध्वनियो के, समाना = समान, जात – हो गयी हैं ॥

अनुवाद – प्रिय के आगमन से वही लाल वस्त्र वर के वस्त्र (के समान) और यह (वध्य) माला वर माला के समान शोभायमान है। उसी प्रकार ये वध्यवाद्यो की ध्वनियाँ विवाहकालीन वाद्यो की ध्वनियो के समान हो गई हैं ॥

संस्कृत टीका-कान्तागमेन = प्रियाप्राप्त्या, तदेव = वध्यचिह्नम्, रक्तम् = रक्तवर्णम्, वरवस्त्रम् = रक्तवसनम्, इयम् = मम कण्ठे अर्पिता, माला = स्रक्, च = अपि, वरस्य = परिणेतु, यथा = इव, हि = निश्चितम्, विभाति = शोभते, तथैव च = तेनैव प्रकारेण, एते = इमे, वध्यपटहध्वनय = वधकालवाद्ययन्त्रशब्दा, विवाहपटहध्वनिभि = उद्वाहवाद्ययन्त्रशब्दै समाना = तुल्या, जाता = अभवन् ।

समास एव व्याकरण-(१) कान्तागमेन-कान्ताय आगमेन । वरवस्त्रम्-वरस्य वस्त्रम् । वध्यपटहध्वनय –वध्यपटहस्य ध्वनय । विवाह०–विवाहस्य ध्वनिभि । (२) रक्तम्–रञ्ज् + क्त । विभाति–वि + भा + लट् । जाता -जन् + क्त + टाप् ।

विवृति

(१) "वरो जामातरि वृतौ देवतादेरभीप्सिते" इति मेदिनी । (२) 'आनक पटहोऽस्त्री' इत्यमर । (३) प्रस्तुत श्लोक मे एक ही रक्तवस्त्र इत्यादि वस्तु का क्रमश अनेको मे सम्बन्ध दिखलाया गया है । अत पर्याय अलङ्कार है-'एक क्रमेणनेकस्मिन् पर्याय' (काव्यप्रकाश) (४) श्लोक के पूर्वार्द्ध म श्रौती एव उत्तरार्द्ध मे आर्थी उपमालङ्कार है । (५) पटह शब्द की आवृत्ति होने पर भी उद्देश्य के प्रति विषय का निर्देश होने से कथितपदता दोष नही है । (६) इसने अपने भावी विवाह की सूचना देने से यह भी साहित्य दर्पण के अनुसार प्रथमपताकास्थानक है । (७) वसन्ततिलका छन्द है । लक्षण-"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग ।" (८) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि प्रिय -सङ्गम' का माहात्म्य है कि 'वध्य' होकर भी 'वर' की समानता कर रहा हूँ । (९) कुछ टीकाकारो के अनुसार प्रस्तुत श्लोक म अनुकूल अलङ्कार है ।

वसन्तसेना–अतिदक्षिणतया किं न्विद व्यवसितमार्येण । [अदिदक्खिणदाए किं णेद ववसिद अज्जेण ।]

वसन्तसेना–अत्यन्त उदारता के कारण आर्य ने यह क्या कर डाला ?

चारुदत्त–प्रिये, त्वं किल मया हतेति–

चारुदत्त–प्रिये ! मैंने तुम्हें मार डाला–(इस प्रकार कहकर)

पूर्वानुबद्धवैरेण शत्रुणा प्रभविष्णुना ।
नरके पतता तेन मनागस्मि निपातितः ॥४५॥

अन्वय–पूर्वानुबद्धवैरेण, प्रभविष्णुना, नरके, पतता, तेन, शत्रुणा, मनाक्, निपातित, अस्मि ॥४५॥

पदार्थ–पूर्वानुबद्धवैरेण=पहले से ही शत्रुता ठाने हुए, प्रभविष्णुना=प्रभावशाली अथवा शक्तिशाली, नरके=नरक में, पतता=गिरते हुए, शत्रुणा=शत्रु के द्वारा, मनाक्=थोडा सा, निपातित =गिराया गया ॥

अनुवाद –पहले से ही वैर बांधे हुये, सामर्थ्यशाली, नरक में गिरने वाले उस शत्रु (शकार) ने थोडा-सा पतित अथवा विनष्ट कर दिया है।

संस्कृत टीका–पूर्वानुबद्धवैरेण=प्राक्तनजन्म–प्रसक्तशत्रुभावेन, प्रभविष्णुना=प्रभावशालिना, नरके=निरये, पतता=गच्छता, तेन=प्रसिद्धेन, शत्रुणा=शकारेण, मनाक्=किञ्चित्, निपातित =विनाश प्रापित, अस्मि=विद्ये।

समास एवं व्याकरण–(१) पूर्वानुबद्धवैरेण-पूर्वम् अनुबद्धम् वैरम् येन तादृशेन। (२) प्रभविष्णुना–प्र+भू+इष्णुच् 'भुवश्च' इति सूत्रेण। अनुबद्ध–अनु+बध्+क्त। पतता–पत्+शतृ। निपातित–नि+पत्+णिच्+क्त। अस्मि–अस्+लट्।

विवृति

(१) 'स्यान्नारकस्तु नरका निरयो दुर्गति स्त्रियाम्' इत्यमर। (२) 'प्रभविष्णुना' शब्द पाणिनीय व्याकरण के अनुसार वेद में ही प्रयुक्त होता है तथापि कहीं कहीं लौकिक संस्कृत में भी निरंकुश कवियों ने इसका प्रयोग किया है। (३) पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण–"युजोश्चतुर्थतो जेन पथ्यावक्त्रम् प्रकीर्तितम् ॥"

वसन्तसेना–(कर्णौ पिधाय) शान्त पापम्, तेनास्मि राजश्यालेन व्यापादिता–(स त पाव; तेण म्हि राअसालेण वावादिदा)

वसन्तसेना–[कानों को बन्द करके] पाप शान्त हो, मुझे, तो उसी राजश्यालक (शकार) ने मारा था।

चारुदत्त–(भिक्षु दृष्ट्वा) अयमपि क ?

चारुदत्त–[भिक्षु को देखकर] यह कौन है ?

वसन्तसेना–तेनानार्येण व्यापादिता। एतेनार्येण जीव प्रापितास्मि। [तेण अणज्जेण वावादिदा। एदिणा अज्जेण जीवाविदह्मि।]

वसन्तसेना–उस अनार्य (शकार) ने मार डाली, इस आर्य ने मुझे (फिर) जीवन प्राप्त कराया।

चारुदत्त –कस्त्वमकारणबन्धु ?

तुम अकारण बन्धु कौन हो ?

भिक्षु–न प्रत्यभिजानाति मामार्य ? अहं स आर्यस्य चरणसंवाहचिन्तकः संवाहको नाम द्यूतकरैर्गृहीत एतायोपासिकयाऽऽर्यस्यात्मीय इत्यलङ्कार–पणनिष्क्रीतोऽस्मि। तेन च द्यूतनिर्वेदेन शाक्यश्रमणकः संवृत्तोऽस्मि। एषाप्यार्या प्रवहणविपर्यासेन पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं गता। तेन चानार्येण न मां बहु मन्यसे इति बाहुपाशबलात्कारेण मारिता मया दृष्टा। (ण पच्चभिजाणादि मं अज्जो ? अहं शे अज्जस्स चलण–शंवाहचिंतए शंवाहके नाम। जूदिअलेहि गहिदे एदाए उवाशिकाए अज्जस्श केलके त्ति अलंकालपणणिक्की देम्हि। तेण अ जूदणिव्वेदेण शक्कशमणके शंवुत्ते म्हि। एशा वि अज्जा पवहण विपज्जाशेण पुप्फकलंडकजिण्णुज्जाणं गदा। तेण अ अणज्जेण ण मं बहु मण्णेशि त्ति बाहुपाशबलक्कालेण मालिदा मए दिट्ठा।]

भिक्षु–आर्य मुझे नहीं पहचानते है ? मैं वही आर्य के चरण दबाने की चिन्ता करने वाला संवाहक जुआरियों के द्वारा पकड़ा गया और उपासिका (वसन्त सेना) के द्वारा 'आर्य का स्वजन है' यह समझ कर आभूषणरूपी मूल्य से खरीद लिया गया हूँ। उस द्यूत के दुःखानुभव से मैं बौद्धभिक्षु हो गया हूँ। यह आर्या (वसन्तसेना) भी गाड़ी बदलने से पुष्पकरण्डक नामक पुराने उपवन में चली गई और वहाँ उन दुष्ट (शकार) के द्वारा 'यह मुझे नहीं चाहती' यह कह कर भुजपाश से बलपूर्वक (दबाकर) मार डाली गई, मैंने देखी।

विवृति

(१) अनार्येण = असभ्य के द्वारा। (२) व्यापादिता = मारी गयी। (३) अकारणबन्धु = निःस्वार्थ सहायता करने वाले। (४) प्रत्यभिजानाति = पहचान रहे हो। (५) चरणसंवाह० = चरणों के मर्दन की चिन्ता करने वाला अर्थात् पैर दबाने वाला। (६) अलङ्कारपणनिष्क्रीत = आभूषण रूपी मूल्य देकर खरीदा गया। (७) शाक्यश्रमणक = बौद्ध सन्यासी। (८) प्रवहणविपर्यासेन = गाड़ी के बदल जाने में।

(नेपथ्ये कलकलः।)

[नेपथ्य में कोलाहल]

जयति वृषभकेतुर्दक्षयज्ञस्य हन्ता

तदनु जयति भेत्ता षण्मुखः क्रौञ्चशत्रुः।

तदनु जयति कृत्स्नां शुभ्रकैलासकेतुं

विनिहतवरवैरी चार्यको गां विशालाम् ॥४६॥

अन्वयः–दक्षयज्ञस्य, हन्ता, वृषनकेतु, जयति, तदनु, भेत्ता, क्रौञ्चशत्रु, षण्मुख, जयति, तदनु, च, विनिहतवरवैरी, आर्यक, शुभ्रकैलासकेतुम्, कृत्स्नाम्, विशालाम्, गाम्, जयति ॥८६॥

पदार्थ–दक्षयज्ञस्य = दक्ष के यज्ञ को, हन्ता = विनष्ट करने वाले, वृषनकेतु = शिव, जिनका वाहन बैल (नन्दी) है, क्रौञ्चशत्रु = क्रौञ्च नामक पर्वत अथवा दैत्य के शत्रु, षण्मुख = कार्तिकेय, विनिहतवरवैरी = जिसके प्रधान शत्रु (पालक) को मार दिया है, शुभ्रकैलासकेतुम् = उज्ज्वल कैलाश पवत जिसकी पताका है। कृत्स्नाम् = सम्पूर्ण, विशालाम् = विस्तृत, गाम् = पृथ्वी को, जयति = जीत रहा है।

अनुवाद –दक्ष-यज्ञ विनाशक शिव की जय हो । तत्पश्चात् (शत्रुओं के) भेदक, क्रौञ्च (नामक दैत्य अथवा पर्वत) के शत्रु कार्तिकेय की जय हो और तदनन्तर प्रधान शत्रु (पालक) का वध करने वाला आर्यक श्वेत कैलास रूपी पताका वाली सम्पूर्ण विशाल पृथ्वी पर विजय करें॥

संस्कृत टीका–दक्षयज्ञस्य = प्रजापतिदक्षकृताध्वरस्य, हन्ता = विध्वंसक, वृषनकेतु = शिव, जयति = सर्वोत्कर्षेण वर्तते, तदनु = तत्पश्चात्, भेत्ता = वैरि-विदारण, क्रौञ्चभेदी = क्रौञ्चाख्यपर्वतभेदी अथवा क्रौञ्चाख्यदैत्यभेदी, षण्मुख = कार्तिकेय, जयति – विजयते, तदनु = तत, च = अपि, विनिहतवरवैरी = विघातित-प्रधानशत्रु, आर्यक – आर्यकनामा गोपालदारक, शुभ्रकैलासकेतुम् = श्वेतकैलास-ध्वजाम्, कृत्स्नाम् = सम्पूर्णाम्, विशालाम् = विस्तृताम्, गाम् = पृथ्वीम्, जयति = आत्मसात् करोति।

समास एव व्याकरण–(१) दक्षयज्ञस्य–दक्षस्य यज्ञस्य । वृषनकेतु–वृषन केतु यस्य स । क्रौञ्चशत्रु–क्रौञ्चस्य शत्रु । षण्मुख–षट् मुखानि यस्य स । विनिहतवरवैरी–विनिहत वर वैरी येन तादृश । शुभ्रकैलासकेतुम्–शुभ्र कैलास एव केतु यस्या तादृशीम् । (२) हन्ता–हन्+तृच् । जयति–जि+लट् । भेत्ता–भिद्+तृच् ।

विवृति

(१) 'यज्ञ सवोऽध्वरो याग सप्ततन्तुमख क्रतु' इत्यमर । (२) दक्ष के यज्ञध्वस की कथा अनेक प्रकार से प्रसिद्ध है–दक्ष ब्रह्मा के १० पुत्रो म अन्यतम थे, उनकी एक पुत्री सती नाम की थी जिसका विवाह भगवान शङ्कर के साथ हुआ था। एक बार दक्ष ने यज्ञ किया, जिसम सभी देवताओ एव ब्राह्मणो को निमन्त्रित किया, किन्तु न तो अपनी पुत्री सती को बुलाया न शिव को ही। फिर भी सती यो ही अपने मन से पिता के घर पहुँच गई। जहाँ उन्हे अपमानित होना पडा। अपमान के कारण सती अग्नि मे भस्म हो गई। इस बात को सुनकर शिव भी वहाँ गय और यज्ञ को पूर्णतया ध्वस्त कर दिया। दक्ष मृग के रूप मे भाग गये। (३) पुराणो के आख्यान

के अनुसार कार्तिकेय के ६ मुख एवं १२ भुजायें थी। (४) पद्य में रूपकालङ्कार है। (५) मालिनी छन्द है। लक्षण–"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलो कै.।" (६) 'तदनु जयति' पद का दो बार पाठ होने पर भी कथितपदता दोष नहीं है क्योंकि साहित्य दर्पण में वक्ता के हर्षवचन विषयक प्रयोग होने पर परिहार का उल्लेख है।

(प्रविश्य सहसा।)

[एकाएक प्रवेश कर]

शर्विलक –

शर्विलक–

हत्वा तं कुनृपमहं हि पालकं भो—
स्तद्राज्ये द्रुतमभिषिच्य चार्यकं तम्।
तस्याज्ञां शिरसि निधाय शेषभूतां
मोक्ष्येऽहं व्यसनगतं च चारुदत्तम् ॥४७॥

अन्वय–भो !, अहम्, हि, तम्, कुनृपम्, पालकम्, हत्वा, तद्राज्ये, द्रुतम्, तम्, आर्यकम्, अभिषिच्य, च, तस्य, शेषभूताम्, आज्ञाम्, शिरसि, निधाय, अहम्, व्यसनगतम्, चारुदत्तम्, मोक्ष्ये ॥४७॥

पदार्थ–कुनृपम् = दुष्ट राजा को, हत्वा = मारकर, तद्राज्ये = उसके राज्य पर, द्रुतम् = शीघ्र ही, अभिषिच्य = अभिषिक्त करके, शेषभूताम् = शेष के समान, व्यसनगतम् = विपत्ति में पड़े हुये, मोक्ष्ये = मुक्त करूँगा अर्थात् मुक्त करता हूँ।

अनुवाद–अजी ! मैं निश्चित रूप से उस दुष्ट राजा पालक को मारकर, उसके राज्य पर शीघ्र ही उस आर्यक का अभिषेक कर उसकी निर्माल्य पुष्पमाला के समान आज्ञा को शिरोधार्य करके विपत्ति-ग्रस्त चारुदत्त को मुक्त करता हूँ।

संस्कृत टीका–भो ! = जना ! अहम् = शर्विलक, हि = निश्चितम्, तम् = प्रसिद्धम्, कुनृपम् = कुत्सितभूपतिम्, पालकम् = तन्नामकम् हत्वा = विनाश्य, तद्राज्ये = तस्य पालकस्य राज्ये, तम्, आर्यकम् = आर्यकनामानं गोपालसुतम्, अभिषिच्य = सिंहासनारूढं कृत्वेति यावत्, च, तस्य = आर्यकस्य, शेषभूताम् = प्रसाददत्तनिर्माल्यस्वरूपाम्, आज्ञाम् = आदेशम्, शिरसि = मस्तके, निधाय = कृत्वा, अहम् = शर्विलक, व्यसनगतम् = विपत्तिग्रस्तम्, चारुदत्तम्, मोक्ष्ये = मोचयिष्यामि।

समास एवं व्याकरण–(१) कुनृपम्–कुत्सितम् नृपम्। शेषभूताम्–शेषेण भूता समाना इति शेषभूता ताम्। व्यसनगतम्–व्यसनेगतम्। (२) हत्वा–हन् + क्त्वा। अभिषिच्य—अभि + षिच् + क्त्वा (ल्यप्)। निधाय—नि + धा + क्त्वा (ल्यप्) मोक्ष्ये—मुच् + लृट्। यहाँ पर आत्मनेपद रूप शुद्ध होता है क्योंकि मुच् है। (आत्मनेपदि)।

विवृति

(१) 'शेषा निर्माल्यदाने स्याद्' इति हैम । 'प्रासादान्निजनिर्माल्यदाने शेषेति कीर्तिता' इति विश्व. । यह 'आज्ञाम्' का विशेषण है । (२) यहाँ अह पद का दो बार पाठ होने पर भी अधिक पदतादोष नहीं है क्योंकि अवधारण अर्थ है । साहित्य दर्पण ने 'गुण क्वाप्यधिक पदम्' कहकर परिहार किया है । (३) 'मोक्ष्ये' के स्थान पर 'मोचयिष्यामि' शुद्ध पाठ होता, किन्तु अन्तर्भावितण्यर्थ मान लेने स काम चल सकता है । (४) प्रस्तुत प्रद्य म प्रहर्षिणी छन्द है । लक्षण—"म्याशाभिर्मनजरगा. प्रहर्षिणीयम् ।"

हत्वा रिपु त बलमन्त्रिहीन पौरान्समाश्वास्य पुन प्रकर्षात् ।
प्राप्त समग्र वसुधाधिराज्य राज्य बलारेरिव शत्रुराज्यम् ॥४८॥

अन्वय—बलमन्त्रिहीनम्, तम्, रिपुम्, हत्वा, पुन, प्रकर्षात्, पौरान्, समाश्वास्य, बलारे, राज्यम्, इव, समग्रम्, वसुधाधिराज्यम्, शत्रुराज्यम्, प्राप्तम् ॥४८॥

पदार्थ—बलमन्त्रिहीनम्=सेना एव मन्त्रियो से रहित, रिपुम्=शत्रु को, हत्वा=मारकर, प्रकर्षात्=अधिक प्रभाव से, पौरान्=पुरवासियों को, समाश्वास्य=ढाढस बँधाकर, बलारे=बल नामक दैत्य के शत्रु, इन्द्र के, राज्यमिव=राज्य के समान, वसुधाधिराज्यम्=पृथ्वी के शासन से युक्त, शत्रुराज्यम्=शत्रु का राज्य ।

अनुवाद—सेना एव मन्त्रियो से रहित उस शत्रु (पालक) को मारकर फिर (अपने) अधिक पुरवासियो को सान्त्वना दकर इन्द्र के राज्य के समान पृथ्वी के आधिपत्य से युक्त समस्त शत्रु-राज्य को प्राप्त कर लिया।

सस्कृत टीका—बलमन्त्रिहीनम्=सैन्यसचिवरहितम्, तम्=प्रसिद्धम्, रिपुम्=शत्रुम् (पालकम्), हत्वा=मारयित्वा, पुन=भूय, प्रकर्षात्=प्रभावबलात्, पौरान्=पुरवासिन, समाश्वास्य=सान्त्वयित्वा, बलारे=दैत्यविशेषशत्रो इन्द्रस्येत्यर्थ, राज्यमिव=साम्राज्यमिव, समग्रम्=सम्पूर्णम्, वसुधाधिराज्यम्=धराधिकराज्यम्, शत्रुराज्यम्=पालकस्य राज्यम्, प्राप्तम्=लब्धम् ।

समास एव व्याकरण—(१) बलमन्त्रिहीनम्—बलानि च मन्त्रिणश्च तैं हीनम् अथवा बलै मन्त्रिभिश्च हीनम् । वसुधाधिराज्यम्—वसुधाया अधिराज्यम् यस्मिन् तत् तादृशम् । शत्रुराज्यम्—शत्रो राज्यम् । (२) प्रकर्ष—प्र+कृष्+घञ् । हत्वा—हन्+क्त्वा । समाश्वास्य—सम्+आ+श्वस्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) । प्राप्तम्—प्र+आप्+क्त ।

विवृति

(१) 'वरूथिनी बल सैन्य चक्र चानीकमस्त्रियाम्' इत्यमर. । (२) मन्त्रहीनम्—पाठान्तर है, मन्त्र=मन्त्रणा, गुप्त विचार । (३) बल वृत्रासुर का भाई माना

जाता है। ऋग्वेद की कई ऋचाओं में इसका उल्लेख मिलता है, यह अन्धकार के दानव रूप में कल्पित मेघ का ही एक नाम है—काले। इन्द्र को 'बल' का नाशक बतलाया गया है। (४) "कोशो दण्डो बल चैव प्रभुशक्ति प्रकीर्तिता।" (५) 'इन्द्रो मरुत्वान्.........सुरपति बलाराति शचीपति इत्यमर। (६) प्रस्तुत पद्य में श्रौती उपमालंकार है। (७) 'राज्यम्' शब्द का दो बार पाठ होने पर भी उद्देश्य के प्रति निर्देश विषय होने से कथितापदता दोष नहीं है। आर्यकेण का कथन न होने पर भी वक्ता के आनन्दमग्न होने से दोष नहीं कहा जायेगा। (८) इन्द्रवज्रा छन्द है। लक्षण—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग।"

(अग्रतो निरूप्य।) भवतु। अत्र तेन भवितव्यम्, यत्राय जनपद समवाय। अपि नामायमारम्भ क्षितिपतेरार्यकस्यार्यचारुदत्तस्य जीवितेन सफल स्यात्। (त्वरिततरमुपसृत्य।) अपयात जाल्मा। (दृष्ट्वा। सहर्षम्।) अपि ध्रियते चारुदत्त सह वसन्तसेनया। सपूर्णा खल्वस्मत्स्वामिनो मनोरथा।

[आगे देखकर] अच्छा, उन्हें (चारुदत्त को) यहाँ होना चाहिए, जहाँ यह जन-समूह है। क्या राजा आर्यक का राज्यारम्भ आर्य चारुदत्त के जीवन से सफल होगा? [अत्यन्त शीघ्रता से समीप जाकर] मूर्खो! हटो। [देखकर हर्ष सहित] क्या वसन्तसेना सहित चारुदत्त जीवित है? हमारे स्वामी के मनोरथ पूर्ण हो गये।

विवृति

(१) जनपदसमवाय=लोगों की भीड। (२) आरम्भ=कार्य। (३) जाल्मा!=मूर्खो! (४) ध्रियते=जीवित है। (५) अस्मत्स्वामिन=हमारे स्वामी के। (६) 'भवेत् जनपदो जानपदोऽपि जनदेशयो' इति मेदिनी (७) 'जाल्मस्तु पामरे असमीक्ष्यकारिणि च' इति हैम। (८) मनोरथा=अभिलाषायें।

दिष्टचा भो व्यसनमहार्णवादपारा—
दुत्तीर्णं गुणधृतया सुशीलवत्या।
नावेव प्रियतमया चिरान्निरीक्ष्ये
ज्योत्स्नाढच शशिनमिवोपरागमुक्तम्॥ ४९॥

अन्वय—भो। दिष्ट्या, गुणधृतया, सुशीलवत्या, नावा, इव, प्रियतमया, अपारात्, व्यसनमहार्णवात्, उत्तीर्णम्, (चारुदत्तम्), उपरागमुक्तम्, ज्योत्स्नाढ्यम्, शशिनम्, इव, चिरात्, निरीक्ष्ये॥४९॥

पदार्थ—दिष्टया=सौभाग्यवश, गुणधृतया=(१) (चारुदत्त के दया, उपकार आदि) गुणों से आकृष्ट (वसन्तसेना), (२) रस्सी से खींची गई (नौका), सुशीलवत्या=(१) सुन्दर स्वभाव वाली (वसन्तसेना), (२) सुघटित या सुनिर्मित

(नौका), नावा=नौका के, इव=समान, प्रियतमया=प्रियतमा के द्वारा, अपारात्=अपार, व्यसनमहार्णवात्–विपत्ति रूपी महासमुद्र से, उत्तीर्णम्=पार हुए, उपरागमुक्तम्=ग्रहण से छूटे हुए, ज्योत्स्नाढ्यम्=चाँदनी मे सम्पन्न, शशिनमिव=चन्द्रमा के समान, चिरात्=बहुत दिनों के बाद, निरीक्ष्ये=देख रहा हूँ।

अनुवाद— अजी ! सौभाग्यवश गुणों (दया-दाक्षिण्यादि, नौकापक्ष मे रस्सियों) से आकृष्ट सुन्दर स्वभाव वाली (नौका-पक्ष मे सुघटित) नौका के समान प्रियतमा (वसन्तसेना) के द्वारा अपार विपत्तिरूप महासागर से पार हुए (चारुदत्त) को ग्रहण से मुक्त चन्द्रिकायुक्त चन्द्रमा के समान बहुत दिनों के बाद देख रहा हूँ।

संस्कृत टीका– भो. !=हे, जना इति शेष, दिष्ट्या=सौभाग्येन आनन्देन वा, गुणवृतया=नारीजनसुलभगुणशालिन्या, सुशीलवत्या=सुन्दरस्वभावसम्पन्नया, नौकापक्षे-सुघटितया, नावेव=नौकयेव, प्रियतमया=वसन्तसेनया, अपारात्=अनुल्लङ्घनीयात्, व्यसनमहार्णवात्=विपत्तिसागरात्, उत्तीर्णम्=उद्धृतम्, (चारुदत्तम्) उपरागमुक्तम्=गृहणात् मुक्तम्, ज्योत्स्नाढ्यम्=चन्द्रिकोज्ज्वलम्, शशिनमिव=चन्द्रमसमिव, चिरात्=दीर्घकालात्, निरीक्ष्ये=पश्यामि ॥

समास एव व्याकरण— १ गुणवृतया गुणौ वृतया। व्यसनमहार्णवात् व्यसनम् एव महार्णव तस्मात्। उपरागमुक्तम्, उपरागात् मुक्तम्। ज्योत्स्नाढ्यम्–ज्योत्स्नया आढ्यम्। २. उपराग – उपरज्यते इति उपराग उप+रञ्ज्+घञ्। उत्तीर्णम्— उत्+तृ+क्त। निरीक्ष्ये–निर्+ईक्ष्+लट्।

विवृति

१ 'दिष्ट्या समुपजोषञ्चेत्यानन्दे' इत्यमर। २ 'उपरागो ग्रहो राहुग्रस्ते त्विन्दौ च पूष्णि च' इत्यमर.। ३. प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि जिस प्रकार सागर मे डूबते हुए मनुष्य को रस्सी से खीची गई सुघटित नौका बचा लेती है उसी प्रकार गुणों से आकृष्ट सुशीला वसन्तसेना ने विपत्ति-सागर मे डूबते हुए चारुदत्त को बचा लिया एव जिस प्रकार ग्रहणापरान्त कौमुदीसहित कलाधर को देखने से प्रसन्नता होती है उसी प्रकार चिरकालोपरान्त आज 'चन्द्र-चन्द्रिका' जैसे इस अभिराम युगल को देख कर मैं परम प्रसन्न हो रहा हूँ। ४ 'नावा इव' मे पूर्णोपमालङ्कार है। ५ 'व्यसनमहार्णवात्' मे लुप्तोपमालङ्कार है। ६ 'शशिनमिव' मे श्रौती उपमालकार है। ७ कुछ टीककारो के अनुसार प्रस्तुत श्लोक मे रूपक एव श्लेष अलङ्कार हैं। ८ चारुदत्त के जीवनरूप वाञ्छित लाभ होने से आनन्द नामक उपहार सन्धि का अङ्ग है। लक्षण 'आनन्दो वाञ्छितागम'। (९) प्रहर्षिणी छन्द है। लक्षण "म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्।"

तत्कृतमहापातक कथमिवैनमुपसर्पामि। (अथवा।) सर्वत्रार्जव शोभते। (प्रकाशमुप सृत्य बद्धाञ्जलि।) आर्य चारुदत्त।

तो महान् पाप करने वाला मैं इनके समीप कैसे जाऊँ ? अथवा सरलता सर्वत्र शोभायमान होती है— [प्रकट रूप मे, समीप जाकर, हाथ जोडे हुए] आर्य चारुदत्त !

चारुदत्त – ननु को भवान् ।

चारुदत्त– आप कौन हैं ?

शर्विलक–

शर्विलक–

येन ते भवन भित्त्वा न्यासापहरण कृतम् ।
सोऽहं कृतमहापापस्त्वामेव शरण गतः ॥५०॥

अन्वय – येन, ते, भवनम्, भित्वा, न्यासापहरणम्, कृतम्, स, कृतमहापाप, अहम् त्वाम्, एव, शरणम् गत ॥५०॥

पदार्थ –भित्वा = (सेंध)फोड कर, न्यासापहरणम् = धरोहर की चोरी, कृतम् = की गयी, कृतमहापाप = महान् पाप करने वाला, त्वामेव = तुम्हारी ही, शरणम् = शरण को, गत = प्राप्त हुआ हूँ ।

अनुवाद— जिसने आपके भवन को भेद कर (सेंध लगाकर) धरोहर का अपहरण किया था, वही महापापी मै आपकी शरण मे आया हूँ ।

संस्कृत टीका— येन = मया, ते = तव, भवनम् = गृहम्, भित्वा = छित्वा, न्यासापहरणम् = निक्षेपीभूतवसन्तसेनाभूषणापहरणम्, कृतम् = विहितम्, स, कृतमहापाप कृतमहापातक ,अहम् = शर्विलक ,त्वामेव = भवन्तमेव,शरणम् = रक्षितारम्,गत = अपराधक्षमार्थम् प्राप्त ॥

समास एव व्याकरण – (१) न्यासापहरणम्–न्यासस्य अपहरणम् । कृतमहापाप –कृतम् महत् पापम् येन स (ब० स०) । (२) भित्वा–भिद् + क्त्वा । अपहरणम्–अप + हृ + ल्युट् । शरणम्–शृ + ल्युट् । गत –गम् + क्त ।

विवृति

(१) पुमानुपनिधिर्न्यास ' इत्यमर । (२) शर्विलक ने चारुदत्त के घर से वसन्तसेना का आभूषण चुराया था, अत उसने अपने को 'महापातक करने वाला' कहा है । मनु के अनुसार चोरी भी महापातक है–"ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वङ्गनागम । महान्ति पातकान्याहु सर्सगश्चापि तै सह ।" (३) 'शरण गृहरक्षित्रो' इत्यमर । (४) प्रस्तुत पद्य मे पथ्यावक्त्र छन्द है । लक्षण–'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्र प्रकीर्तितम् ।'

चारुदत्त – सखे, मैवम् । त्वयासौ प्रणय. कृत । (इति कण्ठे गृह्णाति ।)

चारुदत्त – मित्र ! ऐसा मत कहो । तुमने यह अनुग्रह किया । (यह कहकर

गले लगता है।)

शर्विलक – अन्यच्च।

शर्विलक – और भी–

आर्यकेणार्यवृत्तेन कुलं मानं च रक्षता।
पशुवद्यज्ञवाटस्थो दुरात्मा पालको हतः ॥ ५१ ॥

अन्वय,– आर्यवृत्तेन आर्यकेण कुलम्, मानम्, च, रक्षता, यज्ञवाटस्थ, दुरात्मा, पालक, पशुवत्, हत ॥५१॥

पदार्थ –आर्यवृत्तेन = सज्जनो के योग्य व्यवहार करने वाले, कुलम् = (अपने) कुल को, मानम् = सम्मान को, रक्षता = बचाते हुए, यज्ञवाटस्थ = यज्ञस्थान अथवा यज्ञशाला मे स्थित, दुरात्मा = दुष्ट, पालक = राजा पालक, पशुवत् = पशु के समान हत = मार डाला गया।

अनुवाद – सच्चरित्र आर्यक ने कुल एव सम्मान की रक्षा करते हुए, यज्ञशाला म स्थित दुष्ट पालक को पशु की भाँति मार डाला।

संस्कृत टीका – आर्यवृत्तेन = साधुशीलेन, आर्यकेण = तदाख्येन गोपालदारकेण, कुलम् = वंशम्, मानञ्च = गौरवञ्च, रक्षता = पालयता, यज्ञवाटस्थ = यज्ञशालागतः, दुरात्मा = दुष्टप्रकृति, पालक = तदाख्य भूतपूर्व, नृप, पशुवत् = छागादिवत्, हत = मारित ॥

समास एव व्याकरण – (१) आर्यवृत्तेन–आर्यम् वृत्तम् यस्य तेन। यज्ञवाटस्थ –यज्ञस्य वाट तत्रस्थ। (२) रक्षता–रक्ष्+शतृ। मानम्–मन्+घञ्।

विवृति

(१) 'यज्ञवाटस्थ' से सूचित होता है कि उस समय पालक अकेला और बिना अस्त्र-शस्त्र के था। (२) आर्यकेण पालक हत = आर्यक के द्वारा पालक मारा गया, पूर्वश्लोक ४७ म शर्विलकोक्ति है कि मैंने दुष्ट राजा पालक को मारा है और यहाँ आर्यक के द्वारा पालक की हत्या बतला रहा है। इस विरोध का परिहार यह मान कर करना चाहिए कि सेना अथवा सहायको का कार्य प्रधान व्यक्ति का ही कार्य माना जाता है। अत शर्विलक का कार्य आर्यक का कार्य बतलाया गया है। (३) इस श्लोक मे आर्थी उपमालङ्कार है। लक्षण–तुल्यार्थो यत्र वा वति' ॥ सा० द० ॥ (४) प्रस्तुत पद्य मे प्रयुक्त छन्द का नाम है–अनुष्टुप् ॥

चारुदत्त – किम्।

चारुदत्त – क्या ?

शर्विलक –

शर्विलक–

त्वद्यान य समारुह्य गतस्त्वा शरण पुरा।
पशुवद्वितते यज्ञे हतस्तेनाद्य पालक ॥ ५२ ॥

अन्वय – य, पुरा, त्वद्यानम्, समारुह्य, त्वाम्, शरणम्, गत, तेन, अद्य, वितते, यज्ञे पालक, पशुवत्, हत ॥५२॥

पदार्थ – य =जो (आर्यक), पुरा=पहले, त्वद्यानम्=आपकी गाडी पर, समारुह्य=चढकर अथवा बैठकर, वितते=फैले हुए ॥

अनुवाद – जो पहले आपकी गाडी पर बैठ कर आपकी शरण मे गया था, उसने आज विस्तृत यज्ञ मे पालक को पशु के समान मार डाला।

संस्कृत टीका – य =आर्यक, पुरा=पूर्वम्, त्वद्यानम्=तव प्रवहणम्, समारुह्य=आरोहण कृत्वा त्वाम्=भवन्तम्, शरणम्=रक्षितारम्, गत =सम्प्राप्त तेन=आर्यकेण, अद्य=अस्मिन् दिने, वितते=विस्तृते, यज्ञे=मखे, पालक, पशुवत्=यज्ञीयपशुतुल्य, हत =विनाशित ॥

समास एव व्याकरण – (१) समारुह्य–सम्+आ रुह्+क्त्वा– (ल्यप्)। वितते–वि+तन्+क्त।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य मे प्रयुक्त छन्द का नाम है – अनुष्टुप्।

चारुदत्त—शर्विलक, योऽसौ पालकेन घोषादानीय निष्कारण कूटागारे बद्ध आर्यकनामा त्वया मोचित ।

चारुदत्त—शर्विलक! जो यह पालक के द्वारा अहीरो की बस्ती से लाया जाकर बिना कारण ही कारागार मे बाँधा गया था, तथा तुम्हारे द्वारा मुक्त किया गया था, वही आर्यक नाम का व्यक्ति ?

शर्विलक—यथाह तत्रभवान्।

शर्विलक—जैसा आदरणीय आप कह रहे है (वैसा ही है)।

चारुदत्त—प्रिय न प्रियम्।

चारुदत्त—हमारे लिए प्रिय (समाचार) है, प्रिय।

शर्विलक—प्रतिष्ठितमात्रेण तव सुहृदार्यकेणोज्जयिन्या वेणातटे कुशावत्या राज्यमतिसृष्टम्। तत्प्रतिमान्यता प्रथम सुहृत्प्रणय। (परिवृत्य।) अरे रे, आनीयतामय पापो राष्ट्रियशठ।

शर्विलक—उज्जयिनी मे (सिहासन पर) प्रतिष्ठित होते ही आपके मित्र आर्यक ने वेणा नदी के तट पर कुशावती का राज्य (आपको) दिया है। सो मित्र

की प्रथम स्नेह प्रार्थना को स्वीकार कीजिए । [कूमक्र] अरे र ! इस पापी धूर्त राजश्यालक (शकार) को लाइये ।

(नेपथ्ये ।)

[नपथ्य मे]

यथाज्ञापयति शर्विलक ।

शर्विलक की जैसी आज्ञा ।

शर्विलक —आर्य नन्वयमार्यको राजा विज्ञापयति–इद मया युष्मद्गुणोपार्जित राज्यम् । तदुपयुज्यताम् ।

शर्विलक—आर्य, यह आर्यक नामक राजा निवेदन करता है कि–यह राज्य मैंने आपके गुण से प्राप्त किया है । अत (इसका) उपयाग कीजिये ।

चारुदत्त —अस्मद्गुणोपार्जित राज्यम् ।

चारुदत्त—हमारे गुणो से प्राप्त राज्य है ?

(नपथ्ये ।)

[नेपथ्य मे]

अरे रे राष्ट्रियश्यालक, एह्येहि । स्वस्याविनयस्य फलमनुभव ।

अरे रे राजश्यालक ! आओ आओ । अपने अविनय (या दुष्टता) का फल भोग ।

(तत प्रविशति पुरुषैरधिष्ठित पश्चाब्दाहुबद्ध शकार ।)

[तदनन्तर पुरुषो द्वारा पकडा हुआ और पीछे की ओर हाथ बँधा हुआ शकार प्रवेश करता है]

विवृति

(१) कूटागरे=कारागार म । (२) घोषात्=अहीरो के गाँव स । (३) आनीय=लाकर । (४) मोचित =छुडाया गया । (५) प्रतिष्ठितमात्रण=सिंहासन पर बैठत ही । (६) सुहृदा=मित्र के द्वारा । (७) अतिसृष्टम्=समर्पित किया है । (८) प्रतिमान्यताम्=स्वीकार कीजिए । (९) सुहृत्प्रणय =मित्र का स्नेह । (१०) राष्ट्रियशठ=राजा का धूत साला । (११) अस्मदगुणापार्जितम्=हमार गुणा से प्राप्त किया गया । (१२) अविनयस्य=दुष्टता का । (१३) वेणा एक नदी है, कुशावती एक नगरी है ।

शकार —आश्चर्यम् । [ह्रीमादिके ।]

शकार—आश्चर्य ।

एव दूरमतिक्रान्त उद्दाम इव गर्दभ ।

आनीत खल्वह बद्ध कुक्कुरोऽन्य इव दुष्कर ॥४३॥

[एव्व दूलमदिक्कते उद्दामे विअ गद्दहे ।
आणीदे खु हगे बद्धे हुडे अण्णे व्व दुक्कले ॥५३॥]

अन्वय —उद्दाम गर्दभ, इव, एवम्, दूरम्, अतिक्रान्त अहम्, खलु, अन्य, दुष्कर, कुक्कुर, इव, बद्ध आनीत ॥५३॥

पदार्थ —उद्दाम =बन्धन से छूट हुए, गर्दभ =गधे (की), इव=भाँति, अतिक्रान्त =भागा हुआ, आनीत =पकड लाया गया, दुष्कर =दुष्ट, अन्य =दूसरे, कुक्कुर =कुत्ते (के), बद्ध —बाँध दिया गया हूँ ।

अनुवाद —बन्धन से उन्मुक्त गधे के समान इस प्रकार दूर भागा हुआ मैं निश्चित ही दूसरे दुष्ट कुत्ते के समान बाँधा गया तथा लाया गया हूँ ।

संस्कृत टीका—उद्दाम =उन्मुक्तबन्धन, गर्दभ =रासभ, इव, एवम्= इत्थम् दूरम =विप्रकृष्टम् अतिक्रान्त =पलायित, अहम्=शकार, खलु=निश्चयेन, अन्य =इतर, दुष्कर =क्रूर, कुक्कुर इव=श्वा इव, बद्ध =सयमित, आनीत = वध्यस्थानम प्रापित इति यावत् ।

समास एव व्याकरण — (१) उद्दाम–उत् दाम यस्य तादृश । (२) अतिक्रान्त –अति +क्रम्+क्त । दुष्कर –दुष+कृ+खल् । बद्ध —बध्+क्त । आनीत – आ+नी+क्त ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म उपमालङ्कार है । (२) पथ्यावक्त्र छन्द है ।

(दिशोऽवलोक्य ।) समन्तात् उपस्थित एष राष्ट्रियबन्ध । तत्किमिदानीमशरण शरण व्रजामि । (विचिन्त्य ।) भवतु । तमेवाभ्युपपन्नशरण वत्सल गच्छामि । (इत्युपसृत्य ।) आर्यचारुदत्त परित्रायस्व परित्रायस्व । (इति पादयो पतति ।) [शमन्तदो उवट्ठिदे एशे लश्टिअबन्धे । ता क दाणि अशलणे शलण वजामि । भोदु । त ज्जेव अब्भुववण्णशलणवच्छल गच्छामि । अज्जचालुदत्त, पलित्ताअहि पलित्ताअहि ।]

[दिशाओं की ओर देखकर] सब ओर से राजश्यालक का बन्धन उपस्थित हो गया है । तो इस समय रक्षक विहीन मैं किसकी शरण मे जाऊँ ? (सोचकर) अच्छा, उसी शरणागत वत्सल (चारुदत्त) के समीप जाता हूँ । [समीप जाकर] आर्य चारुदत्त ! रक्षा करो, रक्षा करो । [पैरो पर गिर पडता है]

(नेपथ्ये ।)

[नेपथ्य मे]

आर्य चारुदत्त, मुञ्च मुञ्च । व्यापादयामैतम् । [अज्जचालुदत्त, मुञ्च मुञ्च । वावादह्म एदम् । [अज्जचालुदत्त, मुञ्च मुञ्च । वावादेह्म एदम् ।]

आर्य चारुदत्त ! छोडो छोडो, इसे हम मार देते हैं ।

शकार—(चारुदत्त प्रति ।) भो अशरणशरण, परित्रायस्व । [भोअशलण-शलणेपल्तित्ताआहि ।]

शकार—[चारुदत्त से] हे अशरणों को शरण देने वाले ! रक्षा करो।

चारुदत्त—(सानुकम्पम् ।) अहह, अभयमभय शरणागतस्य ।

चारुदत्त—[दया के साथ] ओह ! शरणागत का अभय हो, अभय ।

विवृति

(१) समन्तत =चारो ओर मे। (२) राष्ट्रियवन्ध =राजा के साले का बन्धन। राष्ट्रियस्य बन्ध इति । (३) अभ्युपपन्नशरणावत्सलम्=समीप मे आये हुए का रक्षक तथा स्नेही । अभ्युपपन्नानाम् शरणो वत्सल इति ।

शर्विलक—(सावेगम् ।) आ अपनीयतामय चारुदत्तपार्श्वात् । (चारुदत्त प्रति) ननूच्यता किमस्य पापस्यानुष्ठीयतामिति ।

शर्विलक—(आवेश के साथ) ओह ! इसे चारुदत्त के पास से दूर हटाओ। [चारुदत्त स] अजी ! कहिए इस पापी का क्या किया जाय ?

आकर्षन्तु सुबद्ध्वैन श्वभि सखाद्यतामथ ।
शूले वा तिष्ठतामेष पाट्यता क्रकचेन वा ॥५४॥

अन्वय—एनम्, सुबद्ध्वा, (जना), आकर्षन्तु, अथ, एष, श्वभि, सखाद्यताम्, वा, शूले, तिष्ठताम्, वा, क्रकचेन, पाट्यताम्, ॥५४॥

पदार्थ—एनम्=इसको, सुबद्ध्वा=भली प्रकार बाँधकर, आकर्षन्तु=खींचे ? अथ=अथवा, एष=यह, श्वभि =कुत्तो के द्वारा, सखाद्यताम्=खाया जाय ?, वा=अथवा, शूले=शूली पर, तिष्ठताम्=बैठे ? वा=अथवा, क्रकचेन=आरे से, पाट्यताम्=चीरा जाय ?

अनुवाद—इसे भली-भाँति बाँधकर खीचा जाय ? अथवा इसे कुत्ते खायें ? अथवा शूली पर चढ़ाया जाय । अथवा आरे से चीरा जाय ?

संस्कृत टीका—एनम्=शकारम्, सुबद्ध्वा=सम्यक् सयम्य, आकर्षन्तु= पृथिव्यामितस्तत कर्षन्तु ? अथ=अनन्तरम्, एष =अपराधी शकार, श्वभि = कुक्कुरै, सखाद्यताम्=भक्ष्यताम् ? वा=अथवा,शूले=प्राणपहारके लौहफलके, तिष्ठाम्=वर्तताम्, वा=अथवा, क्रकचेन=करपत्रेण, पाट्यताम्=विदार्यताम् ?

समास एव व्याकरण—(१) सुबद्ध्वा–सु+बध्+क्त्वा । आकर्षन्तु–आ+कृष्+लोट् । सखाद्यताम्–सम्+खाद्+यक्+लोट् । पाट्यताम्–पाट्+लोट् । सर्वत्र प्रश्न म लाट् है ।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य म सुबद्ध्वा' तथा तिष्ठताम्' ये दाना प्रयोग ठीक नहं

शर्विलक—कोऽत्र सन्देह ।
शर्विलक—इसमे क्या सन्देह ?
चारुदत्त —सत्यम् ।
चारुदत्त—सचमुच ?
शर्विलक —सत्यम् ।
शर्विलक—सचमुच ।
चारुदत्त —यद्येव शीघ्रमयम्—
चारुदत्त —यदि एसा है तो शीघ्र ही इसे—
शर्विलक —किं हन्यताम् ।
शर्विलक—क्या मार दिया जाय ?
चारुदत्त —नहि नहि । मुच्यताम् ।
चारुदत्त—नही नही ! छोड दिया जाये ।
शर्विलक —किमर्थम् ।
शर्विलक—किसलिए ?
चारुदत्त —
चारुदत्त—

शत्रु कृतापराध शरणमुपेत्य पादयो पतित ।
शस्त्रेण न हन्तव्य ,
शर्विलक.—एव । तर्हि श्वभि खाद्यताम् ।
चारुदत्त —नहि
उपकारहतस्तु कर्तव्य ॥५५॥

अन्वय —कृतापराध, शत्रु (यदि) शरणम् उपेत्य, पादयो, पतित (तर्हि स), शस्त्रेण न, हन्तव्य , तु, उपकारहत कर्तव्य ॥५५॥

पदार्थ —कृतापराध अपराध का करने वाला, उपेत्य = प्राप्त करके, पादयो = पैरो पर, पतित = पडा है हन्तव्य = मारने के योग्य, उपकारहत = उपकार से मरा हुआ कर्तव्य = करने के योग्य ॥

अनुवाद —अपराध करने वाला शत्रु शरण मे आकर पैरो पर गिर पडा है तो शस्त्र से मारने योग्य नही है ।

शर्विलक—अच्छा, तो कुत्तों द्वारा खाया जाये ।

चारुदत्त—नही

किन्तु उसे उपकार से मरा हुआ कर देना चाहिये ॥

संस्कृत टीका—कृतापराध = विहितापराध , शत्रु = अरि , (यदि) शरणम् =

है। इनके स्थान पर 'सुबद्धच' एव 'स्थीयताम्' होना चाहिए। (२) 'क्रकचोऽन्त्रे करपत्रम्' इत्यमर । (३) पथ्यावक्त्र छन्द है। (४) 'तिष्ठताम्' यह व्याकरणविरुद्ध प्रयोग होने से च्युतसस्कृति दोष है। (५) कर्तव्य विषयो का उपन्यास होने से ग्रथन नामक उपसहार सन्धि का अङ्ग है। लक्षण–'उपन्यासस्तु कार्याणा ग्रथनम्' इति।

चारुदत्त—किमहं यद्ब्रवीमि तत्क्रियते।

चारुदत्त—क्या मैं जो कहूँ, वही किया जाना है ?

शर्विलक—कोऽत्र सदेह।

शर्विलक—इसमें क्या सन्देह ?

शकार—भट्टारक चारुदत्त, शरणागतोऽस्मि। तत्परित्रायस्व परित्रायस्व। यत्तव सदृश तत्कुरु। पुनर्नेदृश करिष्यामि। [भस्टालआ चालुदत्त, शलणाग दे ह्मि। ता पलित्ताआहि पलित्ताआहि। ज तुए शलिश त कलेहि। पुणो ण ईदिश कलिस्शम्।]

शकार–स्वामी! चारुदत्त! शरण मे आया हूँ, अत रक्षा करो, रक्षा करो। जो तुम्हारे योग्य हो वही करो। फिर ऐसा नही करूँगा।

(नेपथ्ये।)

[नेपथ्य मे]

पौरा, व्यापादयत। किं निमित्त पातकी जीव्यते। [पौरा वावादेध। किं णिमित्त पादकी जीवावीअदि।]

पुरवासियो, मार दो। किसलिए (यह) पापी जीवित रक्खा जा रहा है ?

(वसन्तसेना वध्यमाला चारुदत्तस्य कण्ठादपनीय शकारस्योपरि क्षिपति।)

[वसन्तसेना वध्यमाला को चारुदत्त के गले से उतार कर शकार के ऊपर फेंक देती है]

शकार—गर्भदासीपुत्रि, प्रसीद प्रसीद। न पुनर्मारयिष्यामि। तत्परित्रायस्व। [गब्भदाशीधीए, पशीद पशीद। ण उण मालइश्शम्। ता पलित्ताआहि।]

शकार– जन्मदासी की पुत्री! प्रसन्न हो प्रसन्न हो। फिर नही मारूँगा, अत रक्षा करो।

शर्विलक—अरे रे, अपनयत। आर्यचारुदत्त, आज्ञाप्यताम् किमस्य पापस्यानुष्ठीयताम्।

शर्विलक—अरे! हटाओ! चारुदत्त! आज्ञा दीजिए–इस पापी का क्या किया जाए ?

चारुदत्त—किमहं यद्ब्रवीमि तत्क्रियते।

चारुदत्त—क्या मैं जो कहूँ, वही किया जायेगा ?

शर्विलक—कोऽत्र सदेह ।
शर्विलक—इसमें क्या सन्देह ?
चारुदत्त—सत्यम् ।
चारुदत्त—सचमुच ?
शर्विलक—सत्यम् ।
शर्विलक—सचमुच ।
चारुदत्त—यद्येव शीघ्रमयम्—
चारुदत्त—यदि ऐसा है तो शीघ्र ही इसे—
शर्विलक—किं हन्यताम् ।
शर्विलक—क्या मार दिया जाये ?
चारुदत्त—नहि नहि । मुच्यताम् ।
चारुदत्त—नही नही ! छोड दिया जाये ।
शर्विलक—किमर्थम् ।
शर्विलक—किसलिए ?
चारुदत्त—
चारुदत्त—

शत्रु कृतापराध शरणमुपेत्य पादयो पतित ।
शस्त्रेण न हन्तव्य,
शर्विलक:—एव । तर्हि श्वभि खाद्यताम् ।
चारुदत्त.—नहि,
उपकारहतस्तु कर्तव्य ॥५५॥

अन्वय—कृतापराध, शत्रु (यदि) शरणम्, उपेत्य, पादयो, पतित (तर्हि, स), शस्त्रेण, न, हन्तव्य, तु, उपकारहत, कर्तव्य ॥५५॥

पदार्थ—कृतापराध, अपराध को करने वाला, उपेत्य=प्राप्त करके, पादयो = पैरो पर, पतित =पडा है, हन्तव्य.=मारने के योग्य, उपकारहत =उपकार से मरा हुआ, कर्तव्य =करने के योग्य ॥

अनुवाद—अपराध करने वाला शत्रु शरण मे आकर पैरो पर गिर पडा है तो शस्त्र से मारने योग्य नही है ।
शर्विलक-अच्छा, तो कुत्तो द्वारा खाया जाये ।
चारुदत्त—नही
... ...किन्तु उसे उपकार से मरा हुआ कर देना चाहिये ॥
संस्कृत टीका—कृतापराध =विहितापराध, शत्रु.=अरि., (यदि) शरणम्=

आश्रयम्, उपेत्य = प्राप्य, पादयो = चरणयो, पतित = लुठित, (तर्हि, स) शस्त्रेण = आयुधेन, न हन्तव्य = न मारणीय, तु = किन्तु, उपकारहत = अनुग्रहेण मारित, कर्तव्य = विधेय ॥

समास एव व्याकरण–(१) कृतापराध = कृत अपराध येन तादृश। उपकारहत–उपकारेण हत। (२) अपराध–अप + राध् + घञ्। उपेत्य–उप + इ + क्त्वा (ल्यप्)। पतित–पत् + क्त। उपकार–उप + कृ + घञ्।

विवृति

(१) 'आगोऽपराधो मन्तुश्च' इत्यमर। (२) चारुदत्त शकार का वध नही होने देना चाहते हैं। भारतीय शास्त्रकारो ने शरणागत के वध की घोर निन्दा की है। याज्ञवल्क्य ने कहा है—'शरणागत बालस्त्रीहिंसकान् सवसेन्न तु। चीर्णव्रतानपि सदा कृतघ्नसहितान् निमान्॥" रामायण मे भी कहा गया है–"बद्धाञ्जलिपुट दीन याचन्त शरणागतम्। न हन्यादानृशस्यार्थमपि शत्रु परन्तप"॥ (युद्ध०–१८/५५)। (३) उपकार से दबा हुआ मनुष्य सदा कृतज्ञता—पाश मे बँधा रहता है। यह सैकडो दण्डो का एक दण्ड है।

शर्विलक–अहो, आश्चर्यम्। किं करोमि। वदत्वार्य।

शर्विलक–ओह! आश्चार्य है। क्या करूँ? आर्य बतालइए।

चारुदत्त–तन्मुच्यताम्।

चारुदत्त–तो छोड दिया जाये।

शर्विलक–मुक्तो भवतु।

शर्विलक–मुक्त हो जाये।

शकार–आश्चर्यम्। प्रत्युज्जीवितोऽस्मि। (इति पुरुषै सह निष्क्रान्त।) [हीमादिके। पच्चुज्जीविदेह्मि।]

शकार–आश्चर्य है! मैं पुनर्जीवित हो गया हूँ। [यह कह मनुष्यो के साथ निकल जाता है]

(नेपथ्ये कलकल।)

[नेपथ्य मे कोलाहल]

(पुनर्नेपथ्ये।)

[फिर नेपथ्य में]

एषार्यचारुदत्तस्य वधूरार्या धूता पदे वसनाञ्चले विलगन्त दारकमाक्षिपन्ती बाष्पभरितनयनैर्जनैर्निवार्यमाणा प्रज्वलित पावके प्रविशति। [एसा अज्जचालुदत्तस्स वहूआ अज्जा धूदा पदे वसणञ्चले विलग्गन्त दारअ आक्खिवन्ती बाप्फभरिदणअणेहिं जणेहिं णिवारिज्जमाणा पज्जलिदे पावए पविसदि।]

यह आर्य चारुदत्त की पत्नी आर्या धूता चरण में और वस्त्र के आँचल में लिपटे हुए बालक को झटकती हुई तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों वाले लोगों के द्वारा रोक जाती हुई भी प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर रही है।

शर्विलक—(आकर्ण्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य।) कथं चन्दनकः। चन्दनक, किमेतत्।

शर्विलक-[सुनकर नेपथ्य की ओर देखकर] क्या चन्दनक है? चन्दनक! यह क्या?

चन्दनक.-(प्रविश्य।) किं न पश्यत्यार्य.। महाराज प्रासाद दक्षिणेन महाञ्जन सम्मर्दो वर्तते। ('एसा' (२५५ पृष्ठे) इत्यादि पुन पठति।) कथितं च मया तस्यै, यथा-'आर्ये, मा साहस कुरुष्व। जीवत्यार्य चारुदत्त' इति। परतु दु:ख-व्यापृततया क श्रृणोति, क प्रत्ययते। [किं ण पेक्खदि अज्जो। महाराअप्पासाद दक्खिणेण महन्तो जणसमद्दो वट्टदि। कधिद अ मए तीए, जधा-'अज्जे, मा साहस करेहि। जीवदि अज्ज चारुदत्तो' त्ति। परतु दुक्खवावुडदाए को सुणोदि, को पत्तिआएदि।]

विवृति

(१) पदे=पैर में।(२) वसनाञ्चले=वस्त्र के आँचल में। (३)दारकम्=बालक को। (४) विलगन्तम्=चिपकते हुए। (५) आक्षिपन्ती=हटाती हुई। (६)बाष्पभरितनयनैं=आँसू से भरे नेत्रों वाले। (७) महाराजप्रासादम्=आर्यक के महल को। (८)दक्षिणेन=दक्षिण की ओर। दक्षिण+एनप्। 'एनपा द्वितीया' से 'प्रासादम्' में द्वितीया है।(९)जनसम्मर्द.=लोगो की भीड। (१०) दु:खव्यापृततय=दु:ख में डूबी होने से। (११) प्रत्ययते=विश्वास करता है।

चारुदत्त-(सोद्वेगम्।) हा प्रिये, जीवत्यपि मयि किमेतद्व्यवसितम्। (ऊर्ध्वमवलोक्य दीर्घं निश्वस्य च।)

चारुदत्त—

न महीतलस्थितिसहानि भवच्चरितानि चारुचरिते यदपि।
उचित तथापि परलोकसुख न पतिव्रते! तव विहाय पतिम् ॥५६॥

अन्वय :—हे चारुचरिते! यदपि, भवच्चरितानि, महीतलस्थितिसहानि, न, (सन्ति), तथापि, हे पतिव्रते। पतिम्, विहाय, तव, परलोकसुखम्, न, उचितम् ॥५६॥

पदार्थ :—हे चारुचरिते=हे उत्तम चरित्र वाली! भवच्चरितानि=आपके चरित्र, महीतलस्थितिसहानि=पृथ्वी पर रहने योग्य, हे पतिव्रते!=हे सती साध्वी!, विहाय=छोड कर, परलोकसुखम्=परलोक में सुख भोगना, न=नहीं, उचितम्=उचित है।

अनुवाद–हे पवित्र चरित्र वाली ! यद्यपि आपके सच्चरित्र पृथ्वीतल पर रहने योग्य नहीं हैं तथापि हे पतिव्रत ! पति को छोड़कर तुम्हे स्वर्ग-सुख (भोगना) उचित नहीं ॥

संस्कृत टीका–हे चारुचरिते ! =हे सुन्दरचरित्रशालिनि ! यदपि=यद्यपि, भवच्चरितानि=त्वच्चरितानि, महीतलस्थिति० = भूतलनिवासयोग्यानि, न=न सन्ति, तथापि, हे पतिव्रते !,-पतिम्=भर्तारम्, मा=चारुदत्तम्, विहाय=त्यक्त्वा, तव भवत्या, परलोक सुखम्= स्वर्ग सुखम्, न उचितम्=न योग्यम् ।

समास एवं व्याकरण-(१) चारुचरिते-चारु चरितम् यस्या तत्सम्बुद्धौ। भवच्चरितानि-भवत्या चरितानि । महीतलस्थितिसहानि-महीतले स्थिति ताम् सहन्ते इति । पतिव्रते–पति एव व्रतम यस्यास्तत्सम्बोधने । परलोकसुखम्। परलोके सुखम् । (२) चरित-चर्+क्त । विहाय-वि+हा+क्त्वा (ल्यप्) ।

विवृति

(१) पतिव्रता का लक्षण–"आर्तार्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा। मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥" (२) प्रस्तुत श्लोक मे परलोक सुख भोग के अनौचित्य के प्रति 'पतिव्रत' इस पद का अर्थ कारण होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। (३) 'यद्यपि' के अर्थ से 'यदपि' का प्रयोग होने से अवाचकत्व दोष है उसक। 'चरितानि यद्यपि महच्चरिते' इस पाठ से समाधान करना चाहिये। (४) प्रमिताक्षरा छन्द है। लक्षण– प्रमिताक्षरा सजससैः कथिता' ॥

(इति मोहमुपगत ।)

शर्विलक–अहो प्रमाद ।

शर्विलक–

त्वरया सर्पण तत्र मोहमार्योऽत्र चागत ।

हा धिक्प्रयत्नवैफल्य दृश्यते सर्वतोमुखम् ॥१७॥

अन्वय–तत्र, त्वरया, सर्पणम्, (उचितम, किन्तु), अत्र, आर्य , मोहम्, उपगत । हा धिक् । सर्वतोमुखम्, प्रयत्नवैफल्यम् दृश्यते ॥१७॥

पदार्थ–त्वरया=जल्दी से, सर्पणम्=जाना,आर्य =आदरणीय, मोहम्= मूर्च्छा को, उपगत =प्राप्त हो गये हैं, सर्वतोमुखम्=चारो ओर से, प्रयत्नवैफल्यम्= प्रयत्न की विफलता, दृश्यते=दिखलायी देती है ॥

अनुवाद–वहाँ (धूता के समीप) शीघ्रता से जाना है किन्तु यहाँ आर्य (चारुदत्त) मूर्च्छा को प्राप्त हो गये हैं। हाय ! धिक्कार ! सब ओर से प्रयत्न की भी निष्फलता ही दिखलाई देती है।

संस्कृत टीका–तत्र=धूताया समीप, त्वरया=झटिति, सर्पणम्=गमनम्

उचितमिति शेष, किन्तु अत्र च=इह च, आर्य =चारुदत्त, मोहम्=मूर्च्छाम्, उपगत =प्राप्त, हा धिक्! सर्वतोमुखम्=सर्वप्रकारकम्, प्रयत्नवैफल्यम्=प्रयत्नविफलता, दृश्यते=अवलोक्यते ॥

समास एव व्याकरण–(१) प्रयत्नवैफल्यम्–प्रयत्नानाम् वैफल्यम्। (२) सपणाम्–सृप्+ल्युट्। मोहम्–मुह्+घञ्। दृश्यते–दृश्+यक्+लट्। वैफल्यम्–विफल+ष्यञ्।

विवृति

(१) प्रस्तुत पद्य में पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण–'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।'

वसन्तसेना–समाश्वसित्वार्यः। तत्र गत्वा जीवयत्वार्याम्। अन्यथा–धीरत्वेनानर्थं समाप्स्यते। [समस्ससिदु अज्जा। तत गदुअ जीवावेदु अज्जाम्। अण्णधा अधीरत्तणेण अणत्थो समावीअदि।]

वसन्तसेना–आप आश्वस्त हों। वहाँ चलकर आर्या (धूता) को जीवित करें नहीं तो अधीरता से अनर्थ हो सकता है।

चारुदत्त–(समाश्वस्य सहसोत्थाय च।) हा प्रिये, क्वासि। देहि मे प्रतिवचनम्।

चारुदत्त–(आश्वस्त होकर तथा शीघ्रता से उठकर) हा प्रिये! कहाँ हो? मुझे उत्तर दो।

चन्दनक–इत इत आर्य। [इदो इदो अज्जो।]

चन्दनक–आर्य! इधर, इधर।

(इति सर्वे परिक्रामन्ति।)

(सब घूमते हैं।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा धूता चेलाञ्चलमाकर्षन्विदूषकेणानुगम्यमानो रोहसेनो रदनिका च।)

(तत्पश्चात् पूर्वोक्त धूता, वस्त्र के आँचल को खींचता हुआ तथा विदूषक के द्वारा अनुगमन किया गया रोहसेन एवं रदनिका प्रवेश करते हैं।)

धूता–(सास्रम्।) जात, मुञ्च माम्। मा विघ्नं कुरुष्व। बिभेम्यार्यपुत्रस्यामङ्गलाकर्णनात्। (इत्युत्थायाञ्चलमाकृष्य पावकाभिमुखं परिक्रामति।) [जाद, मुञ्चेहि मम्। मा विग्घं करेहि। भीआमि अज्जउत्तस्स अमङ्गलाकण्णणदो।]

धूता–(आँसुओं के साथ) पुत्र! मुझे छोड़ दो, विघ्न मत करो, मैं आर्यपुत्र का अशुभ सुनने से डरती हूँ। (उठकर, आँचल खींचकर अग्नि की ओर बढ़ती है।)

रोहसेन–मातरार्ये, प्रतिपालय माम् । त्वया विना न शक्नोमि जीवितं धर्तुम् (इति त्वरितमुपसृत्य पुनरञ्चलं गृह्णाति ।) [माद अज्जए, पडिवालेहि मम्। तुए विणा ण सक्कुणोमि जीविद धारेदुम् ।]

रोहसेन–माता ! आर्या ! मेरी प्रतीक्षा करो। तुम्हारे बिना मैं जीवन धारण नहीं कर सकता (यह कहकर, शीघ्रता से निकट जाकर पुन आँचल पकड लेता है ।)

विदूषक –भवत्यास्तावद्ब्राह्मण्या भिन्नत्वेन चिताधिरोहणं पापमुदाहरन्ति ऋषयः । [भोदीए दाव बह्मणीए भिण्णत्तणेण चिदाधिरोहणं पावं उदाहरन्ति रिसीओ ।]

विदूषक–आप जैसी ब्राह्मणी के लिए अलग से चिता पर चढने को ऋषि जन पाप कहते हैं।

धूता–वरं पापचरणम् । न पुनरार्यपुत्रस्यामङ्गलाकर्णनम् । [वरं पावाचरणं । ण उण अज्जउत्तस्स अमङ्गलाकण्णणम् ।]

धूता–पाप करना अच्छा है, किन्तु आर्यपुत्र का अमङ्गल सुनना अच्छा नहीं ।

शर्विलक –(पुरोऽवलोक्य ।) आसन्नहुतवहार्या । तत्त्वर्यतां त्वर्यताम् ।

शर्विलक–(सामने देखकर) आर्या अग्नि के निकट हैं। शीघ्रता करिए, शीघ्रता करिए ।

(चारुदत्तस्त्वरितं परिक्रामति ।)

(चारुदत्त शीघ्रता से घूमता है ।)

धूता–रदनिके, अवलम्बस्व दारकम् । । यावदहं समीहितं करोमि । [रअणिए, अवलम्ब दारअम्, जाव अहं समीहिदं करेमि ।]

धूता–रदनिका ! बालक को पकड लो, जबतक मैं अपना अभीष्ट कार्य करती हूँ ।

चेटी–(सकरुणम् ।) अहमपि यथोपदेशिन्यस्मि भट्टिन्या । [अहमपि जधोवदेसिणि हि भट्टिणीए ।]

चेटी–(करुणापूर्वक) मैं भी स्वामिनी के उपदेशानुसार करने वाली हूँ ।

धूता–(विदूषकमवलोक्य ।) आर्यस्तावदवलम्बताम् । [अज्जो दाव अवलम्बेदु ।]

धूता–(विदूषक को देखकर) तबतक आर्य पकडें। (बच्चे को) ।

विदूषक –(सावेगम् ।) समीहितसिद्धये प्रवृत्तेन ब्राह्मणाऽग्रे कर्तव्य । अतो भवत्या अहमग्रणीर्भवामि । [समीहिद सिद्धए पउत्तेण बह्मणो अग्गदो कादव्वो। अदो भोदीए अहं अग्गणी होमि ।]

विदूषक–(आवेगपूर्वक) अभिलषित कार्य की सिद्धि के लिए ब्राह्मण का आगे बढ़ना चाहिए। इसलिए मैं आपका अग्रणी होता हूँ।

धूता–कथ प्रत्यादिष्टास्मि द्वाभ्याम्। (बालकमालिङ्ग्य।) जात, त्वमेव, पर्यवस्थापयात्मानमस्माक तिलोदकदानाय। अतिक्रान्त किं मनोरथै। (सनिश्वासम्।) खल्वार्यपुत्रस्त्वा पर्यवस्थापयिष्यति। [कध पच्चादिट्ठह्मि दुवेहिं। जाद, तुमज्जेव पज्जवट्ठावेहि अत्ताण अह्माण तिलोदअदाणाअ। अदिक्कन्त किं मणोरहेहिं। ण क्खु अज्जउत्तो तुम पज्जवट्ठाविस्सदि।]

धूता–क्या दोनो ने अस्वीकार कर दिया है? (बालक का आलिङ्गन करके) पुत्र! तुम तिल से मिले हुए जल को देने के लिए तुम अपनी रक्षा करो। समय व्यतीत हो जाने पर मनोरथो से क्या लाभ? (लम्बी साँस लेकर) निश्चय ही आर्य पुत्र तुम्हारी रक्षा नहीं करेंगे।

चारुदत्त–(आकर्ण्य सहसोपसृत्य।) अहमेव पर्यवस्थापयामि बालिशम्। (इति बालक बाहुभ्यामुत्थाप्य वक्षसालिङ्गति।)

चारुदत्त–(सुनकर एकाएक निकट जाकर) मै ही बालक की रक्षा करूँगा। (ऐसा कहकर, बालक को हाथ से उठाकर, छाती से लगाता है।)

धूता–(विलोक्य।) आश्चर्यम्। आर्यपुत्रस्यैव स्वरसयोग। (पुनर्निपुण निरूप्य सहर्षम्।) दिष्ट्यार्यपुत्र एवैष। प्रिय मे प्रियम्। [अम्महे। अज्जउत्तस्स ज्जेव सरसजोओ। दिट्ठिआ अज्जउत्तो ज्जेव एसो। पिअ मे पिअम्।]

धूता–(देखकर) आश्चर्य है! आर्यपुत्र का सा स्वर है। (पुन सावधानी से देखकर, हर्ष के साथ) भाग्य से यह आर्यपुत्र ही हैं। मेरे लिए आनन्द है, आनन्द है।

बालक–(विलोक्य सहर्षम्।) आश्चर्यम्। पिता मा परिष्वजति। (धूता प्रति।) आर्ये वर्धसे। तात एव मा पर्यवस्थापयति। (इति प्रत्यालिङ्गति।) [अम्मो। आवुको मं परिस्सजदि। अज्जए, वड्ढसि। आवुको ज्जेव मं पज्जवट्ठावेदि।]

बालक–(देखकर हर्षपूर्वक) अहा! पिता जी मेरा आलिङ्गन कर रहे हैं। (धूता से) आर्या! बढ रही हो। पिता जी ही मेरी रक्षा कर रहे हैं। (यह कहकर बदले मे आलिङ्गन करता है।

विवृति

(१) अनर्थ–अशुभ अर्थात् धूता की मृत्यु। (२) प्रतिवचनम्=उत्तर। (३) जात–पुत्र। (४) अमङ्गलाकर्णनाय–अशुभ सुनने से। (५) ब्राह्मणाभ्या=ब्राह्मणो के द्वारा (६) भिन्नत्वेन=अलग से। पति के शव के बिना। पृथक् चिति समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति।' गरु०। (७) आसन्नहुतवहा=आसन्न हुतवह यस्या

सा बहु० । अग्नि के समीप स्थित । आ + सद् + क्त = आसन्न । (८) अवलम्बस्व = पकड़ लो । (९) दारकम् = बच्चे को । (१०) समीहितम् = अभीष्ट-सम् + ईह् + क्त । (११) भट्टिन्या = स्वामिनी को । (१२) यथोपदेशिनी-मार्ग बतलाने वाली । उपदेशम् अनति क्रम्य इति यथोपदेशम्, तत् अस्ति अस्या इति । यथोपदेश + इनि + ङीप् । (१३) समीहित सिद्ध्यै = मनोरथ प्राप्ति के लिए । (१४) अग्रणी. = अगुआ अग्र + नी + क्विप् । (अग्र ग्रामाभ्यां नयतेर्णो वाच्य ।) (१५) प्रत्यादिष्टा = इनकार कर दी गई । (१६) पर्यवस्थापय = बचालो, सान्त्वना दे दो । (१७) तिलोदकदानाय = तिल से मिली हुई जल की अंजुली देने के लिए । (१८) अतिक्रान्ते = समय बीत जाने पर । (१९) बालिशम् = बालक । (२०) आवुक = पिता ।

चारुदत्त -(धूता प्रति ।)

चारुदत्त-(धूता से ।)

हा प्रेयसि ! प्रेयसि विद्यमाने कोऽयं कठोरो व्यवसाय आसीत् ।
अम्भोजिनीलोचनमुद्रणं किं मानावनस्तङ्गमिते करोति ? ॥५८॥

अन्वय -हा प्रेयसि ! प्रेयसि, विद्यमाने, अयम्, क, कठोर व्यवसाय, आसीत्. किम्, भानौ, अनस्तङ्गमिते, (अपि), अम्भोजिनी, लोचनमुद्रणम्, करोति ? ॥५८॥

पदार्थ -हा प्रेयसि ! = हे प्रियतमे ! प्रेयसि = प्रियतम के, विद्यमाने = जीवित रहने पर, क = कैसा, अयम् = यह, कठोर = कठोर, व्यवसाय. = निश्चय, भानौ = सूर्य, अनस्तङ्गमित = न डूबने पर, अम्भोजिनी = कमल-लता, लोचनमुद्रणम् = नेत्र (रूप फूल) का सकोच, करोति = करती है ?

अनुवाद -हे प्रियतमे ! प्रियतम के (जीवित) रहते ही यह क्या कठोर कार्य कर रही थी ? क्या सूर्य के अस्त हुए बिना कमलिनी नेत्र मूँदती है ?

संस्कृत टीका-हा प्रेयसि ! = हे प्रिये ! प्रेयसि = प्रियतमे, विद्यमाने = वर्तमाने अयम् = एष, क = कीदृश कठोर = कठिन, व्यवसाय = अग्निप्रवेशनिश्चय, आसीत् = अभूत ? किम्, भानौ = सूर्ये, अनस्तङ्गमिते = अस्ताभाव प्राप्ते, (अपि) अम्भोजिनी = कमलिनी, लोचनमुद्रणम् = पुष्पसकोचम्, करोति = विदधाति ?

समास एवं व्याकरण-(१) अनस्तङ्गमित-अनस्तम् गमित । (२) विद्यमान = विद् + श्यन् + मुक् + शानच् (लट्) । (३) व्यवसाय = वि + अव + सो + घञ् । (४) अस् + लङ् । (५) करोति = कृ + लट् ।

विवृति

(१) प्रेयसि -हे प्रियतमे । यह 'प्रेयसी' शब्द का सम्बोधन एक वचन है । (२) प्रेयसि = प्रियतम (के विद्यमान होने पर) 'प्रेयस' का सप्तमी-एक वचन है ।

(३) प्रस्तुत पद्य का भाव यह है कि जैसे कमलिनी सूर्य के रहते कभी नहीं सकुचित होती अथवा कुम्हलाती नहीं वैसे ही मेरे रहते हुए तुम्हें ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिए थी। (४) प्रस्तुत पद्य में प्रकृत धूता कृत कठोर प्रयास (अग्नि-प्रवेश) से अनौचित्य का समर्थन करने के लिये अनस्तगत सूर्य का कमलिनी विकास रूप सादृश्य को वस्तु प्रतिबिम्ब भाव में स्थापना होने से दृष्टान्तालङ्कार है। (५) कमलिनी और सूर्य का लिङ्ग साम्य होने से नायिका नायक के व्यवहार का आरोप करने से समासोक्ति है। (६) 'न करोति' इस अर्थ (७) 'प्रेयसि ! प्रेयसि' शब्दों की पुनरुक्ति होने से तात्पर्य मात्र का भेद होने से लाटानुप्रास अलङ्कार है। (८) 'सत्यर्थे पृथगर्थाया' इससे पदार्थ भेद होने से उस विषय की अवधारणा होने से यमक नहीं है। समस्त रूप में समृष्टि है। (९) इन्द्रवज्रा छन्द है। लक्षण–'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।'

धूता–आर्यपुत्र, अतएव साऽचेतनेति चुम्ब्यते। [अज्जउत्त, अदो ज्जेव सा अचेदणेति चुम्बीअदि।]

धूता–आर्यपुत्र, अतएव वह अचेतन कही जाती है।

विदूषक–(दृष्ट्वा सहर्षम्।) आश्चर्य भो, एताभ्यामेवाक्षिभ्यां प्रियवयस्य प्रेक्ष्यते। अहो सत्याः प्रभाव यतो ज्वलनप्रवेशाध्यवसायेनैव प्रियसमागम प्रापिता। (चारुदत्तं प्रति।) जयतु जयतु प्रियवयस्य। [ही ही भो, एदेहिं ज्जेव अच्छीहिं पिअवअस्सो पेक्खीअदि। अहो सदीए पहावो, जदो जलणप्पवेसज्झवसाएण ज्जेव पिअसमागम पाविदा। जेदु जेदु पिअवअस्सो।]

विदूषक–(देखकर प्रसन्नतापूर्वक) अरे आश्चर्य है ! इन्हीं नेत्रों से प्रिय मित्र को देख रहा हूँ। सती (धूता) का प्रभाव है जो कि अग्नि में प्रवेश के निश्चय मात्र से ही (वह) प्रियमिलन को प्राप्त हो गई है। (चारुदत्त से) प्रिय मित्र की जय हो, जय हो।

चारुदत्त–एहि मैत्रेय। (इत्यालिङ्गति।)

चारुदत्त–आओ मैत्रेय ! (ऐसा कहकर आलिङ्गन करता है।)

चेटी–अहो सविधानकम्। आर्य, वन्दे। (इति चारुदत्तस्य पादयो पतति।) [अहो सविधाणअम्। अज्ज, वन्दामि।]

चेटी–अहो ! दैव का विधान। आर्य ! प्रणाम करती हूँ (यह कहकर चारुदत्त के पैरों पर गिरती है।)

चारुदत्त–(पृष्ठे करं दत्त्वा।) रदनिके, उत्तिष्ठ। (इत्युत्थापयति।)

चारुदत्त–(पीठ पर हाथ रखकर) रदनिके ! उठो। (यह कहकर उठाता है।)

धूता–(वसन्तसेनां दृष्ट्वा।) दिष्ट्या कुशलिनी भगिनी [दिट्ठिआ कुसलिणी बहिणिआ।]

धूता–(वसन्तसेना को देखकर) भाग्य से बहुत सकुशल है।

वसन्तसेना–अधुना कुशलिनी संवृत्तास्मि। [आहुणा कुसलिणी संवुत्तह्मि।]

वसन्तसेना–अब सकुशल ही हूँ।

(इत्यन्योन्यमालिङ्गतः।)

(यह कहकर वे दोनो परस्पर आलिङ्गन करती हैं।)

शर्विलक–दिष्ट्या जीवितसुहृद्वर्ग आर्यः।

शर्विलक–भाग्य से आर्य का सुहृत्-समूह जीवित है।

चारुदत्त–युष्मत्प्रसादेन।

चारुदत्त–आप लोगो की कृपा से।

शर्विलक–आर्ये वसन्तसेने, परितुष्टो राजा भवती वधूशब्देनानुगृह्णाति।

शर्विलक–आर्या वसन्तसेना! प्रसन्न हुए राजा (आर्यक) आपको वधू शब्द से अनुगृहीत करते है।

वसन्तसेना–आर्य, कृतार्थास्मि। [अज्ज कदत्थम्हि।]

वसन्तसेना–आर्य! मैं कृतार्थ हो गई।

शर्विलक–(वसन्तसेनामवगुण्ठ्य चारुदत्तं प्रति।) आर्य, किमस्य भिक्षोः क्रियताम्।

शर्विलक–(वसन्तसेना का घूंघट निकाल करके चारुदत्त से) आर्य! इस भिक्षु का क्या किया जाय?

चारुदत्त–भिक्षो, किं तव बहुमतम्।

चारुदत्त–भिक्षु! तुम्हें क्या अभीष्ट है?

भिक्षु–इदमीदृशमनित्यत्वं प्रेक्ष्य द्विगुणतरो मम प्रव्रज्यायां बहुमानः संवृत्तः। [इम ईदिसं अणिच्चत्तणं पेक्खिअ दि उणतले मे पव्वज्जाए बहुमाणे संवुत्ते।]

भिक्षु–इस प्रकार इस अनित्यता को देखकर सन्यास में मेरी श्रद्धा दूनी हो गई है।

चारुदत्त–सखे, दृढोऽस्य निश्चयः। तत्पृथिव्यां सर्वविहारेषु कुलपतिरयं क्रियताम्।

चारुदत्त–मित्र! इसका दृढ़ निश्चय है। इसलिए पृथिवी पर समस्त विहारों का कुलपति इसे बना दिया जाए।

शर्विलक–यथाहार्यः।

शर्विलक–जैसा आर्य कहें।

भिक्षु–प्रियं नः प्रियम्। [पिअं णो पिअम्।]

भिक्षु–हमारे लिए बहुत बड़ा प्रिय है, प्रिय है।

वसन्तसेना–साम्प्रतं जीवापितास्मि। [संपदं जीवाविदह्मि।]

वसन्तसेना–इस समय मैं जीवित हो गई हूँ ।

शर्विलक–स्थावरकस्य किं क्रियताम् ।

शर्विलक–स्थावरक का क्या किया जाय ?

चारुदत्त–सुवृत्त, अदासो भवतु । ते चाण्डाला सर्वचाण्डालानामधिपतयो भवन्तु । चन्दनक पृथिवी दण्डपालको भवतु । तस्य राष्ट्रियश्यालस्य यथैव क्रिया पूर्वमासीत्, वर्तमाने तथैवास्त्यास्तु ।

चारुदत्त–सुन्दर आचरण वाला (स्थावरक) दास न रहे । वे चाण्डाल सभी चाण्डालो के स्वामी बना दिये जायें । चन्दनक सपूर्ण पृथिवी का दण्डनायक बना दिया जाय । उस राजा के साले का कार्य जैसे पहले था वैसा ही इस समय बना रहे ।

शर्विलक–एव यथाहार्य परमेन मुञ्च मुञ्च । व्यापादयामि ।

शर्विलक–अच्छा, जैसे आर्य कहे, परन्तु इस (शकार) को छोड़ो मैं इसे मारता हूँ ।

चारुदत्त–अभय शरणागतस्य । ('शत्रु कृतापराध' (१०/५४) इत्यादि पठति ।)

चारुदत्त–शरण मे आये हुए को अभय है । ('शत्रु कृतापराध' (१०/५८) इत्यादि पढता है ।)

शर्विलक–तदुच्यता किं ते भूय. प्रिय करोमि ।

शर्विलक–तो बतलाइए, और क्या आपका प्रिय करूँ ।

विवृति

(१) अचेतना=चेतना शून्य जड । (२) चुम्ब्यत=कही जाती है । (३) सत्या=सती का । (४) ज्वलनप्रवेशव्यवसायेन=आग मे प्रवेश करने के निश्चय से । (५) सवियोगकम्=सयोग । (६) दिष्ट्या=भाग्य से । (७) अनित्यत्वम्=नश्वरता (८) प्रव्रज्यायाम्=सन्यास मे । (९) बहुमान=अत्यधिक श्रद्धा । (१०) सर्वविहारेषु=सभी बौद्ध विहारो मे । (११) जीवितसुहृद्वर्ग=जिसके मित्रो या बन्धुओ का समूह जीवित है । (१२) अवगुण्ठ्य=घूँघट काढ कर । (१३) कुलपति=अध्यक्ष । (१४) सुवृत्त=उत्तमचरित्र ।

चारुदत्त–अत परमपि प्रियमस्ति ।

चारुदत्त–

लब्धा चारित्र्यशुद्धिश्चरणनिपतितः शत्रुरप्येष मुक्त,
प्रोत्खातारातिमूलः प्रियसुहृदचलामार्यकः शास्ति राजा ।
प्राप्ता भूय. प्रियेय प्रियसुहृदि भवान्सगतो मे वयस्यो,
लभ्य किं चातिरिक्त यदपरमधुना प्रार्थयेऽहं भवन्तम् ? ॥५९॥

अन्वय—चारित्र्यशुद्धि, लब्धा, चरणनिपतित, एष, शत्रु, अपि, मुक्त, प्रोत्खातारातिमूल, प्रियसुहृद्, आर्यक, राजा, (भूत्वा), अचलाम्, शास्ति, इयम्, प्रिया, भूय प्राप्ता, प्रियसुहृदि, सङ्गत, भवान्, मे, वयस्य, (जात) किञ्च अतिरिक्तम्, अपरम्, लभ्यम्, यत्, अहम्, अधुना, भवन्तम्, प्रार्थये ? ॥५९॥

पदार्थ—चारित्र्यशुद्धि = चरित्र की निर्दोषता, लब्धा = प्राप्त कर ली गयी, चरणनिपतित = पैरो पर पड़ा हुआ, प्रोत्खातारातिमूल = शत्रु की जड को उखाड फेकने वाला, अचलाम् = पृथ्वी को, शास्ति = शासित कर रहा है, प्रिया = प्रेयसी, भवन्तम् = आप से, प्रार्थये = माँगू ॥

अनुवाद—चरित्र की शुद्धता प्राप्त कर ली, चरणो पर गिरा हुआ वह शत्रु (शकार) भी मुक्त कर दिया। शत्रुओ को उन्मूलित करके प्रियमित्र आर्यक राजा होकर पृथ्वी पर शासन कर रहे है। यह प्रिया (वसन्तसेना) फिर मिल गई। प्रिय मित्र (आर्यक) से मिले हुए आप मेरे मित्र हो गये। इससे अधिक दूसरा क्या प्राप्त करना है, जिसकी म अब आपसे प्रार्थना करूँ ॥

संस्कृत टीका—चारित्र्यशुद्धि = सदाचारनिर्दोषिता, लब्धा = प्राप्ता, चरणनिपतित = शरणागत, एष = सम्प्रत्येव अस्मात् स्थानात् गन, शत्रु = रिपु, अपि, मुक्त = मोचित इति यावत् प्रोत्खातारातिमूल = उन्मीलितशत्रुमूल, प्रियसुहृद् = प्रियमित्रम्, आर्यक, राजा (सन्) अचलाम् = पृथिवीम्, शास्ति इय प्रिया = वसन्त सेना भूय = पुन प्राप्ता = लब्धा, प्रियसुहृदि = आर्यके, सङ्गत = मित्रत्वेन मिलित, भवान् = शर्विलक मे = मम, वयस्य = मित्रम् (जात), किञ्च, अतिरिक्तम् = अतोऽधिकम् अपरम् = अन्यत् लभ्यम् = प्राप्यम्, यत् अहम् = चारुदत्त, अधुना = सम्प्रति भवन्तम् = शर्विलकम् प्रार्थये = याचे ? ॥

समास एव व्याकरण—(१) चारित्रशुद्धि—चारित्रस्य शुद्धि । चरणनिपतित - चरणयो निपतित । प्रोत्खातारातिमल—प्रोत्खातम् अरातीनाम् मूलम् येन तादृश । (२) लब्धा—लभ् + क्त + टाप् । लभ्यम्—लभ् + यत् (कर्मणि) । (३) चारित्रम्—चरित्र + अण् स्वार्थे । (४) मुक्त = मुच् + क्त । (५) शास्ति = शास् + लट् । (६) प्राप्ता = प्र + अप् + क्त + टाप् । (७) सगत = सम् + गम् + क्त । (८) प्रार्थये = प्र + अर्थ + लट् ।

विवृति

(१) यहाँ प्रीति लाभ रूप कार्य के प्रति अनेक कारणो का उपन्यास करने से समुच्चय अलङ्कार है। (२) चतुर्थ चरण के अर्थ के प्रति पूर्व के तीनो चरणो का अर्थ कारण होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। परस्पर दोनो की ससृष्टि है। (३) स्रग्धरा छन्द है। लक्षण—'म्रभ्नैर्याना त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।'

काश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा काश्चिन्नयत्युन्नतिं
काश्चित्पातविधौ करोति च पुनः काश्चिन्नयत्याकुलान् ।
अन्योन्यं प्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधय-
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः ॥६०॥

अन्वय —कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तः, एषः, विधिः, अन्योन्यम्, प्रतिपक्षसंहतिम्, इमाम्, लोकस्थितिम्, बोधयन्, क्रीडति, (अयम्), काश्चित्, तुच्छयति, वा, काश्चित्, प्रपूरयति, काश्चित्, उन्नतिम्, नयति, काश्चित्, पातविधौ, करोति, पुनः, काश्चित्, च, आकुलान्, नयति ॥६०॥

पदार्थ —कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तः =रहट की छोटी-छोटी बाल्टियों के ढंग का अनुसरण करने में लगा हुआ, विधिः =दैव, अन्योन्यम्=आपस में, प्रतिपक्षसंहतिम्=विरोधी पदार्थों के समूह से युक्त, इमाम्=इस, लोकस्थितिम्=सांसारिक अवस्था को अथवा सामाजिक दशा को, बोधयन्=बतलाता हुआ, क्रीडति=खिलवाड़ करता है, काश्चित्=किन्हीं को, पातविधौ=पतनकर्म या पतन के मार्ग में, नयति= बना देता है।

अनुवाद –रहट के क्षुद्र घटों के अनुसरण में तत्पर यह दैव, परस्पर विरोधियों के समुदाय से युक्त इस संसार की इस अवस्था का बोध कराता हुआ क्रीडा करता है। (यह) किन्हीं को तुच्छ (रिक्त) करता है तो किन्हीं को प्रपूर्ण कर देता है, किन्हीं को उन्नति में पहुँचा देता है तो किन्हीं का पतन करा देता है और किन्हीं को तो व्याकुल ही बना देता है।

संस्कृत टीका—कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तः =कूपजलोद्धारणयन्त्रघट पद्धति-तत्परः, एषः =असौ, विधिः =दैवम्, अन्योन्यम्=परस्परम्, प्रतिपक्षसंहतिम्= विरोधिसमवायम्, इमाम् लोकस्थितिम् जनावस्थाम् संसाराजस्थाम् वा, बोधयन्= ज्ञापयन्, क्रीडति=खेलति, काश्चित्=कियतः जनान् तुच्छयति=रिक्तान् करोति, वा काश्चित्=कियतः जनान्, प्रपूरयति=प्रपूरणीकरोति, काश्चित्, उन्नतिम्= समृद्धिम्, नयति=प्रापयति, काश्चित्, पातविधौ=पतनमार्गे, करोति=विदधाति, पुनः, काश्चित् च, आकुलान्=व्याकुलान्, नयति=करोति ।

समास एवं व्याकरण—(१) प्रतिपक्षसंहतिम्=प्रतिपक्षाणां संहतिः यत्र तादृशेन। (२) लोकस्थितिम्=लोकस्य स्थितिम् । (३) स्थिताम्=स्था+क्त+टाप् । (४) संहतिम्=सम्+हन्+क्तिन् । (५) बोधयन्=बुध्+णिच्+शतृ । (६) विधिः—वि+धा+कि । तुच्छयति=तुच्छ+लट् (नाम धातु) । (८) उन्नतिम्=उत्+नम्+क्तिन् । (९) नयति=नी+लट् ।

विवृति

(१) महाकवि कूपयन्त्र० के उदाहरण से मनुष्य के भाग्य चक्र का उल्लेख

किया है। अत्यन्त प्राचीन काल मे भाग्य के उत्थान पतन का वर्णन प्राप्त होता है। भास ने स्वप्नवासवदत्त मे लिखा है—

'चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्ति।'

महाकवि कालिदास ने मेघदूत मे लिखा है—

'कस्यात्यन्त सुखमुपनत दु खमेकान्ततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।'

(२) प्रस्तुत पद्य मे निदर्शना एव दीपक अलकार है तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है। (३) तुलना—'रिक्त सर्वो भवति हि लघु पूर्णता गौरवाय।' मेघदूत।

तथापीदमस्तु भरतवाक्यम्—

तो भी यह भरत वाक्य हो—

क्षीरिण्यः सन्तु गावो, भवतु वसुमती सर्वसम्पन्नसस्या,
पर्जन्यः कालवर्षी, सकलजनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः।
मोदन्ता जन्मभाज, सततमभिमता ब्राह्मणा सन्तु सन्तः
श्रीमन्त पान्तु पृथ्वी प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्च भूपा ॥६१॥

अन्वय—गाव, क्षीरिण्य सन्तु। वसुमती, सर्वसम्पन्नसस्या, भवतु। पर्जन्य कालवर्षी (भवतु)। सकलजनमनोनन्दिन वाता, वान्तु। जन्मभाज, मोदन्ताम्। ब्राह्मणा, सततम् अभिमता, (तथा), सन्त, सन्तु। श्रीमन्त, प्रशमितरिपव च, धर्मनिष्ठा, भूपा, पृथिवीम् पान्तु ॥६१॥

पदार्थ—गाव = गाये क्षीरिण्य = दूध वाली, सन्तु = हो। वसुमती = पृथिवी, सर्वसम्पन्नसस्या = समस्त धान्यो से पूर्ण, भवतु = हो। पर्जन्य = मेघ, कालवर्षी = समय पर बरसने वाला, सकलजनमनोनन्दित = सभी जनो के हृदय को प्रसन्न करने वाला, वाता = वायु, वान्तु = वहे। जन्मभाज = पैदा होने वाले, मोदन्ताम् = सुखी रहे। ब्राह्मणा = ब्राह्मण लोग, सततम् = सर्वदा, अभिमता = अभीष्ट, सन्त = सदाचारी, सन्तु = हो। श्रीमन्त = सम्पत्तिशाली, प्रशमितरिपव = शत्रुओ का दमन करने वाले। पान्तु = पाले।

अनुवाद—गाये दूध वाली हो। धरती सब प्रकार के धान्य से सम्पन्न हो। जलद समय पर वर्षा करने वाले हो। सभी लोगो के मन को आनन्दित करने वाले पवन वहें। प्राणी सतत प्रसन्न रहे। ब्राह्मण लोग सर्वदा सबके प्रिय एव सदाचारी हो। सम्पत्तिशाली, शत्रुओ के विनाशक एव धर्म मे आदर रखने वाले नरेश पृथिवी का पालन करें।

समास एव व्याकरण—(१) सर्वसम्पन्नसस्या = सर्वाणि सम्पन्नानि सस्यानि यस्या तादृशी बहु०। (२) सकलजन० = सकलाना जनाना मनासि नन्दयन्ति इति। (३)

प्रशमितरिपव.=प्रशमितः रिपव. यै. तादृशा बहु॰ । (४) क्षीर+इन्+ङीप्= बहुव· क्षीरिण्य. । (५) सन्तु=अस्+लोट् । (६) वान्तु=वा+लोट् । (७ मोदन्ताम्=मोद्+लोट् । (८) अभिमता=अभि+मन्+क्त । (९) पान्तु= पा+लोट् । (१०) वसुमती=वसु+मतुप्+ङीप् ।

विवृति

(१) भरतवाक्य=नाटक के अन्त में आशीर्वादात्मक श्लोक को भरतवाक्य कहते हैं। यह प्रशस्ति रूप होता है। भरत शब्द का अर्थ है नट। नाट्य शास्त्र के आचार्य भरत के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए अभिनेता नट अपने वाक्य को भरत वाक्य कहता है। भरतवाक्य में जीवमात्र की कल्याण कामना की जाती है। (२) प्रस्तुत पद्य में परिसंख्या अलंकार है। (३) इस श्लोक में स्रग्धरा छन्द है। 'भ्रम्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।' (४) यहाँ पर प्रशस्ति नामक निर्वहण सन्धि का अंग है—'नृपदेशादि शान्तिस्तु प्रशस्तिरभिधीयते ।'

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

(सब चले जाते हैं ।)

संहारो नाम दशमोऽङ्कः ।

संहार नामक दसवाँ अङ्क समाप्त ।

परिशिष्ट–१

'मृच्छकटिक' के सुभाषित

प्रथम अंक

(१) शून्यमपुत्रस्य गृहं चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम्।
मूर्खस्य दिशः शून्याः सर्वं शून्यं दरिद्रस्य ॥ (१, ८)

(२) सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां धृतः शरीरेण मृतः स जीवति ॥ (१, १०)

(३) अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्। (१, ११)

(४) दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो,
निस्तेजाः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते,
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥ (१, १४)

(५) तपसा मनसा वाग्भिः पूजिता बलिकर्मभिः।
तुष्यन्ति शमिनां नित्यं देवताः किं विचारितैः ॥ (१, १६)

(६) न पुष्पमोषमर्हत्युद्यानलता।

(७) गुणः खल्वनुरागस्य कारणं, न पुनर्बलात्कारः।

(८) मा दुर्गत इति परिभवो नास्ति कृतान्तस्य दुर्गतो नाम।
चरित्रेण विहीन आढ्योऽपि च दुर्गतो भवति ॥ (१, ४३)

(९) यदा तु भाग्यक्षयपीडितां दशां नरः कृतान्तोपहितां प्रपद्यते।
तदास्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रतां चिरानुरक्तोऽपि विरज्यते जनः ॥
(१, ५३)

(१०) न युक्तं परकलत्रदर्शनम्।

(११) पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते, न पुनर्गेहेषु।

द्वितीय अंक

(१२) दरिद्रपुरुषसङ्क्रान्तमना खलु गणिका लोकेऽवचनीया भवति।

(१३) किं हीनकुसुमं सहकारपादपं मधुकर्यः सेवन्ते ?
(१४) द्यूतं हि नाम पुरुषस्यासिंहासनं राज्यम् ।
(१५) य आत्मबलं ज्ञात्वा भारं तुलितं वहति मनुष्यः ।
तस्य स्खलनं न जायते न च कान्तारगतो विपद्यते ॥ (२, १४)
(१६) दुर्लभा गुणा विभवाश्च । अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति ।
(१७) सत्कारधनः खलु सज्जनकस्य न भवति चलाचलं धनम् ।
यः पूजयितुमपि न जानाति स पूजाविशेषमपि जानाति ॥ (२, १५)

तृतीय अंक

(१८) सुजनः खलु भृत्यानुकम्पकः स्वामी निर्धनकोऽपि शोभते ।
पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्करः खलु परिणामदारुणः ॥ (३, १)
(१९) सस्यलम्पटबलीवर्दो न शक्यो वारयितुं—
मन्यप्रसक्तकलत्रं न शक्यं वारयितुम् ।
द्यूतप्रसक्तमनुष्यो न शक्यो वारयितुं
योऽपि स्वाभाविकदोषो न शक्यो वारयितुम् ॥ (३, २)
(२०) वीणा हि नामासमुद्रोत्थितं रत्नम् ।
(२१) यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम् ।
(२२) अनतिक्रमणीया भगवती गोकाम्या ब्राह्मणकाम्या च ।
(२३) शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता । (३, २४)
(२४) भगवन् कृतान्त ! पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुचञ्चलैः क्रीडसि दरिद्रपुरुषभागधेयैः ।
(२५) आत्मभाग्यक्षतद्रव्यः स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः ।
अर्थतः पुरुषो नारी या नारी सार्थतः पुमान् ॥ (३, २७)

चतुर्थ अंक

(२६) आर्ये ! किं य एव जनो वेशे प्रतिवसति स एवालीकदक्षिणो भवति ?
(२७) सखीजनचित्तानुवर्त्यबलाजनो भवति ।
(२८) स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः । (४, २)
(२९) साहसे श्रीः प्रतिवसति ।
(३०) इह सर्वस्वफलिनः कुलपुत्रमहाद्रुमाः ।
निष्फलत्वमलं यान्ति वेश्याविहगभक्षिताः ॥ (४, १०)
(३१) अयं च सुरतज्वालः कामाग्निः प्रणयेन्धनः ।
नराणां यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥ (४, ११)

(३२) अपण्डितास्ते पुरुषा मता मे ये स्त्रीषु च श्रीषु च विश्वसन्ति ।
श्रियो हि कुर्वन्ति तथैव नार्यो भुजङ्गकन्यापरिसर्पणानि ॥ (४, १२)

(३३) स्त्रीषु न रागः कार्यो रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति ।
रक्तैव हि रन्तव्या विरक्तभावा तु हातव्या ॥ (४, १३)

(३४) एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो–
विश्वासयन्ति पुरुषं न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीया ॥ (४, १४)

(३५) समुद्रवीचीव चलस्वभावा सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागा ।
स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत्त्यजन्ति ॥ (४, १५)

(३६) न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति ।
यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो न वेशजाताः शुचयस्तथाङ्गनाः ॥(४,१७)

(३७) स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः ।
पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते ॥ (४, १९)

(३८) न चन्द्रादातपो भवति ।

(३९) निशायां नष्टचन्द्रायां दुर्लभो मार्गदर्शकः । (४, २१)

(४०) गुणेष्वेव हि कर्तव्यः प्रयत्नः पुरुषैः सदा ।
गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः समः ॥ (४, २२)

(४१) गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम् ।
गुणप्रकर्षादुडुपेन शम्भोरलङ्घ्यमुल्लङ्घितमुत्तमाङ्गम् ॥ (४, २३)

(४२) द्वयमिदमतीव लोके प्रियं नराणां सुहृच्च वनिता च । (४, २५)

(४३) कथं हीनकुसुमादपि सहकारपादपान्मकरन्दबिन्दवो निपतन्ति ?

पञ्चम अङ्क

(४४) अकर्दमसमुत्थिता पद्मिनी, अवञ्चको वणिक्
अचौरः सुवर्णकारः, अकलहो ग्रामसमागमः,
अलुब्धा गणिकेति दुष्करमेते सम्भाव्यन्ते ।

(४५) गणिका नाम पादुकान्तरप्रविष्टेव लेष्टुका दुःखेन पुनर्निराक्रियते ।

(४६) सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चलस्वभावाः ।
स्निग्धाः गता हृदयमेव पुनर्विशन्ति ॥ (५, ८)

(४७) कामो वामः ।

(४८) मेघा वर्षन्तु गर्जन्तु मुञ्चन्त्वशनिमेव वा ।
गणयन्ति न शीतोष्णं रमणाभिमुखाः स्त्रियः ॥ (५, १६)

(४९) न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति । (५, ३१)

(५०) धर्नैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके, किं जीवितेनादित एव तावत् ।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्, कोपप्रसादा विफलीभवन्ति ॥ (५, ४०)

(५१) पक्षविकलश्च पक्षी शुष्कश्च तरु सरश्च जलहीनम् ।
सर्पोद्धृतदंष्ट्रस्तुल्यं लोके दरिद्रश्च ॥ (५, ४१)

(५२) शून्यैर्गृहैः खलु समाः पुरुषा दरिद्राः
कूपैश्च तोयरहितैस्तरुभिश्च शीर्णैः ।
यद्दृष्टपूर्वजनसङ्गमविस्मृतानाम्–
मेवं भवन्ति विफलाः परितोषकालाः ॥ (५, ४२)

षष्ठ अङ्क

(५३) वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न गृहीतस्य बन्धने । (६, १७)

(५४) त्यजति त किल जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च ।
भवति च सदोपहास्यो य खलु शरणागत त्यजति ॥ (६, १८)

(५५) भीताभयप्रदान ददत परोपकाररसिकस्य ।
यदि भवति खलु नाशस्तथापि खलु लोके गुण एव ॥ (६, १९)

सप्तम अङ्क

(५६) न कालमपेक्षते स्नेह ।

(५७) स्वात्मापि विस्मयते ? (७, ७)

अष्टम अङ्क

(५८) विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसञ्चित धर्मम् । (८, १)

(५९) पञ्चजना येन मारिता अविद्या मारयित्वा ग्रामो रक्षित. ।
अबल क्व चण्डालो मारितोऽवश्यमपि स नर स्वर्ग गाहते ॥ (८,२)

(६०) शिरो मुण्डित तुण्ड मुण्डितम्
चित्त न मुण्डित किमर्थं मुण्डितम् ?
यस्य पुनश्च चित्त मुण्डितम्
साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम् ॥ (८, ३)

(६१) विपर्यस्तमनश्चेष्टै शिलाशकलवर्ष्मभि ।
मासवृक्षैरियं मूर्खैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा ॥ (८, ६)

(६२) स्त्रीभिर्विमानितानां कापुरुषाणां विवर्धते मदन ।
सत्पुरुषस्य स एव तु भवति मृदुर्नैव वा भवति ॥ (८, ९)

(६३) दुष्कर विषमौषधीकर्तुम् ।

(६४) अग्राह्या मूर्धजेष्वेता स्त्रियो गुणसमन्विता ।
न लता पल्लवच्छेदमर्हन्त्युपवनोद्भवा ॥ (८, २१)

(६५) किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम् ।
भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः ॥ (८, २९)

(६६) विविक्तविस्रम्भरसो हि कामः । (८, ३०)

(६७) सुचरितचरित विशुद्धदेह,
न हि कमलं मधुपाः परित्यजन्ति । (८, ३२)

(६८) यत्नेन सेवितव्यः पुरुषः कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि ।
शोभा हि पणस्त्रीणां सदृशजनसमाश्रयः कामः ॥ (८, ३३)

(६९) धिक् प्रीतिं परिखेदकारिकामनार्यान् । (८, ४१)

(७०) हस्तसंयतो मुखसंयत इन्द्रियसंयतः स खलु मनुष्यः ।
किं करोति राजकुलं ? तस्य परलोको हस्ते निश्चलः ॥ (८, ४७)

नवम अङ्क

(७१) न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् । (९, १६)

(७२) यथैव पुष्पं प्रथमे विकाशे समेत्य पातुं मधुपाः भवन्ति ।
एवं मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥ (९, २६)

(७३) सत्येन सुखं खलु लभ्यते सत्यालापे न भवति पातकम् ।
सत्यमिति द्वे अक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय ॥ (९, ३५)

(७४) ईदृशे व्यवहाराग्नौ मन्त्रिभिः परिपातिता ।
स्थाने खलु महीपाला गच्छन्ति कृपणां दशाम् ॥ (९, ४०)

(७५) ईदृशैः श्वेतकाकीयैः राज्ञः शासनदूषकैः ।
अपापानां सहस्राणि हन्यन्ते च हतानि च ॥ (९, ४१)

(७६) मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम् ?

(७७) नृणां लोकान्तरस्थानां देहप्रतिकृतिः सुतः । (९, ४२)

दशम अङ्क

(७८) सर्वः खलु भवति लोके लोकः सुखसंस्थितानां चिन्तायुक्तः ।
विनिपतितानां नराणां प्रियकारी दुर्लभो भवति ॥ (१०, १५)

(७९) अमौक्तिकमसुवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम् ।
देवतानां पितॄणाञ्च भागो येन प्रदीयते ॥ (१०, १८)

(८०) अभ्युदयेऽवसाने तथैव रात्रिन्दिवमहतमार्गा ।
उद्दामेव किशोरी नियतिं खलु प्रत्येपितुं याति ॥ (१०, १९)

(८१) राहुगृहीतोऽपि चन्द्रो न वन्दनीयो जनपदस्य ? (१०, २०)

(८२) येऽभिभवन्ति साधुं ते पापास्ते च चाण्डालाः (१०, २२)

(८३) इदं तत्स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः ।
अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम् ॥ (१०, ११)

(८४) हन्त ! ईदृशो दासभाव, यत्सत्य कमपि न प्रत्याययति ।

(८५) गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्ति लभेते, किम्पुनर्मरणभीरुका मानवा वा ? लोके कोऽप्युत्थित पतति । कोऽपि पतितोऽप्युत्तिष्ठते ।

(८६) अहो प्रभाव प्रियसङ्गमस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्म्रियेत । (१०,४३)

(८७) सर्वत्रार्जव शोभते ।

(८८) शत्रु कृतापराध शरणमुपेत्य पादयो पतित ।
शस्त्रेण न हन्तव्य उपकारहतस्तु कर्तव्य ॥ (१०, ५५)

(८९) समीहितसिद्धये पूर्वेण ब्राह्मणोऽग्रे कर्तव्य ।

(९०) अम्भोजिनी लोचनमुद्रण किं भानावनस्तङ्गमिते करोति ? (१०,५७)

(९१) काश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा काश्चिन्नयत्युन्नति
काश्चित्पातविधौ करोति च पुन काश्चिन्नयत्याकुलान् ।
अन्योन्य प्रतिपक्षसहतिमिमा लोकस्थिति बोधय-
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधि ॥ (१०, ५९)

परिशिष्ट-२

मृच्छकटिकस्थपद्यानुक्रमः।

-----o-----